Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आरण्य - किष्किन्धा काण्डात्मकम्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

लाल कपूर ट्रस्ट ग्रंथमाला सं०—३१
Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
7 रा/A1

श्रीमद्वाल्मीकि रामायणम्

अरण्य-किष्किन्धाकाण्डात्मकम्

(हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादक
तथा
परिशोधक
श्री पं० अखिलानन्द—आनन्दभवन झरिया

प्रकाशक
श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट—गुरुबाजार—अमृतसर

म बार
000

संवत् २०२१ वि०

मूल्य ४·५०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ट्रस्ट के उद्देश्य

प्राचीन वैदिक साहित्य का अन्वेषण, रक्षा तथा प्रचार
तथा भारतीय संस्कृति, भारतीय शिक्षा, भारतीय
विज्ञान और चिकित्सा द्वारा
जनता की सेवा।

मुद्रक
बालकृष्ण शास्त्री
ज्योतिष प्रकाश प्रेस, कालभैरव मार्ग,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीमद् वाल्मीकि रामायण विषय-सूची

अरण्य काण्ड

विषय	पृष्ठ
हर्षियों के साथ संगति	५४९
ाध का संरोध	५५१
ाध पर प्रहार	५५३
ध को गाड़ना	५५६
मङ्ग का ब्रह्मलोक को प्रस्थान	५५९
ों के बध की प्रतिज्ञा	५६२
ग का आश्रम	५६५
ण की आज्ञा	५६७
का धर्म कथन	५६९
वध का समर्थन	५७२
स्त्य का आश्रम	५७४
गस्त्य का दर्शन	५८०
ञ्चवटी में जाना	५८३
ायु से मिलना	५८६
ञ्चवटी में पर्णकुटी	५८९
र्दी का वर्णन	५९१
शूर्पणखा के भावों का प्राकट्य	५९५
शूर्पणखा को कुरूप करना	५९८
खर का क्रोध	६००
चौदहों राक्षसों का वध	६०२
खर को उत्तेजित करना	६०५
खर की तैयारी	६०७
उत्पातों का देखना	६०९
रामचन्द्र तथा खर की सेना का सामना	६११
खर की सेना का दमन	६१४
दूषण आदि का वध	६१८
त्रिशिरा का वध	६२१
खर और राम का युद्ध	६२३
खर की गदा का भेदन	६२६
खर का संहार	६२८
रावण तथा खर के आचरण की निन्दा	६३१
शूर्पणखा का उद्यम	६३६
रावण की निन्दा	६३८
सीता के हरण का उपदेश	६४०
मारीच के आश्रम में पुनः जाना	६४२
सहायता की याचना	६४६
अप्रिय पथ्य वचन	६४८

सर्ग	विषय	पृष्ठ
३८.	राम के अस्त्र की महिमा	६५०
३९.	सहायता की अस्वीकृति	६५३
४०.	मायामृग रूप धारण करने का आदेश	६५६
४१.	रावण की निन्दा	६५८
४२.	सोने के मृग का देखना	६६०
४३.	लक्ष्मण की शङ्का का समाधान	६६३
४४.	मारीच का छल	६६७
४५.	सीता की फटकार	६७०
४६.	रावण भिक्षु का सत्कार	६७३
४७.	रावण की भर्त्सना	६७६
४८.	रावण की आत्म प्रशंसा	६८१
४९.	सीता का अपहरण	६८३
५०.	जटायु का युद्ध-आह्वान	६८६
५१.	जटायु रावण-युद्ध	६८९
५२.	सीता का विलाप	६९२
५३.	रावण की भर्त्सना	६९६
५४.	लङ्का में पहुँचना	६९८
५५.	सीता को लुभाने का यत्न	७०१
५६.	वर्ष भर की अवधि करना	७०४
५७.	राम का लौटना	७०७
५८.	अनिमित्त दर्शन	७०९
५९.	लक्ष्मणागमन की निन्दा	७११
६०.	राम का उन्माद	७१३
६१.	सीता की खोज	७१७
६२.	राघव का विलाप	७२०
६३.	दुःखों का अनुचिन्तन	७२२
६४.	राम का क्रोध	७२४
६५.	क्रोध समाप्ति की प्रार्थना	७३०
६६.	औचित्य का बोध	७३२
६७.	गृध्रराज का दर्शन	७३४
६८.	जटायु का संस्कार	७३७
६९.	कबन्ध-ग्राह	७४०
७०.	कबन्ध की बांह का काटना	७४४
७१.	कबन्ध के शाप की कथा	७४६
७२.	सीता की प्राप्ति का उपाय	७४९
७३.	ऋश्यमूक के मार्ग का कथन	७५१
७४.	शबरी की स्वर्गप्राप्ति	७५५
७५.	पम्पा का दर्शन	७५८

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किष्किन्धा काण्ड

सर्ग	विषय	पृष्ठ
१.	राम की विरह वेदना	७६१
२.	सुग्रीव से मन्त्रणा	७७१
३.	हनुमान् का प्रेषण	७७४
४.	सुग्रीव के समीप जाना	७७७
५.	सुग्रीव के साथ राम की मित्रता	७८०
६.	आभूषणों की पहचान	७८३
७.	राम का आश्वासन	७८५
८.	बाली के वध की प्रतिज्ञा	७८७
९.	वैर के वृत्तान्त का कथन	७९१
१०.	राज्य से निर्वासन की कथा	७९३
११.	बाली के बल का वर्णन	७९६
१२.	सुग्रीव को विश्वास दिलाना	८०३
१३.	सप्तजन के आश्रम को प्रणाम	८०७
१४.	सुग्रीव का गर्जन	८०९
१५.	तारा की हितोक्ति	८११
१६.	बाली का वध	८१४
१७.	राम की निन्दा	८१७
१८.	बाली के वध का समर्थन	८२२
१९.	तारा का आगमन	८२८
२०.	तारा का विलाप	८३०
२१.	हनुमान् का आश्वासन	८३३
२२.	बाली का अनुशासन	८३४
२३.	अङ्गद का अभिवादन	८३७
२४.	सुग्रीव तथा तारा को आश्वासन	८४०
२५.	बाली का संस्कार	८४६
२६.	सुग्रीव का अभिषेक	८५०
२७.	माल्यवान् पर निवास	८५४
२८.	वर्षा-वर्णन	८५८
२९.	हनुमान् का प्रतिबोधन	८६५
३०.	शरद्-वर्णन	८६८
३१.	लक्ष्मण का क्रोध	८७६
३२.	हनुमान् की सम्मति	८८०
३३.	तारा को सान्त्वना वचन	८८३
३४.	सुग्रीव की भर्त्सना	८८९
३५.	तारा का समाधान	८९०
३६.	सुग्रीव का लक्ष्मण से अनुरोध	८९३
३७.	वनवासी सेना का आगमन	८९४
३८.	राम के पास जाना	८९७
३९.	सेना का शिविर	९००
४०.	पूर्व दिशा में भेजना	९०४
४१.	दक्षिण दिशा में भेजना	९०९
४२.	पश्चिम दिशा में भेजना	९१३
४३.	उत्तर दिशा में भेजना	९१८
४४.	हनुमान् को संदेश	९२२
४५.	वनवासी सेना का प्रस्थान	९२४
४६.	भूमण्डल भ्रमण कथा	९२५
४७.	वनवासी सेना का लौटना	९२७
४८.	वन आदि में खोज	९२९
४९.	रजत पर्वत पर खोज	९३१
५०.	ऋक्षबिल में प्रवेश	९३३
५१.	स्वयंप्रभा का आतिथ्य	९३६
५२.	बिल में प्रवेश के कारण का कथन	९३८
५३.	अङ्गद आदि का विषाद	९४०
५४.	हनुमान् का भेद	९४४
५५.	प्रायोपवेश	९४६
५६.	संपाति का प्रश्न	९४८
५७.	जटायु का वृत्तान्त कथन	९५०
५८.	सीता की प्रवृत्ति का ज्ञान	९५२
५९.	सुपार्श्व के वचन का अनुकथन	९५५
६०.	संपाति का पूर्ववृत्त कथन	९५७
६१.	सूर्य के समीप जाने का वर्णन	९५९
६२.	निशाकर का भविष्य कथन	९६१
६३.	संपाति के पंखों का उगना	९६२
६४.	समुद्र के पार जाने का विचार	९६४
६५.	शक्ति की मात्रा का प्रकाशन	९६६
६६.	हनुमान् के बल का प्रकाशन	९६८
६७.	लांघने का उपक्रम	९७२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी
पुस्तक क्र. 1785
भारती पुस्तकालय

श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्

* अरण्यकाण्डः *

प्रथमः सर्गः

महर्षिसङ्गः

प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् । ददर्श रामो दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥ १ ॥
कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्म्या लक्ष्म्या समावृतम् । यथा प्रदीप्तं दुर्दर्शं गगने सूर्यमण्डलम् ॥ २ ॥
शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरं सदा । मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसङ्घैः समावृतम् ॥ ३ ॥
पूजितं चोपनृत्तं च नित्यं कलापिनां गणैः । विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भाण्डैरजिनैः कुशैः ॥ ४ ॥
समिद्भिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम् । आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्युतम् ॥ ५ ॥

अरण्य कांड

प्रथम सर्ग

महर्षियों के साथ संगति

दुर्जेय जितेन्द्रिय रामचन्द्र ने महारण्य दण्डक वन में प्रवेश कर दण्डक वनवासी तपस्वियों के आश्रम समूह को देखा ॥ १ ॥ जहाँ-तहाँ कुश और वल्कलवसन फैले हुए हैं, ब्रह्मर्षियों की ब्रह्ममय कान्तियों से जो प्रकाशित हो रहा है, इन सब बातों से वह आश्रम इस प्रकार दुर्दर्शनीय हो रहा है जैसे आकाश में सूर्य मण्डल ॥ २ ॥ सम्पूर्ण शरणार्थियों को शरण देने वाले, जिनके प्रांगण सुपरिमार्जित हैं, पालतू मृग तथा पक्षिसमूहों से जो घिरे हुए हैं ॥ ३ ॥ सर्वजनों से पूजित, मयूर गणों का जहाँ नृत्य हो रहा है, जहाँ बड़ी-बड़ी यज्ञशालाएँ हैं, स्रुवा, यज्ञपात्र, मृगचर्म तथा कुश जहाँ रखे हुए हैं ॥ ४ ॥ हवन के लिये समिधाएँ तथा जलपूर्ण कलश और कन्द-मूल फल आदि से शोभित हो रहा है। उत्तम, स्वादु फल वाले महान् वनवासी वृक्षों से भरे हुए आश्रम में राम ने प्रवेश किया ॥ ५ ॥ पुण्य बलिवैश्वदेव आदि यज्ञ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

बलिहोमार्चितं पुण्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् । पुष्पैर्वन्यैः परिक्षिप्तं पद्मिन्या च सपद्मया ॥ ६ ॥
फलमूलाशनैर्दान्तैश्चीरकृष्णाजिनाम्बरैः । सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्वृतम् ॥ ७ ॥
पुण्यैश्च नियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः । तद्ब्रह्मभवनप्रख्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् ॥ ८ ॥
ब्रह्मविद्भिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् । तद्दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम् ॥ ९ ॥
अभ्यगच्छन्महातेजा विज्यं कृत्वा महद्धनुः । दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः ॥१०॥
अभ्यगच्छंस्तथा प्रीता वैदेहीं च यशस्विनीम् । ते तं सोममिवोद्यन्तं दृष्ट्वा वै धर्मचारिणः ॥११॥
लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा तु वैदेहीं च यशस्विनीम् । मङ्गलानि प्रयुञ्जानाः प्रत्यगृह्णन् दृढव्रताः ॥१२॥
रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् । ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ॥१३॥
वैदेहीं लक्ष्मणं रामं नेत्रैरनिमिषैरिव । आश्चर्यभूताम् ददृशुः सर्वे ते वनचारिणः ॥१४॥
अत्रैनं हि महाभागाः सर्वभूतहिते रतम् । अतिथिं पर्णशालायां राघवं संन्यवेशयन् ॥१५॥
ततो रामस्य सत्कृत्य विधिना पावकोपमाः । आजह्रुस्ते महाभागा सलिलं धर्मचारिणः ॥१६॥
मङ्गलानि प्रयुञ्जाना मुदा परमया युताः । मूलं पुष्पं फलं वन्यमाश्रमं च महात्मनः ॥१७॥
निवेदयित्वा धर्मज्ञास्ततः प्राञ्जलयोऽब्रुवन् । धर्मपालो जनस्यास्य शरण्यस्त्वं महायशाः ॥१८॥
पूजनीयश्च मान्यश्च राजा दण्डधरो गुरुः । इन्द्रस्येह चतुर्भागः प्रजा रक्षति राघव ॥१९॥

तथा वेद के घोष से जो परिपूर्ण हो रहा है। अनेक प्रकार के फूल जहाँ बिखरे हुए हैं और कमलों से विकसित जहाँ तहाँ सरोवर हैं ॥ ६ ॥ कन्दमूल फल खाने वाले, वशी, वल्कल वसन तथा मृगचर्म धारण करने वाले, सूर्य तथा अग्नि की तरह कान्ति वाले प्राचीन तपस्वियों से जो परिपूर्ण हो रहा है ॥७॥ जहाँ पर निरन्तर वेदध्वनि हो रही है, नियत पवित्र आहार करने वाले, ब्रह्मलोक के समान महान् तपस्वियों से शोभित ॥ ८ ॥ ब्रह्मवेत्ता, भाग्यशाली, विद्वान् ब्राह्मणों से जो सुशोभित हो रहा है, ऐसे तपस्वियों के आश्रम मण्डल को देखकर ॥ ९ ॥ महान् धनुष से प्रत्यञ्चा उतार कर तेजस्वी रामचन्द्र उन आश्रमों में गये। दिव्य ज्ञान से पूर्ण वे ऋषि लोग रामचन्द्र को देखकर ॥ १० ॥ यशस्विनी महाभागा जानकी के पास प्रसन्न होकर गये। नवोदित चन्द्र के समान धर्मचारी ॥ ११ ॥ राम, लक्ष्मण तथा यशस्विनी सीता को देखकर वे दृढ़व्रती ऋषि लोग उनके मङ्गल की कामना करते हुए उनको अपने आश्रम में ले गये ॥ १२ ॥ रूप लावण्य, शरीर का संगठन, सुकुमारता तथा राम की सुन्दर वेष-भूषा को बनवासी तपस्वी लोगों ने विस्मित होकर देखा ॥ १३ ॥ वैदेही, लक्ष्मण और राम इस मूर्त्तित्रय को निर्निमेष नेत्रों से वनवासी तपस्वियों ने आश्चर्य से देखा ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों के हितैषी भाग्यवान् इन ऋषियों ने इस महान् अतिथि रामचन्द्र को पर्णशाला में प्रवेश कराया ॥ १५ ॥ अग्नि के समान देदीप्यमान उन तपस्वियों ने विधिपूर्वक राम का सत्कार करके उनको जल निवेदित किया ॥ १६ ॥ प्रसन्नता पूर्वक मांगलिक आशीर्वाद देते हुए आश्रमवासी उन ऋषि गणों ने फल, मूल तथा आश्रम को निवेदित किया ॥ १७ ॥ कन्दमूल फल आदि अर्पण करने के पश्चात् वे धर्मात्मा ऋषि गण रामचन्द्र से बोले—आप धर्म के रक्षक हैं। यशस्वी हम शरणागतों के शरणागत वत्सल हैं ॥१८॥ आप हम लोगों के पूजनीय मान्य हैं, दण्ड विधान करने वाले श्रेष्ठ राजा हैं। हे रामचन्द्र! प्रजा का रक्षण करनेवाला राजा इन्द्र के यश का चौथा भाग होता है ॥१९॥ प्रजा के रक्षण से ही

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजा तस्माद्वरान् भोगान् भुङ्क्ते लोकनमस्कृतः। ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः ॥२०॥
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः। न्यस्तदण्डा वयं राजञ्जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ॥२१॥
रक्षितव्यास्त्वया शश्वद्गर्भभूतास्तपोधनाः। एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैर्वन्यैश्च राघवम् ॥२२॥
अन्यैश्च विविधाहारैः सलक्ष्मणमपूजयन्। तथान्ये तापसाः सिद्धा रामं वैश्वानरोपमाः ॥२३॥
न्यायवृत्ता यथान्यायं तर्पयामासुरीश्वरम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे महर्षिसङ्गो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

तिथी 1785 भारती पुस्तकालय

विराधसंरोधः

कृतातिथ्योऽथ रामस्तु सूर्यस्योदयनं प्रति। आमन्त्र्य स मुनीन् सर्वान् वनमेवान्वगाहत ॥ १ ॥
नानामृगगणाकीर्णं शार्दूलवृकसेवितम्। ध्वस्तवृक्षलतागुल्मं दुर्दर्शसलिलाशयम् ॥ २ ॥
निष्कूजनानाशकुनि झिल्लिकागणनादितम्। लक्ष्मणानुचरो रामो वनमध्यं ददर्श ह ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण जगत् के लिये वन्दनीय होता हुआ राजा विश्व के रमणीय उत्तम भोगों को भोगता है। हम लोग आपके शासनाधीन हैं इसलिये हम लोगों की रक्षा आप को करनी चाहिये ॥ २० ॥ आप चाहे नगर में हों, या वन में रहें आप ही हमारे राजा हैं। हम लोगों ने प्राणिमात्र के प्रति दण्ड देने की भावना छोड़ दी है। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करते हुए क्रोधादि विकारों को जीत लिया है ॥ २१ ॥ जैसे माता गर्भगत बच्चों की रक्षा करती है, उसी प्रकार आप भी हमारी रक्षा करें इस प्रकार बातें कह कर उन ऋषि लोगों ने नाना प्रकार के वन में होने वाले फल मूल आदि के द्वारा राम-लक्ष्मण की पूजा की ॥ २२ ॥ आश्रम वासी तपस्वियों के अतिरिक्त अग्नि के समान देदीप्यमान न्यायपूर्वक आचरण करने वाले अन्य सिद्ध तपस्वी लोगों ने न्यायपूर्वक रामचन्द्र का सत्कार किया ॥ २३ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'महर्षियों के साथ संगति' विषयक प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ॥१॥

दूसरा सर्ग

विराध का संरोध

अतिथि सत्कार को स्वीकार करने वाले रामचन्द्र ने सूर्योदय के समय आश्रम के सम्पूर्ण मुनियों से आज्ञा लेकर आगे वन में प्रवेश किया ॥ १ ॥ ऐसे वन में प्रवेश किया जो नाना प्रकार के वन-जन्तुओं से परिपूर्ण था, वृक्ष-लताएँ सब ध्वस्त हो चुकी थीं, जलाशय सब सूख गये थे, पक्षियों के शब्द बन्द हो गये थे, झिल्ली गण (झींगुर) जहाँ बोल रहे थे, ऐसे घोर वन को लक्ष्मण के साथ राम ने देखा ॥ २, ३ ॥ हिंसक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वनमध्ये तु काकुत्स्थस्तस्मिन् घोरमृगायुते । ददर्श गिरिशृङ्गाभं पुरुषादं महास्वनम् ॥ ४ ॥
गम्भीराक्षं महावक्त्रं विकटं विषमोदरम् । बीभत्सं विषमं दीर्घं विकृतं घोरदर्शनम् ॥ ५ ॥
वसानं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्रं रुधिरोक्षितम् । त्रासनं सर्वभूतानां व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ ६ ॥
[त्रीन् सिंहांश्चतुरो व्याघ्रान् द्वौ वृकौ पृषतान् दश । सविषाणं वसादिग्धं गजस्य च शिरो महत् ॥ ७ ॥
अवसज्यायसे शूले विनदन्तं महास्वनम् ।]
स रामं लक्ष्मणं चैव सीतां दृष्ट्वाथ मैथिलीम् । अभ्यधावत संक्रुद्धः प्रजाः काल इवान्तकः ॥ ८ ॥
स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम् । अङ्केनादाय वैदेहीमपक्रम्य ततोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥
युवां जटाचीरधरौ सभार्यौ क्षीणजीवितौ । प्रविष्टौ दण्डकारण्यं शरचापासिधारिणौ ॥१०॥
कथं तापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह । अधर्मचारिणौ पापौ को युवां मुनिदूषकौ ॥११॥
अहं वनमिदं दुर्गं विराधो नाम राक्षसः । चरामि सायुधो नित्यमृषिमांसानि भक्षयन् ॥१२॥
इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति । युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे ॥१३॥
तस्यैवं ब्रुवतो धृष्टं विराधस्य दुरात्मनः । श्रुत्वा सगर्वितं वाक्यं संभ्रान्ता जनकात्मजा ॥१४॥
सीता प्रावेपतोद्वेगात्प्रवाते कदली यथा ।
तां दृष्ट्वा राघवः सीतां विराधाङ्कगतां शुभाम् । अब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥१५॥
पश्य सौम्य नरेन्द्रस्य जनकस्यात्मसंभवाम् । मम भार्यां शुभाचारां विराधाङ्के प्रवेशिताम्॥१६॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धां राजपुत्रीं यशस्विनीम् । यदभिप्रेतमस्मासु प्रियं वरवृतं च यत् ॥१७॥

जन्तुओं से परिपूर्ण उस वन में रामचन्द्र ने विशालशब्द करते हुए विशाल काय नरभक्षी एक राक्षस को देखा ॥ ४ ॥ उसकी आँखें बहुत गहरी थी, विशाल मुँह वाला, विशाल पेट वाला, लम्बा-चौड़ा शरीर, विषम अंग वाला, अपवित्र, विकट तथा बीभत्स रूप वाला वह राक्षस था ॥ ५ ॥ चर्बी और रक्त से युक्त व्याघ्र चर्म को धारण करने वाला, यमराज की तरह मुख फाड़कर सब प्राणियों को डराने वाला था ॥६॥ तीन सिंह, चार बाघ, दो भेड़िये, दस हरिण, दाँत और चर्बी से युक्त हाथी का सिर त्रिशूल के साथ लटकाये हुये भयङ्कर शब्द करता हुआ वह राक्षस राम-लक्ष्मण-सीता को देखकर प्रलय के समय यमराज के समान क्रुद्ध होकर उनपर टूट पड़ा ॥ ७,८ ॥ भयङ्कर आवाज करके पृथ्वी को कम्पायमान करता हुआ वह राक्षस सीता को थोड़ी दूर गोद में लेजाकर राम से बोला ॥ ९ ॥ जटा वल्कल धारण करने वाले, स्त्री के साथ, अल्पायु, हाथ में धनुष बाण लेकर चलने वाले तुम दोनों ने इस दण्डक वन में कैसे प्रवेश किया ॥ १० ॥ तपस्वियों के वेश में तुम स्त्रियों के साथ क्यों वास करते हो । अधर्म आचरण करने वाले तथा मुनि समाज को दूषित करने वाले पापी तुम दोनों कौन हो ॥ ११ ॥ मैं विराध नाम का राक्षस हूँ । मैं इस दुर्गम वन में ऋषियों के मांस को खाता हुआ सशस्त्र घूमता हूँ ॥१२॥ यह उत्तम नारी मेरी स्त्री होगी । संग्राम में तुम दोनों पापियों का मैं रक्त पान करूँगा ॥ १३ ॥ उस दुरात्मा दुष्ट विराध के इस प्रकार गर्वित वचनों को सुनकर घबड़ाई हुई सीता इस प्रकार काँपने लगी जैसे वायु के वेग से कदली दल काँपता है ॥ १४ ॥ उस जानकी को विराध की गोद में देखकर, मुख जिसका सूख रहा है ऐसे रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण से बोले ॥ १५ ॥ हे सौम्य लक्ष्मण ? राजा जनक की पुत्री तथा शुभ आचरण वाली मेरी पत्नी सीता आज विराध के वश में आ गई है ॥ १६ ॥ यशस्विनी अत्यन्त सुखों में पली हुई राजपुत्री सीता आज विराध के वश में है । जिस हेतु को लेकर कैकेयी ने मेरे वनवास का वर मांगा था ॥ १७ ॥ हे लक्ष्मण ! आज शीघ्र ही उसका मनोरथ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कैकेय्यास्तु सुसंपन्नं क्षिप्रमद्यैव लक्ष्मण । या न तुष्यति राज्येन पुत्रार्थे दीर्घदर्शिनी ॥१८॥
ययाहं सर्वभूतानां हितः प्रस्थापितो वनम् । अद्येदानीं सकामा सा या माता मम मध्यमा ॥१९॥
परस्पर्शात्तु वैदेह्या न दुःखतरमस्ति मे । पितुर्वियोगात्सौमित्रे स्वराज्यहरणात्तथा ॥२०॥
इति ब्रुवति काकुत्स्थे बाष्पशोकपरिप्लुते । अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धो रुद्धो नाग इव श्वसन् ॥२१॥
अनाथ इव भूतानां नाथस्त्वं वासवोपमः । मया प्रेष्येण काकुत्स्थ किमर्थं परितप्यसे ॥२२॥
शरेण निहतस्याद्य मया क्रुद्धेन रक्षसः । विराधस्य गतासोर्हि मही पास्यति शोणितम् ॥२३॥
राज्यकामे मम क्रोधो भरते यो बभूव ह । तं विराधे प्रमोक्ष्यामि वज्री वज्रमिवाचले ॥२४॥
मम भुजबलवेगवेगितः पततु शरोऽस्य महान् महोरसि ।
व्यपनयतु तनोश्च जीवितं पततु ततः स महीं विघूर्णितः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे विराधसंरोधो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

विराधप्रहारः

अथोवाच पुनर्वाक्यं विराधः पूरयन् वनम् । आत्मानं पृच्छते ब्रूतं कौ युवां क्व गमिष्यथः ॥ १ ॥

सफल हो गया । जो दूरदर्शी कैकेयी अपने पुत्र की राज्य प्राप्ति से भी प्रसन्न नहीं हुई ॥१८॥ सम्पूर्ण प्राणियों के प्रिय पात्र मुझे भी वन में भेज दिया । आज उस मेरी मध्यमा माता कैकेयी का मनोरथ पूरा हुआ ॥१९॥ सीता का दूसरों के साथ स्पर्श होने से आज मुझे जितना दुःख हुआ है, उतना दुःख मुझे पिता की मृत्यु तथा राज्य के हाथ से चले जाने पर भी नहीं हुआ ॥ २० ॥ ककुत्स्थ शिरोमणि रामचन्द्र के ऐसा कहने पर रोके हुए सांप की तरह लम्बी २ सांस लेते हुए आँखों में आँसू भरकर क्रुद्ध लक्ष्मण बोले ॥२१॥ इन्द्र के समान आप प्राणिमय जगत् के स्वामी हैं । हे रामचन्द्र ! मेरे जैसे सेवक के रहते हुए आप अनाथों की तरह क्यों विलाप कर रहे हैं ॥ २२ ॥ क्रोध में आकर मेरे द्वारा मारे जाने पर प्राणहीन आज विराध राक्षस का रक्त यह पृथ्वी पान करेगी ॥ २३ ॥ आप के राज्य की कामना करने वाले भरत पर जो मैंने क्रोध किया था, आज उसी क्रोध को मैं विराध पर उसी प्रकार छोड़ूँगा जैसे पर्वतों पर विद्युत् का प्रहार होता है ॥ २४ ॥ मेरे भुजबल के वेग से छोड़ा हुआ बाण इसके विशाल वक्षःस्थल पर प्रहार करे तथा इसके शरीर से इसके प्राणों को अलग कर दे । पश्चात् यह राक्षस चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥२५॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'विराध का संरोध' विषयक दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥ २ ॥

तीसरा सर्ग

विराध पर प्रहार

सम्पूर्ण वन को गुञ्जारित करता हुआ विराध पुनः बोला—मैं तुम लोगों से पूछ रहा हूँ कि तुम दोनों कौन हो और कहाँ जाओगे ॥ १ ॥ देदीप्यमान अग्नि के समान मुख वाले उस राक्षस से पूछते हुए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तमुवाच ततो रामो राक्षसं ज्वलिताननम् । पृच्छन्तं सुमहातेजा इक्ष्वाकुकुलमात्मनः ॥ २ ॥
क्षत्रियौ वृत्तसंपन्नौ विद्धि नौ वनगोचरौ । त्वां तु वेदितुमिच्छावः कस्त्वं चरसि दण्डकान् ॥ ३ ॥
तमुवाच विराधस्तु रामं सत्यपराक्रमम् । हन्त वक्ष्यामि ते राजन्निबोध मम राघव ॥ ४ ॥
पुत्रः किल जवस्याहं मम माता शतह्रदा । विराध इति मामाहुः पृथिव्यां सर्वराक्षसाः ॥ ५ ॥
तपसा चापि मे प्राप्ता ब्रह्मणो हि प्रसादजा । शस्त्रेणावध्यता लोकेऽच्छेद्याभेद्यत्वमेव च ॥ ६ ॥
उत्सृज्य प्रमदामेनामनपेक्षौ यथागतम् । त्वरमाणौ पलायेथां न वां जीवितमाददे ॥ ७ ॥
तं रामः प्रत्युवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः । राक्षसं विकृताकारं विराधं पापचेतसम् ॥ ८ ॥
क्षुद्र धिक्त्वां तु हीनार्थं मृत्युमन्वेषसे ध्रुवम् । रणे संप्राप्स्यसे तिष्ठ न मे जीवन् गमिष्यसि ॥ ९ ॥
ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिशिताञ्शरान् । सुशीघ्रमभिसन्धाय राक्षसं निजघान ह ॥१०॥
धनुषा ज्यागुणवता सप्त बाणान् मुमोच ह । रुक्मपुङ्खान् महावेगान् सुपर्णानिलतुल्यगान् ॥११॥
ते शरीरं विराधस्य भित्त्वा बर्हिणवाससः । निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां पावकोपमाः ॥१२॥
स विद्धो न्यस्य वैदेहीं शूलमुद्यम्य राक्षसः । अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तदा रामं सलक्ष्मणम् ॥१३॥
स विनद्य महानादं शूलं शक्रध्वजोपमम् । प्रगृह्याशोभत तदा व्यात्ताननं इवान्तकः ॥१४॥
अथ तौ भ्रातरौ दीप्तं शरवर्षं ववर्षतुः । विराधे राक्षसे तस्मिन् कालान्तकयमोपमे ॥१५॥

महातेजस्वी रामचन्द्र ने 'मैं इक्ष्वाकु कुल का हूँ' ऐसा उसको परिचय दिया ॥ २ ॥ हम दोनों क्षत्रिय हैं, क्षात्र धर्म को पालन करने वाले इस समय हमलोग वन में घूम रहे हैं, ऐसा समझ । अब हम दोनों जानना चाहते हैं—तुम कौन हो और इस दण्डक वन में कैसे घूमते हो ॥ ३ ॥ राम के ऐसा पूछने पर वह विराध सत्यपराक्रमी उस रामचन्द्र से बोला—हे महाराज रामचन्द्र ! दया करके मैं आपको अपना परिचय दे रहा हूँ, मुझे आप जानें ॥ ४ ॥ मेरे पिता का नाम जव है, मेरी माता का नाम शतह्रदा है । पृथ्वी के सम्पूर्ण राक्षस मुझको विराध नाम से पुकारते हैं ॥ ५ ॥ तपश्चर्या के द्वारा ब्रह्मा जी से मैंने यह वरदान प्राप्त कर लिया है कि शस्त्र के द्वारा मेरा वध या मेरे अङ्गों का भेदन छेदन कोई न कर सके ॥ ६ ॥ अतः तुम दोनों आगे जाने की आशा न रखते हुए इस अपनी स्त्री को यहीं छोड़ कर जिस रास्ते से आये थे उसी रास्ते से शीघ्र ही भाग जाओ । मैं तुम लोगों को जान से नहीं मारूँगा ॥७॥ क्रोध से आँखें लाल करके रामचन्द्र भयङ्कर आकार वाले उस पापी विराध राक्षस से यह बोले ॥ ८ ॥ नीच विचार वाले, क्षुद्रबुद्धि तुमको धिक्कार है ! तुम अपनी मृत्यु निश्चय चाहते हो । तुम से मैं संग्राम करूँगा, तुम मुझसे जीवन नहीं बचा सकोगे ॥ ९ ॥ पश्चात् धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर रामचन्द्र ने उस राक्षस को लक्ष्य बनाकर उस पर शीघ्र ही बाणों का प्रहार किया ॥ १० ॥ प्रत्यञ्चा चढ़े हुए धनुष से रामचन्द्र ने सोने के पंख वाले वायु तथा गरुड़ के वेग के समान सात बाणों को छोड़ा ॥ ११ ॥ अग्नि के समान वे बाण मयूर पंख निर्मित वस्त्र के धारण करने वाले विराध के शरीर को भेद कर रक्त से सने हुए पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ १२ ॥ बाण के लगने पर वह राक्षस सीता को वहीं छोड़कर शूल लेकर क्रोधातुर राम और लक्ष्मण की ओर दौड़ पड़ा ॥ १३ ॥ इन्द्र की ध्वजा के समान शूल को लेकर भयङ्कर नाद करते हुए वह राक्षस मुख फाड़े हुए यमराज के समान शोभायमान होने लगा ॥ १४ ॥ पश्चात् दोनों भाई राम-लक्ष्मण कालान्तक के समान उस विराध राक्षस पर देदीप्यमान बाणों की वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥ भयङ्कर विकराल उस राक्षस ने हँसकर जम्भाई ली । जम्भाई

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स प्रहस्य महारौद्रः स्थित्वाजृम्भत राक्षसः । जृम्भमाणस्य ते बाणाः कायान्निष्पेतुराशुगाः ॥१६॥
स्पर्शात्तु वरदानेन प्राणान् संरुध्य राक्षसः । विराधः शूलमुद्यम्य राघवावभ्यधावत ॥१७॥
तच्छूलं वज्रसंकाशं गगने ज्वलनोपमम् । द्वाभ्यां चिच्छेद बाणाभ्यां रामः शस्त्रभृतां वरः ॥१८॥
तद्रामविशिखच्छिन्नं शूलं तस्य कराद्भुवि । पपाताशनिना छिन्नं मेरोरिव शिलातलम् ॥१९॥
तौ खड्गौ क्षिप्रमुद्यम्य कृष्णसर्पोपमौ शुभौ । तूर्णमापततस्तस्य तदा प्राहरतां बलात् ॥२०॥
स वध्यमानः सुभृशं बाहुभ्यां परिरभ्य तौ । अप्रकम्प्यौ नरव्याघ्रौ रौद्रः प्रस्थातुमैच्छत ॥२१॥
तस्याभिप्रायमाज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । वहत्वयमलं तावत्पथानेन तु राक्षसः ॥२२॥
यथा चेच्छति सौमित्रे तथा वहतु राक्षसः । अयमेव हि नः पन्था येन याति निशाचरः ॥२३॥
स तु स्वबलवीर्येण समुत्क्षिप्य निशाचरः । बालाविव स्कन्धगतौ चकारातिबलोद्धतः ॥२४॥
तावारोप्य ततः स्कन्धं राघवौ रजनीचरः । विराधो निनदन् घोरं जगामाभिमुखो वनम् ॥२५॥

वनं महामेघनिभं प्रविष्टो द्रुमैर्महद्भिर्विविधैरुपेतम् ।
नानाविधैः पक्षिशतैर्विचित्रं शिवायुतं व्यालमृगैर्विकीर्णम् ॥२६॥

1785

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे विराधप्रहारो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

लेते ही वे सारे बाण उसके शरीर से बाहर निकल गये ॥ १६ ॥ वरदान के प्रभाव से वह विराध राक्षस प्राणायाम के द्वारा अपने प्राणों को रोककर हाथ में शूल उठाकर राम-लक्ष्मण की ओर दौड़ा ॥१७॥ आकाश में विद्युत् के समान चमकने वाले राक्षस के उस शूल को शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ रामचन्द्र ने अपने दो बाणों से काट दिया ॥१८॥ वज्र के प्रहार से जैसे मेरु पर्वत की कोई चोटी टूटकर गिरती है उसी प्रकार रामचन्द्र के बाणों से छिन्न-भिन्न हुआ वह शूल उस राक्षस के हाथ से गिर पड़ा ॥ १९ ॥ पश्चात् वे राम-लक्ष्मण काले सर्प के समान अपनी २ तलवारों को लेकर शीघ्र ही उस राक्षस के पास पहुँचे और बलपूर्वक उस पर प्रहार किया ॥२०॥ खड्ग के आघात से पीड़ित होने पर भी विचलित न होने वाले नरकेसरी राम-लक्ष्मण को अपनी भुजाओं से पकड़ कर उस भयंकर राक्षस ने आगे बढ़ने की इच्छा की ॥ २१ ॥ उस राक्षस के इस अभिप्राय को जानकर रामचन्द्र लक्ष्मण से बोले—ठीक है, यह राक्षस हमको इस रास्ते से ले चले ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! यह राक्षस जैसा चाहता है वैसे ही हम लोगों को ले चले, क्योंकि जिस रास्ते से यह जाना चाहता है, वही रास्ता हमारा है ॥ २३ ॥ उस बल से उद्धत राक्षस ने अपने बाहु बल के द्वारा बालकों की तरह राम लक्ष्मण को उठाकर अपने कन्धों पर रख लिया ॥ २४ ॥ वह रात्रिचर विराध राक्षस उन दोनों राम-लक्ष्मण को अपने कन्धों पर रखकर भयङ्कर नाद करता हुआ वन की ओर चला गया ॥ २५ ॥ नाना प्रकार के वृक्ष और लताओं से युक्त, नाना प्रकार के पक्षियों से परिपूर्ण, सियार, साँप और अन्य वन्य जन्तुओं से सम्पन्न तथा काले २ महा मेघ के समान उस महान् वन में प्रवेश कर गया ॥ २६ ॥

इस प्रकार वाल्मिकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'विराध पर प्रहार' विषयक तीसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्थः सर्गः

विराधनिखननम्

ह्रियमाणौ तु तौ दृष्ट्वा वैदेही रामलक्ष्मणौ । उच्चैः स्वरेण चुक्रोश प्रगृह्य सुभुजा भुजौ ॥ १ ॥
एष दाशरथी रामः सत्यवाञ्शीलवाञ्शुचिः । रक्षसा रौद्ररूपेण ह्रियते सहलक्ष्मणः ॥ २ ॥
मां वृका भक्षयिष्यन्ति शार्दूला द्वीपिनस्तथा । मां हरोत्सृज्य काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम ॥ ३॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा वैदेह्या रामलक्ष्मणौ । वेगं प्रचक्रतुर्वीरौ वधे तस्य दुरात्मनः ॥ ४ ॥
तस्य रौद्रस्य सौमित्रिर्बाहुं सव्यं बभञ्ज ह । रामस्तु दक्षिणं बाहुं तरसा तस्य रक्षसः ॥ ५ ॥
स भग्नबाहुः संविग्नो निपपाताशु राक्षसः । धरण्यां मेघसंकाशो वज्रभिन्न इवाचलः ॥ ६ ॥
मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिः सूदयन्तौ तु राक्षसम् । उद्यम्योद्यम्य चाप्येनं स्थण्डिले निष्पिपेषतुः ॥ ७ ॥
स विद्धो बहुभिर्बाणैः खड्गाभ्यां च परिक्षतः । निष्पिष्टो बहुधा भूमौ न ममार स राक्षसः ॥ ८ ॥
तं प्रेक्ष्य रामः सुभृशमवध्यमचलोपमम् । भयेष्वभयदः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥
तपसा पुरुषव्याघ्र राक्षसोऽयं न शक्यते । शस्त्रेण युधि निर्जेतुं राक्षसं निखनावहे ॥१०॥
कुञ्जरस्येव रौद्रस्य राक्षसस्यास्य लक्ष्मण । वनेऽस्मिन् सुमहच्छ्रभ्रं खन्यतां रौद्रकर्मणः ॥११॥

चौथा सर्ग

विराध को गाड़ना

विराध रघुश्रेष्ठ राम-लक्ष्मण को हरण कर लिये जा रहा था, इसको देखकर अपनी भुजाओं को पकड़कर सीता उच्च स्वर से रोने लगी ॥ १ ॥ सत्यवादी, सदाचार सम्पन्न तथा पवित्रता से युक्त राजा दशरथ के राजकुमार रामलक्ष्मण को यह रुद्र राक्षस हरण करके लिये जा रहा है ॥ २ ॥ मुझे भालू, शेर, बाघ खा जायेंगे, इसलिये हे राक्षसोत्तम ! तुम मुझको हरण करो, इन राम-लक्ष्मण को छोड़ दो। मैं तुम्हें नमस्ते करती हूँ ॥ ३ ॥ सीता की इन बातों को सुनकर वे वीर रामलक्ष्मण उस दुरात्मा राक्षस को मारने के लिये शीघ्रता करने लगे ॥ ४ ॥ उस भयङ्कर राक्षस की बायीं भुजा को लक्ष्मण ने तथा दायीं भुजा को राम ने वेग पूर्वक तोड़ दिया ॥ ५ ॥ दोनों भुजाओं के टूट जाने पर मेघ के समान, घबराया हुआ मूर्च्छित होकर वह राक्षस भूमि पर इस प्रकार गिर पड़ा जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत शिखर टूट कर गिर जाता है ॥ ६ ॥ घूँसे, बाहु, पैर से मारते हुए तथा उठा २ कर बार २ पटकते हुए उस राक्षस को ऊँची जमीन पर रगड़ने लगे ॥ ७ ॥ बाणों से विद्ध होने पर, तलवार से क्षत विक्षत होने पर, बार २ भूमि पर पेषण करने पर भी वह राक्षस नहीं मरा ॥ ८ ॥ पर्वत के समान अचल तथा अवध्य उस विराध राक्षस को देखकर भय में अभयदान करनेवाले रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण से यह बोले ॥ ९ ॥ तपश्चर्या के द्वारा यह राक्षस शस्त्रों से नहीं मारा जा सकता। इसलिये इसको भूमि में गाड़ दिया जाय ॥ १० ॥ भयङ्कर कर्म करनेवाले, हाथी के समान विशाल काय इस राक्षस के लिये हे लक्ष्मण ! इस वन में एक गडढा खोदो ॥११॥ पराक्रमी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति । तस्थौ विराधमाक्रम्य कण्ठे पादेन वीर्यवान् ॥१२॥
तच्छ्रुत्वा राघवेणोक्तं राक्षसः प्रश्रितं वचः । इदं प्रोवाच काकुत्स्थं विराधः पुरुषर्षभम् ॥१३॥
हतोऽहं पुरुषव्याघ्र शक्रतुल्यबलेन वै । मया तु पूर्वं त्वं मोहान्न ज्ञातः पुरुषर्षभ ॥१४॥
कौसल्या सुप्रजा तात रामस्त्वं विदितो मया । वैदेही च महाभागा लक्ष्मणश्च महायशाः ॥१५॥
[अभिशापादहं घोरां प्रविष्टो राक्षसीं तनुम् । तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः शप्तो वैश्रवणेन ह ॥१६॥
प्रसाद्यमानश्च मया सोऽब्रवीन्मां महायशाः । यदा दाशरथी रामस्त्वां वधिष्यति संयुगे ॥१७॥
तदा प्रकृतिमापन्नो भवान् स्वर्गं गमिष्यति । इति वैश्रवणो राजा रम्भासक्तं पुरानघ ॥१८॥
अनुपस्थीयमानो मां संक्रुद्धो व्याजहार ह । तव प्रसादान्मुक्तोऽहमभिशापात्सुदारुणात् ॥१९॥
भुवनं स्वं गमिष्यामि स्वस्ति वोऽस्तु परंतप । इतो वसति धर्मात्मा शरभङ्गः प्रतापवान् ॥२०॥
अध्यर्धयोजने तात महर्षिः सूर्यसंनिभः । तं क्षिप्रमभिगच्छ त्वं स ते श्रेयो विधास्यति ॥२१॥
अवटे चापि मां राम प्रक्षिप्य कुशली व्रज । रक्षसां गतसत्त्वानामेष धर्मः सनातनः ॥२२॥
अवटे ये निधीयन्ते तेषां लोकाः सनातनाः । एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं विराधः शरपीडितः ॥२३॥
बभूव स्वर्गतिं प्राप्तो न्यस्तदेहो महाबलः । तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं लक्ष्मणं व्यादिदेश ह ॥२४॥]
ततः खनित्रमादाय लक्ष्मणः श्वभ्रमुत्तमम् । अखनत्पार्श्वतस्तस्य विराधस्य दुरात्मनः ॥२५॥

रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा 'गड्ढा खोदो' ऐसा कहकर विराध के गले को अपने पैरों से दबाकर खड़े रहे ॥१२॥ रामचन्द्र की इन बातों को सुनकर वह विराध राक्षस नरकेसरी रामचन्द्र से नम्रता पूर्वक यह वचन बोला ॥ १३ ॥ हे नरकेसरी रामचन्द्र ! इन्द्र के समान पराक्रम वाले आप से मैं मारा गया । हे नरश्रेष्ठ ! अज्ञान-वश पहले मैं आपके व्यक्तित्व को जान न सका ॥ १४ ॥ जिसके पैदा होने से कौसल्या अपने को पुत्रवती मानती है, ऐसे हे रामचन्द्र ! अब मुझे पता चला कि आप रामचन्द्र हैं, ये महाभागा सीता और ये तुम्हारे छोटे भाई लक्ष्मण हैं * ॥ १५ ॥ मैं तुम्बुरु नाम का गन्धर्व था । कुबेर के शाप से इस घोर राक्षसी शरीर को प्राप्त हुआ हूँ ॥१६॥ शाप देने पर जब मैंने कुबेर से प्रार्थना की, तब उन्होंने उत्तर दिया—जब महायशस्वी दशरथपुत्र राम तुम्हारा बध करेंगे ॥ १७ ॥ तब अपनी अवस्था को प्राप्त करके तुम स्वर्ग में आओगे । रम्भा अप्सरा में आसक्त होने के कारण मैं उनकी सेवा में उपस्थित न हो सका, इस कारण क्रुद्ध होकर राजा कुबेर ने मुझे शाप दिया था । आज आपकी महान् कृपा से उस दारुण शाप से मैं मुक्त हो गया ॥ १८,१९ ॥ मैं अपने निजी स्थान को जा रहा हूँ । हे शत्रुतापी रामचन्द्र ! आप का कल्याण हो । यहाँ पास ही में प्रतापी, धर्मात्मा शरभङ्ग ऋषि रहते हैं ॥ २० ॥ यहाँ से डेढ़ योजन की दूरी पर सूर्य के समान देदीप्यमान वे महर्षि रहते हैं । आप शीघ्र ही उनके पास जायें, वे आपका कल्याण करेंगे ॥ २१ ॥ खोदे हुए गड्ढे में मुझको दबाकर हे रामचन्द्र ! आप जाईये क्योंकि मरे हुए राक्षसों को गाड़ने की यह प्राचीन परिपाटी है ॥ २२ ॥ जो राक्षस इस प्रकार गड्ढे में गाड़े जाते हैं, उनकी उत्तम गति होती है । रामचन्द्र से ऐसा कह कर बाणों से पीड़ित वह महाबली राक्षस विराध अपने प्राणों को छोड़ कर स्वर्ग में चला गया । विराध की बात को सुनकर रामचन्द्र ने लक्ष्मण को आज्ञा दी ॥ २३,२४ ॥ राम के कहने पर लक्ष्मण ने कुदाल को लेकर उस दुरात्मा विराध के समीप ही अच्छे गड्ढे को खोदा ॥ २५ ॥ गर्दभ के समान विशाल कर्ण वाले उस विशाल

* अपनी धर्मपत्नी और छोटे भाई के साथ अयोध्या के राजकुमार राम इस दण्डकवन में आये हैं, यह समाचार सर्वत्र फैला हुआ था । इसी समाचार के आधार पर विराध ने रामचन्द्र से ये बातें कीं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तं मुक्तकण्ठं निष्पिष्य शङ्कुकर्णं महास्वनम् । विराधं प्राक्षिपच्छ्रेभ्रे नदन्तं भैरवस्वनम् ॥२६॥
तमाहवे निर्जितमाशुविक्रमौ स्थिरावुभौ संयति रामलक्ष्मणौ ।
मुदान्वितौ चिक्षिपतुर्भयावहं नदन्तमुत्क्षिप्य बिले तु राक्षसम् ॥२७॥
अवध्यतां प्रेक्ष्य महासुरस्य तौ शितेन शस्त्रेण तदा नरर्षभौ ।
समर्थ्य चात्यर्थविशारदावुभौ बिले विराधस्य वधं प्रचक्रतुः ॥२८॥
स्वयं विराधेन हि मृत्युमात्मनः प्रसह्य रामेण वधार्थमीप्सितः ।
निवेदितः काननचारिणा स्वयं न मे वधः शस्त्रकृतो भवेदिति ॥२९॥
तदेव रामेण निशम्य भाषितं कृता मतिस्तस्य बिलप्रवेशने ।
बिलं च रामेण बलेन रक्षसा प्रवेश्यमानेन वनं विनादितम् ॥३०॥
प्रहृष्टरूपाविव रामलक्ष्मणौ विराधमुग्रं प्रदरे निखाय तम् ।
ननन्दतुर्वीतभयौ महावने शिलाभिरन्तर्दधतुश्च राक्षसम् ॥३१॥
ततस्तु तौ कार्मुकखड्गधारिणौ निहत्य रक्षः परिगृह्य मैथिलीम् ।
विजह्रतुस्तौ मुदितौ महावने दिवि स्थितौ चन्द्रदिवाकराविव ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे विराधनिखननं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

राक्षस के दबाये हुए गले को छोड़ कर उस गड्ढे में फेंक दिया ॥२६॥ संग्राम में दृढ़ता, शीघ्रकारिता दिखाने वाले तथा प्रत्येक संग्राम में धीरता दिखाने वाले राम-लक्ष्मण ने प्रसन्न होते हुए उस भयङ्कर विराध राक्षस को उठा कर इस भयङ्कर गड्ढे में फेंक दिया ॥२७॥ उन दोनों निपुण राम-लक्ष्मण ने यह तेज शस्त्रों से भी नहीं मर सकता इस प्रकार उसकी अवध्यता को देखकर गड्ढे में डाल कर मारने का प्रयत्न किया ॥ २८ ॥ वन-चारी स्वयं विराध ने, मेरी मृत्यु रामचन्द्र के हाथ से हो ऐसा विचार रखते हुए मेरी मृत्यु शस्त्र के द्वारा न हो इसलिये स्वयं मरने का उपाय रामचन्द्र को बता दिया ॥ २९ ॥ उसकी उन बातों को सुनकर रामचन्द्र ने उसको गड्ढे में गाड़ने का विचार किया था। बलपूर्वक गड्ढे में फेंकने के समय उसने बड़ा नाद किया था ॥ ३० ॥ प्रसन्न होकर राम-लक्ष्मण ने उस राक्षस को गड्ढे में फेंक दिया। तत्पश्चात् भय को दूर करते हुए उन लोगों ने आनन्द का अनुभव किया। गड्ढे में फेंकने के पश्चात् उसको शिला से पाट दिया ॥ ३१ ॥ स्वर्ण भूषित धनुष को धारण करने वाले वे राम-लक्ष्मण उस राक्षस को मार कर तथा सीता को लेकर उस महावन में आनन्द पूर्वक इस प्रकार विचरण करने लगे जैसे आकाश में सूर्य और चन्द्रमा ॥ ३२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'विराध को गाड़ना' विषयक चौथा सर्ग समाप्त हुआ ॥४॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्चमः सर्गः

शरभङ्गब्रह्मलोकप्रस्थानम्

हत्वा तु तं भीमबलं विराधं राक्षसं वने । ततः सीतां परिष्वज्य समाश्वास्य च वीर्यवान् ॥ १ ॥
अब्रवील्लक्ष्मणं रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम् । कष्टं वनमिदं दुर्गं न च स्म वनगोचराः ॥ २ ॥
अभिगच्छामहे शीघ्रं शरभङ्गं तपोधनम् । आश्रमं शरभङ्गस्य राघवोऽभिजगाम ह ॥ ३ ॥
[तस्य देवप्रभावस्य तपसा भावितात्मनः । समीपे शरभङ्गस्य ददर्श महदद्भुतम् ॥ ४ ॥
विभ्राजमानं वपुषा सूर्यवैश्वानरोपमम् । अवरुह्य रथोत्सङ्गात्सकाशे विबुधानुगम् ॥ ५ ॥
असंस्पृशन्तं वसुधां ददर्श विबुधेश्वरम् । सुप्रभाभरणं देवं विरजोऽम्बरधारिणम् ॥ ६ ॥
तद्विधैरेव बहुभिः पूज्यमानं महात्मभिः । हरिभिर्वाजिभिर्युक्तमन्तरिक्षगतं रथम् ॥ ७ ॥
ददर्शादूरतस्तस्य तरुणादित्यसंनिभम् । पाण्डराभ्रघनप्रख्यं चन्द्रमण्डलसंनिभम् ॥ ८ ॥
अपश्यद्विमलं छत्रं चित्रमाल्योपशोभितम् । चामरव्यजने चाग्र्ये रुक्मदण्डे महाधने ॥ ९ ॥
गृहीते वरनारीभ्यां धूयमाने च मूर्धनि । गन्धर्वामरसिद्धाश्च बहवः परमर्षयः ॥१०॥
अन्तरिक्षगतं देवं वाग्भिरग्र्याभिरीडिरे । सह संभाषमाणे तु शरभङ्गेण वासवे ॥११॥

पांचवाँ सर्ग

शरभङ्ग का ब्रह्मलोक को प्रस्थान

उस वन में भयङ्कर महाबली विराध राक्षस को मार कर तथा आश्वासन देते हुए सीता का आलिंगन करके पराक्रमी रामचन्द्र देदीप्यमान तेजस्वी अपने भाई लक्ष्मण से बोले—यह बहुत कष्टप्रद तथा दुर्गमनीय वन है। इससे पहले ऐसा वन देखा भी नहीं है ॥ १, २ ॥ अब हम शीघ्र ही तपोधन शरभङ्ग के आश्रम को चलें, ऐसा कहकर रामचन्द्र शरभङ्ग के आश्रम पर गये ॥ ३ ॥ देवता के समान प्रभाव वाले तथा तपश्चर्या के द्वारा ब्रह्मनिष्ठ अवस्था को प्राप्त करने वाले उस शरभङ्ग ऋषि के समीप एक अद्भुत वृत्तान्त देखा * ॥ ४ ॥ सूर्य और अग्नि के समान जिसका शरीर प्रकाशित हो रहा है तथा जो निर्मल शुभ्र वस्त्र धारण किए हुए है, देव मण्डल जिसके पीछे २ चल रहा है, अत्यन्त वेग के कारण मानो जिसका रथ पृथ्वी को स्पर्श नहीं कर रहा है, ऐसे उत्तम रथ पर बैठे हुए इन्द्र को देखा ॥ ५,६ ॥ उन्हीं के समान विमल वस्त्रादि से भूषित महात्मा लोग जिसकी पूजा कर रहे हैं, हरे रंग के घोड़े जिसमें जुड़े हैं, देदीप्यमान सूर्य के समान जिसकी कांति है, ऐसे रथ पर बैठे हुए इन्द्र को पास में देखा। चन्द्रमण्डल के समान तथा श्वेत मेघ के समान नाना प्रकार की मालाओं से शोभित जिस पर छत्र लगे हुए हैं, सोने के दण्ड वाले मूल्यवान् दो चँवरों को उत्तम स्त्रियाँ जिसके सिर पर डुला रही हैं, गन्धर्व, देव, सिद्ध तथा ऋषि लोग अगल बगल जिसकी स्तुति कर रहे हैं, ऐसे इन्द्र को शरभङ्ग ऋषि से बातें करते हुए रामचन्द्र ने देखा ॥७-११॥

---

* ४–२५, २७–३१, तथा ४२ श्लोक प्रक्षिप्त हैं। प्रकरण विरुद्ध, अप्रासङ्गिक, प्रकृति के नियमों के प्रतिकूल बातें इन श्लोकों में कही गई हैं। इस प्रकार के आख्यान पद्म पुराण आदि कई अवैदिक ग्रन्थों में आये हुए हैं। उन ग्रन्थों से लेकर इनको रामायण में मिलाया गया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दृष्ट्वा शतक्रतुं तत्र रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । रामोऽथ रथमुद्दिश्य लक्ष्मणाय प्रदर्शयन् ॥१२॥
अर्चिष्मन्तं श्रिया जुष्टमद्भुतं पश्य लक्ष्मण । प्रतपन्तमिवादित्यमन्तरिक्षगतं रथम् ॥१३॥
ये हयाः पुरुहूतस्य पुरा शक्रस्य नः श्रुताः । अन्तरिक्षगता दिव्यास्त इमे हरयो ध्रुवम् ॥१४॥
इमे च पुरुषव्याघ्रा ये तिष्ठन्त्यभितो रथम् । शतं शतं कुण्डलिनो युवानः खड्गपाणयः ॥१५॥
विस्तीर्णविपुलोरस्काः परिघायतबाहवः । शोणांशुवसनाः सर्वे व्याघ्रा इव दुरासदाः ॥१६॥
उरोदेशेषु सर्वेषां हारा ज्वलनसंनिभाः । रूपं बिभ्रति सौमित्रे पञ्चविंशतिवार्षिकम् ॥१७॥
एतद्धि किल देवानां वयो भवति नित्यदा । यथेमे पुरुषव्याघ्रा दृश्यन्ते प्रियदर्शनाः ॥१८॥
इहैव सह वैदेह्या मुहूर्तं तिष्ठ लक्ष्मण । यावज्जानाम्यहं व्यक्तं क एष द्युतिमान् रथे ॥१९॥
तमेवमुक्त्वा सौमित्रिमिहैव स्थीयतामिति । अभिचक्राम काकुत्स्थः शरभङ्गाश्रमं प्रति ॥२०॥
ततः समभिगच्छन्तं प्रेक्ष्य रामं शचीपतिः । शरभङ्गमनुज्ञाप्य विबुधानिदमब्रवीत् ॥२१॥
इहोपयात्यसौ रामो यावन्मां नाभिभाषते । निष्ठां नयत तावत्तु ततो मां द्रष्टुमर्हति ॥२२॥
जितवन्तं कृतार्थं च द्रष्टाहमचिरादिमम् । कर्म ह्यनेन कर्तव्यं महदन्यैः सुदुष्करम् ॥२३॥
अथ वज्री तमामन्त्र्य मानयित्वा च तापसम् । रथेन हरियुक्तेन ययौ दिवमरिंदमः ॥२४॥
प्रयाते तु सहस्राक्षे राघवः सपरिच्छदे] । अग्निहोत्रमुपासीनं शरभङ्गमुपागमत् ॥२५॥

इस प्रकार शरभङ्ग के आश्रम में स्थित इन्द्र को दूर से ही देखकर रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण से बोले—हे लक्ष्मण ! देदीप्यमान कान्ति से युक्त सूर्य के समान प्रकाशित होने वाले इस अद्भुत रथ को देखो, ऐसा राम ने संकेत किया ॥ १२, १३ ॥ इन्द्र के रथ तथा घोड़ों के विषय में हम लोगों ने जैसा सुना है, ये आकाश में स्थित रथ और घोड़े निश्चय ही इन्द्र के हैं ॥ १४ ॥ हे नरकेसरी लक्ष्मण ! ये कानों में कुण्डल धारण करने वाले, हाथ में तलवार लिए हुए युवास्था वाले, जिनके वक्षःस्थल विशाल तथा उठे हुए हैं, परिघ के समान विशाल जिनकी भुजाएँ हैं, जो सभी लाल-लाल कपड़े पहने हुए हैं, न वश में आने वाले व्याघ्र के समान जो दिखाई दे रहे हैं, जिन सभी के वक्षःस्थल पर मालाएँ पड़ी हुई हैं, हे लक्ष्मण ! जिन सभी की आयु और रूप पच्चीस वर्ष के प्रतीत हो रहे हैं, ये सभी देव गण हैं ॥ १५–१७ ॥ हे लक्ष्मण ! देवताओं की आयु सदा इसी प्रकार रहती है, जैसे ये प्रियदर्शी दिखाई दे रहे हैं ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम सीता के साथ थोड़ी देर तक यहीं ठहरो, तब तक मैं यह स्पष्ट जान लूँ कि यह प्रकाशमय रथ पर कौन बैठा है ॥ १९ ॥ इस प्रकार लक्ष्मण से कह कर कि तुम यहीं रहो, ककुत्स्थकुलशिरोमणि रामचन्द्र शरभङ्ग ऋषि के आश्रम की ओर चल पड़े ॥ २० ॥ पश्चात् शचीपति इन्द्र राम को अपनी ओर आते हुए देखकर महर्षि शरभङ्ग को जाने की आज्ञा देते हुए देवताओं से यह बोले ॥ २१ ॥ वे रामचन्द्र इधर ही आ रहे हैं, जबतक वे मेरे साथ संभाषण न करें, उससे पहले तुम मेरी निष्ठा के लिए मुझे यहाँ से दूर हटा दो अर्थात् मेरे इन्द्रत्व को अभी वे जान न पायें। इसके पश्चात् मुझको रामचन्द्र देख सकते हैं ॥ २२ ॥ इनको संसार में बहुत बड़ा वह काम करना है जो अन्य किसी भी मनुष्य से बहुत दुष्कर है। इसलिये विजयी अपने मनोरथ में सफल होनेवाले रामचन्द्र को तत्पश्चात् देखना चाहता हूँ ॥ २३ ॥ तत्पश्चात् इन्द्र उन तपस्वियों का सम्मान करके तथा उनसे आज्ञा लेकर घोड़ों से जुते हुए रथ पर बैठकर अपने स्थान पर चले गये ॥२४॥ सदल बल इन्द्र के चले जाने पर रामचन्द्र अग्निहोत्र करने वाले शरभङ्ग ऋषि के पास पहुँचे ॥ २५ ॥ राम, लक्ष्मण तथा सीता ने मुनि के चरण को छूकर प्रणाम किया। मुनि का

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्य पादौ च संगृह्य रामः सीता च लक्ष्मणः । निषेदुः समनुज्ञाता लब्धवासा निमन्त्रिताः ॥२६॥
[ततः शक्रोपयानं तु पर्यपृच्छत्स राघवः । शरभङ्गश्च तत्सर्वं राघवाय न्यवेदयत् ॥२७॥
मामेष वरदो राम ब्रह्मलोकं निनीषति । जितमुग्रेण तपसा दुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥२८॥
अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः । ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम् ॥२९॥
त्वयाहं पुरुषव्याघ्र धार्मिकेण महात्मना । समागम्य गमिष्यामि त्रिदिवं देवसेवितम् ॥३०॥
अक्षया नरशार्दूल मया लोका जिताः शुभाः । ब्राह्मयाश्च नाकपृष्ठ्याश्च प्रतिगृह्णीष्व मामकान् ॥३१॥]
एवमुक्तो नरव्याघ्रः सर्वशास्त्रविशारदः । ऋषिणा शरभङ्गेण राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥३२॥
अहमेवाहरिष्यामि सर्वलोकान् महामुने । आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥३३॥
राघवेणैवमुक्तस्तु शक्रतुल्यबलेन वै । शरभङ्गो महाप्राज्ञः पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥३४॥
इह राम महातेजाः सुतीक्ष्णो नाम धार्मिकः । वसत्यरण्ये धर्मात्मा स ते वासं विधास्यति ॥३५॥
इमां मन्दाकिनीं राम प्रतिस्रोतामनुव्रज । नदीं पुष्पोडुपवहां तत्र तत्र गमिष्यसि ॥३६॥
एष पन्था नरव्याघ्र मुहूर्तं पश्य तात माम् । यावज्जहामि गात्राणि जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥३७॥
ततोऽग्निं सुसमाधाय हुत्वा चाज्येन मन्त्रवित् । शरभङ्गो महातेजाः प्रविवेश हुताशनम् ॥३८॥
तस्य रोमाणि केशांश्च ददाहाग्निर्महात्मनः । जीर्णां त्वचं तथास्थीनि यच्च मांसं सशोणितम् ॥३९॥

निमन्त्रण तथा आज्ञा पाकर उनके स्थान पर बैठ गये ॥ २६ ॥ आसन पर बैठने के पश्चात् रामचन्द्र ने इन्द्र के आने के विषय में पूछा । शरभङ्ग ने इन्द्र के आने का आद्योपान्त वर्णन किया ॥ २७ ॥ अजितेन्द्रियों के लिये दुष्प्राप्य स्थान को मैंने उग्र तपश्चर्या के द्वारा प्राप्त किया, जिसपर ब्रह्मा जी ने प्रसन्न होकर मुझे वरदान दिया । ब्रह्मा जी मुझे ब्रह्मलोक ले जाना चाहते थे ॥ २८ ॥ मैं यह जानकर कि आप बिल्कुल पास में आ गये हैं, इसको सुनकर आप जैसे प्रिय अतिथि को देखकर मैं ब्रह्मलोक को जाऊँ, इस विचार को मैंने छोड़ दिया ॥ २९ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आप जैसे धर्मात्मा से मिलकर ही ब्रह्मलोक को जाऊँगा ॥ ३० ॥ हे नरकेसरी ! मैंने अक्षय शुभ ब्रह्मलोक तथा स्वर्गलोक की प्राप्ति की है । पुण्यार्जित इन शुभ लोकों को मैं आपको देता हूँ, आप इन्हें स्वीकार करें ॥ ३१ ॥ प्रसन्नता पूर्वक आश्रम में बैठने के पश्चात् सर्वशास्त्रविशारद नरकेसरी रामचन्द्र ऋषि शरभङ्ग के द्वारा कुशल वार्ता पूछने के पश्चात् यह वचन बोले ॥ ३२ ॥ इस वन में आपके बताये हुए स्थान में हम सभी निवास करना चाहते हैं । इन्द्र के तुल्य बल वाले रामचन्द्र के ऐसा कहने पर महा बुद्धिमान् शरभङ्ग पुनः रामचन्द्र से बोले ॥ ३३, ३४ ॥ हे रामचन्द्र ! पास ही इस वन में महातेजस्वी धर्मात्मा सुतीक्ष्ण नामक तपस्वी रहते हैं । वे आपके कल्याणार्थ स्थानादि का सब प्रबन्ध कर देंगे ॥३५॥ हे रामचन्द्र ! इस पश्चिम वाहिनी मन्दाकिनी नदी के किनारे२ जिसमें कि छोटी २ नौकाओं की तरह पुष्प प्रतीत होते हैं, आप चले जायें और उस स्थान पर पहुँच जायेंगे ॥३६॥ हे नरकेसरी ! यह रास्ता वहाँ जाने का है किन्तु थोड़ी देर ठहर जाइये और मुझको देखिये, जब तक मैं इस जीर्ण शरीर को साँप की केंचुली की तरह छोड़ न दूँ ॥३७॥ महा तेजस्वी उस शरभङ्ग ने अग्नि को प्रज्वलित करके मन्त्र पूर्वक घृत के द्वारा विशाल यज्ञ किया, पश्चात् वे उस जलती हुई अग्नि में प्रवेश कर गये ॥ ३८ ॥ उनके रोम, केश, जीर्ण त्वचा, हड्डी, माँस इन सभी को अग्नि ने भस्म कर दिया ॥ ३९ ॥ अग्नि के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[स च पावकसंकाशः कुमारः समपद्यत । उत्थायाग्निचयात्तस्माच्छरभङ्गो व्यरोचत ॥४०॥]
स लोकानाहिताग्नीनामृषीणां भावितात्मनाम् । देवानां च व्यतिक्रम्य ब्रह्मलोकं व्यरोहत ॥४१॥
[स पुण्यकर्मा भवने द्विजर्षभः पितामहं सानुचरं ददर्श ह ।
पितामतश्चापि समीक्ष्य तं द्विजं ननन्द सुस्वागतमित्युवाच ह ॥४२॥]

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे शरभङ्गब्रह्मलोकप्रस्थानं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

रक्षोवधप्रतिज्ञानम्

शरभङ्गे दिवं याते मुनिसङ्घाः समागताः । अभ्यगच्छन्त काकुत्स्थं रामं ज्वलिततेजसम् ॥१॥
वैखानसा वालखिल्याः संप्रक्षाला मरीचिपाः । अश्मकुट्टाश्च बहवः पत्राहाराश्च तापसाः ॥२॥
दन्तोलूखलिनश्चैव तथैवोन्मज्जकाः परे । गात्रशय्या अशय्याश्च तथैवानवकाशिकाः ॥३॥

समान वह ऋषि कुमारावस्था को प्राप्त हो गये । उस अग्नि समूह से निकल कर शरभंग शोभित होने लगे ॥ ४० ॥ उस शरभङ्ग ने आहिताग्नि यज्ञ करने वाले महात्मा ऋषियों के पद को भी अतिक्रमण करके ब्रह्मलोक को प्रस्थान किया (अर्थात् मुक्त हो गये) ॥ ४१ ॥ उस पुण्यकर्मा द्विजश्रेष्ठ शरभङ्ग ने उस ब्रह्मलोक में अनुचरों के साथ ब्रह्मा को देखा । ब्रह्मा भी शरभंग को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और 'तुम्हारा स्वागत हो' ऐसा कहने लगे ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'शरभङ्ग का ब्रह्मलोक को प्रस्थान' विषयक पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

छठा सर्ग

राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा

महर्षि शरभङ्ग के दिवंगत हो जाने पर दण्डकारण्यवासी तपस्वियों का समूह देदीप्यमान कान्ति वाले ककुत्स्थकुल शिरोमणि मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र के समीप आया ॥ १ ॥ आने वाले तपस्वियों में वैखानस (वानप्रस्थ), बालखिल्य (सदा ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने वाले नैष्ठिक ब्रह्मचारी), प्रक्षाल (प्रक्षालन तथा स्नान करने वाले), मरीचिप (अहर्निश सूर्य-चन्द्र की किरणों का पान करने वाले), अश्मकुट्ट (पत्थरों से अन्न को पेषण करके खाने वाले), पत्राहार (पत्तों पर भोजन करने वाले) ॥ २ ॥ दाँत से तोड़ कर खाने वाले, जल में खड़े होकर तपश्चर्या करने वाले, बैठकर सोने वाले, खड़े २ सोने वाले और निरन्तर आकाश में रहने वाले ॥ ३ ॥ जल पीकर रहने वाले, वायु पीकर रहने वाले, पेड़ पर रहने वाले, चबूतरे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुनयः सलिलाहारा वायुभक्षास्तथापरे । आकाशनिलयाश्चैव तथा स्थण्डिलशायिनः ॥४॥
तथोर्ध्ववासिनो दान्तास्तथार्द्रपटवाससः । सजपाश्च तपोनित्यास्तथा पञ्चतपोऽन्विताः ॥५॥
सर्वे ब्राह्म्या श्रिया जुष्टा दृढयोगाः समाहिताः । शरभङ्गाश्रमे राममभिजग्मुश्च तापसाः ॥६॥
अभिगम्य च धर्मज्ञा रामं धर्मभृतां वरम् । ऊचुः परमधर्मज्ञमृषिसङ्घाः समाहिताः ॥७॥
त्वमिक्ष्वाकुकुलस्यास्य पृथिव्याश्च महारथ । प्रधानश्चासि नाथश्च देवानां मघवानिव ॥८॥
विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु यशसा विक्रमेण च । पितृव्रतत्वं सत्यं च त्वयि धर्मश्च पुष्कलः ॥९॥
त्वामासाद्य महात्मानं धर्मज्ञं धर्मवत्सलम् । अर्थित्वान्नाथ वक्ष्यामस्तच्च नः क्षन्तुमर्हसि ॥१०॥
अधर्मस्तु महांस्तात भवेत्तस्य महीपतेः । यो हरेद्बलिषड्भागं न च रक्षति पुत्रवत् ॥११॥
युञ्जानः स्वानिव प्राणान् प्राणैरिष्टान् सुतानिव । नित्ययुक्तः सदा रक्षन् सर्वान् विषयवासिनः॥१२॥
प्राप्नोति शाश्वतीं राम कीर्तिं स बहुवार्षिकीम् । ब्रह्मणः स्थानमासाद्य तत्र चापि महीयते ॥१३॥
यत्करोति परं धर्मं मुनिर्मूलफलाशनः । तत्र राज्ञश्चतुर्भागः प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥१४॥
सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान् । त्वन्नाथोऽनाथवद्राम राक्षसैर्वध्यते भृशम् ॥१५॥
एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम् । हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने ॥१६॥
पम्पानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि । चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत् ॥१७॥

पर रहने वाले ॥ ४ ॥ पर्वतों पर रहने वाले, मन को वश में करने वाले, सदा भीगे वस्त्र पहनने वाले, सदा जप करने वाले, निरन्तर वेदपाठ करने वाले, पाँच ज्ञानेन्द्रियों को वश में करने वाले ॥ ६ ॥ ये सभी तपस्वी शरभङ्ग ऋषि के आश्रम में राम के समीप गये। वे सभी योग में पारङ्गत तथा ब्राह्मी कान्ति से परिपूर्ण थे ॥ ६ ॥ वह धर्मात्मा ऋषियों का समूह धर्मधारियों में श्रेष्ठ रामचन्द्र के पास जा कर यह बोला ॥ ७ ॥ हे महारथी रामचन्द्र ! जैसे देवमण्डल के स्वामी इन्द्र हैं, उसी प्रकार आप इक्ष्वाकु वंश तथा इस पृथ्वी मण्डल के स्वामी हैं ॥ ८ ॥ हे धर्मात्मन् ! यश और पराक्रम के लिये आप त्रिलोकी में प्रसिद्ध हैं। पिता की आज्ञा का पालन तथा सत्य आप के अन्दर पूर्ण रूप से विद्यमान है ॥ ९ ॥ आप जैसे महात्मा धर्मवत्सल और धर्मज्ञ को प्राप्त कर अर्थी होने के नाते कुछ कहना चाहते हैं, आप क्षमा करेंगे ॥ १० ॥ उस राजा को महान् पाप का भागी बनना पड़ता है जो प्रजा से आय का छठा भाग कर के रूप में लेता है किन्तु प्रजा की पुत्रवत् रक्षा नहीं करता ॥ ११ ॥ अपने शासन में रहने वाली सम्पूर्ण प्रजा को अपने पुत्र, प्राणों के समान तथा प्राणों से अधिक समझता हुआ सावधान होकर रक्षा करता है ॥ १२ ॥ वह राजा इस संसार में होने वाली शाश्वत कीर्ति को प्राप्त होता है तथा हे रामचन्द्र ! वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर वहाँ भी सम्मानित होता है ॥ १३ ॥ कन्दमूल फल खाकर तपस्वी लोग जिस राजा के राज्य में तपश्चर्या करते हैं तथा धर्मानुकूल जहाँ प्रजा की रक्षा होती है, वहाँ का राजा उन तपस्वियों के पुण्य के चौथे भाग का भागी होता है ॥ १४ ॥ सो यह वनवासी तपस्वियों का दल जिसमें ब्राह्मणों की संख्या अधिक है, आप जैसे स्वामी को प्राप्त करके भी अनाथवत् निरन्तर राक्षसों के द्वारा मारा जा रहा है ॥ १५ ॥ आइये, उन ब्रह्मनिष्ठ तपस्वियों के जो घोर राक्षसों के द्वारा मारे गये हैं मृतक शरीरों को देखिये ॥ १६ ॥ पम्पा के आस पास, मन्दाकिनी नदी के किनारों पर तथा चित्रकूट पर्वत पर ये राक्षस लोग महान् रक्तपात कर रहे हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार इस महान् घोर बन में भयङ्कर राक्षसों के द्वारा तपस्वियों पर जो घोर अत्याचार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम् । क्रियमाणं वने घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः ॥१८॥
ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः । परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः ॥१९॥
परा त्वत्तो गतिर्वीर पृथिव्यां नोपपद्यते । परिपालय नः सर्वान् राक्षसेभ्यो नृपात्मज ॥२०॥
एतच्छ्रुत्वा तु काकुत्स्थस्तापसानां तपस्विनाम्। इदं प्रोवाच धर्मात्मा सर्वानेव तपस्विनः ॥२१॥
नैवमर्हत मां वक्तुमाज्ञाप्योऽहं तपस्विनाम् । केवलेनात्मकार्येण प्रवेष्टव्यं मया वनम् ॥२२॥
विप्रकारमपाक्रष्टुं राक्षसैर्भवतामिमम् । पितुस्तु निर्देशकरः प्रविष्टोऽहमिदं वनम् ॥२३॥
भवतामर्थसिद्ध्यर्थमागतोऽहं यदृच्छया । तस्य मेऽयं वने वासो भविष्यति महाफलः ॥२४॥
तपस्विनां रणे शत्रून् हन्तुमिच्छामि राक्षसान्। पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः ॥२५॥

दत्त्वाभयं चापि तपोधनानां धर्मे धृतात्मा सह लक्ष्मणेन ।
तपोधनैश्चापि सभाज्यवृत्तः सुतीक्ष्णमेवाभिजगाम वीरः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे रक्षोवधप्रतिज्ञानं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

किया जा रहा है अब वह हम लोगों की सहनशक्ति से बाहर हो रहा है ॥ १८ ॥ इसलिये अब हम लोग आप जैसे शरणागत-वत्सल की शरण में आये हुए हैं। राक्षसों के द्वारा मारे जाने वाले हम लोगों की आप रक्षा करें ॥ १९ ॥ आप से बढ़कर पृथ्वी पर हम लोगों का रक्षक और कोई नहीं है। हे राजकुमार रामचन्द्र ! इन राक्षसों से आप हम लोगों की रक्षा करें ॥ २० ॥ ककुत्स्थकुलशिरोमणि धर्मात्मा रामचन्द्र धर्मात्मा तपस्वियों की इन बातों को सुनकर उनसे यह बोले ॥ २१ ॥ आप लोग इस प्रकार की प्रार्थना मुझसे न करें, किन्तु मुझे आज्ञा देवें क्योंकि मैं आप लोगों का आज्ञाकारी हूँ। मैं अपना कर्त्तव्य समझ कर ही इस वन में आया हूँ ॥ २२ ॥ राक्षसों के द्वारा आप लोगों के ऊपर जो इस प्रकार का अत्याचार हो रहा है उसको दूर करने के लिये ही पिता की आज्ञा मान कर मैं इस वन में प्रविष्ट हुआ हूँ ॥ २३ ॥ आप लोगों की कामना सफलीभूत हो, इसके लिये स्वेच्छा से आप के पास आया हूँ। वह मेरा वन का निवास आप लोगों के लिये महान् फल को देने वाला होगा ॥ २४ ॥ आप जैसे तपस्वियों के इन शत्रु राक्षसों को मैं संग्राम में मारना चाहता हूँ। हे तपोधन ऋषि लोगो ! भाई लक्ष्मण के साथ मैं क्या पराक्रम कर सकता हूँ, इसको आप देखें ॥ २५ ॥ उन तपस्वियों को सान्त्वना पूर्वक अभय प्रदान करके धैर्यशाली उदात्त चरित्र वाले वीर रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण तथा उन ऋषियों के साथ महर्षि सुतीक्ष्ण के पास गये ॥ २६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा' विषयक छठा सर्ग समाप्त हुआ ॥६॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सप्तमः सर्गः

सुतीक्ष्णाश्रमः

रामस्तु सहितो भ्रात्रा सीतया च परंतपः । सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं जगाम सह तैर्द्विजैः ॥१॥
स गत्वा दूरमध्वानं नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः । ददर्श विपुलं शैलं महामेघमिवोन्नतम् ॥२॥
ततस्तदिक्ष्वाकुवरौ संततं विविधैर्द्रुमैः । काननं तौ विविशतुः सीतया सह राघवौ ॥३॥
प्रविष्टस्तु वनं घोरं बहुपुष्पफलद्रुमम् । ददर्शाश्रममेकान्ते चीरमालापरिष्कृतम् ॥४॥
तत्र तापसमासीनं मलपङ्कजटाधरम् । रामः सुतीक्ष्णं विधिवत्तपोधनमभाषत ॥५॥
रामोऽहमस्मि भगवन् भवन्तं द्रष्टुमागतः । तन्माभिवद धर्मज्ञ महर्षे सत्यविक्रम ॥६॥
स निरीक्ष्य ततो वीरं रामं धर्मभृतां वरम् । समाश्लिष्य च बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥
स्वागतं खलु ते वीर राम धर्मभृतां वर । आश्रमोऽयं त्वया प्राप्तः सनाथ इव सांप्रतम् ॥८॥
प्रतीक्षमाणस्त्वामेव नारोहेऽहं महायशः । देवलोकमितो वीर देहं त्यक्त्वा महीतले ॥९॥
चित्रकूटमुपादाय राज्यभ्रष्टोऽसि मे श्रुतः । इहोपयातः काकुत्स्थ देवराजः शतक्रतुः ॥१०॥
उपागम्य च मां देवो महादेवः सुरेश्वरः । सर्वाँल्लोकाञ्जितानाह मम पुण्येन कर्मणा ॥११॥

सातवाँ सर्ग

सुतीक्ष्ण का आश्रम

शत्रुञ्जयी रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण जानकी तथा उन तपस्वियों के साथ सुतीक्ष्ण के आश्रम में गये ॥ १ ॥ उस रामचन्द्र ने दूर तक जाकर तथा अधिक जलवाली नदी को पार कर मेरु पर्वत के समान विशाल एक रमणीय पर्वत को देखा ॥ २ ॥ पश्चात् दोनों इक्ष्वाकुवंश के श्रेष्ठ राजकुमार राम-लक्ष्मण जानकी के सहित नाना प्रकार के वृक्षों से सुभूषित उस वन में प्रविष्ट हुए ॥ ३ ॥ नाना प्रकार के फल, फूल और वृक्षों से सुभूषित चीर मालाओं से सुसज्जित उस घोर वन में प्रवेश करने पर उसके एकान्त भाग में आश्रम को देखा ॥ ४ ॥ उस आश्रम में जटा, भस्म धारण किये हुए तथा तपश्चर्या में बैठे हुए सुतीक्ष्ण नामक तपस्वी के पास जाकर रामचन्द्र विधिपूर्वक उस तपोधन से बोले—॥ ५ ॥ हे भगवन्! मेरा नाम रामचन्द्र है, मैं आपके दर्शन के लिए आया हूं। हे सत्यनिष्ठ धर्मात्मा महर्षि आप मुझसे वार्तालाप करें ॥६॥ धर्मधारियों में श्रेष्ठ रामचन्द्र को देखकर महर्षि सुतीक्ष्ण दोनों भुजाओं से उनका आलिंगन करके उनसे बोले ॥ ७ ॥ हे सत्यधारियों में श्रेष्ठ रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र! मैं आपका स्वागत करता हूँ। आपने अपने आगमन से इस अनाथ के समान आश्रम को सनाथ कर दिया ॥ ८ ॥ हे महायशस्वी रामचन्द्र! आपकी प्रतीक्षा करते हुए मैंने इस पार्थिव शरीर तथा पृथ्वी को छोड़कर ब्रह्मलोक को प्रस्थान नहीं किया ॥ ९ ॥ आप राजसिंहासन को छोड़कर जब चित्रकूट में आये तभी से आपको सुन रखा था। हे ककुत्स्थ-कुल शिरोमणि रामचन्द्र! सैकड़ों अश्वमेध याग करनेवाले देवराज इन्द्र यहाँ आये थे ॥ १० ॥ देवाधिदेव इन्द्र मेरे पास आकर मुझसे बोले कि हे तपस्वि! तुमने अपने पुण्य कर्मों से उत्तम लोकों को जीत लिया है ॥ ११ ॥ अपनी तपश्चर्या के द्वारा विद्वान् और ऋषियों से सेवित जिस समूह पर मैंने विजय प्राप्त की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेषु देवर्षिजुष्टेषु जितेषु तपसा मया । मत्प्रसादात्सभार्यस्त्वं विहरस्व सलक्ष्मणः ॥१२॥
तमुग्रतपसा युक्तं महर्षिं सत्यवादिनम् । प्रत्युवाचात्मवान् रामो ब्रह्माणमिव वासवः ॥१३॥
अहमेवाहरिष्यामि स्वयं लोकान् महामुने । आवासं त्वहमिच्छामि प्रविष्टमिह कानने ॥१४॥
भवान् सर्वत्र कुशलः सर्वभूतहिते रतः । आख्यातः शरभङ्गेण गौतमेन महात्मना ॥१५॥
एवमुक्तस्तु रामेण महर्षिर्लोकविश्रुतः । अब्रवीन्मधुरं वाक्यं हर्षेण महताप्लुतः ॥१६॥
अयमेवाश्रमो राम गुणवान् रम्यतामिह । ऋषिसङ्घानुचरितः सदा मूलफलान्वितः ॥१७॥
इममाश्रममागम्य मृगसङ्घा महीयसः । अहत्वा प्रतिगच्छन्ति लोभयित्वाकुतोभयाः ॥१८॥
नान्यो दोषो भवेदत्र मृगेभ्योऽन्यत्र विद्धि वै । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य महर्षेर्लक्ष्मणाग्रजः ॥१९॥
उवाच वचनं धीरो विकृष्य सशरं धनुः । तानहं सुमहाभाग मृगसङ्घान् समागतान् ॥२०॥
हन्यां निशितधारेण शरेणाशनिवर्चसा । भवांस्तत्राभिपज्येत किं स्यात्कृच्छ्रतरं ततः ॥२१॥
एतस्मिन्नाश्रमे वासं चिरं तु न समर्थये । तमेवमुक्त्वोपरमं रामः सन्ध्यामुपाविशत् ॥२२॥
अन्वास्य पश्चिमां सन्ध्यां तत्र वासमकल्पयत् । सुतीक्ष्णस्याश्रमे रम्ये सीतया लक्ष्मणेन च ॥२३॥
ततः शुभं तापसभोज्यमन्नं स्वयं सुतीक्ष्णः पुरुषर्षभाभ्याम् ।
ताभ्यां सुसत्कृत्य ददौ महात्मा सन्ध्यानिवृत्तौ रजनीमवेक्ष्य ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सुतीक्ष्णाश्रमो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

है, मेरी प्रसन्नता से आप लक्ष्मण और जानकी के साथ वहाँ विहार करें ॥ १२ ॥ उग्र तपश्चर्या करने वाले, सत्यवादी तथा दीप्त कान्ति वाले महर्षियों से जितेन्द्रिय रामचन्द्र इस प्रकार बोले जैसे इन्द्र वेदवेत्ता ब्रह्मा से बोलते हैं ॥ १३ ॥ हे महामुनि ! मैं स्वयं उन तपस्वी ऋषियों से मिलने का यत्न करूँगा। इस वन में आपके द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर मैं निवास करना चाहता हूँ ॥ १४ ॥ गौतम शरभङ्ग ने आपके विषय में मुझसे कहा था कि वे सम्पूर्ण विषयों में निपुण तथा प्राणिमात्र के कल्याण में सदा रत रहते हैं ॥ १५ ॥ लोक प्रसिद्ध महर्षि सुतीक्ष्ण राम की इन बातों को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और मधुर शब्दों में रामचन्द्र से बोले ॥ १६ ॥ हे रामचन्द्र ! आप इसी आश्रम में निवास करें क्योंकि यह मूल-फल आदि तथा ऋषि समूह से सदा पूर्ण रहता है ॥ १७ ॥ इस आश्रम में निर्भय झुण्ड के झुण्ड मृग आते हैं और किसी को बिना कष्ट दिये ऋषियों को लुभाकर चले जाते हैं ॥ १८ ॥ इस वन में उन मृगों के उत्पात को छोड़कर और कोई भय नहीं है। महर्षि की बात को सुनकर रामचन्द्र ॥ १९ ॥ बाण के सहित धनुष को लेकर उस तपस्वी से इस प्रकार बोले—हे महाभाग्यवान् ! मैं उन मृग संघों को तीक्ष्ण धार वाले बाणों से मारूँगा। यदि आप उन मृगों से प्रेम रखते हों, तो उनका मारना मेरे लिये बड़ा दुःखदायी होगा ॥ २०,२१ ॥ इस आश्रम में मैं चिरकाल तक वास करना नहीं चाहता। उस ऋषि से इस प्रकार बातें करके रामचन्द्र सन्ध्या करने चले गये ॥ २२ ॥ सायंकाल की सन्ध्या समाप्त करके रामचन्द्र ने सीता और लक्ष्मण के साथ सुतीक्ष्ण के रमणीय आश्रम में निवास किया ॥ २३ ॥ रात्रि को देखकर संध्या आदि से निवृत्त होने पर सीता के सहित राम-लक्ष्मण को महात्मा सुतीक्ष्ण ने तपस्वियों के खाने योग्य शुभ अन्न सत्कारपूर्वक दिया ॥ २४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'सुतीक्ष्ण का आश्रम' विषयक सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टमः सर्गः

सुतीक्ष्णाभ्यनुज्ञा

रामस्तु सहसौमित्रिः सुतीक्ष्णेनाभिपूजितः । परिणाम्य निशां तत्र प्रभाते प्रत्यबुध्यत ॥१॥
उत्थाय तु यथाकालं राघवः सह सीतया । उपास्पृशत्सुशीतेन जलेनोत्पलगन्धिना ॥२॥
अथ तेऽग्निं सुरांश्चैव वैदेही रामलक्ष्मणौ । कल्यं विधिवदभ्यर्च्य तपस्विशरणे वने ॥३॥
उदयन्तं दिनकरं दृष्ट्वा विगतकल्मषाः । सुतीक्ष्णमभिगम्येदं श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन् ॥४॥
सुखोषिताः स्म भगवंस्त्वया पूज्येन पूजिताः । आपृच्छामः प्रयास्यामो मुनयस्त्वरयन्ति नः ॥५॥
त्वरामहे वयं द्रष्टुं कृत्स्नमाश्रममण्डलम् । ऋषीणां पुण्यशीलानां दण्डकारण्यवासिनाम् ॥६॥
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामः सर्वैर्भिर्मुनिपुंगवैः । धर्मनित्यैस्तपोदान्तैर्विशिखैरिव पावकैः ॥७॥
अविषह्यातपो यावत्सूर्यो नातिविराजते । अमार्गेणागतां लक्ष्मीं प्राप्येवान्वयवर्जितः ॥८॥
तावदिच्छामहे गन्तुमित्युक्त्वा चरणौ मुनेः । ववन्दे सह सौमित्रिः सीतया सह राघवः ॥९॥

आठवाँ सर्ग

सुतीक्ष्ण की आज्ञा

सुतीक्ष्ण के द्वारा सत्कार होने पर मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र ने वह रात्रि उन्हीं के आश्रम में बिताई और प्रभात होने पर जागे ॥ १ ॥ प्रातःकाल जानकी के साथ उठकर रामचन्द्र ने कमल-गन्ध से सुगन्धित शीतल जल से स्नान किया ॥ २ ॥ उस तपस्वी के वन वाले आश्रम में प्रातःकाल राम-लक्ष्मण-जानकी ने अग्निहोत्र तथा विद्वान् तपस्वियों का सत्कार किया ॥ ३ ॥ निष्पाप राम-लक्ष्मण आदि सूर्य को उदय होते देखकर महर्षि सुतीक्ष्ण के पास जाकर बड़े प्रेम से यह वचन बोले ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! आप जैसे माननीय व्यक्ति के द्वारा सम्मानित होने पर हम लोगों ने सुखपूर्वक यहाँ निवास किया । अब आगे जाने के लिये आप से आज्ञा चाहते हैं क्योंकि जाने वाले ऋषि शीघ्रता कर रहे हैं ॥ ५ ॥ हम लोग दण्डक वन में रहने वाले पुण्यशील सम्पूर्ण ऋषियों के आश्रम मण्डल को शीघ्र ही देखना चाहते हैं ॥ ६ ॥ लपट शान्त हुई अग्नि के समान नित्य धर्म में लगने वाले तपस्वी, वशी इन श्रेष्ठ मुनियों के साथ हम सभी आप से आज्ञा चाहते हैं ॥ ७ ॥ अन्यायोपार्जित द्रव्य जैसे वंशनाश तथा सन्ताप का हेतु होता है, उसी के समान जब तक यह अविषह्य सूर्य का ताप नहीं बढ़ता ॥ ८ ॥ उसके पूर्व ही हम लोग यहाँ से प्रस्थान कर देना चाहते हैं, ऐसा कहकर लक्ष्मण और सीता के साथ रामचन्द्र ने मुनि के चरणों को प्रणाम किया ॥ ९ ॥ इस प्रकार प्रणाम करते हुए राम-लक्ष्मण को उठाकर मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण ने उनका गाढ़ आलिंगन किया

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तौ संस्पृशन्तौ चरणावुत्थाप्य मुनिपुंगवः । गाढमालिङ्ग्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥
अरिष्टं गच्छ पन्थानं राम सौमित्रिणा सह । सीतया चानया सार्धं छाययेवानुवृत्तया ॥११॥
पश्याश्रमपदं रम्यं दण्डकारण्यवासिनाम् । एषां तपस्विनां वीर तपसा भावितात्मनाम् ॥१२॥
सप्राज्यफलमूलानि पुष्पितानि वनानि च । प्रशान्तमृगयूथानि शान्तपक्षिगणानि च ॥१३॥
फुल्लपङ्कजपण्डानि प्रसन्नसलिलानि च । कारण्डवविकीर्णानि तटाकानि सरांसि च ॥१४॥
द्रक्ष्यसे दृष्टिरम्याणि गिरिप्रस्रवणानि च । रमणीयान्यरण्यानि मयूराभिरुतानि च ॥१५॥
गम्यतां वत्स सौमित्रे भवानपि च गच्छतु । आगन्तव्यं त्वया तात पुनरेवाश्रमं मम १६॥
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः । प्रदक्षिणं मुनिं कृत्वा प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥१७॥
ततः शुभतरे तूणी धनुषी चायतेक्षणा । ददौ सीता तयोर्भ्रात्रोः खड्गौ च विमलौ ततः ॥१८॥
आबध्य च शुभे तूणी चापौ चादाय सस्वनौ । निष्क्रान्तावाश्रमाद्गन्तुमुभौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥१९॥
श्रीमन्तौ रूपसंपन्नौ दीप्यमानौ स्वतेजसा । प्रस्थितौ धृतचापौ तौ सीतया सह राघवौ ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सुतीक्ष्णाभ्यनुज्ञा नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

तथा उनसे ये वचन बोले ॥ १० ॥ छाया के समान अनुगमन करने वाली सीता तथा लक्ष्मण के साथ तुम कुशलपूर्वक इस मार्ग से जाओ ॥ ११ ॥ हे वीर रामचन्द्र ! तपश्चर्या के द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेवाले दण्डकारण्यवासी इन तपस्वियों के रमणीय आश्रमों को देखो ॥ १२ ॥ जिन वनों में जाना है उनमें पर्याप्त कन्दमूल फल आदि हैं, उत्तम जाति के मृग घूमते हैं तथा पक्षिगण शान्त हैं ॥ १३ ॥ जिनमें कमल खिले हैं, जिनके पानी निर्मल हैं, पनडुब्बी पक्षिगण जहाँ घूम रहे हैं, ऐसे तालाब तथा सरोवरों से युक्त वनों को देखोगे ॥ १४ ॥ पहाड़ के रमणीय झरनों को तथा वनों को जिनमें मयूर बोल रहे हैं देखोगे ॥ १५ ॥ हे वत्स लक्ष्मण ! तुम भी जाओ और तुम सभी उन आश्रमों को देखकर फिर इस आश्रम को लौट आना ॥ १६ ॥ ऋषि के ऐसा कहने पर 'बहुत ठीक है' ऐसा कहकर राम-लक्ष्मण मुनि की प्रदक्षिणा करके आगे चलने के लिये तैयार हो गये ॥ १७ ॥ विशालनयनी सीता ने उन दोनों भाई राम-लक्ष्मण को शुभ धनुष, तरकश तथा चमकती हुई दो तलवारें दीं ॥ १८ ॥ तरकश बाँधकर, शब्द करनेवाले धनुष को लेकर दोनों भाई राम-लक्ष्मण आगे जाने के लिये आश्रम से निकल पड़े ॥ १९ ॥ कमनीय कान्तिवाले तथा धनुष और तलवार को धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण महर्षि की आज्ञा पाकर सीता के साथ शीघ्र ही वहाँ से चल पड़े ॥ २० ॥

इस प्रकार बाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'सुतीक्ष्ण की आज्ञा' विषयक आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नवमः सर्गः

सीताधर्मोपदेशम्

सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातं प्रस्थितं रघुनन्दनम् । हृद्यया स्निग्धया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥१॥
अधर्मस्तु सुसूक्ष्मेण विधिना प्राप्यते महान् । निवृत्तेन तु शक्योऽयं व्यसनात्कामजादिह ॥२॥
त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत । मिथ्या वाक्यं परमकं तस्माद्गुरुतरावुभौ ॥३॥
परदारामिगमनं विना वैरं च रौद्रता । मिथ्या वाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव ॥४॥
कुतोऽभिलषणं स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम् । तव नास्ति मनुष्येन्द्र न चाभूत्ते कदाचन ॥५॥
मनस्यपि तथा राम न चैतद्विद्यते क्वचित् । स्वदारनिरतस्त्वं च नित्यमेव नृपात्मज ॥६॥
धर्मिष्ठः सत्यसन्धश्च पितुर्निर्देशकारकः । त्वयि सत्यं च धर्मश्च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥७॥
तच्च सर्वं महाबाहो शक्यं धर्तुं जितेन्द्रियैः । तव वश्येन्द्रियत्वं च जानामि शुभदर्शन ॥८॥
तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम् । निर्वैरं क्रियते मोहात्तच्च ते समुपस्थितम् ॥९॥
प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम् । ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम् ॥१०॥

नवाँ सर्ग

सीता का धर्म-कथन

महर्षि सुतीक्ष्ण की आज्ञा पा कर रास्ते में जाते हुए अपने पति रामचन्द्र के प्रति मनोहारी मधुर शब्दों में सीता बोली ॥ १ ॥ सूक्ष्म विधि से निरीक्षण करने पर आप के पूर्वोक्त वचन (मैं इन जन्तुओं को मारूंगा) कामज व्यसन रूपी अधर्म के भागी आप को बनाएँगे ॥ २ ॥ कामजन्य व्यसन तीन प्रकार के माने गये हैं। उन में मिथ्या भाषण करना भयङ्कर पाप है तथा शेष दो उससे भी भयङ्कर हैं ॥ ३ ॥ वे दोनों ये हैं—पराई स्त्री से प्रेम करना तथा विना विरोध के दूसरों के साथ वैर बुद्धि रखना। हे रघुकुल शिरोमणि ! मिथ्या भाषण तो आप ने कभी किया नहीं और न आगे करने की आशा है ॥ ४ ॥ धर्मनाशक पराई स्त्री का संसर्ग इन बातों की तो चर्चा ही आप में व्यर्थ हैं। क्योंकि हे राजकुमार ! इन अधर्मों में आपकी प्रवृत्ति न तो पहले थी और न अब है ॥ ५ ॥ हे रामचन्द्र ! इस प्रकार की अपवित्र धारणा आप के मन में भी कभी नहीं आई। क्योंकि आप सदा अपनी ही धर्मपत्नी से स्नेह रखते हैं ॥६॥ आप धार्मिक, सत्य प्रतिज्ञा वाले तथा पिता की आज्ञा पालन करने वाले हैं। अतः सत्य और सर्व धर्म आप में निहित हैं ॥ ७ ॥ हे विशालबाहु रामचन्द्र ! जितेन्द्रिय पुरुष ही इन सब गुणों को धारण कर सकते हैं और आप के इन्द्रिय-संयम को मैं भली भाँति जानती ही हूं ॥८॥ तीसरा व्यसन रूप जो यह अविवेक वश निरपराध प्राणियों की भयङ्कर हत्या की जाती है, वह आप को प्राप्त हो गया है ॥ ९ ॥ हे वीर ! आप ने दण्डकवन में निवास करने वाले ऋषियों की रक्षा करने के लिये संग्राम में राक्षसों का वध करने की प्रतिज्ञा की थी ॥१०॥ इसी निमित्त से आपने धनुष-बाण धारण करके भाई के साथ दण्डक नामक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतन्निमित्तं च वनं दण्डका इति विश्रुतम् । प्रस्थितस्त्वं सह भ्रात्रा धृतबाणशरासनः ॥११॥
ततस्त्वां प्रस्थितं दृष्ट्वा मम चिन्ताकुलं मनः । त्वद्वृत्तं चिन्तयन्त्या वै भवेन्निःश्रेयसं महत् ॥१२॥
न हि मे रोचते वीर गमनं दण्डकान् प्रति । कारणं तत्र वक्ष्यामि वदन्त्याः श्रूयतां मम ॥१३॥
त्वं हि बाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रा सह वनं गतः । दृष्ट्वा वनचरान् सर्वान् कच्चित्कुर्याः शरव्ययम् ॥१४॥
क्षत्रियाणां च हि धनुर्हुताशस्येन्धनानि च । समीपतः स्थितं तेजो बलमुच्छ्रयते भृशम् ॥१५॥
पुरा किल महाबाहो तपस्वी सत्यवाक्शुचिः । कस्मिंश्चिदभवत्पुण्ये वने रतमृगद्विजे ॥१६॥
तस्यैव तपसो विघ्नं कर्तुमिन्द्रः शचीपतिः । खड्गपाणिरथागच्छदाश्रमं भटरूपधृत् ॥१७॥
तस्मिंस्तदाश्रमपदे निशितः खड्ग उत्तमः । स न्यासविधिना दत्तः पुण्ये तपसि तिष्ठतः ॥१८॥
स तच्छस्त्रमनुप्राप्य न्यासरक्षणतत्परः । वने तं विचरत्येव रक्षन् प्रत्ययमात्मनः ॥१९॥
यत्र गच्छत्युपादातुं मूलानि च फलानि च । न विना याति तं खड्गं न्यासरक्षणतत्परः ॥२०॥
नित्यं शस्त्रं परिवहन् क्रमेण स तपोधनः । चकार रौद्रीं स्वां बुद्धिं त्यक्त्वा तपसि निश्चयम् ॥२१॥
ततः स रौद्रेऽभिरतः प्रमत्तोऽधर्मकर्शितः । तस्य शस्त्रस्य संवासाज्जगाम नरकं मुनिः ॥२२॥
एवमेतत्पुरावृत्तं शस्त्रसंयोगकारणम् । अग्निसंयोगवद्धेतुः शस्त्रसंयोग उच्यते ॥२३॥
स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये । न कथंचन सा कार्या गृहीतधनुषा त्वया ॥२४॥

प्रसिद्ध वन के लिये प्रस्थान किया था ॥ ११ ॥ आप को प्रस्थान करते हुए देख कर मेरा मन चिन्ताग्रस्त हो गया था, परन्तु आप के आचरण को विचारते हुए मैंने सोचा कि यह महान् कल्याण-कारी होगा ॥१२॥ हे वीर! दण्डक वन में जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। इस का कारण मैं बताती हूं। आप मुझ से सुनें ॥ १३ ॥ धनुष बाण हाथ में धारण किये आप भाई के साथ वन में जा कर कहीं सब वनस्थ प्राणियों पर शरप्रहार न कर दें ॥ १४ ॥ क्योंकि क्षत्रियों के समीप स्थित धनुष एवं अग्नि के समीप स्थित ईंधन उन के तेज रूपी बल को अधिक बढ़ा देते हैं ॥ १५ ॥ हे महाबाहु ! पूर्व काल में शान्त पशु पक्षी वाले किसी पवित्र वन में एक सत्य वक्ता और पवित्र तपस्वी तपस्या करते थे ॥ १६ ॥ उन की तपस्या में विघ्न डालने के लिये योद्धा का वेष धारण कर के हाथ में तलवार लिये शचीपति इन्द्र उन के आश्रम में आये ॥ १७ ॥ उन्होंने उस आश्रम में पवित्र तप करने वाले तपस्वी को वह तीक्ष्ण तलवार धरोहर रूप में दे दी ॥ १८ ॥ वह तपस्वी उस शस्त्र को प्राप्त कर के, धरोहर की रक्षा में तत्पर अपने विश्वास की रक्षा करता हुआ वन में विचरता था ॥ १९ ॥ फल और मूल लेने के लिये वह जहां भी जाता था, तत्परता से धरोहर की रक्षा करने के लिये उस तलवार के बिना न जाता था ॥ २० ॥ नित्य शस्त्र को लिये रहने के कारण उस तपस्वी ने तपस्या-संकल्प को छोड़ कर अपनी बुद्धि को क्रूर बना लिया ॥ २१ ॥ इस के पश्चात् वह मुनि क्रूर कर्मों में संलग्न, विवेकशून्य तथा अधर्म में प्रवृत्त हो गया और उस शस्त्र के सहवास से घोर दुःख में फंस गया ॥ २२ ॥ इस प्रकार शस्त्र संयोग के कारण प्राचीन काल में यह घटना घटी। अतः शस्त्र का संयोग अग्नि के संयोग के समान विनाशकारी होता है ॥ २३ ॥ प्रेम तथा बहुत आदर से मैं आप को स्मरण कराती हूं, शिक्षा नहीं देती। धनुष ग्रहण कर के आप हिंसा कदापि न करें ॥ २४ ॥ हे वीर ! बिना

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बुद्धिवैरं विना हन्तुं राक्षसान् च दण्डकाश्रितान् । अपराधं विना हन्तुं लोकान् वीर न कामये ॥२५॥
क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु निरतात्मनाम् । धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥२६॥
क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च । व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तु पूज्यताम् ॥२७॥
तदार्य कलुषा बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात् । पुनर्गत्वा त्वयोध्यायां क्षत्रधर्मं चरिष्यसि ॥२८॥
अक्षया तु भवेत्प्रीतिः श्वश्रूश्वशुरयोर्मम । यदि राज्यं परित्यज्य भवेस्त्वं निरतो मुनिः ॥२९॥
धर्मादर्थः प्रभवते धर्मात्प्रभवते सुखम् । धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥३०॥
आत्मानं नियमैस्तैस्तैः कर्शयित्वा प्रयत्नतः । प्राप्यते निपुणैर्धर्मो न सुखाल्लभ्यते सुखम् ॥३१॥
नित्यं शुचिमतिः सौम्य चर धर्मं तपोवने । सर्वं हि विदितं तुभ्यं त्रैलोक्यमपि तत्त्वतः ॥३२॥
स्त्रीचापलादेतदुदाहृतं मे धर्मं च वक्तुं तव कः समर्थः ।
विचार्य बुद्ध्या तु सहानुजेन यद्रोचते तत्कुरु मा चिरेण ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सीताधर्मावेदनं नाम नवमः सर्गः ॥९॥

वैर दण्डकवन के राक्षसों तथा निरपराध लोगों को मारने की कामना मैं नहीं करती ॥२५॥ शान्त अन्तःकरण वाले वीर क्षत्रियों का वन में धनुष से इतना ही प्रयोजन है कि वे पीड़ितों की रक्षा करें ॥ २६ ॥ कहां शस्त्र और कहां वन तथा कहां क्षात्रधर्म और कहां तप ? ये परस्पर विरुद्ध हैं । हमें तो देशधर्म (तपोपन-धर्म) का ही आचरण करना चाहिये ॥ २७ ॥ हे आर्य ! शस्त्र धारण करने से बुद्धि मलिन हो जाती है । पुनः अयोध्या में जा कर क्षात्र धर्म का सेवन कीजियेगा । यदि राज्य का त्याग कर के आप मुनि वृत्ति को धारण करें तो मेरे सास-ससुर को परम सन्तोष होगा ॥ २९ ॥ धर्म से अर्थ होता है, धर्म से सुख होता है, धर्म से सब कुछ प्राप्त होता है, धर्म ही जगत् का सार है ॥ ३० ॥ प्रयत्न पूर्वक शास्त्रोक्त नियमों से आत्मा (मन) को वश में करके धर्म की प्राप्ति होती है । सुख से सुख प्राप्त नहीं होता ॥ ३१ ॥ हे सौम्य आप शुद्ध बुद्धि होकर तपोवन में नित्य धर्माचरण करें । आप को तो तीनों लोकों के धर्म का यथार्थ ज्ञान है ॥ ३२ ॥ स्त्री की स्वाभाविक चपलता के कारण मैं ने यह सब कुछ कहा । भला आपको धर्मोपदेश करने की किस की शक्ति है । अपने भाई के साथ बुद्धि पूर्वक विचार करके आप को जो उचित प्रतीत हो, उसे शीघ्र करना आरम्भ कर दें ॥ ३३ ॥

इस प्रकार वाल्मीकि-रामायण के अरण्यकाण्ड का 'सीता का धर्मकथन' विषयक नवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दशमः सर्गः

रक्षोवधसमर्थनम्

वाक्यमेतत्तु वैदेह्या व्याहृतं भर्तृभक्तया । श्रुत्वा धर्मे स्थितो रामः प्रत्युवाचाथ मैथिलीम् ॥ १ ॥
हितमुक्तं त्वया देवि स्निग्धया सदृशं वचः । कुलं व्यपदिशन्त्या च धर्मज्ञे जनकात्मजे ॥ २ ॥
किं तु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः । क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति ॥ ३ ॥
मां सीते स्वयमागम्य शरण्याः शरणंगताः । ते चार्ता दण्डकारण्ये मुनयः संशितव्रताः ॥ ४ ॥
वसन्तो धर्मनिरता वने मूलफलाशनाः । न लभन्ते सुखं भीता राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥ ५ ॥
काले काले च निरता नियमैर्विविधैर्वने । भक्ष्यन्ते राक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः ॥ ६ ॥
ते भक्ष्यमाणा मुनयो दण्डकारण्यवासिनः । अस्मानभ्यवपद्येति मामूचुर्द्विजसत्तमाः ॥ ७ ॥
मया तु वचनं श्रुत्वा तेषामेवं मुखाच्च्युतम् । कृत्वा चरणशुश्रूषां वाक्यमेतदुदाहृतम् ॥ ८ ॥
प्रसीदन्तु भवन्तो मे ह्रीरेषा हि ममातुला । यदीदृशैरहं विप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः ॥ ९ ॥
किं करोमीति च मया व्याहृतं द्विजसन्निधौ । सर्वैरेतैः समागम्य वागियं समुदाहृता ॥ १० ॥
राक्षसैर्दण्डकारण्ये बहुभिः कामरूपिभिः । अर्दिताः स्म भृशं राम भवान्नस्त्रातुमर्हति ॥ ११ ॥

दसवां सर्ग

राक्षसवध का समर्थन

पतिपरायण वैदेही सीता के द्वारा कहे हुए इस कथन को सुनकर धर्म में स्थित रामचन्द्र मिथिला-नरेश की पुत्री सीता से बोले ॥ १ ॥ हे धर्म को जानने वाली जनककुमारी देवी सीते ! मेरे प्रति स्नेह रखने वाली तुमने कुल-धर्म को बताते हुए स्नेहपूर्ण वचन उचित ही कहा ॥ २ ॥ हे देवि ! मैं क्या कहूँ ? यह तो तुमने ही कहा है कि क्षत्रिय धनुष को इसलिये धारण करता है कि कोई उत्पीड़ित न हो ॥ ३ ॥ हे सीते ! दण्डक वन में रहनेवाले तीक्ष्ण व्रतधारी मुनि लोग जो राक्षसों से पीड़ित हैं, मेरी शरण में आये ॥ ४ । वन में मूल फल खाकर निवास करनेवाले धर्मपरायण वे मुनि लोग, क्रूर कर्मों को करने वाले राक्षसों से भयभीत होकर सुख न पाते ॥ ५ ॥ मांसभक्षक भयङ्कर राक्षस समय २ वन में विविध नियमों से तपस्या में लगे मुनिजनों को खा जाते हैं ॥ ६ ॥ दण्डक वन में रहने वाले वे द्विजश्रेष्ठ तपस्वी हमारे पास आकर मुझसे इस प्रकार बोले ॥ ७ ॥ उनके मुख से निकले हुए इस प्रकार के वचन सुनकर, उनकी चरण सेवा करके मैंने यह वचन कहा ॥ ८ ॥ आप प्रसन्न हों। मेरे लिये यह अनुपम लज्जास्पद है कि ऐसे विप्र मेरे पास आयें, जिनके पास स्वयं मुझे जाना चाहिये था ॥ ९ ॥ मैंने श्रेष्ठ मुनियों से पूछा कि मैं क्या करूँ ? तो सबने आकर यह बात कही ॥ १० ॥ दण्डक वन में बहुत से इच्छानुसार रूप धारण करने वाले राक्षसों से हम अति पीड़ित हैं। आप हमारी रक्षा कर सकते हैं ॥ ११ ॥ हे निष्पाप रामचन्द्र!

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होमकालेषु संप्राप्ताः पर्वकालेषु चानघ। धर्षयन्ति सुदुर्धर्षा राक्षसाः पिशिताशनाः ॥१२॥
राक्षसैर्धर्षितानां च तापसानां तपस्विनाम्। गतिं मृगयमाणानां भवान्नः परमा गतिः ॥१३॥
कामं तपःप्रभावेण शक्ता हन्तुं निशाचरान्। चिरार्जितं तु नेच्छामस्तपः खण्डयितुं वयम् ॥१४॥
बहुविघ्नं तपो नित्यं दुश्चरं चैव राघव। तेन शापं न मुञ्चामो भक्ष्यमाणाश्च राक्षसैः ॥१५॥
तदर्द्यमानान् रक्षोभिर्दण्डकारण्यवासिभिः। रक्ष नस्त्वं सह भ्रात्रा त्वन्नाथा हि वयं वने ॥१६॥
मया चैतद्वचः श्रुत्वा कार्त्स्न्येन परिपालनम्। ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे ॥१७॥
संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम्। मुनीनामन्यथा कर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा ॥१८॥
अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्। न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥१९
तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम्। अनुक्तेनापि वैदेहि प्रतिज्ञाय तु किं पुनः ॥२०॥
मम स्नेहाच्च सौहार्दादिदमुक्तं त्वयानघे। परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशिष्यते ॥२१॥
सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव चात्मनः। सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥२२॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा सीतां प्रियां मैथिलराजपुत्रीम्।
रामो धनुष्मान् सह लक्ष्मणेन जगाम रम्याणि तपोवनानि॥ २३

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे रक्षोवधसमर्थनं नाम दशमः सर्गः ॥१०॥

होम तथा पर्व (अमावस्या) आदि के समय आकर मांसभक्षी बलवान् राक्षस हमें कष्ट देते हैं ॥ १२ ॥ राक्षसों से पीड़ित होकर रक्षक को खोजने वाले तपस्या करने वाले मुनिजनों के आप ही परम रक्षक हैं। ॥ १३ ॥ यद्यपि अपने तप के प्रभाव से हम राक्षसों को स्वेच्छापूर्वक मार सकते हैं, तथापि हम सुदीर्घ काल में अर्जित अपने तप को खण्डित करना नहीं चाहते ॥ १४ ॥ हे रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ! तप में बहुत बाधाएँ आती है तथा उसका करना भी बहुत कठोर है। अतः राक्षसों से खाये जाने पर भी हम उन्हें शाप नहीं देते ॥ १५ ॥ दण्डक वन में रहने वाले राक्षसों से हम पीड़ितों की रक्षा करें, क्योंकि वन में भाई सहित आप ही हमारे स्वामी हैं ॥ १६ ॥ हे जनककुमारी सीते ! यह बात सुनकर मैंने दण्डक वन में ऋषियों की सम्पूर्ण रक्षा करने की प्रतिज्ञा कर ली ॥ १७ ॥ ऋषियों से प्रतिज्ञा करके मैं जीते जी उसके विरुद्ध आचरण नहीं कर सकता। क्योंकि मुझे सदा सत्य प्रिय है ॥ १८ ॥ हे सीते ! मैं अपने प्राण छोड़ सकता हूँ तथा लक्ष्मण सहित तुझे भी छोड़ सकता हूँ, किन्तु प्रतिज्ञा करके, विशेषतः ब्राह्मणों से प्रतिज्ञा करके, उसे नहीं छोड़ सकता ॥ २० ॥ अतः हे वैदेहि ! मुझे ऋषियों की रक्षा उनके बिना कहे ही अवश्य करनी चाहिये, फिर प्रतिज्ञा करके तो कहना ही क्या ॥ २० ॥ हे पवित्र सीते ! मेरे ऊपर स्नेह तथा प्रेम से तुमने ऐसा कहा था। इसलिये मुझे संतोष है, क्योंकि अप्रिय को उपदेश नहीं किया जाता ॥ २१ ॥ अपने तथा अपने कुल की मर्यादा के अनुकूल ही कहा है। तुम मेरी सहधर्मचारिणी हो तथा मेरे प्राणों से भी प्यारी हो (अतः मेरे ऊपर अनुशासन करने का अधिकार रखती ही हो) ॥ २२ ॥ मिथिलानरेश की पुत्री प्रिय सीता को ये वचन कहकर महात्मा रामचन्द्र धनुष लेकर लक्ष्मण के साथ रमणीय तपोवनों की ओर चले गये ॥ २३ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'राक्षसों के वध का समर्थन' विषयक दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १० ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकादशः सर्गः

अगस्त्याश्रमः

अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना । पृष्ठतस्सु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ॥१॥
तौ पश्यमानौ विविधाञ्शैलप्रस्थान् वनानि च । नदीश्च विविधा रम्या जग्मतुः सीतया सह ॥२॥
सारसांश्चक्रवाकांश्च नदीपुलिनचारिणः । सरांसि च सपद्मानि युक्तानि जलजैः खगैः ॥३॥
यूथबद्धांश्च पृषतान् मदोन्मत्तान् विषाणिनः । महिषांश्च वराहांश्च नागांश्च द्रुमवैरिणः ॥४॥
ते गत्वा दूरमध्वानं [लम्बमाने दिवाकरे । ददृशुः सहिता रम्यं तटाकं योजनायतम् ॥५॥
पद्मपुष्करसंबाधं गजयूथैरलंकृतम् । सारसैर्हंसकादम्बैः संकुलं जलचारिभिः ॥६॥
प्रसन्नसलिले रम्ये तस्मिन् सरसि शुश्रुवे । गीतवादित्रनिर्घोषो न तु कश्चन दृश्यये ॥७॥
ततः कौतूहलाद्रामो लक्ष्मणश्च महाबलः । मुनिं धर्मभृतं नाम प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥८॥
इदमत्यद्भुतं श्रुत्वा सर्वेषां नो महामुने । कौतूहलं महज्जातं किमिदं साधु कथ्यताम् ॥९॥
तेनैवमुक्तो धर्मात्मा राघवेण मुनिस्तदा । प्रभावं सरसः कृत्स्नमाख्यातुमुपचक्रमे ॥१०॥
इदं पञ्चाप्सरो नाम तटाकं सार्वकालिकम् । निर्मितं तपसा राम मुनिना माण्डकर्णिना ॥११॥
स हि तेपे तपस्तीव्रं माण्डकर्णिर्महामुनिः । दश वर्षसहस्राणि वायुभक्षो जलाश्रयः ॥१२॥

ग्यारहवाँ सर्गः

अगस्त्य का आश्रम

आगे २ रामचन्द्र, मध्य में सुन्दरी सीता तथा पीछे धनुष हाथ में लेकर लक्ष्मण चले ॥ १ ॥ वे राम और लक्ष्मण भिन्न २ पर्वत शिखरों, वनों तथा सुन्दर नदियों को देखते हुए सीता के साथ चले। नदी के तट पर विचरने वाले सारसों तथा चक्रवालों, कमल तथा जलचर पक्षियों से युक्त तालाबों, झुण्ड बँधे हरिणों, सींगों वाले मदमस्त भैंसों, सूअरों और वृक्षों को उखाड़ डालने वाले हाथियों ॥ २-४ ॥ *दूर मार्ग पार करके सायंकाल उन सबने एक योजन तक फैला हुआ एक रमणीय तालाब देखा ॥ ५ ॥ वह तालाब उत्तम कमलों से युक्त, हाथियों के समूह से सुशोभित, जलचर सारसों तथा हंस समूहों से भरा हुआ था ॥ ६ ॥ निर्मल जल वाले उस सुन्दर तालाब में गीत तथा वाद्यों का शब्द सुनाई पड़ता था, परन्तु कोई दिखाई न देता था ॥ ७ ॥ तदनन्तर उत्सुकतावश राम और बलवान् लक्ष्मण धर्मभृत नामक मुनि से पूछने लगे ॥ ८ ॥ हे महामुने ! इस अति आश्चर्यजनक शब्द को सुनकर हम सब को बड़ा कौतूहल हो गया है। यह क्या है ? आप अच्छे प्रकार बतायें ॥ ९ ॥ रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र के ऐसा कहने पर वे धर्मात्मा मुनि तालाब के सम्पूर्ण प्रभाव को बताने लगे ॥१०॥ हे रामचन्द्र इस सदा जल से पूर्ण तालाब को मण्डकर्णि नामक मुनि ने अपने तप से बनाया था ॥ ११ ॥ उस मण्डकर्णि मुनि ने दस हजार वर्ष तक पानी में रहकर तथा हवा खाकर घोर तप किया ॥ १२ ॥ उस कठोर तपस्या से अग्नि आदि सब

---

*पद्मपुराण आदि में यह वर्णन आया है। यहाँ अप्रासङ्गिक तथा अवैज्ञानिक होने से प्रक्षिप्त है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततः प्रव्यथिताः सर्वे देवाः साग्निपुरोगमाः । अब्रुवन् वचनं सर्वे परस्परसमागताः ॥१३॥
अस्माकं कस्यचित्स्थानमेष प्रार्थयते मुनिः । इति संविग्नमनसः सर्वे ते त्रिदिवौकसः ॥१४॥
तत्र कर्तुं तपोविघ्नं देवैः सर्वैर्नियोजिताः । प्रधानाप्सरसः पञ्च विद्युच्चलितवर्चसः ॥१५॥
अप्सरोभिस्ततस्ताभिर्मुनिर्दृष्टपरावरः । नीतो मदनवश्यत्वं सुराणां कार्यसिद्धये ॥१६॥
ताश्चैवाप्सरसः पञ्च मुनेः पत्नीत्वमागताः । तटाके निर्मितं तासामस्मिन्नन्तर्हितं गृहम् ॥१७॥
तथैवाप्सरसः पञ्च निवसन्त्यो यथासुखम् । रमयन्ति तपोयोगान्मुनिं यौवनमास्थितम् ॥१८॥
तासां संक्रीडमानानामेष वादित्रनिःस्वनः । श्रूयते भूषणोन्मिश्रो गीतशब्दो मनोहरः ॥१९॥
आश्चर्यमिति तस्यैतद्वचनं भावितात्मनः । राघवः प्रतिजग्राह सह भ्रात्रा महायशाः ॥२०॥
एवं कथयमानस्य ददर्शाश्रममण्डलम् । कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्मया लक्ष्म्या समावृतम् ॥२१॥
प्रविश्य सह वैदेह्या लक्ष्मणेन च राघवः । उवास मुनिभिः सर्वैः पूज्यमानो महायशाः ॥२२॥
तथा तस्मिन् स काकुत्स्थः श्रीमत्याश्रममण्डले । उषित्वा तु सुखं तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः ॥२३॥
जगाम चाश्रमांस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम् । येषामुषितवान् पूर्वं सकाशे स महास्त्रवित् ॥२४॥
क्वचित्परिदशान् मासानेकं संवत्सरं क्वचित् । क्वचिच्च चतुरो मासान् पञ्च षट् चापरान् क्वचित् ॥२५॥
अपरत्राधिकं मासादप्यर्धमधिकं क्वचित् । त्रीन् मासानष्टमासांश्च राघवोन्यवसत्सुखम् ॥२६॥
एवं संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै । रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश ॥२७॥

देवता बड़े दुःखी हुए और एकत्र होकर परस्पर कहने लगे ॥ १३ ॥ यह मुनि हम में से किसी के स्थान को प्राप्त करना चाहता है। यह सोच कर वे सब देव गण मन में उद्विग्न हो गये ॥ १४ ॥ उसकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए सब देवताओं ने विद्युत् के समान कान्ति वाली पाँच मुख्य अप्सराओं को नियुक्त कर दिया ॥ १५ ॥ तत्पश्चात् आत्मा तथा प्रकृति के रहस्यों को जानने वाले मुनि को उन अप्सराओं ने देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये काम के अधीन कर दिया ॥ १६ ॥ वे पाँचों अप्सराएँ मुनि की पत्नी बन गईं। इस तालाब के अन्दर उनका घर बना हुआ है ॥ १७ ॥ वहीं वे पाँचों अप्सराएँ सुख से निवास करती हुई तप के प्रभाव से यौवन को प्राप्त हुए उस मुनि का रञ्जन करती है ॥ १८ ॥ क्रीड़ा करती हुई उन्हीं के वाद्यों का शब्द तथा भूषणों से मिला हुआ गीत सुनाई पड़ता है ॥ १९ ॥ 'आश्चर्य है', ऐसा कहते हुए महायशस्वी रामचन्द्र ने भाई लक्ष्मण के साथ मुनि के उस कथन को स्वीकार किया ॥ २० ॥ इस प्रकार कहते हुए रामचन्द्र ने एक आश्रम को देखा, जिसमें कुशा और चीर फैले हुए थे तथा जो अलौकिक शोभा से आवृत था ॥ २१ ॥ वे रघुकुल दिवाकर महायशस्वी राम, लक्ष्मण तथा विदेह राज की पुत्री सीता के साथ उस आश्रम में प्रविष्ट होकर, ऋषियों से आदर पाते हुए रहे ॥ २२ ॥ इस प्रकार महर्षियों के द्वारा सत्कृत वे रामचन्द्र सुखपूर्वक उस सुन्दर आश्रम में रह कर ॥ २३ ॥ महान् अस्त्र कुशल रामचन्द्र उन तपस्वियों के आश्रमों में क्रम से गये, जिनके पास उन्होंने पहले निवास किया था ॥ २४ ॥ कहीं दस मास से अधिक, कहीं एक वर्ष, कहीं चार मास तथा अन्यत्र पाँच छ मास दूसरे स्थान पर मास भर से अधिक, कहीं आधे मास से अधिक, कहीं तीन तथा कहीं आठ मास तक रामचन्द्र सुखपूर्वक निवास करते रहे ॥ २५-२६ ॥ इस प्रकार मुनियों के आश्रमों में निवास करते हुए तथा अनुकूलता से विहार करते हुए उनके दस वर्ष बीत गये ॥ २७ ॥ धर्मज्ञ श्रीमान् रामचन्द्र सीता के साथ लौटकर पुनः सुतीक्ष्ण के आश्रम में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिवृत्य च धर्मज्ञो राघवः सह सीतया । सुतीक्ष्णस्याश्रमं श्रीमान् पुनरेवाजगाम ह ॥२८॥
स तमाश्रममासाद्य मुनिभिः प्रतिपूजितः । तत्रापि न्यवसद्रामः किंचित्कालमरिंदमः ॥२९॥
अथाश्रमस्थो विनयात्कदाचित्तं महामुनिम् । उपासीनः स काकुत्स्थः सुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् ॥३०॥
अस्मिन्नरण्ये भगवन्नगस्त्यो मुनिसत्तमः । वसतीति मया नित्यं कथाः कथयतां श्रुतम् ॥३१॥
न तु जानामि तं देशं वनस्यास्य महत्तया । कुत्राश्रममिदं पुण्यं महर्षेस्तस्य धीमतः ॥३२॥
प्रसादात्तत्रभवतः सानुजः सह सीतया । अगस्त्यमभिगच्छेयमभिवादयितुं मुनिम् ॥३३॥
मनोरथो महानेष हृदि मे परिवर्तते । यदहं तं मुनिवरं शुश्रूषेयमपि स्वयम् ॥३४॥
इति रामस्य स मुनिः श्रुत्वा धर्मात्मनो वचः । सुतीक्ष्णः प्रत्युवाचेदं प्रीतो दशरथात्मजम् ॥३५॥
अहमप्येतदेव त्वां वक्तुकामः सलक्ष्मणम् । अगस्त्यमभिगच्छेति सीतया सह राघव ॥३६॥
दिष्ट्या त्विदानीमर्थेऽस्मिन् स्वयमेव ब्रवीषि माम् । अहमाख्यामि ते वत्स यत्रागस्त्यो महामुनिः
योजनान्याश्रमादस्मात्तात चत्वारि वै ततः । दक्षिणेन महाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ॥३८॥
स्थलीप्राये वनोद्देशे पिप्पलीवनशोभिते । बहुपुष्पफले रम्ये नानाशकुनिनादिते ॥३९॥
पद्मिन्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाः शिवाः । हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥४०॥
तत्रैकां रजनीं व्युष्य प्रभाते राम गम्यताम् । दक्षिणां दिशमास्थाय वनखण्डस्य पार्श्वतः ॥४१॥
तत्रागस्त्याश्रमपदं गत्वा योजनमन्तरम् । रमणीये वनोद्देशे बहुपादपसंवृते ॥४२॥
रंस्यते तत्र वैदेही लक्ष्मणश्च सह त्वया । स हि रम्यो वनोद्देशो बहुपादपसंकुलः ॥४३॥

आये ॥ २८ ॥ शत्रुओं का दमन करने वाले वे रामचन्द्र उस आश्रम में आकर मुनियों के द्वारा सम्मान प्राप्त करते हुए वहाँ भी कुछ समय तक रहे ॥ २९ ॥ तदनन्तर नम्रतापूर्वक आश्रम में रहने वाले वे रामचन्द्र एक बार उन महामुनि सुतीक्ष्ण के पास जाकर बोले ॥ ३० ॥ हे भगवन् ! कथा सुनाने वालों से प्रायः मैं ने सुना है कि इस बन में श्रेष्ठ मुनि आगस्त्य रहते हैं ॥ ३१ ॥ परन्तु इस वन में अतिविस्तृत होने के कारण मैं उस स्थान को नहीं जानता जहाँ उन बुद्धिमान् महर्षि का आश्रम है ॥ ३२ ॥ आप के प्रसाद से मैं लक्ष्मण और सीता के साथ, अगस्त्य ऋषि को प्रणाम करने के लिये जाना चाहता हूँ ॥ ३३ ॥ मेरे हृदय में यह भी महान् मनोरथ वर्त्तमान है कि मैं स्वयं उन श्रेष्ठ मुनि की सेवा करूँ ॥ ३४ ॥ दशरथ के पुत्र धर्मात्मा रामचन्द्र के वचन सुनकर वे मुनि सुतीक्ष्ण प्रसन्न होते हुए यह बोले ॥ ३५ ॥ हे रघुकुल शिरोमणि ! मैं भी तुम्हें यह कहना ही चाहता था कि तुम लक्ष्मण और सीता के साथ अगस्त्य के पास जाओ ॥ ३६ ॥ सौभाग्य से अब तुम ही मुझ से कह रहे हो । सो हे वत्स ! मैं तुम को बताता हूँ जहाँ अगस्त्य मुनि रहते हैं ॥ ३७ ॥ हे प्रिय ! इस आश्रम से चार योजन की दूरी पर अगस्त्य के भाई का सुन्दर आश्रम है ॥३८॥ वह पिप्पली वन से सुशोभित, बहुत फूल फल से पूर्ण, नाना पक्षियों से गुंजायमान, अच्छी भूमि वाले, रमणीक वन प्रान्त में स्थित है ॥ ३९ ॥ वहाँ विमल जल वाले, हंस-कारण्डव पक्षियों से पूर्ण तथा चकवा पक्षियों से शोभायमान सुन्दर सरोवर हैं ॥ ४० ॥ हे रामचन्द्र ! वहाँ एक रात रहकर प्रातः काल वन की बगल से दक्षिण दिशा की ओर जाना ॥ ४१ ॥ एक योजन जाकर बहुत वृक्षों से आच्छादित रमणीय वन प्रान्त में अगस्त्य का श्रेष्ठ आश्रम है ॥ ४२ ॥ तुम्हारे साथ जानकी और लक्ष्मण वहाँ बड़े प्रसन्न होंगे, क्योंकि अनेक वृक्षों से परिपूर्ण वह वनखण्ड अति रमणीय है ॥ ४३ ॥ हे महायशस्वी रामचन्द्र ! यदि उस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्त्यं तं महामुनिम् । अद्यैव गमने बुद्धिं रोचयस्व महायशः ॥४४॥
इति रामो मुनेः श्रुत्वा सह भ्रात्राभिवाद्य च । प्रतस्थेऽगस्त्यमुद्दिश्य सानुजः सीतया सह ॥४५॥
पश्यन् वनानि रम्याणि पर्वतांश्चाभ्रसंनिभान् । सरांसि सरितश्चैव पथि मार्गवशानुगाः ॥४६॥
सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेन गत्वा तेन पथा सुखम् । इदं परमसंहृष्टो वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥४७॥
एतदेवाश्रमपदं नूनं तस्य महात्मनः । अगस्त्यस्य मुनेर्भ्रातुर्दृश्यते पुण्यकर्मणः ॥४८॥
यथा हि मे वनस्यास्य ज्ञाताः पथि सहस्रशः । संनताः फलभारेण पुष्पभारेण च द्रुमाः ॥४९॥
पिप्पलीनां च पक्वानां वनादस्मादुपागतः । गन्धोऽयं पवनोत्क्षिप्तः सहसा कटुकोदयः ॥५०॥
तत्र तत्र च दृश्यन्ते संक्षिप्ताः काष्ठसंचयाः । लूनाश्च पथि दृश्यन्ते दर्भा वैडूर्यवर्चसः ॥५१॥
एतच्च वनमध्यस्थं कृष्णाभ्रशिखरोपमम् । पावकस्याश्रमस्थस्य धूमाग्रं संप्रदृश्यते ॥५२॥
विविक्तेषु च तीर्थेषु कृतस्नाना द्विजातयः । पुष्पोपहारं कुर्वन्ति कुसुमैः स्वयमार्जितैः ॥५३॥
तत्सुतीक्ष्णस्य वचनं यथा सौम्य मया श्रुतम् । अगस्त्यस्याश्रमो भ्रातुर्नूनमेष भविष्यति ॥५४॥
[निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया । यस्य भ्रात्रा कृतेयं दिक् शरण्या पुण्यकर्मणा ॥५५॥
इहैकदा किल क्रूरो वातापिरपि चेल्वलः । भ्रातरौ सहितावास्तां ब्राह्मणघ्नौ महासुरौ ॥५६॥
धारयन् ब्राह्मणं रूपमिल्वलः संस्कृतं वदन् । आमन्त्रयति विप्रान् स्म श्राद्धमुद्दिश्य निर्घृणः ॥५७॥
भ्रातरं संस्कृतं कृत्वा ततस्तं मेषरूपिणम् । तान् द्विजान् भोजयामास श्राद्धदृष्टेन कर्मणा ॥५८॥

महामुनि अगस्त्य के दर्शन करने का विचार है, तो आज ही जाने का निर्णय करलो ॥ ४४ ॥ मुनि के ये वचन सुन कर तथा भाई सहित उन्हें प्रणाम करके, अनुज लक्ष्मण तथा सीता के साथ रामचन्द्र अगस्त्य मुनि को लक्ष्य कर चल पड़े ॥ ४५ ॥ वे मार्ग में सुरम्य वनों, मेघ के समान पर्वतों, सरोवरों तथा मार्ग में पड़ने वाली नदियों को देखते हुए गये ॥ ४६ ॥ सुतीक्ष्ण के द्वारा बताये हुए मार्ग से सुखपूर्वक जाकर रामचन्द्र ने प्रसन्न होकर लक्ष्मण से यह वचन कहा ॥ ४७ ॥ अवश्य ही शुभ कर्म करने वाले उस महात्मा अगस्त्य के भाई का ही यह आश्रम दिखाई पड़ रहा है ॥ ४८ ॥ क्यों कि जैसे सुतीक्ष्ण से हमें ज्ञात हुए थे, वैसे ही इस वन में फूल और फल के भार से झुके हुए हजारों वृक्ष मार्ग में दिखाई दे रहे हैं ॥ ४९ ॥ वायु के द्वारा उड़ा कर लाई गई, पकी हुई पिप्पलियों की कडुई गन्ध सहसा इस वन से आने लगी है ॥ ५० ॥ इधर उधर एकत्र किये हुए लकड़ियों के ढेर दिखाई दे रहे हैं और मार्ग में कटे हुए कुश वैदूर्यमणि के समान दिखाई दे रहे हैं ॥ ५१ ॥ वन के मध्य में स्थित काले मेघ के शिखर के समान यह आश्रम की अग्नि का धुआं दिखई पड़ रहा है ॥ ५२ ॥ मुनि लोग विमल तीर्थों पर स्नान कर के, स्वयं अर्जित पुष्पों से पुष्प भेंट कर रहे हैं ॥ ५३ ॥ हे सोम्य लक्ष्मण ! मैं ने सुतीक्ष्ण का वचन जैसे सुना था, तदनुसार अवश्य ही यह अगस्त्य के भाई का आश्रम होना चाहिये ॥ ५४ ॥ ❀ जिस शुभ कर्म करने वाले भाई ने लोगों के कल्याणार्थ बल पूर्वक मृत्यु के समान भयङ्कर दैत्य को मार कर इस दिशा को वास योग्य बनाया ॥ ५५ ॥ एक बार यहां क्रूर वातापि और इल्वल नामक, ब्राह्मणों को मार डालने वाले महासुर दो भाई साथ२ रहते थे ॥ ५६ ॥ ब्राह्मण का रूप धारण करके, संस्कृत बोलता हुआ निर्दय इल्वल श्राद्ध के उद्देश्य से ब्राह्मणों को आमन्त्रित करता था ॥ ५७ ॥ फिर मेड़ का रूप धारण किये हुए अपने भाई का मांस बना कर श्राद्धविधि के अनुसार ब्राह्मणों को खिला देता था ॥ ५८ ॥ उन ब्राह्मणों

❀ वातापि तथा इल्वल दो महाराक्षसों की मनगढन्त, अवैज्ञानिक तथा असम्भव गाथा भी पौराणिक है। कई पुराणों में इस का विशद वर्णन है। वहीं से लेकर यह इस सर्ग में मिला दी गई है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततो भुक्तवतां तेषां विप्राणामिल्वलोऽब्रवीत् । वातापे निष्क्रमस्वेति स्वरेण महता वदन् ॥५९॥
ततो भ्रातुर्वचः श्रुत्वा वातापिर्मेषवन्नदन् । भित्त्वा भित्त्वा शरीराणि ब्राह्मणानां विनिष्पतत् ॥६०॥
ब्राह्मणानां सहस्राणि तैरेवं कामरूपिभिः । विनाशितानि संहत्य नित्यशः पिशिताशनैः ॥६१॥
अगस्त्येन तदा देवैः प्रार्थितेन महर्षिणा । अनुभूय किल श्राद्धे भक्षितः स महासुरः ॥६२॥
ततः संपन्नमित्युक्त्वा दत्त्वा हस्तोदकं ततः । भ्रातरं निष्क्रमस्वेति चेल्वलः सोऽभ्यभाषत ॥६३॥
स तं तथा भाषमाणं भ्रातरं विप्रघातिनम् । अब्रवीत्प्रहसन् धीमानगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥६४॥
कुतो निष्क्रमितुं शक्तिर्मया जीर्णस्य रक्षसः । भ्रातुस्ते मेषरूपस्य गतस्य यमसादनम् ॥६५॥
अथ तस्य वचः श्रुत्वा भ्रातुर्निधनसंश्रयम् । प्रधर्षयितुमारेभे मुनिं क्रोधान्निशाचरः ॥६६॥
सोऽभिद्रवन्मुनिश्रेष्ठं मुनिना दीप्ततेजसा । चक्षुषानलकल्पेन निर्दग्धो निधनं गतः ॥६७॥
तस्यायमाश्रमो भ्रातुस्तटाकवनशोभितः । विप्रानुकम्पया येन कर्मेदं दुष्करं कृतम् ॥६८॥]
एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रिणा सह । रामस्यास्तं गतः सूर्यः सन्ध्याकालोऽभ्यवर्तत ॥६९॥
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि । प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं सोऽभ्यवादयत् ॥७०॥
सम्यक्प्रतिगृहीतश्च मुनिना तेन राघवः । न्यवसत्तां निशामेकां प्राश्य मूलफलानि च ॥७१॥
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां विमले सूर्यमण्डले । भ्रातरं तमगस्त्यस्य ह्यामन्त्रयत राघवः ॥७२॥
अभिवादये त्वां भगवन् सुखमध्युषितो निशाम् । आमन्त्रये त्वां गच्छामि गुरुं ते द्रष्टुमग्रजम् ॥७३॥

के भोजन करने के बाद इल्वल ऊँचे स्वर से बोलता हुआ कहता था कि हे वातापि ! निकल आओ ॥ ५९ ॥ तब भाई के वचन को सुन कर वातापि भेड़ के समान बोलता हुआ ब्राह्मणों के शरीरों को फाड़२ कर बाहर निकल आता था ॥ ६० ॥ इस प्रकार यथेच्छ रूप धारण करने वाले मांसाहारी वे राक्षस एकत्र हो कर नित्य हजारों ब्राह्मणों का नाश कर देते थे ॥ ६१ ॥ देवों के अनुरोध पर महर्षि अगस्त्य ने श्राद्ध में निमन्त्रित होकर उस महासुर वातापि को खा लिया ॥ ६२ ॥ फिर 'श्राद्ध हो गया' ऐसा कह कर और हाथ धोने के लिये ऋषि के हाथ पर जल डाल कर इल्वल ने भाई से कहा कि बाहर निकल आओ ॥ ६३ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणों को मारने वाले भाई को बुलाते हुए उस इल्वल से मुनि-श्रेष्ठ बुद्धिमान् अगस्त्य हंसते हुए बोले ॥६४॥ मेरे द्वारा पचा लिये गये एवं यम के घर पहुँचे हुए भेड़ रूपी राक्षस तुम्हारे भाई की अब बाहर निकलने की शक्ति कहां ? ॥ ६५ ॥ अपने भाई की मृत्यु सम्बन्धि खबर सुन कर उस राक्षस इल्वल ने क्रोध से मुनि को मारना आरम्भ किया ॥ ६६ ॥ वह मुनिश्रेष्ठ पर झपटा । उस को महातेजस्वी मुनि ने अग्नितुल्य अपने नेत्रों से जला दिया और वह मर गया ॥ ६७ ॥ वन और सरोवरों से सुशोभित यह आश्रम उन्हीं ऋषि के भाई का है, जिन्हों ने ब्राह्मणों पर दया करके इस कठिन कार्य को किया ॥ ६८ ॥ इस प्रकार रामचन्द्र सुमित्रापुत्र लक्ष्मण के साथ बात कर ही रहे थे, तभी सूर्य अस्त हो गया और सन्ध्या समय आ गया ॥ ६९ ॥ भाई के साथ विधि पूर्वक सायंकालीन सन्ध्या करके रामचन्द्र आश्रम में घुसे और मुनि का अभिवादन किया ॥ ७० ॥ उस मुनि ने रघुकुलशिरोमणि राम का अच्छे प्रकार से स्वागत किया और उन्हों ने उस एक रात वहां फल-मूल खा कर निवास किया ॥ ७१ ॥ उस रात्रि के बीत जाने पर तथा सूर्योदय हो जाने पर रामचन्द्र उन अगस्त्य के भाई से कहने लगे ॥ ७२ ॥ भगवन् ! आप का अभिवादन करता हूं, रात्रि में बड़े आनन्द से रहा । आप के ज्येष्ठ बन्धु के दर्शन करने के लिये जा रहा हूं, अतः आप की आज्ञा चाहता हूं ॥ ७३ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गम्यतामिति तेनोक्तो जगाम रघुनन्दनः। यथोद्दिष्टेन मार्गेण वनं तच्चावलोकयन् ॥७४॥
नीवारान् पनसांस्तालांस्तिनिशान् वञ्जुलान् धवान्। चिरिबिल्वान् मधूकांश्च बिल्वानपि च तिन्दुकान्॥
पुष्पितान् पुष्पिताग्राभिर्लताभिरनुवेष्टितान्। ददर्श रामः शतशस्तत्र कान्तारपादपान् ॥७६॥
हस्तिहस्तैर्विमृदितान् वानरैरुपशोभितान्। मत्तैः शकुनिसङ्घैश्च शतशः प्रतिनादितान् ॥७७॥
ततोऽब्रवीत्समीपस्थं रामो राजीवलोचनः। पृष्ठतोऽनुगतं वीरं लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥७८॥
स्निग्धपत्रा यथा वृक्षा यथा शान्तमृगद्विजाः। आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावितात्मनः ॥७९॥
अगस्त्य इति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा। आश्रमो दृश्यते तस्य परिश्रान्तश्रमापहः ॥८०॥
प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः। प्रशान्तमृगयूथश्च नानाशकुनिनादितः ॥८१॥
[तस्येदमाश्रमपदं प्रभावाद्यस्य राक्षसैः। दिगियं दक्षिणा त्रासाद्दृश्यते नोपभुज्यते ॥८२॥
यदाप्रभृति चाक्रान्ता दिगियं पुण्यकर्मणा। तदाप्रभृति निर्वैराः प्रशान्ताः पिशिताशनाः ॥८३॥
नाम्ना चेयं भगवतो दक्षिणा दिक्प्रदक्षिणा। प्रथिता त्रिषु लोकेषु दुर्धर्षा क्रूरकर्मभिः ॥८४॥
गतिं निरोद्धुं निरतो भास्करस्याचलोत्तमः। निदेशं पालयन् तस्य विन्ध्यः शैलो न वर्धते ॥८५॥]
अयं दीर्घायुषस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणः। अगस्त्यस्याश्रमः श्रीमान् विनीतजनसेवितः ॥८६॥

मुनि ने कहा—जाओ। रामचन्द्र सुतीक्ष्ण द्वारा बताये हुए मार्ग से उस वन का अवलोकन करते हुए चल दिये ॥ ७४ ॥ नीवार, कटहल, ताल, तिनिश, वंजुल, धव, चिरबिल्व, महुआ, बेल और ॥ ७५ ॥ तिन्दुक के फूले हुए सैकड़ों वन वृक्षों को, कुसुमित लताएं जिन पर लिपटी हुई थीं, रामचन्द्र ने वहां देखा ॥ ७६ ॥ हाथियों ने जिनको अपने सूंड़ों से नष्ट कर दिया है, जो बन्दरों से सुशोभित हैं तथा मुदित पक्षियों के समूह से गुंजायमान हैं, ऐसे वृक्षों को उन्हों ने देखा ॥ ७७ ॥ पश्चात् कमलनयन रामचन्द्र समीप खड़े शुभलक्षण सम्पन्न, अपने अनुयायी, वीर लक्ष्मण से बोले ॥ ७८ ॥ जिस प्रकार के चिकने पत्तों वाले वृक्ष एवं शान्त मृग तथा पक्षी यहां दिखाई देते हैं उन से प्रतीत होता है कि विमलात्मा महर्षि का आश्रम अब अधिक दूर नहीं है ॥ ७९ ॥ जो अपने ही कर्म से लोक में अगस्त्य नाम से प्रसिद्ध हैं, उन्हीं का थके हुए लोगों के श्रम को दूर करने वाला यह आश्रम दिखाई देता है ॥ ८० ॥ जिस के घने धुएं से वन भरा हुआ है, जो वस्त्रों की पंक्तियों से शोभायमान है, जिस में शान्त मृग समूह हैं तथा नाना पक्षी जहां शब्द कर रहे हैं, ऐसा यह आश्रम है ॥ ८१ ॥ यह उन का आश्रम है जिन के प्रभाव से राक्षस भयभीत होकर इस दक्षिण दिशा की ओर नहीं देखते और न ही यहां के वसने वालों को खाते ही हैं ॥ ८२ ॥ ❀ जब से पुण्य कर्म वाले ऋषि अगस्त्य इस दिशा में आये हैं, तब से मांस भक्षक राक्षस शान्त और निर्वैर हो गये हैं ॥ ८३ ॥ सज्जनोचित यह दक्षिण दिशा महर्षि अगस्त्य के नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गई तथा क्रूर कर्म करने वाले राक्षसों के उपद्रव से रहित हो गई ॥ ८४ ॥ श्रेष्ठ पर्वत विन्ध्य दक्षिण दिशा की ओर सूर्य की गति को रोकने में प्रवृत्त हुआ। परन्तु वह भी महर्षि अगस्त्य के आदेश का पालन करता हुआ नहीं बढ़ता तथा आदित्य का गतिरोध नहीं करता ॥ ८५ ॥ उन दीर्घ-आयु तथा लोक प्रसिद्ध कर्म वाले महर्षि अगस्त्य का यह रमणीक तथा विनय सम्पन्न जनों से सेवित आश्रम है ॥ ८६ ॥ लोकपूजित तथा सत्पुरुषों के हित में सदा संलग्न

❀ अगस्त्य तथा विन्ध्य पर्वत की कथा पौराणिक है। विन्ध्य पर्वत का बढ़ कर सूर्य के मार्ग को रोकना, अगस्त्य की आज्ञा से झुक जाना और आज तक उन की आज्ञा मान कर झुके ही रहना इत्यादि कथा विज्ञान-बुद्धि के विरुद्ध है। पुराण से रामायण में इन श्लोकों का प्रक्षेप हुआ है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एष लोकार्चितः साधुर्हिते नित्यरतः सताम् । अस्मानभिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यति ॥८७॥
आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यं तं महामुनिम् । शेषं च वनवासस्य सौम्य वत्स्याम्यहं प्रभो ॥८८॥
अत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । अगस्त्यं नियताहारं सततं पर्युपासते ॥८९॥
नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः । नृशंसः कामवृत्तो वा मुनिरेष तथाविधः ॥९०॥
अत्र देवाश्च यक्षाश्च नागाश्च पतगैः सह । वसन्ति नियताहारा धर्ममाराधयिष्णवः ॥९१॥
अत्र सिद्धा महात्मनो विमानैः सूर्यसंनिभैः । त्यक्तदेहा नवैर्देहैः स्वर्याताः परमर्षयः ॥९२॥
यक्षत्वममरत्वं च राज्यानि विविधानि च । अत्र देवाः प्रयच्छन्ति भूतैराराधिताः शुभैः ॥९३॥
आगताः स्माश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः । निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सीतया सह ॥९४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे अगस्त्याश्रमो नाम एकादशः सर्गः ॥११॥

1785

द्वादशः सर्गः

अगस्त्यदर्शनम्

स प्रविश्याश्रमपदं लक्ष्मणो राघवानुजः । अगस्त्यशिष्यमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥१॥

यह धर्मात्मा अभ्यागत हमें कल्याण से युक्त करेगा ॥ ८७ ॥ यहां मैं उन महामुनि अगस्त्य की आराधना करूंगा और वनवास की शेष अवधि यहीं बिताऊंगा ॥ ८८ ॥ यहां गन्धर्व-सहित देव सिद्ध तथा महर्षि लोग नियत आहार वाले अगस्त्य मुनि की निरन्तर सेवा करते हैं ॥ ८९ ॥ ये मुनि इस प्रकार के हैं कि यहां असत्य बोलने वाले, क्रूर, शठ, निर्दय तथा कामी पुरुष जीवित नहीं रह सकते ॥ ९० ॥ यहां पक्षियों के साथ देव, यक्ष, तथा नाग नियत भोजन करते हुए धर्म की आराधना करने वाले निवास करते हैं ॥ ९१ ॥ सिद्ध, महात्मा तथा परमर्षि लोग यहां शरीर त्याग कर के, नये शरीर धारण कर के सूर्य के समान दीप्तिमान् विमानों के द्वारा स्वर्ग में चले गये ॥ ९२ ॥ यहां प्राणियों के द्वारा पुण्य कर्मों से पूजित देव उन्हें यक्ष योनि, देवयोनि तथा विभिन्न प्रकार के राज्यों को प्रदान करते हैं ॥ ९३ ॥ हे सुमित्रानन्दन लक्ष्मण ! अश्रम में हम आ गये । तुम आगे जाओ और सीतासहित मेरे यहां आगमन को ऋषि से निवेदन करो ॥९४॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामयण के अरण्यकाण्ड का 'अगस्त्य का आश्रम' विषयक ग्यारहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

बारहवाँ सर्ग

अगस्त्य का दर्शन

श्रीरामचन्द्र के छोटे भाई लक्ष्मण महर्षि अगस्त्य के आश्रम में प्रवेश कर उनके एक शिष्य से मिलकर यह वचन बोले ॥ १ ॥ महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र महाबली श्री रामचन्द्र अपनी भार्या

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजा दशरथो नाम ज्येष्ठस्तस्य सुतो बली । रामः प्राप्तो मुनिं द्रष्टुं भार्यया सह सीतया ॥२॥
लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजो हितः । अनुकूलश्च भक्तश्च यदि ते श्रोत्रमागतः ॥३॥
ते वयं वनमत्युग्रं प्रविष्टाः पितृशासनात् । द्रष्टुमिच्छामहे सर्वे भगवन्तं निवेद्यताम् ॥४॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः । तथेत्युक्त्वाग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम् ॥५॥
स प्रविश्य मुनिश्रेष्ठं तपसा दुष्प्रधर्षणम् । कृताञ्जलिरुवाचेदं रामागमनमञ्जसा ॥६॥
यथोक्तं लक्ष्मणेनैव शिष्योऽगस्त्यस्य संमतः । पुत्रौ दशरथस्येमौ रामो लक्ष्मण एव च ॥७॥
प्रविष्टावाश्रमपदं सीतया सह भार्यया । द्रष्टुं भवन्तमायातौ शुश्रूषार्थमरिंदमौ ॥८॥
यदत्रानन्तरं तत्त्वमाज्ञापयितुमर्हसि । ततः शिष्यादुपश्रुत्य प्राप्तं रामं सलक्ष्मणम् ॥९॥
वैदेहीं च महाभागामिदं वचनमब्रवीत् । दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः ॥१०॥
मनसा काङ्क्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति । गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥११॥
प्रवेश्यतां समीपं मे किं चासौ न प्रवेशितः । एवमुक्तस्तु मुनिना धर्मज्ञेन महात्मना ॥१२॥
अभिवाद्याब्रवीच्छिष्यस्तथेति नियताञ्जलिः । ततो निष्क्रम्य संभ्रान्तः शिष्यो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१३॥
क्वासौ रामो मुनिं द्रष्टुमेतु प्रविशतु स्वयम् । ततो गत्वाश्रमद्वारं शिष्येण सह लक्ष्मणः ॥१४॥
दर्शयामास काकुत्स्थं सीतां च जनकात्मजाम् । तं शिष्यः प्रश्रितो वाक्यमगस्त्यवचनं ब्रुवन् ॥१५॥

के साथ मुनि के दर्शन के लिए आये हुए हैं ॥ २ ॥ मैं भगवान् रामचन्द्र का हितकारी, भक्त, तथा उनका छोटा भाई हूं, संभव है रामचन्द्र के कथाप्रसंग में आप लोगों ने मेरा नाम सुना होगा ॥ ३ ॥ हम लोग अपने पिता की आज्ञा मानकर इस भीषण वन में आए हुए हैं, हम सभी लोग महर्षि का दर्शन करना चाहते हैं, इस लिए भगवान् अगस्त्य से यह मेरा निवेदन कह दीजिए ॥ ४ ॥ लक्ष्मण की इन बातों को सुनकर वह तपस्वी 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर महर्षि अगस्त्य से निवेदन करने के लिए यज्ञशाला में प्रविष्ट हुआ ॥ ५ ॥ सहसा उस तपस्वी ने यज्ञशाला में प्रवेश कर ज्ञान सम्पन्न मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य से हाथ जोड़कर रामचन्द्र जी के आने का समाचार कहा ॥ ६ ॥ लक्ष्मण के कथनानुसार महर्षि अगस्त्य के उस श्रेष्ठ शिष्य ने महाराज दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण आये हैं, ऐसा कहा ॥ ७ ॥ अपनी धर्म-पत्नी सीता के साथ में आपके दर्शन करने तथा सेवा करने के लिए अरिमर्दन रामचन्द्र और लक्ष्मण इस आश्रम में आए हुए हैं ॥ ८ ॥ इस विषय में जो वक्तव्य हो उसकी आज्ञा दीजिए। अपने शिष्य से यह बात सुन कर कि रामचन्द्र अपनी धर्मपत्नी सीता तथा छोटे भाई लक्ष्मण के साथ आये हुए हैं, मुनि यह वचन बोले—यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि चिर काल के पश्चात् राम लक्ष्मण मुझे देखने के लिये आये हुए हैं ॥९, १०॥ इस आश्रम में चिरकाल से मैं भी रामचन्द्र जी का आगमन चाहता था। जाओ—सत्कार पूर्वक स्त्री सहित रामचन्द्र और लक्ष्मण को ॥११॥ मेरे पास लिवा लाओ, उन्हें तुम क्यों नहीं लिवा लाये, धर्मज्ञ उस महात्मा मुनि के ऐसा कहने पर ॥१२॥ उस शिष्य ने बद्धाञ्जलि, उस ऋषि को प्रणाम करके 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा। पश्चात् शीघ्रता पूर्वक उस शिष्य ने यज्ञशाला से निकल कर लक्ष्मण से यह निवेदन किया ॥ १३ ॥ वह रामचन्द्र कहाँ हैं ? वे मुनि के दर्शन के लिए यज्ञशाला में प्रवेश करें। उस शिष्य के ऐसा कहने पर उनके साथ लक्ष्मण ने आश्रम में प्रवेश कर ॥ १४ ॥ रामचन्द्र तथा जानकी को दिखलाया। उस शिष्य ने नम्रता पूर्वक रामचन्द्र से अगस्त्य के संदेश को कहा ॥ १५ ॥ सत्कार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

प्रावेशयद्यथान्यायं सत्काराहँ सुसत्कृतम् । प्रविवेश ततो रामः सीतया सहलक्ष्मणः ॥१६॥
प्रशान्तहरिणाकीर्णमाश्रमं ह्यवलोकयन् । [स तत्र ब्रह्मणः स्थानमग्नेः स्थानं तथैव च ॥१७॥
विष्णोः स्थानं महेन्द्रस्य स्थानं चैव विवस्वतः । सोमस्थानं भगस्थानं स्थानं कौवेरमेव च ॥१८॥
धातुर्विधातुः स्थाने च वायोः स्थानं तथैव च । नागराजस्य च स्थानमनन्तस्य महात्मनः ॥१९॥
स्थानं तथैव गायत्र्या वसूनां स्थानमेव च । स्थानम् च पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः ॥२०॥
कार्त्तिकेयस्य च स्थानं धर्मस्थानं च पश्यति ।] ततः शिष्यैः परिवृतो मुनिरप्यभिनिष्पतत् ॥२१॥
तं ददर्शाग्रतो रामो मुनीनां दीप्ततेजसाम् । अब्रवीद्वचनं वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥२२॥
एष लक्ष्मण निष्क्रामत्यगस्त्यो भगवानृषिः । औदार्येणावगच्छामि निधानं तपसामिमम् ॥२३॥
एवमुक्त्वा महाबाहुरगस्त्यं सूर्यवर्चसम् । जग्राह परमप्रीतस्तस्य पादौ परंतपः ॥२४॥
अभिवाद्य तु धर्मात्मा तस्थौ रामः कृताञ्जलिः । सीतया सह वैदेह्या तदा रामः सलक्ष्मणः ॥२५॥
प्रतिजग्राह काकुत्स्थमर्चयित्वासनोदकैः । कुशलप्रश्नमुक्त्वा च ह्यास्यतामिति चाब्रवीत् ॥२६॥
अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथीन् प्रतिपूज्य च । वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषां भोजनं ददौ ॥२७॥
प्रथमं चोपविश्याथ धर्मज्ञो मुनिपुङ्गवः । उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम् ॥२८॥
अन्यथा खलु काकुत्स्थ तपस्वी समुदाचरन् । दुःसाक्षीव परे लोके स्वानि मांसानि भक्षयेत् ॥२९॥
राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः । पूजनीयश्च मान्यश्च भवान् प्राप्तः प्रियातिथिः ॥३०॥

करने योग्य उन लोगों का सत्कार करके वह शिष्य वहाँ ले गया, पश्चात् सीता के साथ राम और लक्ष्मण ने उस यज्ञशाला में प्रवेश किया ॥ १६ ॥ शान्त हिरणों से परिपूर्ण उस आश्रम को देखते हुए उस रामचन्द्र ने वहाँ पर ब्रह्मा के स्थान, अग्नि के स्थान, विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, भग देवता, कुवेर, धाता, विधाता, वायु, वरुण, गायत्री, तथा आठ वसु, नागराज, गरुड़, कार्तिकेय तथा धर्म के स्थान देखे। पश्चात् अपने शिष्यों के सहित मुनि भी वहाँ आगये ॥ १७-२१ ॥ * रामचन्द्र ने मुनियों में अग्रणी तेजस्वी अगस्त्य ऋषि को देखा, पश्चात् लक्ष्मीवर्धन अपने भाई लक्ष्मण से रामचन्द्रजी यह बोले ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! भगवान् अगस्त्य ऋषि आश्रम से निकल कर आ रहे हैं। ये तपस्याओं के कोष हैं तथा इनकी उदारता को मैं अच्छी तरह जानता हूं ॥ २३ ॥ इतनी बातें कह कर सूर्य के समान तेजस्वी उस अगस्त्य ऋषि के चरणों को छू कर विशाल भुजा वाले रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ने उनको प्रणाम किया ॥ २४ ॥ वैदेही सीता तथा लक्ष्मण के साथ में धर्मात्मा रामचन्द्र जी ऋषि को प्रणाम कर करबद्ध वहीं खड़े हो गये ॥ २५ ॥ ऋषि ने उनका स्वागत करके तथा आसन जलादि के द्वारा सत्कार करके उनसे कुशल वार्ता पूछी। पश्चात् आप बैठ जाइये, ऐसा कहा ॥ २६ ॥ महर्षि अगस्त्य ने हवन करके अर्घ्य आदि के द्वारा अतिथियों का सत्कार करके वानप्रस्थ धर्म के अनुकूल उन लोगों को भोजन दिया ॥ २७ ॥ मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा अगस्त्य प्रथम स्वयं आसन पर बैठ कर हाथ जोड़े हुए तथा आसन पर बैठे हुए धर्मात्मा रामचन्द्र से यह वचन बोले ॥ २८ ॥ हे रामचन्द्र जो तपस्वी धर्मशास्त्रादि के विरुद्ध आचरण करता है वह परलोक में मिथ्यावादी साक्षी के समान अपने ही मांसों को खाता है ॥ २९ ॥ इस विश्व के राजा, धर्मात्मा, महारथी, पूज्य, तथा मान्य आप मेरे प्रिय अतिथि के रूप में आये हैं ॥ ३० ॥ ऐसा कह कर फल, मूल, पुष्प, के

*उपर्युक्त श्लोकों में जो भाग दिखलाये गये हैं वह पुराणों के नवग्रह, दिक्पालादिकों के वर्णन होने से यहाँ अप्रासंगिक है तथा अवैदिक हैं। इसलिए इनको प्रक्षिप्त माना है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैरन्यैश्च राघवम् । पूजयित्वा यथाकामं पुनरेव ततोऽब्रवीत् ॥३१॥
इदं दिव्यं महच्चापं हेमरत्नविभूषितम् । वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा ॥३२॥
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः । दत्तो मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षयसायकौ ॥३३॥
संपूर्णौ निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः । महारजतकोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः ॥३४॥
[अनेन धनुषा राम हत्वा संख्ये महासुरान् । आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम् ॥३५॥]
तद्धनुस्तौ च तूणीरौ शरं खड्गं च मानद । जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा ॥३६॥
एवमुक्त्वा महातेजाः समस्तं तद्वरायुधम् । दत्त्वा रामाय भगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत् ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे अगस्त्यदर्शनं नाम द्वादशः सर्गः ॥१२॥

त्रयोदशः सर्गः

पञ्चवटीगमनम्

राम प्रीतोऽस्मि भद्रं ते परितुष्टोऽस्मि लक्ष्मण । अभिवादयितुं यन्मां संप्राप्तौ सह सीतया ॥१॥

द्वारा, अपनी इच्छा के अनुसार रामचन्द्रजी का सत्कार करके अगस्त्य ऋषि उनसे बोले ॥३१॥ विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित जो स्वर्ण तथा रत्नों से विभूषित हो रहा है, हे नरकेसरी रामचन्द्र ! यह दिव्य तथा विशाल वैष्णव नामक धनुष है ॥ ३२ ॥ सूर्य के समान देदीप्यमान ब्रह्मा का दिया हुआ यह अमोघ बाण तथा कभी भी वाण न समाप्त होने वाली यह तूणी [तरकश] इन्द्र ने मुझे दी है ॥ ३३ ॥ इस तूणी में अग्नि के समान ज्वाला वमन करने वाले तीव्र बाण भरे हुए हैं, स्वर्ण से विभूषित यह तलवार है जिसका कोष (म्यान) भी स्वर्ण निर्मित है ॥ ३४ ॥ हे रामचन्द्र ! पहले संग्राम में इसी धनुष से राक्षसों को मारकर देवताओं की गई हुई देदीप्यमान सम्पत्ति को विष्णु ने प्राप्त किया था ॥३५॥† हे मानार्ह यह धनुष, तूणी, बाण तथा खड्ग विजय के लिए स्वीकार करो जैसे कि इन्द्र वे वज्र को स्वीकार किया था ॥३६॥ ऐसा कह कर समस्त आयुधों को रामचन्द्र को देकर महातेजस्वी अगस्त्य ऋषि पुनः ये वचन रामचन्द्र से बोले ॥ ३७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'अगस्त्य का दर्शन' विषयक बारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१२॥

तेरहवाँ सर्ग

पञ्चवटी में जाना

हे रामचन्द्र ! सीता के साथ आप जो मुझे अभिवादन करने के लिये आये हैं इसलिए मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । हे लक्ष्मण ! मैं तुम्हारे व्यवहारों से सन्तुष्ट हूँ ॥ १ ॥ मार्गजनित श्रम से आप दोनों क्लान्त हो

†यह श्लोक विष्णुपुराण में 'देवासुर संग्राम' के प्रसंग में आया है । विष्णु ने इस धनुष से देवताओं की गई हुई लक्ष्मी को लौटाकर पुनः उनको प्रदान किया है । इस लिए पुराणोक्त होने के कारण यहाँ पर प्रक्षिप्त है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्वश्रमेण वां खेदो बाधते प्रचुरश्रमः । व्यक्तमुत्कण्ठते चापि मैथिली जनकात्मजा ॥२॥
एषा हि सुकुमारी च दुःखैश्च न विमानिता । प्राज्यदोषं वनं प्राप्ता भर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥३॥
यथैषा रमते राम इह सीता तथा कुरु । दुष्करं कृतवत्येषा वने त्वामनुगच्छती ॥४॥
एषा हि प्रकृतिः स्त्रीणामासृष्टे रघुनन्दन । समस्थमनुरज्यन्ति विषमस्थं त्यजन्ति च ॥५॥
शतह्रदानां लोलत्वं शस्त्राणां तीक्ष्णतां तथा । गरुडानिलयः शैघ्र्यमनुगच्छन्ति योषितः ॥६॥
इयं तु भवतो भार्या दोषैरेतैर्विवर्जिता । श्लाघ्या च व्यपदेश्या च यथा देवी ह्यरुन्धती ॥७॥
अलंकृतोऽयं देशश्च यत्र सौमित्रिणा सह । वैदेह्या चानया राम वत्स्यसि त्वमरिंदम ॥८॥
एवमुक्तः स मुनिना राघवः संयताञ्जलिः । उवाच प्रश्रितं वाक्यमृषिं दीप्तमिवानलम् ॥९॥
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगवः । गुणैः सभ्रातृभार्यस्य वरदः परितुष्यति ॥१०॥
किं तु व्यादिश मे देशं सौदकं बहुकाननम् । यत्राश्रमपदं कृत्वा वसेयं निरतः सुखम् ॥११॥
ततोऽब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः श्रुत्वा रामस्य तद्वचः । ध्यात्वा मुहूर्तं धर्मात्मा धीरो धीरतरं वचः ॥१२॥
इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः । देशो बहुमृगः श्रीमान् पञ्चवट्यभिविश्रुतः ॥१३॥
तत्र गत्वाश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह । रंस्यसे त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालयन् ॥१४॥
विदितो ह्येष वृत्तान्तो मम सर्वस्तवानघ । तपसश्च प्रभावेण स्नेहाद्दशरथस्य च ॥१५॥

रहे हैं, जनक की राजकुमारी मैथिली मार्गजनित क्लान्ति से विश्राम पाने के लिए स्पष्ट ही उत्कण्ठित हो रही है ॥ २ ॥ यह सीता अत्यन्त सुकुमारी है, प्रवास के खेदों से अत्यन्त दुःखी हो रही है। यह केवल पतिस्नेह से प्रेरित होकर ही इस कष्टप्रद दोषयुक्त वन में आई हुई है ॥ ३ ॥ हे रामचन्द्र ! जिस प्रकार सीता का मन यहाँ लगे वैसा आचरण करो। आपके साथ वन में आकर जानकी ने बहुत क्लिष्ट कार्य किया है ॥ ४ ॥ हे रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ! आरंभ सृष्टि से लेकर स्त्रियों का यह स्वभाव चला आया है, कि सुख-वैभव में यह पतियों का अनुगमन करती हैं तथा विषम काल में यह उनको छोड़ देती हैं ॥५॥ विद्युत् के समान चंचलता, शस्त्रों के समान तीक्ष्णता, गरुड़ पक्षी तथा वायु के समान शीघ्र गामिता प्रायः स्त्रियों में होती है ॥ ६ ॥ किन्तु आपकी यह पतिव्रता पत्नी सीता इन दोषों से रहित है, यह अत्यन्त प्रशंसनीय तथा मूर्धन्य स्त्रियों में उसी प्रकार गणना करने योग्य है जैसे दिव्य पतिव्रताओं में देवी अरुन्धती ॥ ७ ॥ हे अजातशत्रु रामचन्द्र ! अपनी भार्या सीता तथा अपने भाई लक्ष्मण के साथ में आपने इस आश्रम को सुभूषित किया है, इसलिए आपका यहीं निवास होगा ॥ ८ ॥ महर्षि अगस्त्य के ऐसा कहने पर करबद्ध विनयपूर्वक श्रीरामचन्द्र जी अग्नि के समान जाज्वल्यमान तेजवाले उस ऋषि से यह बोले ॥ ९ ॥ मैं धन्य हूँ और आपका अत्यन्त ही अनुगृहीत हूँ जो मुनियों में श्रेष्ठ तथा महान् गुरु आप, मेरे भाई और मेरी भार्या तथा मेरे गुणों से सन्तुष्ट हैं ॥१०॥ आप मेरे लिए उस स्थान का निर्देश कीजिये जो वृक्षों से परिपूर्ण दिव्य जलाशय वाला हो। जहाँ पर आश्रम बनाकर मैं सुखपूर्वक रह सकूँ ॥११॥ रामचन्द्र के भाषण को सुनकर मुनिश्रेष्ठ कुछ देर के लिए ध्यानमग्न हो गये, पश्चात् धर्मात्मा ऋषि यह सुवचन बोले ॥१२॥ हे रामचन्द्र ! यहाँ से दो योजन की दूरी पर बहुत मूलफल तथा जलयुक्त मृगों से परिपूर्ण रमणीय पञ्चवटी नाम का स्थान प्रसिद्ध है ॥१३॥ वहाँ पर अपने भाई लक्ष्मण के साथ जाकर आश्रम का निर्माण करो तथा पिता की आज्ञा का पालन करते हुए सुखपूर्वक निवास करो ॥१४॥ तप के प्रभाव से तथा महाराज दशरथ के स्नेह से हे निष्कलंक रामचन्द्र यह आपका सब वृत्तान्त मुझको मालूम हो गया है ॥१५॥ इस तपोवन में मेरे साथ रहने की प्रतिज्ञा करके पुनः मुझसे आज्ञा लेकर अन्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हृदयस्थश्च ते छन्दो विज्ञातस्तपसा मया । इह वासं प्रतिज्ञाय मया सह तपोवने ॥१६॥
अतश्च त्वामहं ब्रूमि गच्छ पञ्चवटीमिति । स हि रम्यो वनोद्देशो मैथिली तत्र रंस्यते ॥१७॥
स देशः श्लाघनीयश्च नातिदूरे च राघव । गोदावर्याः समीपे च मैथिलि तत्र रंस्यते॥१८॥
प्राज्यमूलफलश्चैव नानाद्विजगणायुतः । विविक्तश्च महाबाहो पुण्यो रम्यस्तथैव च ॥१९॥
भवानपि सदारश्च शक्तश्च परिरक्षणे । अपि चात्र वसन् राम तापसान् पालयिष्यसि॥
एतदालक्ष्यते वीर मधूकानां महद्वनम् । उत्तरेणास्य गन्तव्यं न्यग्रोधमभिगच्छता ॥२१॥
ततः स्थलमुपारुह्य पर्वतस्याविदूरतः । ख्यातः पञ्चवटीत्येव नित्यपुष्पितकाननः ॥२२॥
अगस्त्येनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिणा सह । सत्कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं सत्यवादिनम् ॥२३॥
तौ तु तेनाभ्यनुज्ञातौ कृतपादाभिवन्दनौ । तदाश्रमात्पञ्चवटीं जग्मतुः सह सीतया ॥२४॥

गृहीतचापौ तु नराधिपात्मजौ विषक्ततूणौ समरेष्वकातरौ ।
यथोपदिष्टेन पथा महर्षिणा प्रजग्मतुः पञ्चवटीं समाहितौ ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे पञ्चवटीगमनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

स्थान में जो आश्रम बनाना चाहते हो, हृदय में रहनेवाले तुम्हारे अभिप्राय को मैंने तपश्चर्या से जान लिया है ॥१६॥ हे रामचन्द्र ! इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ, तुम पञ्चवटी में जाओ, वह वन का भाग अत्यन्त ही रमणीय है, जानकी का मन वहाँ प्रसन्न रहेगा ॥१७॥ हे रामचन्द्र ! वह स्थान अत्यन्त प्रशंसनीय है और यहाँ से दूर भी नहीं है । गोदावरी के समीप होने से सीता वहाँ पर प्रसन्न रहेगी ॥१८॥ उस स्थान पर फल, मूल का आधिक्य है, नाना प्रकार के पक्षी गण भी वहां निवास करते हैं । हे विशाल भुजावाले रामचन्द्र ! वह स्थान एकान्त रमणीय तथा पवित्र है ॥१९॥ हे रामचन्द्र ! आप सदाचारी तथा अपनी रक्षा करने में समर्थ हैं । वहाँ पर निवास करते हुए आप तपस्वियों की रक्षा अवश्य कर सकेंगे ॥२०॥ हे वीर ! महुओं का यह विशाल वन दिखाई दे रहा है, उस पञ्चवटी को जाते हुए तुम्हें इसके उत्तर से जाना पड़ेगा ॥२१॥ उस स्थान को पार करते ही पर्वत के समीप सदा पुष्पों से भरा हुआ वह प्रसिद्ध पञ्चवटी वन है ॥२२॥ महर्षि अगस्त्य के ऐसा कहने पर अपने भाई लक्ष्मण के साथ में रामचन्द्र ने उस सत्यवादी ऋषि का सत्कार करके उनसे आगे जाने की आज्ञा माँगी ॥२३॥ महर्षि की आज्ञा प्राप्त होने पर उनके चरणों को प्रणाम करके वे दोनों भाई राम-लक्ष्मण सीता के साथ उस पञ्चवटी को चल दिये ॥२४॥ संग्राम में समर-दुर्जय वाणों से परिपूर्ण तरकश धारण करनेवाले धनुर्धारी वे दोनों राजकुमार राम-लक्ष्मण सावधान होकर ऋषि के बताये हुए मार्ग से पञ्चवटी को चल दिये ॥२५॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'पञ्चवटी में जाना' विषयक तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१३॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्दशः सर्गः

जटायुस्संगमः

अथ पञ्चवटीं गच्छन्नन्तरा रघुनन्दनः । आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम् ॥१॥
तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ वटस्थं रामलक्ष्मणौ । मेनाते राक्षसं पक्षिं ब्रुवाणौ को भवानिति ॥२॥
स तौ मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव । उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः॥३॥
स तं पितृसखं बुद्ध्वा पूजयामास राघवः । स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च ॥४॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा कुलमात्मानमेव च । आचचक्षे द्विजस्तस्मै सर्वभूतसमुद्भवम् ॥५॥
[पूर्वकाले महाबाहो ये प्रजापतयोऽभवन् । तान् मे निगदतः सर्वानादितः शृणु राघव ॥६॥
कर्दमः प्रथमस्तेषां विक्रीतस्तदनन्तरः । शेषश्च संश्रयश्चैव बहुपुत्रः प्रतापवान् ॥७॥
स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्च क्रतुश्चैव महाबलः । पुलस्त्यश्चाङ्गिराश्चैव प्रचेताः पुलहस्तथा ॥८॥
दक्षो विवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्च राघव । कश्यपश्च महातेजास्तेषामासीच्च पश्चिमः ॥९॥
प्रजापतेस्तु दक्षस्य बभूवुरिति विश्रुतम् । षष्टिर्दुहितरो राम यशस्विन्यो महायशः ॥१०॥
काश्यपः प्रतिजग्राह तासामष्टौ सुमध्यमाः । अदितिं च दितिं चैव दनुमप्यथ कालिकाम् ॥११॥
ताम्रां क्रोधवशां चैव मनुं चाप्यनलामपि । तास्तु कन्यास्ततः प्रीतः कश्यपः पुनरब्रवीत् ॥१२॥

चौदहवाँ सर्ग

जटायु से मिलना

पञ्चवटी को जाते हुए मध्य में रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ने भीषण पराक्रम वाले विशालकाय गृध्रराज (गृध्रकूट के भूतपूर्व राजा) जटायु को देखा ॥ १ ॥ महाभाग राम और लक्ष्मण वनवासी उस जटायु को देखकर, उसे राक्षसों का पक्ष समर्थन करने वाला राक्षस ही समझे और यह पूछा 'आप कौन हैं' ॥ २ ॥ अपनी मधुर तथा कोमल वाणी से प्रसन्न करता हुआ जटायु बोला—हे वत्स ! मुझे तुम अपने पिता का मित्र समझो ॥ ३ ॥ रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ने अपने पिता का मित्र समझते हुए उनका सत्कार किया। शान्तचित्त होकर उन्हों ने उनका नाम और कुल पूछा ॥ ४ ॥ राम के वचनों को सुन कर उस द्विज जटायु ने अपने कुल का वर्णन किया तथा सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति का वर्णन किया । ५ ॥ हे महाबाहो रामचन्द्र ! पूर्व काल में जितने प्रजापति हो गये हैं, मैं उन सबका आदि से वर्णन करता हूँ, तुम सुनो ॥ ६ ॥ उन सब प्रजापतियों में प्रथम कर्दम पश्चात् विक्रीत, शेष, संश्रय, बलवान् बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, महाबलि क्रतु, पुलस्त्य, अङ्गिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि और हे रामचन्द्र ! उन सब में महातेजस्वी कश्यप अन्तिम हुए ॥ ७-९ ॥ हे रामचन्द्र ! दक्ष प्रजापति की प्रसिद्ध यशस्विनी साठ कन्याएँ उत्पन्न हुईं ॥१०॥ उनमें से सुन्दर आठ कन्याओं का कश्यप ने पाणिग्रहण किया, उनके ये नाम हैं—अदिति, दिति, दनु, कालिका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु तथा अनला । कश्यप उनपर प्रसन्न होते हुए उन कन्याओं से बोले ॥११, १२॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुत्रांस्त्रैलोक्यभर्तॄन् वै जनयिष्यथ मत्समान् । अदितिस्तन्मना राम दितिश्च दनुरेव च ॥१३॥
कालिका च महाबाहो शेषास्त्वमनसोऽभवन् । अदित्यां जज्ञिरे देवास्त्रयस्त्रिंशदरिंदम ॥१४॥
आदित्या वसवो रुद्रा ह्यश्विनौ च परंतप । दितिस्त्वजनयत्पुत्रान् दैत्यांस्तात यशस्विनः ॥१५॥
तेषामियं वसुमती पुरासीत्सवनार्णवा । दनुस्त्वजनयत्पुत्रमश्वग्रीवमरिंदम ॥१६॥
नरकं कालकं चैव कालिकापि व्यजायत । क्रौञ्चीं भासीं तथा श्येनीं धृतराष्ट्रीं तथा शुकीम् ॥१७॥
ताम्रापि सुषुवे कन्याः पञ्चैता लोकविश्रुताः । उलूकाञ्जनयत्क्रौञ्ची भासी भासान् व्यजायत ॥१८॥
श्येनी श्येनांश्च गृध्रांश्च व्यजायत सुतेजसः । धृतराष्ट्री तु हंसांश्च कलहंसांश्च सर्वशः ॥१९॥
चक्रवाकांश्च भद्रं ते विजज्ञे सापि भामिनी । शुकी नतां विजज्ञे तु नताया विनता सुता ॥२०॥
दश क्रोधवशा राम विजज्ञे ह्यात्मसंभवाः । मृगीं च मृगमन्दां च हरिं भद्रमदामपि ॥२१॥
मातङ्गीमपि शार्दूलीं श्वेतां च सुरभिं तथा । सर्वलक्षणसंपन्नां सुरसां कद्रुकामपि ॥२२॥
अपत्यं तु मृगाः सर्वे मृग्या नरवरोत्तम । ऋक्षाश्च मृगमन्दायाः सृमराश्चमरास्तथा ॥२३॥
ततस्त्विरावतीं नाम जज्ञे भद्रमदा सुताम् । तस्यास्त्वैरावतः पुत्रो लोकनाथो महागजः ॥२४॥
हर्याश्च हरयोऽपत्यं वानराश्च तरस्विनः । गोलांगूलांश्च शार्दूली व्याघ्रांश्चाजनयत्सुतान् ॥२५॥
मातङ्गास्त्वथ मातङ्ग्या अपत्यं मनुजर्षभ । दिशागजांश्च काकुत्स्थ श्वेताप्यजनयत्सुतान् ॥२६॥
ततो दुहितरौ राम सुरभिर्द्वे व्यजायत । रोहिणीं नाम भद्रं ते गन्धर्वीं च यशस्विनीम् ॥२७॥
रोहिण्यजनयद्गा वै गन्धर्वी वाजिनः सुतान् । सुरसाजनयन्नागान् राम कद्रूस्तु पन्नगान् ॥२८॥

हे देवियों ! तुम सभी त्रिलोकी को पालन करने वाले मेरे समान पुत्र उत्पन्न करोगी । हे रामचन्द्र ! कश्यप की इस बातों को अदिति, दिति, दनु तथा कालिका ने स्वीकार किया । शेष चार देवियों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया । पश्चात् अदिति के गर्भ से ३३ देवताओं की उत्पत्ति हुई ॥ १३,१४ ॥ हे शत्रुतापी रामचन्द्र ! १२ आदिय, ८ वसु, ११ रुद्र, तथा दो अश्विनि कुमारों को अदिति ने उत्पन्न किया तथा दिति ने यशस्वी दैत्यों को उत्पन्न किया ॥ १५ ॥ वन और पर्वत के सहित यह सम्पूर्ण पृथ्वी उन्हीं के आधीन थी । हे शत्रुनाशक राम ! दनु ने अश्वग्रीव नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥१६ ॥ नरक और कालक नामक दो पुत्र कलिका से भी उत्पन्न हुए और ताम्रा ने क्रौञ्ची, भासी, श्येनी, धृतराष्ट्री, शुकी इन पाँच कन्याओं को उत्पन्न किया । क्रौञ्ची ने उल्लुओं और भासी ने भासों को उत्पन्न किया ॥१७,१८॥ श्येनी ने तेजस्वी गृध्रों तथा श्येनों (बाजों) को उत्पन्न किया, धृतराष्ट्री ने हंस तथा सम्पूर्ण कलहंसों को उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ चक्रवाकों को भी धृतराष्ट्री ने उत्पन्न किया । नता नाम की कन्या को शुकी ने उत्पन्न किया और उसी नता से विनता की उत्पत्ति हुई ॥ २० ॥ क्रोधवशा ने भी मृगी, मृगमन्दा, हरि, भद्रमदा, मातङ्गी, शार्दूली, श्वेता, सुरभि, सुरसा, तथा कद्रु इन सर्वलक्षण सम्पन्न दस कन्याओं को उत्पन्न किया ॥ २१, २२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! मृगी ने सम्पूर्ण मृगों को उत्पन्न किया । ऋक्ष, वन-गौ, तथा चंवरी-गौ को मृगामन्दा ने उत्पन्न किया ॥ २३ ॥ पश्चात् इरावती नामक कन्या को भद्रा ने उत्पन्न किया और उसी इरावती से ऐरावत नामक प्रसिद्ध महागज उत्पन्न हुआ ॥२४॥ हरि ने सिंह को तथा वनवासी वानरों को उत्पन्न किया जिनकी पूंछें गौओं के समान थीं । शार्दूली ने व्याघ्रा को उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! मातङ्गी ने गजों को उत्पन्न किया और श्वेता ने दिग्गजों को उत्पन्न किया ॥२६॥ हे रामचन्द्र ! रोहिणी और गन्धर्वी दो कन्याओं को सुरभि ने उत्पन्न किया ॥ २७ ॥ गौओं को रोहिणी ने तथा अश्वों को गन्धर्वी ने उत्पन्न किया, सुरसा ने सर्पों को तथा कद्रु ने फणधर सर्पों को उत्पन्न किया ॥ २८ ॥ हे नरश्रेष्ठ !

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुर्मनुष्यान्जनयद्राम पुत्रान् यशस्विनः । ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्याञ्शूद्रांश्च मनुजर्षभ ॥२९॥
सर्वान् पुण्यफलान् वृक्षाननलापि व्यजायत । विनता च शुकी पौत्री कद्रूश्च सुरसा स्वसा ॥३०॥
कद्रूर्नागं सहस्रास्यं विजज्ञे धरणीधरम् । द्वौ पुत्रौ विनतायास्तु गरुडोऽरुण एव च ॥३१॥
तस्माज्जातोऽहमरुणात्संपातिस्तु ममाग्रजः । जटायुरिति मां विद्धि श्येनीपुत्रमरिंदम ॥३२॥]
सोऽहं वाससहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि । सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे ॥३३॥

जटायुषं तं प्रतिपूज्य राघवो मुदा परिष्वज्य च संनतोऽभवत् ।
पितुर्हि शुश्राव सखित्वमात्मवान्जटायुषा संकथितं पुनः पुनः ॥३४॥
स तत्र सीतां परिदाय मैथिलीं सहैव तेनातिबलेन पक्षिणा ।
जगाम तां पञ्चवटीं सलक्ष्मणो रिपून् दिधक्षञ्शलभानिवानलः ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे जटायुस्सङ्गमो नाम चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥

कश्यप से मनु देवी ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन मनुष्यों को उत्पन्न किया ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण फल वाले वृक्षों को अनला ने उत्पन्न किया, सुरसा और कद्रु इन दो कन्याओं को शुकी की पौत्री विनता ने उत्पन्न किया ॥ ३० ॥ कद्रु ने हजारों नागों तथा पर्वतों को उत्पन्न किया, गरुड़ तथा अरुण इन दो पुत्रों को विनता ने उत्पन्न किया ॥ ३१ ॥ उसी अरुण से मेरी और मेरे भाई सम्पाति की उत्पत्ति हुई, मेरा नाम जटायु है और मुझे श्येनी का वंशज समझो ॥३२॥❀ हे रामचन्द्र जैसा आप चाहते हैं, आपके यहाँ निवास में मैं आपकी सहायता करूँगा । आप तथा लक्ष्मण की अनुपस्थिति में मैं सीता की रक्षा करूँगा ॥ ३३ ॥ श्री रामचन्द्र ने नम्र होकर प्रसन्नता पूर्वक जटायु का स्वागत तथा आलिंगन किया । जटायु के द्वारा बार-बार कही हुई पिता की मित्रता को जितेन्द्रिय रामचन्द्र ने सुना ॥ ३४ ॥ मिथिलेशकुमारी सीता को जटायु की रक्षा में अर्पण कर अतिबलवान् स्वपक्षपोषक उसी जटायु के साथ शत्रुओं को भस्मीभूत करते हुए तथा वनों की रक्षा करते हुए लक्ष्मण को साथ लेकर उस पंचवटी को गये ॥ ३५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'जटायु से मिलन' विषयक चौदहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१४॥

❀ अरण्यकाण्ड के इस चौदहवें सर्ग में श्री रामचन्द्रजी के प्रश्न पूछने पर कि 'आप अपना और अपने कुल का परिचय दीजिए, इसके उत्तर में जटायु ने अपना पूर्ण परिचय सर्ग के आरंभ में ही दे दिया है । चौदहवें सर्ग के पाँचवें श्लोक में "कुलमात्मानमेव च" 'आचचक्षे द्विजस्तस्मै' अर्थात् जटायु ने अपने कुल का परचिय 'आचचक्षे' अर्थात् बता दिया । "सर्वभूतसमुद्भवम्" शब्द आया है । अर्थात् सम्पूर्ण प्राणिमात्र की उत्पत्ति का वर्णन, जब रामने जटायु से अपना परिचय पूछा है जिसका उत्तर जटायु ने दे दिया, तब रामचन्द्रजी के बिना पूछे ही अप्रासङ्गिक, प्रकरणविरुद्ध तथा वेद शास्त्र, विज्ञान विरुद्ध यह गपोड़ा इस सर्ग में क्यों वर्णित किया गया । अतः अप्रासङ्गिक, प्रकरणविरुद्ध, विज्ञान विरुद्ध होने के कारण इस सर्ग में केवल आठ श्लोकों को छोड़कर शेष स भी प्रक्षिप्त हैं । इस प्रकार का वर्णन पुराणों में प्रायः आया है वही पौराणिक आख्यान अप्रासङ्गिक रूप में यहाँ दे दिया गया है, जिसके वर्णन की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं थी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्चदशः सर्गः

पञ्चवटीपर्णशाला

ततः पञ्चवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायताम् । उवाच भ्रातरं रामः सौमित्रिं दीप्ततेजसम् ॥१॥
आगताः स्म यथोद्दिष्टं यं देशं मुनिरब्रवीत् । अयं पञ्चवटीदेशः सौम्य पुष्पितपादपः ॥२॥
सर्वतश्चार्यतां दृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि । आश्रमः कतरस्मिन्नो देशे भवति संमतः ॥३॥
रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण । तादृशो दृश्यतां देशः संनिकृष्टजलाशयः ॥४॥
वनरामण्यकं यत्र जलरामण्यकं तथा । संनिकृष्टं च यत्र स्यात्समित्पुष्पकुशोदकम् ॥५॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः । सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥६॥
परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते । स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद ॥७॥
सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महात्मनः । विमृशन् रोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम् ॥८॥
स तं रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि । हस्तौ गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥९॥
अयं देशः समः श्रीमान् पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः । इहाश्रमपदं सौम्य यथावत्कर्तुमर्हसि ॥१०॥
इयमादित्यसंकाशैः पद्मैः सुरभिगन्धिभिः । अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनी पद्मशोभिता ॥११॥
यथाख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना । इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥१२॥

पन्द्रहवाँ सर्ग

पञ्चवटी में पर्णकुटी

सर्प और वन जन्तुओं से भरे हुए उस पञ्चवटी में जाकर श्री रामचन्द्र अपने तेजस्वी भाई लक्ष्मण से बोले ॥ १ ॥ जिस देश का संकेत मुनि ने किया था, हम लोग उस स्थान पर आ गये हैं। सौम्य लक्ष्मण! फूलों से भरा हुआ यही पञ्चवटी देश है ॥ २ ॥ चारों तरफ तुम दृष्टि को दौडाओ, क्योंकि तुम वन की जानकारी में कुशल हो। हम लोग अपना आश्रम किस देश में बनायें जो सबको प्रिय हो ॥ ३ ॥ जहाँ पर वैदेही सीता का मन लग जाये और मेरा तथा तुम्हारा भी मन जहाँ लग सके। ऐसे स्थान को तुम देखो जहाँ जलाशय भी समीप हो ॥ ४ ॥ वन तथा जल की जहाँ रमणीयता हो तथा इन्धन, फूल, कुश और जल समीप हो ॥५॥ रामचन्द्र जी के ऐसा कहने पर लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर जानकी के समक्ष श्री रामचन्द्रजी को यह उत्तर दिया ॥६॥ हे आर्य रामचन्द्र ! मैं आपका सैकड़ों वर्ष के लिए सेवक हूं। आपको जो स्थान अच्छा लगे वहीं पर मैं आश्रम का निर्माण करूँगा। आप मुझे आज्ञा दीजिए ॥७॥ प्रतिभावान् रामचन्द्र लक्ष्मण की इन बातों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए, अन्वेषण करने के पश्चात् एक रमणीय तथा सर्वगुण सम्पन्न स्थान को देखा ॥ ८ ॥ आश्रम के योग्य रमणीय स्थान को प्राप्त कर रामचन्द्रजी अपने हाथों से लक्ष्मण का हाथ पकड़ कर यह बोले ॥ ९ ॥ यह भूमि का समतल भाग है, फूल वाले वृक्षों से घिरा हुआ तथा रमणीय है, यहाँ पर तुम रमणीय आश्रम का निर्माण कर सकते हो ॥ १० ॥ सूर्य के सदृश खिले हुये कमलों की जहाँ सुगन्ध आ रही है, ऐसे कमलों से परिपूर्ण पुष्करिणी भी समीप है ॥११॥ ब्रह्मनिष्ठ महर्षि अगस्त्य ने जिस गोदावरी नदी का सङ्केत किया था, वह पुष्पित वृक्षों से घिरी हुई रमणीय गोदावरी यही है ॥१२॥ हंस, जल-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता । नातिदूरे न चासन्ने मृगयूथनिपीडिता ॥१३॥
मयूरनादिता रम्याः प्रांशवो बहुकन्दराः । दृश्यन्ते गिरयः सौम्य फुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥१४॥
सौवर्णै राजतैस्ताम्रैर्देशे देशे च धातुभिः । गवाक्षिता इवाभान्ति गजाः परमभक्तिभिः ॥१५॥
सालैस्तालैस्तमालैश्च खर्जूरपनसाम्रकैः । नीवारैस्तिनिशैश्चैव पुंनागैश्चोपशोभिताः ॥१६॥
चूतैरशोकैस्तिलकैश्चम्पकैः केतकैरपि । पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तरुभिरावृताः ॥१७॥
चन्दनैः स्यन्दनैर्नीपैः पनसैर्लिकुचैरपि । धवाश्वकर्णखदिरैः शमीकिंशुकपाटलैः ॥१८॥
इदं पुण्यमिदं मेध्यमिदं बहुमृगद्विजम् । इह वत्स्याम सौमित्रे सार्धमेतेन पक्षिणा ॥१९॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा । अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः ॥२०॥
पर्णशालां सुविपुलां तत्र सङ्घातमृत्तिकाम् । सुस्तम्भां मस्करैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम् ॥२१॥
शमीशाखाभिरास्तीर्णां दृढपाशावपाशिताम् । कुशकाशशरैः पर्णैः सुपरिच्छादितां तथा ॥२२॥
समीकृततलां रम्यां चकार लघुविक्रमः । निवासं राघवस्यार्थे प्रेक्षणीयमनुत्तमम् ॥२३॥
स गत्वा लक्ष्मणः श्रीमान्नदीं गोदावरीं तदा । स्नात्वा पद्मानि चादाय सफलः पुनरागतः ॥२४॥
ततः पुष्पबलिं कृत्वा शान्तिं च स यथाविधि । दर्शयामास रामाय तदाश्रमपदं कृतम् ॥२५॥
स तं दृष्ट्वा कृतं सौम्यमाश्रमं सह सीतया । राघवः पर्णशालायां हर्षमाहारयद्भृशम् ॥२६॥

मुर्गों से परिपूर्ण तथा चक्रवाक पक्षियों से यह नदी सुशोभित हो रही है। मृगों के झुण्ड भी समीप ही बैठे दिखाई दे रहे हैं ॥ १३ ॥ मोर जहाँ बोल रहे हैं, ऐसे विशाल कन्दराओं से परिपूर्ण तथा फूलवाले रमणीय वृक्षों से घिरे पर्वत भी दिखाई दे रहे हैं ॥१४॥ सोने, चाँदी तथा ताम्र धातुओं से परिपूर्ण यह पर्वत प्रदेश रेखाओं से भूषित गज तथा खिड़कियों की तरह प्रकाशित हो रहे हैं ॥ १५ ॥ साल, ताड़, तमाल, खजूर, कटहल, नीवार, तिनिश तथा सुपारी आदि के वृक्षों से यह पर्वत सुशोभित हो रहा है ॥ १६ ॥ आम्र, अशोक, तिलक, केतकी (केवड़ा), चम्पक तथा फूल वाली पुष्पित लताओं से यह पर्वत ढका हुआ है ॥१७॥ तिनिश, चन्दन, कदम्ब, कटहल, बड़हर, अर्जुन वृक्ष, अश्वकर्ण, खैर, शमी, पलाश, पाटल ये वृक्ष भी इस पर्वत पर दिखाई दे रहे हैं ॥ १८ ॥ वन्य पशु और पक्षियों से परिपूर्ण यह वन अत्यन्त पवित्र तथा रमणीय है। हे लक्ष्मण ! यहाँ पर हम लोग जटायु के साथ निवास कर सकते हैं ॥ १९ ॥ श्री रामचन्द्रजी के ऐसा कहने पर महाबली शत्रुञ्जय लक्ष्मण ने बहुत शीघ्र ही वहाँ पर आश्रम निर्माण करना प्रारंभ कर दिया ॥ २० ॥ मृत्तिका (मिट्टी) की जिसमें दीवाल है तथा जिसमें लम्बे-लम्बे बाँसों के खम्भे लगे हुए हैं, ऐसी विस्तृत तथा शोभायमान पर्णशाला बनाई ॥ २१ ॥ शमी वृक्ष की डालियों से छत परिपूर्ण हो रही हैं, जो दृढ़ बन्धनों से बांधी गयी है। कुश, काश, सरकण्डे तथा पत्तों से जो अच्छी तरह आच्छादित कर दी गई है ॥ २२ ॥ जिसके नीचे की भूमि बराबर तथा रमणीय बना दी गई है, ऐसा देखने में सुन्दर निवास स्थान महाबली लक्ष्मण ने रामचन्द्र के लिए बनाया ॥ २३ ॥ पश्चात् लक्ष्मण ने गोदावरी नदी में स्नान किया तथा कमल के फूल एवं फलों को लेकर शीघ्र लौट आये ॥ २४ ॥ पश्चात् लक्ष्मण ने फूलों के द्वारा शान्तिमय पर्णकुटी को अलंकृत किया और उस बनाये हुए रमीणय आश्रम को लक्ष्मण ने श्री रामचन्द्र जी को दिखलाया ॥ २५ ॥ जानकी के साथ रामचन्द्र ने उस रमणीय पर्णशाला को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की ॥ २६ ॥ प्रसन्न होते हुए श्री रामचन्द्र ने अपने भ्राता लक्ष्मण का विशाल भुजाओं से प्रेम पूर्वक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुसंहृष्टः परिष्वज्य बाहुभ्यां लक्ष्मणं तदा । अतिस्निग्धं च गाढं च वचनं चेदमब्रवीत् ॥२७॥
प्रीतोऽस्मि ते महत्कर्म त्वया कृतमिदं प्रभो । प्रदेयो यन्निमित्तं ते परिष्वङ्गो मया कृतः ॥२८॥
भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण । त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम ॥२९॥
एवं लक्ष्मणमुक्त्वा तु राघवो लक्ष्मिवर्धनम् । तस्मिन् देशे बहुफले न्यवसत्सुसुखं वशी ॥३०॥
कंचित्कालं स धर्मात्मा सीतया लक्ष्मणेन च । अन्वास्यमानो न्यवसत्स्वर्गलोके यथामरः ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे पञ्चवटीपर्णशाला नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

हेमन्तवर्णनम्

वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः । शरद्व्यपाये हेमन्त ऋतुरिष्टः प्रवर्तते ॥ १ ॥
स कदाचित्प्रभातायां शर्वर्यां रघुनन्दनः । प्रययावभिषेकार्थं रम्यां गोदावरीं नदीम् ॥ २ ॥

आलिङ्गन किया और वे यह वचन बोले ॥ २७ ॥ हे लक्ष्मण ! मैं तुम्हारे इस कार्य से अत्यन्त प्रसन्न हूँ तुमने बहुत अच्छा कार्य किया है, किन्तु इस कार्य के लिए पारितोषिक रूप कोई वस्तु न होने से ही मैंने तुम्हारा यह प्रेम पूर्वक आलिंगन किया है ॥२८॥ हे लक्ष्मण । तुम्हारे जैसे भाव के जानने वाले कृतोपकारी धर्मात्मा बन्धु को प्राप्त कर मुझे वह आनन्द प्राप्त हुआ है कि जिसके समझ उस आनन्द देने वाले पिता को ही मैं भूल गया हूं ॥ २९ ॥ लक्ष्मीवर्धन रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण से ऐसा कह कर बहुत फल फूल वाले उस देश में सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥ ३० ॥ इस प्रकार कुछ समय पर्यन्त सीता और लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र ने वहाँ उसी प्रकार निवास किया जैसे देव लोग सुख शान्तमय वातावरण में निवास करते हैं ॥ ३१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'पञ्चवटी में पर्णकुटी' विषयक पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१५ ॥

सोलहवाँ सर्ग

सर्दी का वर्णन

इस प्रकार सुखपूर्वक रामचन्द्र जी के निवास करते हुए शरद् ऋतु के बीत जाने पर सर्वजनप्रिय हेमन्त ऋतु का प्रारम्भ हुआ ॥ १ ॥ रात्रि के समाप्त हो जाने पर एक दिन रामचन्द्र जी स्नान करने के लिए रमणीय गोदावरी नदी पर गये ॥ २ ॥ विनयी तथा पराक्रमी लक्ष्मण हाथ में कलश को लेकर सीता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रह्वः कलशहस्तस्तं सीतया सह वीर्यवान् । पृष्ठतोऽनुव्रजन् भ्राता सौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥
अयं स कालः संप्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद । अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः ॥ ४ ॥
नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यशालिनी । जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः ॥ ५ ॥
नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्य पितृदेवताः । कृताग्रयणकाः काले सन्तो विगतकल्मषाः ॥ ६ ॥
प्राज्यकामा जनपदाः संपन्नतरगोरसाः । विचरन्ति महीपाला यात्रास्था विजीगीषवः ॥ ७ ॥
सेवमाने दृढं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम् । विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक्प्रकाशते ॥ ८ ॥
प्रकृत्या हिमकोशाढ्यो दूरसूर्यश्च साम्प्रतम् । यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान् हिमवान् गिरिः ॥ ९ ॥
अत्यन्तसुखसंचारा मध्याह्ने स्पर्शतः सुखाः । दिवसा सुभगादित्याश्छायाकलिलदुर्भगाः ॥१०॥
मृदुसूर्याः सनीहाराः पटुशीताः समारुताः । शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति साम्प्रतम्॥११॥
निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारुणाः । शीता वृद्धतरायामास्त्रियामा यान्ति साम्प्रतम् ॥१२॥
रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारावृतमण्डलः । निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥१३॥
ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते । सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न तु शोभते ॥१४॥
प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च साम्प्रतम् । प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः ॥१५॥

के साथ राम के पीछे जाते हुए यह वचन बोले ॥ ३ ॥ हे मधुरभाषी रामचन्द्र ? सौभाग्य से यह वह समय प्राप्त हो गया है जो आप को अतिप्रिय है। इस रमणीय समय से यह संवत्सर अलङ्कृत के समान मालूम पड़ रहा है ॥ ४ ॥ इस ऋतु में शीत से लोगों का शरीर रूक्ष हो जाता है, पृथिवी हरी भरी हो जाती है, जल के अत्यन्त शीत होने के कारण उसका उपयोग अल्प हो जीता है तथा अग्नि को सभी लोग पसन्द करते है ॥ ५ ॥ नवसस्येष्टि यज्ञ के द्वारा देव (विद्वान्) पितृ (सम्बन्धी) लोगों का यथावत् सम्मान करके दीक्षित गृहस्थ लोग पाप रहित होते हैं, ॥ ६ ॥ जनपद के सभी लोगों की कामनायें इस ऋतु में पूरी हो जाती हैं और दुग्धादि रसों से यही समय परिपूर्ण रहता है। प्रजा रक्षार्थ विजय करने वाले राजाओं के यात्रा का भी यय समय होता है ॥ ७ ॥ इस समय सूर्य दक्षिणायन को प्राप्त हो जाता है, इसलिए तिलक शृङ्गार हीन स्त्री की तरह उत्तर दिशा शोभा रहित हो जाती है ॥ ८ ॥ स्वभाव से हिम का कोशागार हिमवान् सूर्य के दूर हो जाने पर अपने यथार्थ नाम को अभिव्यक्त करता है। अर्थात् हिमालय पूर्ण हिम मण्डित हो जाता है ॥ ९ ॥ मध्याह्न में भी सूर्य किरणों के स्पर्श होते हुए लोग सुख पूर्वक घूम सकते हैं। इन दिनों में सूर्य की किरणें अति सुखावह मालूम पड़तीं है, छाया और जल इस समय अच्छे नहीं लगते ॥ १० ॥ सूर्य की किरणें शैत्य पूर्ण होने से सहन करने योग्य हो जाती हैं, शीत का वेग अत्यन्त बढ़ गया है, इसलिए शीत के अधिक हो जाने के कारण यह वन शून्य हो गया है तथा शोभा को नहीं प्राप्त हो रहा है ॥ ११ ॥ आकाश में लोगों ने सोना बन्द कर दिया है, पुष्य नक्षत्र के द्वारा ही रात्रि में काल का ज्ञान होता है, हिम के कारण रात्रि कुहासा पूर्ण होती है, शीत के कारण ही रात्रि भी लम्बी हो गयी है, इत्यादि बातों से पूर्ण रात्रि इस समय व्यतीत हो रही है ॥ १२ ॥ सूर्य का सम्पर्क लोगों को अच्छा लगता है, कुहासों से धूसरित होने के कारण श्वास से मलिन दर्पण की तरह चन्द्रमा इस समय प्रकाशित नहीं हो रहा है ॥ १३ ॥ तुषार से मलिन पूर्णमासी की धवल ज्योत्स्ना रात्रि आतपक्लान्त सीता की तरह शोभा को नहीं प्राप्त हो रही है ॥ १४ ॥ स्वभाव से शीतल पश्चिम का वायु इस समय हिमकणों से परिपूर्ण होने के कारण और भी द्विगुण शीतल हो गया है ॥ १५ ॥ जहाँ पर क्रौञ्च और सारस पक्षी बोल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च । शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नदद्भिः क्रौञ्चसारसैः ॥१६॥
खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः । शोभन्ते किंचिदानम्राः शालयः कनकप्रभाः ॥१७॥
मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः । दूरमभ्युदितः सूर्यः शशाङ्क इव लक्ष्यते ॥१८॥
अग्राह्यवीर्यः पूर्वाह्णे मध्याह्ने स्पर्शतः सुखः । संरक्तः किंचिदापाण्डुरातपः शोभते क्षितौ ॥१९॥
अवश्यायनिपातेन किंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला । वनानां शोभते भूमिर्निर्विष्टतरुणातपा ॥२०॥
स्पृशंस्तु विपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम् । अत्यन्ततृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ॥२१॥
एते हि समुपासीना विहगा जलचारिणः । नावगाहन्ति सलिलमप्रगल्भा इवाहवम् ॥२२॥
अवश्यायतमोनद्धा नीहारतमसा वृताः । प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजयः ॥२३॥
बाष्पसंछन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसाः । हिमार्द्रवालुकैस्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम् ॥२४॥
तुषारपतनाच्चैव मृदुत्वाद्भास्करस्य च । शैत्यादगाग्रस्थमपि प्रायेण रसवज्जलम् ॥२५॥
जराजर्जरितैः पत्रैः शीर्णकेसरकर्णिकैः । नालशेषैर्हिमध्वस्तैर्न भान्ति कमलाकराः ॥२६॥
अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्रः काले दुःखसमन्वितः । तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे ॥२७॥
त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान् बहून् । तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले ॥२८॥

रहे हैं, ऐसे जौ गेहूँ के खेतवाले वन हिमाच्छादित हो रहे हैं, सूर्य के उदय होने पर वे जौ-गेहूँ के खेत अत्यन्त ही शोभित हो जाते हैं ॥ १६ ॥ खजूर के फूल के समान काञ्चन कान्ति युक्त कुछ झुकी हुई धान की बालें शोभा को प्राप्त हो रही हैं ॥ १७ ॥ कुहरे से आच्छादित फैलती हुई सूर्य की किरणों से आकाश में सूर्य के अधिक ऊपर हो जाने पर भी वह चन्द्रमा के समान दिखलाई दे रहा है ॥ १८ ॥ प्रातःकाल जिसकी किरणें स्पर्श होने पर भी प्रतीत नहीं हो रही हैं, मध्याह्न में जिसकी किरणें सुखावह हो रही हैं, इस प्रकार सूर्य कुछ धूसर वर्ण का प्रतीत होता हुआ पृथिवी पर शोभायमान हो रहा है ॥ १९ ॥ ओस के कणों के गिरने से जहाँ की घासें कुछ गीली हो गयी हैं, ऐसी वन की भूमि सूर्य के तरुण प्रकाश पड़ने से शोभा को प्राप्त हो रही है ॥ २० ॥ जल के अत्यन्त शीतल होने से जल में क्रीडा करने वाला भी यह जंगली हाथी अत्यन्त प्यासा होने पर भी पानी से अपनी सूँड़ को हटा लेता है ॥ २१ ॥ जल में विहार करने वाले ये पक्षी गण जल के पास बैठे हैं, किन्तु उसमें प्रवेश नहीं कर रहे हैं जैसे कोई भीरु सैनिक संग्राम में प्रवेश नहीं करता ॥ २२ ॥ ओस तथा अन्धकार से यह वन की पंक्ति रात्रि में और घोर कुहासे के अन्धकार से आवृत प्रातःकाल में भी, पुष्प रहित निद्रित रूप में प्रतीत होती है ॥ २३ ॥ कुहरों से जिनका जल आच्छादित हो गया है, केवल सारस पक्षियों के शब्द से ही जिनका ज्ञान हो रहा है तथा जिनके किनारे के बालू हिम कणों से आर्द्र हो गये हैं, ऐसी नदियाँ शोभा को प्राप्त हो रही हैं ॥ २४ ॥ हिमपात होने से तथा सूर्य की किरणों के कोमलत्व से और अधिक शीत बढ़ जाने के कारण अमृत के समान पर्वतीय जल भी विष के सदृश प्रतीत हो रहा है ॥ २५ ॥ अत्यन्त हिमपात होने के कारण जिनके पत्ते और केसर झड़ गये हैं, केवल नाल मात्र ही जिनका शेष रह गया है ऐसे कमलों से सरोवर शोभा को नहीं प्राप्त हो रहे हैं ॥ २६ ॥ हे नरकेसरी रामचन्द्र ! इस काल में दुःख से सन्तप्त तथा आपकी भक्ति में अनुरक्त धर्मात्मा भरत अयोध्या में तपश्चर्या कर रहे हैं ॥ २७ ॥ वे तपस्वी भरत राज्य, मान तथा नाना प्रकार के भोगों को त्यागकर नियत आहार करते हुए इस शीत काल में पृथिवी पर सोते हैं ॥ २८ ॥ वे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः । वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम् ॥२९॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारः सुखोचितः । कथं न्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते ॥३०॥
पद्मपत्रेक्षणो वीरः श्यामो निरुदरो महान् । धर्मज्ञः सत्यवादी च ह्रीनिषेधो जितेन्द्रियः ॥३१॥
प्रियाभिभाषी मधुरो दीर्घबाहुररिंदमः । संत्यज्य विविधान् भोगानार्यं सर्वात्मना श्रितः ॥३२॥
जितः स्वर्गस्तव भ्रात्रा भरतेन महात्मना । वनस्थमपि तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते ॥३३॥
न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति । ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथाकृतः ॥३४॥
भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः । कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी ॥३५॥
इत्येवं लक्ष्मणे वाक्यं स्नेहाद् ब्रुवति धार्मिके । परिवादं जनन्यास्तमसहन् राघवोऽब्रवीत् ॥३६॥
न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कथंचन । तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥३७॥
निश्चितापि हि मे बुद्धिर्वनवासे दृढव्रता । भरतस्नेहसंतप्ता बालिशीक्रियते पुनः ॥३८॥
संस्मराम्यस्य वाक्यानि प्रियाणि मधुराणि च । हृद्यान्यमृतकल्पानि मनःप्रह्लादनानि च ॥३९॥
कदा न्वहं समेष्यामि भरतेन महात्मना । शत्रुघ्नेन च वीरेण त्वया च रघुनन्दन ॥४०॥
इत्येवं विलपंस्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम् । चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थः सानुजः सह सीतया ॥४१॥

भरत भी इस वेला में स्नान के लिए उद्यत होते हुए अपने मंत्रि-गणों के साथ निश्चय ही सरयू के तट पर जाते हैं ॥ २९ ॥ अत्यन्त शान्ति में पले हुए शीत से दुःखी सुकुमार भरत इस ब्राह्म मूहूर्त्त वेला में किस प्रकार सरयू में स्नान करते होंगे ॥ ३० ॥ कमल नेत्र वाले, युवा, कान्ति सम्पन्न, सूक्ष्म कटी वाले तथा धर्म के मर्म को जानने वाले वे भरत सदा सत्य भाषण करने वाले, निषिद्ध कार्यों से वचने वाले तथा जितेन्द्रिय हैं ॥ ३१ ॥ अत्यन्त प्रियभाषी, मधुर स्वभाववाले, शत्रुओं के मान भञ्जन करने वाले, दीर्घबाहु भरत, विविध प्रकार के सुखों को छोड़कर हर एक प्रकार से आपका ही आश्रय ग्रहण किये हुए हैं ॥ ३२ ॥ आपके भाई महात्मा भरत ने स्वर्ग को जीत लिया है, जो नगर में रहते हुए भी वनवासी आपकी तपश्चर्या का अनुगमन कर रहे हैं ॥ ३३ ॥ द्विपद् प्राणी मनुष्य पिता के स्वभाव का अनुगमन न करके माता के स्वभाव का अनुगमन करते हैं, इस लौकिक उक्ति को भरत ने आज अन्यथा (विपरीत) कर दिया ॥ ३४ ॥ जिसके पति सम्राट् राजा दशरथ हों, तथा जिसके पुत्र चरित्र के धनी साधु स्वभाव वाले भरत हों, वह माता कैकेयी इस प्रकार के क्रूर स्वभाव वाली कैसे हो गयी ॥ ३५ ॥ धर्मात्मा लक्ष्मण के स्नेह पूर्वक इस प्रकार बातें कहने पर माता कैकेयी की निन्दात्मक बातों को न सहन करते हुए रामचन्द्र इस प्रकार बोले ॥ ३६ ॥ हे तात लक्ष्मण ! तुम्हें कैकेयी माता की निन्दा नहीं करनी चाहिए । उसी इक्ष्वाकु कुलनाथ पूज्य पिताजी तथा भाई भरत की ही बातें करो ॥ ३७ ॥ वनवास में निश्चित रहने वाली मेरी बुद्धि भाई भरत के स्नेह से कभी कभी विचलित हो जाती है ॥ ३८ ॥ मैं हृदय के लिए अमृत के समान प्रिय लगने वाली, मन को प्रसन्न करने वाली, भाई भरत की प्रिय मधुर वाणी को स्मरण करता हूँ ॥ ३९ ॥ हे रघुकुल, शिरोमणि लक्ष्मण ! वह कौन-सा समय आयेगा, जब मैं, भाई भरत तथा वीर शत्रुघ्न के साथ तुम्हारे साथ में मिलूँगा, अर्थात् हम चारों भाई एकत्र होकर सुखमय समय व्यतीत करेंगे ऐसा स्वर्णिम समय कब आयेगा ॥ ४० ॥ इस प्रकार विलाप करते हुए रामचन्द्र गोदावरी नदी के तट पर पहुँचे और लक्ष्मण तथा सीता के साथ उन्होंने स्नान किया ॥ ४१ ॥ जल के द्वारा सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियों से युक्त कर्मेन्द्रियों तथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तर्पयित्वाथ सलिलैस्ते पितॄन् दैवतानि च । स्तुवन्ति स्मोदितं सूर्यं देवताश्च समाहिताः ॥४२॥
कृताभिषेकः स रराज रामः सीताद्वितीयः सह लक्ष्मणेन ।
कृताभिषेको गिरिराजपुत्र्या रुद्रः सनन्दी भगवानिवेशः ॥४३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे हेमन्तवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥१६॥

सप्तदशः सर्गः

शूर्पणखाभावाविष्करणम्

कृताभिषेको रामस्तु सीता सौमित्रिरेव च । तस्माद्गोदावरीतीरात्ततो जग्मुः स्वमाश्रमम् ॥ १ ॥
आश्रमं तमुपागम्य राघवः सहलक्ष्मणः । कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म पर्णशालामुपागमत् ॥ २ ॥
उवास सुखितस्तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः । स रामः पर्णशालायामासीनः सह सीतया ॥ ३ ॥
विरराज महाबाहुश्चित्रया चन्द्रमा इव । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चकार विविधाः कथाः ॥ ४ ॥

शरीर का सन्तर्पण करके निष्पाप सूर्योदय के पश्चात् स्तुति पूर्वक देव यज्ञ किया ॥ ४२ ॥ सीता और लक्ष्मण के साथ में स्नान करने के पश्चात् रामचन्द्र इस प्रकार शोभायमान हुए जिस प्रकार पार्वती तथा नन्दी के साथ भगवान् शंकर स्नान करने के पश्चात् शोभा को प्राप्त हुए थे ॥ ४३ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'सर्दी का वर्णन' विषयक सोलहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ सर्ग

शूर्पणखा के भावों का प्राकट्य

स्नान करने के पश्चात् राम, लक्ष्मण तथा सीता उस गोदावरी नदी के तट से अपने आश्रम में लौट आये ॥१॥ लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र ने आश्रम में आकर प्रातःकाल का शेष नित्यकर्म किया, पश्चात् पर्णकुटी में प्रवेश किया ॥२॥ महर्षियों के द्वारा आदर पाकर सीता के समेत रामचन्द्र उस पर्णशाला में सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥३॥ विशाल भुजावाले रामचन्द्र सीता के साथ पर्णशाला में इस प्रकार शोभा को प्राप्त हुए जैसे गगन में चित्रा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा शोभित होता है, रामचन्द्र ने अपने भाई लक्ष्मण के साथ में नाना प्रकार की कथाओं का वर्णन किया ॥४॥ कथावार्त्ता के प्रसंग में जिस समय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथासीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः। तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया ॥ ५ ॥
सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः। भगिनी राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम् ॥ ६ ॥
दीप्तास्यं च महाबाहुं पद्मपत्रायतेक्षणम्। गजविक्रान्तगमनं जटामण्डलधारिणम् ॥ ७ ॥
सुकुमारं महासत्त्वं पार्थिवव्यञ्जनान्वितम्। राममिन्दीवरश्यामं कंदर्पसदृशप्रभम् ॥ ८ ॥
बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता। सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी ॥ ९ ॥
विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा। प्रीतिरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वरा ॥१०॥
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी। न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना ॥११॥
शरीरजसमाविष्टा राक्षसी वाक्यमब्रवीत्। जटी तापसरूपेण सभार्यः शरचापधृत् ॥१२॥
आगतस्त्वमिमं देशं कथं राक्षससेवितम्। किमागमनकृत्यं ते तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥१३॥
एवमुक्तस्तु राक्षस्या शूर्पणख्या परंतपः। ऋजुबुद्धितया सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥१४॥
आसीद्दशरथो नाम राजा त्रिदशविक्रमः। तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥१५॥
भ्रातायं लक्ष्मणो नाम यवीयान् मामनुव्रतः। इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति विश्रुता ॥१६॥
नियोगात्तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः। धर्मार्थं धर्मकाङ्क्षी च वनं वस्तुमिहागतः ॥१७॥

रामचन्द्र पर्णकुटी में बैठे थे, उसी समय एक राक्षसी (स्त्रीसहज शालीनता से हीन स्त्री) वहाँ पर आई ॥५॥ उस शूर्पणखा नामवाली राक्षसी, रावण की बहन ने पास जाकर देवतुल्य रामचन्द्र को देखा ॥६॥ जिनका मुखमण्डल प्रकाशित हो रहा है, कमल के समान विशाल जिनके नेत्र हैं, भुजाएँ भी जिनकी विशाल हैं, गज के समान जिनकी गति है, जो जटा मण्डल को धारण किये हुए हैं, सुकुमार, महाबली, राजलक्षणों से जो युक्त हैं, कमनीय कमल के समान कान्ति वाले तथा कन्दर्प के समान तरुण रामचन्द्र को उसने देखा ॥७,८॥ सुन्दर मुखवाले, सिंह के समान पतली कमर वाले, इन्द्र के समान राम को दुर्मुखी बड़े पेटवाली राक्षसी शूर्पणखा देखकर कामासक्त हो गयी ॥ ९ ॥ [आगे दसवें ग्यारहवें श्लोक में रामचन्द्र और शूर्पणखा के विशेषण दिये गये हैं]। रामचन्द्र विशाल नेत्रवाले हैं और वह राक्षसी विकृत आखोंवाली है, रामचन्द्र काले-काले अच्छे केशों वाले हैं और वह राक्षसी ताम्रवर्ण भूरे-भूरे भद्दे बालों वाली है। रामचन्द्र कमनीय कान्तिवाले प्रियदर्शी हैं और वह राक्षसी विकृत रूपों वाली है, रामचन्द्र मधुर भाषी हैं; और वह कटुभाषिणी है, रामचन्द्र तरुण हैं और शूर्पणखा भयङ्कर वृद्धा है, रामचन्द्र बोलने में चतुर हैं और वह शूर्पणखा असङ्गत भाषण करने वाली है, रामचन्द्र सदाचारी हैं और वह दुराचारिणी है, रामचन्द्र प्रियदर्शी हैं और वह शूर्पणखा अप्रियदर्शना है ॥ १०, ११ ॥ कामासक्ता शूर्पणखा श्री रामचन्द्र से बोली—धनुष बाण रखनेवाले, जटाधारी, तपस्वियों के वेश में, स्त्री के साथ ॥ १२ ॥ तुम राक्षसों के इस देश में कैसे आये, तुम्हारे यहाँ आने का क्या कारण है, स्पष्ट शब्दों में कहो ॥ १३ ॥ राक्षसी शूर्पणखा के ऐसा कहने पर, शत्रुतापी रामचन्द्र ने अपनी सरल बुद्धि से अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कहना आरम्भ कर दिया ॥ १४ ॥ देव तुल्य पराक्रमी दशरथ नाम के एक राजा थे, मैं उनका ज्येष्ठ पुत्र हूँ। राम इस नाम से मैं प्रसिद्ध हूँ ॥ १५ ॥ मेरा अनुगामी लक्ष्मण नाम का मेरा यह छोटा भाई है, विदेह की राजकुमारी जिसका नाम सीता है यह मेरी धर्मपत्नी है ॥ १६ ॥ पिता माता की आज्ञा से प्रेरित होकर, सम्राट् के आदेश से, धार्मिक वृत्ति वाला मैं, धर्मार्थ की आकाङ्क्षा रखते हुए, निवास करने के लिए इस वन में आया हूँ ॥ १७ ॥ मैं तुम्हें जानना चाहता हूँ कि तुम कौन हो,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्वां तु वेदितुमिच्छामि कथ्यतां कासि कस्य वा । त्वं हि तावन्मनोज्ञाङ्गी राक्षसी प्रतिभासि मे ॥१८॥
इह वा किं निमित्तं त्वमागता ब्रूहि तत्त्वतः । साब्रवीद्वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनार्दिता ॥१९॥
श्रूयतां राम वक्ष्यामि तत्त्वार्थं वचनं मम । अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी ॥२०॥
अरण्यं विचरामीदमेका सर्वभयंकरा । रावणो नाम मे भ्राता बलीयान् राक्षसेश्वरः ॥२१॥
वीरो विश्रवसः पुत्रो यदि ते श्रोत्रमागतः । प्रबुद्धनिद्रश्च सदा कुम्भकर्णो महाबलः ॥२२॥
विभीषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षसचेष्टितः । प्रख्यातवीर्यौ च रणे भ्रातरौ खरदूषणौ ॥२३॥
तानहं समतिक्रान्ता राम त्वापूर्वदर्शनात् । समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम् ॥२४॥
अहं प्रभावसंपन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी । चिराय भव मे भर्ता सीतया किं करिष्यसि ॥२५॥
विकृता च विरूपा च न चेयं सदृशी तव । अहमेवानुरूपा ते भार्यारूपेण पश्य माम् ॥२६॥
इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् । अनेन ते सह भ्रात्रा भक्षयिष्यामि मानुषीम् ॥२७॥
ततः पर्वतशृङ्गाणि वनानि विविधानि च । पश्यन् सह मया कान्त दण्डकान् विचरिष्यसि ॥२८॥
इत्येवमुक्तः काकुत्स्थः प्रहस्य मदिरेक्षणाम् । इदं वचनमारेभे वक्तुं वाक्यविशारदः ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे शूर्पणखाभावाविष्करणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥१७॥

किस देश की हो, तथा किसकी हो। हे सुन्दरी! तुम्हारी चेष्टा से तो प्रतीत होता है कि तुम राक्षसी हो ॥ १८ ॥ यहाँ पर तुम किस कारण से आयी हो स्पष्ट शब्दों में कहो। राम की इन बातों को सुनकर काम-पीड़ित वह राक्षसी शूर्पणखा बोली ॥ १९ ॥ हे राम! सुनिये मैं अपने विचारों को स्पष्ट शब्दों में कह रही हूँ। मेरा नाम शूर्पणखा है, स्वेच्छानुसार रूप धारण करने वाली मैं वस्तुतः राक्षसी हूँ ॥ २० ॥ सबको त्रास देने वाली मैं अकेली ही इस वन में घूमती हूँ। तथा मेरा भाई रावण है, संभव है उसका नाम आपने सुना हो ॥ २१ ॥ वीर विश्रवा का पुत्र जिसका नाम कुम्भकर्ण है जो बहुत सोता है, संभव है जिसका नाम तुमने सुना हो, वह भी मेरा भाई है ॥ २२ ॥ विभीषण जो धर्मात्मा है, किन्तु राक्षसों का व्यवहार नहीं करता, तथा संग्राम में प्रसिद्ध पराक्रमवाले खर और दूषण ये सभी मेरे भाई हैं ॥ २३ ॥ हे रामचन्द्र! मैं उन सबके विचारों का अतिक्रमण करके तुम्हारे पास आयी हूँ। तुम्हारे प्रथम दर्शन से ही कामासक्त होती हुई तुम्हारे जैसे पुरुषोत्तम को पति बनाना चाहती हूँ ॥ २४ ॥ मैं प्रभावों से परिपूर्ण हूँ। स्वतन्त्रता-पूर्वक इस वन में घूमती हूँ। आप सदा के लिए मेरे पति बन जाइये। इस सीता को लेकर आप क्या करेंगे ॥ २५ ॥ यह सीता कुरूपा तथा विकृत विचार वाली है। आप के योग्य नहीं है। मैं ही आप के योग्य हूँ। मुझको आप अपनी पत्नी ही समझें ॥ २६ ॥ यह सीता कुरूपा, सतीत्व-हीन तथा भद्दी कटिवाली है, इस मानुषी सीता को तुम्हारे भाई लक्ष्मण के साथ मैं खा जाऊँगी अर्थात् समाप्त कर दूँगी ॥ २७ ॥ पश्चात् कामासक्त होकर आप मेरे साथ पहाड़ की चोटियों पर नानाप्रकार के वनों को देखते हुए इस दण्डक वन में विचरण करेंगे ॥ २८ ॥ शूर्पणखा के ऐसा कहने पर वाक्य विशारद रामचन्द्र मदोन्मत्त आँखों वाली उस राक्षसी से यह वचन बोले ॥ २९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'शूर्पणखा के भावों का प्राकट्य' विषयक सत्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१७॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टादशः सर्गः

शूर्पणखाविरूपणम्

ततः शूर्पणखां रामः कामपाशावपाशिताम् । स्वच्छया श्लक्ष्णया वाचा स्मितपूर्वमथाब्रवीत् ॥ १ ॥
कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम । त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता ॥ २ ॥
अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान् प्रियदर्शनः । श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥ ३ ॥
अपूर्वो भार्यया चार्थी तरुणः प्रियदर्शनः । अनुरूपश्च ते भर्ता रूपस्यास्य भविष्यति ॥ ४ ॥
एनं भज विशालाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम । असपत्ना वरारोहे मेरुमर्कप्रभा यथा ॥ ५ ॥
इति रामेण सा प्रोक्ता राक्षसी काममोहिता । विसृज्य रामं सहसा ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ६ ॥
अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्याहं वरवर्णिनी । मया सह सुखं सर्वान् दण्डकान् विचरिष्यसि ॥ ७ ॥
एवमुक्तस्तु सौमित्री राक्षस्या वाक्यकोविदः । ततः शूर्पणखां स्मित्वा लक्ष्मणो युक्तमब्रवीत् ॥ ८ ॥
कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि । सोऽहमार्येण परवान् भ्रात्रा कमलवर्णिनि ॥ ९ ॥
समृद्धार्थस्य सिद्धार्था मुदिता वरवर्णिनी । आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी ॥ १० ॥
एनां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् । भार्यां वृद्धां परित्यज्य त्वामेवैष भजिष्यति ॥ ११ ॥

अट्ठारहवाँ सर्ग

शूर्पणखा को कुरूप करना

श्रीरामचन्द्रजी हँसते हुए स्पष्ट शब्दों में कामान्ध उस शूर्पणखा से बोले ॥ १ ॥ हे श्रीमति ! मैं विवाहित हूँ, यह मेरी प्राणप्रिय स्त्री मेरे पास में है, तुम्हारे जैसी स्त्री के लिए सौत का दुःख बड़ा दुःखदायी होगा ॥ २ ॥ सदाचारी, सुंदर तथा पराक्रमी लक्ष्मण नाम का यह मेरा छोटा भाई है और यह स्त्री से हीन भी है ॥ ३ ॥ अभी तक स्त्री से इसका कोई सम्पर्क नहीं हुआ है। इसलिए यह अत्यन्त शोभनीय एवं तरुण है। यह तुम्हारी सुन्दरता को देखते हुए तुम्हारे अनुकूल ही पति होगा ॥ ४ ॥ हे विशालनेत्रे ! इस मेरे भाई को तुम अपना पति बनाकर इसकी सेवा करो। सौत रहित तुम अपना जीवन इस प्रकार व्यतीत कर सकोगी जैसे सूय की किरणें मेरु पर्वत को दीर्घकाल तक अपनी किरणों से प्रकाशित करती हैं ॥ ५ ॥ रामचन्द्र के ऐसा कहने पर कामासक्त वह शूर्पणखा रामचन्द्र को सहसा छोड़कर लक्ष्मण के पास जाकर बोली ॥ ६ ॥ आपके सुंदर रूप के योग्य मैं आपकी धर्मपत्नी हो सकती हूँ। मेरे साथ तुम सुख पूर्वक इस दण्डक वन में विचरण कर सकोगे ॥ ७ ॥ राक्षसी शूर्पणखा के ऐसा निवेदन करने पर वार्तालाप करने में निपुण लक्ष्मण हँसकर उस शूर्पणखा से उपयुक्त वचन बोले ॥ ८ ॥ मुझ दास की तुम दासी धर्म-पत्नी क्यों होना चाहती हो। हे कमलकान्ति वाली ! मैं आर्य भाई रामचन्द्र का एक सेवक हूँ ॥ ९ ॥ हे कमनीय कान्ति वाली विशालाक्षि ! सब प्रकार से समृद्ध भगवान् रामचन्द्र की आप कनिष्ठ धर्मपत्नी होकर अपने मनोरथ को पूर्ण कर सकती हैं ॥ १० ॥ (व्यङ्गोक्ति में लक्ष्मण ने उस शूर्पणखा से कहा—) इस रूपरहित, असती, विकराला, विकृत कमरवाली, वृद्धा स्त्री को छोड़कर रामचन्द्र तुम्हें अवश्य अपनावेंगे ॥ ११ ॥ हे सुन्दरि ! संसार में कौन ऐसा पुरुष होगा जो तुम्हारे इस श्रेष्ठ सौन्दर्य को छोड़कर सामान्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को हि रूपमिदं श्रेष्ठं संत्यज्य वरवर्णिनि । मानुषीषु वरारोहे कुर्याद्भावं विचक्षणः ॥१२॥
इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी । मन्यते तद्वचस्तथ्यं परिहासाविचक्षणा ॥१३॥
सा रामं पर्णशालायामुपविष्टं परंतपम् । सीतया सह दुर्धर्षमब्रवीत्काममोहिता ॥१४॥
एनां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् । वृद्धां भार्यामवष्टभ्य मां न त्वं बहु मन्यसे ॥१५॥
अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम् । त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथासुखम् ॥१६॥
इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा । अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव ॥१७॥
तां मृत्युपाशप्रतिमामापतन्तीं महाबलः । निगृह्य रामः कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१८॥
क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथंचन । न कार्यः पश्य वैदेहीं कथंचित्सौम्य जीवतीम् ॥१९॥
इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम् । राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि ॥२०॥
इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः । उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबलः ॥२१॥
निकृत्तकर्णनासा तु विस्वरं सा विनद्य च । यथागतं प्रदुद्राव घोरा शूर्पणखा वनम् ॥२२॥
सा विरूपा महाघोरा राक्षसी शोणितोक्षिता । ननाद विविधान्नादान् यथा प्रावृषि तोयदः॥२३॥
सा विक्षरन्ती रुधिरं बहुधा घोरदर्शना । प्रगृह्य बाहू गर्जन्ती प्रविवेश महावनम् ॥२४॥

ततस्तु सा राक्षससङ्घसंवृतं खरं जनस्थानगतं विरूपिता ।
उपेत्य तं भ्रातरमुग्रदर्शनं पपात भूमौ गगनाद्यथाशनिः ॥ २५ ॥

मानुषी से प्रेम करेगा ॥ १२ ॥ परिहास में लक्ष्मण के ऐसा कहने पर भोली भाली विकराला भद्दी कटि-वाली शूर्पणखा लक्ष्मण की इस बात को सत्य समझ गई ॥ १३ ॥ शत्रुओं के मान भञ्जन करनेवाले दुर्धर्ष रामचन्द्र सीता के साथ जहाँ पर्णशाला में बैठे थे, कामासक्त शूर्पणखा वहाँ जाकर उनसे बोली ॥ १४ ॥ इस रूपरहित, असती, विकराला, भद्दी कमरवाली, वृद्धा स्त्री के कारण ही तुम मेरा सम्मान नहीं करते हो ॥ १५ ॥ तो देखो मैं इस मानुषी को तुम्हारे सामने ही खा जाती हूँ । पश्चात् सौत रहित सुख पूवक तुम्हारे साथ विचरण करूँगी ॥ १६ ॥ आलात चक्र ज्योति के समान नेत्रवाली शूर्पणखा ऐसा कहकर भयंकर क्रुद्ध होती हुई कमलनयनी सीता पर ऐसी टूट पड़ी जैसे महती उल्का रोहिणी नक्षत्र पर टूटती है ॥ १७ ॥ मृत्यु पाश के समान आती हुई उस शूर्पणखा को महाबली रामचन्द्र रोककर क्रोधपूर्वक लक्ष्मण से यह बोले ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! क्रूर अनार्य बुद्धि वाले लोगों के साथ में परिहास कभी भी नहीं करना चाहिये । देखो, सीता के जीवन की रक्षा किसी प्रकार की जा सकती है ॥ १९ ॥ हे नरकेसरी लक्ष्मण ! इस रूपरहित, आचार हीना, पथ भ्रष्टा तथा भद्दे पेटवाली राक्षसी का अंग भङ्ग के द्वारा सौन्दर्य तुम नष्ट कर दो ॥ २० ॥ रामचन्द्र के ऐसा कहने पर क्रुद्ध लक्ष्मण ने राम के देखते हुए म्यान से खड्ग निकालकर शूर्पणखा के नाक एवं कान को काट डाला ॥ २१ ॥ नाक कान कट जाने पर भयानक क्रन्दन करती हुई वह भयंकरी राक्षसी बड़े वेग से जैसे आई थी, उसी प्रकार वन में भाग गई ॥ २२ ॥ रक्त से लथपथ, विरुपा, तथा भय उत्पन्न करने वाली वह राक्षसी इस प्रकार गर्जन करने लगी जैसे वर्षा काल में मेघ गर्जन करते हैं ॥ २३ ॥ विकराल रूपवाली अपने दोनों हाथों को पकड़कर वह शूर्पणखा रुधिर सेचन करती हुई तथा भयङ्कर गर्जना करती हुई विशाल वन में प्रवेश कर गयी ॥ २४ ॥ विरूपिता वह शूर्पणखा अपने सहायक राक्षसों से संरक्षित जन स्थान में रहनेवाले तेजस्वी अपने भाई खर के समीप जाकर पृथिवी पर इस प्रकार गिर पड़ी जैसे आकाश से विद्य गिरती है ॥ २५ ॥ भय के कारण मोह से मूर्च्छित रक्त स्नाता खर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततः सभार्यं भयमोहमूर्छिता सलक्ष्मणं राघवमागतं वनम् ।
विरूपणं चात्मनि शोणितोक्षिता शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे शूर्पणखाविरूपणं नाम अष्टादशः सर्गः ॥१८॥

एकोनविंशः सर्गः

खरक्रोधः

तां तथा पतितां दृष्ट्वा विरूपां शोणितोक्षिताम् । भगिनीं क्रोधसंतप्तः खरः पप्रच्छ राक्षसः ॥ १ ॥
उत्तिष्ठ तावदाख्याहि प्रमोहं जहि संभ्रमम् । व्यक्तमाख्याहि केन त्वमेवंरूपा विरूपिता ॥ २ ॥
कः कृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम् । तुदत्यभिसमापन्नमङ्गुल्यग्रेण लीलया ॥ ३ ॥
कः कालपाशमासज्य कण्ठे मोहान्न बुध्यते । यस्त्वामद्य समासाद्य पीतवान् विषमुत्तमम् ॥ ४ ॥
बलविक्रमसंपन्ना कामगा कामरूपिणी । इमामवस्थां नीता त्वं केनान्तकसमागता ॥ ५ ॥

की बहन शूर्पणखा उसने अपने नाक कान कटने का तथा स्त्री और भाई के साथ राम के वन में आने का समाचार सुनाया ॥ २६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'शूर्पणखा को कुरूप करना' विषयक अट्ठारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१८॥

उन्नीसवाँ सर्ग

खर का क्रोध

इस प्रकार रक्त से सनी हुई, नाक कान जिसके कट चुके हैं, भूमि पर गिरी हुई अपनी बहिन शूर्पणखा को देखकर क्रोध सन्तप्त खर ने उससे पूछा ॥ १ ॥ उठो, बेहोशी और भय को दूर कर दो, बतलाओ कि किसने तुमको कुरूप किया है। स्पष्ट शब्दों में कहो ॥ २ ॥ निरपराध भयङ्कर विष वमन करनेवाले काले साँप से अंगुलियों के द्वारा यह कौन छेड़छाड़ कर रहा है ॥ ३ ॥ अज्ञानवश यम फाँस को अपने गले में किसने बाँधा है। तुम्हारे साथ इस प्रकार कुत्सित व्यवहार कर यह भयङ्कर विष पान किसने किया है ॥ ४ ॥ बल पराक्रम से सम्पन्न स्वेच्छा से रूप धारण करने वाली तथा स्वतंत्रता पूर्वक गमन करने वाली तुमको यमराजपुरी में जाने वाले किस अभागे ने इस अवस्था को प्राप्त कराया है ॥५॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवगन्धर्वभूतानामृषीणां च महात्मनाम् । कोऽयमेवं विरूपां त्वां महावीर्यश्चकार ह ॥ ६ ॥
न हि पश्याम्यहं लोके यः कुर्यान्मम विप्रियम् । अन्तरेण सहस्राक्षं महेन्द्रं पाकशासनम् ॥ ७ ॥
अद्याहं मार्गणैः प्राणानादास्ये जीवितान्तकैः । सलिले क्षीरमासक्तं निष्पिबन्निव सारसः ॥ ८ ॥
निहतस्य मया संख्ये शरसंकृत्तमर्मणः । सफेनं रुधिरं कस्य मेदिनी पातुमिच्छति ॥ ९ ॥
कस्य पत्ररथाः कायान्मांसमुत्कृत्य संगताः । प्रहृष्टा भक्षयिष्यन्ति निहतस्य मयारणे ॥१०॥
तं न देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः । मयापकृष्टं कृपणं शक्तास्त्रातुमिहाहवे ॥११॥
उपलभ्य शनैः संज्ञां तं मे शंसितुमर्हसि । येन त्वं दुर्विनीतेन वने विक्रम्य निर्जिता ॥१२॥
इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धस्य च विशेषतः । ततः शूर्पणखा वाक्यं सबाष्पमिदमब्रवीत् ॥१३॥
तरुणौ रूपसंपन्नौ सुकुमारौ महाबलौ । पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥१४॥
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ धर्मचारिणौ । पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१५॥
गन्धर्वराजप्रतिमौ पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ । देवौ वा मानुषौ वा तौ न तर्कयितुमुत्सहे ॥१६॥
तरुणी रूपसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता । दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा ॥१७॥
ताभ्यामुभाभ्यां संभूय प्रमदामधिकृत्य ताम् । इमामवस्थां नीताहं यथानाथासती तथा ॥१८॥
तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्च हतयोरहम् । सफेनं पातुमिच्छामि रुधिरं रणमूर्धनि ॥१९॥

देव, गन्धर्व, ऋषि, महात्मा तथा प्राणि वर्ग में कौन ऐसा महापराक्रमी व्यक्ति है जिसने तुमको इस अवस्था में पहुँचाया है ॥ ६ ॥ संसार में मैं किसी को ऐसा नहीं देखता जो मेरा इस प्रकार का अप्रिय आचरण कर सकता है। औरों की तो बात ही क्या इन्द्र भी मेरे साथ इस प्रकार का आचरण नहीं कर सकता ॥ ७ ॥ आज मैं प्राणघाती अपने बाणों से उसका प्राण इस प्रकार से ले लूँगा जैसे जल सम्पृक्त दूध को हंस जल से ले लेता है ॥ ८ ॥ मेरे बाणों से संग्राम में मर्म स्थल के कट जाने पर मरे हुए, किसके फेन सहित रुधिर को पृथिवी पान करना चाहती है ॥ ९ ॥ मेरे द्वारा संग्राम में मारे जाने पर किसके माँस को माँसाहारी पक्षिगण इकट्ठे हो नोच नोच कर खायेंगे ॥ १० ॥ महासंग्राम में जिस अपराधी को मारने के लिये मैं जब तलवार खींच लूँगा तो देव, गन्धर्व, पिशाच तथा राक्षसों में कोई भी ऐसा नहीं है जो मेरे शस्त्र से उसे बचा सके ॥ ११ ॥ चेतना में आकर तुम उसके नाम को बतलाओ जिस अनाचारी ने वन में आक्रमण कर तुमको पराजित किया है ॥ १२ ॥ क्रोध में आये हुये अपने भाई खर की इन बातों को सुनकर शूर्पणखा अश्रुपात करती हुई इस प्रकार बोली ॥ १३ ॥ युवा, रूपसम्पन्न, सुकुमार, कमल के समान विशाल नेत्रवाले, महाबलवान्, चीर तथा काला मृगचर्म धारण करने वाले ॥ १४ ॥ फल मूल भक्षण करने वाले, ब्रह्मचारी, तपस्वी, वशी, दोनों भाई जिनका नाम राम और लक्ष्मण है ये दोनों राजा दशरथ के पुत्र हैं ॥ १५ ॥ गन्धर्वराज के समान राजलक्षण से परिपूर्ण वे दोनों देव हैं या मनुष्य इसका निर्णय मैं नहीं कर सकी ॥ १६ ॥ सम्पूर्ण आभूषणों से भूषित रूपसम्पन्ना एक युवती स्त्री भी मैंने उन दोनों के बीच देखी ॥ १७ ॥ उसी स्त्री के कारण ही उन दोनों ने मिलकर मुझे इस अवस्था को पहुँचाया है। जैसे किसी अनाथ चरित्रहीन स्त्री की विपन्न अवस्था होती है ॥ १८ ॥ संग्राम में उस कुटिल आचरणवाली स्त्री तथा दोनों पुरुषों के मारे जाने पर फेन युक्त उनके रुधिर का मैं पान करना चाहती हूँ ॥ १९ ॥ उस स्त्री तथा उन दोनों पुरुषों के रक्त को संग्राम में मैं पीना चाहती हूं। यह मेरी कामना है,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एष मे प्रथमः कामः कृतस्तात त्वया भवेत् । तस्यास्तयोश्च रुधिरं पिबेयमहमाहवे ॥२०॥
इति तस्यां ब्रुवाणायां चतुर्दश महाबलान् । व्यादिदेश खरः क्रुद्धो राक्षसानन्तकोपमान् ॥२१॥
मानुषौ शस्त्रसंपन्नौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ । प्रविष्टौ दण्डकारण्यं घोरं प्रमदया सह ॥२२॥
तौ हत्वा तां च दुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ । इयं च रुधिरं तेषां भगिनी मम पास्यति ॥२३॥
मनोरथोऽयमिष्टोऽस्या भगिन्या मम राक्षसाः । शीघ्रं संपाद्यतां गत्वा तौ प्रमथ्य स्वतेजसा ॥२४॥
युष्माभिर्निहतौ दृष्ट्वा तावुभौ भ्रातरौ रणे । इयं प्रहृष्टा मुदिता रुधिरं युधि पास्यति ॥२५॥
इति प्रतिसमादिष्टा राक्षसास्ते चतुर्दश । तत्र जग्मुस्तया सार्धं घना वातेरिता यथा ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे खरक्रोधो नाम एकोनविंशः सर्गः ॥१९॥

विंशः सर्गः

चतुर्दशरक्षोवधः

ततः शूर्पणखा घोरा राघवाश्रममागता । राक्षसानाचचक्षे तौ भ्रातरौ सह सीतया ॥ १ ॥
ते रामं पर्णशालायामुपविष्टं महाबलम् । ददृशुः सीतया सार्धं वैदेह्या लक्ष्मणेन च ॥ २ ॥

क्या तुम उसे पूरा कर सकोगे ॥ २० ॥ इस प्रकार शूर्पणखा के कहने पर क्रोध में आये हुए खर ने यमराज के समान अत्यन्त बलवान् चौदह राक्षसों को यह आदेश दिया ॥ २१ ॥ चीर तथा काले मृग का चर्म धारण करने वाले शस्त्रास्त्रों से युक्त दो मनुष्य एक स्त्री के साथ इस भयङ्कर दण्डकारण्य में आये हुए हैं ॥ २२ ॥ उन दोनों को पहले मारकर पश्चात् उस दुष्टा स्त्री का वध करना । मेरी यह बहन उन सभी का खून पीयेगी, ॥ २३ ॥ हे राक्षसो ! तुम सभी शीघ्र जाकर उन दोनों को अपने तेज से मारकर मेरी बहन का यह इष्ट मनोरथ पूरा करो ॥ २४ ॥ संग्राम में तुम लोगों के द्वारा दोनों भाईयों के मारे जाने पर प्रसन्नतापूर्वक यह मेरी बहन उनका रुधिर पान करेगी ॥ २५ ॥ खर के ऐसा आदेश देने पर वे चौदहों राक्षस उस शूर्पणखा के साथ वहाँ इस प्रकार गये जैसे आकाश मण्डल में पवन प्रेरित मेघ जाते हैं ॥ २६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'खर का क्रोध' विषयक उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १९ ॥

बीसवाँ सर्ग

चौदहों राक्षसों का वध

पश्चात् वह भयानक राक्षसी शूर्पणखा श्री रामचन्द्र के स्थान पर आयी और उसने सीता के साथ राम-लक्ष्मण का परिचय भी उन राक्षसों को दिया ॥ १ ॥ उन राक्षसों ने सीता और लक्ष्मण के द्वारा सेवा किये जाते हुए महाबली रामचन्द्र को पर्णकुटी में बैठे हुए देखा ॥ २ ॥ उस शूर्पणखा और राक्षसों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तान् दृष्ट्वा राघवः श्रीमानागतांस्तां च राक्षसीम् । अब्रवीद् भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥ ३ ॥
मुहूर्त्तं भव सौमित्रे सीतायाः प्रत्यनन्तरः । इमानस्या वधिष्यामि पदवीमागतानिह ॥ ४ ॥
वाक्यमेतत्ततः श्रुत्वा रामस्य विदितात्मनः । तथेति लक्ष्मणो वाक्यं रामस्य प्रत्यपूजयत् ॥ ५ ॥
राघवोऽपि महच्चापं चामीकरविभूषितम् । चकार सज्यं धर्मात्मा तानि रक्षांसि चाब्रवीत् ॥ ६ ॥
पुत्रौ दशरथस्यावां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । प्रविष्टौ सीतया सार्धं दुश्चरं दण्डकावनम् ॥ ७ ॥
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ धर्मचारिणौ । वसन्तौ दण्डकारण्ये किमर्थमुपहिंसथ ॥ ८ ॥
युष्मान् पापात्मकान् हन्तुं विप्रकारान् महाहवे । ऋषीणां तु नियोगेन प्राप्तोऽहं सशरायुधः ॥ ९ ॥
तिष्ठतैवात्र संतुष्टा नोपावर्तितुमर्हथ । यदि प्राणैरिहार्थो वा निवर्तध्वं निशाचराः ॥१०॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश । ऊचुर्वाचं सुसंक्रुद्धा ब्रह्मघ्नाः शूलपाणयः ॥११॥
संरक्तनयना घोरा रामं संरक्तलोचनम् । परुषा मधुराभाषं हृष्टा दृष्टपराक्रमम् ॥१२॥
क्रोधमुत्पाद्य नो भर्तुः खरस्य सुमहात्मनः । त्वमेव हास्यसे प्राणानद्यास्माभिर्हतो युधि ॥१३॥
का हि ते शक्तिरेकस्य बहूनां रणमूर्धनि । अस्माकमग्रतः स्थातुं किं पुनर्योद्धुमाहवे ॥१४॥
एहि बाहुप्रयुक्तैर्नः परिघैः शूलपट्टिशैः । प्राणांस्त्यक्ष्यसि वीर्यं च धनुश्च करपीडितम् ॥१५॥
इत्येवमुक्त्वा संक्रुद्धा राक्षसास्ते चतुर्दश । उद्यतायुधनिस्त्रिंशा राममेवाभिदुद्रुवुः ॥१६॥

को आया हुआ देखकर रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्र ने तेजस्वी अपने भ्राता लक्ष्मण से कहा ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम कुछ देर के लिए सीता के समीप रहकर इसकी रक्षा करो और मैं शूर्पणखा के साथ आए हुए इन राक्षसों का वध करूँगा ॥ ४ ॥ जितेन्द्रिय रामचन्द्र की इस बात को सुनकर 'ऐसा ही करूँगा' ऐसा कहकर लक्ष्मण ने रामचन्द्र की आज्ञा का पालन किया ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्र ने भी अपने स्वर्णभूषित धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई और राक्षसों से यह बोले ॥ ६ ॥ हम दोनों भाई महाराज दशरथ के पुत्र हैं। अपनी धर्मपत्नी सीता के साथ मैं और मेरे भाई दोनों ही इस भयानक दण्डक वन में आये हैं ॥ ७ ॥ हम लोग कन्दमूल फल खाने वाले वशी तपस्वी तथा ब्रह्मचारी हैं, इस दण्डक वन में वास करने वाले हम लोगों को आप सब क्यों मारना चाहते हैं ॥ ८ ॥ ऋषियों के महान् अपकारी पापात्मा तुम लोगों को मारने के लिए उन तपस्वियों की प्रेरणा से धनुष-बाण लेकर हम यहाँ आये हैं ॥ ९ ॥ यदि तुम लोग संग्राम करना चाहते हो, तो प्रसन्नता पूर्वक यहीं ठहरो और यदि प्राणों की रक्षा चाहते हो तो हे राक्षसो ! यहाँ से लौट जाओ ॥ १० ॥ हाथ में शूल लिए हुए वे चौदहों हत्यारे राक्षस रामचन्द्र की इन बातों को सुनकर क्रुद्ध होकर बोले ॥ ११ ॥ क्रोधावेश में लाल २ नेत्रवाले वे घोर राक्षस पराक्रमी तथा मधुरभाषी अरुण नेत्रवाले रामचन्द्र से क्रोधपूर्वक बोले ॥ १२ ॥ हम लोगों के स्वामी महात्मा खर के क्रोध को प्रदीप्त-कर आज संग्राम में तुम ही हम लोगों के द्वारा मारे जाने पर अपने प्राणों को गंवाओगे ॥ १३ ॥ तुम अकेले ही इस संग्राम में हम लोगों के सामने क्या शक्ति रखते हो। यहाँ पर हम लोगों के समक्ष खड़े रहने की शक्ति भी नहीं रखते हो, संग्राम की बात तो दूर रही ॥ १४ ॥ हम लोगों के इन भुजाओं से चलाए हुए शूल, पट्टिश, परिघ आदि शस्त्रों के आघात से अपने हाथ के धनुष, पराक्रम तथा प्राणों को त्यागोगे ॥ १५ ॥ क्रोध के आवेश में ऐसा कहकर उन चौदहों राक्षसों ने खड्ग आदि अस्त्रों को लेकर रामचन्द्र पर आक्रमण कर दिया ॥ १६ ॥ समर दुर्जय रामचन्द्र पर उन सभी राक्षसों ने अपने २ शूलों का प्रहार किया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चिक्षिपुस्तानि शूलानि राघवं प्रति दुर्जयम् । तानि शूलानि काकुत्स्थः समस्तानि चतुर्दश ॥१७॥
तावद्भिरेव चिच्छेद शरैः काञ्चनभूषणैः । ततः पश्चान्महातेजा नाराचान् सूर्यसंनिभान् ॥१८॥
जग्राह परमक्रुद्धश्चतुर्दश शिलाशितान् । गृहीत्वा धनुरायम्य लक्ष्यानुद्दिश्य राक्षसान् ॥१९॥
मुमोच राघवो बाणान् वज्रानिव शतक्रतुः । ते भित्त्वा रक्षसां वेगाद्वक्षांसि रुधिराप्लुताः ॥२०॥
विनिष्पेतुस्तदा भूमौ वल्मीकादिव पन्नगाः । ते भिन्नहृदया भूमौ छिन्नमूला इव द्रुमाः ॥२१॥
निपेतुः शोणितार्द्राङ्गा विकृता विगतासवः । तान् दृष्ट्वा पतितान् भूमौ राक्षसी क्रोधमूर्छिता ॥२२॥
उपगम्य खरं सा तु किंचित्संशुष्कशोणिता । पपात पुनरेवार्ता सनिर्यासेव सल्लकी ॥२३॥
भ्रातुः समीपे शोकार्ता ससर्ज निनदं मुहुः । सस्वरं मुमुचे बाष्पं विषण्णवदना तदा ॥२४॥
निपातितान् दृश्य रणे तु राक्षसान् प्रधाविता शूर्पणखा पुनस्ततः ।
वधं च तेषां निखिलेन रक्षसां शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा ॥२५॥

इत्यार्षे श्री मद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे चतुर्दशरक्षोवधो नाम विंशः सर्गः ॥२०॥

रामचन्द्र ने राक्षसों के द्वारा फेंके हुए उन चौदहों शूलों को काञ्चन भूषित अपने चौदह बाणों से काट डाला, पश्चात् सूर्य के समान देदीप्यमान बाणों को देखते हुए ॥ १७, १८ ॥ अपने धनुष को उठाया। परम क्रुद्ध रामचन्द्र ने धनुष को उठाकर तथा प्रत्यञ्चा चढ़ाकर शान पर चढ़ाये हुए १४ बाणों से राक्षसों को लक्ष्य बनाकर उन पर इस प्रकार प्रहार किया जैसे इन्द्र अपने वज्र का प्रहार करते हैं। वे बाण अपने वेग से राक्षसों के हृदय को भेदकर रक्त से आप्लावित पृथिवी पर इस प्रकार गिरे जैसे बल्मीक (दीमकारी)से सर्प निकलते हैं। भग्न हृदय वे सभी राक्षस कटे वृक्ष के समान भूमि पर गिर पड़े ॥ १९–२१ ॥ रक्त से सने हुए जिनके शरीर विकृत हो रहे हैं ऐसे प्राणरहित वे सभी पृथिवी पर गिर पड़े। उन सभी राक्षसों को भूमि पर गिरा हुआ देखकर शूर्पणखा क्रोध से मूर्छित हो गयी ॥ २२ ॥ वह राक्षसी अपने भाई खर के समीप जाकर दुःखपूर्वक पृथिवी पर गिर पड़ी। विच्छिन्न कर्णनासिका के रक्त के सूख जाने पर वह गोंदवाली लता के समान प्रतीत होने लगी ॥ २३ ॥ विकृत आकारवाली शोकार्त्ता उस शूर्पणखा ने अपने भाई खर के समीप भयङ्कर करुण क्रन्दन किया तथा अश्रुपात करती हुई वह पुनः उच्च स्वर में रोने लगी ॥ २४ ॥ संग्राम में उन सभी राक्षसों को मरा हुआ देखकर उस खर की बहन शूर्पणखा ने उसके समीप जाकर राक्षसों के वध का सम्पूर्ण समाचार खर को सुनाया ॥ २५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'चौदहों राक्षसों का वध' विषयक बीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ २० ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकविंशः सर्गः

खरसन्धुक्षणम्

स पुनः पतितां दृष्ट्वा क्रोधाच्छूर्पणखां खरः । उवाच व्यक्तया वाचा तामनर्थार्थमागताम् ॥ १ ॥
मया त्विदानीं शूरास्ते राक्षसा रुधिराशनाः । त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं रुद्यते पुनः ॥ २ ॥
भक्ताश्चैवानुरक्ताश्च हिताश्च मम नित्यशः । घ्नन्तोऽपि न निहन्तव्या न न कुर्युर्वचो मम ॥ ३ ॥
किमेतच्छ्रोतुमिच्छामि कारणं यत्कृते पुनः । हा नाथेति विनर्दन्ती सर्पवल्लुठसि क्षितौ ॥ ४ ॥
अनाथवद्विलपसि नाथे तु मयि संस्थिते । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा भैषीर्वैक्लव्यं त्यज्यतामिह ॥ ५ ॥
इत्येवमुक्ता दुर्धर्षा खरेण परिसान्त्विता । विमृज्य नयने सास्रे खरं भ्रातरमब्रवीत् ॥ ६ ॥
अस्मीदानीमहं प्राप्ता हृतश्रवणनासिका । शोणितौघपरिक्लिन्ना त्वया च परिसान्त्विता ॥ ७ ॥
प्रेषिताश्च त्वया वीर राक्षसास्ते चतुर्दश । निहन्तुं राघवं क्रोधान्मत्प्रियार्थं सलक्ष्मणम् ॥ ८ ॥
ते तु रामेण सामर्षाः शूलपट्टिशपाणयः । समरे निहताः सर्वे सायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ ९ ॥
तान् दृष्ट्वा पतितान् भूमौ क्षणेनैव महाबलान् । रामस्य च महत्कर्म महांस्त्रासोऽभवन्मम ॥१०॥

इक्कीसवाँ सर्ग

खर को उत्तेजित करना

राक्षस वंश के लिए अनर्थकारिणी शूर्पणखा को आयी हुई तथा भूमि पर गिरी हुई देखकर खर क्रोध में आकर कड़े शब्दों में बोला ॥ १ ॥ मैंने तो तुम्हारी रक्तपान करने की प्रिय कामना के लिए वीर राक्षसों को नियुक्त कर दिया था। अब पुनः तुम क्यों रोती हो ॥ २ ॥ वे सब के सब मेरे भक्त मुझ में अनुराग रखनेवाले तथा मेरे नित्य हितैषी हैं। शत्रुओं के प्रहार करने पर भी वे मारे नहीं जा सकते। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि वे मेरी आज्ञा का पालन न करें ॥ ३ ॥ हा नाथ! ऐसा कह कर जो पृथिवी पर सर्प के समान तुम लेट रही हो इसका क्या कारण है। मैं इसे सुनना चाहता हूँ ॥ ४ ॥ मुझ नाथ के उपस्थित होते हुए भी तुम अनाथ के समान क्यों विलाप कर रही हो। उठो! उठो! तुम इस व्याकुलता को छोड़ दो, मत रोओ ॥ ५ ॥ खर के इस प्रकार कहने तथा सान्त्वना देने पर वह दुर्धर्ष राक्षसी अपनी आखों के आंसुओं को पोंछती हुई अपने भाई खर से बोली ॥ ६ ॥ श्रवण एवं नासिका के कट जाने पर रक्त से सिञ्चित अवस्था में मैं इस समय तुम्हारे पास आयी हूँ और तुमने मुझे धैर्य प्रदान किया है ॥ ७ ॥ तुमने मेरी प्रार्थना को सुनकर मेरी प्रिय कामना के लिए चौदह वीर राक्षसों को घोर कर्म करने वाले राम-लक्ष्मण को मारने के लिए भेज दिया ॥ ८ ॥ किसी के आक्षेप को न सहने वाले शूल, पट्टिश आदि शस्त्रधारी वे सभी राक्षस मर्मभेदी बाणों के द्वारा राम के हाथों से मारे गये हैं ॥ ९ ॥ कुछ क्षणों में ही महावेग वाले उन राक्षसों को गिरा हुआ देखकर तथा रामचन्द्र के इस महान् कर्म को देखकर मैं भय से उद्विग्न हो गयी हूँ ॥ १० ॥ हे निशाचर! मैं इस समय डरी, घबरायी तथा दुःखी हूँ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अहमस्मि समुद्विग्ना विषण्णा च निशाचर। शरणं त्वां पुनः प्राप्ता सर्वतोभयदर्शिनी ॥११॥
विषादनक्राध्युषिते परित्रासोर्मिमालिनि। किं मां न त्रायसे मग्नां विपुले शोकसागरे ॥१२॥
एते च निहता भूमौ रामेण निशितैः शरैः। येऽपि मे पदवीं प्राप्ता राक्षसाः पिशिताशनाः ॥
मयि ते यद्यनुक्रोशो यदि रक्षःसु तेषु च। रामेण यदि ते शक्तिस्तेजो वास्ति निशाचर ॥१४॥
दण्डकारण्यनिलयं जहि राक्षसकण्टकम्। यदि रामं ममामित्रं न त्वमद्य वधिष्यसि ॥१५॥
तत्र चैवाग्रतः प्राणांस्त्यक्ष्यामि निरपत्रपा। बुद्ध्याहमनुपश्यामि न त्वं रामस्य संयुगे ॥१६॥
स्थातुं प्रतिमुखे शक्तः सबलोऽपि माहारणे। शूरमानी न शूरस्त्वं मिथ्यारोपितविक्रमः ॥१७॥
अपयाहि जनस्थानात्त्वरितः सहबान्धवः। जहि त्वं समरे मूढान्यथा तु कुलपांसन ॥१८॥
मानुषौ यौ न शक्नोषि हन्तुं तौ रामलक्ष्मणौ। निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्य वासस्ते कीदृशस्त्विह ॥१९॥
रामतेजोऽभिभूतो हि त्वं क्षिप्रं विनशिष्यसि। स हि तेजःसमायुक्तो रामो दशरथात्मजः ॥२०॥
भ्राता चास्य महावीर्यो येन चास्मि विरूपिता। एवं विलप्य बहुशो राक्षसी प्रदरोदरी ॥२१॥
भ्रातुः समीपे दुःखार्त्ता नष्टसंज्ञा बभूव ह। कराभ्यामुदरं हत्वा रुरोद भृशदुःखिता ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे खरसन्धुक्षणं नाम एकविंशः सर्गः ॥२१॥

सब ओर मुझको भय दिखाई दे रहा है। इसलिए मैं तुम्हारी शरण में आई हूँ ॥ ११ ॥ विषाद रूपी ग्राहों से परिपूर्ण तथा भयरूपी तरङ्गों से तरङ्गित अगाध शोक समुद्र में डूबती हुई मुझको तुम क्यों नहीं बचाते हो ॥ १३ ॥ शोणित पान करने वाले जिन राक्षसों को तुमने मेरी मनोरथ सिद्धि के लिए भेजा था वे सब ही राक्षस राम के प्रखर बाणों से रणभूमि में मारे गये ॥ १३ ॥ यदि मुझपर तथा सम्पूर्ण राक्षसों पर तुम्हारी दया है और हे निशाचर ! राम से संग्राम करने के लिए तुममें शक्ति तथा तेज है ॥ १४ ॥ तो दण्डकारण्यवासी राक्षसों के लिए कण्टकभूत राम को मारो। यदि शत्रुओं के वध करने वाले रामचन्द्र का तुम आज वध न करोगे ॥ १५ ॥ तो तुम्हारे सामने ही लज्जा को छोड़कर अपने प्राणों को त्याग दूँगी। मैं बुद्धि पूर्वक यह देखती हूँ कि संग्राम में बलवान् होने पर भी तुम अपने प्रतिवादी रामचन्द्र के सामने संग्राम में नहीं ठहर सकोगे। तुम अपने को व्यर्थ ही वीर समझते हो। केवल शूरता का अभिमान करते हो, वास्तव में तुम वीर नहीं हो ॥ १६, १७ ॥ अपने बन्धु बान्धवों के सहित तुम इस जन स्थान को छोड़कर शीघ्र ही दूर चले जाओ। अथवा हे कुलकलंक खर ! संग्राम में तुम इन अपने शत्रुओं को मारो ॥ १८ ॥ यदि तुम सामान्य मनुष्य राम-लक्ष्मण को नहीं मार सकते हो तो तुम्हारे ऐसे बल पराक्रम हीन पुरुष का यहाँ निवास कैसे हो सकता है ॥ १९ ॥ दशरथ के राजकुमार रामचन्द्र जी तेजस्वी हैं। उनके तेज तथा पराक्रम से पराजित होकर तुम शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाओगे ॥ २० ॥ उस रामचन्द्र का छोटा भाई लक्ष्मण बड़ा पराक्रमी है जिसने कि मुझे कर्ण-नासिका से विहीन किया है। इस प्रकार विकराल उदर वाली वह राक्षसी बहुत प्रकार से विलाप करती हुई ॥ २१ ॥ अपने भाई खर के समीप अपने हाथों से अपने वक्षःस्थल को पीटती तथा रोती हुई शोकार्त्ता शूर्पणखा मूर्छित हो गयी ॥ २२ ॥

इस प्रकार बाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'खर को उत्तेजित करना' विषयक इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२१॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वाविंशः सर्गः

खरसंनाहः

एवमाधर्षितः शूरः शूर्पणख्या खरस्तदा । उवाच रक्षसां मध्ये खरः खरतरं वचः ॥ १ ॥
तवावमानप्रभवः क्रोधोऽयमतुलो मम । न शक्यते धारयितुं लवणाम्भ इवोत्थितम् ॥ २ ॥
न रामं गणये वीर्यान्मानुषं क्षीणजीवितम् । आत्मदुश्चारितैः प्राणान् हतो योऽद्य विमोक्ष्यति ॥
बाष्पः संह्रियतामेष संभ्रमश्च विमुच्यताम् । अहं रामं सह भ्रात्रा नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥
परश्वधहतस्याद्य मन्दप्राणस्य संयुगे । रामस्य रुधिरं रक्तमुष्णं पास्यसि राक्षसि ॥ ५ ॥
सा प्रहृष्टा वचः श्रुत्वा खरस्य वदनाच्युतम् । प्रशशंस पुनर्मौर्ख्याद् भ्रातरं रक्षसां वरम् ॥ ६ ॥
तया परुषितः पूर्वं पुनरेव प्रशंसितः । अब्रवीद्दूषणं नाम खरः सेनापतिं तदा ॥ ७ ॥
चतुर्दश सहस्राणि मम चित्तानुवर्तिनाम् । रक्षसां भीमवेगानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ८ ॥
नीलजीमूतवर्णानां लोकहिंसाविहारिणाम् । सर्वोद्योगमुदीर्णानां रक्षसां सौम्य कारय ॥ ९ ॥
उपस्थापय मे क्षिप्रं रथं सौम्य धनूंषि च । शरांश्चित्रांश्च खड्गांश्च शक्तीश्च विविधाः शिताः ॥१०॥
अग्रे निर्यातुमिच्छामि पौलस्त्यानां महात्मनाम् । वधार्थं दुर्विनीतस्य रामस्य रणकोविदः ॥११॥
इति तस्य ब्रुवाणस्य सूर्यवर्णं महारथम् । सदश्वैः शबलैर्युक्तमाचचक्षेऽथ दूषणः ॥१२॥

बाईसवाँ सर्ग

खर की तैयारी

शूर्पणखा के द्वारा इस प्रकार अपमानित होने पर वह वीर खर राक्षसों के बीच में इस प्रकार कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ तुम्हारे द्वारा अपमानित होने पर मैं अपने क्रोध को उसी प्रकार नहीं रोक सकता जैसे पूर्णिमा पर्व के दिन समुद्र अपने तरङ्गित वेगों को नहीं रोक सकता है ॥ २ ॥ अल्प जीवन वाले सामान्य मनुष्य रामचन्द्र के पराक्रम को मैं कुछ भी नहीं समझता । आज वह अपने अपराधों से ही मरकर अपने प्राणों से विमुक्त होगा ॥ ३ ॥ अपने आँसुओं को रोको, तथा घबराहट को दूर करो । भ्राता के सहित रामचन्द्र को आज यमराज के सदन का अतिथि बनाऊँगा ॥४॥ हे राक्षसि! आज इस स्थान पर मेरे परश्वध नामक अस्त्र के द्वारा अल्पायु राम के मारे जाने पर उसके उष्ण शोणित का तुम पान करोगी ॥ ५ ॥ खर के मुख से निकली हुई इन बातों को सुनकर राक्षसों में श्रेष्ठ अपने भाई खर की मूर्खता वश वह शूर्पणखा प्रशंसा करने लगी ॥ ६ ॥ उस राक्षसी ने प्रथम तो उसकी निन्दा की । पश्चात् उसकी प्रशंसा की ऐसी अवस्था में खर अपने दूषण नामक सेनापति से यह बोला ॥ ७ ॥ हे सौम्य ! मेरे आज्ञाकारी भयङ्कर वेग वाले, संग्राम में कभी भी पीछे न हटने वाले, नील मेघ के समान श्याम वर्ण वाले, प्राणिमय जगत् की हिंसा में आनन्द मनाने वाले तथा युद्ध में उत्साह रखने वाले चौदह हजार राक्षसों को तुम शीघ्र ही युद्ध के लिए तैयार करो ॥ ८, ९ ॥ हे सौम्य ! नाना प्रकार की तीव्र शक्ति, खड्ग, धनुष और विचित्र बाणों को तथा मेरे रथ को शीघ्र ही मेरे सामने उपस्थित करो ॥ १० ॥ रणचतुर मैं उद्दण्ड राम का वध करने के लिए पौलस्त्य वंशीय महात्मा राक्षसों के आगे-आगे चलना चाहता हूँ ॥ ११ ॥ खर के ऐसा आदेश देने पर विचित्र वर्ण वाले, अच्छे घोड़े जिसमें जोते गये हैं ऐसे सूर्य के समान देदीप्यमान रथ के आ जाने पर दूषण ने खर को रथ के आगमन की सूचना दी ॥ १२ ॥ मेरु शिखर के समान ऊँचे, तपाये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तं मेरुशिखराकारं तप्तकाञ्चनभूषणम् । हेमचक्रमसंबाधं वैदूर्यमयकूबरम् ॥१३॥
मत्स्यैः पुष्पैर्द्रुमैः शैलैश्चन्द्रकान्तैश्च काञ्चनैः । मङ्गलैः पक्षिसङ्घैश्च ताराभिरभिसंवृतम् ॥१४॥
ध्वजनिस्त्रिंशसंपन्नं किङ्किणीकविराजितम् । सदश्वयुक्तं सोऽमर्षादारुरोह खरो रथम् ॥१५॥
खरस्तु तान् महेष्वासान् घोरवर्मायुधध्वजान् । निर्यातेत्यब्रवीद्धृष्टो रथस्थः सर्वराक्षसान् ॥१६॥
ततस्तद्राक्षसं सैन्यं घोरवर्मायुधध्वजम् । निर्जगाम जनस्थानान्महानादं महाजवम् ॥१७॥
मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च परश्वधैः । खड्गैश्चक्रैश्च हस्तस्थैर्भ्राजमानैश्च तोमरैः ॥१८॥
शक्तिभिः परिघैर्घोरैरतिमात्रैश्च कार्मुकैः । गदासिमुसलैर्वज्रैर्गृहीतैर्भीमदर्शनैः ॥१९॥
राक्षसानां सुघोराणां सहस्राणि चतुर्दश । निर्यातानि जनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥२०॥
तांस्त्वभिद्रवतो दृष्ट्वा राक्षसान् भीमविक्रमान् । खरस्यापि रथः किंचिज्जगाम तदनन्तरम् ॥२१॥
ततस्ताञ्शबलानश्वांस्तप्तकाञ्चनभूषितान् । खरस्य मतिमाज्ञाय सारथिः समचोदयत् ॥२२॥
स चोदितो रथः शीघ्रं खरस्य रिपुघातिनः । शब्देनापूरयामास दिशश्च प्रदिशस्तदा ॥२३॥
प्रवृद्धमन्युस्तु खरः खरस्वनो रिपोर्वधार्थं त्वरितो यथान्तकः ।
अचूचुदत्सारथिमुन्नदन् घनं महाबलो मेघ इवाश्मवर्षवान् ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे खरसंनाहो नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

हुए स्वर्ण से सुभूषित, स्वर्ण रेखाओं से अङ्कित चक्र वाले, वैदूर्य मणियों से अलंकृत युगन्धर (जुये) वाले, ॥ १३ ॥ मंगल सूचक चन्द्रकान्त मणि तथा स्वर्ण निर्मित मछली, पुष्प, वृक्ष, पर्वत, तारा तथा पक्षिगण से चित्रित ॥ १४ ॥ ध्वजा पताकाओं से शोभित, जिस पर खड्गादि उत्तम शस्त्रास्त्र रखे हुये हैं, जिसमें उत्तम किङ्किणी (घुंघुरु) लगे हुये है तथा जिसमें उत्तम जाति के घोड़े जुते हुये हैं ऐसे प्रचुर साधन सम्पन्न रथ पर खर क्रोध पूर्वक सवार हो गया ॥ १५ ॥ खर तथा सेनापति दूषण ने रथ, ढाल, शस्त्रास्त्र, तथा ध्वजा पताकाओं वाली राक्षसों की उस महती सेना को चलने का आदेश दिया ॥ १६ ॥ सेनापति तथा खर के ऐसा आदेश देने पर ढाल तलवार ध्वजा पताका वाली वह राक्षसों की महती सेना महानाद करती हुई वेग पूर्वक उस जन स्थान से चल पड़ी ॥ १७ ॥ मुद्गर, पट्टिश, तीखे शूल, परश्वध, खड्ग, चक्र, प्रकाशित तोमरों से परिपूर्ण ॥ १८ ॥ बर्छी, भयङ्कर परिघ, विशाल धनुष, गदा, मूसल, तलवार वज्र आदि जो हाथों में लिए हुए हैं ऐसे भयङ्कर रूप वाले ॥ १९ ॥ व्यक्तियों से पूर्ण चौदह हजार राक्षसों की वह विकराल तथा खर की आज्ञाकारिणी सेना जन स्थान से निकल पड़ी ॥ २० ॥ उन विकराल रूप वाले भयंकर राक्षसों को दौड़ते हुए देखकर खर रथ पर बैठकर तदनन्तर चल पड़ा ॥ २१ ॥ खर के अभिप्राय को जानकर उसके सारथि ने तप्त काञ्चन के अलङ्कारों से अलंकृत चित्र वर्ण वाले घोड़ों को आगे चलाया ॥ २२ ॥ शत्रुघाती खर के गमन करते हुए रथ के शब्द ने सम्पूर्ण दिशा और विदिशाओं को अपने नाद से निनादित कर दिया ॥ २३ ॥ शत्रु के वध करने के लिए ओले बरसाने वाले मेघ के समान तीक्ष्ण स्वर वाले, क्रोधी, यमराज तुल्य, महाबली खर ने सारथि को शीघ्र चलने के लिए प्रेरित किया ॥२४॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'खर की तैयारी' विषयक बाईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ २२ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रयोविंशः सर्गः

उत्पातदर्शनम्

तस्मिन् याते जनस्थानादशिवं शोणितोदकम् । अभ्यवर्षन्महामेघस्तुमुलो गर्दभारुणः ॥ १ ॥
निपेतुस्तुरगास्तस्य रथयुक्ता महाजवाः । समे पुष्पचिते देशे राजमार्गे यदृच्छया ॥ २ ॥
श्यामं रुधिरपर्यन्तं बभूव परिवेषणम् । अलातचक्रप्रतिमं परिगृह्य दिवाकरम् ॥ ३ ॥
ततो ध्वजमुपागम्य हेमदण्डं समुच्छ्रितम् । समाक्रम्य महाकायस्तस्थौ गृध्रः सुदारुणः ॥ ४ ॥
जनस्थानसमीपे तु समागम्य खरस्वनाः । विस्वरान् विविधांश्चक्रुर्मांसादा मृगपक्षिणः ॥ ५ ॥
व्याजहुश्च प्रदीप्तायां दिशि वै भैरवस्वनम् । अशिवं यातुधानानां शिवा घोरा महास्वनाः ॥ ६ ॥
प्रभिन्नगिरिसंकाशास्तोयशोणितधारिणः । आकाशं तदनाकाशं चक्रुर्भीमा बलाहकाः ॥ ७ ॥
बभूव तिमिरं घोरमुद्धतं रोमहर्षणम् । दिशो वा विदिशो वापि न च व्यक्तं चकाशिरे ॥ ८ ॥
क्षतजार्द्रसवर्णाभा सन्ध्या कालं विना बभौ । खरस्याभिमुखा नेदुस्तदा घोरमृगाः खगाः ॥ ९ ॥
कङ्कगोमायुगृध्राश्च चुक्रुशुर्भयशंसिनः । नित्याशिवकरा युद्धे शिवा घोरनिदर्शनाः ॥१०॥
नेदुर्बलस्याभिमुखं ज्वालोद्गारिभिराननैः । कबन्धः परिघाभासो दृश्यते भास्करान्तिके ॥११॥
जग्राह सूर्यं स्वर्भानुरपर्वणि महाग्रहः । प्रवाति मारुतः शीघ्रं निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥१२॥

तेईसवाँ सर्ग

उत्पातों का देखना

सेना के समेत खर के प्रस्थान करते समय गर्दभ के समान धूसर वर्ण वाले तथा तुमुल ध्वनि करने वाले मेघों ने अमंगल सूचक लाल जल की वृष्टि की ॥ १ ॥ खर के रथ में जुते हुए महावेग वाले घोड़े फूल से भरी हुई समतल भूमि में सहसा गिर पड़े ॥ २ ॥ सूर्य के चारों तरफ धूम रहित अग्निमण्डल के समान कुछ श्यामिका युक्त एक परिधि दिखाई देने लगी ॥ ३ ॥ स्वर्ण दण्ड से युक्त ऊँची जो खर के रथ की ध्वजा थी उसपर एक विशाल शरीर वाला गिद्ध जाकर बैठ गया ॥ ४ ॥ जनस्थान के समीप खर के रथ आने पर मांसभक्षी पशु पक्षिगण अनेक प्रकार के अमङ्गल सूचक भयानक शब्द करने लगे ॥ ५ ॥ सूर्य से प्रकाशित पूर्व की दिशा में राक्षसों के लिए अमङ्गल सूचक भयङ्कर शब्द करने वाली शृगाली बोलने लगी ॥ ६ ॥ विशालकाय मतवाले हाथियों के समान लाल जल के धारण करने वाले मेघों ने उस समय सम्पूर्ण आकाश को आच्छादित कर लिया ॥ ७ ॥ मेघाच्छन्न आकाश के हो जाने से रोमाञ्चकारी भयङ्कर अन्धकार उत्पन्न हो गया जिससे सम्पूर्ण दिशा और विदिशाओं का ज्ञान होना भी कठिन हो गया ॥ ८ ॥ सन्ध्या काल के पूर्व ही रक्त वर्ण वाले वस्त्र के समान संध्या सी हो गयी तथा खर के सामने भयङ्कर पशु पक्षी नाद करने लगे ॥ ९ ॥ आतङ्क उत्पन्न करने वाले चील, सियार, गिद्ध सभी बोलने लगे। अमंगल की सूचना देने वाली तथा भय उत्पन्न करने वाली ज्वाला मुख वाली शृगाली भी खर की सेना के सामने बोलने लगी। सूर्य के समक्ष विना मस्तक के केवल धड़ दिखाई देने लगा ॥ १०, ११ ॥ विना पर्व के ही सूर्य पर ग्रहण सा लग गया। बड़े वेग से वायु चलने लगा। सूर्य का प्रकाश भी धीमा पड़ गया ॥१२॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्पेतुश्च विना रात्रिं ताराः खद्योतसप्रभाः । संलीनमीनविगहा नलिन्यः शुष्कपङ्कजाः ॥१३॥
तस्मिन् क्षणे बभूवुश्च विना पुष्पफलैर्द्रुमाः । उद्धूतश्च विना वातं रेणुर्जलधरारुणः ॥१४॥
वीचीकूचीति वाश्यन्त्यो बभूवुस्तत्र शारिकाः । उल्काश्चापि सनिर्घाता निपेतुर्घोरदर्शनाः ॥१५॥
प्रचचाल मही सर्वा सशैलवनकानना । खरस्य च रथस्थस्य नर्दमानस्य धीमतः ॥१६॥
प्राकम्पत भुजः सव्यः स्वरश्चास्यावसज्जत । सास्रा संपद्यते दृष्टिः पश्यमानस्य सर्वतः ॥१७॥
ललाटे च रुजा जाता न च मोहान्न्यवर्तत । तान् समीक्ष्य महोत्पातानुत्थितान् रोमहर्षणान् ॥१८॥
अब्रवीद्राक्षसान् सर्वान् प्रहसन् स खरस्तदा । महोत्पातानिमान् सर्वानुत्थितान् घोरदर्शनान् ॥१९॥
न चिन्तयाम्यहं वीर्याद्बलवान् दुर्बलानिव । तारा अपि शरैस्तीक्ष्णैः पातयामि नभःस्थलात् ॥२०॥
मृत्युं मरणधर्मेण संक्रुद्धो योजयाम्यहम् । राघवं तं बलोत्सिक्तं भ्रातरं चास्य लक्ष्मणम् ॥२१॥
अहत्वा सायकैस्तीक्ष्णैर्नोपावर्तितुमुत्सहे । यन्निमित्तस्तु रामस्य लक्ष्मणस्य विपर्ययः ॥२२॥
सकामा भगिनी मेऽस्तु पीत्वा तु रुधिरं तयोः । न क्वचित्प्राप्तपूर्वो मे संयुगेषु पराजयः ॥२३॥
युष्माकमेतत्प्रत्यक्षं नानृतं कथयाम्यहम् । देवराजमपि क्रुद्धो मत्तैरावतयायिनम् ॥२४॥
वज्रहस्तं रणे हन्यां किं पुनस्तौ कुमानुषौ । सा तस्य गर्जितं श्रुत्वा राक्षसस्य महाचमूः ॥२५॥
प्रहर्षमतुलं लेभे मृत्युपाशावपाशिता । समीयुश्च महात्मानो युद्धदर्शनकाङ्क्षिणः ॥२६॥

दिन में ही महान् अन्धकार हो जाने से खद्योत (जुगनू) के समान तारा गण दिखाई देने लगे। सरोवरों में मछलियाँ तथा आकाश में उड़ने वाले पक्षिगण जहाँ तहाँ छिप गये और सरोवरों के कमल भी शुष्क के समान हो गये ॥ १३ ॥ उस समय सम्पूर्ण वृक्ष फल फूल से हीन जैसे दिखाई देने लगे। वायु के बिना धूसर वर्ण की धूल उड़ने लगी ॥ १४ ॥ सारिकाएँ (मैना) यत्र तत्र चीं चीं कू चीं शब्द करने लगीं। भय उत्पन्न करने वाले घोर शब्द पूर्वक उल्कापात का दृश्य उपस्थित हो गया ॥ १५ ॥ शब्द घोष करने वाले रथ पर बैठे हुए बुद्धिमान् खर के समक्ष सम्पूर्ण भूमि तथा पर्वत कांपने से लगे ॥१६॥ खर की बायीं भुजा कांपने लगी, स्वर भी मन्द हो गया, चारों तरफ देखते समय उसकी दृष्टि आंसुओं से भर गयी ॥१७॥ उसके मस्तक में पीड़ा होने लगी, यह सब होने पर भी वह अज्ञान वश नहीं लौटा। इस प्रकार रोमाञ्च-कारी उत्पातों को देखकर ॥ १८ ॥ वह खर हँसते हुए अपने सम्पूर्ण राक्षस सैनिकों से बोला। उठे हुए भयङ्कर इन सम्पूर्ण उत्पातों की मैं कुछ भी चिन्ता नहीं करता। जिस प्रकार बली मनुष्य बलहीनों की चिन्ता नहीं करता है। मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से नक्षत्र मण्डल को भी आकाश से गिरा सकता हूँ ॥ १९, २० ॥ क्रोध में आनेपर मैं मृत्यु की भी मृत्यु कर सकता हूँ। मेरी बहन शूर्पणखा के नाक-कान को काटकर जिसने बुद्धि-विपर्यय का परिचय दिया है, उस राम और लक्ष्मण को अपने तीक्ष्ण बाणों के द्वारा बिना समाप्त किये अब नहीं लौटूँगा। ॥ २१, २२ ॥ संग्राम में मरे हुए राम लक्ष्मण के रुधिर का पान कर मेरी बहन सफल मनोरथ होगी। मैं आजतक किसी भी संग्राम में पराजित नहीं हुआ। ॥ २३ ॥ तुम लोग भी मेरे वृत्तान्त से परिचित हो। मैं कोई अनृत नहीं बोल रहा हूँ। क्रुद्ध होने पर मैं मत्त ऐरावत गज पर गमन करने वाले वज्रधारी देवराज इन्द्र को भी संग्राम में मार सकता हूँ, उन सामान्य दो मनुष्यों की तो बात ही क्या ? मृत्यु के पाश में फँसी हुई उस राक्षसों की विशाल सेना ने खर के इस गर्वित गर्जन को सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। युद्ध दर्शन की आकाङ्क्षा रखने वाले वनवासी महात्मा लोग भी युद्ध दर्शनार्थ वहाँ आगये ॥ २४–२६ ॥ ऋषि, देव, सिद्ध, गन्धर्व, ये सभी चारणों के साथ में वहाँ आये। पुण्य कर्म

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋषयो देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः । समेत्य चोचुः सहितास्तेऽन्योन्यं पुण्यकर्मणः ॥२७॥
स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्योऽस्तु लोकानां येऽभिसंगताः । जयतां राघवः सङ्ख्ये पौलस्त्यान् रजनीचरान्।२८।
चक्रहस्तो यथा विष्णुः सर्वानसुरपुंगवान् । एतच्चान्यच्च बहुशो ब्रुवाणाः परमर्षयः ॥२९॥
जातकौतूहलास्तत्र विमानस्थाश्च देवताः । ददृशुर्वाहिनीं तेषां राक्षसानां गतायुषाम् ॥३०॥
रथेन तु खरो वेगादुग्रसैन्यो विनिःसृतः । श्येनगामी पृथुग्रीवो यज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥३१॥
दुर्जयः करवीराक्षः परुषः कालकार्मुकः । मेघमाली महामाली सर्पास्यो रुधिराशनः ॥३२॥
द्वादशैते महावीर्याः प्रतस्थुरभितः खरम् । महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथी त्रिशिरास्तथा ॥३३॥
चत्वार एते सेनान्यो दूषणं पृष्ठतो ययुः ।
सा भीमवेगा समराभिकामा महाबला राक्षसवीरसेना ।
तौ राजपुत्रौ सहसाभ्युपेता माला ग्रहाणामिव चन्द्रसूर्यौ ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे उत्पातदर्शनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥२३॥

चतुर्विंशः सर्गः

रामखरबलसंनिकर्षः

आश्रमं प्रतियाते तु खरे खरपराक्रमे । तानेवौत्पातिकान् रामः सह भ्रात्रा ददर्श ह ॥ १ ॥

करने वाले वे सभी लोग परस्पर एक दूसरे से यह बोले ॥ २७ ॥ गौ, ब्राह्मणों का कल्याण हो । संसार के सभी हितकारी प्राणियों का कल्याण हो । युद्ध में पौलस्त्य वंशोद्भव राक्षसों पर रामचन्द्र विजयी होवें ॥ २८ ॥ जैसे चक्रहस्त विष्णु (आकाश मण्डल में व्यापक यज्ञ) सम्पूर्ण असुरभूत अनिष्टकारी कीटाणुओं पर विजय करता है । इस प्रकार की अन्य बहुत सी परस्पर बातें करते हुए ऋषि लोग तथा विमानस्थ देवमण्डल (विज्ञानवादियों का दल) कुतूहल वश आयु हीन उन राक्षसों की सेना को देखने के लिए वहाँ आया ॥ २९, ३० ॥ खर अपने वेगवान् रथपर बैठकर सेना के अग्रभाग में चला गया । श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञ-शत्रु, विहङ्गम, दुर्जय, करवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्पास्य तथा रुधिराशन नामक ये महान् पराक्रमी बारह राक्षस खर के रथ के दोनों ओर चल पड़े । महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथ तथा त्रिशिरा ये चार सहायक सेनापति प्रधान सेनापति दूषण के अनुगामी सेना के अग्रभाग में चल पड़े ॥ ३१–३३ ॥ नभमण्डल में जैसे ग्रहों का समूह सूर्य तथा चन्द्र मण्डल को घेरे रहता है, उसी प्रकार संग्राम अभिलाषी भयानक राक्षसों की वीर सेना अत्यन्त वेग से राम लक्ष्मण के समीप पहुँची ॥ ३४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'उत्पातों का देखना' विषयक तेईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवां सर्ग

रामचन्द्र तथा खर की सेना का सामना

तीक्ष्ण पराक्रमी खर के आश्रम के समीप पहुँचने पर उत्पात स्वरूप उन सभी राक्षसों को अपने भाई के साथ रामचन्द्र ने देखा ॥ १ ॥ प्रजा के अहितकारी महान् उत्पात स्वरूप उन घोर राक्षसों को देखकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तानुत्पातान् महाघोरानुत्थितान् रोमहर्षणान् । प्रजानामहितान् दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥
इमान् पश्य महाबाहो सर्वभूतापहारिणः । समुत्थितान् महोत्पातान् संहर्तुं सर्वराक्षसान् ॥ ३ ॥
अमी रुधिरधारास्तु विसृजन्तः खरस्वनाः । व्योम्नि मेघा विवर्तन्ते परुषा गर्दभारुणाः ॥ ४ ॥
सधूमाश्च शराः सर्वे मम युद्धाभिनन्दिनः । रुक्मपृष्ठानि चापानि विवेष्टन्ते च लक्ष्मण ॥ ५ ॥
यादृशा इह कूजन्ति पक्षिणो वनचारिणः । अग्रतो नो भयं प्राप्तं संशयो जीवितस्य च ॥ ६ ॥
संप्रहारस्तु सुमहान् भविष्यति न संशयः । अयमाख्याति मे बाहुः स्फुरमाणो मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥
संनिकर्षे तु नः शूर जयं शत्रोः पराजयम् । सप्रभं च प्रसन्नं च तव वक्त्रं हि लक्ष्यते ॥ ८ ॥
उद्यतानां हि युद्धार्थं येषां भवति लक्ष्मण । निष्प्रभं वदनं तेषां भवत्यायुःपरिक्षये ॥ ९ ॥
रक्षसां नर्दतां घोरः श्रूयते च महाध्वनिः । आहतानां च भेरीणां राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥१०॥
अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता । आपदं शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता ॥११॥
तस्माद्गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः । गुहामाश्रय शैलस्य दुर्गां पादपसंकुलाम् ॥१२॥
प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया । शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स मा चिरम्॥१३॥
त्वं हि शूरश्च बलवान् हन्या ह्येतान्न संशयः । स्वयं तु हन्तुमिच्छामि सर्वानेव निशाचरान् ॥१४॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया । शरानादाय चापं च गुहां दुर्गां समाश्रयत् ॥१५॥
तस्मिन् प्रविष्टे तु गुहां लक्ष्मणे सह सीतया । हन्त निर्युक्तमित्युक्त्वा रामः कवचमाविशत् ॥१६॥

ऋषियों के कष्ट न सहने वाले रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण से बोले ॥ २ ॥ हे विशाल भुजावाले लक्ष्मण ! सम्पूर्ण राक्षसों के विनाश की सूचना देने वाले तथा अन्य प्राणियों के नाशकारी उठे हुए इन उत्पातों को देखो ॥ ३ ॥ भयङ्कर गर्जन करने वाले धूल धूसरित गर्दभ के समान वर्ण वाले ये मेघ रुधिर धारा के समान वर्षा कर रहे हैं ॥ ४ ॥ युद्ध में आनन्द मनाने वाले ये मेरे बाण धूम युक्त दिखाई दे रहे है। स्वर्ण चिह्नित मध्यवाले ये मेरे धनुष फड़क रहे हैं ॥ ५ ॥ वनचारी पक्षिगण जिस प्रकार यहाँ बोल रहे हैं उससे यह प्रकट हो रहा है कि कोई प्राणघातक भय उपस्थित हो गया है ॥ ६ ॥ बारबार फड़कती हुई यह मेरी भुजा बतला रही है कि कोई महान् संहार होने वाला है, इसमें कोई संशय नहीं ॥ ७ ॥ हे वीर लक्ष्मण ! हम लोगों की जय तथा शत्रुओं की पराजय सन्निकट है, क्योंकि युद्ध समाचार सुनकर भी तुम्हारा मुखमण्डल प्रसन्न तथा कान्तिमान् दिखाई दे रहा है ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! संग्राम के आजाने पर युद्धार्थ जिन लोगों के मुखमण्डल की कान्ति नष्ट हो जाती है, उनकी मृत्यु निश्चित होती है ॥ ९ ॥ क्रूर कर्म करने वाले राक्षसों के द्वारा बजाई गई भेरी का नाद तथा घोर गर्जन करने वाले राक्षसों की महाध्वनि सुनाई दे रही है ॥ १० ॥ कल्याण चाहने वाले बुद्धिमान् मनुष्य को विपत्ति आने के पूर्व ही उसके प्रतिकार का उपाय करना चाहिए । ॥ ११ ॥ इसलिए तुम धनुष बाण को लेकर वैदेही के साथ वृक्ष वाले किसी पर्वत की गुफा का आश्रय लो । ॥ १२ ॥ मैं अपने चरणों की शपथ तुम्हें देता हूँ । मेरी इन कही हुई बातों का तुम विरोध मत करो । हे बन्धु ! अब तुम जाओ, देर मत करो ॥ १३ ॥ इसमें कोई संशय नहीं कि तुम वीर तथा पराक्रमी हो, इन सभी राक्षसों को मार सकते हो किन्तु मैं इन सम्पूर्ण निशाचरों को स्वयं मारना चाहता हूँ ॥ १४ ॥ रामचन्द्र के ऐसा कहने पर धनुष बाणों को लेकर लक्ष्मण ने सीता के साथ दुर्गम गुफा का आश्रय लिया ॥ १५ ॥ सीता के साथ लक्ष्मण के गुफा में प्रविष्ट हो जाने पर राम ने, प्रसन्नता है कि लक्ष्मण ने मेरी आज्ञा मान ली, ऐसा कह कर कवच धारण किया ॥ १६ ॥ अग्नि के समान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स तेनाग्निनिकाशेन कवचेन विभूषितः । बभूव रामस्तिमिरे विधूमोऽग्निरिवोत्थितः ॥१७॥
स चापमुद्यम्य महच्छरानादाय वीर्यवान् । बभूवावस्थितस्तत्र ज्यास्वनैः पूरयन् दिशः ॥१८॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः । समेयुश्च महात्मानो युद्धदर्शनकाङ्क्षिणः ॥१९॥
ऋषयश्च महात्मानो लोके ब्रह्मर्षिसत्तमाः । समेत्य चोचुः सहिता अन्योन्यं पुण्यकर्मणः ॥२०॥
स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्योऽस्तु लोकानां येऽभिसंगताः । जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यान् रजनीचरान् ॥२१॥
चक्रहस्तो यथा विष्णुः सर्वानसुरपुंगवान् । एवमुक्त्वा पुनः प्रोचुरालोक्य च परस्परम् ॥२२॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धं भविष्यति ॥२३॥
इति राजर्षयः सिद्धाः सगणाश्च द्विजर्षभाः । जातकौतूहलास्तस्थुर्विमानस्थाश्च देवताः ॥२४॥
आविष्टं तेजसा रामं संग्रामशिरसि स्थितम् । दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि भयाद्व्यथिरे तदा ॥२५॥
रूपमप्रतिमं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । बभूव रूपं क्रुद्धस्य रुद्रस्येव पिनाकिनः ॥२६॥
इति संभाष्यमाणे तु देवगन्धर्वचारणैः । ततो गम्भीरनिर्ह्रादं घोरवर्मायुधध्वजम् ॥२७॥
अनीकं यातुधानानां समन्तात्प्रत्यदृश्यत । सिंहनादं विसृजतामन्योन्यमभिगर्जताम् ॥२८॥
चापानि विस्फारयतां जृम्भतां चाप्यभीक्ष्णशः । विप्रघुष्टस्वनानां च दुन्दुभींश्चापि निघ्नताम् ॥२९॥
तेषां सुतुमुलः शब्दः पूरयामास तद्वनम् । तेन शब्देन वित्रस्ताः श्वापदा वनचारिणः ॥३०॥

देदीप्यमान उस कवच के धारण करने पर रामचन्द्र अन्धकार में महान् प्रज्वलित अग्नि के समान प्रतीत होने लगे ॥ १७ ॥ पराक्रमी रामचन्द्र विशाल धनुष तथा बाणों के साथ बिलकुल तैयार हो गये तथा अपने धनुष को 'ज्या' के शब्द से गुञ्जायमान करने लगे ॥ १८ ॥ पश्चात् देवता, गन्धर्व, तथा चारणों के साथ महात्मा, सिद्ध गण युद्ध दर्शन की इच्छा से वहाँ आये ॥ १९ ॥ महात्मा, ऋषि लोग तथा लोक प्रतिष्ठित ब्रह्मर्षि गण ये सभी पुण्यकर्मा वहाँ आपस में इस प्रकार बातें करने लगे ॥ २० ॥ गौ, ब्राह्मण तथा लोक के हितकारी सभी प्राणियों का कल्याण हो। संग्राम में रामचन्द्र पौलस्त्य वंशीय राक्षसों पर उसी प्रकार विजय प्राप्त करें ॥ २१ ॥ जिस प्रकार चक्रधारी विष्णु समर दुर्जय सेनापति संग्राम में सम्पूर्ण असुर सेना पर विजय प्राप्त करता है। वे सभी आए हुए देवगण एक दूसरे को देखते हुए आपस में बोले ॥ २२ ॥ भयङ्कर कर्म करने वाले इधर १४ हजार राक्षस हैं और उधर धर्मात्मा रामचन्द्र अकेले हैं इनका आपस में युद्ध कैसे होगा ॥ २३ ॥ इस प्रकार सिद्ध राजर्षिगण अपने अनुयायियों के समेत ब्राह्मण गण, तथा विमानस्थ देव गण, कौतूहल वश वहाँ स्थित हो गये ॥ २४ ॥ संग्राम भूमि में तेजस्वी रामचन्द्र को खड़े हुए देखकर सभी प्राणि वर्ग भय से व्याकुल हो गये ॥ २५ ॥ उस समय संग्राम क्षेत्र में क्रुद्ध हुए महात्मा रुद्र के समान कल्याणकारी रामचन्द्र का अप्रतिम तथा अद्भुत रूप हो गया ॥ २६ ॥ देवगण तथा गन्धर्व, चारण लोगों के इस प्रकार बातें करते हुए गम्भीर शब्द जिसमें हो रहा है, भयानक ढाल आदि आयुध तथा ध्वजा पताकाएँ जिसमें फहरा रही हैं, आपस में वीर लोग बीरता पूर्वक बातें जहाँ कर रहे हैं ऐसी राक्षसों की सेना वहाँ रामचन्द्र के पास आगयी ॥ २७,२८ ॥ वे राक्षस लोग अपने धनुष का टङ्कार कर रहे थे तथा जो बार बार उत्तेजित हो रहे थे, भयङ्कर ध्वनि करते हुए जो दुन्दुभि (नगाड़े) बजा रहे थे ॥ २९ ॥ उन सैनिकों के वाद्य आदि के महान् शब्दों से वह वन परिपूर्ण हो गया। इस भयङ्कर शब्द से डरे हुए वनचारी जन्तु और भी डर गये ॥ ३० ॥ वे भागने वाले वनचारी गण भागते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दुद्रुवुर्यत्र निःशब्दं पृष्ठतो न व्यलोकयन् । तत्त्वनीकं महावेगं रामं समुपसर्पत ॥३१॥
धृतनानाप्रहरणं गम्भीरं सागरोपमम् । रामोऽपि चारयंश्चक्षुः सर्वतो रणपण्डितः ॥३२॥
ददर्श खरसैन्यं तद्युद्धाभिमुखमुत्थितम् । वितत्य च धनुर्भीमं तूण्याश्चोद्धृत्य सायकान् ॥३३॥
क्रोधमाहारयत्तीव्रं वधार्थं सर्वरक्षसाम् । दुष्प्रेक्षः सोऽभवत्क्रुद्धो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥३४॥
तं दृष्ट्वा तेजसाविष्टं प्राद्रवन् वनदेवताः । तस्य क्रुद्धस्य रूपं तु रामस्य ददृशे तदा ॥३५॥
दक्षस्येव क्रतुं हन्तुमुद्यतस्य पिनाकिनः ॥
तत्कार्मुकैराभरणैर्ध्वजैश्च तैर्वर्मभिश्चाग्निसमानवर्णैः ।
बभूव सैन्यं पिशिताशनानां सूर्योदये नीलमिवाभ्रवृन्दम् ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे रामखरबलसंनिकर्षो नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः सर्गः

खरसैन्यावमर्दः

अवष्टब्धधनुं रामं क्रुद्धं च रिपुघातिनम् । ददर्शाश्रममागम्य खरः सहपुरःसरैः ॥ १ ॥

समय भय के कारण पीछे देखते भी नहीं थे और भागकर ऐसे स्थान पर चले गये जहाँ पर किसी प्रकार का शब्द नहीं होता था। उस सम्पूर्ण वेगवती राक्षसों की सेना ने रामचन्द्र को चारों ओर से घेर लिया ॥ ३१ ॥ नाना प्रकार के आयुध धारण करने वाले, वीरों से युक्त समुद्र के समान गम्भीर उस सेना पर रण विशारद रामचन्द्र ने अपनी दृष्टि दौड़ाते हुए संग्राम के लिए उद्यत अपने सम्मुख खर की सेना को देखा। तथा अपने भयङ्कर धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर तूणी से अपने बाणों को निकाल लिया ॥ ३२,३३ ॥ सम्पूर्ण राक्षसों के वध के लिए उन्होंने महान् क्रोध को प्रकट किया। उस समय प्रलयाग्नि के समान जाज्वल्यमान रामचन्द्र अत्यन्त दुष्प्रेक्ष्य हो गये ॥ ३४ ॥ उस समय रुष्ट हुए रामचन्द्र के रूप को देवताओं ने देखा तथा तेज से आविष्ट उनके रूप को देखकर इस प्रकार दुःखी हुए जैसे दक्षयज्ञ के नाश के समय महादेव के रूप को देखकर लोग दुःखी हुए थे ॥ ३५ ॥ अग्नि के समान देदीप्यमान धनुष, अलंकार, रथ, कवच आदि से संनद्ध मानुषाहारी राक्षसों की वह सेना सूर्योदय के समय नील वर्ण वाले मेघों के समान प्रतीत हो रही थी ॥३६॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'रामचन्द्र और खर की सेना का सामना' विषयक चौबीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ २४ ॥

पच्चीसवाँ सर्ग

खर की सेना का दमन

धनुर्धारी, रिपुघाती, क्रोधाविष्ट उस रामचन्द्र को अपने अनुयायियों के समेत आश्रम के समीप आकर खर ने देखा ॥ १ ॥ तीखा शब्द बोलने वाले प्रत्यञ्चा सहित धनुष को लिए हुए खर ने उन राम को देखकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तं दृष्ट्वा सशरं चापमुद्यम्य खरनिःस्वनम् । रामस्याभिमुखं सूतं चोद्यतामित्यचोदयत् ॥ २ ॥
स खरस्याज्ञया सूतस्तुरगान् समचोदयत् । यत्र रामो महाबाहुरेको धून्वन् स्थितो धनुः ॥ ३ ॥
तं तु निष्पतितं दृष्ट्वा सर्वे ते रजनीचराः । नर्दमाना महानादं सचिवाः पर्यवारयन् ॥ ४ ॥
स तेषां यातुधानानां मध्ये रथगतः खरः । बभूव मध्ये ताराणां लोहिताङ्ग इवोदितः ॥ ५ ॥
ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम् । अर्दयित्वा महानादं ननाद समरे खरः ॥ ६ ॥
ततस्तं भीमधन्वानं क्रुद्धाः सर्वे निशाचराः । रामं नानाविधैः शस्त्रैरभ्यवर्षन्त दुर्जयम् ॥ ७ ॥
मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः । राक्षसाः समरे रामं निजघ्नू रोषतत्पराः ॥ ८ ॥
ते बलाहकसंकाशा महानादा महौजसः । अभ्यधावन्त काकुत्स्थं रथैर्वाजिभिरेव च ॥ ९ ॥
गजैः पर्वतकूटाभै रामं युद्धे जिघांसवः । ते रामे शरवर्षाणि व्यसृजन् रक्षसां गणाः ॥१०॥
शैलेन्द्रमिव धाराभिर्वर्षमाणा बलाहकाः । स तैः परिवृतो घोरै राघवो रक्षसां गणैः ॥११॥
तिथिष्विव महादेवो वृतः परिषदां गणैः । तानि मुक्तानि शस्त्राणि यातुधानैः स राघवः ॥१२॥
प्रतिजग्राह विशिखैर्नद्योघानिव सागरः । स तैः प्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रो न विव्यथे ॥१३॥
रामः प्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिव महाचलः । स विद्धः क्षतजादिग्धः सर्वगात्रेषु राघवः ॥१४॥
बभूव रामः सन्ध्याभ्रैर्दिवाकर इवावृतः । विषेदुर्देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥१५॥

उनके सम्मुख रथ ले जाने के लिये सूत को कहा ॥ २ ॥ विशाल भुजा वाले रामचन्द्र जहाँ पर अकेले ही धनुष का टङ्कार कर रहे थे खर की आज्ञा से सारथि ने घोड़ों को उधर ही चलाया ॥ ३ ॥ खर को रामचन्द्र के समीप जाते हुए देखकर उसके सलाहकार राक्षस सैनिकों ने महान् शब्द करते हुए उसको चारों तरफ से घेर लिया ॥४॥ उन सम्पूर्ण राक्षस सैनिकों के मध्य में खर नक्षत्रों के बीच में उदीयमान मङ्गल ग्रह के समान प्रतीत होने लगा ॥ ५ ॥ पश्चात् खर ने अप्रतिम ओजवाले रामचन्द्र को हजार बाणों से पीड़ित कर गर्जन किया ॥ ६ ॥ खर के बाण वर्षा करते ही वे सभी क्रुद्ध निशाचर अजेय धनुर्धारी रामचन्द्र पर नाना प्रकार के शस्त्रों की वर्षा करने लगे ॥७॥ रोष में आये हुए वे राक्षस संग्राम में मुद्गर, पट्टिश, शूल, प्रास, खड्ग, परश्वध (फरसा) आदि अस्त्रों से महाबली रामचन्द्र को मारने लगे ॥ ८ ॥ महाबलवान् विशालकाय नील मेघ के समान वे राक्षसगण रथ और घोड़ों पर बैठकर रामचन्द्र की तरफ दौड़े ॥ ९ ॥ संग्राम में पर्वत के समान विशालकाय हाथियों पर बैठकर वे राक्षस गण रामचन्द्र को मारने की इच्छा से उनपर बाण वर्षा करने लगे ॥ १० ॥ महामेघ जैसे पर्वतों पर वर्षा करते हैं, उसी प्रकार उन भयानक आकृति वाले राक्षसों ने उनको चारों ओर से घेर लिया ॥११॥ प्रदोष (त्रयोदशी) तिथि में जैसे महादेव अपने पार्षदों से घिरे हों उसी प्रकार राम प्रतीत होने लगे। राक्षसों के द्वारा छोड़े गये उन शस्त्रास्त्रों को अपने प्रखर बाणों से इस प्रकार पकड़ लिया जिस प्रकार नदियों के वेग को समुद्र ग्रहण कर लेता है। वे रामचन्द्र घोर राक्षसों के अस्त्रों से आहत होने पर भी व्यथित नहीं हुए ॥ १२, १३ ॥ अनेकों देदीप्यमान वज्रों से आहत महान् अचल के समान रामचन्द्र के सम्पूर्ण शरीर से राक्षसों के शस्त्राघात द्वारा रक्त स्रोत होने लगा ॥ १४ ॥ सायंकालीन बादलों से घिरे हुए उस समय रामचन्द्र सूर्य के समान प्रतीत होने लगे। उस अवस्था को देखकर देव, गन्धर्व, सिद्ध तथा ऋषिगण अत्यन्त दुःखी हुए ॥१५। उस समय देव तथा ऋषिगण ने हजारों राक्षसों से घिरे हुए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकं सहस्रैर्बहुभिस्तदा दृष्ट्वा समावृतम् । ततो रामः सुसंक्रुद्धो मण्डलीकृतकार्मुकः ॥१६॥
ससर्ज निशितान् बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः । दुरावारान् दुर्विषहान् कालदण्डोपमान् रणे ॥१७॥
मुमोच लीलया रामः कङ्कपत्रानजिह्मगान् । ते शराः शत्रुसैन्येषु मुक्ता रामेण लीलया ॥१८॥
आददू रक्षसां प्राणान् पाशाः कालकृता इव । भित्त्वा राक्षसदेहांस्तांस्ते शरा रुधिरप्लुताः ॥१९॥
अन्तरिक्षगता रेजुर्दीप्ताग्निसमतेजसः । असंख्येयास्तु रामस्य सायकाश्चापमण्डलात् ॥२०॥
विनिष्पेतुरतीव्रोग्रा रक्षःप्राणापहारिणः । धनूंषि च ध्वजाग्राणि वर्माणि च शिरांसि च ॥२१॥
बाहून् सहस्ताभरणानूरून् करिकरोपमान् । चिच्छेद रामः समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥२२॥
हयान् काञ्चनसंनाहान् रथयुक्तान् ससारथीन् । गजांश्च सगजारोहान् सहयान् सादिनस्तथा ॥२३॥
चिच्छिदुर्बिभिदुश्चापि रामचापगुणाच्च्युताः । पदातीन् समरे हत्वा ह्यनयद्यमसादनम् ॥२४॥
ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः । भीममार्तस्वरं चक्रुर्भिद्यमाना निशाचराः ॥२५॥
तत्सैन्यं निशितैर्बाणैरर्दितं मर्मभेदिभिः । रामेण न सुखं लेभे शुष्कं वनमिवाग्निना ॥२६॥
केचिद्भीमबलाः शूराः शूलान् खड्गान् परश्वधान् । रामस्याभिमुखं गत्वा चिक्षिपुः परमायुधान् ॥२७॥
तानि बाणैर्महाबाहुः शस्त्राण्यावार्य राघवः । जहार समरे प्राणांश्चिच्छेद च शिरोधरान् ॥२८॥
ते छिन्नशिरसः पेतुश्छिन्नवर्मशरासनाः । सुपर्णवातविक्षिप्ता जगत्यां पादपा यथा ॥२९॥

अकेले रामचन्द्र को देखा। राक्षसों की शर-वृष्टि से आहत संक्रुद्ध रामचन्द्र ने अपने धनुष को इस प्रकार खींचा जिससे वह मण्डलाकार हो गया ॥ १६ ॥ संग्राम में उस समय रामचन्द्र ने काल पाश के समान दुर्निवार असह्य हजारों तीव्र बाणों को छोड़ा ॥ १७ ॥ काञ्चन भूषित अनेक बाणों को रामचन्द्र ने अनायास ही शत्रुओं पर छोड़ा। विना प्रयास के शत्रु सैन्य पर राम के द्वारा छोड़े हुए उन बाणों ने ॥ १८ ॥ यमराज के काल पाश की तरह राक्षसों के प्राणों को ले लिया। राक्षसों के शरीर का भेदन कर वे बाण स्वयं रुधिर सिञ्चित हो गये । १९ ॥ रामचन्द्र के धनुष से छोड़े हुए अग्नि के समान देदीप्यमान असंख्य बाण आकाश में शोभित होने लगे ॥ २० ॥ राक्षसों के प्राणघातक, अत्यन्त उग्र, राम के धनुष से चलाए हुए उन बाणों ने संग्राम में राक्षसों के सैकड़ों धनुष, ध्वजा, ढाल, कवच, हाथ के अलंकार युक्त बाहु, हाथी के सूँड़ के समान जांघों को काट डाला ॥ २१, २२ ॥ स्वर्ण अलङ्कारों से संनद्ध घोड़ों को, रथ पर बैठे सारथियों को, गजारोहियों तथा गजों को, घुड़सवार तथा घोड़ों को, पैदल चलने वाले पदातियों को, इन सभी को रामचन्द्र के द्वारा छोड़े हुए बाणों ने संग्राम में छिन्न भिन्न करते हुए यमराज पुरी को पहुँचा दिया ॥ २३, २४ ॥ नालीक (बन्दूक के समान नली वाले) तीक्ष्ण धारवाले, विकर्णी (वक्र मुख वाले) बाणों से आहत वे राक्षस गण भयङ्कर आर्त नाद करने लगे ॥ २५ ॥ मर्म का भेदन करने वाले, राम के द्वारा विविध प्रकार के बाणों से पीडित उस राक्षसी सेना की सुख शान्ति इस प्रकार नष्ट हो गयी जिस प्रकार वनाग्नि से शुष्क वन की समृद्धि नष्ट हो जाती है ॥ २६ ॥ किसी अत्यन्त क्रुद्ध तथा भयानक बलवान् राक्षस ने रामचन्द्र पर प्रास, शूल, परश्वध आदि शस्त्रों का प्रहार किया ॥ २७ ॥ संग्राम में उन राक्षसों के चलाए हुए शस्त्रास्त्रों को अपने बाणों से रोककर रामचन्द्र ने उनके शिरों को काट कर प्राणों को हर लिया ॥ २८ ॥ जिनके धनुष, कवच, ढाल तथा शिर छिन्न भिन्न हो गये हैं, वे राक्षस गण पृथिवी पर इस प्रकार गिर गये जिस प्रकार प्रचण्ड वायु के वेग से पृथिवी पर वृक्ष गिर जाते हैं ॥ २९ ॥ बाणों से आहत जो राक्षस जीवित बच गये थे वे दुःखी होते हुए शरण के लिए खर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवशिष्टाश्च ये तत्र विषण्णाश्च निशाचराः । खरमेवाभ्यधावन्त शरणार्थं शरार्दिताः ॥३०॥
तान् सर्वान् पुनरादाय समाश्वास्य च दूषणः । अभ्यधावत काकुत्स्थं क्रुद्धो रुद्रमिवान्तकः ॥३१॥
निवृत्तास्तु पुनः सर्वे दूषणाश्रयनिर्भयाः । राममेवाभ्यधावन्त सालतालशिलायुधाः ॥३२॥
शूलमुद्गरहस्ताश्च चापहस्ता महाबलाः । सृजन्तः शरवर्षाणि शस्त्रवर्षाणि संयुगे ॥३३॥
द्रुमवर्षाणि मुञ्चन्तः शिलावर्षाणि राक्षसाः । तद्बभूवाद्भुतं युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥३४॥
रामस्य च महाघोरं पुनस्तेषां च रक्षसाम् । ते समन्तादभिक्रुद्धा राघवं पुनरभ्ययुः ॥३५॥
तैश्च सर्वा दिशो दृष्ट्वा प्रदिशश्च समावृताः । राक्षसैरुद्यतप्रासैः शरवर्षाभिवर्षिभिः ॥३६॥
स कृत्वा भैरवं नादमस्त्रं परमभास्वरम् । संयोजयत गान्धर्वं राक्षसेषु महाबलः ॥३७॥
ततः शरसहस्राणि निर्ययुश्चापमण्डलात् । सर्वा दश दिशो बाणैरावार्यन्त समागतैः ॥३८॥
नाददानं शरान् घोरान्न मुञ्चन्तं शिलीमुखान् । विकर्षमाणं पश्यन्ति राक्षसास्ते शरार्दिताः ॥३९॥
शरान्धकारमाकाशमावृणोत्सदिवाकरम् । बभूवावस्थितो रामः प्रवमन्निव ताञ्शरान् ॥४०॥
युगपत्पतमानैश्च युगपच्च हतैर्भृशम् । युगपत्पतितैश्चैव विकीर्णा वसुधाभवत् ॥४१॥
निहताः पतिताः क्षीणाश्छिन्ना भिन्ना विदारिताः । तत्र तत्र स्म दृश्यन्ते राक्षसास्ते सहस्रशः ४२॥
सोष्णीषैरुत्तमाङ्गैश्च साङ्गदैर्बाहुभिस्तथा । ऊरुभिर्जानुभिश्छिन्नैर्नानारूपविभूषणैः॥४३॥

के समीप भाग गये ॥ ३० ॥ खर की शरण में आये हुए उन सम्पूर्ण राक्षस सैनिकों को आश्वासन देकर क्रुद्ध सेनापति दूषण धनुष लेकर क्रोधाविष्ट राम पर ऐसे दौड़ा जैसे क्रोध में आया हुआ यमराज ही दौड़ रहा हो ॥ ३१ ॥ सेनापति दूषण के आश्रय से निर्भय होते हुए वे सभी राक्षस पुनः लौट पड़े तथा साल, ताल आदि वृक्षों और पाषाण खण्डों को लेकर राम की तरफ लौट पड़े ॥ ३२ ॥ शूल, मुद्गर, पाश आदि शस्त्रास्त्रों से युक्त वे महाबली राक्षस बाणों की, शस्त्रों की, वृक्षों की तथा पत्थरों की वर्षा करते हुए राम के साथ युद्ध करने लगे। वह तुमुल युद्ध अत्यन्त अद्भुत तथा रोमाञ्चकारी हुआ ॥ ३३, ३४ ॥ राक्षसों के सहित सेनापति दूषण का रामचन्द्र के साथ में घोर संग्राम होने लगा। क्रोधातुर वे सभी राक्षस गण चारों ओर से रामचन्द्र को घेर कर व्यथित करने लगे ॥ ३५ ॥ पश्चात् रामचन्द्र ने सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओं को छोड़े हुए राक्षसों के बाणों से आच्छादित देखा और अपने को भी उनसे घिरा हुआ देखा ॥३६॥ अपने आपको राक्षसों से घिरा हुआ देखकर महाबली रामचन्द्र ने भयङ्कर गर्जना करते हुए उन राक्षसों पर देदीप्यमान गन्धर्व अस्त्र का प्रयोग किया ॥ ३७ ॥ उस समय रामचन्द्र के धनुष मण्डल से जो बाणों वर्षा हुई उसने सम्पूर्ण दिशाओं को आच्छादित कर लिया ॥ ३८॥ रामचन्द्र कब बाणों को लेते हैं और कब चलाते हैं, उनकी इस शीघ्रकारिता को राक्षस लोग नहीं देख पाते थे। बाणों से आहत राक्षस गण रामचन्द्र को केवल धनुष खींचते हुए ही देखते थे ॥ ३९ ॥ बाणों के अन्धकार से सूर्य सहित सारा नभ मण्डल आच्छादित हो गया। फिर भी उपस्थित रामचन्द्र बाणों का प्रक्षेप करते ही जा रहे थे ॥ ४० ॥ एक ही साथ गिरने से, एक ही साथ मरने से तथा सम्पूर्ण राक्षसों को एक ही साथ गिराये जाने से वह सम्पूर्ण रणस्थली राक्षसों से भर गयी ॥ ४१ ॥ मरे हुए, गिरे हुए, व्यथित हुए हुए, छिन्न भिन्न हुए तथा जिनके अनेकों अङ्ग प्रत्यङ्ग कट गये हैं, ऐसे हजारों राक्षस जहां तहां दिखाई देने लगे ॥ ४२॥ पगड़ियों के सहित मस्तक कहीं कट गये हैं, तो कहीं अङ्गद नामक आभूषणों के सहित हाथ कट गये हैं तथा नाना प्रकार के भूषणों से भूषित जंघा, बाहू आदि अनेकों अङ्ग कट गये हैं, इस प्रकार की स्थिति वहाँ उत्पन्न हो गई ॥ ४३ ॥ राम के बाणों से कटे हुए घोड़े, प्रधान हाथी, अनेकों रथ, चंवर, व्यजन (पंखा), छत्र,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हयैश्च द्विपमुख्यैश्च रथैर्भिन्नैरनेकशः। चामरैर्व्यजनैश्छत्रैर्ध्वजैर्नानाविधैरपि ॥४४॥
रामस्य बाणाभिहतैर्विचित्रैः शूलपट्टिशैः। विच्छिन्नैः समरे भूमिर्विकीर्णाभूद्भयंकरा ॥४५॥
तान् दृष्ट्वा निहतान् संख्ये राक्षसान् परमातुरान्। न तत्र सहितुं शक्ता रामं परपुरंजयम् ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे खरसैन्यावमर्दो नाम पञ्चविंशः सर्गः ॥२५॥

षड्विंशः सर्गः

दूषणादिवधः

दूषणस्तु स्वकं सैन्यं हन्यमानं निरीक्ष्य सः। संदिदेश महाबाहुर्भीमवेगान् दुरासदान् ॥ १ ॥
राक्षसान् पञ्चसाहस्रान् समरेष्वनिवर्तिनः। ते शूलैः पट्टिशैः खड्गैः शिलावर्षैर्द्रुमैरपि ॥ २ ॥
शरवर्षैरविच्छिन्नं ववृषुस्तं समन्ततः। सद्रुमाणां शिलानां च वर्षं प्राणहरं महत् ॥ ३ ॥
प्रतिजग्राह धर्मात्मा राघवस्तीक्ष्णसायकैः। प्रतिगृह्य च तद्वर्षं निमीलित इवर्षभः ॥ ४ ॥
रामः क्रोधं परं भेजे वधार्थं सर्वरक्षसाम्। ततः क्रोधसमाविष्टः प्रदीप्त इव पावकः ॥ ५ ॥
शरैरवाकिरत्सैन्यं सर्वतः सहदूषणम्। ततः सेनापतिः क्रुद्धो दूषणः शत्रुदूषणः ॥ ६ ॥

ध्वजा, शूल, पट्टिश आदि वस्तुओं से वह समर भूमि पट गयी तथा भयङ्कर प्रतीत होने लगी ॥ ४४,४५ ॥ उन मरे हुए सम्पूर्ण सैनिकों को देखकर अन्य राक्षस लोग अत्यन्त दुःखी हो गये तथा शत्रुञ्जयी रामचन्द्र के समीप पुनः जाने में असमर्थ हो गये ॥ ४६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'खर की सेना का दमन' विषयक पचीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ सर्ग

दूषण आदि का वध

सेनापति दूषण ने अपनी सेना को नष्ट होते हुए देखकर भयङ्कर आक्रमण करने वाले, संग्राम में कभी भी पग पीछे न रखने वाले, अजेय पाँच हजार राक्षसों को आज्ञा दी। वे राक्षसगण शूल, पट्टिश, खड्ग, पाषाण, वृक्ष तथा बाणों की निरन्तर वर्षा करने लगे। वह पाषाण और वृक्षों की वर्षा अत्यन्त प्राणघातक थी। ॥ १-३ ॥ नरश्रेष्ठ रामचन्द्र ने अपने बाणों के द्वारा शत्रुसेना के प्रत्येक प्रहारों को रोक दिया। पश्चात् उस धर्मात्मा ने सम्पूर्ण राक्षसों के वध करने के लिए भयङ्कर क्रोध प्रकट किया। उस समय क्रोधावेश में रामचन्द्र अग्नि के समान अत्यन्त तेजस्वी प्रतीत होने लगे ॥ ४,५ ॥ रामचन्द्र ने सम्पूर्ण सेना के साथ दूषणपर बाणों की वर्षा की। इस बाण वर्षा को देखकर शत्रुओं के लिए दूषणभूत सेनापति दूषण अत्यन्त क्रुद्ध हो गया ॥६॥ क्रुद्ध हुए सेनापति दूषण ने वर्षा के समान अपने बाणों से रामचन्द्र को आच्छा-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शरैरशनिकल्पैस्तं राघवं समवाकिरत् । ततो रामः सुसंक्रुद्धः क्षुरेणास्य महद्धनुः ॥ ७ ॥
चिच्छेद समरे वीरश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् । हत्वा चाश्वाञ्शरैस्तीक्ष्णैरर्धचन्द्रेण सारथेः ॥ ८ ॥
शिरो जहार तद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याध वक्षसि । स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥ ९ ॥
जग्राह गिरिशृङ्गाभं परिघं रोमहर्षणम् । वेष्टितं काञ्चनैः पट्टैर्देवसैन्यप्रमर्दनम् ॥१०॥
आयसैः शङ्कुभिस्तीक्ष्णैः कीर्णं परवसोक्षितम् । वज्राशनिसमस्पर्शं परगोपुरदारणम् ॥११॥
तं महोरगसंकाशं प्रगृह्य परिघं रणे । दूषणोऽभ्यद्रवद्रामं क्रूरकर्मा निशाचरः ॥१२॥
तस्याभिपतमानस्य दूषणस्य स राघवः । द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद सहस्ताभरणौ भुजौ॥१३॥
भ्रष्टस्तस्य महाकायः पपात रणमूर्धनि । परिघच्छिन्नहस्तस्य शक्रध्वज इवाग्रतः ॥१४॥
स कराभ्यां विकीर्णाभ्यां पपात भुवि दूषणः । विषाणाभ्यां विशीर्णाभ्यां मनस्वीव महागजः॥१५॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ दूषणं निहतं रणे । साधु साध्विति काकुत्स्थं सर्वभूतान्यपूजयन् ॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धास्त्रयः सेनाग्रयायिनः । संहत्याभ्यद्रवन् रामं मृत्युपाशावपाशिताः ॥१७॥
महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथी च महाबलः । महाकपालो विपुलं शूलमुद्यम्य राक्षसः ॥१८॥
स्थूलाक्षः पट्टिशं गृह्य प्रमाथी च परश्वधम् । दृष्ट्वैवापततस्तूर्णं राघवः सायकैः शितैः ॥१९॥
तीक्ष्णाग्रैः प्रतिजग्राह संप्राप्तानतिथीनिव । महाकपालस्य शिरश्चिच्छेद रघुनन्दनः ॥२०॥

दित कर दिया। पश्चात् क्रुद्ध हुए रामचन्द्र ने अपने क्षुर नामक अस्त्र से दूषण के विशाल धनुष को काट डाला। और अपने चार बाणों से उसके चारों घोड़ों को मारकर वीर रामचन्द्र ने अर्धचन्द्राकार बाण से सारथि के मस्तक को काट डाला और तीन बाण दूषण के वक्षःस्थल में मारे। उस समय सेनापति दूषण सारथि, रथ, घोड़ों तथा धनुष से रहित हो गया ॥ ७–९ ॥ धनुष के कट जाने पर दूषण ने भयानक विशाल परिघ नामक अस्त्र को उठाया जो काञ्चन भूषित तथा देवसेना के लिए भयानक था ॥ १० ॥ उस परिघ में लोहे की कीलें लगी हुई थीं। शत्रुओं की चर्बी से वह गीला हो रहा था, वज्र के समान कठोर तथा शत्रु के नगर-द्वार को तोड़ने वाला था ॥ ११ ॥ क्रूर कर्म करने वाला वह राक्षस सेनापति दूषण संग्राम में सर्प के समान उस परिघ को लेकर रामचन्द्र पर टूट पड़ा ॥ १२ ॥ दूषण को अपनी ओर आते हुए देखकर रामचन्द्र ने अपने दो बाणों से आभूषण सहित उसकी दोनों भुजाओं को काट डाला ॥ १३ ॥ भुजाओं के कट जानेपर वह विशालकाय परिघ इन्द्रध्वज के समान संग्राम भूमि में गिरा पड़ा ॥ १४ ॥ भुजाएं कट जाने से वह सेनापति दूषण इस प्रकार भूमि पर गिर पड़ा, जिस प्रकार दाँतों के टूट जाने पर मतवाला हाथी पछाड़ खाकर गिर जाता है ॥१५॥ संग्राम भूमि में इस प्रकार मर कर गिरे हुए सेनापति दूषण को देखकर सम्पूर्ण दर्शक लोगों ने 'बहुत ठीक है' ऐसा कहते हुए रामचन्द्र का स्वागत किया ॥ १६ ॥ दूषण के गिर जाने के पश्चात् क्रोध में आये हुए, सेना के अग्रभाग में चलनेवाले, मृत्यु जिनकी समीप आगयी है, ऐसे तीन सेनापति एक साथ ही राम पर टूट पड़े ॥ १७ ॥ महाकपाल, स्थूलाक्ष तथा महाबली प्रमाथी (ये तीनों ही) राम के सामने आये। राक्षस महाकपाल ने एक विशालकाय शूल को उठाया। स्थूलाक्ष ने पट्टिश को और प्रमाथी ने परश्वध (फरसे) को उठाया। अपनी ओर आते हुए इन तीनों राक्षसों को देखकर तीखे तथा भयंकर तीन बाणों से रामचन्द्र ने आये हुए अतिथि के समान इनका स्वागत किया तथा महाकपाल के मस्तक को उन्होंने धड़ से अलग कर दिया ॥ १८–२० ॥ असंख्य बाणों से प्रमाथी को व्यथित कर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असंख्येयैस्तु बाणौघैः प्रममाथ प्रमाथिनम् । स्थूलाक्षस्याक्षिणी तीक्ष्णैः पूरयामास सायकैः ॥२१॥
स पपात हतो भूमौ विटपीव महाद्रुमः । दूषणस्यानुगान् पञ्च साहस्रान् कुपितः क्षणात् ॥२२॥
बाणौघैः पञ्चसाहस्रैरनयद्यमसादनम् । दूषणं निहतं दृष्ट्वा तस्य चैव पदानुगान् ॥२३॥
व्यादिदेश खरः क्रुद्धः सेनाध्यक्षान् महाबलान् । अयं विनिहतः संख्ये दूषणः सपदानुगः ॥२४॥
महत्या सेनया सार्धं युद्ध्वा रामं कुमानुषम् । शस्त्रैर्नानाविधाकारैर्हनध्वं सर्वराक्षसाः ॥२५॥
एवमुक्त्वा खरः क्रुद्धो राममेवाभिदुद्रुवे । श्येनगामी पृथुग्रीवो यज्ञशत्रुर्विहङ्गमः ॥२६॥
दुर्जयः करवीराक्षः परुषः कालकार्मुकः । मेघमाली महामाली सर्पास्यो रुधिराशनः ॥२७॥
द्वादशैते महावीर्या बलाध्यक्षाः ससैनिकाः । राममेवाभ्यवर्तन्त विसृजन्तः शरोत्तमान् ॥२८॥
ततः पावकसंकाशैर्हेमवज्रविभूषितैः । जघान शेषं तेजस्वी तस्य सैन्यस्य सायकैः ॥२९॥
ते रुक्मपुङ्खा विशिखाः सधूमा इव पावकाः । निजघ्नुस्तानि रक्षांसि वज्रा इव महाद्रुमान् ॥३०॥
रक्षसां तु शतं रामः शतेनैकेन कर्णिना । सहस्रं च सहस्रेण जघान रणमूर्धनि ॥३१॥
तैर्भिन्नवर्माभरणाश्छिन्नभिन्नशरासनाः । निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां रजनीचराः ॥३२॥
तैर्मुक्तकेशैः समरे पतितैः शोणितोक्षितैः । आस्तीर्णा वसुधा कृत्स्ना महावेदिः कुशैरिव ॥३३॥
क्षणेन तु महाघोरं वनं निहतराक्षसम् । बभूव निरयप्रख्यं मांसशोणितकर्दमम् । ॥३४॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना ॥३५॥

दिया । स्थूलाक्ष की विशाल आँखों को अपने बाणों से भर दिया ॥ २१ ॥ उन तीनों राक्षसों का दल कटे हुए वृक्ष के समान पृथिवी पर गिर पड़ा। दूषण के अनुयायी पाँच हजार राक्षसों को कुपित रामचन्द्र ने ॥२२॥ पाँच हजार बाणों से मार कर उन्हें यमपुरी पहुँचा दिया। अपने अनुयायियों के साथ दूषण को मरा सुनकर ॥ २३ ॥ क्रुद्ध खर ने बलवान् सेनापतियों को आज्ञा दी—संग्राम में अपने अनुगामियों के साथ यह सेनापति दूषण मारा गया है ॥ २४ ॥ तुम लोग विशाल सेना के साथ उस भ्रष्ट राम के साथ संग्राम करो । हे राक्षसो ! नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों से उसे मार डालो ॥ २५ ॥ क्रोधी खर इस प्रकार का आदेश देकर रामचन्द्र की तरफ चल पड़ा । श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहंगम, दुर्जय, करवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्पास्य तथा रुधिराशन ये महाबलवान् बारह सेनापति अपने सहायक सैनिकों के साथ उत्तम बाणों की वर्षा करते हुए राम पर टूट पड़े ॥ २६–२८ ॥ पश्चात् तेजस्वी रामचन्द्र ने काञ्चन एवं रत्नों से विभूषित अग्नि के समान देदीप्यमान बाणों से उसके शेष सैनिकों को मार डाला ॥ २९ ॥ धूम सहित अग्नि के समान सोने के पंखवाले उन बाणों ने राक्षसों का इस प्रकार संहार किया जिस प्रकार वज्रपात से वृक्षों का संहार होता है ॥ ३० ॥ रामचन्द्र ने एकसौ कर्णिक बाणों से एक सौ को तथा सामान्य एक हजार बाणों से एक हजार राक्षसों को संग्राम भूमि में मारा ॥ ३१ ॥ वे राक्षस गण बाणों से जिनके कवच, आभरण, धनुष छिन्न भिन्न हो गये हैं तथा जिनका शरीर शोणित से लथपथ हो रहा है, सभी पृथिवी पर गिर पड़े ॥ ३२ ॥ खून से लथपथ, जिनके केश बिखरे हुए हैं, ऐसे गिरे हुए राक्षसों से वह रणस्थली ऐसी प्रतीत होने लगी जैसे कुशों से आच्छादित यज्ञ की महावेदी प्रतीत होती है ॥ ३३ ॥ उस समय राक्षसों के मारे जाने पर मांस और शोणित से पङ्क (कीचड़) बनने वाला वह महावन नरक के समान प्रतीत होने लगा ॥ ३४ ॥ अकेले पैदल चलने वाले रामचन्द्र ने भीषण कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसों को मार डाला ॥ ३५ ॥ उस सम्पूर्ण सेना में केवल महारथी खर राक्षस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्य सैन्यस्य सर्वस्य खरः शेषो महारथः । राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्च रिपुसूदनः ॥३६॥
शेषा हता महासत्त्वा राक्षसा रणमूर्धनि । घोरा दुर्विषहाः सर्वे लक्ष्मणस्याग्रजेन ते ॥३७॥
ततस्तु तद्भीमबलं महाहवे समीक्ष्य रामेण हतं बलीयसा ।
रथेन रामं महता खरस्तदा समाससादेन्द्र इवोद्यताशनिः ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे दूषणादिवधो नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः

त्रिशिरोवधः

खरं तु रामाभिमुखं प्रयान्तं वाहिनीपतिः । राक्षसस्त्रिशिरा नाम संनिपत्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥
मां नियोजय विक्रान्त संनिवर्तस्व साहसात् । पश्य रामं महाबाहुं संयुगे विनिपातितम् ॥ २ ॥
प्रतिजानामि ते सत्यमायुधं चाहमालभे । यथा रामं वधिष्यामि वधार्हं सर्वरक्षसाम् ॥ ३ ॥
अहं वास्य रणे मृत्युरेष वा समरे मम । विनिवृत्य रणोत्साहान्मुहूर्तं प्राश्निको भव ॥ ४ ॥
प्रहृष्टो वा हते रामे जनस्थानं प्रयास्यसि । मयि वा निहते रामं संयुगायोपयास्यसि ॥ ५ ॥

त्रिशिरा तथा शत्रुघाती रामचन्द्र ही बचे रहे ॥ ३६ ॥ खर और त्रिशिरा को छोड़कर महाबलवान्, अत्यन्त भयङ्कर तथा प्रचण्ड शेष सभी राक्षसों को संग्राम में लक्ष्मण के बड़े भाई रामचन्द्र ने मार डाला ॥ ३७ ॥ संग्राम में भयङ्कर विशाल सेना को बलवान् रामचन्द्र के द्वारा मारा गया देखकर विशाल रथ पर बैठा हुआ खर वज्रहस्त इन्द्र के समान रामचन्द्र के समीप पहुँचा ॥ ३८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'दूषण आदि का वध' विषयक छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

त्रिशिरा का वध

रामचन्द्र के समीप खर को जाते हुए देखकर, सेनापति त्रिशिरा उसके समीप जाकर इस प्रकार बोला ॥ १ ॥ मेरे जैसे पराक्रमी को इस कार्य में नियुक्त करो। इस साहस के कार्य से आप लौटिये। संग्राम में मेरे द्वारा मारे गये रामचन्द्र को तुम देखो ॥ २ ॥ मैं अपने आयुध की शपथ खाकर, प्रतिज्ञा करता हूँ कि सम्पूर्ण राक्षसों के वध करने वाले रामचन्द्र का मैं अवश्य वध करूँगा ॥ ३ ॥ संग्राम में या तो मैं राम को मारूँगा, या वे मुझको मारेंगे। रणोत्साह को रोककर थोड़ी देर के लिए आप दर्शक बन जाइये ॥ ४ ॥ राम के मारे जाने पर प्रसन्न होकर आप जनस्थान को लौट जावें या मेरे मारे जाने पर संग्राम के लिये रामचन्द्र के समक्ष आवें ॥ ५ ॥ त्रिशिरा ने अपनी मृत्यु के लिए खर को मना लिया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खरस्त्रिशिरसा तेन मृत्युलोभात्प्रसादितः । गच्छ युध्येत्यनुज्ञातो राघवाभिमुखो ययौ ॥ ६ ॥
त्रिशिराश्च रथेनैव वाजियुक्तेन भास्वता । अभ्यद्रवद्रणे रामं सशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ७ ॥
शरधारासमूहान् स महामेघ इवोत्सृजन् । व्यसृजत्सदृशं नादं जलार्द्रस्य तु दुन्दुभेः ॥ ८ ॥
आगच्छन्तं त्रिशिरसं राक्षसं प्रेक्ष्य राघवः । धनुषा प्रतिजग्राह विधून्वन् सायकाञ्शितान् ॥ ९ ॥
स संग्रहारस्तुमुलो रामत्रिशिरसोर्महान् । बभूवातीव बलिनोः सिंहकुञ्जरयोरिव ॥१०॥
ततस्त्रिशिरसा बाणैर्ललाटे ताडितस्त्रिभिः । अमर्षी कुपितो रामः संरब्धमिदमब्रवीत् ॥११॥
अहो विक्रमशूरस्य राक्षसस्येदृशं बलम् । पुष्पैरिव शरैर्यस्य ललाटेऽस्मि परिक्षतः ॥१२॥
ममापि प्रतिगृह्णीष्व शरांश्चापगुणच्युतान् । एवमुक्त्वा तु संरब्धः शरानाशीविषोपमान् ॥१३॥
त्रिशिरोवक्षसि क्रुद्धो निजघान चतुर्दश । चतुर्भिस्तुरगानस्य शरैः संनतपर्वभिः ॥१४॥
न्यपातयत तेजस्वी चतुरस्तस्य वाजिनः । अष्टभिः सायकैः सूतं रथोपस्थान्न्यपातयत् ॥१५॥
रामश्चिच्छेद बाणेन ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम् । ततो हतरथात्तस्मादुत्पतन्तं निशाचरम् ॥१६॥
बिभेद रामस्तं बाणैर्हृदये सोऽभवज्जडः । सायकैश्चाप्रमेयात्मा सामर्षस्तस्य रक्षसः ॥१७॥
शिरांस्यपातयद्रामो वेगवद्भिस्त्रिभिः शितैः । स भूमौ रुधिरोद्गारी रामबाणाभिपीडितः ॥१८॥

अब तुम जाओ युद्ध करो, खर की ऐसी आज्ञा पाने पर वह रामचन्द्र के समक्ष चला गया ॥ ६ ॥ घोड़े जुते हुए चमकने वाले रथपर बैठकर त्रिशिरा ने संग्राम में राम पर शिखर वाले पर्वत के समान आक्रमण कर दिया ॥ ७ ॥ वह त्रिशिरा भीगी दुन्दुभि (नगाड़ा) के समान नाद करते हुए महामेघ के समान बाणों की वर्षा करने लगा ॥ ८ ॥ रामचन्द्र ने अपनी तरफ त्रिशिरा को आते हुए देखकर धनुष का टंकार कर अपने तीव्र बाणों से उसको रोका ॥ ९ ॥ रामचन्द्र और त्रिशिरा का वह तुमुल युद्ध उस समय बलवान् सिंह तथा मदोन्मत्त गजराज के युद्ध के समान हुआ ॥ १० ॥ त्रिशिरा ने रामचन्द्र के ललाट पर तीन बाण चलाये, बाण के प्रहार से कुपित तथा उसे न सहने वाले रामचन्द्र क्रोध पूर्वक यह वचन बोले ॥ ११ ॥ अहो ! क्या पराक्रमी वीर राक्षस का यही बल है ? जिसके चलाये हुए बाण मेरे मस्तक में फूल के सदृश स्पर्श कर रहे हैं ॥ १२ ॥ अब मेरे धनुष से छोड़े हुए बाणों को तुम ग्रहण करो, ऐसा कहकर क्रोधाविष्ट रामचन्द्र ने सर्प के समान अपने चौदह बाणों से त्रिशिरा के वक्षस्थल पर प्रहार किया तथा संनत पर्व चार बाणों से उसके चारों घोड़ों को गिरा दिया और आठ बाणों से उसके सारथि को रथ पर ही मार कर गिरा दिया ॥ १३-१५ ॥ रामचन्द्र ने अपने बाणों से ऊँची फहराती हुई उसकी ध्वजा काट डाली । पश्चात् टूटे हुए रथ से कूदते हुए उस राक्षस की छाती में अमर्षी रामचन्द्र ने अपने बाणों का प्रहार किया, जिससे वह जड़वत् हो गया । अतुल धैर्यवान् रामचन्द्र ने अपने शीघ्रगामी तीन बाणों से उसके, मस्तक को काट डाला । वह राक्षस राम के बाण से पीड़ित रक्त वमन करता हुआ पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ १६-१८ ॥ त्रिशिरा के धराशायी होने के पश्चात् खर के आश्रय में रहने वाले शेष बचे हुए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्यपतत्पतितैः पूर्वं स्वशिरोभिर्निशाचरः । हतशेषास्ततो भग्ना राक्षसाः खरसंश्रयाः ॥१९॥
द्रवन्ति स्म न तिष्ठन्ति व्याघ्रत्रस्ता मृगा इव । तान् खरो द्रवतो दृष्ट्वा निवर्त्य रुषितः स्वयम् ॥२०॥
राममेवाभिदुद्राव राहुश्चन्द्रमसं यथा ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे त्रिशिरोवधो नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः

खररामसंप्रहारः

निहतं दूषणं दृष्ट्वा रणे त्रिशिरसा सह । खरस्याप्यभवत्त्रासो दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥ १ ॥
स दृष्ट्वा राक्षसं सैन्यमविषह्यं महाबलः । हतमेकेन रामेण त्रिशिरोदूषणावपि ॥ २ ॥
तद्बलं हतभूयिष्ठं विमनाः प्रेक्ष्य राक्षसः । आससाद खरो रामं नमुचिर्वासवं यथा ॥ ३ ॥
विकृष्य बलवच्चापं नाराचान् रक्तभोजनान् । खरश्चिक्षेप रामाय क्रुद्धानाशीविषानिव ॥ ४ ॥
ज्यां विधून्वन् सुबहुशः शिक्षयास्त्राणि दर्शयन् । चचार समरे मार्गाञ्शरैः रथगतः खरः ॥ ५ ॥
स सर्वाश्च दिशो बाणैः प्रदिशश्च महारथः । पूरयामास तं दृष्ट्वा रामोऽपि सुमहद्धनुः ॥ ६ ॥

क्षत-विक्षत राक्षस ठहर नहीं सके तथा इस प्रकार भागे जैसे व्याघ्र से डरे हुए मृग भागते हैं। उन भागते हुए राक्षसों को देखकर खर ने उन्हें लौटाया और स्वयं क्रोधावेश में राम के सम्मुख इस प्रकार दौड़ा जैसे पर्व के दिन (चन्द्रग्रहण के दिन) अन्धकार चन्द्रमा पर आक्रमण करता है ॥ १९,२० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का "त्रिशिरा का वध" विषयक सत्ताईसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

खर और राम का युद्ध

संग्राम में त्रिशिरा के साथ दूषण को मरा हुआ देखकर तथा रामचन्द्र के अतुल पराक्रम को देख कर खर भयभीत हो गया ॥ १ ॥ अत्यन्त बलवती तथा दुर्दमनीय राक्षसों की सेना तथा दूषण त्रिशिरा को भी अकेले रामचन्द्र ने मार दिया। इसको देखकर शेष बलवान् राक्षसों के मृतसमूहों को देखकर दुःखी होता हुआ खर रामचन्द्र के समीप में ऐसे गया जैसे नमुचि नाम का राक्षस इन्द्र के समक्ष गया था ॥ २,३ ॥ अपने कानों तक धनुष को खींचकर क्रोधी सर्प के समान रक्तपान करने वाले बाणों को खर ने रामचन्द्र पर चलाया ॥ ४ ॥ अपने धनुष की ज्या का टङ्कार करता हुआ तथा अपने अस्त्र-शस्त्र का कौशल दिखलाता हुआ रथारूढ़ वह खर रणक्षेत्र में विचरने लगा ॥ ५ ॥ महारथी खर ने अपने बाणों से दिशा और विदिशाओं को भर दिया। इसको देखकर रामचन्द्र ने भी अपने विशाल धनुष को सम्भाला ॥ ६ ॥ अग्नि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स सायकैर्दुर्विषहैः सस्फुलिङ्गैरिवाग्निभिः । नभश्चकाराविवरं पर्जन्य इव वृष्टिभिः ॥ ७ ॥
तद्बभूव शितैर्बाणैः खररामविसर्जितैः । पर्याकाशमनाकाशं सर्वतः शरसंकुलम् ॥ ८ ॥
शरजालावृतः सूर्यो न तदा स्म प्रकाशते । अन्योन्यवधसंरम्भादुभयोः संप्रयुध्यतोः ॥ ९ ॥
ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः । आजघान खरो रामं तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ॥१०॥
तं रथस्थं धनुष्पाणिं राक्षसं पर्यवस्थितम् । ददृशुः सर्वभूतानि पाशहस्तमिवान्तकम् ॥११॥
हन्तारं सर्वसैन्यस्य पौरुषे पर्यवस्थितम् । परिश्रान्तं महासत्त्वं मेने रामं खरस्तदा ॥१२॥
तं सिंहमिव विक्रान्तं सिंहविक्रान्तगामिनम् । दृष्ट्वा नोद्विजते रामः सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥१३॥
ततः सूर्यनिकाशेन रथेन महता खरः । आससाद रणे रामं पतङ्ग इव पावकम् ॥१४॥
ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे महात्मनः । खरश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥१५॥
स पुनस्त्वपरान् सप्त शरानादाय वर्मणि । निजघान खरः क्रुद्धः शक्राशनिसमप्रभान् ॥१६॥
ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम् । अर्दयित्वा महानादं ननाद समरे खरः ॥१७॥
ततस्तत्प्रहतं बाणं खरमुक्तैः सुपर्वभिः । पपात कवचं भूमौ रामस्यादित्यवर्चसः ॥१८॥
शरैरर्पितः क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राघवः । रराज समरे रामो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥१९॥
ततो गम्भीरनिर्ह्रादं रामः शत्रुनिबर्हणः । चकारान्ताय स रिपोः सज्यमन्यन्महद्धनुः ॥२०॥

के स्फुलिङ्गों के समान चमकने वाले असहनीय बाणों से रामचन्द्र ने आकाश मण्डल को इस तरह भर दिया जैसे बादल अपनी वर्षा से आकाश को भर देता है ॥ ७ ॥ खर तथा रामचन्द्र के छोड़े हुए तीक्ष्ण बाणों से वह शून्य आकाश अवकाश रहित हो गया, अर्थात् परिपूर्ण हो गया ॥ ८ ॥ संग्राम में लड़ते हुए उन्हों ने एक दूसरे के वध के लिये क्रोध पूर्वक जो बाण छोड़े, उस बाणजाल से आच्छादित सूर्य प्रकाश रहित हो गया ॥ ९ ॥ पश्चात् नालीक, नाराच तथा तीखी धारवाले विकर्णी नामक बाणों से खर ने राम को इस प्रकार आहत किया जैसे अङ्कुश के द्वारा गजराज आहत किया जाता है ॥ १० ॥ धनुर्धारी, रथ पर बैठे हुए खर को, सम्पूर्ण लोगों ने पाशहस्त यमराज के सदृश देखा ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण सेना का संहार करने वाले पुरुषार्थ पूर्ण, महापराक्रमी रामचन्द्र को उस समय खरने श्रान्त (थका हुआ) समझा । ॥ १२ ॥ सिंह के समान पराक्रम वाले तथा सिंह के समान गति वाले उस खर को देखकर रामचन्द्र लेशमात्र भी भयभीत नहीं हुए, जैसे क्षुद्र पशु को देखकर मृगराज भयभीत नहीं होता ॥ १३ ॥ सूर्य के समान देदीप्यमान विशाल रथ पर बैठकर खर रामचन्द्र के समीप इस प्रकार गया जैसे पतङ्ग अग्नि के समीप जाता है ॥ १४ ॥ तत्पश्चात् खर ने अपने हस्त संचालन की शीघ्रता को दिखलाते हुए महात्मा रामचन्द्र के बाण सहित धनुष को मध्यभाग से काट दिया ॥ १५ ॥ पुनः इन्द्र वज्र के समान सात बाणों को लेकर संग्राम में क्रुद्ध खर ने रामचन्द्र के मर्मस्थल पर प्रहार किया ॥ १६ ॥ तत्पश्चात् हजार बाणों से अप्रतिम पराक्रम वाले रामचन्द्र को पीड़ित कर के खर ने संग्राम में भयङ्कर नाद पूर्वक गर्जन किया ॥ १७ ॥ पश्चात् खर के द्वारा छोड़े गये सुन्दर पर वाले बाणों से रामचन्द्र का सूर्य के समान देदीप्यमान कवच कट कर भूमिपर गिर पड़ा ॥ १८ ॥ खर के बाणों से क्षतविक्षत क्रुद्ध रामचन्द्र समर भूमि में धूम-रहित प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशित होने लगे ॥ १९ ॥ तदनन्तर शत्रुओं के मान भञ्जन करने वाले रामचन्द्र ने शत्रु का अन्त करने के लिए महान् घोर शब्द करने वाले दूसरे धनुष को हाथ में लिया । ॥ २० ॥ महर्षि अगस्त्य के द्वारा दिये गये उस विशाल वैष्णव धनुष को लेकर, रामचन्द्र खर की ओर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुमहद्वैष्णवं यत्तदतिसृष्टं महर्षिणा । वरं तद्धनुरुद्यम्य खरं समभिधावत ॥२१॥
ततः कनकपुङ्खैस्तु शरैः संनतपर्वभिः । बिभेद रामः संक्रुद्धः खरस्य समरे ध्वजम् ॥२२॥
स दर्शनीयो बहुधा विकीर्णः काञ्चनध्वजः । जगाम धरणीं सूर्यो देवतानामवज्ञया ॥२३॥
तं चतुर्भिः खरः क्रुद्धो रामं गात्रेषु मार्गणैः । विव्याध युधि मर्मज्ञो मातङ्गमिव तोमरैः ॥२४॥
स रामो बहुभिर्बाणैः खरकार्मुकनिःसृतैः । विद्धो रुधिरसिक्ताङ्गो बभूव रुषितो भृशम् ॥२५॥
स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः प्रगृह्य परमाहवे । मुमोच परमेष्वासः षट् शरानभिलक्षितान् ॥२६॥
शिरस्येकेन बाणेन द्वाभ्यां बाह्वोरथार्दयत् । त्रिभिश्चन्द्रार्धवक्त्रैश्च वक्षस्यभिजघान ह ॥२७॥
ततः पश्चान्महातेजा नाराचान् भास्करोपमान् । जिघांसू राक्षसं क्रुद्धस्त्रयोदश समाददे ॥२८॥
ततोऽस्य युगमेकेन चतुर्भिश्चतुरो हयान् । षष्ठेन तु शिरः संख्ये खरस्य रथसारथेः ॥२९॥
त्रिभिस्त्रिवेणुं बलवान् द्वाभ्यामक्षं महाबलः । द्वादशेन तु बाणेन खरस्य सशरं धनुः ॥३०॥
छित्त्वा वज्रनिकाशेन राघवः प्रहसन्निव । त्रयोदशेनेन्द्रसमो बिभेद समरे खरम् ॥३१॥
प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । गदापाणिरवप्लुत्य तस्थौ भूमौ खरस्तदा ॥३२॥

तत्कर्म रामस्य महारथस्य समेत्य देवाश्च महर्षयश्च ।
अपूजयन् प्राञ्जलयः प्रहृष्टास्तदा विमानाग्रगताः समेताः ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे खररामसंप्रहारो नाम अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

दौड़े ॥ २१ ॥ स्वर्णपुङ्ख तथा सन्नत पर्व बाणों से, क्रुद्ध रामचन्द्र ने संग्राम में खर की ध्वजा को काट दिया ॥ २२ ॥ वह अत्यन्त दर्शनीय काञ्चन ध्वज छिन्न भिन्न होकर पृथिवी पर इस प्रकार गिर पड़ा, जिस प्रकार देवताओं के द्वारा दिये गये शाप से सूर्य नामक दैत्य गिर गया था ॥ २३ ॥ मर्म को जानने वाले क्रोध में आये हुए खर ने अपने चार बाणों से रामचन्द्र के शरीर तथा हृदय में इस प्रकार आघात किया, जैसे मतवाले गज पर तोमर का प्रहार होता है ॥ २४ ॥ खर के धनुष से निकले हुए अनेकों बाणों के द्वारा रामचन्द्र आहत हो गये। रुधिर से जिनका अङ्ग आर्द्र हो गया है ऐसे रामचन्द्र अत्यन्त क्रुद्ध हो गये ॥ २५ ॥ धनुर्धारियों में श्रेष्ठ धैर्यशाली रामचन्द्र ने उस महासंग्राम में अपने विशाल धनुष को लेकर लक्ष्यपूर्वक अपने छः बाणों को छोड़ा ॥ २६ ॥ एक बाण से शिर में, दो बाणों से दोनों भुजाओं में तथा अर्धचन्द्राकार तीन बाणों से उसके वक्षःस्थल में प्रहार किया ॥ २७ ॥ पश्चात् क्रोध में आये हुए महातेजस्वी रामचन्द्र ने शाण पर चढ़ाये हुए, सूर्य के समान देदीप्यमान तेरह बाणों से राक्षस खर पर प्रहार किया ॥ २८ ॥ एक बाण से रथ के पहिये को, चार बाणों से चार चित्रित तथा चतुर घोड़ों को तथा छठे बाण से संग्राम में सारथि के सिर को रामचन्द्र ने काट दिया ॥ २९ ॥ तीन बाणों से रथ के बाँसों को, दो बाणों से दृढ़ धुरे को तथा बारहवें बाण से बलशाली रामचन्द्र ने खर के हाथ वाले धनुष को ॥ ३० ॥ काटकर इन्द्र के समान हँसते हुए संग्राम में वज्र के समान तेरहवें बाण से खर पर प्रहार किया। ॥ ३१ ॥ धनुष जिसका टूट गया है, रथ नष्ट हो गया है, घोड़ों के समेत सारथि जिसका मारा गया है, ऐसा गदाधारी खर रथ से कूदकर भूमि पर खड़ा हो गया ॥ ३२ ॥ विमान के अग्रभाग में बैठने वाले महर्षि तथा देवगण सम्मिलित होकर हाथ जोड़े हुए, रामचन्द्र के इस अद्भुत कर्म की प्रसन्नता पूर्वक प्रशंसा करने लगे ॥ ३३ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'खर और राम का युद्ध' विषयक अट्ठाईसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥२८॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकोनत्रिंशः सर्गः

खरगदाभेदनम्

खरं तु विरथं रामो गदापाणिमवस्थितम् । मृदुपूर्वं महातेजाः परुषं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
गजाश्वरथसंबाधे बले महति तिष्ठता । कृतं सुदारुणं कर्म सर्वलोकजुगुप्सितम् ॥ २ ॥
उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत् । त्रयाणामपि लोकानामीश्वरोऽपि न तिष्ठति ॥ ३ ॥
कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर । तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम् ॥ ४ ॥
लोभात्पापानि कुर्वाणः कामाद्वा यो न बुध्यते । हृष्टः पश्यति तस्यान्तं ब्राह्मणी करकादिव ॥ ५ ॥
वसतो दण्डकारण्ये तापसान् धर्मचारिणः । किं नु हत्वा महाभागान् फलं प्राप्स्यसि राक्षस ॥६॥
न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः । ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः ॥ ७ ॥
अवश्यं लभते जन्तुः फलं पापस्य कर्मणः । घोरं पर्यागते काले द्रुमः पुष्पमिवार्तवम् ॥ ८ ॥
न चिरात्प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम् । सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर ॥ ९ ॥
पापमाचरतां घोरं लोकस्याप्रियमिच्छताम् । अहमासादितो राज्ञा प्राणान् हन्तुं निशाचर ॥१०॥

उनतीसवां सर्ग

खर की गदा का भेदन

रथहीन, हाथ में गदा लेकर रणभूमि में अवस्थित खर से महातेजस्वी मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र ने नम्रता पूर्वक कुछ कड़े शब्द बोले ॥ १ ॥ हाथी, घोड़ा, रथ आदि से परिपूर्ण विशाल सेना के होने पर तुम ने लोक में निन्दित तथा अत्यन्त दारुण कर्म किया है ॥ २ ॥ प्राणी मात्र को आतंकित करने वाला, पाप कारी, निर्दयी, चाहे वह त्रिलोकी का भी स्वामी हो तो भी संसार में टिक नहीं सकता ॥३॥ हे राक्षस! सर्व-जन विरुद्ध, मानवीय शान्ति का उन्मूलन करने वाला नर पशु यदि अपने घर पर आवे तो उसको उसी प्रकार मार देना चाहिए जैसे अपने घर में आते हुए विषधर सर्प को लोग मार देते हैं ॥ ४ ॥ लोभ या काम के वशीभूत हो कर जो व्यक्ति प्रसन्नता पूर्वक जानते हुए पाप करता है, उसका अन्त उसी प्रकार होता है जैसे चारपद वाला ब्राह्मणी कीट प्रसन्नता पूर्वक ओले को खा कर अपना अन्त कर लेता है ॥ ५ ॥ हे राक्षसाधम ! धर्मात्मा तपस्वी जो इस दण्डक वन में रहते हैं उन को मार कर तुम्हें कौन सा उत्तम फल प्राप्त होगा ॥ ६ ॥ लोक निन्दित पाप करने वाले क्रूर लोग ऐश्वर्य प्राप्त कर के भी चिर काल तक नहीं ठहर सकते, जैसे सड़ी हुई जड़ वाले वृक्ष चिर काल तक नहीं ठहरते ॥ ७ ॥ पाप कर्म करने वाला पापी अपने दुष्कर्मों का कठोर फल अवश्य प्राप्त करता है, जैसे ऋतु के आगमन पर वृक्ष स्वयं पुष्पित हो जाते हैं ॥ ८ ॥ हे निशाचर ! कोई व्यक्ति अपने पापों का फल तत्काल नहीं प्राप्त कर लेता, जैसे विषयुक्त अन्न खाने वाला तत्काल नहीं मरता किन्तु उस के परिपाक होने पर ही उसकी मृत्यु होती है ॥ ९ ॥ हे राक्षस ! लोक के अहितकारी पापाचारियों के वध करने के लिये ही महाराज ने मुझे वन में भेजा है ॥ १० ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अद्य हि त्वां मया मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः । विदार्य निपतिष्यन्ति वल्मीकमिव पन्नगाः ॥११॥
ये त्वया दण्डकारण्ये भक्षिता धर्मचारिणः । तानद्य निहतः संख्ये ससैन्योऽनुगमिष्यसि ॥१२॥
अद्य त्वां विहतं बाणैः पश्यन्तु परमर्षयः । निरस्थं विमानस्था ये त्वया हिंसिताः पुरा ॥१३॥
प्रहर त्वं यथाकामं कुरु यत्नं कुलाधम । अद्य ते पातयिष्यामि शिरस्तालफलं यथा ॥१४॥
एवमुक्तस्तु रामेण क्रुद्धः संरक्तलोचनः । प्रत्युवाच खरो रामं प्रहसन् क्रोधमूर्च्छितः ॥१५॥
प्राकृतान् राक्षसान् हत्वा युद्धे दशरथात्मज । आत्मना कथमात्मानमप्रशस्यं प्रशंससि ॥१६॥
विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभाः । कथयन्ति न ते किंचित्तेजसा स्वेन गर्विताः ॥१७॥
प्राकृतास्त्वकृतात्मानो लोके क्षत्त्रियपांसनाः । निरर्थकं विकत्थन्ते यथा राम विकत्थसे ॥१८॥
कुलं व्यपदिशन् वीरः समरे कोऽभिधास्यति । मृत्युकाले हि संप्राप्ते स्वयमप्रस्तवे स्तवम् ॥१९॥
सर्वथैव लघुत्वं ते कत्थनेन विदर्शितम् । सुवर्णप्रतिरूपेण तप्तेनेव कुशाग्निना ॥२०॥
न तु मामिह तिष्ठन्तं पश्यसि त्वं गदाधरम् । धराधरमिवाकम्प्यं पर्वतं धातुभिश्चितम् ॥२१॥
पर्याप्तोऽहं गदापाणिर्हन्तुं प्राणान् रणे तव । त्रयाणामपि लोकानां पाशहस्त इवान्तकः ॥२२॥
कामं बह्वपि वक्तव्यं त्वयि वक्ष्यामि न त्वहम् । अस्तं गच्छेद्धि सविता युद्धविघ्नस्ततो भवेत् ॥२३॥
चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां हतानि ते । त्वद्विनाशात्करोम्येष तेषामस्रप्रमार्जनम् ॥२४॥

स्वर्णभूषित मेरे बाण तुम्हारे शरीर को छिन्न भिन्न कर उसी प्रकार पृथ्वी पर गिरेंगे जिस प्रकार विषधर सर्प बल्मीक (दीमकारी) में प्रवेश करते हैं ॥ ११ ॥ इस दण्डक वन में जिन धर्मात्मा तपस्वियों का भक्षण कर प्राणान्त किया है, आज सेना के समेत मर कर तुम भी उन्हीं का अनुगमन करोगे ॥ १२ ॥ जिन तपस्वियों को तुम ने पहले मारा है, आज वे तपस्वी गण मेरे बाणों से मरे हुए तुम को नरक स्थान में देखेंगे ॥ १३ ॥ हे कुलाधम राक्षस ! तुम जो चाहो प्रयत्न करो तथा जिस प्रकार के शस्त्र का प्रहार, चाहो, कर लो किन्तु आज तुम्हारे सिर को ताड़ के फल के समान काट कर गिरा दूंगा ॥ १४ ॥ रामचन्द्र की इन बातों को सुनकर क्रोध में जिसकी आंखें लाल हो रही हैं, हंसता हुआ खर क्रोधपूर्वक रामचन्द्र से बोला ॥ १५ ॥ हे दशरथ के राजकुमार ! संग्राम में साधारण राक्षसों को मार कर प्रशंसनीय न होने पर भी तुम अपनी प्रशंसा क्यों कर रहे हो ॥ १६ ॥ जो पराक्रमी, बलवान् तथा तेजस्वी लोग होते हैं वे अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करते ॥ १७ ॥ जो साधारण अकर्मण्य तथा क्षत्रियों में कुलाङ्गार होते हैं, वे इस प्रकार की निरर्थक अपनी श्लाघा करते हैं जिस प्रकार आज तुम अपनी श्लाघा कर रहे हो ॥ १८ ॥ मृत्यु को उत्पन्न करने वाले भीषण संग्राम में विना प्रसंग के अपने कुल के बड़प्पन का परिचय देते हुए अपनी प्रशंसा कौन करता है ॥१९॥ इस आत्मश्लाघा के कथन से आपने अपने छोटेपन का सर्वथा इस प्रकार परिचय दिया है जिस प्रकार सुवर्ण के सदृश दीखने वाली प्रदीप्त कुशा की अग्नि ॥ २० ॥ नाना प्रकार की धातुओं से चित्रित अकम्प पर्वत के सामान, गदा हाथ में लेकर खड़े होने वाले मेरी शक्ति तथा मुझको तुम नहीं देख रहे हो ॥ २१ ॥ पाशधारी काल (यमराज) के समान हाथ में गदा ले कर तुम्हारे प्राणों तथा त्रिलोकी के प्राणों को संग्राम में लेने की शक्ति रखता हूं ॥ २२ ॥ यद्यपि तुम्हारे विषय में बहुत सी बातें कहनी हैं, तथापि समय की न्यूनता से नहीं कह रहा हूं क्यों कि संग्राम में विघ्न डालने वाले सूर्य अस्ताचल को जा रहे हैं (अर्थात् सूर्य के अस्त हो जाने पर युद्ध बन्द हो जायगा) ॥ २३ ॥ चौदह हज़ार राक्षसों को तुमने मारा है, इस लिये आज तुम को मार कर इन का बदला चुकाऊँगा ॥ २४ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्युक्त्वा परमक्रुद्धस्तां गदां परमाङ्गदः । खरश्चिक्षेप रामाय प्रदीप्तामशनिं यथा ॥२५॥
खरबाहुप्रमुक्ता सा प्रदीप्ता महती गदा । भस्म वृक्षांश्च गुल्मांश्च कृत्वागात्तत्समीपतः ॥२६॥
तामापतन्तीं ज्वलितां मृत्युपाशोपमां गदाम् । अन्तरिक्षगतां रामश्चिच्छेद बहुधा शरैः ॥२७॥
सा विशीर्णा शरैर्भग्ना पपात धरणीतले । गदा मन्त्रौषधबलैर्व्यालीव विनिपातिता ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे खरगदाभेदनं नाम एकोनत्रिंशः सर्गः ॥२९॥

त्रिंशः सर्गः

खरसंहारः

भित्त्वा तु तां गदां बाणै राघवो धर्मवत्सलः । स्मयमानः खरं वाक्यं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
एतत्ते बलसर्वस्वं दर्शितं राक्षसाधम । शक्तिहीनतरो मत्तो वृथा त्वमवगर्जसि ॥ २ ॥
एषा बाणविनिर्भिन्ना गदा भूमितलं गता । अभिधानप्रगल्भस्य तव प्रत्यरिघातिनी ॥ ३ ॥
यत्त्वयोक्तं विनष्टानामहमस्रप्रमार्जनम् । राक्षसानां करोमीति मिथ्या तदपि ते वचः ॥ ४ ॥

इस प्रकार कह कर परम क्रोध पूर्वक खर ने वज्र के समान जाज्वल्यमान अपनी भीषण गदा को राम पर चलाया ॥ २५ ॥ खर के हाथ से छोड़ी हुई जाज्वल्यमान वह महती गदा लता और वृक्षों को भस्म करती हुई रामचन्द्र के पास पहुंची ॥ २६ ॥ मृत्युपाश के समान अपने समीप आती हुई उस महती गदा को रामचन्द्र ने अपने अनेक बाणों से आकाश में ही छिन्न भिन्न कर दिया ॥ २७ ॥ रामचन्द्र के बाणों से छिन्न भिन्न कई टुकड़ों में वह गदा पृथ्वी पर इस प्रकार गिर गई जिस प्रकार मन्त्र तथा ओषधि के प्रयोग से सर्पिणी भूमि पर गिर पड़ती है ॥ २८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'खर के वज्र का भेदन' विषयक उनतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २९ ॥

तीसवां सर्ग

खर का संहार

धर्मात्मा श्री रामचन्द्र अपने बाणों से उस गदा को छिन्न भिन्न कर के क्रोध में आये हुए उस खर के प्रति हंसते हुए यह वचन बोले ॥१॥ हे राक्षसाधम! यही तुम्हारा सर्वस्व बल था, जिस को गदा प्रक्षेप से तुम ने दिखाया है। अब तो तुम्हें पता लग गया कि तुम्हारा गर्जन वृथा है और तुम मुझसे शक्ति हीन हो ॥ २ ॥ अभिमान पूर्वक बकवास करने वाले तुम्हारे विश्वास को नष्ट करने वाली तुम्हारी चलाई हुई यह गदा मेरे बाणों से छिन्न भिन्न हो कर पृथ्वी पर गिर गई ॥ ३ ॥ तुम ने यह जो कहा था कि आज तुमको मार कर अपने मरे हुए चौदह हजार राक्षसों का बदला चुकाऊंगा, यह तुम्हारी प्रतिज्ञा की बात भी मिथ्या हो गई ॥ ४ ॥ नीच, क्षुद्र स्वभाव, मिथ्या आचरण करने वाले तुझ राक्षस का प्राण आज उसी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नीचस्य क्षुद्रशीलस्य मिथ्यावृत्तस्य रक्षसः । प्राणानपहरिष्यामि गरुत्मानमृतं यथा ॥ ५ ॥
अद्य ते छिन्नकण्ठस्य फेनबुद्बुदभूषितम् । विदारितस्य मद्बाणैर्मही पास्यति शोणितम् ॥ ६ ॥
पांसुरूषितसर्वाङ्गः स्रस्तन्यस्तभुजद्वयः । स्वप्स्यसे गां समालिङ्ग्य दुर्लभां प्रमदामिव ॥ ७ ॥
प्रवृद्धनिद्रे शयिते त्वयि राक्षसपांसने । भविष्यन्त्यशरण्यानां शरण्या दण्डका इमे ॥ ८ ॥
जनस्थाने हतस्थाने तव राक्षस मच्छरैः । निर्भया विचरिष्यन्ति सर्वतो मुनयो वने ॥ ९ ॥
अद्य विप्रसरिष्यन्ति राक्षस्यो हतबान्धवाः । बाष्पार्द्रवदना दीना भयादन्यभयावहाः ॥१०॥
अद्य शोकरसज्ञास्ता भविष्यन्ति निरर्थिकाः । अनुरूपकुलाः पत्न्यो यासां त्वं पतिरीदृशः ॥११॥
नृशंस नीच क्षुद्रात्मन्नित्यं ब्राह्मणकण्टक । यत्कृते शङ्कितैरग्नौ मुनिभिः पात्यते हविः ॥१२॥
तमेवमभिसंरब्धं ब्रुवाणं राघवं रणे । खरो निर्भर्त्सयामास रोषात्खरतरस्वनः ॥१३॥
दृढं खल्ववलिप्तोऽसि भयेष्वपि च निर्भयः । वाच्यावाच्यं ततो हि त्वं मृत्युवश्यो न बुध्यसे ॥१४॥
कालपाशपरिक्षिप्ता भवन्ति पुरुषा हि ये । कार्याकार्यं न जानन्ति ते निरस्तषडिन्द्रियाः ॥१५॥
एवमुक्त्वा ततो रामं संरुध्य भ्रुकुटिं ततः । स ददर्श महासालमविदूरे निशाचरः ॥१६॥
रणे प्रहरणस्यार्थे सर्वतो ह्यवलोकयन् । स तमुत्पाटयामास संदश्य दशनच्छदम् ॥१७॥
तं समुत्पाट्य बाहुभ्यां विनद्य च महाबलः । राममुद्दिश्य चिक्षेप हतस्त्वमिति चाब्रवीत् ॥१८॥
तमापतन्तं बाणौघैश्छित्त्वा रामः प्रतापवान् । रोषमाहारयत्तीव्रं निहन्तुं समरे खरम् ॥१९॥

प्रकार हरण करूंगा जैसे गरुत्मान् ने अमृत का हरण किया था ॥ ५ ॥ आज मेरे बाणों से सिर कटे हुए तथा विदारित शरीर वाले, बुद्बुद (फेन) वाले तुम्हारे रक्त को पृथ्वी पान करेगी ॥ ६ ॥ दोनों भुजाओं के कट जाने पर क्षत-विक्षत धूल धूसरित तुम पृथ्वी का आलिंगन कर उसी प्रकार सोओगे जैसे कोई दुर्लभ नायिका को प्राप्त कर सोता है ॥ ७ ॥ तुम कुलाधम राक्षस के चिर निद्रा (मृत्यु) प्राप्त कर लेने पर यह दण्डक वन आर्त्त शरणार्थियों के लिए शरण प्रदान करने वाला होगा ॥ ८ ॥ हे राक्षस ! मेरे बाणों से जन-स्थान निवासी सम्पूर्ण राक्षसों के मारे जाने पर इस दण्डक वन में सम्पूर्ण मुनि लोग निर्भय विचरण करेंगे ॥ ९ ॥ जिन के बन्धु-बान्धव मार दिये गये हैं, रोती हुई ऐसी भयङ्कर राक्षसियां दुःखी होकर इस वन से भाग जायेंगी ॥ १० ॥ तुम जैसे चरित्रहीन पतित पतियों को प्राप्त करने वाली तथा तुम लोगों के अनुकूल आचरण करने वाली तुम्हारी स्त्रियां आज शोक रस का अनुभव करेंगी ॥ ११ ॥ हे निर्दय चरित्र वाले, ब्राह्मणों के द्वेषी, क्षुद्रात्मा ! तुम्हारे आतङ्क से शंकित होते हुए मुनि लोग अब तक अग्नि में आहुति डालते रहे हैं ॥ १२ ॥ इस प्रकार रण में क्रोधपूर्वक रामचन्द्र के कहने पर खर फटकारते हुए क्रोधपूर्वक तीक्ष्ण स्वर में यह बोला ॥ १३ ॥ तुम बड़े अभिमानी प्रतीत होते हो जोकि भय के समय निर्भय बने हो। मृत्यु के वश में आ जाने पर तुम, इस समय क्या बोलना चाहिए तथा क्या नहीं, इस बात को नहीं जान रहे हो ॥ १४ ॥ काल के पाश में बंधे हुए मनुष्य कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को नहीं जानते; क्यों कि उन की सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियां उन का साथ छोड़ देती हैं ॥ १५ ॥ क्रोध में आकर विकट दृष्टि पूर्वक रामचन्द्र से इस प्रकार कह कर समीप में ही उस राक्षस ने एक विशाल साल वृक्ष को देखा ॥ १६ ॥ संग्राम में शस्त्र बनाने के लिये इधर उधर देख कर ओठों को दांतों से दबाते हुए खर ने उस साल वृक्ष को उखाड़ लिया ॥ १७ ॥ उस साल वृक्ष को दोनों हाथों से उठा कर महाबली खर ने गर्जन करते हुए राम को लक्ष्य कर के उन पर फैंक दिया और यह कहा कि तुम मारे गये ॥ १८ ॥ उस साल वृक्ष को अपनी ओर आते हुए देख कर प्रतापी रामचन्द्र ने अपने बाणों से उसे छिन्न भिन्न कर के संग्राम में खर को मारने के लिए भयङ्कर क्रोध किया ॥ १९ ॥ क्रोध के मारे जिन के नेत्र लाल हो गये हैं तथा जिनके शरीर से पसीना बह रहा है, ऐसे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जातस्वेदस्ततो रामो रोषाद्रक्तान्तलोचनः । निर्बिभेद सहस्रेण बाणानां समरे खरम् ॥२०॥
तस्य बाणान्तराद्रक्तं बहु सुस्राव फेनिलम् । गिरेः प्रस्रवणस्येव तोयधारापरिस्रवः ॥२१॥
विह्वलः स कृतो बाणैः खरो रामेण संयुगे । मत्तो रुधिरगन्धेन तमेवाभ्यद्रवद्द्रुतम् ॥२२॥
तमापतन्तं संरब्धं कृतास्त्रो रुधिराप्लुतम् । अपासर्पद् द्वित्रपदं किंचित्त्वरितविक्रमः ॥२३॥
ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम् । खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम् ॥२४॥
स तं दत्तं मघवता सुरराजेन धीमता । संदधे चापि धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति ॥२५॥
स विमुक्तो महाबाणो निर्घातसमनिःस्वनः । रामेण धनुरायम्य खरस्योरसि चापतत् ॥२६॥
स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना । रुद्रेणेव विनिर्दग्धः श्वेतारण्ये यथान्तकः ॥२७॥
स वृत्र इव वज्रेण फेनेन नमुचिर्यथा । बलो वेन्द्राशनिहतो निपपात हतः खरः ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चारणैः सह संगताः । दुन्दुभींश्चाभिनिघ्नन्तः पुष्पवर्षं समन्ततः ॥२९॥
रामस्योपरि संहृष्टा ववृषुर्विस्मितास्तदा । अर्धाधिकमुहूर्तेन रामेण निशितैः शरैः ॥३०॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । खरदूषणमुख्यानां निहतानि महाहवे ॥३१॥
अहो बत महत्कर्म रामस्य विदितात्मनः । अहो वीर्यमहो दाक्ष्यं विष्णोरिव हि दृश्यते ॥३२॥
इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे ययुर्देवा यथागतम् । ततो राजर्षयः सर्वे संगताः परमर्षयः ॥३३॥

रामचन्द्र ने अपने हजारों बाणों से संग्राम में खर को आहत किया ॥ २० ॥ बाणों से मर्माहत होने पर उस खर के शरीर से फेनवाला रुधिर इस प्रकार बहने लगा जिस प्रकार प्रस्रवण पर्वत से जल के झरने बहते हैं ॥ २१ ॥ संग्राम में रामचन्द्र के बाणों से खर विकल हो गया किन्तु रुधिर की गन्ध से उन्मत्त होता हुआ रामचन्द्र पर टूट पड़ा ॥ २२ ॥ रुधिर से सने हुए क्रोधातुर खर को अपनी ओर आते हुए देख कर शस्त्र विशारद रामचन्द्र शीघ्रतापूर्वक अपने स्थान से तीन पद पीछे हट गये ॥ २३ ॥ पश्चात् संग्राम में खर को मारने के लिए रामचन्द्र ने द्वितीय ब्रह्मदण्ड के सदृश अग्नि के समान जाज्वल्यमान बाण को हाथ में लिया ॥ २४ ॥ बुद्धिमान् इन्द्र के दिये हुए उस बाण को धर्मात्मा रामचन्द्र ने खर को लक्ष्य कर के छोड़ा ॥ २५ ॥ वज्र के समान गर्जन करने वाला रामचन्द्र के द्वारा छोड़ा हुआ वह बाण खर की छाती में जा कर लगा ॥ २६ ॥ राम की बाणाग्नि से दग्ध होता हुआ वह खर पृथ्वी पर इस प्रकार गिर पड़ा जैसे श्वेत वन में भगवान् शंकर के द्वारा दग्ध होता हुआ अन्धक गिर पड़ा था ❀ ॥ २७ ॥ जैसे वज्र के द्वारा वृत्रासुर मारा गया, फेनास्त्र के द्वारा नमुचि मारा गया तथा अशनि (वज्र) के द्वारा बल मारा गया, उसी प्रकार रामचन्द्र के बाणों से आहत होकर खर मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥ २८ ॥ खर के मर जाने के पश्चात् देवगण तथा चारण लोग इकट्ठे होकर फूलों की वर्षा करते हुए दुन्दुभि को बजाने लगे ॥ २९ ॥ उस समय विस्मित होते हुए प्रसन्नता पूर्वक देवमण्डल ने राम के ऊपर पुष्प वर्षा की । रामचन्द्र ने तीन घड़ी में अपने तीखे बाणों से खरदूषण आदि मुख्य भयङ्कर चौदह हजार राक्षसों को महासंग्राम में मार दिया ॥३०,३१ ॥ अहो ! आत्मदर्शी रामचन्द्र का यह महान् कर्म है । उनका पराक्रम और दृढ़ता प्रशंसनीय है । इन की कार्य क्षमता विष्णु के समान दिखाई देती है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार की बातें कर के सम्पूर्ण देवमण्डल अपने स्थान को चला गया । पश्चात् राजर्षि तथा ब्रह्मर्षि वहां पर आये ॥ ३३ ॥ रामचन्द्र का सत्कार करते

❀ श्वेतारण्य में भगवान् शंकर और अन्धकासुर का लोमहर्षण संग्राम हुआ । अन्त में अग्नि बाण के द्वारा दग्ध होता हुआ अन्धकासुर मारा गया । यह कथा कई पुराणों में वर्णित है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सभाज्य मुदिता राममिदं वचनमब्रुवन् । एतदर्थं महाभाग महेन्द्रः पाकशासनः ॥३४॥
शरभङ्गाश्रमं पुण्यमाजगाम पुरंदरः । आनीतस्त्वमिमं देशमुपायेन महर्षिभिः ॥३५॥
एषां वधार्थं क्रूराणां रक्षसां पापकर्मणाम् । तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज ॥३६॥
सुखं धर्मं चरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः । एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सह सीतया ॥३७॥
गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमं सुखी । ततो रामस्तु विजयी पूज्यमानो महर्षिभिः ॥३८॥
प्रविवेशाश्रमं वीरो लक्ष्मणेनाभिपूजितः । तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम् ॥३९॥
बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे । मुदा परमया युक्ता दृष्ट्वा रक्षोगणान् हतान् ॥४०॥
रामं चैवाव्यथं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा ।
ततस्तु तं राक्षससङ्घमर्दनं सभाज्यमानं मुदितैर्महर्षिभिः ।
पुनः परिष्वज्य शशिप्रभानना बभूव हृष्टा जनकात्मजा तदा ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे खरसंहारो नाम त्रिंशः सर्गः ॥३०॥

एकत्रिंशः सर्गः

रावणखरवृत्तोपालम्भः

त्वरमाणस्ततो गत्वा जनस्थानादकम्पनः । प्रविश्य लङ्कां वेगेन रावणं वाक्यमब्रवीत ॥ १ ॥

हुए अगस्त्य आदि ऋषि लोग प्रसन्न हो कर रामचन्द्र से यह बोले ॥ ३४ ॥ इसी काम के लिये पाकशासन शत्रुओं के मान मर्दन करने वाले महेन्द्र, शरभङ्ग के पुण्य आश्रम में आये थे। अब उन्हीं राक्षसों का वध करने के लिए महर्षियों द्वारा आप यहां पर लाये गये हैं ॥ ३५ ॥ हे दशरथ के राजकुमार ! इन पापी शत्रु राक्षसों के वध करने के लिए ही आप का यहां आना हुआ था। वह हम लोगों का काम आप ने कर दिया ॥ ३६ ॥ इस दण्डक वन में महर्षि लोग अब अपने धर्म का आचरण सुख से करेंगे। ब्रह्मर्षि गण जिस समय राम से यह बातें कर रहे थे, उसी समय वीर लक्ष्मण ने सीता के साथ ॥ ३७ ॥ सुख पूर्वक गिरि दुर्ग से निकल कर रामचन्द्र के आश्रम में प्रवेश किया। पश्चात् महर्षियों के द्वारा पूजित वीर विजयी रामचन्द्र ने ॥ ३८ ॥ अपने आश्रम में प्रवेश किया। महर्षियों को सुख देने वाले तथा शत्रुओं के मान मर्दन करने वाले रामचन्द्र को देख कर लक्ष्मण ने उनका सत्कार किया ॥ ३९ ॥ शत्रु मारे गये, इस को देख कर सीता बहुत प्रसन्न हुई तथा अति प्रसन्नता पूर्वक पति का आलिङ्गन किया। अपने पति को अक्षत कुशल पूर्वक देख कर सीता बहुत प्रसन्न हुई ॥ ४० ॥ राक्षस दल के नाश करने वाले प्रसन्न वनवासी महात्माओं से सम्पूजित अपने पति रामचन्द्र का चन्द्रवदना सीता ने पुनः आलिङ्गन कर के अति प्रसन्नता प्रकट की ॥ ४१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'खर का संहार' विषयक तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३० ॥

इकत्तीसवां सर्ग

रावण तथा खर के आचरण की निन्दा

जनस्थान की घटना के पश्चात् अकम्पन नामक राक्षस शीघ्रतापूर्वक लंका में जाकर तथा शीघ्र ही राजधानी में प्रवेश कर रावण से यह बोला ॥१॥ हे राजन् ! जनस्थान के रहनेवाले बहुत से राक्षस मार

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जनस्थानस्थिता राजन् राक्षसा बहवो हताः । खरश्च निहतः संख्ये कथंचिदहमागतः ॥ २ ॥
एवमुक्तो दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः । अकम्पनमुवाचेदं निर्दहन्निव तेजसा ॥ ३ ॥
केन भीमं जनस्थानं हतं मम परासुना । को हि सर्वेषु लोकेषु गतिं नाधिगमिष्यति ॥ ४ ॥
न हि मे विप्रियं कृत्वा शक्यं मघवता सुखम् । प्राप्तुं वैश्रवणेनापि न यमेन न विष्णुना ॥ ५ ॥
कालस्य चाप्यहं कालो दहेयमपि पावकम् । मृत्युं मरणधर्मेण संयोजयितुमुत्सहे ॥ ६ ॥
दहेयमपि संक्रुद्धस्तेजसादित्यपावकौ । वातस्य तरसा वेगं निहन्तुमहमुत्सहे ॥ ७ ॥
तथा क्रुद्धं दशग्रीवं कृताञ्जलिरकम्पनः । भयात्सांदिग्धया वाचा रावणं याचतेऽभयम् ॥ ८ ॥
दशग्रीवोऽभयं तस्मै प्रददौ रक्षसां वरः । स विस्रब्धोऽब्रवीद्वाक्यमसंदिग्धमकम्पनः ॥ ९ ॥
पुत्रो दशरथस्यास्ति सिंहसंहननो युवा । रामो नाम वृषस्कन्धो वृत्तायतमहाभुजः ॥१०॥
श्यामः पृथुयशाः श्रीमानतुल्यबलविक्रमः । हतं तेन जनस्थानं खरश्च सहदूषणः ॥११॥
अकम्पनवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः । नागेन्द्र इव निःश्वस्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥१२॥
स सुरेन्द्रेण संयुक्तो रामः सर्वामरैः सह । उपयातो जनस्थानं ब्रूहि कच्चिदकम्पन ॥१३॥
रावणस्य पुनर्वाक्यं निशम्य तदकम्पनः । आचचक्षे बलं तस्य विक्रमं च महात्मनः ॥१४॥
रामो नाम महातेजाः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् । दिव्यास्त्रगुणसंपन्नः पुरंदरसमो युधि ॥१५॥
तस्यानुरूपो बलवान् रक्ताक्षो दुन्दुभिस्वनः । कनीयाञ्लक्ष्मणो नाम भ्राता शशिनिभाननः ॥१६॥

दिये गये और संग्राम में खर भी मार दिये गये। मैं किसी प्रकार बच कर यहाँ आया हूँ ॥२॥ अकम्पन के इस प्रकार कहने पर क्रुद्ध रावण आंखें लाल कर के मानो अपने तेज से जला ही देगा अकम्पन से इस प्रकार बोला ॥ ३ ॥ मरणधर्मा किस ने मेरे इस भयानक जनस्थान जो नष्ट किया है। कौन ऐसा अभागा व्यक्ति है जो शान्ति पूर्वक नहीं रहना चाहता ॥ ४ ॥ मेरा अप्रिय आचरण करके इन्द्र, कुबेर, यम तथा विष्णु भी सुख पूर्वक नहीं रह सकते ॥५॥ मैं काल का काल हूँ, अग्नि को भी जला सकता हूं तथा मृत्यु को भी मारने की सामर्थ्य रखता हूं ॥ ६ ॥ मैं वायु के वेग को भी अपने बल के वेग से नष्ट कर सकता हूं। मैं अपनी क्रोधाग्नि से सूर्य और अग्नि को भी जला सकता हूँ ॥ ७ ॥ इस प्रकार क्रोध में आये हुए रावण से भयातुर अकम्पन ने हाथ जोड़ कर सन्दिग्ध शब्द में अभय की याचना की ॥ ८ ॥ राक्षसों में श्रेष्ठ रावण ने उसको अभय प्रदान किया। पश्चात् विश्वस्त होकर अकम्पन सन्देह रहित इस प्रकार बोला ॥ ९ ॥ राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र सिंह के समान शरीर वाले, तरुण, पुष्ट कन्धे वाले, गोल तथा लम्बी भुजा वाले हैं ॥ १० ॥ आकृति में श्याम वर्ण के, महान् यशस्वी, कान्तिमान्, अतुल बल पराक्रम वाले रामचन्द्र हैं। उन्होंने जनस्थान में खर-दूषण को मारा है ॥ ११ ॥ राक्षसराज रावण अकम्पन की इन बातों को सुन कर मतवाले हाथी के समान लम्बी सांस लेते हुए इस प्रकार बोला ॥ १२ ॥ हे अकम्पन ! तुम कहो। इन्द्र और सब देवताओं के साथ रामचन्द्र जनस्थान में आये हैं क्या ? ॥ १३ ॥ रावण की इन बातों को सुन कर अकम्पन ने रामचन्द्र के बल और पराक्रम का वर्णन किया ॥ १४ ॥ राम महान् तेजस्वी तथा सम्पूर्ण धनुर्धारियों में श्रेष्ठ हैं। हर एक दिव्यास्त्र तथा गुण से परिपूर्ण हैं और वे संग्राम विशारद भी हैं ॥ १५ ॥ उन्हीं के अनुरूप उन का एक छोटा भाई लक्ष्मण है जो अत्यन्त बलवान्, चन्द्रमा के समान मुख मण्डल वाला तथा जिस का स्वर दुन्दुभी के समान है ॥ १६ ॥ अग्नि के साथ जैसे वायु हो उसी प्रकार अपने भाई

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स तेन सह संयुक्तः पावकेनानिलो यथा । श्रीमान् राजवरस्तेन जनस्थानं निपातितम् ॥१७॥
नैव देवा महात्मानो नात्र कार्या विचारणा । शरा रामेण तूत्सृष्टा रुक्मपुङ्खाः पतत्रिणः ॥१८॥
सर्पाः पञ्चानना भूत्वा भक्षयन्ति स्म राक्षसान् । येन येन च गच्छन्ति राक्षसा भयकर्शिताः ॥१९॥
तेन तेन स्म पश्यन्ति राममेवाग्रतः स्थितम् । इत्थं विनाशितं तेन जनस्थानं तवानघ ॥२०॥
अकम्पनवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् । जनस्थानं गमिष्यामि हन्तुं रामं सलक्ष्मणम् ॥२१॥
अथैवमुक्ते वचने प्रोवाचेदमकम्पनः । शृणु राजन् यथावृत्तं रामस्य बलपौरुषम् ॥२२॥
असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महायशाः । आपगायाः सुपूर्णाया वेगं परिहरेच्छरैः ॥२३॥
सतारग्रहनक्षत्रं नभश्चाप्यवसादयेत् । असौ रामस्तु मज्जन्तीं श्रीमानभ्युद्धरेन्महीम् ॥२४॥
भित्त्वा वेलां समुद्रस्य लोकानाप्लावयेद्विभुः । वेगं वापि समुद्रस्य वायुं वा विधमेच्छरैः ॥२५॥
संहृत्य वा पुनर्लोकान् विक्रमेण महायशाः । शक्तः स पुरुषव्याघ्रः स्रष्टुं पुनरपि प्रजाः ॥२६॥
न हि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं त्वया युधि । रक्षसां वापि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव ॥२७॥
न तं वध्यमहं मन्ये सर्वैर्देवासुरैरपि । अयं तस्य वधोपायस्तं ममैकमनाः शृणु ॥२८॥
भार्या तस्योत्तमा लोके सीता नाम सुमध्यमा । श्यामा समविभक्ताङ्गी स्त्रीरत्नं रत्नभूषिता ॥२९॥
नैव देवी न गन्धर्वी नाप्सरा नापि दानवी । तुल्या सीमन्तिनी तस्या मानुषीषु कुतो भवेत् ॥३०॥

लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र हैं। उसी राजश्रेष्ठ रघुकुल शिरोमणी रामचन्द्र ने जनस्थान का नाश किया है ॥ १७ ॥ रामचन्द्र के साथ कोई देव या महात्मा न थे, इस का आप विचार न करें उस समय रामचन्द्र ने स्वर्ण पुंख वाले बाणों को छोड़ा था ॥ १८ ॥ राम के छोड़े बाण पंच मुख वाले सर्प के समान राक्षसों को खा गये। भयातुर राक्षस भय से जिधर २ भागते थे ॥ १९ ॥ रामचन्द्र उन को आगे ही उधर दिखाई देते थे। हे निष्पाप राजन्! रामचन्द्र ने इस प्रकार आप के सम्पूर्ण जनस्थान को नष्ट कर दिया ॥ २० ॥ अकम्पन की बात को सुन कर रावण इस प्रकार बोला—राम और लक्ष्मण को मारने के लिये मैं जनस्थान में जाऊँगा ॥ २१ ॥ रावण के ऐसा कहने पर अकम्पन ने यह कहा—हे राजन्! रामचन्द्र का बल पराक्रम आदि जो कुछ है, मैं कहता हूं। आप सुनिये ॥ २२ ॥ महायशस्वी रामचन्द्र कुपित होकर यदि संग्राम में अवतरित हो जायें, तो उनके रोषजनित कार्यों का सामना करना असाध्य है। रामचन्द्र अपने बाणों के प्रहार से पूर्ण नदी के वेग को भी रोक सकते हैं ॥ २३ ॥ तारा-ग्रह-नक्षत्र मण्डल के साथ नभ को भी रामचन्द्र अपने बाणों से गिरा सकते हैं। खण्ड प्रलय को प्राप्त होने वाली पृथ्वी का भी रामचन्द्र उद्धार कर सकते हैं ॥ २४ ॥ व्यापक शक्ति वाले रामचन्द्र अपने बाणों से समुद्र के अवरोध तट को तोड़ कर सम्पूर्ण विश्व को जल से आप्लावित कर सकते हैं। समुद्र तथा वायु के वेग को भी वे अपने बाणों से रोक सकते हैं ॥ २५ ॥ महायशस्वी रामचन्द्र अपने विक्रम से संसार में प्रलय कर सकते हैं। प्रलय के पश्चात् श्रेष्ठ रामचन्द्र पुनः उस का निर्माण भी कर सकते हैं ॥२६॥ हे दशग्रीव! समराङ्गण में तुम रामचन्द्र को नहीं जीत सकते हो। सम्पूर्ण राक्षसों की सहायता से भी तुम रामचन्द्र पर उसी प्रकार विजय नहीं प्राप्त कर सकते जैसे कोई अधर्मी स्वर्ग को नहीं जीत सकता ॥ २७ ॥ सम्पूर्ण देव तथा असुर मिल कर भी रामचन्द्र को नहीं मार सकते। रामचन्द्र को मारने का केवल एक ही उपाय है, वह मैं तुमसे कहता हूं, ध्यान से सुनो ॥ २८ ॥ उनकी धर्मपत्नी जिसका नाम सीता है, जो अत्यन्त सुन्दरी, युवति, अङ्गप्रत्यङ्ग अत्यन्त मनोहर, नाना रत्नों से विभूषित तथा स्त्रियों में रत्न के समान है ॥ २९ ॥ देव, गन्धर्व, अप्सरा तथा नाग जाति में भी ऐसी कोई सुन्दरी नहीं है, फिर सामान्य मनुष्यों की तो बात ही क्या? ॥ ३० ॥ उस महावन में छलपूर्वक किसी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्यापहर भार्यां त्वं प्रमथ्य तु महावने । स तया रहितः कामी रामो हास्यति जीवितम् ॥३१॥
अरोचयत तद्वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः । चिन्तयित्वा महाबाहुरकम्पनमुवाच ह ॥३२॥
वाढं कल्यं गमिष्यामि ह्येकः सारथिना सह । आनयिष्यामि वैदेहीमिमां हृष्टो महापुरीम् ॥३३॥
अथैवमुक्त्वा प्रययौ खरयुक्तेन रावणः । रथेनादित्यवर्णेन दिशः सर्वाः प्रकाशयन् ॥३४॥
स रथो राक्षसेन्द्रस्य नक्षत्रपथगो महान् । संचार्यमाणः शुशुभे जलदे चन्द्रमा इव ॥३५॥
स मारीचाश्रमं प्राप्य ताटकेयमुपागमत् । मारीचेनार्चितो राजा भक्ष्यभोज्यैरमानुषैः ॥३६॥
तं स्वयं पूजयित्वा तु आसनेनोदकेन च । अर्थोपहितया वाचा मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥३७॥
कच्चित्सुकुशलं राजँल्लोकानां राक्षसेश्वर । आशङ्के नाथ जाने त्वं यतस्तूर्णमिहागतः ॥३८॥
एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः । ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥३९॥
आरक्षो मे हतस्तात रामेणाक्लिष्टकर्मणा । जनस्थानमवध्यं तत्सर्वं युधि निपातितम् ॥४०॥
तस्य मे कुरु साचिव्यं तस्य भार्यापहारणे । राक्षसेन्द्रवचः श्रुत्वा मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥४१॥
आख्याता केन सीता सा मित्ररूपेण शत्रुणा । त्वया राक्षसशार्दूल को न नन्दति नन्दितः ॥४२॥

प्रकार सीता को तुम हर लाओ। सीता विना रामचन्द्र किसी प्रकार जी नहीं सकते ॥ ३१ ॥ अकम्पन की इन बातों को राक्षसराज रावण ने पसन्द किया तथा कुछ सोचकर रावण पुनः अकम्पन से बोला ॥ ३२ ॥ ठीक है, मैं कल प्रातःकाल अपने सारथि के साथ अकेला जाऊँगा और प्रसन्नता पूर्वक इस महती नगरी लंका में सीता को ले आऊँगा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार बातें कह कर रावण ने तीक्ष्ण गति वाले घोड़े जिसमें जुते हैं तथा अपनी कान्ति से सूर्य को भी म्लान करने वाले और सारी दिशाओं को प्रकाशित करने वाले रथ पर बैठ कर प्रस्थान किया ॥ ३४ ॥ स्वर्ग (त्रिविष्टप)* में भी ख्याति प्राप्त करने वाला राक्षसेन्द्र रावण का वह रथ गति करता हुआ घन में चलते हुए चन्द्रमा के समान शोभित हुआ ॥ ३५ ॥ वह रावण दूर की यात्रा कर के ताटका-पुत्र मारीच के आश्रम में पहुँचा। मारीच ने भी मानव-दुर्लभ भक्ष्य-भोज्य आदि के द्वारा अपने राजा रावण का सत्कार किया ॥ ३६ ॥ आसन-अर्घ्य-उदक आदि के द्वारा स्वयं रावण का सत्कार करके मारीच राक्षसराज से अर्थयुक्त वचन बोला ॥ ३७ ॥ सम्पूर्ण राक्षस-लोक के अधिपति ! आप के परिवार में लोग कुशलपूर्वक तो हैं। मैं इस को नहीं जानता हूं। सहसा आप के शीघ्रता पूर्वक आने से मुझे आशंका हो रही है ॥ ३८ ॥ मारीच के ऐसा पूछने पर वाक्य-विशारद महातेजस्वी रावण उस के उत्तर में यह वचन बोला ॥ ३९ ॥ हे तात ! मृदु कर्म करने वाले रामचन्द्र ने जनस्थान में रहने वाले मेरे आरक्षक (सीमा की रक्षा करने वाले) को मार दिया है। मेरे अजेय जनस्थान को रामचन्द्र ने संग्राम में नष्ट कर दिया है ॥ ४० ॥ इस लिये मैं रामचन्द्र की धर्मपत्नी का अपहरण करूँगा। इस काम में आप मेरी सहायता करें। राक्षसराज रावण की इस बात को सुन कर मारीच यह वचन बोला ॥ ४१ ॥ मित्र के रूप में तुम्हारा वह कौन शत्रु है जिसने सीता का परिचय तथा उस के अपहरण की सम्मति तुम को दी है। हे राक्षसशार्दूल रावण ! तुम्हारे द्वारा सम्मानित वह कौन व्यक्ति है जो तुम्हारी वृद्धि को नही चाहता ॥ ४२ ॥ सीता का अपहरण करके यहाँ ले आओ, यह तुम से किस ने कहा है, मुझे बताओ।

*स्वर्ग शब्द से त्रिविष्टप (तिब्बत) ही लिया जाता है, क्यों कि देवपुरी स्वर्ग जिस के राजा इन्द्र माने जाते हैं, इसी त्रिविष्टप (तिब्बत) को ही रामायण-महाभारत आदि ग्रन्थों के अनेकों स्थलों में वर्णन किया है। इस त्रिविष्टप (तिब्बत) की राजधानी अमरावती मानी जाती थी जिसे आजकल लोग ल्हासा कहते हैं। दिग्विजय की यात्रा में रावण का स्वर्ग पर आक्रमण करना तथा पाण्डवों की स्वर्गारोहण कथा इसी त्रिविष्टप स्थान का निर्देश करती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सीतामिहानयस्वेति को ब्रवीति ब्रवीहि मे । रक्षोलोकस्य सर्वस्य कः शृङ्गं छेत्तुमिच्छति ।।४३।।
प्रोत्साहयति कश्च त्वां स हि शत्रुरसंशयः । आशीविषमुखाद्दंष्ट्रामुद्धर्तुं चेच्छति त्वया ।।४४।।
कर्मणा तेन केनासि कापथं प्रतिपादितः । सुखसुप्तस्य ते राजन् प्रहृतं केन मूर्धनि ।।४५।।
विशुद्धवंशाभिजनाग्रहस्तस्तेजोमदः संस्थितदोर्विषाणः ।
उदीक्षितुं रावण नेह युक्तः स संयुगे राघवगन्धहस्ती ।।४६।।
असौ रणान्तःस्थितिसन्धिवालो विदग्धरक्षो मृगहा नृसिंहः ।
सुप्तस्त्वया बोधयितुं न युक्तः शराङ्गपूर्णो निशितासिदंष्ट्रः ।।४७।।
चापावहारे भुजवेगपङ्के शरोर्मिमाले सुमहाहवौघे ।
न रामपातालमुखेऽतिघोरे प्रस्कन्दितुं राक्षसराज युक्तम् ।।४८।।
प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र लङ्कां प्रसन्नो भव साधु गच्छ ।
त्वं स्वेषु दारेषु रमस्व नित्यं रामः सभार्यो रमतां वनेषु ।।४९।।
एवमुक्तो दशग्रीवो मारीचेन स रावणः । न्यवर्तत पुरीं लङ्कां विवेश च गृहोत्तमम् ।।५०।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे रावणखरवृत्तान्तोपालम्भो नाम एकत्रिंशः सर्गः ॥३१॥

सम्पूर्ण राक्षस वंश की कीर्त्ति तथा गौरव को कौन नष्ट करना चाहता है ॥४३॥ इस निन्दनीय कर्म के लिये जिस ने तुम्हें प्रोत्साहित किया है, वह निःसन्देह तुम्हारा शत्रु है। मानो वह विषधर सर्प के मुख से तुम्हारे द्वारा उस का दांत उखड़वाना चाहता है ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! इस घृणित कर्म के द्वारा तुम को किस ने कुमार्ग का पथिक बनाया है। सुख से सोये हुए तुम्हारे मस्तक पर यह किस ने प्रहार किया है ॥ ४५ ॥ विशुद्ध वंश में उत्पन्न होना मानो यह हाथी का सूंड है, जिन का स्वयं तेज ही हाथी का मद है और जिन के दोनों हाथ ही हाथी के विशाल दांत हैं, ऐसे रामचन्द्र रूपी गन्धहस्ती (जिस मदोन्मत्त हाथी को देख कर अन्य हाथी भाग जाते हैं) को संग्राम में कोई देख भी नहीं सकता, लड़ना तो दूर रहा ॥ ४६ ॥ (सिंह के अन्दर ये बातें हैं—) संग्राम में अवतरित होना ही जिस के केसर हैं, रणचातुर्य ही राक्षसरूपी मृगों के मारने के लिये यह सिंह है, तीक्ष्ण बाणों तथा कृपाण से परिपूर्ण होना ही सिंह की दंष्ट्रा है, इस लिये हे रावण! इस सोये हुए नरसिंह को जगाना अच्छा नहीं ॥ ४७ ॥ धनुष ही जिस के हिंसक जन्तु हैं, भुजाओं का वेग ही जिस में कीचड़ है, बाण की धारा ही जिस में तरङ्गें हैं, विकट संग्राम ही जिस की धारा है, ऐसे राम-रूपी भयङ्कर पाताल मुख में तुम को कूदना अच्छा नहीं ॥ ४८ ॥ हे लङ्कापति रक्षासों के राजा रावण ! आप प्रसन्न हो जाइये और लङ्का पर कृपा कीजिये तथा प्रसन्नता पूर्वक सीधे लंका लौट जाइये। आप अपनी स्त्रियों में रमण करें तथा रामचन्द्र वन में अपनी स्त्री से प्रेम करें ॥ ४९ ॥ मारीच के इस प्रकार समझाने पर दशग्रीव (वेद वेदाङ्ग का जानने वाला) रावण लंका पुरी को लौट गया और अपने राजमहल में प्रविष्ट हुआ ॥ ५० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामयण के अरण्यकाण्ड का 'रावण तथा खर के आचरण की निन्दा' विषयक इकत्तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३१ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

द्वात्रिंशः सर्गः

शूर्पणखोद्यमः

ततः शूर्पणखा दृष्ट्वा सहस्राणि चतुर्दश । हतान्येकेन रामेण रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ १ ॥
दूषणं च खरं चैव हतं त्रिशिरसा सह । दृष्ट्वा पुनर्महानादं ननाद जलदो यथा ॥ २ ॥
सा दृष्ट्वा कर्म रामस्य कृतमन्यैः सुदुष्करम् । जगाम परमोद्विग्ना लङ्कां रावणपालिताम् ॥ ३ ॥
सा ददर्श विमानाग्रे रावणं दीप्ततेजसम् । उपोपविष्टं सचिवैर्मरुद्भिरिव वासवम् ॥ ४ ॥
आसीनं सूर्यसंकाशे काञ्चने परमासने । रुक्मवेदिगतं प्राज्यं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ५ ॥
देवगन्धर्वभूतानामृषीणां च महात्मनाम् । अजेयं समरे शूरं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ६ ॥
देवासुरविमर्देषु वज्राशनिकृतव्रणम् । ऐरावतविषाणाग्रैरुद्घृष्टकिणवक्षसम् ॥ ७ ॥
विंशद्भुजं दशग्रीवं दर्शनीयपरिच्छदम् । विशालवक्षसं वीरं राजलक्षणशोभितम् ॥ ८ ॥
स्निग्धवैडूर्यसंकाशं तप्तकाञ्चनकुण्डलम् । सुभुजं शुक्लदशनं महास्यं पर्वतोपमम् ॥ ९ ॥
विष्णुचक्रनिपातैश्च शतशो देवसंयुगे । अन्यैः शस्त्रप्रहारैश्च महायुद्धेषु ताडितम् ॥१०॥
आहताङ्गं समस्तैश्च देवप्रहरणैस्तथा । अक्षोभ्याणां समुद्राणां क्षोभणं क्षिप्रकारिणम् ॥११॥

बत्तीसवां सर्ग

शूर्पणखा का उद्यम

भयंकर क्रूर कर्म करने वाले चौदह हजार राक्षसों को अकेले रामचन्द्र ने मार दिया, शूर्पणखा इस को देख कर ॥ १ ॥ संग्राम में खर, दूषण तथा त्रिशिरा को मरा हुआ देख कर शूर्पणखा ने मेघ के समान महान् गर्जन किया ॥ २ ॥ अन्यों के द्वारा न हो सकने वाले रामचन्द्र के इस अद्भुत कर्म को देख कर घबराई हुई उस शूर्पणखा ने रावण पालित लंका की ओर प्रस्थान किया ॥ ३ ॥ सात मंजिल वाले मकान पर मन्त्रियों से घिरे हुए अत्यन्त तेजस्वी रावण को शूर्पणखा ने इस प्रकार देखा जैसे देव मण्डल से घिरे हुए इन्द्र हों ॥ ४ ॥ सूर्य के समान देदीप्यमान स्वर्ण के उत्तम आसन पर रावण ऐसा प्रतीत होता था जैसे स्वर्ण की बनी हुई वेदी पर प्रज्वलित अग्नि की शिखा ॥ ५ ॥ यमराज के समान खुले मुख वाला वह रावण संग्राम में देव, गन्धर्व, अन्य प्राणी तथा महात्मा ऋषियों के द्वारा भी अजेय था ॥ ६ ॥ देवासुर संग्राम में वज्र के समान अस्त्रों के जहाँ व्रण चिह्न दिखाई दे रहे हैं, ऐरावत जाति के गज दन्तों के चिह्न जिस के वक्षःस्थल पर लगे हुए हैं (ऐसे रावण को शूर्पणखा ने देखा) ॥ ७ ॥ बीस भुजा तथा दस मस्तक से युक्त, दर्शनीय वस्त्रों को पहने हुए, विशाल वक्षःस्थल वाला, राजकीय लक्षणों से युक्त, वीर ॥ ८ ॥ वैदूर्य मणि के समान श्याम वर्ण वाला, उत्तम स्वर्ण के आभूषणों से आभूषित, अच्छी भुजा, शुभ्र दांतों वाला, विशाल मुख तथा विशाल शरीर वाला ॥ ९ ॥ देवासुर संग्रामों में प्रसिद्ध विष्णु चक्र नामक अस्त्र से चिह्नित शरीर वाला, अन्य बड़े २ संग्रामों में नाना प्राकर के अस्त्र-शस्त्रों से विक्षत शरीर वाला ॥१०॥ देवताओं के प्रहार से जिसके समस्त शरीर में शस्त्रास्त्र के चिह्न दिखाई दे रहे हैं, अक्षोभ्य समुद्र की तरंगों को भी क्षुब्ध करने वाला, प्रत्येक काम को शीघ्रतापूर्वक करने वाला ॥ ११ ॥ मार्ग में विक्षेप डालने वाली पर्वत की चोटियों को भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षेप्तारं पर्वतेन्द्राणां सुराणां च प्रमर्दनम् । उच्छेत्तारं च धर्माणां परदाराभिमर्शनम् ॥१२॥
सर्वदिव्यास्त्रयोक्तारं यज्ञविघ्नकरं सदा । पुरीं भोगवतीं प्राप्य पराजित्य च वासुकिम् ॥१३॥
तक्षकस्य प्रियां भार्यां पराजित्य जहार यः । कैलासपर्वतं गत्वा विजित्य नरवाहनम् ॥१४॥
विमानं पुष्पकं तस्य कामगं वै जहार यः । वनं चैत्ररथं दिव्यं नलिनीं नन्दनं वनम् ॥१५॥
विनाशयति यः क्रोधाद्देवोद्यानानि वीर्यवान् । चन्द्रसूर्यौ महाभागावुत्तिष्ठन्तौ परंतपौ ॥१६॥
निवारयति बाहुभ्यां यः शैलशिखरोपमः । दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ॥१७॥
पुरा स्वयंभुवे धीरः शिरांस्युपजहार यः । देवदानवगन्धर्वपिशाचपतगोरगैः ॥१८॥
अभयं यस्य संग्रामे मृत्युतो मानुषादृते । मन्त्रैरभिष्टुतं पुण्यमध्वरेषु द्विजातिभिः ॥१९॥
हविर्धानेषु यः सोममुपहन्ति महाबलः । आप्तयज्ञहरं क्रूरं ब्रह्मघ्नं दुष्टचारिणम् ॥२०॥
कर्कशं निरनुक्रोशं प्रजानामहिते रतम् । रावणं सर्वभूतानां सर्वलोकभयावहम् ॥२१॥
राक्षसी भ्रातरं शूरं सा ददर्श महाबलम् । तं दिव्यवस्त्राभरणं दिव्यमाल्योपशोभितम् ॥२२॥
आसने सूपविष्टं च कालकालमिवोद्यतम् । राक्षसेन्द्रं महाभागं पौलस्त्यकुलनन्दनम् ॥२३॥
रावणं शत्रुहन्तारं मन्त्रिभिः परिवारितम् । अभिगम्याब्रवीद्वाक्यं राक्षसी भयविह्वला ॥२४॥

तोड़ने वाला, देवमण्डल को दुःख देने वाला, धर्म का ध्वंस करने वाला तथा पराई स्त्रियों के साथ बलात्कार करने वाला वह रावण है ॥ १२ ॥ संग्राम में सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने वाला, यज्ञ का विध्वंस करने वाला, पाताल पुरी (अमेरिका) में जाकर वहां के राजा वासुकि को पराजित करने वाला, ॥ १३ ॥ उस पाताल देश में तक्षक गोत्रीय कन्या को अपहरण कर के जो (रावण) लाया था, कैलास पर्वत पर जा कर तथा अलका पुरी के नरवाहन राजा कुबेर को जीत कर ॥ १४ ॥ ऐच्छिक गति से चलने वाले पुष्पक विमान को जिस ने छीन लिया था, कुबेर के चैत्रवन को तथा उस की नलिनी—अलकापुरी—राजधानी को और इन्द्र के नन्दन वन को जिस ने नष्ट कर दिया ॥ १५ ॥ क्रोध में आकर बलवान् देव वाटिकाओं को जो नष्ट कर देता है, अपने प्रखर प्रताप से उदीयमान सूर्य-चन्द्र की कान्ति को भी म्लान करने वाला ॥ १६ ॥ पर्वत के समान कार्यों में बाधा पहुँचानेवाले अवरोधों को जो अपने बाहुबल से दूरकर देता है, महावनों में अनेक दशाब्दी तपश्चर्या कर के वरदान प्राप्त करने वाला ॥ १७ ॥ जिस धीर रावण ने पहले अपने मस्तक से भी प्रिय वस्तु को महादेव जी के लिये अर्पण किया था, देव-दानव-गन्धर्व-पिशाच आदि दुर्धर्ष जातिवालों से संग्राम में मृत्यु न होने के अभयको वरदान के द्वारा जिस ने प्राप्त किया है, साधारण मनुष्यों से मृत्यु का भय न होने के कारण मनुष्यों से अभय वरदान जिस ने नहीं प्राप्त किया है। आसुरी यज्ञों में द्विजातियों के द्वारा पुण्यमन्त्रों से जिस की स्तुति होती रही है ॥ १८,१९ ॥ जो हविर्धान यज्ञों में जा कर महाबलवान् सोम को नष्ट कर देता है, जो दुष्ट समाप्ति पर आये हुए देव यज्ञों को नष्ट कर देता है, विद्वान्, तपस्वी ब्राह्मणों की जो क्रूरता पूर्वक हिंसा करता है ॥ २० ॥ कर्कश, निर्दयी, मानवी प्रजा के साथ अहित का वर्त्ताव करने वाला, प्राणिमात्र को भय देने वाला तथा उन्हें कष्ट देकर रुलाने वाला ॥२१॥ दिव्य माला, वस्त्र, आभरण से आभूषित, निर्दयी, महाबली अपने भाई रावण को राक्षसी शूर्पणखा ने देखा ॥ २२ ॥ प्रलय काल में यमराज के समान उद्यत, पौलस्त्य कुल नन्दन, राक्षसराज रावण को आसन पर बैठे हुए शूर्पणखा ने देखा ॥ २३ ॥ मन्त्रियों से घिरे हुए शत्रुतापी रावण के समीप जा कर भय से विह्वल राक्षसी शूर्पणखा यह वचन बोली ॥ २४ ॥ निर्भय विचरण करने वाली, भय लोभ से मोहित, रामचन्द्र के द्वारा कर्ण-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तमब्रवीद्दीप्तविशाललोचनं प्रदर्शयित्वा भयमोहमूर्च्छिता ।
सुदारुणं वाक्यमभीतचारिणी महात्मना शूर्पणखा विरूपिता ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे शूर्पणखोद्यमो नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः

त्रयस्त्रिंशः सर्गः

रावणनिन्दा

ततः शूर्पणखा दीना रावणं लोकरावणम् । अमात्यमध्ये संक्रुद्धा परुषं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
प्रमत्तः कामभोगेषु स्वैरवृत्तो निरङ्कुशः । समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नाववुध्यसे ॥ २ ॥
सक्तं ग्राम्येषु भोगेषु कामवृत्तं महीपतिम् । लुब्धं न बहु मन्यन्ते श्मशानाग्निमिव प्रजाः ॥ ३ ॥
स्वयं कार्याणि यः काले नानुतिष्ठति पार्थिवः । स तु वै सह राज्येन तैश्च कार्यैर्विनश्यति ॥ ४ ॥
अयुक्तचारं दुर्दर्शम् अस्वाधीनं नराधिपम् । वर्जयन्ति नरा दूरान्नदीपङ्कमिव द्विपाः ॥ ५ ॥

नासिका छेदन कर के जो विरूपित कर दी गई, ऐसी शूर्पणखा अपनी विरूपावस्था को दिखाकर दीप्त विशाल नेत्रों वाले उस रावण से कठोरता पूर्वक यह वचन बोली ॥२५॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामयण के अरण्यकाण्ड का 'शूर्पणखा का उद्यम' विषयक बत्तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥

तेंतीसवां सर्ग

रावण की निन्दा

क्रोधावेश में आई हुई शूर्पणखा मन्त्रिमण्डल के बीच में बैठे हुए जनता को पीड़ित करने वाले रावण से यह कठोर वचन बोली ॥ १ ॥ निरङ्कुश हो कर काम भोग में स्वेच्छा पूर्वक प्रवृत्त होने वाले उन्मत्त तुम राक्षस जाति पर आये हुए घोर संकट को जिसे कि तुम्हें समझना चाहिये उसे समझ नहीं रहे हो ॥ २ ॥ स्त्रियों में कामासक्त होने वाले, कामी तथा लोभी राजा का प्रजा उसी प्रकार अनादर करती है जैसे लोग श्मशान की अग्नि का अनादर करते हैं ॥ ३ ॥ जो राजा समयानुकूल अपने राज्यकार्य को नहीं करता, वह अपने कार्य के साथ स्वयं भी नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥ जिस राजा के गुप्तचर ठीक नहीं हैं, जो सर्वसाधारण जनता से अपने को दूर रखता है तथा जो स्त्रियों में आसक्ति दिखलाता है, ऐसे राजा को प्रजा दूर से ही इस प्राकर छोड़ देती है जिस प्रकार कीचड़ वाली नदी को हाथी छोड़ देते हैं ॥ ५ ॥ जो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ये न रक्षन्ति विषयमस्वाधीनं नराधिपाः । ते न वृद्ध्या प्रकाशन्ते गिरयः सागरे यथा ॥ ६ ॥
आत्मवद्भिर्विगृह्य त्वं देवगन्धर्वदानवैः । अयुक्तचारश्चपलः कथं राजा भविष्यसि ॥ ७ ॥
त्वं तु बालस्वभावश्च बुद्धिहीनश्च राक्षस । ज्ञातव्यं तु न जानीषे कथं राजा भविष्यसि ॥ ८ ॥
येषां चारश्च कोशश्च नयश्च जयतां वर । अस्वाधीना नरेन्द्राणां प्राकृतैस्ते जनैः समाः ॥ ९ ॥
यस्मात्पश्यन्ति दूरस्थान् सर्वानर्थान्नराधिपाः । चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः ॥१०॥
अयुक्तचारं मन्ये त्वां प्राकृतैः सचिवैर्वृतम् । स्वजनं तु जनस्थानं हतं यो नावबुध्यसे ॥११॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां क्रूरकर्मणाम् । हतान्येकेन रामेण खरश्च सहदूषणः ॥१२॥
ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः । धर्षितं च जनस्थानं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥१३॥
त्वं तु लुब्धः प्रमत्तश्च पराधीनश्च रावण । विषये स्वे समुत्पन्नं भयं यो नावबुध्यसे ॥१४॥
तीक्ष्णमल्पप्रदातारं प्रमत्तं गर्वितं शठम् । व्यसने सर्वभूतानि नाभिधावन्ति पार्थिवम् ॥१५॥
अतिमानिनमग्राह्यमात्मसंभावितं नरम् । क्रोधनं व्यसने हन्ति स्वजनोऽपि महीपतिम् ॥१६॥
नानुतिष्ठति कार्याणि भयेषु न बिभेति च । क्षिप्रं राज्याच्च्युतो दीनस्तृणैस्तुल्यो भवेदिह ॥१७॥
शुष्कैः काष्ठैर्भवेत्कार्यं लोष्टैरपि च पांसुभिः । न तु स्थानात्परिभ्रष्टैः कार्यं स्याद्वसुधाधिपैः ॥१८॥
उपभुक्तं यथा वासः स्रजो वा मृदिता यथा । एवं राज्यात्परिभ्रष्टः समर्थोऽपि निरर्थकः ॥१९॥

राजा अपने देश की रक्षा नहीं करता उस की सम्पूर्ण वृद्धि उसी प्रकार रुक जाती है जैसे समुद्रों में पर्वत की ॥ ६ ॥ वशी देव-दानव-गन्धर्वों से विरोध करके अजितेन्द्रिय आचार वाले चपल वृत्ति तुम राजकीय काम कैसे कर सकोगे ॥ ७ ॥ हे राक्षसराज ! बुद्धिहीन, बालस्वभाव वाले तुम जानने योग्य बातों को नहीं जानते हो, इस लिये तुम कैसे राजा रह सकोगे ॥ ८ ॥ हे विजेताओं में श्रेष्ठ रावण ! जिन राजाओं के गुप्तचर, कोश (खजाना) तथा नीति अपने अधीन नहीं हैं, वे राजा राजा न हो कर साधारण मनुष्यों की कोटि में आ जाते हैं ॥ ९ ॥ यतः गुप्तचरों के द्वारा राजा लोग दूरातिदूर सब बातों को जान जाते हैं, इसी लिये राजाओं को दीर्घचक्षु कहा गया है ॥ १० ॥ मूर्ख मन्त्रियों से घिरे हुए तुम्हारा कोई गुप्तचर विभाग नहीं दिखाई देता, इसी लिये जनस्थान में मरे हुए अपने बन्धुओं को तुम अब तक नहीं जाने सके ॥ ११ ॥ खर दूषण के साथ भयङ्कर कर्म करने वाले चौदह हजार राक्षसों को अकेले रामचन्द्र ने मार डाला है ॥१२॥ धर्मात्मा रामचन्द्र ने जनस्थान को नष्ट कर के दण्डक वन को आतंक रहित कर दिया तथा ऋषियों को अभय प्रदान कर दिया ॥ १३ ॥ हे राक्षसराज ! तुम लोभी, प्रमादी तथा कामासक्त हो, जिस से अपने राज्य पर आये हुए संकट को तुम नहीं समझ रहे हो ॥१४॥ जो राजा तीक्ष्ण स्वभाव वाला अपने भृत्यों को अल्प वेतन देनेवाला, प्रमादी, अभिमानी तथा परोक्ष में दूसरों की बुराई करनेवाला होता है, प्रजा विपत्ति के समय ऐसे राजा का साथ नहीं देती ॥१५॥ जो राजा अत्यन्त अभिमानी होता है, प्रमाद वश जो किसी की बात नहीं सुनता, जो अपने को ही बड़ा समझता है तथा क्रोधी स्वभाव वाला है, ऐसे राजा को विपत्ति के समय अपनी ही प्रजा मार डालती है ॥ १६ ॥ जो राजा अपने कर्त्तव्य कामों को नहीं करता और भय आने पर भयातुर हो कर उसका प्रतिकार नहीं करता, वह दीन भाग्यहीन राजा अपने राज्य से भ्रष्ट हो जाता है तथा प्रजा की दृष्टि में तिनके के समान हल्का हो जाता है ॥ १७ ॥ सूखे काष्ठ से भी लोगों का काम होता है, ढेले और धूलि से भी लोगों का कार्य सिद्ध होता है, किन्तु राज्यभ्रष्ट राजा से प्रजा का कुछ भी कल्याण नहीं होता ॥ १८ ॥ जिस प्रकार काम में ली गई माला, तथा वस्त्र दूसरे के काम में नहीं आ सकते, इसी प्रकार राज्यभ्रष्ट राजा समर्थ होने पर भी निरर्थक है ॥ १९ ॥ जो राजा सावधान होता है, सब की जानकारी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

अप्रमत्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः । कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा तिष्ठते चिरम् ॥२०॥
नयनाभ्यां प्रसुप्तोऽपि जागर्ति नयचक्षुषा । व्यक्तक्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनैः ॥२१॥
त्वं तु रावण दुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः । यस्य तेऽविदितश्चारै रक्षसां सुमहान् वधः ॥२२॥
परावमन्ता विषयेषु संगतो न देशकालप्रभागतत्त्ववित् ।
अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चये विपन्नराज्यो नचिराद्विपत्स्यसे ॥२३॥
इति स्वदोषान् परिकीर्तितांस्तया समीक्ष्य बुद्ध्या क्षणदाचरेश्वरः ।
धनेन दर्पेण बलेन चान्वितो विचिन्तयामास चिरं स रावणः ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे रावणनिन्दा नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः

सीताहरणोपदेशः

ततः शूर्पणखां क्रुद्धां ब्रुवन्तीं परुषं वचः । अमात्यमध्ये संक्रुद्धः परिपप्रच्छ रावणः ॥ १ ॥
कश्च रामः कथंवीर्यः किंरूपः किंपराक्रमः । किमर्थं दण्डकारण्यं प्रविष्टः स दुरासदम् ॥ २ ॥
आयुधं किं च रामस्य निहता येन राक्षसाः । खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ३ ॥
इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता । ततो रामं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ४ ॥

रखता है, जितेन्द्रिय है कृतज्ञ तथा धर्मात्मा है, वह राजा चिर काल तक राज्य करता है ॥ २० ॥ जो भौतिक आँखों से सोता है तथा नीति रूपी नेत्रों से जागता रहता है, जिस के क्रोध प्रसन्नता सार्थक हैं, वह राजा सम्पूर्ण लोगों से सम्मानित होता है ॥ २१ ॥ किन्तु हे रावण ! तुम इन राजकीय गुणों से रहित हो तथा दुर्बुद्धि हो, जिस से जनस्थान में होने वाले इस प्रकार के महान् वध का समाचार गुप्तचरों के द्वारा तुम्हें नहीं मिला ॥२२॥ दूसरों का अपमान करने वाले, विषयासक्त, देशकाल की गति को न जानने वाले, गुण दोष में बुद्धिहीनता का परिचय देनेवाले तुम स्वयं विपत्ति के भागी होते हुए राज्य को भी आपद्ग्रस्त करोगे ॥ २३ ॥ शूर्पणखा के द्वारा कहे गये अपने इन दोषों को बुद्धि पूर्वक विचार कर के बल, धन तथा अभिमान से परिपूर्ण वह रावण चिर काल तक सोचता रहा ॥ २४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'रावण की निन्दा' विषयक तेतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥

चौंतीसवां सर्ग

सीता के हरण का उपदेश

मन्त्रिमण्डल के बीच कठोर वचन कहती हुई शूर्पणखा को देख कर क्रोध पूर्वक रावण यह बोला ॥१॥ यह राम कौन है, इस का बल किस प्रकार का है, इस की आकृति कैसी है तथा इन का पराक्रम क्या है और इस दुर्गम दण्डक वन में वह किस लिये आया ॥२॥ राम के पास कौन कौन शस्त्रास्त्र हैं जिनके द्वारा संग्राम में खर-दूषण तथा अन्य राक्षसों को उसने नष्ट कर दिया है ॥ ३ ॥ राक्षसेन्द्र रावण के इस प्रकार कहने पर क्रोध से मूर्च्छित वह राक्षसी शूर्पणखा यथाक्रम रामचन्द्र का वर्णन करने लगी ॥ ४ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः । कंदर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः ॥ ५ ॥
चक्रचापनिभं चापं विकृष्य कनकाङ्गदम् । दीप्तान् क्षिपति नाराचान् सर्पानिव महाविषान् ॥ ६ ॥
नाददानं शरान् घोरान् विमुञ्चन्तं शिलीमुखान् । न कार्मुकं विकर्षन्तं रामं पश्यामि संयुगे ॥ ७ ॥
हन्यमानं तु तत्सैन्यं पश्यामि शरवृष्टिभिः । इन्द्रेणेवोत्तमं सस्यमाहतं त्वश्मवृष्टिभिः ॥ ८ ॥
रक्षसां भीमरूपाणां सहस्राणि चतुर्दश । निहतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेन पदातिना ॥ ९ ॥
अर्धाधिकमुहूर्तेन खरश्च सह दूषणः । ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः ॥ १० ॥
एका कथंचिन्मुक्ताहं परिभूय महात्मना । स्त्रीवधं शङ्कमानेन रामेण विदितात्मना ॥ ११ ॥
भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्यविक्रमः । अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥ १२ ॥
अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान् बली । रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः ॥ १३ ॥
रामस्य तु विशालाक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना । धर्मपत्नी प्रिया भर्तुर्नित्यं प्रियहिते रता ॥ १४ ॥
सा सुकेशी सुनासोरुः सुरूपा च यशस्विनी । देवतेव वनस्यास्य राजते श्रीरिवापरा ॥ १५ ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा रक्ततुङ्गनखी शुभा । सीता नाम वरारोहा वैदेही तनुमध्यमा ॥ १६ ॥
नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी । नैवंरूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ॥ १७ ॥
यस्य सीता भवेद्भार्या यं च हृष्टा परिष्वजेत् । अतिजीवेत्स सर्वेषु लोकेष्वपि पुरंदरात् ॥ १८ ॥

वे रामचन्द्र विशाल भुजा वाले, विशाल नेत्र, चीर तथा कृष्ण अजिन धारण करने वाले, दशरथ के पुत्र, कामदेव के समान हैं ॥ ५ ॥ सुवर्णभूषित इन्द्रधनुष के समान अपने धनुष को खींच कर महाविषधर सर्प के समान जाज्वल्यमान बाणों को छोड़ते हैं ॥ ६ ॥ प्रत्यञ्चा द्वारा घोर बाणों को खींचते हुए, उन्हें छोड़ते हुए तथा धनुष को पुनः खींचते हुए रामचन्द्र को संग्राम में नहीं देखती ॥ ७ ॥ राम की बाण वृष्टि से सैनिकों को इस प्रकार मरते हुए देखा जैसे इन्द्र (मेघ) की उपल वृष्टि से हरित उत्तम खेती नष्ट हो जाती है ॥ ८ ॥ भयङ्कर बल वाले चौदह हजार राक्षसों को पैदल चलने वाले अकेले ही रामचन्द्र ने अपने तीक्ष्ण बाणों से मार दिया ॥ ९ ॥ केवल तीन घड़ी में खर-दूषण के सहित सम्पूर्ण राक्षसों को मार कर रामचन्द्र ने सम्पूर्ण ऋषियों को अभयप्रदान किया तथा दण्डकारण्य को आतंक रहित कर दिया ॥ १० ॥ महान् आत्मा रामचन्द्र ने स्त्रीवध के प्रति घृणा करते हुए केवल अपमान कर के अकेली मुझ को किसी प्रकार छोड़ दिया ॥ ११ ॥ लक्ष्मण नाम का इन का एक छोटा भाई महातेजस्वी, गुण तथा पराक्रम में राम के ही समान है तथा उन का अत्यन्त भक्त और उनमें अनुरक्त है ॥ १२ ॥ उसका भाई वह लक्ष्मण क्रोधी, दुर्जेय, विजयी, पराक्रमी, बुद्धिमान् और बलवान् है। राम की दाहिनी भुजा तथा बाहर चलता फिरता राम का प्राण ही है ॥ १३ ॥ पूर्ण-चन्द्र के समान मुख वाली, विशाल नेत्रों वाली, अपने पति के प्रिय हित में निरन्तर रत रहने वाली रामचन्द्र की एक पत्नी है ॥ १४ ॥ सुन्दर केशों वाली, सुन्दर नासिका ऊरुवाली, यशस्विनी, सर्वाङ्गसुन्दरी, इस दण्डक वन की देवता तथा द्वितीय लक्ष्मी के समान प्रतीत होती है ॥ १५ ॥ तपाये हुए स्वर्ण के समान गौर वर्ण वाली, लाल तथा उन्नत शुभ नखों वाली, कृश कटि वाली वह विदेह के जनकराज की पुत्री है जिसका नाम सीता है ॥ १६ ॥ देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर जातियों में इस पृथ्वी तल पर मैंने कहीं भी इस प्रकार की स्त्री को नहीं देखा ॥ १७ ॥ सीता जैसी स्त्री जिस की धर्मपत्नी हो और प्रसन्न होकर जिस का वह आलिङ्गन करे, वही व्यक्ति इस सम्पूर्ण जीवलोक में इन्द्र से भी बढ़ कर भाग्यशाली तथा सुखी माना जायेगा ॥ १८ ॥ वह सीता सुशील है, सुन्दर शरीर वाली, इस पृथ्वी पर अपने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सा सुशीला वपुःश्लाघ्या रूपेणाप्रतिमा भुवि । तवानुरूपा भार्या स्यात्त्वं च तस्यास्तथा पतिः ॥१९॥
तां तु विस्तीर्णजघनां पीनश्रोणिपयोधराम् । भार्यार्थे च तवानेतुमुद्यताहं वराननाम् ॥२०॥
विरूपितास्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज ।
तां तु दृष्ट्वाद्य वैदेहीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् । मन्मथस्य शराणां वै त्वं विधेयो भविष्यसि ॥२१॥
यदि तस्यामभिप्रायो भार्यार्थे तव जायते । शीघ्रमुद्ध्रियतां पादो जयार्थमिह दक्षिणः ॥२२॥
कुरु प्रियं तथा तेषां रक्षसां राक्षसेश्वर । वधात्तस्य नृशंसस्य रामस्याश्रमवासिनः ॥२३॥
तं शरैर्निशितैर्हत्वा लक्ष्मणं च महारथम् । हतनाथां सुखं सीतां यथावदुपभोक्ष्यसि ॥२४॥
रोचते यदि ते वाक्यं ममैतद्राक्षसेश्वर । क्रियतां निर्विशङ्केन वचनं मम रावण ॥२५॥
विज्ञायेहात्मशक्तिं च ह्रियतामबला बलात् । सीता सर्वानवद्याङ्गी भार्यार्थे राक्षसेश्वर ॥२६॥
निशम्य रामेण शरैरजिह्मगैर्हताञ्जनस्थानगतान्निशाचरान् ।
खरं च बुद्ध्वा निहतं च दूषणं त्वमत्र कृत्यं प्रतिपत्तुमर्हसि ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सीताहरणोपदेशो नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः

मारीचाश्रमपुनर्गमनम्

ततः शूर्पणखावाक्यं तच्छ्रुत्वा रोमहर्षणम् । सचिवानभ्यनुज्ञाय कार्यं बुद्ध्वा जगाम सः ॥ १ ॥

रूप में अप्रतिम सुन्दरी है, पर तुम्हारी स्त्री होने योग्य है और तुम ही उसके पति होने योग्य हो ॥ १९ ॥ विशाल जघन, समुन्नत पयोधर वाली उस स्त्री को तुम्हारी भार्या बनाने के लिये ही उस को लाने के लिये मैं वहाँ गई थी ॥ २० ॥ हे विशाल भुजा वाले रावण ! उस क्रूर लक्ष्मण ने ही मेरे रूप को विकृत कर दिया है । पूर्ण चन्द्रमुखी उस सीता को देखकर काम के बाणों से तुम आहत हो जाओगे तथा उस के आज्ञाकारी हो जाओगे ॥ २१ ॥ यदि उस को भार्या बनाने के लिये तुम्हारा अभिप्राय है तो शीघ्र ही उस पर विजय प्राप्त करने के लिये अपना दाहिना पैर उठाओ ॥ २२ ॥ हे राक्षसों के राजा रावण ! आश्रमवासी निर्दयी उस राम का वध करके उन राक्षसों का प्रिय तुम करो ॥२३॥ तीव्र बाणों के द्वारा महारथी राम और लक्ष्मण को मार कर पश्चात् नाथरहित सीता का यथावत् उपभोग कर सकोगे ॥ २४ ॥ हे राक्षसों के राजा रावण ! यदि मेरे ये वाक्य तुम्हें अच्छे लगते हों तो शंकारहित होकर मेरे वचनानुसार कार्य करो ॥२५॥ हे राक्षसेश्वर ! अपनी शक्ति को समझ कर सर्वाङ्ग सुन्दरी अबला सीता को अपनी धर्मपत्नी बनाने के लिये बलपूर्वक हरण कर के ले आओ ॥ २६ ॥ रामचन्द्र ने सीधे आघात करने वाले बाणों से जनस्थान के खरदूषण सहित राक्षसों को मार डाला है, इसको जान कर अब तुम्हें जो कर्त्तव्य करना हो उस को निश्चित करो ॥ २७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'सीता के हरण का उपदेश' विषयक चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३४॥

पैंतीसवां सर्ग

मारीच के आश्रम में पुनः जाना

शूर्पणखा की उन रोमाञ्चकारी बातों को सुनकर मन्त्रियों से इस पर विचार करके तथा उन को आज्ञा दे कर रावण वहां से चल पड़ा ॥ १ ॥ जानकी के हरण रूपी कार्य को अपने मन में विचार कर तथा गुण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्कार्यमनुगम्यान्तर्यथावदुपलभ्य च । दोषाणां च गुणानां च संप्रधार्य बलाबलम् ॥ २ ॥
इति कर्तव्यमित्येव कृत्वा निश्चयमात्मनः । स्थिरबुद्धिस्ततो रम्यां यानशालामुपागमत् ॥ ३ ॥
यानशालां ततो गत्वा प्रच्छन्नो राक्षसाधिपः । सूतं संचोदयामास रथः संयोज्यतामिति ॥ ४ ॥
एवमुक्तः क्षणेनैव सारथिर्लघुविक्रमः । रथं संयोजयामास तस्याभिमतमुत्तमम् ॥ ५ ॥
काञ्चनं रथमास्थाय कामगं रत्नभूषितम् । पिशाचवदनैर्युक्तं खरैः कनकभूषणैः ॥ ६ ॥
मेघप्रतिमनादेन स तेन धनदानुजः । राक्षसाधिपतिः श्रीमान् ययौ नदनदीपतिम् ॥ ७ ॥
स श्वेतवालव्यजनः श्वेतच्छत्रो दशाननः । स्निग्धवैडूर्यसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ॥ ८ ॥
दशास्यो विंशतिभुजो दर्शनीयपरिच्छदः । त्रिदशारिर्मुनीन्द्रघ्नो दशशीर्ष इवाद्रिराट् ॥ ९ ॥
कामगं रथमास्थाय शुशुभे राक्षसेश्वरः । विद्युन्मण्डलवान् मेघः सबलाक इवाम्बरे ॥१०॥
सशैलं सागरानूपं वीर्यवानवलोकयन् । नानापुष्पफलैर्वृक्षैरनुकीर्णं सहस्रशः ॥११॥
शीतमङ्गलतोयाभिः पद्मिनीभिः समन्ततः । विशालैराश्रमपदैर्वेदिमद्भिरलंकृतम् ॥१२॥
कदल्यटविसंबाधं नारिकेलोपशोभितम् । सालैस्तालैस्तमालैश्च पुष्पितैस्तरुभिर्वृतम् ॥१३॥
अत्यन्तनियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः । नागैः सुपर्णैर्गन्धर्वैः किंनरैश्च सहस्रशः ॥१४॥
आजैर्वैखानसैर्धूम्रैर्वालखिल्यैर्मरीचिपैः । जितकामैश्च सिद्धैश्च चारणैरुपशोभितम् ॥१५॥
दिव्याभरणमाल्याभिर्दिव्यरूपाभिरावृतम् । क्रीडारतिविधिज्ञाभिरप्सरोभिः सहस्रशः ॥१६॥

दोषों के निश्चय पूर्वक अपने बलाबल का निश्चय किया ॥ २ ॥ यह काम करना ही है, ऐसा निश्चय कर के स्थिर बुद्धि पूर्वक वह रावण रमणीय यानशाला में गया ॥ ३ ॥ राक्षसों के राजा रावण ने गुप्त रूप से यानशाला में जाकर सारथि को यह प्रेरणा दी कि रथ को शीघ्र तैयार करो ॥ ४ ॥ शीघ्रता पूर्वक काम करने वाले सारथि ने क्षण मात्र में रावण के कथनानुसार रथ को तैयार कर दिया ॥ ५ ॥ इच्छानुसार चलने वाले रत्नजटित काञ्चन रथ पर रावण बैठ गया। उस रथ में स्वर्ण आभूषित भयङ्कर मुख वाले खच्चर जुड़े हुए थे ॥ ६ ॥ कुबेर का अनुज राक्षसाधिपति रावण मेघ के समान गर्जन करने वाले उस रथ पर बैठ कर समुद्र की ओर चल पड़ा ॥ ७ ॥ श्वेत चंवर तथा श्वेत छत्र से विभूषित, वैदूर्य मणि के समान आकृति वाला तथा उत्तम स्वर्ण आभूषणों से सुभूषित वह रावण सुशोभित था ॥ ८ ॥ दसमुख, बीस भुजा वाला, उत्तम वस्त्रों को धारण करने वाला, देवताओं का शत्रु, मुनियों का हन्ता वह रावण दस शिखर वाले पर्वत के समान प्रतीत होता था ॥ ९ ॥ इच्छानुसार चलने वाले रथ पर बैठा हुआ वह राक्षसराज रावण आकाश में बगुलों की पंक्ति से युक्त विद्युत् पूर्ण मेघ के समान शोभा को प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ वह पराक्रमी रावण नाना प्रकार के पुष्प, फल, हजारों वृक्षों से परिपूर्ण वन, शैल तथा सागर के अनूप स्थानों को देखता हुआ चल पड़ा ॥ ११ ॥ शीतल जल तथा कमलों से सब ओर पूर्ण सरोवर, विशाल आश्रम और अलंकृत वेदियों से परिपूर्ण ॥ १२ ॥ कदली वन तथा नारिकेल (नारियल) वन से सुशोभित, फूले हुए साल, ताल, तमाल वृक्षों से परिपूर्ण ॥ १३ ॥ मिताहारी ऋषियों से शोभित नाग, सुपर्ण, गन्धर्व तथा सहस्रों किन्नरों से युक्त ॥ १४ ॥ जितेन्द्रिय, सिद्ध, चारण, अजन्मा प्रभु का ध्यान करने वाले, वानप्रस्थी, किरणों का पान करने वाले, यज्ञ जनित धूम्र पान करने वाले तथा अनेकों बालब्रह्मचारियों से सुशोभित ॥ १५ ॥ दिव्य आभरण, दिव्य माला, दिव्य आकृतियों से परिपूर्ण, नाना प्रकार की क्रीडाओं को करती हुई हजारों अप्सराओं से वह स्थान सुशोभित था ॥ १६ ॥ देवपत्नियों से युक्त, अत्यन्त रमणीय लोगों से सेवित,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सेवितं देवपत्नीभिः श्रीमतीभिरुपासितम् । देवदानवसङ्घैश्च चरितं त्वमृताशिभिः ॥१७॥
हंसक्रौञ्चप्लवाकीर्णं सारसैः संप्रणादितम् । वैडूर्यप्रस्तरं रम्यं स्निग्धं सागरतेजसा ॥१८॥
पाण्डराणि विशालानि दिव्यमाल्ययुतानि च । तूर्यगीताभिजुष्टानि विमानानि समन्ततः ॥१९॥
तपसा जितलोकानां कामगान्यभिसंपतन् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव ददर्श धनदानुजः ॥२०॥
निर्यासरसमूलानां चन्दनानां सहस्रशः । वनानि पश्यन् सौम्यानि घ्राणतृप्तिकराणि च ॥२१॥
अगरूणां च मुख्यानां वनान्युपवनानि च । कक्कोलानां च जात्यानां फलानां च सुगन्धिनाम् ॥२२॥
पुष्पाणि च तमालस्य गुल्मानि मरिचस्य च । मुक्तानां च समूहानि शुष्यमाणानि तीरतः ॥२३॥
शङ्खानां प्रस्तरं चैव प्रवालनिचयं तथा । काञ्चनानि च शैलानि राजतानि च सर्वशः ॥२६॥
[अनूपं सिन्धुराजस्य ददर्श त्रिदिवोपमम् । तत्रापश्यत्स मेघाभं न्यग्रोधमृषिभिर्वृतम् ॥२७॥
समन्ताद्यस्य ताः शाखाः शतयोजनमायताः । यस्य हस्तिनमादाय महाकायं च कच्छपम् ॥२८॥
भक्षार्थं गरुडः शाखामाजगाम महाबलः । तस्य तां सहसा शाखां भारेण पतगोत्तमः ॥२९॥
सुपर्णः पर्णबहुलां बभञ्ज च महाबलः । तत्र वैखानसा माषा बालखिल्या मरीचिपाः ॥३०॥
आजा बभूवुर्धूम्राश्च सङ्गताः परमर्षयः । तेषां दयार्थं गरुडस्तां शाखां शतयोजनाम् ॥३१॥

अमृत पान करने वाले देव-दानवों से परिपूर्ण ॥ १७ ॥ हंस-क्रौञ्च-जलमुर्गे-सारस आदि पक्षियों से परिपूर्ण समुद्र के प्रभाव से हरियाली मुक्त स्निग्ध वैदूर्य मणि के समान जो स्थान दिखाई देता था ॥ १८ ॥ श्वेत वर्ण वाले, नृत्य गान-वाद्य से परिपूर्ण तथा दिव्य मालाओं से अलंकृत जहां पर विशाल सात मंजिल वाले मकान सुशोभित हो रहे थे ॥ १९ ॥ तपश्चर्या के द्वारा अभिमत लोकों को गमन करने का अधिकार उन्होंने प्राप्त कर लिया है और नाना प्रकार के गन्धर्व तथा अप्सराओं को कुबेर के अनुज रावण ने देखा ॥ २० ॥ जिन की जड़ और मूलों से गोंद निकल रही थी, जो पथिकों के घ्राण को तृप्त करने वाले हैं, ऐसे सहस्रों रमणीय चन्दन वृक्षों से परिपूर्ण वनों को रावण ने देखा ॥ २१ ॥ अगर, कङ्कोल तथा उत्तम जाति के सुगन्धित फल फूलों से परिपूर्ण वन और उपवन को रावण ने देखा ॥ २२ ॥ तमाल वृक्षों के फूल, काली मिर्च के गुच्छे तथा समुद्र के तट पर सूखते हुए मुक्ता समूहों को रावण ने देखा ॥ २३ ॥ श्रेष्ठ पर्वत विद्रुम (मूँगा) के समूह, सोने तथा चान्दी के समान चमकने वाले पर्वतों के शिखर ॥ २४ ॥ स्वच्छ जल वाले रमणीय झरने, धन-धान्य तथा उत्तम स्त्रियों से पूर्ण ॥ २५ ॥ हाथी-घोड़े-रथ से पूर्ण नगरों को, चारों ओर समतल भूभागों को तथा मनोहारी वायु का जहां स्पर्श हो रहा है, ऐसे स्थानों को रावण ने देखा ॥ २६ ॥ समुद्र के तट पर स्वर्ग के समान एक दृश्य को रावण ने देखा। वहां पर मुनियों से घिरे हुए मेघ वर्ण के समान एक वट वृक्ष को देखा ॥ २७ ॥ उस वट वृक्ष की शाखाएँ सौ योजन लम्बी थीं। एक विशाल काय हाथी एक विशाल कछुए को लेकर ॥ २८ ॥ उसे खाने के लिए गरुड़ उस वट वृक्ष की शाखा पर आकर बैठा ॥ २९ ॥ विशाल भार से बहुत पत्तों वाली वट वृक्ष की शाखा टूट गई। उस शाखा पर वैखानस, माष नामक तपस्वी, बाल ब्रह्मचारी, किरणों का पान करने वाले ॥३०॥ यज्ञादि का धूम पान करने वाले तथा अज (ब्रह्म) की उपासना करने वाले श्रेष्ठ ऋषि लोग थे। उन तपस्वियों पर दया कर के गरुड़ सौ योजन लम्बी उस टूटी शाखा को लेकर ॥ ३१ ॥ तथा कछुए और हाथी को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भग्नामादाय वेगेन तौ चोभौ गजकच्छपौ । एकपादेन धर्मात्मा भक्षयित्वा तदामिषम् ॥३२॥
निषादविषयं हत्वा शाखया पतगोत्तमः । प्रहर्षमतुलं लेभे मोक्षयित्वा महामुनीन् ॥३३॥
स तेनैव प्रहर्षेण द्विगुणीकृतविक्रमः । अमृतानयनार्थं वै चकार मतिमान् मतिम् ॥३४॥
अयोजालानि निर्मथ्य भित्त्वा रत्नमयं गृहम् । महेन्द्रभवनाद्गुप्तमाजहारामृतं ततः ॥३५॥
तं महर्षिगणैर्जुष्टं सुपर्णकृतलक्षण । नाम्ना सुभद्रं न्यग्रोधं ददर्श धनदानुजः ॥३६॥
तं तु गत्वा परं पारं समुद्रस्य नदीपतेः । दशशाश्रममेकान्ते रम्ये पुण्ये वनान्तरे ॥३७॥
तत्र कृष्णाजिनधरं जटावल्कलधारिणम् । ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम् ॥३८॥
रावणस्तं समागम्य विधिवत्तेन रक्षसा । मारीचेनार्चितो राजा सर्वकामैरमानुषैः ॥३९॥
तं स्वयं पूजयित्वा तु भोजनेनोदकेन च । अर्थोपहितया वाचा मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥४०॥
कच्चित्सुकुशलं राजल्लँङ्कायां राक्षसेश्वर । केनार्थेन पुनस्त्वं वै तूर्णमेवमिहागतः ॥४१॥
एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः । तं तु पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे मारीचाश्रमपुनर्गमनं नाम पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

लेकर और उन दोनों का मांस खा कर ॥ २३ ॥ पश्चात् निषाद देश को गया । पक्षिराज गरुड़ उसी विशाल शाखा से तद्देशीय निषादों को मारकर और मुनियों को छुड़ा कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ ३३ ॥ उस कार्य जनित प्रसन्नता से गरुड़ का पराक्रम द्विगुणित हो गया और वह बुद्धिमान् गरुड़ अमृत लाने के लिये प्रयत्न करने लगा ॥ ३४ ॥ लोहे की विशाल खिड़कियों को तोड़ कर और रत्नगृहों को ध्वंस कर के महेन्द्र के रक्षित घर से गरुड़ अमृत ले आया ॥ ३५ ॥ उन महर्षियों से परिपूर्ण तथा गरुड़ चिह्नित उस सुभद्र नामक विशाल वट वृक्ष को कुबेर के अनुज रावण ने देखा ॥३६॥ ❀ रावण ने नदीपति समुद्र के उस पार जा कर वन के बीच एकान्त में एक रमणीय पुण्य आश्रम देखा ॥ ३७ ॥ उस आश्रम में काले मृग के चर्म को धारण करने वाले, जटा-मण्डलधारी तथा नियत आहार करने वाले मारीच नामक राक्षस को देखा ॥ ३८ ॥ रावण के वहाँ पहुँचने पर मारीच ने अलौकिक वस्तुओं के द्वारा विधिपूर्वक रावण का सत्कार किया ॥ ३९ ॥ भोजन तथा जल के द्वारा स्वयं रावण का सत्कार करके मारीच अर्थयुक्त वचन रावण से बोला ॥ ४० ॥ हे राक्षसराज ! तुम्हारी लंका में कुशल तो है । किन कारणों से आप इतने शीघ्र पुनः यहाँ आये हैं ॥ ४१ ॥ मारीच के ऐसा पूछने पर महातेजस्वी वाक्य-विशारद रावण इस प्रकार बोला ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'मारीच के आश्रम में पुनः जाना' विषयक पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३५॥

❀ इस स्थल पर इन श्लोकों के द्वारा अप्रासङ्गिक वर्णन किया गया है । इनका यहाँ कोई प्रकरण नहीं । पद्मपुराण आदि कतिपय पुराणों में यह असम्बद्ध कथा आई है, उन्हीं से इन श्लोकों का प्रक्षेप यहाँ किया गया है । इसीलिये इन श्लोकों को प्रक्षिप्त माना गया है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

षट्त्रिंशः सर्गः

सहायैषणा

मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः । आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान् हि परमा गतिः ॥ १ ॥
जानीषे त्वं जनस्थानं भ्राता यत्र खरो मम । दूषणश्च महाबाहुः स्वसा शूर्पणखा च मे ॥ २ ॥
त्रिशिराश्च महातेजा राक्षसः पिशिताशनः । अन्ये च बहवः शूरा लब्धलक्षा निशाचराः ॥ ३ ॥
वसन्ति मन्नियोगेन नित्यवासं च राक्षसाः । बाधमाना महारण्ये मुनीन् वै धर्मचारिणः ॥ ४ ॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । शूराणां लब्धलक्षाणां खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ ५ ॥
ते त्विदानीं जनस्थाने वसमाना महाबलाः । सङ्गताः परमायत्ता रामेण सह संयुगे ॥ ६ ॥
नानाप्रहरणोपेताः खरप्रमुखराक्षसाः । तेन सञ्जातरोषेण रामेण रणमूर्धनि ॥ ७ ॥
अनुक्त्वा पुरुषं किंचिच्छरैर्व्यापारितं धनुः । चतुर्दश सहस्राणि रक्षसामुग्रतेजसाम् ॥ ८ ॥
निहतानि शरैस्तीक्ष्णैर्मानुषेण पदातिना । खरश्च निहतः संख्ये दूषणश्च निपातितः ॥ ९ ॥
हतश्च त्रिशिराश्चापि निर्भया दण्डकाः कृताः । पित्रा निरस्तः क्रुद्धेन सभार्यः क्षीणजीवितः ॥१०॥
स हन्ता तस्य सैन्यस्य रामः क्षत्रियपांसनः । दुःशीलः कर्कशस्तीक्ष्णो मूर्खो लुब्धोऽजितेन्द्रियः ॥११॥

छत्तीसवाँ सर्ग

सहायता की याचना

हे बन्धु मारीच ! मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उस मेरे वचन को सुनो । मैं इस समय बहुत दुःखी हूँ इस समय मुझ दुःखी के लिये आप ही परम गति हैं ॥ १ ॥ तुम जनस्थान को जानते ही हो जहाँ मेरा भाई खर, सेनापति दूषण और मेरी बहन शूर्पणखा रहती है ॥ २ ॥ मासांहरी विशाल भुजा वाला त्रिशिरा तथा अन्य युद्धविशारद बहुत से मेरे राक्षस रहते हैं ॥ ३ ॥ मेरी आज्ञा से धर्मचारी मुनियों को कष्ट देने वाले अन्य राक्षस भी उस घोर वन में रहते हैं ॥ ४ ॥ भीषण कर्म करने वाले, लक्ष्यवेधी, खर के अनुशासन में रहने वाले चौदह हजार राक्षस वहाँ रहते थे ॥ ५ ॥ जनस्थान में निवास करने वाले उन महाबली मेरे राक्षसों से संग्राम में रामचन्द्र के साथ संघर्ष हो गया ॥ ६ ॥ नाना प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग करने वाले खर-प्रमुख जितने राक्षस थे, संग्राम में क्रोधातुर उस रामचन्द्र ने ॥ ७ ॥ विना कुछ कठोर वचन कहने पर भी अपने सज्जित धनुष पर बाण चढ़ा कर उग्र तेज वाले चौदह हजार राक्षसों को ॥ ८ ॥ अपने देदीप्यमान बाणों से पैदल चलने वाले उस राम ने मार दिया तथा संग्राम में खर-दूषण को मार डाला ॥९॥ त्रिशिरा को भी मारकर दण्डक वन को उसने निर्भय अर्थात् स्वाधीन कर दिया । जिस अल्प जीवन वाले राम को क्रोध में आकर पिता ने स्त्रीसमेत राजधानी से निकाल दिया ॥ १० ॥ क्षत्रियकुलकलंक उसी राम ने मेरी इस समस्त सेना का संहार किया है । वह चरित्रहीन, कर्कश, तीक्ष्ण स्वाभाव वाला, मूर्ख, लोभी तथा अजितेन्द्रिय है ॥ ११ ॥ प्राणिमात्र का अहित करने वाले, मर्यादाहीन उस पापी ने बिना कारण केवल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्यक्तधर्मो ह्यधर्मात्मा भूतानामहिते रतः । येन वैरं विनारण्ये सत्त्वमाश्रित्य केवलम् ॥१२॥
कर्णनासापहरणाद्भगिनी मे विरूपिता । तस्य भार्यां जनस्थानात्सीतां सुरसुतोपमाम् ॥१३॥
आनयिष्यामि विक्रम्य सहायस्तत्र मे भव । त्वया ह्यहं सहायेन पार्श्वस्थेन महाबल ॥१४॥
भ्रातृभिश्च सुरान् युद्धे समग्रान्नाभिचिन्तये । तत्सहायो भव त्वं मे समर्थो ह्यसि राक्षस ॥१५॥
वीर्ये युद्धे च दर्पे च न ह्यस्ति सदृशस्तव । उपायज्ञो महाञ्शूरः महामायाविशारदः ॥१६॥
एतदर्थमहं प्राप्तस्त्वत्समीपं निशाचर । शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम ॥१७॥
सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः । आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर ॥१८॥
त्वां तु निःसंशयं सीता दृष्ट्वा तु मृगरूपिणम् । गृह्यतामिति भर्तारं लक्ष्मणं चाभिधास्यति ॥१९॥
ततस्तयोरपाये तु शून्ये सीतां यथासुखम् । निराबाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रप्रभामिव ॥२०॥
ततः पश्चात्सुखं रामे भार्याहरणकर्शिते । विस्रब्धः प्रहरिष्यामि कृतार्थेनान्तरात्मना ॥२१॥
तस्य रामकथां श्रुत्वा मारीचस्य महात्मनः । शुष्कं समभवद्वक्त्रं परित्रस्तो बभूव ह ॥२२॥
ओष्ठौ परिलिहञ्शुष्कौ नेत्रैरनिमिषैरिव । मृतभूत इवार्तस्तु रावणं समुदैक्षत ॥२३॥

स रावणं त्रस्तविषण्णचेता महावने रामपराक्रमज्ञः ।
कृताञ्जलिस्तत्त्वमुवाच वाक्यं हितं च तस्मै हितमात्मनश्च ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सहायैषणा नाम षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

बल के घमण्ड में आकर ॥ १२ ॥ नाक-कान काट कर मेरी बहिन को रूपरहित कर दिया है । देवकन्या के समान कमनीय कान्ति वाली उसकी पत्नी सीता को ॥ १३ ॥ बलपूर्वक जनस्थान से ले आऊँगा । इस कार्य में आप मेरी सहायता करें । तुम्हारे तथा पास में रहने वाले भाईयों की सहायता से ॥ १४ ॥ मैं देव-मण्डल को कुछ भी नहीं समझता । इसलिए हे राक्षस ! तुम इस काम में मेरी सहायता करो क्योंकि तुम समर्थ हो ॥ १५ ॥ पराक्रम में, युद्ध में तुम्हारे जैसा प्रगल्भ कोई व्यक्ति नहीं है । तुम उपाय को जानने वाले, महावीर तथा मायाविशारद हो ॥ १६ ॥ हे निशाचर ! मैं तुम्हारे पास इसलिये आया हूँ । जिस प्रकार की सहायता मुझे चाहिये, उसे कहता हूँ, सुनो ॥ १७ ॥ रजत (चांदी) बिन्दुओं से चित्रित सोने का मृग बन कर तुम रामचन्द्र के आश्रम के समीप जानकी के समक्ष घूमो ॥ १८ ॥ मृगरूपी तुम को देख कर निःसन्देह सीता अपने पति तथा देवर लक्ष्मण से तुमको पकड़ने के लिये कहेगी ॥ १९ ॥ राम-लक्ष्मण दोनों के स्थानान्तरित हो जाने पर उस शून्य स्थान में बाधा रहित सुखपूर्वक मैं सीता का इस प्रकार अपहरण करूँगा जैसे राहु चन्द्रमा की प्रभा का अपहरण करता है ॥ २० ॥ तत्पश्चात् भार्यापहरण शोक से कर्शित राम पर सफलमनोरथपूर्वक विश्वास के साथ प्रहार करूँगा ॥ २१ ॥ महात्मा रामचन्द्र की उस कथा को सुन कर मारीच का मुख सूख गया तथा वह भय से त्रस्त हो गया ॥२२॥ अपने सूखे ओठों को चाटता हुआ निर्निमेष नेत्रों से मृतवत् आर्त्त होता हुआ मारीच रावण की ओर देखने लगा ॥ २३ ॥ महावन में राम के पराक्रम को जानने वाला मारीच अत्यन्त भयभीत होता हुआ अपने तथा रावण के कल्याण वाली बातें हाथ जोड़ कर रावण से बोला ॥ २४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'सहायता की याचना' विषयक छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सप्तत्रिंशः सर्गः

अप्रियपथ्यवचनम्

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः । प्रत्युवाच महाप्राज्ञो मारीचो राक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥
सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः । अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ २ ॥
न नूनं बुध्यसे रामं महावीर्यं गुणोन्नतम् । अयुक्तचारश्चपलो महेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ३ ॥
अपि स्वस्ति भवेत्तात सर्वेषां भुवि रक्षसाम् । अपि रामो न संक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम् ॥ ४ ॥
अपि ते जीवितान्ताय नोत्पन्ना जनकात्मजा । अपि सीतानिमित्तं च न भवेद् व्यसनं महत् ॥ ५ ॥
अपि स्वामीश्वरं प्राप्य कामवृत्तं निरङ्कुशम् । न विनश्येत्पुरी लङ्का त्वया सह सराक्षसा ॥ ६ ॥
त्वद्विधः कामवृत्तो हि दुःशीलः पापमन्त्रितः । आत्मानं स्वजनं राष्ट्रं स राजा हन्ति दुर्मतिः ॥ ७ ॥
न च पित्रा परित्यक्तो नामर्यादः कथंचन । न लुब्धो न च दुःशीलो न च क्षत्रियपांसनः ॥ ८ ॥
न च धर्मगुणैर्हीनः कौसल्यानन्दवर्धनः । न तीक्ष्णो न च भूतानां सर्वेषामहिते रतः ॥ ९ ॥
वञ्चितं पितरं दृष्ट्वा कैकेय्या सत्यवादिनम् । करिष्यामीति धर्मात्मा तात प्रव्रजितो वनम् ॥ १० ॥
कैकेय्याः प्रियकामार्थं पितुर्दशरथस्य च । हित्वा राज्यं च भोगांश्च प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ ११ ॥

सैंतीसवाँ सर्ग

अप्रिय पथ्यवचन

राक्षसों के राजा रावण की इन बातों को सुनकर महातेजस्वी वाक्य विशारद मारीच उस से यह बोला ॥ १ ॥ हे राजन् ! निरन्तर प्रिय बोलने वाले लोग सदा सुलभ हैं, किन्तु अप्रिय तथा हितकारी वचन कहने तथा सुनने वाले अति दुर्लभ हैं ॥ २ ॥ गुप्तचरहीन तथा चलचित्तता के कारण आप इन्द्र और वरुण के समान महापराक्रमी और गुणवान् राम को निश्चय ही नहीं जानते ॥ ३ ॥ हे तात ! सम्पूर्ण राक्षसमण्डल का कल्याण हो, कहीं क्रुद्ध होकर रामचन्द्र इस पृथ्वी को राक्षसों से रिक्त न कर दें ॥ ४ । कहीं तुम्हारे जीवन का अन्त करने के लिये ही तो सीता नहीं उत्पन्न हुई है । सीता के निमित्त को लेकर तुम्हारा सवस्व नाश न हो, यह मेरी इच्छा है ॥ ५ ॥ कामाचारी, निरंकुश तुम्हारे जैसे राजा को प्राप्त कर राक्षसों के समेत क्या वह लंका नाश को प्राप्त होने वाली है । ६॥ तुम जैसा कामी, चरित्रहीन, पापाचरण करने वाला मूर्ख राजा यदि हो तो वह अपने राष्ट्र को, बन्धु-बान्धवों को तथा स्वयं अपने को नष्ट कर लेता है ॥ ७ ॥ रामचन्द्र पिता से बहिष्कृत नहीं है, न वह किसी-प्रकार मर्यादाहीन है, न वह दुःशील है, न वह लोभी है और न क्षत्रियकुलकलंक है ॥ ८ ॥ वे कौसल्या के आनन्द बढ़ाने वाले रामचन्द्र धर्म और गुणों से हीन नहीं हैं तथा न वे किसी को आतंकित करते हैं किन्तु सब प्राणियों के हितकारी हैं ॥ ९ ॥ कैकेयी माता के द्वारा सत्यवादी पिता को ठगा हुआ देख कर केवल अपने पिता को सत्यवादी बनाने के लिये उन्होंने वनवास स्वीकार किया है ॥ १० ॥ माता कैकेयी और पिता दशरथ की प्रियकामना को देखते हुए राज्य और भोगों को छोड़कर उन्होंने दण्डक वन में प्रवेश किया है ॥ ११ ॥ हे बन्धु रावण !

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न रामः कर्कशस्तात नाविद्वान्नाजितेन्द्रियः । अनृतं दुःश्रुतं चैव नैव त्वं वक्तुमर्हसि ॥१२॥
रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः । राजा सर्वस्य लोकस्य देवानां मेघवानिव ॥१३॥
कथं त्वं तस्य वैदेहीं रक्षितां स्वेन तेजसा । इच्छसि प्रसभं हर्तुं प्रभामिव विवस्वतः ॥१४॥
शरार्चिषमनाधृष्यं चापखड्गेन्धनं रणे । रामाग्निं सहसा दीप्तं न प्रवेष्टुं त्वमर्हसि ॥१५॥
धनुर्व्यादितदीप्तास्यं शरार्चिषममर्षणम् । चापपाशधरं वीरं शत्रुसैन्यप्रहारिणम् ॥१६॥
राज्यं सुखं च संत्यज्य जीवितं चेष्टमात्मनः । नात्यासादयितुं तात रामान्तकमिहार्हसि ॥१७॥
अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा । न त्वं समर्थस्तां हर्तुं रामचापाश्रयां वने ॥१८॥
तस्य सा नरसिंहस्य सिंहोरस्कस्य भामिनी । प्राणेभ्योऽपि प्रियतरा भार्या नित्यमनुव्रता ॥१९॥
न सा धर्षयितुं शक्या मैथिल्योजस्विनः प्रिया । दीप्तस्येव हुताशस्य शिखा सीता सुमध्यमा ॥२०॥
किमुद्यममिमं व्यर्थं कृत्वा ते राक्षसाधिप । दृष्टश्चेत्त्वं रणे तेन तदन्तं तव जीवितम् ॥२१॥
जीवितं च सुखं चैव राज्यं चैव सुदुर्लभम् । यदीच्छसि चिरं भोक्तुं मा कृथा रामविप्रियम् ॥२२॥
स सर्वैः सचिवैः सार्धं विभीषणपुरोगमैः । मन्त्रयित्वा तु धर्मिष्ठैः कृत्वा निश्चयमात्मनः ॥२३॥
दोषाणां च गुणानां च संप्रधार्य बलाबलम् । आत्मनश्च बलं ज्ञात्वा राघवस्य च तत्त्वतः ॥२४॥
हिताहितं विनिश्चित्य क्षमं त्वं कर्तुमर्हसि ॥

रामचन्द्र न कर्कश हैं, न मूर्ख हैं और न अजितेन्द्रिय हैं। उनके विषय में तुम ने जो अनर्गल प्रलाप किया है वह तुम्हें नहीं करना चाहिये ॥ १२ ॥ रामचन्द्र धर्म की मूर्ति हैं। साधुचरित्र और सत्यपराक्रमी हैं। देवों के राजा इन्द्र के समान इस सम्पूर्ण लोक के राजा हैं ॥ १३ ॥ अपने तेज से स्वयं रक्षित तथा रामचन्द्र के तत्त्वावधान से रक्षित सूर्य की प्रभा के सदृश सीता को तुम हठात् कैसे हरण करना चाहते हो ॥ १४ ॥ अप्रसह्य बाण ही जिसकी ज्वाला है, धनुष और तलवार जिस के ईन्धन हैं, संग्राम में इस प्रकार प्रदीप्त राम रूपी अग्नि में तुम क्यों प्रवेश करना चाहते हो ॥ १५ ॥ विस्तृत फैला हुआ धनुष ही जिसका मुख है, वाण ही जिसकी असह्य ज्वाला है, इस प्रकार के तीक्ष्ण धनुर्बाणधारी शत्रुसेनापहारी रामरूपी अग्नि में तुम मत प्रविष्ट हो ॥ १६ ॥ हे तात रावण ! राज्य, सुख तथा अपने अत्यन्त प्रिय जीवन को छोड़ कर यमराज के समान राम के पास क्यों जाना चाहते हो ॥ १७ ॥ जनक नन्दिनी सीता जिसकी धर्मपत्नी है, वे रामचन्द्र अप्रमेय तेजस्वी हैं। इसलिए रामचन्द्र के धनुषआश्रय में रहने वाली सीता का अपहरण तुम नहीं कर सकते हो ॥ १८ ॥ सिंह के समान वक्षःस्थल वाले नरकेसरी रामचन्द्र की वह प्राण-प्रिया भार्या है, सदा उनका अनुगमन करने वाली है ॥ १९ ॥ दीप्त अग्नि की जाज्वल्यमान शिखा के समान, ओजस्वी रामचन्द्र की प्रिय सुन्दरी सीता को तुम प्रधर्षित नहीं कर सकते हो ॥ २० ॥ हे राक्षस-राज ! यह निरर्थक उद्योग तुम क्यों करना चाहते हो। यदि तुम संग्राम में रामचन्द्र को देख भी लोगे तो उसी समय तुम्हारा अन्त हो जायगा ॥ २१ ॥ यदि जीवन सुख और सुदुर्लभ राज्य को चिर काल तक भोगना चाहते हो तो राम का विरोध मत करो ॥ २२ ॥ विभीषण आदि धर्मात्मा सम्पूर्ण मन्त्रियों से दोष और गुणों के विषय में तथा अपने और पराये बलाबल के विषय में सलाह पूर्वक निश्चय करके अपने तथा रामचन्द्र के बल को नियम पूर्वक जानकर, तुम्हारा हित किस में है, इस का निश्चय कर के आगे जो तुम्हें करना हो करो ॥ २३, २४ ॥ कोसलराज के पुत्र रामचन्द्र के साथ तुम्हारा संग्राम करना मैं उचित

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अहं तु मन्ये तव न क्षमं रणे समागमं कोसलराजसूनुना ।
इदं हि भूयः शृणु वाक्यमुत्तमं क्षमं च युक्तं च निशाचरेश्वर ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे अप्रियपथ्यवचनं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशः सर्गः

रामास्त्रमहिमा

कदाचिदप्यहं वीर्यात्पर्यटन् पृथिवीमिमाम् । बलं नागसहस्रस्य धारयन् पर्वतोपमः ॥ १ ॥
नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः । भयं लोकस्य जनयन् किरीटी परिघायुधः ॥ २ ॥
व्यचरं दण्डकारण्ये ऋषिमांसानि भक्षयन् । विश्वामित्रोऽथ धर्मात्मा मद्वित्रस्तो महामुनिः ॥ ३ ॥
स्वयं गत्वा दशरथं नरेन्द्रमिदमब्रवीत् । असौ रक्षतु मां रामः पर्वकाले समाहितः ॥ ४ ॥
मारीचान्मे भयं घोरं समुत्पन्नं नरेश्वर । इत्येवमुक्तो धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा ॥ ५ ॥

नहीं समझता । हे राक्षसराज रावण ! मेरे युक्तियुक्त हित वाले इस वाक्य को तुम पुनः सुनो ॥ २५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'अप्रिय पथ्य वचन' विषयक सैंतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३७ ॥

अड़तीसवां सर्ग

राम के अस्त्र की महिमा

किसी समय मैं अपने अत्यन्त पराक्रम से इस पृथ्वी पर निःशंक भ्रमण किया करता था। उस समय मेरा शरीर विशालकाय तथा हाथी के समान बल वाला था ॥ १ ॥ मेरा शरीर नील मेघ के समान श्याम वर्ण वाला, तप्त स्वर्ण का कुण्डल कान में पहने हुए, मस्तक पर किरीट तथा हाथ में परिघ अस्त्र ले कर प्राणि मात्र को भय उत्पन्न करते हुए ॥ २ ॥ ऋषियों का मांस खाते हुए मैं दण्डक वन में विचरण किया करता था। महामुनि धर्मात्मा विश्वामित्र मेरे आतंक से अत्यन्त भयातुर हो गये थे ॥ ३ ॥ भयातुर विश्वामित्र स्वयं दशरथ के पास जा कर यह बोले—यह रामचन्द्र सावधानी के साथ मेरे यज्ञ के समय मेरी रक्षा करे ॥ ४ ॥ हे नरनाथ ! मारीच के द्वारा मेरे आश्रम में घोर भय उत्पन्न हो गया है। विश्वामित्र के ऐसा कहने पर उस समय धर्मात्मा राजा दशरथ ॥ ५ ॥ महाभाग्य महामुनि विश्वामित्र से बोले—यह राम-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्युवाच महाभागं विश्वामित्रं महामुनिम् । बालो द्वादशवर्षोऽयमकृतास्त्रश्च राघवः ॥ ६ ॥
कामं तु मम यत्सैन्यं मया सह गमिष्यति । बलेन चतुरङ्गेण स्वयमेत्य निशाचरान् ॥ ७ ॥
वधिष्यामि मुनिश्रेष्ठ शत्रूंस्तव यथेप्सितम् । इत्येवमुक्तः स मुनी राजानं पुनरब्रवीत् ॥ ८ ॥
रामान्नान्यद्बलं लोके पर्याप्तं तस्य रक्षसः । देवतानामपि भवान् समरेष्वभिपालकः ॥ ९ ॥
आसीत्तव कृतं कर्म त्रिलोके विदितं नृप । काममस्तु महत्सैन्यं तिष्ठत्विह परंतप ॥१०॥
बालोऽप्येष महातेजाः समर्थस्तस्य निग्रहे । गमिष्ये राममादाय स्वस्ति तेऽस्तु परंतप ॥११॥
एवमुक्त्वा तु स मुनिस्तमादाय नृपात्मजम् । जगाम परमप्रीतो विश्वामित्रः स्वमाश्रमम् ॥१२॥
तं तदा दण्डकारण्ये यज्ञमुद्दिश्य दीक्षितम् । बभूवोपस्थितो रामश्चित्रं विस्फारयन् धनुः ॥१३॥
सजातव्यञ्जनः श्रीमान् पद्मपत्रनिभेक्षणः । काकपक्षधरो धन्वी शिखी कनकमालया ॥१४॥
शोभयन् दण्डकारण्यं दीप्तेन स्वेन तेजसा । अदृश्यत ततो रामो बालचन्द्र इवोदितः ॥१५॥
ततोऽहं मेघसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः । बली दत्तवरो दर्पादाजगाम तदाश्रमम् ॥१६॥

चन्द्र बारह वर्ष का बालक है, शस्त्रास्त्र विद्या में भी पारङ्गत नहीं है ❀ ॥ ६ ॥ मेरी सेना मेरे साथ वहां जायेगी। चतुरङ्गिणी (अश्वारोही, गजारोही, रथाति, पदाति) सेना के साथ स्वयं जाकर उस निशाचर का ॥ ७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारा जो अभीष्ट है, वध अवश्य करूंगा। राजा के ऐसा कहने पर महामुनि विश्वामित्र उन से यह बोले ॥ ८ ॥ राम के अतिरिक्त जो उस राक्षस का सामना कर सके वैसे आपने संग्राम में देवताओं की सहायता तथा रक्षा की है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! आप के किये हुए कर्म त्रिलोकी में विदित हैं। आप के पास महती सेना है, इस में सन्देह नहीं। किन्तु हे शत्रुंजय महाराज ! आप की वह सेना यहीं रहे, उस को जाने की आवश्कता नहीं ॥ १० ॥ महातेजस्वी रामचन्द्र चाहे आप की दृष्टि में बालक ही क्यों न हों किन्तु उस राक्षस को पराजित करने में समर्थ हैं। इस लिये हे परंतप ! मैं रामचन्द्र को लेकर जाऊंगा, आप का कल्याण हो ॥ ११ ॥ मुनि विश्वामित्र इस प्रकार कह कर तथा राजकुमार रामचन्द्र को साथ लेकर प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रम को गये ॥ १२ ॥ दण्डक वन में उस यज्ञ में दीक्षित हो कर महर्षि विश्वामित्र अपने ध्यान आदि कार्य में संलग्न हो गये तथा रामचन्द्र भी अपने धनुष को तैयार कर के मुनि की रक्षा में उपस्थित हो गये ॥ १३ ॥ जो किशोर अवस्था में प्रवेश कर गये हैं, कमल के समान नेत्र वाले, कमनीय कान्ति वाले, शिखा तथा काञ्चन माला को धारण करने वाले काकपक्षधारी, धनुर्धारी ॥ १४ ॥ श्री रामचन्द्र अपने तेज से दण्डकारण्य को शोभित करते हुए ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे नवोदित बालचन्द्र ॥ १५ ॥ पश्चात् मेघ के श्याम वर्ण वाला बलवान्, तपे हुए काञ्चन कुण्डल कानों में पहने हुए, अवध्य वरदान के घमण्ड में आकर मैं उस आश्रम के पास आया ॥ १६ ॥ मुझे

❀ इस श्लोक में राम को जो बारह वर्ष का बताया गया है, वह प्रक्षेप है। पद्म पुराण, अध्यात्म रामायण आदि कई रामायणों में विवाह के समय राम की अवस्था १२ वर्ष से कम लिखी है। वाल्मीकि रामायण में कई स्थानों पर विवाह के पूर्व रामचन्द्र को 'तरुण' तथा 'युवा' शब्द से पुकारा है। वल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग ५० श्लोक १८—अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ—राम-लक्ष्मण दोनों को 'समुपस्थितयौवनौ' कहा है। एसी अवस्था में राम को द्वादशवर्षीय बालक बताना असम्बद्ध तथा प्रक्षिप्त है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेन दृष्टः प्रविष्टोऽहं सहसैवोद्यतायुधः । मां तु दृष्ट्वा धनुः सज्यमसंभ्रान्तश्चकार सः ॥१७॥
अवजानन्नहं मोहाद्बालोऽयमिति राघवम् । विश्वामित्रस्य तां वेदिमभ्यधावं कृतत्वरः ॥१८॥
तेन मुक्तस्ततो बाणः शितः शत्रुनिबर्हणः । तेनाहं ताडितः क्षिप्तः समुद्रे शतयोजने ॥१९॥
नेच्छता तात मां हन्तुं तदा वीरेण रक्षितः । रामस्य शरवेगेन निरस्तोऽहमचेतनः ॥२०॥
पातितोऽहं तदा तेन गम्भीरे सागराम्भसि । प्राप्य संज्ञां चिरात्तात लङ्कां प्रतिगतः पुरीम् ॥२१॥
एवमस्मि तदा मुक्तः सहायास्तु निपातिताः । अकृतास्त्रेण बालेन रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥२२॥
तन्मया वार्यमाणस्त्वं यदि रामेण विग्रहम् । करिष्यस्यापदं घोरां क्षिप्रं प्राप्य नशिष्यसि ॥२३॥
क्रीडारतिविधिज्ञानां समाजोत्सवदर्शिनाम् । रक्षसां चैव सन्तापमनर्थं चाहरिष्यसि ॥२४॥
हर्म्यप्रासादसंबाधां नानारत्नविभूषिताम् । द्रक्ष्यसि त्वं पुरीं लङ्कां विनष्टां मैथिलीकृते ॥२५॥
अकुर्वन्तोऽपि पापानि शुचयः पापसंश्रयात् । परपापैर्विनश्यन्ति मत्स्या नागह्रदे यथा ॥२६॥
दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गान् दिव्याभरणभूषितान् । द्रक्ष्यस्यभिहतान् भूमौ तव दोषात्तु राक्षसान् ॥२७॥
हतदारान् सदारांश्च दश विद्रवतो दिशः । हतशेषानशरणान् द्रक्ष्यसि त्वं निशाचरान् ॥२८॥
शरजालपरिक्षिप्तामग्निज्वालासमावृताम् । प्रदग्धभवनां लङ्कां द्रक्ष्यसि त्वं न संशयः ॥२९॥

आश्रम में आया हुआ देख कर रामचन्द्र ने शीघ्रता से धनुष को उठा लिया और निर्भय हो कर उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी ॥ १७ ॥ अज्ञानवश, अभी यह अल्पवयस्क है, ऐसा समझ कर राम की अवहेलना करते हुए मैं विश्वामित्र की उस वेदि की ओर शीघ्रता पूर्वक दौड़ा ॥ १८ ॥उस समय रामचन्द्र ने शत्रु-नाशक अपने बाणों को मुझ पर छोड़ा जिससे ताड़ित हो कर मैं बहुत दूर समुद्र में जाकर गिरा ॥ १९ ॥ हे तात रावण ! उस समय वीरवर रामचन्द्र ने मुझ को मारने की इच्छा नहीं की । राम के वेग वाले बाणों से फैंके जाने पर मैं उद्भ्रान्त चित्त वाला हो गया ॥२०॥ राम के बाणों से उस समय उद्भ्रान्त अवस्था में मैं गम्भीर समुद्र के जल में फैंक दिया गया । पुनः स्वस्थ होने पर मैं लंका पुरी चला गया ॥ २१ ॥ इस प्रकार शस्त्र-अस्त्र की अपरिपक्व अवस्था में दयालु रामचन्द्र ने मुझे तो छोड़ दिया और मेरे सहायकों को मार डाला ॥ २२ ॥ इस प्रकार मेरे निषेध करने पर भी यदि तुमने रामचन्द्र से संग्राम किया, तो भयङ्कर विपत्ति में फँसोगे और प्राण को भी गवाँओगे ॥ २३ ॥ क्रीडा आमोद-प्रमोद तथा नाना प्रकार के समाजोत्सवों में निमग्न रहने वाले राक्षसों पर व्यर्थ में विपत्ति का आह्वान करोगे ॥ २४ ॥ नाना प्रकार की गगनचुम्बी अट्टा-लिकाओं से युक्त तथा नाना रत्नों से विभूषित इस लंका पुरी को सीतापहरण के कारण तुम विनष्ट होते हुए देखोगे ॥ २५ ॥ पाप न करने वाले निरपराध पवित्र व्यक्ति भी पापियों के सम्पर्क से उन के पापों द्वारा उसी प्रकार विनष्ट होते हैं जैसे सर्प वाले तालाब में मछलियाँ मारी जाती हैं ॥ २६ ॥ दिव्य चन्दन का लेप करने वाले, दिव्य आभरणों से भूषित लंका वासी राक्षसों को तुम अपने दोष के कारण पृथ्वी पर मरे हुए देखोगे ॥ २७ ॥ मरने से शेष जो राक्षस बचे होंगे, विपन्न अवस्था में शरण के लिये कुछ अपनी स्त्रियों के साथ तथा कुछ स्त्रियों के विना दसों दिशाओं में भागते हुए दिखाई देंगे ॥ २८ ॥ बाण के जालों से आवृत तथा अग्निज्वाला माला मयी प्रदग्ध भवनों वाली लंका पुरी को तुम अवश्य देखोगे ॥ २९ ॥ परस्त्री-गमन से बढ़ कर संसार में और कोई पातक नहीं । हे राजन् ! आप के रनिवास में तो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परदाराभिमर्शात्तु नान्यत्पापतरं महत् । प्रमदानां सहस्राणि तव राजन् परिग्रहः ॥३०॥
भव स्वदारनिरतः स्वकुलं रक्ष राक्षस । मानमृद्धिं च राज्यं च जीवितं चेष्टमात्मनः ॥३१॥
कलत्राणि च सौम्यानि मित्रवर्गं तथैव च । यदीच्छसि चिरं भोक्तुं मा कृथा रामविप्रियम् ॥३२॥
निवार्यमाणः सुहृदा मया भृशं प्रसह्य सीतां यदि धर्षयिष्यसि ।
गमिष्यसि क्षीणबलः सबान्धवो यमक्षयं रामशरात्तजीवितः ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अरण्यकाण्डे आदिकाव्ये रामास्त्रमहिमा नाम अष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः

साहाय्यकानभ्युपगमः

एवमस्मि तदा मुक्तः कथंचित्तेन संयुगे । इदानीमपि यद्वृत्तं तच्छृणुष्व निरुत्तरम् ॥ १ ॥
राक्षसाभ्यामहं द्वाभ्यामनिर्विण्णस्तथा कृतः । सहितो मृगरूपाभ्यां प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ २ ॥

वैसे ही हजारों स्त्रियाँ हैं ॥ ३० ॥ आप अपनी स्त्रियों में प्रीति करें तथा अपनी गतिविधि, अपने कुल, अपनी मान वृद्धि, अपने जीवन, राज्य तथा राक्षस वंश की रक्षा करें ॥ ३१ ॥ हे राजन्! यदि आप अपनी रमणीय रमणियों के साथ तथा मित्रों के साथ चिर काल तक सुख पूर्वक रहना चाहते हैं, तो रामचन्द्र के साथ विरोध मत करें ॥ ३२ ॥ मेरे जैसे मित्र के निवारण करने पर भी यदि हठात् सीता का अपहरण करोगे, तो राम के बाणों से नष्ट हो कर क्षीणबल बन्धु-बांधवों के सहित यमसदन के अतिथि बनोगे ॥ ३३ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'राम के अस्त्र की महिमा' विषयक अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवाँ सर्ग

सहायता की अस्वीकृति

संग्राम में किसी प्रकार रामचन्द्र ने मुझ को छोड़ दिया। उसके पश्चात् जो कुछ भी हुआ, उस को सुनो ॥ १ ॥ इस प्रकार आतङ्क पूर्वक अपमानित होने पर भी मन में कुछ भी ग्लानि न कर के माया मृग रूपी अपने दो राक्षसों के साथ एक बार मैं दण्डक वन में गया ॥ २ ॥ लपलपाती जीभ, विशाल दाँतों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दीप्तजिह्वो महाकायस्तीक्ष्णदंष्ट्रो महाबलः । व्यचरं दण्डकारण्यं मांसभक्षो महामृगः ॥ ३ ॥
अग्निहोत्रेषु तीर्थेषु चैत्यवृक्षेषु रावण । अत्यन्तघोरो व्यचरं तापसान् संप्रधर्षयन् ॥ ४ ॥
निहत्य दण्डकारण्ये तापसान् धर्मचारिणः । रुधिराणि पिबंस्तेषां तथा मांसानि भक्षयन् ॥ ५ ॥
ऋषिमांसाशनः क्रूरस्त्रासयन् वनगोचरान् । तथा रुधिरमत्तोऽहं विचरन् दण्डकावनम् ॥ ६ ॥
तदहं दण्डकारण्ये विचरन् धर्मदूषकः । आसादयं तदा रामं तापसं धर्ममाश्रितम् ॥ ७ ॥
तापसं नियताहारं सर्वभूतहिते रतम् । वैदेहीं च महाभागां लक्ष्मणं च महारथम् ॥ ८ ॥
सोऽहं वनगतं रामं परिभूय महाबलम् । तापसोऽयमिति ज्ञात्वा पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ९ ॥
अभ्यधावं हि संक्रुद्धस्तीक्ष्णदष्टः मृगाकृतिः । जिघांसुरकृतप्रज्ञस्तं प्रहारमनुस्मरन् ॥१०॥
तेन मुक्तास्त्रयो बाणाः शिताः शत्रुनिबर्हणाः । विकृष्य सुमहच्चापं सुपर्णानिलनिस्वनाः ॥११॥
ते बाणा वज्रसङ्काशाः सुघोरा रक्तभोजनाः । आजग्मुः सहिताः सर्वे त्रयः संनतपर्वणः ॥१२॥
पराक्रमज्ञो रामस्य शठो दृष्टभयः पुरा । समुत्क्रान्तस्ततो मुक्तस्तावुभौ राक्षसौ हतौ ॥१३॥
शरेण मुक्तो रामस्य कथंचित्प्राप्य जीवितम् । इह प्रव्राजितो युक्तस्तापसोऽहं समाहितः ॥१४॥
वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम् । गृहीतधनुषं रामं पाशहस्तमिवान्तकम् ॥१५॥

वाला, विशालकाय, बल से युक्त महामृग का रूप धारण करके माँस भक्षण करता हुआ मैं दण्डकारण्य में इधर उधर घूमने लगा ॥ ३ ॥ यज्ञशाला, नदियों के घाट, पवित्रवृक्ष आदि स्थानों में तपस्वियों को आतङ्कित करता हुआ हे रावण ! मैं वहाँ भ्रमण करने लगा ॥ ४ ॥ उस दण्डक वन में धर्मचारी तपस्वियों को मार कर उन के रुधिर का पान करते हुए उन के माँस का भक्षण करने लगा ॥ ५ ॥ ऋषियों का माँस खाने वाला अत्यन्त क्रूर मैं वनवासियों को आतङ्कित करता हुआ रुधिर पान से प्रमत्त दण्डक वन में निर्भय घूमने लगा ॥ ६ ॥ धर्मदूषक मैं उस समय दण्डक वन में विचरण करता हुआ तपस्वी जीवन व्यतीत करने वाले रामचन्द्र के समीप पहुँचा ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों का कल्याण करने वाले, तपस्वियों के समान नियत आहार करने वाले राम के साथ लक्ष्मण, तथा महाभागा सीता भी उस समय वहीं थे ॥८॥ महाबलशाली वनवासी रामचन्द्र को यह समझ कर कि यह साधारण वनवासी है, इस प्रकार अवहेलना करता हुआ तथा पूर्व वैर को स्मरण करता हुआ ॥ ९ ॥ महामृग (सिंह) की आकृति में तीक्ष्ण दांतों वाला तथा राम के विषय में विशेष जानकारी न रखने वाला उन के पूर्व प्रहार को स्मरण करते हुए क्रोधावेग से मैं उन को मारने के लिये दौड़ा ॥ १० ॥ उस समय रामचन्द्र ने शत्रुघाती, गरुड़ तथा वायु के समान वेग वाले अपने तीन बाणों को धनुष पर आरोपित कर के छोड़ा ॥ ११ ॥ रक्त पान करने वाले, भयंकर वज्र के समान वे तीनों बाण एक ही साथ आये ॥ १२ ॥ राम के पराक्रम को जानने वाला धूर्त्त मैं पूर्व भय को स्मरण करता हुआ वहाँ से भाग खड़ा हुआ। इस से मैं बच गया और वे दोनों राक्षस मारे गये ॥ १३ ॥ राम के बाणों से मुक्त हो कर किसी प्रकार जीवन बचाया। उसी समय से दुष्कर्मों को छोड़ कर योगाभ्यास पूर्वक तपस्वी जीवन व्यतीत करने लगा ॥ १४ ॥ अब प्रत्येक वृक्ष पर चीर-कृष्ण-अजिनधारी, धनुष बाण लिये हुए रामचन्द्र को पाशहस्त यमराज के समान देखता हूँ ॥ १५ ॥ भयत्रस्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपि रामसहस्राणि भीतः पश्यामि रावण । रामभूतमिदं सर्वमरण्यं प्रतिभाति मे ॥१६॥
राममेव हि पश्यामि रहिते राक्षसाधिप । दृष्ट्वा स्वप्नगतं राममुद्भ्रमामि विचेतनः ॥१७॥
रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण । रत्नानि च रथाश्चैव वित्रासं जनयन्ति मे ॥१८॥
अहं तस्य प्रभावज्ञो न युद्धं तेन ते क्षमम् । बलिं वा नमुचिं वापि हन्याद्धि रघुनन्दनः ॥१९॥
रणे रामेण युध्यस्व क्षमां वा कुरु राक्षस । न ते रामकथा कार्या यदि मां द्रष्टुमिच्छसि ॥२०॥
बहवः साधवो लोके मुक्ता धर्ममनुष्ठिताः । परेषामपराधेन विनष्टाः सपरिच्छदाः ॥२१॥
सोऽहं तवापराधेन विनश्येयं निशाचर । कुरु यत्ते क्षमं तत्त्वमहं त्वां नानुयामि ह ॥२२॥
रामश्च हि महातेजा महासत्त्वो महाबलः । अपि राक्षसलोकस्य भवेदन्तकरोऽपि हि ॥२३॥
यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः । अतिवृत्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥२४॥
अत्र ब्रूहि यथातत्त्वं को रामस्य व्यतिक्रमः ॥

इदं वचो बन्धुहितार्थिना मया यथोच्यमानं यदि नाभिपत्स्यसे ।
सबान्धवस्त्यक्ष्यसि जीवितं रणे हतोऽद्य रामेण शरैरजिह्मगैः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे साहाय्यकानभ्युपगमो नाम एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

मैं हजारों रामों को इधर-उधर देखता हूँ । हे रावण ! और तो क्या ? इस सम्पूर्ण वन को मैं राम से पूर्ण देखता हूँ ॥ १६ ॥ हे राक्षसराज रावण ! रामचन्द्र की अनुपस्थिति में भी त्रस्त मैं सब जगह राम को ही देखता हूँ । स्वप्न में राम को देख कर मैं उद्विग्न हो कर प्रलाप करता हूँ ॥ १७ ॥ हे रावण ! राम के भय से डरा हुआ मैं रकारादि नाम वाले रथ-रत्न आदि शब्दों से भी भयभीत हो जाता हूँ ॥ १८ ॥ मैं राम के प्रभाव को जानता हूँ । उनके साथ तुम्हारा संघर्ष ठीक नहीं । रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र नमुचि और बलि को भी मार सकते हैं ॥ १९ ॥ हे रावण ! तुम राम के साथ युद्ध करो या उनको क्षमा कर दो, किन्तु यदि मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मेरे सामने राम की चर्चा मत करो ॥ २० ॥ संसार में योगनिष्ठ बहुत से धर्माचरण करने वाले महापुरुष दूसरों के अपराध से सहायकों के समेत नष्ट होते देखे गये हैं ॥ २१ ॥ इसलिये मैं तुम्हारे अपराध से स्वयं नष्ट होना नहीं चाहता । हे राक्षसराज ! तुम्हें जो उचित लगे, वह करो । इस काम में मैं तुम्हारी सहायता नहीं करूँगा ॥ २२ ॥ रामचन्द्र महातेजस्वी, महाबली तथा महापराक्रमी हैं । वे सम्पूर्ण राक्षस वंश का अन्त कर सकते हैं ॥ २३ ॥ यदि शूर्पणखा के उत्तेजित करने से जनस्थान पर खर ने आक्रमण किया, ऐसी अवस्था में अपनी रक्षा के लिये धर्मात्मा रामचन्द्र ने उस को मार डाला, तो तुम्हीं इसका निर्णय करो कि इस में रामचन्द्र का क्या दोष है ॥ २४ ॥ बन्धु की भावना से कहे हुए मेरे इन वचनों को यदि तुम नहीं मानोगे, तो सीधे राम के बाणों का शिकार होते हुए बन्धु-बान्धवों के सहित संग्राम में तुम मारे जाओगे ॥ २५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'सहायता की अस्वीकृति' विषयक उन्तालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३९॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चत्वारिंशः सर्गः

मायामृगरूपपरिग्रहनिर्बन्धः

मारीचेन तु तद्वाक्यं क्षमं युक्तं निशाचरः । उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम् ॥ १ ॥
तं पथ्यहितवक्तारं मारीचं राक्षसाधिपः । अब्रवीत्परुषं वाक्यमयुक्तं कालचोदितः ॥ २ ॥
दुष्कुलैतदयुक्तार्थं मारीच मयि कथ्यते । वाक्यं निष्फलमत्यर्थमुप्तं बीजमिवोषरे ॥ ३ ॥
त्वद्वाक्यैर्न तु मां शक्यं मेत्तुं रामस्य संयुगे । पापशीलस्य मूर्खस्य मानुषस्य विशेषतः ॥ ४ ॥
यस्त्यक्त्वा सुहृदो राज्यं मातरं पितरं तथा । स्त्रीवाक्यं प्राकृतं श्रुत्वा वनमेकपदे गतः ॥ ५ ॥
अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः । प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तव संनिधौ ॥ ६ ॥
एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच वर्तते । न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ७ ॥
दोषं गुणं वा संपृष्टस्त्वमेवं वक्तुमर्हसि । अपायं वाप्युपायं वा कार्यस्यास्य विनिश्चये ॥८॥
संपृष्टेन तु वक्तव्यं सचिवेन विपश्चिता । उद्यताञ्जलिना राज्ञो य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥९॥
वाक्यमप्रतिकूलं तु मृदुपूर्वं हितं शुभम् । उपचारेण युक्तं च वक्तव्यो वसुधाधिपः ॥१०॥
सावमर्दं तु यद्वाक्यं मारीच हितमुच्यते । नाभिनन्दति तद्राजा मानार्हो मानवर्जितम् ॥११॥

चालीसवाँ सर्ग

मायामृग रूप धारण करने का आदेश

मारीच की इन शिक्षाप्रद उपयुक्त बातों को रावण ने उसी प्रकार ग्रहण नहीं किया जैसे मृत्यु के मुख में जाने वाला ओषधि को ग्रहण नहीं करता ॥ १ ॥ काल से प्रेरित सन्निहित मृत्यु वाला रावण पथ्य हितकारी उपदेश देने वाले मारीच से कठोर तथा अनुचित शब्दों में बोला ॥ २ ॥ हे कुलहीन मारीच ! तुमने मेरे लिए जो कुछ कहा है, वह ऊसर में बीज बोने के समान मेरे लिये सर्वथा निष्फल है ॥ ३ ॥ पापाचारी मूर्ख मनुष्य रामचन्द्र से संग्राम करने के लिये मुझे तुम इन बातों से रोक नहीं सकते ॥ ४ ॥ जो एक स्त्री की साधारण बात को सुन कर अपने माता, पिता, सुहृद् तथा राज्य को छोड़ कर वन में चला आया है ॥ ५ ॥ उस खरघाती रामचन्द्र की प्राणों से प्रिय सीता को तुम्हारे सामने संग्राम में अवश्य हरण करूँगा ॥ ६ ॥ हे मारीच ! यह मेरा बुद्धिपूर्वक निश्चित हृदय का विचार है । इस को सुर-असुर इन्द्र आदि भी कोई परिवर्तित नहीं कर सकता ॥ ७ ॥ सीताहरण रूपी कार्य के उपाय-अपाय, गुण-दोष आदि के विषय में यदि मैं तुम से पूछता, तो तुम्हें इस प्रकार की बातें कहनी चाहियें ॥ ८ ॥ जो बुद्धिमान् अमात्य अपनी समृद्धि चाहता हो, उसे राजा के पूछने पर ही करबद्ध नम्रतापूर्वक कुछ निवेदन करना चाहिए ॥ ९ ॥ सदा राजा से अनुकूल, मधुर, शुभ, हितकारी तथा नीतियुक्त बातें ही करनी चाहियें ॥ १० ॥ हितकारी बात भी यदि तिरस्कार पूर्वक कही जाय, तो राजा लोग उसका सम्मान नहीं करते । क्योंकि राजा सम्मानार्थी होता है और वे बातें सम्मानरहित होती हैं ॥ ११ ॥ अत्यन्त ओजस्वी राजा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्च रूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः । अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य वरुणस्य च ॥१२॥
औष्ण्यं तथा विक्रमं च सौम्यं दण्डं प्रसन्नताम् । धारयन्ति महात्मानो राजानः क्षणदाचर ॥१३॥
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु मान्याः पूज्याश्च पार्थिवाः । त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं मोहमास्थितः ॥१४॥
अभ्यागतं मां दौरात्म्यात्परुषं वदसीदृशम् । गुणदोषौ न पृच्छामि क्षमं चात्मनि राक्षस ॥१५॥
मयोक्तं तव चैतावत्संप्रत्यमितविक्रम । अस्मिंस्तु त्वं महाकृत्ये साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥१६॥
शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम । सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः ॥१७॥
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर । प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि ॥१८॥
त्वां तु मायामृगं दृष्ट्वा काञ्चनं जातविस्मया । आनयैनमिति क्षिप्रं रामं वक्ष्यति मैथिली ॥१९॥
अपक्रान्ते तु काकुत्स्थे दूरं गत्वाप्युदाहर । हा सीते लक्ष्मणेत्येवं रामवाक्यानुरूपकम् ॥२०॥
तच्छ्रुत्वा रामपदवीं सीतया च प्रचोदितः । अनुगच्छति संभ्रान्तः सौमित्रिरपि सौहृदात् ॥२१॥
अपक्रान्ते च काकुत्स्थे लक्ष्मणे च यथासुखम् । आहरिष्यामि वैदेहीं सहस्राक्षः शचीमिव ॥२२॥
एवं कृत्वा त्विदं कार्यं यथेष्टं गच्छ राक्षस । राज्यस्यार्धं प्रदास्यामि मारीच तव सुव्रत ॥२३॥
गच्छ सौम्य शिवं मार्गं कार्यस्यास्य विवृद्धये । अहं त्वानुगमिष्यामि सरथो दण्डकावनम् ॥२४॥
प्राप्य सीतामयुद्धेन वञ्चयित्वा तु राघवम् । लङ्कां प्रति गमिष्यामि कृतकार्यः सह त्वया ॥२५॥

लोग अपने अन्दर अग्नि, इन्द्र, चन्द्रमा, यम तथा वरुण इन पाँच गुणों को धारण करते हैं ॥ १२ ॥ इस लिये हे राक्षस मारीच ! महात्मा राजा लोग अपने अन्दर उष्णता, पराक्रम, कोमलता, दण्ड तथा प्रसन्नता को धारण करते हैं ॥ १३ ॥ इस लिये प्रत्येक अवस्था में राजा सदा मान्य और पूज्य माना जाता है, किन्तु तुम तो नीति को न जान कर केवल अज्ञान का परिचय दे रहे हो ॥ १४ ॥ अभ्यागत के रूप में आये हुए मुझ को तुम इस प्रकार कठोर बातें सुना रहे हो । हे राक्षस ! मैंने तुमसे गुण-दोष तथा हानि-लाभ की बात नहीं पूछी थी ॥ १५ ॥ हे अमित पराक्रम करने वाले मारीच ! मैं ने तो तुम से केवल यही पूछा था कि इस सीतापहरण कृत्य में तुम मेरी क्या सहायता कर सकते हो ॥ १६ ॥ जिस काम में तुम्हें मेरी सहायता करनी है, उसे तुम सुनो । चित्र विचित्र रजत (चांदी) बिन्दुओं के साथ तुम सोने के मृग बन कर ॥ १७ ॥ उस राम के आश्रम के समीप सीता के सामने घूमो और सीता को लुभा कर तुम स्वेच्छा पूर्वक जिधर चाहो उधर ले जाओ ॥ १८ ॥ तुम्हें मायामय काञ्चन मृग के रूप में देख कर अत्यन्त विस्मित सीता 'इस को जल्दी ले आओ' ऐसा रामचन्द्र से कहेगी ॥ १९ ॥ इस प्रकार रामचन्द्र को अपने पीछे दूर ले जा कर राम के शब्दों का अनुकरण करते हुए 'हा सीते ! हा लक्ष्मण !' इस प्रकार शब्द करो ॥ २० ॥ इस प्रकार के शब्द को सुन कर घबड़ाई हुई सीता की प्रेरणा से तथा भ्रातृ प्रेम में आकर लक्ष्मण भी राम के पीछे चला जायेगा ॥ २१ ॥ इस प्रकार राम-लक्ष्मण के आश्रम से दूर हो जाने पर मैं सुख पूर्वक सीता का उसी प्रकार अपहरण करूँगा जैसे इन्द्र ने शची का अपहरण किया था ॥ २२ ॥ इस प्रकार यह मेरा काम कर के तुम स्वेच्छा पूर्वक जहाँ जाना चाहते हो जाओ । हे व्रतचर्या में रहने वाले राक्षस मारीच ! इस कार्य की सफलता पर मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दूँगा ॥ २३ ॥ हे सौम्य ! इस कार्य की सिद्धि के लिये मेरे बताये हुए मार्ग का अनुसरण करते हुए कल्याण पथ के पथिक बनो । मैं भी रथ पर बैठ कर तुम्हारे साथ दण्डक वन में चलता हूं ॥ २४ ॥ इस प्रकार रामचन्द्र को धोखा दे कर विना संग्राम के ही सीता को प्राप्त कर सफलमनोरथ मैं तुम्हारे साथ लंका को लौट आऊंगा ॥ २५ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न चेत्करोषि मारीच हन्मि त्वामहमद्य वै। एतत्कार्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यसि ॥२६॥
राज्ञो हि प्रति कूलस्थो न जातु सुखमेधते ॥
आसाद्य तं जीवितसंशयस्ते मृत्युर्ध्रुवो ह्यद्य मया विरुध्य।
एतद्यथावत्प्रतिगृह्य बुद्ध्या यदत्र पथ्यं कुरु तत्तथा त्वम् ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे मायामृगरूपपरिग्रहनिर्बन्धो नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः

रावणनिन्दा

आज्ञप्तो रावणेनेत्थं प्रतिकूलं च राजवत्। अब्रवीत्परुषं वाक्यं निःशङ्को राक्षसाधिपम् ॥ १ ॥
केनायमुपदिष्टस्ते विनाशः पापकर्मणा। सपुत्रस्य सराष्ट्रस्य सामात्यस्य निशाचर ॥ २ ॥
कस्त्वया सुखिना राजन्नाभिनन्दति पापकृत्। केनेदमुपदिष्टं ते मृत्युद्वारमुपायतः ॥ ३ ॥
शत्रवस्तव सुव्यक्तं हीनवीर्या निशाचराः। इच्छन्ति त्वां विनश्यन्तमुपरुद्धं बलीयसा ॥ ४ ॥

हे मारीच! यदि तुम ऐसा न करोगे तो मैं आज ही तुम्हारा प्राणान्त कर दूँगा। यह मेरा काम तुम्हें हठ पूर्वक अवश्य करना पड़ेगा, क्यों कि राजा के प्रतिकूल आचरण कर के कोई भी सुख-शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता ॥ २६ ॥ रामचन्द्र के पास जाने पर तुम मर भी सकते हो और बच भी सकते हो, इसमें संशय है, किन्तु मेरा विरोध करने पर आज तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। इन दोनों परिस्थितयों को सामने रखते हुए तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, उसे करो ॥ २७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'मायामृग रूप धारण करने का आदेश' विषयक चालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४० ॥

इकतालीसवां सर्ग

रावण की निन्दा

राजाज्ञा के समान रावण के द्वारा इस प्रकार प्रतिकूल आदेश पा कर क्रोधाविष्ट मारीच निश्शङ्क हो कर राक्षसराज रावण के प्रति यह कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ किस पापकारी व्यक्ति ने पुत्र, राज्य तथा मन्त्रिमण्डल के साथ तुम्हारे सर्व विनाश का उपदेश तुम्हें दिया है ॥ २ ॥ हे राजन्! वह कौनसा पापी व्यक्ति है जो तुम्हें इस प्रकार सुखी देख कर प्रसन्न नहीं होता। नीति पूर्वक किसने तुम को यह मृत्यु का द्वार बताया है ॥ ३ ॥ हे निशाचर रावण! अब यह स्पष्ट हो गया है कि तुम्हारा सर्वस्व नाश करने वाले हीनपराक्रम शत्रु तुम्हारा किसी बलवान् से युद्ध करा कर सर्वस्व नष्ट करना चाहते हैं ॥ ४ ॥ किस क्षुद्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केनेदमुपदिष्टं ते क्षुद्रेणाहितवादिना । यस्त्वामिच्छति नश्यन्तं स्वकृतेन निशाचर ॥ ५ ॥
वध्याः खलु न हन्यन्ते सचिवास्तव रावण । ये त्वामुत्पथमारूढं न निगृह्णन्ति सर्वशः ॥ ६ ॥
अमात्यैः कामवृत्तो हि राजा कापथमाश्रितः । निग्राह्यः सर्वथा सद्भिर्न निग्राह्यो निगृह्यसे ॥ ७ ॥
धर्ममर्थं च कामं च यशश्च जयतां वर । स्वामिप्रसादात्सचिवाः प्राप्नुवन्ति निशाचर ॥ ८ ॥
विपर्यये तु तत्सर्वं व्यर्थं भवति रावण । व्यसनं स्वामिवैगुण्यात्प्राप्नुवन्तीतरे जनाः ॥ ९ ॥
राजमूलो हि धर्मश्च जयश्च जयतां वर । तस्मात्सर्वास्ववस्थासु रक्षितव्या नराधिपाः ॥१०॥
राज्यं पालयितुं शक्यं न तीक्ष्णेन निशाचर । न चापि प्रतिकूलेन नाविनीतेन राक्षस ॥११॥
ये तीक्ष्णमन्त्राः सचिवा भज्यन्ते सह तेन वै । विषमेषु रथाः शीघ्रा मन्दसारथयो यथा ॥१२॥
बहवः साधवो लोके युक्ता धर्ममनुष्ठिताः । परेषामपराधेन विनष्टाः सपरिच्छदाः ॥१३॥
स्वामिना प्रतिकूलेन प्रजास्तीक्ष्णेन रावण । रक्ष्यमाणा न वर्धन्ते मृगा गोमायुना यथा ॥१४॥
अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः । येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥१५॥
तदिदं काकतालीयं घोरमासादितं मया । अत्रैव शोचनीयस्त्वं ससैन्यो विनशिष्यसि ॥१६॥
मां निहत्य तु रामोऽसावचिरात्त्वां वधिष्यति । अनेन कृतकृत्योऽस्मि प्रिये यदरिणा हतः ॥१७॥

बुद्धि वाले अहितकारी ने तुम्हें यह उपदेश दिया है जो कि हे रावण ! तुम्हारे ही कर्मों द्वारा तुम्हारा सर्वस्व नाश कराना चाहता है ॥ ५ ॥ कुमार्ग पर चलने वाले तुम को जो मन्त्रिगण सब प्रकार से नहीं रोकते, वे सभी वध दण्ड के योग्य हैं, उन को प्राण दण्ड क्यों नहीं देते ॥ ६ ॥ अच्छे मन्त्रियों का यह काम है कि कुपथ पर चलने वाले राजाओं को सर्वथा रोकें, किन्तु आज वे तुम्हारे मन्त्री तुम्हें नहीं रोक रहे हैं ॥ ७ ॥ हे विजेताओं में श्रेष्ठ राजन् ! धर्म, अर्थ, काम और यश, यह अपने राजा की कृपा से ही मन्त्री लोग प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥ हे रावण ! राजा के दुःखी होने पर राज्य की सुख शान्ति सभी व्यर्थ हो जाती है। राजा की नीतिभ्रष्टता से सम्पूर्ण प्रजा दुःख भोगती है ॥ ९ ॥ नीति सम्पन्न धार्मिक राजा के द्वारा ही यश और धर्म की वृद्धि होती है। इस लिये हे विजेताओं में श्रेष्ठ रावण ! राजा की रक्षा प्रत्येक अवस्था में करनी चाहिये ॥ १० ॥ हे राक्षसराज ! तीक्ष्ण विचार वाले राज्य का पालन नहीं कर सकते। प्रजा के प्रतिकूल आचरण करने वाले तथा अजितेन्द्रिय राजा प्रजा पर यथावत् शासन नहीं कर सकता ॥ ११ ॥ राजा को उग्रता पूर्वक शासन करने की सम्मति देने वाले मन्त्री इस का मृत्यु रूपी कुपरिणाम राजा के साथ ही इस प्रकार भोगते हैं जैसे विषम भूमि में गमन करने वाले रथ या रथी मन्द सारथि के साथ शीघ्र नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥ लोक में योगपूर्वक धर्मानुष्ठान करने वाले अनेकों सज्जन अन्यों के अपराध से अपने सब सहायकों के साथ नष्ट होते हुए देखे गये हैं ॥ १३ ॥ हे रावण ! प्रतिकूल आचारण करने वाले तथा उग्र शासन करने वाले राजा के द्वारा प्रजा कभी वृद्धि को नहीं प्राप्त होती, जैसे मृगभक्षी शृगालों द्वारा मृगों की वृद्धि नहीं होती ॥ १४ ॥ हे रावण ! जिस राक्षस प्रजा के तुम जैसे अजितेन्द्रिय, दुर्बुद्धि तथा कर्कश राजा हों, उन सम्पूर्ण राक्षसों का अवश्य ही नाश होगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार सहसा काकतालीय न्याय से विपद् ग्रस्त तुम अवश्य ही सेना के साथ नाश को प्राप्त होगे, इसी लिये मैं अत्यन्त शोक कर रहा हूं ॥ १६ ॥ मुझे मार कर रामचन्द्र शीघ्र ही तुम्हारा वध करेंगे। इस लिये मैं अरि रामचन्द्र के द्वारा मारे जाने पर अपने को कृतकृत्य समझता हूं ॥ १७ ॥ रामचन्द्र के समक्ष जाते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दर्शनादेव रामस्य हतं मामवधारय । आत्मानं च हतं विद्धि हत्वा सीतां सबान्धवम् ॥१८॥
आनयिष्यसि चेत्सीतामाश्रमात्सहितो मया । नैव त्वमसि नाहं च नैव लङ्का न राक्षसाः ॥१९॥
निवार्यमाणस्तु मया हितैषिणा न मृष्यसे वाक्यमिदं निशाचर ।
परेतकल्पा हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे रावणनिन्दा नाम एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः

स्वर्णमृगप्रेक्षणम्

एवमुक्त्वा तु वचनं मारीचो रावणं ततः । गच्छावेत्यब्रवीद्दीनो भयाद्रात्रिंचरप्रभोः ॥ १ ॥
दृष्टः सोऽहं पुनस्तेन शरचापासिधारिणा । मद्वधोद्यतशस्त्रेण विनष्टं जीवितं च मे ॥ २ ॥
न हि रामं पराक्रम्य जीवन् प्रतिनिवर्तते । वर्तते प्रतिरूपोऽसौ यमदण्डहतस्य ते ॥ ३ ॥
किं नु शक्यं मया कर्तुमेवं त्वयि दुरात्मनि । एष गच्छाम्यहं तात स्वस्ति तेऽस्तु निशाचर ॥ ४ ॥

ही मैं मारा जाऊंगा, यह निश्चित है तथा सीताहरण के द्वारा बन्धु-बान्धवों के सहित तुम अपने आप को भी मरा हुआ समझो ॥ १८ ॥ यदि मेरे साथ आश्रम से सीता का अपहरण करोगे, तो न तुम, न मैं, न लंका और न ये राक्षस ही बच सकेंगे (सभी समाप्त हो जायेंगे) ॥ १९ ॥ हे निशाचर रावण ! मेरे जैसे हितैषी के निवारण करने पर भी यदि तुम मेरी बात को नहीं सुन रहे हो [तो इस का परिणाम सिवा नाश के और कोई नहीं] क्यों कि आयु के नष्ट होने वाले यम सदन के अतिथि अपने शुभचिन्तकों की कही हुई बात को नहीं ग्रहण करते ॥ २० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'रावण की निन्दा' विषयक इकतालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥

बयालीसवां सर्ग

सोने के मृग को देखना

रावण से इस प्रकार कठोर वचन कह कर मारीच राक्षसराज रावण के भय से दीन होता हुआ यह बोला—अच्छा, चलो हम लोग चलें ॥ १ ॥ मेरे वध के लिये उद्यत धनुष, बाण, तलवार धारी उस राम के देखते ही मैं निश्चय ही मृत्यु को प्राप्त हो जाऊंगा ॥ २ ॥ रामचन्द्र पर कोई आक्रमण कर के जीते जी पुनः लौट नहीं सकता । यमराज के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होने वाले तुम्हारे लिये रामचन्द्र यथायोग्य ही हैं (मैं तो मरूंगा ही, किन्तु तुम भी बच न सकोगे) ॥ ३ ॥ तुम जैसे दुरात्मा के इस प्रकार निश्चय कर लेने पर अब मैं कर ही क्या सकता हूं । इस लिये हे निशाचर ! चलो, मैं तैयार हूं । हे तात ! तुम्हारा कल्याण हो ॥ ४ ॥ मारीच के इस प्रकार कहने पर वह रावण प्रसन्न हो गया तथा मारीच का गाढ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रहृष्टस्त्वभवत्तेन वचनेन स रावणः । परिष्वज्य सुसंश्लिष्टमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥
एतच्छौण्डीर्ययुक्तं ते मच्छन्दादिव भाषितम् । इदानीमसि मारीचः पूर्वमन्यो निशाचरः ॥ ६ ॥
आरुह्यतामयं शीघ्रं खगो रत्नविभूषितः । मया सह तथा युक्तः पिशाचवदनैः खरैः ॥ ७ ॥
प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि । तां शून्ये प्रसभं सीतामानयिष्यामि मैथिलीम् ॥ ८ ॥
ततस्तथेत्युवाचैनं रावणं ताटकासुतः । ततो रावणमारीचौ विमानमिव तं रथम् ॥ ९ ॥
आरुह्य ययतुः शीघ्रं तस्मादाश्रममण्डलात् । तथैव तत्र पश्यन्तौ पत्तनानि वनानि च ॥१०॥
गिरींश्च सरितः सर्वा राष्ट्राणि नगराणि च । समेत्य दण्डकारण्यं राघवस्याश्रमं ततः ॥११॥
ददर्श सहमारीचो रावणो राक्षसाधिपः । अवतीर्य रथात्तस्मात्ततः काञ्चनभूषणात् ॥१२॥
हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत् । एतद्रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम् ॥१३॥
क्रियतां तत्सखे शीघ्रं यदर्थं वयमागताः । स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा ॥१४॥
मृगो भूत्वाश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह । स तु रूपं समास्थाय महदद्भुतदर्शनम् ॥१५॥
मणिप्रवरशृङ्गाग्रः सितासितमुखाकृतिः । रक्तपद्मोत्पलमुख इन्द्रनीलोत्पलश्रवाः ॥१६॥
किंचिदभ्युन्नतग्रीव इन्द्रनीलनिभोदरः । मधूकनिभपार्श्वश्च पद्मकिञ्जल्कसंनिभः ॥१७॥
वैडूर्यसंकाशखुरस्तनुजङ्घः सुसंहतः । इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजता ॥१८॥

आलिङ्गन कर के यह वचन बोला ॥ ५ ॥ मेरी आज्ञा के अनुकूल काम करने वाले ये तुम्हारे विचार तुम्हारी वीरताके द्योतक हैं । वास्तव में तुम इस समय मारीच हो, इस के पूर्व तो तुम कोई और ही राक्षस थे ॥ ६ ॥ भयङ्कर मुख वाले खच्चरों से जुते हुए, रत्नविभूषित, आकाशगामी रथ पर मेरे साथ शीघ्र तुम बैठ जाओ ॥ ७ ॥ विदेह कुमारी सीता को लुभायमान कर के तुम जहां चाहो ले जाना । पश्चात् शून्य स्थान पा कर मिथिला की राजकुमारी सीता का हठात् मैं अपहरण करूंगा ॥ ८ ॥ ताड़का के पुत्र मारीच ने 'बहुत ठीक' ऐसा कह कर रावण की बात को स्वीकार कर लिया । पश्चात् रावण और मारीच विमान के समान उस रथ पर ॥ ९ ॥ बैठ कर उस अपने आश्रम से शीघ्र ही चल पड़े । पहले के समान ही नगर और वनों को देखते हुए ॥ १० ॥ तथा पहाड़ों, सम्पूर्ण नदियों, राष्ट्र के नगरों को देखते हुए रावण और मारीच ने दण्डकारण्य के अन्तर्गत रामचन्द्र के आश्रम को देखा ॥ ११ ॥ मारीच के साथ रावण काञ्चन भूषण भूषित उस रथ से उतर कर मारीच का हाथ अपने हाथ में पकड़ कर रावण यह बोला—कदली वृक्षों से घिरा हुआ यह रामचन्द्र का आश्रम दिखाई दे रहा है ॥ १२-१३ ॥ हे मित्र ! जिस के लिये हम लोग यहां आये हैं, वह काम अब तुम शीघ्र करो । रावण की इस बात को सुन कर राक्षस मारीच ॥ १४ ॥ अत्यद्भुत मृग का रूप धारण कर राम के आश्रम के द्वार पर घूमने लगा ॥ १५ ॥ उस मायावी मृग के नील इन्द्रमणि के समान सींग थे, श्याम और श्वेत वर्ण का उस का मुख था । रक्तकमल के समान उस के ओष्ठ थे, नीलमणि के समान उस के दोनों कान थे ॥ १६ ॥ गर्दन कुछ उठी हुई, इन्द्रनील मणि के समान उसके उदर का निम्न भाग था, महुए के समान उस के दोनों पार्श्व थे, कमल के पराग के समान उसका अपना रंग था ॥ १७ ॥ वैदूर्य मणि के समान उस के पैर के खुर थे, जांघें पतली तथा आपस में मिली हुई थीं । इन्द्र धनुष के समान अपनी उठी हुई पूंछ से वह सुशोभित हो रहा था ॥ १८ ॥ उसका वर्ण अति मनोहर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनोहरः स्निग्धवर्णो रत्नैर्नानाविधैर्वृतः । क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ॥१९॥
वनं प्रज्वलयन् रम्यं रामाश्रमपदं च तत् । मनोहरं दर्शनीयं रूपं कृत्वा स राक्षसः ॥२०॥
प्रलोभनार्थं वैदेह्या नानाधातुविचित्रितम् । विचरन् गच्छते तस्माच्छाद्वलानि समन्ततः ॥२१॥
रूप्यैर्बिन्दुशतैश्चित्रो भूत्वा स प्रियदर्शनः । विटपीनां किसलयान् भङ्क्त्वादन् विचचार ह ॥२२॥
कदलीगृहकं गत्वा कर्णिकारानितस्ततः । समाश्रयन् मन्दगतिं सीतासंदर्शनं तथा ॥२३॥
राजीवचित्रपृष्ठः स विरराज महामृगः । रामाश्रमपदाभ्याशे विचचार यथासुखम् ॥२४॥
पुनर्गत्वा निवृत्तश्च विचचार मृगोत्तमः । गत्वा मुहूर्तं त्वरया पुनः प्रतिनिवर्तते ॥२५॥
विक्रीडंश्च क्वचिद्भूमौ पुनरेव निषीदति । आश्रमद्वारमागम्य मृगयूथानि गच्छति ॥२६॥
मृगयूथैरनुगतः पुनरेव निवर्तते । सीतादर्शनमाकाङ्क्षन् राक्षसो मृगतां गतः ॥२७॥
परिभ्रमति चित्राणि मण्डलानि विनिष्पतन् । समुद्वीक्ष्य च तं सर्वे मृगा ह्यन्ये वनेचराः ॥२८॥
उपागम्य समाघ्राय विद्रवन्ति दिशो दश । राक्षसः सोऽपि तान् वन्यान् मृगान् मृगवधे रतः ॥२९॥
प्रच्छादनार्थं भावस्य न भक्षयति संस्पृशन् । तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना ॥३०॥
कुसुमापचयव्यग्रा पादपानभ्यवर्तत । कर्णिकारानशोकांश्च चूतांश्च मदिरेक्षणा ॥३१॥
कुसुमान्यवचिन्वन्ती चचार रुचिरानना । अनर्हारण्यवासस्य सा तं रत्नमयं मृगम् ॥३२॥
मुक्तामणिविचित्राङ्गं ददर्श परमाङ्गना । सा तं रुचिरदन्तोष्ठं रूप्यधातुतनूरुहम् ॥३३॥

तथा दर्शनीय था, नाना रत्नों से सुभूषित था, इस प्रकार उस मारीच ने कुछ ही क्षण में अत्यन्त सुन्दर मृग का रूप धारण कर लिया ॥ १९ ॥ वह मारीच राक्षस अपने अति मनोहर दर्शनीय रूप को धारण कर के अपनी कान्ति से रामचन्द्र के आश्रम तथा वन को प्रज्वलित करता हुआ ॥ २० ॥ सीता को लुभाने के लिये नाना धातुओं से चित्रित वह मृग हरी घास को खाता हुआ चारों ओर घूमने लगा ॥ २१ ॥ चांदी के विन्दुओं से चित्रित प्रियदर्शी वह मृग वृक्षों के कोमल पत्तों को खाते हुए घूमने लगा ॥२२॥वह मृग कदलीवन में जाकर कनेर के फूलों वाले वन में गया। सीता को दिखाने के लिये उस आश्रम में मन्द गति से इधर उधर घूमने लगा ॥ २३ ॥ कमल के समान चित्रित पीठ वाला वह महामृग इस प्रकार रामचन्द्र के आश्रम के समीप सुखपूर्वक विचरण करने लगा ॥ २४ ॥ वह उत्तम मृग कभी आगे जाता है, कभी पुनः लौट कर उसी स्थान पर आ जाता है। कुछ ही क्षण में वह कई वार आगे गया और फिर लौट आया ॥ २५ ॥ भूमि पर क्रीडा करता हुआ वह मृग कभी बैठ जाता है, पुनः रामचन्द्र के आश्रम के द्वार पर आकर पालतू मृग झुण्डों की ओर जाता है ॥ २६ ॥ पालतू मृग झुण्डों के साथ वह राक्षस जो मृग का रूप धारण किये हुए था, सीता को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये ॥ २७ ॥ सीता की ओर जाता हुआ अपनी कमनीय कलापूर्ण गति का प्रदर्शन करता हुआ इधर उधर घूमता है। वन के अन्य सारे मृग उस मायामृग को देख कर ॥ २८ ॥ उस के पास जाते हैं और उसे सूंघ कर दसों दिशाओं में भाग जाते हैं। मृगमांस भक्षी वह मायामृग के रूप में राक्षस वनवासी अन्य मृगों से ॥ २९ ॥ अपने भावों को छिपाने के लिये उन के स्पर्श करने पर भी उन को नहीं खाता। [जिस समय मायामृग अपनी कला का प्रदर्शन कर रहा था] उसी समय सुनेत्रा जानकी ॥ ३० ॥ पुष्पचयन करने के लिये व्यग्रता पूर्वक कर्णिकार, अशोक, आम आदि वृक्षों के पास आई ॥ ३१ ॥ वनवास के अयोग्य, रक्त अधर वाली, फूलों को चुनती हुई सीता ने कुछ आगे बढ़ कर उस रत्नमय मृग को ॥ ३२ ॥ जो मुक्ता और मणियों से चित्रित तथा कमनीय दन्त-ओष्ठ वाले, चांदी के बालों वाला था, उस मायामृग को शोभन अङ्ग वाली उस ने देखा ॥३३॥ विस्मय से चकित,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विस्मयोत्फुल्लनयना सस्नेहं समुदैक्षत । स च तां रामदयितां पश्यन् मायामयो मृगः ॥३४॥
विचचार पुनश्चित्रं दीपयन्निव तद्वनम् । अदृष्टपूर्वं तं दृष्ट्वा नानारत्नमयं मृगम् ॥३५॥
विस्मयं परमं सीता जगाम जनकात्मजा ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे स्वर्णमृगप्रेक्षणं नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः

लक्ष्मणशङ्काप्रतिसमाधानम्

सा तं संप्रेक्ष्य सुश्रोणी कुसुमान्यवचिन्वती । हैमराजतवर्णाभ्यां पार्श्वाभ्यामुपशोभितम् ॥ १ ॥
प्रहृष्टा चानवद्याङ्गी मृष्टहाटकवर्णिनी । भर्तारमभिचक्रन्द लक्ष्मणं चापि सायुधम् ॥ २ ॥
आहूयाहूय च पुनस्तं मृगं साधु वीक्षते । आगच्छागच्छ शीघ्रं वै आर्यपुत्र सहानुज ॥ ३ ॥
तयाहूतौ नरव्याघ्रौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ । वीक्षमाणौ तु तं देशं तदा ददृशतुर्मृगम् ॥ ४ ॥
शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो राममब्रवीत् । तमेवैनमहं मन्ये मारीचं राक्षसं मृगम् ॥ ५ ॥

प्रफुल्लित नेत्र वाली सीता ने सस्नेह उस मृग को देखा। रामचन्द्र की प्राणप्रिया सीता को देखते हुए वह मृग ॥ ३४ ॥ उस वन को कमनीय कान्ति से प्रकाशित करता हुआ विचरण करने लगा। नाना प्रकार के रत्नों से सुभूषित अदृष्टपूर्व उस मृग को देख कर जनकनन्दिनी सीता परम विस्मित हुई ॥ ३५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'सोने के मृग को देखना' विषयक बयालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥४२॥

तेतालीसवाँ सर्ग

लक्ष्मण की शंका का समाधान

सोने और चाँदी के वर्ण से युक्त जिसके दोनों पार्श्व सुशोभित हो रहे थे, ऐसे उस मृग को, पुष्पों को चुनती हुई सर्वाङ्ग सुन्दरी सीता ने देखा ॥ १ ॥ तपे हुए स्वर्ण के समान वर्ण वाली तथा उत्तम अङ्ग वाली जानकी उस मृग को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और शस्त्रास्त्र युक्त अपने पति रामचन्द्र तथा अपने देवर लक्ष्मण को पुकारा ॥ २ ॥ बार-बार पुकारती हुई सीता उस कमनीय कान्ति वाले मृग को बड़े ध्यान से देख रही है। आओ, आओ, हे आर्य पुत्र ! अपने भाई के साथ शीघ्र आओ ॥ ३ ॥ इस प्रकार सीता के बुलाने पर नरकेसरी राम-लक्ष्मण दोनों भाई देखते हुए उस स्थान पर आये और उन लोगों ने उस माया मृग को देखा ॥ ४ ॥ उस मृग को देखकर शङ्कित मन से लक्ष्मण बोले—यह माया मृग रूप धारी वही राक्षस मारीच है, ऐसा मैं समझता हूँ ॥ ५ ॥ हे रामचन्द्र ! इस काम रूपधारी पापी मारीच ने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चरन्तो मृगयां हृष्टाः पापेनोपाधिना वने । अनेन निहता राम राजानः कामरूपिणा ॥ ६ ॥
अस्य मायाविदो मायामृगरूपमिदं कृतम् । भानुमत्पुरुषव्याघ्र गन्धर्वपुरसंनिभम् ॥ ७ ॥
मृगो ह्येवंविधो रत्नविचित्रो नास्ति राघव । जगत्यां जगतीनाथ मायैषा हि न संशयः ॥ ८ ॥
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं प्रतिवार्य शुचिस्मिता । उवाच सीता संहृष्टा छद्मना हृतचेतना ॥ ९ ॥
आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः । आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥१०॥
इहाश्रमपदेऽस्माकं बहवः पुण्यदर्शनाः । मृगाश्चरन्ति सहिताः सृमराश्चमरास्तथा ॥११॥
ऋक्षाः पृषतसङ्घाश्च वानराः किन्नरास्तथा । विचरन्ति महाबाहो रूपश्रेष्ठा मनोहराः ॥१२॥
न चास्य सदृशो राजन् दृष्टपूर्वो मृगः पुरा । तेजसा क्षमया दीप्त्या यथायं मृगसत्तमः ॥१३॥
नानावर्णविचित्राङ्गो रत्नबिन्दुसमाचितः । द्योतयन् वनमव्यग्रं शोभते शशिसंनिभः ॥१४॥
अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसम्पच्च शोभना । मृगोऽद्भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीव मे ॥१५॥
यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव । आश्चर्यभूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति ॥१६॥
समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः । अन्तःपुरविभूषार्थो मृग एष भविष्यति ॥१७॥
भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो । मृगरूपमिदं व्यक्तं विस्मयं जनयिष्यति ॥१८॥
जीवन्न यदि तेऽभ्येति ग्रहणं मृगसत्तमः । अजिनं नरशार्दूल रुचिरं मे भविष्यति ॥१९॥

अपनी कपटमयी धूर्त्तता से इस वन में शिकार खेलने वाले अनेक राजाओं को मार दिया है ॥ ६ ॥ माया के जानने वाले मायावी मारीच ने ही मृग का रूप धारण किया है। हे नरकेसरी रामचन्द्र ! गन्धर्व पुर के सदृश दिखाई देता है किन्तु वस्तुतः यह असत्य है ॥ ७ ॥ हे जगत्पति रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ! रत्नचित्रित इस प्रकार का मृग संसार में कभी देखा नहीं गया। यह केवल माया है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ बनावटी माया मृग को देखकर जिसकी बुद्धि भ्रांत हो गई है, ऐसी पवित्र हास्य करने वाली सीता लक्ष्मण के इस प्रकार कहने पर उन को रोकती हुई प्रसन्नता पूर्वक बोली ॥ ९ ॥ आर्यपुत्र ! यह मृग अत्यन्त रमणीय है, मेरे मन को आकृष्ट कर रहा है। हे विशाल भुजा वाले वीर ! इस को ले आइये। यह हम लोगों के लिये क्रीडा (मनबहलाव) का काम करेगा ॥१०॥ इस हमारे आश्रम में कमनीय कान्ति वाले पृथक् पृथक् जाति के चमर, सृमर आदि बहुत से मृग घूमते हैं ॥ ११ ॥ हे विशाल भुजा वाले रामचन्द्र ! इस के अतिरिक्त रीछ, पृषतों के झुण्ड, वानर, वनमानुष रूपी महाबली तथा सुन्दर अनेकों मृग यहाँ घूमते हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! इस मृग के समान तेजस्वी, सौम्य, कान्तिमान् मृग पहले कभी नहीं देखा ॥ १३ ॥ नाना वर्णों से चित्र विचित्र अंग वाला, चन्द्रमा के समान सम्पूर्ण दिशाओं को शोभित करता हुआ रत्नमय यह मृग प्रकाशित हो रहा है ॥१४॥ अहा ! इस का कैसा रूप है, इसकी कैसी कान्ति है तथा इसकी स्वरलहरी कितनी सुन्दर है। विचित्र अङ्ग वाला यह अद्भुत मृग मेरे हृदय को हरण कर रहा है ॥१५॥ यदि यह मृग जीवित पकड़ लिया जाय, तो यह तुम्हारे लिये बड़े आश्चर्य की बात होगी और सभी लोगों के विस्मय का कारण बन जायेगा ॥ १६ ॥ हम लोगों का वनवास समाप्त हो जाने पर जब हम लोग सिंहासनारूढ़ हो जायेंगे, उस समय हमारे अन्तःपुर (रनिवास) में मनोरंजन का स्थान प्राप्त करेगा ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! इस मृग का यह दिव्य रूप भरत को, आप को तथा सासुओं को विस्मित करेगा ॥ १८ ॥ हे नरकेसरी ! यह कमनीय कान्ति वाला मृग आप के द्वारा जीवित यदि न पकड़ा जा सके, तो इसका अजिन (चर्म) भी बड़ा ही सुन्दर होगा ॥ १९ ॥ मरे हुए इस मृग की स्वर्ण-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनदमयत्वचि । शष्पवृत्स्यां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥२०॥
कामवृत्तमिदं रौद्रं स्त्रीणामसदृशं मतम् । वपुषा त्वस्य सत्त्वस्य विस्मयो जनितो मम ॥२१॥
तेन काञ्चनरोम्णा तु मणिप्रवरशृङ्गिणा । तरुणादित्यवर्णेन नक्षत्रपथवर्चसा ॥२२॥
एवं सीतावचः श्रुत्वा दृष्ट्वा च मृगमद्भुतम् । बभूव राघवस्यापि मनो विस्मयमागतम् ॥२३॥
लोभितस्तेन रूपेण सीतया च प्रचोदितः । उवाच राघवो हृष्टो भ्रातरं लक्ष्मणं वचः ॥२४॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः स्पृहां मृगगतामिमाम् । रूपश्रेष्ठतया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ॥२५॥
न वने नन्दनोद्देशे न चैत्ररथसंश्रये । कुतः पृथिव्यां सौमित्रे योऽस्य कश्चित्समो मृगः ॥२६॥
प्रतिलोमानुलोमाश्च रुचिरा रोमराजयः । शोभन्ते मृगमाश्रित्य चित्राः कनकबिन्दुभिः ॥२७॥
पश्यास्य जृम्भमाणस्य दीप्तामग्निशिखोपमाम् । जिह्वां मुखान्निःसरन्तीं मेघादिव शतह्रदाम् ॥२८॥
असारगल्कर्कमुखः शङ्खमुक्तानिभोदरः । कस्य नामाभिरूपोऽसौ न मनो लोभयेन्मृगः ॥२९॥
कस्य रूपमिदं दृष्ट्वा जाम्बूनदमयप्रभम् । नानारत्नमयं दिव्यं न मनो विस्मयं व्रजेत् ॥३०॥
मांसहेतोरपि मृगान् विहारार्थं च धन्विनः । घ्नन्ति लक्ष्मण राजानो मृगयायां महावने ॥३१॥
धनानि व्यवसायेन विचीयन्ते महावने । धातवो विविधाश्चापि मणिरत्नसुवर्णिनः ॥३२॥
तत्सारमखिलं नृणां धनं निचयवर्धनम् । मनसा चिन्तितं सर्वं यथा शुक्रस्य लक्ष्मण ॥३३॥

मयी मृगछाला को कुशासन पर बिछा कर आप के समीप बैठूँगी ॥२०॥ इसके वध का काम अत्यन्त रौद्र है, जो स्त्रीस्वभाव के विपरीत है, यह मैं मानती हूँ । किन्तु इस मृग की कमनीय कान्ति ही विस्मित करते हुए मुझे इस कार्य के लिये प्रेरित कर रही है ॥ २१ ॥ काञ्चनमय रोम होने के कारण, नीलमणिमय सींग वाले, देदीप्यमान सूर्य के समान कान्ति वाले, कान्ति में नक्षत्र पथ गामी मृग के समान ॥२२॥ इस अद्भुत मृग को देखकर तथा सीता की आकर्षण वाली बात को सुन कर रामचन्द्र के मन में भी एक प्रकार का कौतूहल उत्पन्न हो गया ॥ २३ ॥ उस के रूप पर मुग्ध होकर तथा बार बार सीता के प्रेरित करने पर प्रसन्न होकर रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण से इस प्रकार बोले ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो, जानकी इसके रूप पर इतनी आकर्षित हो गई है । अपनी सुन्दरता के कारण ही यह मृग अब बच नहीं सकता ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण ! न इन्द्र के नन्दन वन में, न कुबेर के चैत्र वन में इस प्रकार का कमनीय मृग कभी देखा गया, पृथ्वी के साधारण वनों की तो बात ही क्या ? ॥ २६ ॥ स्वर्ण बिन्दुओं से चित्रित इस मृग को ऋजु और कुटिल रोम पंक्ति अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रही है । ॥ २७ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो, इस मृग के जम्भाई लेने पर अग्नि की देदीप्यमान शिखा के समान मुख से निकलती हुई इसकी जिह्वा मेघ माला से निकलती हुई विद्युत् के समान प्रतीत हो रही है ॥ २८ ॥ नीलमणि के कटोरे के समान इसका मुख, शंख और मोती के समान श्वेत इस का उदर, बुद्धि से भी अतर्कित इसका यह कमनीय रूप किस के मन को लोभायमान नहीं करेगा ॥ २९ ॥ काञ्चनमय कमनीय प्रभा वाले, नाना रत्नों से चित्रित इस मृग का यह दिव्य रूप किस देखने वाले व्यक्ति के मन को विस्मित न करेगा ॥ ३० ॥ हे लक्ष्मण ! वनों में मृगया करते हुए असुर वृत्ति वाले मांस भक्षी कुछ धनुर्धारी राजा मांस के लिये तथा अपने आमोद के लिये भी मृगों को मारते हैं ॥ ३१ ॥ मणि-रत्न-सुवर्ण के चाहने वाले कुछ लोग धन या व्यवसाय की दृष्टि से भी इस महावन में मृगयार्थ भ्रमण किया करते हैं ॥ ३२ ॥ हे लक्ष्मण ! यह सब अरण्य धन धनलोलुप मनुष्यों की धनवृद्धि में उसी प्रकार सहायक होते हैं, जैसे मन से विषय का ध्यान करने पर शुक्र अर्थात् काम की वृद्धि होती है ॥ ३३ ॥ अर्थी लोग प्रलोभन में आकर बिना विचारे ही जिस वस्तु के प्रति आकर्षित होते हैं, हे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थी येनार्थकृत्येन संव्रजत्यविचारयन् । तमर्थमर्थशास्त्रज्ञाः प्राहुरर्थ्याश्च लक्ष्मण ॥३४॥
एतस्य मृगरत्नस्य परार्घ्ये काञ्चनत्वचि । उपवेक्ष्यति वैदेही मया सह सुमध्यमा ॥३५॥
न कादली न प्रियकी न प्रवेणी न चाविकी । भवेदेतस्य सदृशी स्पर्शनेनेति मे मतिः ॥३६॥
एष चैव मृगः श्रीमान् यश्च दिव्यो नभश्चरः । उभावेतौ मृगौ दिव्यौ तारामृगमहीमृगौ ॥३७॥
यदि वायं तथा यन्मां भवेद्वदसि लक्ष्मण । मायैषा राक्षसस्येति कर्तव्योऽस्य वधो मया ॥३८॥
एतेन हि नृशंसेन मारीचेनाकृतात्मना । वने विचरता पूर्वं हिंसिता मुनिपुंगवाः ॥३९॥
उत्थाय बहवो येन मृगयायां जनाधिपाः । निहताः परमेष्वासास्तस्माद्वध्यस्त्वयं मृगः ॥४०॥
[पुरस्तादिह वातापिः परिभूय तपस्विनः । उदरस्थो द्विजान् हन्ति स्वगर्भोऽश्वतरीमिव ॥४१॥
स कदाचिच्चिराल्लोभादाससाद महामुनिम् । अगस्त्यं तेजसा युक्तं भक्ष्यस्तस्य बभूव ह ॥४२॥
समुत्थाने च तद्रूपं कर्तुकामं समीक्ष्य तम् । उत्स्मयित्वा तु भगवान् वातापिमिदमब्रवीत् ॥४३॥
त्वयाविगण्य वातापे परिभूताः स्वतेजसा । जीवलोके द्विजश्रेष्ठास्तस्मादसि जरां गतः ॥४४॥
तदेतन्न भवेद्रक्षो वातापिरिव लक्ष्मण । मद्विधं योऽतिमन्येत धर्मनित्यं जितेन्द्रियम् ॥४५॥
भवेद्धतोऽयं वातापिरगस्त्येनेव मां गतः] । इह त्वं भव संनद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम् ॥४६॥

लक्ष्मण ! अर्थशास्त्र के जानने वाले आर्थिक लोग उसको अर्थ कहते हैं । (इस दृष्टि से यह मृग भी हमारे लिए अर्थ ही है) ॥ ३४ ॥ इस मृगरत्न की मूल्यवाली काञ्चनमयी मृगछाला पर सुन्दरी सीता मेरे साथ बैठेगी ॥ ३५ ॥ इस मृग के मृगचर्म के समान कोमल न कदली की, न प्रियक की त्वचा और न प्रबोधी (मृगविशेष) तथा न भेड़ का ही चर्म कोमल होता है, ऐसा मेरा विचार है ॥ ३६ ॥ यह मृग और नभचारी मृगशीर्ष नक्षत्र वाला मृग, ये दोनों ही समान रमणीय प्रतीत होते हैं ❀ ॥ ३७ ॥ हे लक्ष्मण ! जैसा कि तुम कहते हो—यह मायामयमृग मारीच ही है, तो भी इस को मुझे मारना ही है ॥ ३८ ॥ इस निर्दयी अजितेन्द्रिय मारीच ने इस दण्डकारण्य में विचरण करने वाले अनेक श्रेष्ठ मुनियों को मारा है ॥३९॥ इस बन में मृगया के लिये आये हुए अनेक धनुर्धारी राजाओं को इस मायावी मारीच ने मारा है । इसलिये भी इसका वध करना आवश्यक है ॥ ४० ॥ पहले यहाँ वातापि नामक एक राक्षस अनेक द्विज तपस्वियों के उदर में प्रवेश करके निर्दयता पूर्वक उन को उसी प्रकार मार देता था, जैसे खच्चरी का गर्भ खच्चरी को मार देता है ॥ ४१ ॥ वह वातापि बहुत दिनों के बाद कभी घूमते फिरते महामुनि अगस्त्य के पास में आया और उनका भक्ष्य होकर उनके उदर में उपस्थित हो गया ॥ ४२ ॥ उदरस्थ वातापि के पुनः उदर से निकलने के अपने प्रयत्नों को देखकर भगवान् अगस्त्य हँसते हुए वातापि से यह बोले ॥ ४३ ॥ हे वातापि ! तुमने अपने तेज तथा अवलेप के कारण इस संसार में अनेक ब्राह्मणों का मृत्यु के समान घोर अपमान किया है । इस लिये अब तुम मेरे उदर से निकल न सकोगे, क्योंकि मैंने तुमको पचा लिया है ॥ ४४ ॥ इस लिये हे लक्ष्मण ! जो राक्षस मेरे ऐसे धर्मात्मा जितेन्द्रिय व्यक्ति पर आक्रमण करेगा, वह वातापि के समान ही नष्ट हो जायेगा ॥ ४५ ॥ जैसे अगस्त्य के द्वारा वातापि मारा गया, ऐसे ही मेरे हाथों से इसे मरा हुआ समझो ।† तुम यहाँ पर अस्त्रादि से संयुक्त होकर सीता की रक्षा में तत्पर हो जाओ ॥४६॥ हे रघुनन्दन लक्ष्मण ! सीता के प्रति हम लोगों का जो कर्त्तव्य है (अर्थात् सीता के भावों

❀ नभमृग तारा समूह है जो आकृति में पृथ्वी के मृग के समान होता है उसी को मृगशिरा नक्षत्र कहते हैं ।

† यह कथा अरण्यकाण्ड सर्ग ११ श्लो० ५५–६८ में आ चुकी है । देखें पृ. ५७७ की टिप्पणी ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अस्यामायत्तमस्माकं यत्कृत्यं रघुनन्दन । अहमेनं वधिष्यामि ग्रहीष्याम्यपि वा मृगम् ॥४७॥
यावद्गच्छामि सौमित्रे मृगमानयितुं द्रुतम् । पश्य लक्ष्मण वैदेहीं मृगत्वचि गतस्पृहाम् ॥४८॥
त्वचा प्रधानया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति । अप्रमत्तेन ते भाव्यमाश्रमस्थेन सीतया ॥४९॥
यावत्पृषतमेकेन सायकेन निहन्म्यहम् । हत्वैतच्चर्म चादाय शीघ्रमेष्यामि लक्ष्मण ॥५०॥
प्रदक्षिणेनातिबलेन पक्षिणा जटायुषा बुद्धिमता च लक्ष्मण ।
भवाप्रमत्तः परिगृह्य मैथिलीं प्रतिक्षणं सर्वत एव शङ्कितः ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे लक्ष्मणशङ्काप्रतिसमाधानं नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

मारीचवञ्चना

तथा तु तं समादिश्य भ्रातरं रघुनन्दनः । बबन्धासिं महातेजा जाम्बूनदमयत्सरुम् ॥ १ ॥
ततस्त्र्यवनतं चापमादायात्मविभूषणम् । आबध्य च कलापौ द्वौ जगामोदग्रविक्रमः ॥ २ ॥

का आदर करना) इस लिये इस मृग को मैं या तो पकड़ूँगा । अथवा इस का वध करूँगा ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण अब मैं मृग को लाने के लिये शीघ्र ही जा रहा हूँ । हे लक्ष्मण ! देखो, इस मृग चर्म के ऊपर विदेहराजकुमारी जानकी की कितनी उत्कट उत्कण्ठा है ॥ ४८ ॥ अपनी सुन्दर त्वचा के कारण ही अब यह मृग जीवित नहीं बच सकता । तुम्हें इस आश्रम में सीता की रक्षा अति सावधानी से करनी है ॥ ४९ ॥ हे लक्ष्मण ! मैं इसको एक ही बाण से समाप्त करूँगा । इसको मार कर तथा इस के चर्म को लेकर मैं शीघ्र ही आऊँगा ॥ ५० ॥ हे लक्ष्मण ! हमारे पक्ष के पोषक बुद्धिमान्, पराक्रमी, कार्य में दक्ष तपस्वी जटायु के साथ प्रतिक्षण सतर्कता तथा सावधानी पूर्वक सीता की रक्षा में तत्पर हो जाओ ॥ ५१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'लक्ष्मण की शंका का समाधान' विषयक
तेतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

चवालीसवां सर्ग

मारीच का छल

महातेजस्वी रामचन्द्र ने अपने भाई लक्ष्मण को इस प्रकार आज्ञा दे कर काञ्चन की मूठ वाली कृपाण को सम्भाला ॥ १ ॥ तत्पश्चात् महान् पराक्रमी रामचन्द्र ने तीन स्थान में झुके हुए, जो क्षत्रियों का एक प्रकार का आभूषण है ऐसे, धनुष को ले कर तथा दो तरकशों को बांध कर आश्रम से प्रस्थान कर दिया ॥ २ ॥ उस राजाधिराज रामचन्द्र को अपनी ओर आते हुए देख कर उन को धोखा देने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तं वञ्चयानो राजेन्द्रमापतन्तं निरीक्ष्य वै । बभूवान्तर्हितस्त्रासात्पुनः संदर्शनेऽभवत् ॥ ३ ॥
बद्धासिर्धनुरादाय प्रदुद्राव यतो मृगः । तं स्म पश्यति रूपेण द्योतमानमिवाग्रतः ॥ ४ ॥
अवेक्ष्यावेक्ष्य धावन्तं धनुष्पाणिं महावने । अतिवृत्तमिषोः पाताल्लोभयानं कदाचन ॥ ५ ॥
शङ्कितं तु समुद्भ्रान्तमुत्पतन्तमिवाम्बरे । दृश्यमानमदृश्यं च वनोद्देशेषु केषुचित् ॥ ६ ॥
छिन्नाभ्रैरिव संवीतं शारदं चन्द्रमण्डलम् । मुहूर्तादेव ददृशे मुहुर्दूरात्प्रकाशते ॥ ७ ॥
दर्शनादर्शनादेवं सोऽपाकर्षत राघवम् । सुदूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः ॥ ८ ॥
आसीत्क्रुद्धस्तु काकुत्स्थो विवशस्तेन मोहितः । अथावतस्थे संभ्रान्तश्छायामाश्रित्य शाद्वले ॥ ९ ॥
स तमुन्मादयामास मृगरूपो निशाचरः । मृगैः परिवृतो वन्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥१०॥
ग्रहीतुकामं दृष्ट्वैनं पुनरेवाभ्यधावत । तत्क्षणादेव संत्रासात्पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥११॥
पुनरेव ततो दूराद्वृक्षषण्डाद्विनिःसृतम् । दृष्ट्वा रामो महातेजास्तं हन्तुं कृतनिश्चयः ॥१२॥
भूयस्तु शरमुद्धृत्य कुपितस्तत्र राघवः । सूर्यरश्मिप्रतीकाशं ज्वलन्तमरिमर्दनः ॥१३॥
संधाय सुदृढे चापे विकृष्य बलवद्बली । तमेव मृगमुद्दिश्य श्वसन्तमिव पन्नगम् ॥१४॥
मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्मविनिर्मितम् । स भृशं मृगरूपस्य विनिर्भिद्य शरोत्तमः ॥१५॥
मारीचस्यैव हृदयं बिभेदाशनिसंनिभः । तालमात्रमथोत्प्लुत्य न्यपतत्स शरातुरः ॥१६॥
विनदन् भैरवं नादं धरण्यामल्पजीवितः । म्रियमाणस्तु मारीचो जहौ तां कृत्रिमां तनुम् ॥१७॥

के लिये वह मृग डरता हुआ छिप गया, पश्चात् फिर सामने आया ॥ ३ ॥ धनुष तथा कृपाण से सुसज्जित रामचन्द्र उस मृग की ओर दौड़े। अपने देदीप्यामन रूप से जो आगे प्रकाशित हो रहा है उस मृग को देखा ॥ ४ ॥ उस भीषण वन में धनुर्धारी रामचन्द्र पीछे देख २ कर दौड़ते हुए उस मृग को कभी तो अपने पास में देखते थे और कभी बहुत दूर भाग गया है, ऐसा देखते थे ॥ ५ ॥ आतङ्कित तथा घबड़ाया हुआ वह मृग कभी आकाश की ओर उछलता है, कभी सामने दिखाई देता है, कभी वन के किसी भाग में छिप जाता है ॥ ६ ॥ मेघाच्छन्न आकाश में चन्द्र मण्डल के समान थोड़ी देर में सामने दिखाई देता है। और कुछ देर में बहुत दूर दिखाई देता है ॥ ७ ॥ मृग रूप धारी वह मारीच इस प्रकार छिपता तथा दृष्टि पथ में आता हुआ रामचन्द्र को आश्रम से बहुत दूर ले गया ॥ ८ ॥ उस मृग के सौन्दर्य पर मोहित तथा अपने को विवश जान कर रामचन्द्र अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। क्लान्ति के कारण छाया का आश्रय ले कर हरी २ घास पर बैठ गये ॥ अन्य मृगों के झुण्ड से घिरा हुआ वह मारीच रामचन्द्र को मोहित करने के लिये पुनः कुछ दूर पर दिखाई दिया ॥ १० ॥ उस मृग को पकड़ने के लिये पुनः रामचन्द्र दौड़े। रामचन्द्र को आते हुए देख कर वह पुनः तत्काल छिप गया ॥ ११ ॥ कुछ दूर पर वृक्षों के झुण्ड से निकल पड़ा। महातेजस्वी रामचन्द्र ने उस को देख कर मारने का निश्चय कर लिया ॥ १२ ॥ शत्रुओं के मान मर्दन करने वाले क्रोधाविष्ट रामचन्द्र ने सूर्य के समान देदीप्यमान प्रकाशित होने वाले बाणों को तरकश से निकाल कर ॥ १३ ॥ प्रत्यञ्चा पूर्ण धनुष पर चढ़ाया फुफकारते हुए सर्प के समान उस मृग को लक्ष्य कर के ॥ १४ ॥ ब्रह्मा के बनाये हुए उस देदीप्यमान अस्त्र को बलपूर्वक उस पर छोड़ा। उस उत्तम बाण ने मृग रुपी मारीच के हृदय को इस प्रकार भेदन किया जैसे विद्युत् पतन किसी के हृदय को भेदन करता है। बाण के आघात से मर्माहत होता हुआ ताल मात्र ऊपर को उछला, पश्चात् वह धराशायी हो गया ॥ १५,१६ ॥ मरते हुए मारीच ने जिस का जीवन अब अल्प रह गया है उस वन स्थली में भीषण नाद करते हुए अपने मृग रूपी कृत्रिम शरीर को छोड़ दिया ॥ १७ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्मृत्वा तद्वचनं रक्षो दध्यौ केन तु लक्ष्मणम् । इह प्रस्थापयेत्सीता शून्ये तां रावणो हरेत् ॥१८॥
स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वरम् । सदृशं राघवस्यैव हा सीते लक्ष्मणेति च ॥१९॥
तेन मर्मणि निर्विद्धः शरेणानुपमेन च । मृगरूपं तु तत्त्यक्त्वा राक्षसं रूपमास्थितः ॥२०॥
चक्रे स सुमहाकायो मारीचो जीवितं त्यजन् । तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ राक्षसं घोरदर्शनम् ॥२१॥
रामो रुधिरसिक्ताङ्गं वेष्टमानं महीतले । जगाम मनसा सीतां लक्ष्मणस्य वचः स्मरन् ॥२२॥
मारीचस्यैव मायैषा पूर्वोक्तं लक्ष्मणेन तु । तत्तथा ह्यभवच्चाद्य मारीचोऽयं मया हतः ॥२३॥
हा सीते लक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्य च महास्वनम् । ममार राक्षसः सोऽयं श्रुत्वा सीता कथं भवेत् ॥२४॥
लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थां गमिष्यति । इति संचिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्टतनूरुहः ॥२५॥
तत्र रामं भयं तीव्रमाविवेश विषादजम् । राक्षसं मृगरूपं तं हत्वा श्रुत्वा च तत्स्वरम् ॥२६॥
निहत्य पृषतं चान्यं मांसमादाय राघवः । त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखस्तदा ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे मारीचवञ्चना नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥४४॥

रावण के आदेश का स्मरण करता हुआ वह मारीच यह विचार करने लगा कि लक्ष्मण को आश्रम से दूर किया जाय जिस से रावण सीता का अपहरण करे ॥ १८ ॥ अब यही वह समय है, ऐसा समझ कर मारीच ने रामचन्द्र के स्वर का अनुकरण करते हुए हा लक्ष्मण ! हा सीते ! इस प्रकार शब्द किया ॥ १९ ॥ राम के अनुपम बाण से मर्माहत होते हुए मारीच ने मृग रूपी अपने कृत्रिम शरीर को छोड़ कर राक्षस शरीर को धारण कर लिया ॥ २० ॥ मृत्यु के पूर्व मारीच ने अपने विशाल काय राक्षस शरीर को धारण कर लिया । भयङ्कर आकृति वाले उस राक्षस को भूमि पर गिरा हुआ देख कर ॥ २१ ॥ जो कि रक्त से सना हुआ है तथा भूमि पर छटपटा रहा है, इस स्थिति में रामचन्द्र लक्ष्मण की बातों का स्मरण करते हुए सीता के विषय में चिन्ता करने लगे ॥ २२ ॥ यह मायावी मारीच की माया है, ऐसा लक्ष्मण ने पहले ही कहा था । लक्ष्मण ने जैसा कहा था, आज वैसा ही हुआ, यह मारीच मेरे हाथों से मारा गया ॥ २३ ॥ हा सीते ! हा लक्ष्मण ! इस प्रकार महान् नाद करते हुए इस राक्षस ने शरीर को छोड़ा है। इस शब्द को सुन कर सीता पर इस का क्या प्रभाव पड़ा होगा ॥ २४ ॥ विशाल भुजा वाले लक्ष्मण पर भी इस का क्या प्रभाव पड़ा होगा, ऐसा विचार कर रामचन्द्र के रोंगटे खड़े हो गये ॥ २५ ॥ मृग रूपी राक्षस को मार कर तथा उस के अन्तिम इन शब्दों को सुन कर रामचन्द्र के हृदय में विषाद तथा भय उत्पन्न हो गया ॥ २६ ॥ अन्य मृगों को मार कर तथा उनके मांसों को ले कर*रामचन्द्र ने जनस्थान के अन्तर्गत अपने स्थान की ओर प्रस्थान कर दिया ॥ २७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'मारीच का छल' विषयक चवालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४४ ॥

---

*'कन्दमूलफलैर्जीवन्' इस प्रकार के बहुशःपाठ रामायण में आते हैं । अतः ऊपर निर्दिष्ट आधा श्लोक प्रक्षिप्त है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः

सीतापारुष्यम्

आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने । उवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम् ॥ १ ॥
न हि मे हृदयं स्थाने जीवितं वावतिष्ठते । क्रोशतः परमार्तस्य श्रुतः शब्दो मया भृशम् ॥ २ ॥
आक्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि । तं क्षिप्रमभिधाव त्वं भ्रातरं शरणैषिणम् ॥ ३ ॥
रक्षसां वशमापन्नं सिंहानामिव गोवृषम् । न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम् ॥ ४ ॥
तमुवाच ततस्तत्र कुपिता जनकात्मजा । सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत् ॥ ५ ॥
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपत्स्यसे । इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते ॥ ६ ॥
लोभान्मम कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम् । व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते ॥ ७ ॥
तेन तिष्ठसि विस्रब्धस्तमपश्यन् महाद्युतिम् । किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निह मया भवेत् ॥ ८ ॥
कर्तव्यमिह तिष्ठन्त्या यत्प्रधानस्त्वमागतः । इति ब्रुवाणां वैदेहीं बाष्पशोकपरिप्लुताम् ॥ ९ ॥
अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव । पन्नगासुरगन्धर्वदेवमानुषराक्षसैः ॥१०॥
अशक्यस्तव वैदेहि भर्ता जेतुं न संशयः । देवि देवमनुष्येषु गन्धर्वेषु पतत्रिषु ॥११॥

पैंतालीसवां सर्ग

सीता की फटकार

उस वन में पति के समान इन आर्त्त शब्दों को सुन कर सीता लक्ष्मण से बोली—जाओ, रामचन्द्र का पता लगाओ ॥ १ ॥ इस प्रकार के आर्त्त शब्द को बार२ सुन कर मेरे प्राण तथा हृदय विचलित हो रहे हैं ॥ २ ॥ रक्षा के लिये शरण चाहने वाले अपने भाई के शब्द को सुन कर हे लक्ष्मण ! तुम शीघ्र ही उन के पास जाओ और उनकी रक्षा करो ॥ ३ ॥ सिंह के वश में आने वाले गाय तथा बैल के समान, राक्षस के वश में आने वाले अपने भाई की रक्षा तुम अवश्य करो । अपने भाई के अनुशासन में रहने वाले लक्ष्मण सीता के कहने पर भी आश्रम से नहीं गये ॥ ४ ॥ लक्ष्मण के न जाने पर कुपित हुई जानकी उन से बोली—हे लक्ष्मण ! तुम मित्र के रूप में अपने भाई के शत्रु हो ॥ ५ ॥ इस विषम परिस्थिति में भी तुम अपने भाई की रक्षा नहीं कर रहे हो । इस लिये हे लक्ष्मण ! मुझे प्राप्त करने के लिये तुम अपने भाई का विनाश चाहते हो ॥ ६ ॥ तुम मेरे लोभ में आकर ही रामचन्द्र की रक्षा के लिये नहीं जा रहे हो । रामचन्द्र की विपत्ति ही तुमको प्रिय लगती है, वस्तुतः रामचन्द्र के साथ तुम्हारा स्नेह नहीं है ॥ ७ ॥ इसी कारण महान् देदीप्यमान कान्ति वाले उस राम को न देखकर भी तुम निश्चिन्त होकर बैठे हो । रामचन्द्र के जीवन पर संकट आ जाने पर मेरी रक्षा का क्या मूल्य है ॥ ८ ॥ जिसकी प्रधानता में तुम यहाँ आये हो उसकी अनुपस्थिति में अब तुम्हारा कर्त्तव्य ही क्या रह जाता है । आँखों में आँसू भरे हुए शोकाविष्ट सीता के ऐसा कहने पर ॥ ९ ॥ मृगी के समान डरी हुई सीता से लक्ष्मण इस प्रकार बोले—हे वैदेहि ! पन्नग, असुर, गन्धर्व, देव, दानव, राक्षस—इन में कोई भी रामचन्द्र को जीत नहीं सकता । हे देवि ! देव, मनुष्य, गन्धर्व, पक्षी ॥ १०,११ ॥ राक्षस, पिशाच, किन्नर, पशु तथा घोर दानव इन में से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राक्षसेषु पिशाचेषु किंनरेषु मृगेषु च । दानवेषु च घोरेषु न स विद्येत शोभने ॥१२॥
यो रामं प्रतियुध्येत समरे वासवोपमम् । अवध्यः समरे रामो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥१३॥
न त्वामस्मिन् वने हातुमुत्सहे राघवं विना । अनिवार्यं बलं तस्य बलैर्बलवतामपि ॥१४॥
त्रिभिर्लोकैः समुद्युक्तैः सेश्वरैरपि सामरैः । हृदयं निर्वृतं तेऽस्तु संतापस्त्यज्यतामयम् ॥१५॥
आगमिष्यति ते भर्ता शीघ्रं हत्वा मृगोत्तमम् । न च तस्य स्वरो व्यक्तं मायया केनचित्कृतः ॥१६॥
गन्धर्वनगरप्रख्या माया सा तस्य रक्षसः । न्यासभूतासि वैदेहि न्यस्ता मयि महात्मना ॥१७॥
रामेण त्वं वरारोहे न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे । कृतवैराश्च कल्याणि वयमेतैर्निशाचरैः ॥१८॥
खरस्य निधनादेव जनस्थानवधं प्रति । राक्षसा विविधा वाचो विसृजन्ति महावने ॥१९॥
हिंसाविहारा वैदेहि न चिन्तयितुमर्हसि । लक्ष्मणेनैवमुक्ता सा क्रुद्धा संरक्तलोचना ॥२०॥
अब्रवीत्परुषं वाक्यं लक्ष्मणं सत्यवादिनम् । अनार्याकरुणारम्भ नृशंस कुलपांसन ॥२१॥
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत् । रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानि प्रभाषसे ॥२२॥
नैतच्चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद्भवेत् । त्वद्विधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु ॥२३॥
सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि । मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥२४॥
तन्न सिध्यति सौमित्रे तव वा भरतस्य वा । कथमिन्दीवरश्यामं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥२५॥

कोई भी संग्राम में इन्द्र के तुल्य रामचन्द्र से संग्राम कर विजयी नहीं हो सकता। समर भूमि में रामचन्द्र अवध्य हैं। इस लिये तुमको इस प्रकार के शब्द नहीं कहने चाहियें ॥ १२,१३ ॥ राम के विना तुम्हें मैं इस बन में अकेली नहीं छोड़ सकता। रामचन्द्र का बल अप्रतिम है। बहुत सी बलवती सेना का संयोग तथा देव-मनुष्य-असुर भी मिलकर रामचन्द्र पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते। इस लिये तुम अपने हृदय को स्वस्थ बनाओ, सन्ताप को छोड़ दो ॥ १४,१५ ॥ उस मृग को मारकर तुम्हारे पति शीघ्र ही आवेंगे। निश्चय ही यह शब्द तुम्हारे पति का नहीं था, वह किसी छली का था ॥ १६ ॥ गन्धर्व नगर के समान यह सब उसी राक्षस की माया है। हे सीते! इस तुम्हारी रक्षा का सम्पूर्ण भार मेरे ही ऊपर है। उस महात्मा रामचन्द्र ने ही यह भार मुझे सौंपा है ॥ १७ ॥ हे शोभने! इसलिये मैं तुमको यहाँ अकेली नहीं छोड़ सकता। हे कल्याणि सीते! इस समय हम लोगों का इन राक्षसों के साथ विरोध भी चल रहा है ॥ १८ ॥ हे देवि! खर की मृत्यु से तथा जनस्थान का विध्वंस हो जाने से इस महावन में राक्षस लोग नाना प्रकार की बोली बोलते हैं ॥ १९ ॥ हिंसा आदि क्रूर कर्म करना ही जिन को प्रिय लगता है, इस प्रकार के स्वभाव वाले राक्षस लोग यहाँ रहते हैं। इसलिये हे सीते! तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। लक्ष्मण के ऐसा कहने पर क्रोध में आई हुई लाल नेत्र वाली सीता ॥२०॥ सत्यवादी लक्ष्मण के प्रति कठोर शब्दों में इस प्रकार बोली—हे अनार्य, निर्दयी, वृषल, कुलाङ्गार! तुम्हें रामचन्द्र का महान् व्यसन ही प्रिय लगता है, मैं ऐसा समझती हूँ। इसलिये रामचन्द्र की विपत्ति को देख कर भी तुम इस प्रकार बातें करते हो ॥ २१,२२ ॥ तुम्हारे जैसे निर्दयी, छिपे हुए शत्रु के प्रति इस प्रकार का पाप होना कोई आश्चर्य-जनक बात नहीं है ॥ २३ ॥ दुष्ट स्वभाव वाले तुम इस वन में अकेले राम के पीछे मुझे प्राप्त करने के लिये घूम रहे हो अथवा भरत की प्रेरणा से अपने भावों को छिपा कर घूम रहे हो ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण तुम्हारा तथा भरत का अभिप्राय कभी सिद्ध न हो सकेगा। नील कमल की आकृति वाले कमल नेत्र राम-चन्द्र की ॥ २५ ॥ धर्मपत्नी होकर साधारण जन का आश्रय मैं कैसे ले सकूँगी। हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्जनम् । समक्षं तव सौमित्रे प्राणांस्त्यक्ष्ये न संशयः ॥२६॥
रामं विना क्षणमपि न हि जीवामि भूतले । इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम् ॥२७॥
अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिर्विजितेन्द्रियः । उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम ॥२८॥
वाक्यमप्रतिरूपं तु न चित्रं स्त्रीषु मैथिलि । स्वभावस्त्वेष नारीणामेवं लोकेषु दृश्यते ॥२९॥
विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा भेदकराः स्त्रियः । न सहे हीदृशं वाक्यं दैदेहि जनकात्मजे ॥३०॥
श्रोत्रयोरुभयोर्मेऽद्य तप्तनाराचसंनिभम् । उपशृण्वन्तु मे सर्वे साक्षिभूता वनेचराः ॥३१॥
न्यायवादी यथान्यायमुक्तोऽहं परुषं त्वया । धिक्त्वामद्य प्रणश्य त्वं यन्मामेवं विशङ्कसे ॥३२॥
स्त्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेन गुरुवाक्ये व्यवस्थितम् । गमिष्ये यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने ॥३३॥
रक्षन्तु त्वां विशालाक्षि समग्रा वनदेवताः । निमित्तानि हि घोराणि यानि प्रादुर्भवन्ति मे ॥३४॥
अपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः ॥
लक्ष्मणेनैवमुक्ता सा रुदन्ती जनकात्मजा । प्रत्युवाच ततो वाक्यं तीव्रं बाष्पपरिप्लुता ॥३५॥
गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि विना रामेण लक्ष्मण । आबन्धिष्येऽथ वा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः॥३६॥
पिबाम्यहं विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । न त्वहं राघवादन्यं पदापि पुरुषं स्पृशे ॥३७॥
इति लक्ष्मणमाक्रुश्य सीता दुःखसमन्विता । पाणिभ्यां रुदती दुःखादुदरं प्रजघान ह ॥३८॥

समक्ष ही प्राणों को छोड़ दूँगी, इस में कोई सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ राम के विना मैं क्षण भर भी इस पृथ्वी पर नहीं जी सकूँगी । रोमाञ्चकारी सीता के इस प्रकार कठोर वचन को सुन कर जितेन्द्रिय लक्ष्मण हाथ जोड़ कर सीता से बोले । मैं आप की बातों का उत्तर नहीं दे सकता, क्योंकि आप मेरी देवता हैं ॥ २७,२८ ॥ हे सीते ! मर्यादा रहित इस प्रकार की अनुचित बातें कहना स्त्रियों के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं । क्यों कि संसार में स्त्रियों का स्वभाव प्रायः इसी प्रकार का देखा जाता है ॥ २९ ॥ प्रायः स्त्रियों में सहन शीलता आदि धर्मों का अभाव ही देखा जाता है । चञ्चल स्वभाव वाली, तीक्ष्ण विचार वाली तथा परस्पर भेदभाव को पैदा करने वाली स्त्रियाँ देखी जाती हैं । हे विदेह की राजकुमारी जानकी ! मैं इस प्रकार की बातों को सहन नहीं कर सकता ॥ ३० ॥ जो सन्तप्त बाण के समान आज मेरे दोनों कानों का भेदन कर रही है । इस वन के सहचारी सभी ऋषि, मुनि, देव गण मेरी इन बातों को साक्षी के रूप में सुनें ॥ ३१ ॥ न्यायपूर्वक हितवाली बातें कहने वाले मेरे प्रति तुम ने इस प्रकार का कठोर वचन कहा है । विनाश के पथ का प्रदर्शन करने वाली इन बातों को धिक्कार है जिन का आश्रय लेकर आप मेरे प्रति इस प्रकार आशंका कर रही हैं ॥ ३२ ॥ स्त्रीत्व स्वभाव में आकर ही आप ने दुर्भावना का परिचय दिया है जो अपने बड़े की आज्ञा पालन करने वाले मुझ पर इस प्रकार सन्देह किया है । हे तपस्विनि ! अब मैं जहाँ रामचन्द्र हैं वहाँ जाता हूँ , तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३३ ॥ हे विशालाक्षि ! इस वन के सम्पूर्ण देवता तुम्हारी रक्षा करें । इस वन में इस समय अत्यन्त भयानक अपशकुन हो रहे हैं । भाई रामचन्द्र के साथ लौट कर पुनः आप का दर्शन करूँ, यह मेरी शुभ कामना है ॥ ३४ ॥ लक्ष्मण के ऐसा कहने पर आँखों में आँसू भर कर रोती हुई सीता इस प्रकार बोली ॥ ३५ ॥ हे लक्ष्मण ! रामचन्द्र के विना मैं गोदावरी नदी में डूब कर प्राण त्याग दूँगी अथवा गले में बन्धन लगाकर या ऊँचे स्थान से कूद कर प्राण त्याग दूँगी ॥ ३६ ॥ हलाहल विष का पान कर लूँगी अथवा अग्नि में प्रवेश कर प्राण त्याग दूँगी किन्तु रामचन्द्र के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष का स्पर्श नहीं करूँगी ॥ ३७ ॥ शोक परिपूर्ण सीता लक्ष्मण को इन शब्दों में कोस कर (भर्त्सना करके) दुःखी होती हुई अपने हाथों से वक्षस्थल को पीटने लगी ॥ ३८ ॥ रोती हुई विशाल नेत्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तामार्तरूपां विमना रुदन्तीं सौमित्रिरालोक्य विशालनेत्राम् ।
आश्वासयामास न चैव भर्तुस्तं भ्रातरं किंचिदुवाच सीता ॥३९॥
ततस्तु सीतामभिवाद्य लक्ष्मणः कृताञ्जलिः किंचिदभिप्रणम्य च ।
अन्वीक्षमाणो बहुशश्च मैथिलीं जगाम रामस्य समीपमात्मवान् ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सीतापारुष्यं नाम पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः

रावणभिक्षुसत्कारः

तथा परुषमुक्तस्तु कुपितो राघवानुजः । स विकाङ्क्षन् भृशं रामं प्रतस्थे न चिरादिव ॥ १ ॥
तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः । अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृत् ॥ २ ॥
श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही । वामे चांसेऽवसज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू ॥ ३ ॥
परिव्राजकरूपेण वैदेहीमन्वपद्यत । तामाससादातिबलो भ्रातृभ्यां रहितां वने ॥ ४ ॥
रहितां चन्द्रसूर्याभ्यां सन्ध्यामिव महत्तमः । तामपश्यत्ततो बालां रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥ ५ ॥

वाली दुःखी सीता को देखकर लक्ष्मण ने उन्हें आश्वासन दिया, किन्तु अपने पति के भाई (देवर) लक्ष्मण से सीता ने कुछ नहीं कहा ॥ ३९ ॥ पश्चात् कुछ झुक कर हाथ जोड़ते हुए लक्ष्मण ने सीता को प्रणाम किया। तदनन्तर जानकी की ओर बार-बार देखते हुए लक्ष्मण ने राम के समीप प्रस्थान किया॥४०॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'सीता की फटकार' विषयक पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४५॥

छियालीसवाँ सर्ग

रावणभिक्षु का सत्कार

सीता के इन कठोर वचनों को सुन कर कुपित हुए लक्ष्मण रामचन्द्र के पास शीघ्र पहुँचने की आकांक्षा रखते हुए शीघ्र ही वहाँ से चल पड़े ॥ १ ॥ लक्ष्मण के चले जाने पर संन्यासी का रूप धारण कर के रावण शीघ्र ही जानकी के आश्रम में आया ॥ २ ॥ स्वच्छ काषायवस्त्र धारी, जटी, छत्र तथा जूता धारण किये हुए, बायें कन्धे पर दण्ड और कमण्डलु को धारण किये हुए रावण उपस्थित हुआ ॥ ३ ॥ इस प्रकार रामलक्ष्मण से रहित उस वन वाले आश्रम में अति बलवान् रावण परिव्राजक के रूप में सीता के पास उपस्थित हुआ ॥ ४ ॥ सन्ध्या के समय सूर्य-चन्द्र से हीन जैसे महान् अन्धकार उपस्थित होता है उसी प्रकार यशस्विनी सीता के समीप रावण उपस्थित हुआ ॥ ५ ॥ चन्द्र से हीन जैसे रोहिणी नक्षत्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रोहिणीं शशिना हीनां ग्रहवद्गृशदारुणः । तमुग्रतेजः कर्माणं जनस्थानरुहा द्रुमाः ॥ ६ ॥
समीक्ष्य न प्रकम्पन्ते न प्रवाति च मारुतः । शीघ्रस्रोताश्च तं दृष्ट्वा वीक्षन्तं रक्तलोचनम् ॥ ७ ॥
स्तिमितं गन्तुमारेभे भयाद्गोदावरी नदी । रामस्य त्वन्तरं प्रेप्सुर्दशग्रीवस्तदन्तरे ॥ ८ ॥
उपतस्थे च वैदेहीं भिक्षुरूपेण रावणः । अभव्यो भव्यरूपेण भर्तारमनुशोचतीम् ॥ ९ ॥
अभ्यवर्तत वैदेहीं चित्रामिव शनैश्चरः । स पापो भव्यरूपेण तृणैः कूप इवावृतः ॥१०॥
अतिष्ठत्प्रेक्ष्य वैदेहीं रामपत्नीं यशस्विनीम् । तिष्ठन् संप्रेक्ष्य च तदा पत्नीं रामस्य रावणः ॥११॥
शुभां रुचिरदन्तोष्ठीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् । आसीनां पर्णशालायां बाष्पशोकाभिपीडिताम् ॥१२॥
स तां पद्मपलाशाक्षीं पीतकौशेयवासिनीम् । अभ्यगच्छत वैदेहीं हृष्टचेता निशाचरः ॥१३॥
स मन्मथशराविष्टो ब्रह्मघोषमुदीरयन् । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपः ॥१४॥
तामुत्तमां त्रिलोकानां पद्महीनामिव श्रियम् । विभ्राजमानां वपुषा रावणः प्रशशंस ह ॥१५॥
का त्वं काञ्चनवर्णाभे पीतकौशेयवासिनि । कमलानां शुभां मालां पद्मिनीव हि बिभ्रती ॥१६॥
ह्रीः श्रीः कीर्तिः शुभा लक्ष्मीरप्सरा वा शुभानने । भूतिर्वा त्वं वरारोहे रतिर्वा स्वैरचारिणी ॥१७॥
समाः शिखरिणः स्निग्धाः पाण्डरा दशनास्तव । विशाले विमले नेत्रे रक्तान्ते कृष्णतारके ॥१८॥

को दारुण शनि और मंगल ग्रह देखते हैं उसी प्रकार रावण ने सीता को देखा। उस भयङ्कर पातकी रावण को देख कर जनस्थान के वृक्ष भी कम्पन रहित हो गये। वायु का वेग भी अवरुद्ध हो गया। लाल नेत्र वाले रावण को देख कर शीघ्रता पूर्वक बहने वाली ॥ ६, ७ ॥ वह गोदावरी नदी भी भय पूर्वक मन्थर गति से बहने लगी (मानो रावण के आतङ्क से उस वनस्थली के जड़-चेतन वर्ग भी प्रभावित हो गये हैं)। राम की अनुपस्थिति चाहने वाला रावण अवसर पा कर उस समय ॥ ८॥ अभव्य होता हुआ भी भव्य रूप में भिक्षु रूपधारी वह पति के लिये शोक करती हुई सीता के समीप उपस्थित हुआ ॥ ९ ॥ जैसे गगनचारी शनि चित्रा नक्षत्र के प्रति गमन करता है, वैसे ही तृणों से आच्छादित कूप के समान सहसा भव्य रूप में जानकी के समक्ष उपस्थित हुआ ॥ १० ॥ उस समय रावण रामचन्द्र की यशस्विनी धर्मपत्नी सीता को देखता हुआ उस के समक्ष उपस्थित हुआ ॥ ११ ॥ शुभाङ्गी, कमनीय दांत और ओठों वाली, पूर्णचन्द्रवदनी, अश्रु तथा शोक से परिपूर्ण, पर्णकुटी में बैठी हुई ॥ १२ ॥ पीताम्बर धारण करने वाली, कमलनयनी सीता के समीप प्रसन्नचित्त रावण उपस्थित हुआ ॥ १३ ॥ काम शर पीडित राक्षसराज रावण सीता को देख कर वेदमन्त्रों का उच्चारण करता हुआ एकान्त आश्रम में विनय पूर्वक यह बोला ॥ १४ ॥ अपनी शारीरिक कमनीय कान्ति से प्रकाशित होने वाली कमलहीन कमला के समान त्रिलोकी में अति प्रशंसनीय सीता की प्रशंसा रावण करने लगा ॥ १५ ॥ तप्त काञ्चन के समान वर्ण वाली, पीताम्बर धारण करने वाली, उत्तम कमलों की माला धारण करने वाली, लक्ष्मी के समान कान्ति वाली ॥ १६ ॥ ह्री, श्री, कीर्ति, शुभ लक्ष्मी अथवा अप्सरा, भूति इन में से हे शुभानने ! तुम कौन हो। हे कमनीय कान्ति वाली ! तुम ऋद्धि, सिद्धि अथवा स्वच्छन्द विहार करने वाली विषमबाण काम की स्त्री रति तो नहीं हो ॥ १७ ॥ श्वेत चमकीले तथा नोक वाले एक समान तुम्हारे दांतों की पंक्ति है। कुछ लाल वर्ण वाले, काली तारिकाओं वाले, विशाल तुम्हारे नेत्र हैं ॥ १८ ॥ तुम्हारा जघन लम्बा तथा स्थूल है। तुम्हारे ऊरुद्वय हाथी के सूंड

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशालं जघनं पीनमूरू करिकरोपमौ । एतावुपचितौ वृत्तौ संहतौ संप्रवल्गितौ ॥१९॥
पीनोन्नतमुखौ कान्तौ स्निग्धौ तालफलोपमौ । मणिप्रवेकाभरणौ रुचिरौ ते पयोधरौ ॥२०॥
चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि । मनो हरसि मे कान्ते नदी कूलमिवाम्भसा ॥२१॥
करान्तमितमध्यासि सुकेशी संहतस्तनी । नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी ॥२२॥
नैवंरूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले । रूपमग्र्यं च लोकेषु सौकुमार्यं वयश्च ते ॥२३॥
इह वासश्च कान्तारे चित्तमुन्मादयन्ति मे । सा प्रतिक्राम भद्रं ते न त्वं वस्तुमिहार्हसि ॥२४॥
राक्षसानामयं वासो घोराणां कामरूपिणाम् । प्रासादाग्राणि रम्याणि नगरोपवनानि च ॥२५॥
संपन्नानि सुगन्धीनि युक्तान्याचरितुं त्वया । वरं माल्यं वरं भोज्यं वरं वस्त्रं च शोभने ॥२६॥
भर्तारं च वरं मन्ये त्वद्युक्तमसितेक्षणे । का त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां वा वरानने ॥२७॥
वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासि मे । नेहागच्छन्ति गन्धर्वा न देवा न च किंनराः ॥२८॥
राक्षसानामयं वासः कथं नु त्वमिहागता । इह शाखामृगाः सिंहा द्वीपिव्याघ्रमृगास्तथा ॥२९॥
ऋक्षास्तरक्षवः कङ्काः कथं तेभ्यो न बिभ्यसि । मदान्वितानां घोराणां कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥३०॥
कथमेका महारण्ये न बिभेषि वरानने । कासि कस्य कुतश्च त्वं किंनिमित्तं च दण्डकान् ॥३१॥

के समान हैं। उन्नत, परस्पर मिले हुए, वर्त्तुलाकार (गोल), कठोर तथा विशाल, कमनीय कान्ति वाले, मनोहारी, ताल फल के समान, कुछ कम्पन करने वाले, रुचिर आभरणों से आभूषित ये तुम्हारे स्तनद्वय हैं ॥ १९, २० ॥ हे विलास प्रिये ! तुम्हारा यह कमनीय हास्य, रमणीय दन्तपंक्ति, मनोहारी नेत्र, नदी जल के वेग से तट के समान मेरे मन को हरण कर रहा है ॥ २१ ॥ मुष्टिमेय कटि वाली, तुम्हारे केश तथा मिले हुए स्तनद्वय अति रमणीय है। देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों और किन्नरों में इस पृथ्वी तल पर मैंने तुम्हारे समान नारी नहीं देखी। संसार में तुम्हारा अप्रतिम सौन्दर्य, सौकुमार्य तथा यह तरुण अवस्था, इस प्रकार के भीषण वन में तुम्हारा निवास मेरे चित्त को व्यग्र कर रहा है। इस लिये हे देवि ! तुम यहाँ से चली जाओ। तुम्हारा यहाँ निवास अच्छा नहीं ॥ २२-२४ ॥ भयङ्कर कर्म करने वाले स्वेच्छाचारी राक्षसों का यह निवास स्थान है। गगन चुम्बी अट्टालिकाओं में, रमणीय उपवनों तथा नगरों में ॥ २५ ॥ हे शोभन कान्ति वाली ! सर्व प्रकार से सुगन्धि आदि से परिपूर्ण स्थानों में तुम्हें निवास करना चाहिये। हे कमल नयने ! उत्तम माला, उत्तम गन्ध, भव्य वस्त्र तथा सर्वगुण सम्पन्न कमनीय कान्ति वाले पति से युक्त तुम्हें होना चाहिये। तुम को प्राप्त करने वाले पति को मैं श्रेष्ठ समझता हूं। हे सुमुखी ! तुम रुद्रों में तथा मरुतों में से कौन हो ॥ २६, २७ ॥ हे महान् कुल में उत्पन्न होने वाली देवि ! मरुत्, रुद्र, वसु आदि में उत्पन्न होने वाली तुम कोई देवता प्रतीत हो रही हो। यहाँ पर देव, गन्धर्व, किन्नरों का आगमन नहीं होता ॥ २८ ॥ यह तो राक्षसों के रहने का स्थान है, तुम यहाँ कैसे चली आई हो। इस वन में वानर, सिंह, हाथी, बाघ, मृग, भेड़िया ॥ २९ ॥ भालू, चीता, चील वास करते हैं। तुम उन से क्यों नहीं डरती हो। मदोन्मत्त, घोर आकृति वाले, वेग पूर्वक दौड़ने वाले हाथियों से परिपूर्ण इस महावन में तुम अकेली क्यों नहीं डरती हो। तुम कौन हो, किस की हो, कहाँ से आई हो, किस कारण से तुम्हारा दण्डक वन में प्रवेश हुआ है। ॥ ३०, ३१ ॥ हे कल्याणि ! राक्षसों से परिपूर्ण इस भयङ्कर वन में तुम अकेली क्यों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एका चरसि कल्याणि घोरान् राक्षससेवितान् । इति प्रशस्ता वैदेही रावणेन दुरात्मना ॥३२॥
द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम् । सर्वैरतिथिसत्कारैः पूजयामास मैथिली ॥३३॥
उपनीयासनं पूर्वं पाद्येनाभिनिमन्त्र्य च । अब्रवीत्सिद्धमित्येव तदा तं सौम्यदर्शनम् ॥३४॥
द्विजातिवेषेण समीक्ष्य मैथिली समागतं पात्रकुसुम्भधारिणम् ।
अशक्यमुद्वेष्टुमुपायदर्शनान्न्यमन्त्रद्ब्राह्मणवत्तदाङ्गना ॥ ३५ ॥
इयं वृसी ब्राह्मण काममास्यतामिदं च पाद्यं प्रतिगृह्यतामिति ।
इदं च सिद्धं वनजातमुत्तमं त्वदर्थमव्यग्रमिहोपभुज्यताम् ॥३६॥
निमन्त्र्यमाणः प्रतिपूर्णभाषिणीं नरेन्द्रपत्नीं प्रसमीक्ष्य मैथिलीम् ।
प्रसह्य तस्या हरणे धृतं मनः समार्पयत्स्वात्मवधाय रावणः ॥३७॥
ततः सुवेषं मृगयागतं पतिं प्रतीक्षमाणा सहलक्ष्मणं तदा ।
विवीक्षमाणा हरितं ददर्श तन्महद्वनं नैव तु रामलक्ष्मणौ ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे रावणभिक्षुसत्कारो नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः

रावणाधिक्षेपः

रावणेन तु वैदेही तथा पृष्टा जिहीर्षता । परिव्राजकलिङ्गेन शशंसात्मानमङ्गना ॥ १ ॥

निवास करती हो। दुरात्मा रावण के इस प्रकार प्रशंसा करने पर विदेह राजकुमारी सीता ने संन्यासी के रूप में आये हुए उस रावण को देख कर सम्पूर्ण अतिथि सत्कार से युक्त उस को पूजा की ॥ ३२, ३३ ॥ पहले आसन दे कर, पश्चात् पगप्रक्षालन के लिये जल दिया। पश्चात् साधु के वेश में सौम्य दर्शन वाले रावण से भोजन के लिये निवेदन किया ॥ ३४ ॥ काषाय वस्त्र तथा कमण्डलु को धारण कर संन्यासी के वेश में आने वाले उस रावण को देख कर, इस का किसी प्रकार भी तिरस्कार नहीं करना चाहिये, यह सोचकर सीता ने उस का ब्राह्मण के समान सत्कार किया ॥ ३५ ॥ हे भूदेव! यह आसन है, इस पर स्वतन्त्रता पूर्वक बैठिये। यह पैर धोने का जल है, इसको लीजिये। वन में उत्पन्न होने वाला यह उत्तम भोजन आप के लिये उपस्थित है। आप निर्भय हो कर भोजन कीजिये ॥ ३६ ॥ इस प्रकार निमन्त्रित करने पर रावण ने प्रेम से भाषण करने वाली रामचन्द्र की धर्मपत्नी सीता को देख कर उस का हरण करने के लिये आत्मघात रूपी विचार अपने मन में किया ॥ ३७ ॥ मृगया के लिये गये हुए सुवेषधारी अपने पति तथा देवर की प्रतीक्षा करती हुई उस सीता ने इधर उधर हरियाली पूर्ण वन को देखा, किन्तु राम लक्ष्मण को नहीं देखा ॥३८॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'रावणभिक्षु का सत्कार' विषयक छियालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥४६॥

सैंतालीसवां सर्ग

रावण की भर्त्सना

जानकी के हरण की इच्छा रखने वाले परिव्राजक रूपधारी रावण के ऐसा पूछने पर सीता ने अपना परिचय इस प्रकार दिया ॥ १ ॥ उत्तर देने के पूर्व, यह ब्राह्मण है और प्रिय अतिथि है, यदि मैं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्राह्मणश्चातिथिश्चायमनुक्तो हि शपेत माम् । इति ध्यात्वा मुहूर्तं तु सीता वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥
दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः । सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामस्य महिषी प्रिया ॥ ३ ॥
[उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने । भुञ्जाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी ॥ ४ ॥
ततस्त्रयोदशे वर्षे राजामन्त्रयत प्रभुः ।] अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमन्त्रिभिः ॥ ५ ॥
तस्मिन् संभ्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने । कैकेयी नाम भर्तारमार्या सा याचते वरम् ॥ ६ ॥
प्रतिगृह्य तु कैकेयी श्वशुरं सुकृतेन मे । मम प्रव्राजनं भर्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ॥ ७ ॥
द्वावयाचत भर्तारं सत्यसन्धं नृपोत्तमम् । नाद्य भोक्ष्ये न च स्वप्स्ये न च पास्ये कथंचन ॥ ८ ॥
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते । इति ब्रुवाणां कैकेयीं श्वशुरो मे स मानदः ॥ ९ ॥
अयाचतार्थैरन्वर्थैर्न च याच्ञां चकार सा । मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः ॥१०॥
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते । रामेति प्रथितो लोके गुणवान् सत्यवाञ्शुचिः ॥११॥
विशालाक्षो महाबाहुः सर्वभूतहिते रतः । कामार्तस्तु महातेजाः पिता दशरथः स्वयम् ॥१२॥
कैकेय्याः प्रियकामार्थं तं रामं नाभ्यषेचयत् । अभिषेकाय तु पितुः समीपं राममागतम् ॥१३॥
कैकेयी मम भर्तारमित्युवाच धृतं वचः । तव पित्रा समाज्ञप्तं ममेदं शृणु राघव ॥१४॥
भरताय प्रदातव्यमिदं राज्यमकण्टकम् । त्वया हि खलु वस्तव्यं नव वर्षाणि पञ्च च ॥१५॥

इस की बातों का उत्तर नहीं देती हूँ तो सम्भव है कि यह मुझे शाप दे दे, कुछ देर इस पर विचार कर के पुनः जानकी बोली ॥ २ ॥ मैं मिथिला देश के महात्मा सम्राट् जनक की पुत्री हूं, मेरा नाम सीता है और मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र की प्रिय पत्नी हूं ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकुवंशी राजभवन में मैंने १२ वर्ष रह कर मनुष्य सुलभ सम्पूर्ण भोगों को भोगते हुए अपने मनोरथ को पूर्ण किया ॥ ४ ॥ तेरहवें वर्ष के आरम्भ में सम्पूर्ण मन्त्रि मण्डल के साथ विचार कर के महाराज ने मेरे पति रामचन्द्र के राजतिलक का निश्चय किया ॥ ५ ॥ जिस समय मेरे पति रामचन्द्र के राजतिलक की तैयारी हो रही थी, उसी समय कनिष्ठ सास कैकेयी ने अपने पति से यह वर मांगा ॥ ६ ॥ मेरी सास महारानी कैकेयी ने सत्य प्रतिज्ञा रूपी बन्धन में बांध कर मेरे पति रामचन्द्र के दण्डकारण्य वास तथा भरत के राज्याभिषेक को मांगा ॥ ७ ॥ सत्यव्रती अपने पति राजा दशरथ से ये दो वर मांगते हुए कैकेयी ने कहा—न तो मैं खाऊँगी न पीऊंगी और न सोऊँगी ॥ ८ ॥ बल्कि मेरे जीवन का यह अन्त ही समझो, यदि रामचन्द्र का राजतिलक हो गया। कैकेयी के इस प्रकार कहने पर मेरे ससुर दशरथ ने ॥ ९ ॥ बहुत सी सम्पत्ति आदि के द्वारा राम के वनवास वाले वरदान को परिवर्त्तित करने की चेष्टा की, किन्तु कैकेयी ने अपने पति राजा दशरथ की इस प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। महातेजस्वी मेरे पति उस समय २५ वर्ष के थे ॥ १० ॥ मेरी अवस्था भी उस समय अट्ठारह वर्ष की थी। संसार में सत्यवादी, चरित्रवान् तथा पवित्र विचार वाले मेरे पति रामचन्द्र प्रसिद्ध हैं ॥ ११ ॥ मेरे पति रामचन्द्र विशाल नेत्र, लम्बी भुजा वाले, सम्पूर्ण प्राणियों के कल्याण में सदा संलग्न रहते हैं। कामासक्त पिता स्वयं महाराज दशरथ ने ॥ १२ ॥ कैकेयी की प्रिय कामना के लिये पूर्व घोषित भी रामचन्द्र का अभिषेक नहीं किया। जिस समय मेरे पति अभिषेक के लिये राजा दशरथ के समीप आये ॥ १३ ॥ तो मेरी सास कैकेयी ने शीघ्रता पूर्वक मेरे पति से यह वचन कहा—तुम्हारे पिता के आदेश से जो कुछ मुझे कहना है, उसे कह रही हूँ। हे रामचन्द्र ! तुम मेरी बात को सुनो ॥ १४ ॥ यह निष्कण्टक राज्य राजकुमार भरत को दे दिया जाय और तुम्हें नौ-पांच (चौदह) वर्ष वन में वास करना चाहिये ॥ १५ ॥ दण्डकारण्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वने प्रव्रज काकुत्स्थ पितरं मोचयानृतात् । तथेत्युक्त्वा च तां रामः कैकेयीमकुतोभयः ॥१६॥
चकार तद्वचस्तस्या मम भर्ता दृढव्रतः । दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात्सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् ॥१७॥
एतद्ब्राह्मण रामस्य व्रतं धृतमनुत्तमम् । तस्य भ्राता तु वैमात्रो लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥१८॥
रामस्य पुरुषव्याघ्रः सहायः समरेऽरिहा । स भ्राता लक्ष्मणो नाम धर्मचारी दृढव्रतः ॥१९॥
अन्वगच्छद्धनुष्पाणिः प्रव्रजन्तं मया सह । जटी तापसरूपेण मया सह सहानुजः ॥२०॥
प्रविष्टो दण्डकारण्यं धर्मनित्यो जितेन्द्रियः । ते वयं प्रच्युता राज्यात्कैकेय्यास्तु कृते त्रयः ॥२१॥
विचराम द्विजश्रेष्ठ वनं गम्भीरमोजसा । समाश्वस मुहूर्तं तु शक्यं वस्तुमिह त्वया ॥२२॥
आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम् । कन्दमूल फलं पुष्पं यच्चान्यत् मधुरं प्रियम् ॥२३॥
स त्वं नाम च गोत्रं च कुलं चाचक्ष्व तत्त्वतः । एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज ॥२४॥
एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां रामपत्न्यां महाबलः । प्रत्युवाचोत्तरं तीव्रं रावणो राक्षसाधिपः ॥२५॥
येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरमानुषाः । अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः ॥२६॥
त्वां तु काञ्चनवर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम् । रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्यनिन्दिते ॥२७॥
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः । सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव ॥२८॥
लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी । सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि ॥२९॥

में वास कर के अपने पिता को प्रतिज्ञारूपी ऋण से मुक्त करो। निर्भय रामचन्द्र ने, ऐसा ही होगा, ऐसा कह कर कैकेयी की बात को स्वीकार कर लिया ॥ १६ ॥ दृढव्रती मेरे पति ने कैकेयी की बात सुन कर उसे स्वीकार कर लिया। मेरे पति रामचन्द्र दान देते हैं किन्तु लेते नहीं, सत्य भाषण करते हैं असत्य कभी नहीं बोलते ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण ! मेरे पति रामचन्द्र ने यही दृढव्रत धारण किया है। रामचन्द्र के वैमात्र लक्ष्मण नामक महाबली एक भाई हैं ॥ १८ ॥ वह नरकेसरी लक्ष्मण युद्ध में राम के परम सहायक हैं। रामचन्द्र के भाई वे लक्ष्मण ब्रह्मचारी तथा दृढव्रती हैं ॥ १९ ॥ जटा-वल्कल धारी तपस्वी के रूप में मेरे साथ वनगमन करने के समय धनुष को धारण करते हुए लक्ष्मण ने भी तपस्वी के रूप में अपने भाई का अनुगमन किया ॥ २० ॥ दृढव्रती, धर्मप्रेमी लक्ष्मण भी इस प्रकार दण्डक वन में प्रविष्ट हुआ। इस लिये कैकेयी के कारण हम तीनों राज्य से भ्रष्ट हो कर वनवासी बनाये गये ॥ २१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस सघन वन में हम लोग अपने ओज तथा पराक्रम से विचरण करते हैं। यदि आप विश्राम करना चाहें तो थोड़ी देर यहाँ ठहरें ॥ २२ ॥ मेरे पतिदेव वन में होने वाले कन्द, मूल, फल, पुष्प तथा अन्य स्वादु पुष्कल सामग्री को ले कर आवेंगे ॥ २३ ॥ आप अपने नाम, कुल, गोत्र का स्पष्ट वर्णन कीजिये। हे ब्राह्मण ! इस वन में आप अकेले किस प्रयोजन से घूम रहे हैं ॥ २४ ॥ रामचन्द्र की धर्मपत्नी सीता के ऐसा पूछने पर महाबली राक्षसराज रावण ने कठोर शब्दों में इस प्रकार उत्तर दिया ॥ २५ ॥ हे सीते ! जिस ने देव, असुर और मनुष्यों को आतङ्कित कर रखा है, मैं वही राक्षसों का राजा रावण हूं ॥ २६ ॥ पीताम्बर धारण करने वाली, काञ्चन के समान गौरवर्णा तुम को देख कर हे अनिन्दित सीते ! अब मुझे अपनी स्त्रियाँ रमणीय प्रतीत नहीं हो रही हैं ॥२७॥ इधर उधर से अपहरण कर के लाई हुई बहुत सी जो मेरी उत्तम स्त्रियाँ हैं, तुम उन सभी में पट्टरानी बन जाओ ॥ २८ ॥ चतुर्दिक् समुद्र से घिरी हुई समुद्र के मध्य पर्वत की चोटी पर लंका नाम की मेरी राजधानी है ॥ २९ ॥ हे सीते ! वहाँ मेरे साथ वनों में तुम विचरण करना। हे भामिनि ! मैं तुम्हारा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्र सीते मया सार्धं वनेषु विहरिष्यसि । न चास्य वनवासस्य स्पृहयिष्यसि भामिनि ॥३०॥
पञ्च दास्यः सहस्राणि सर्वाभरणभूषिताः । सीते परिचरिष्यन्ति भार्या भवसि मे यदि ॥३१॥
रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा । प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम् ॥३२॥
महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम् । महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ॥३३॥
सर्वलक्षणसंपन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । सत्यसन्धं महाभागमहं राममनुव्रता ॥३४॥
महाबाहुं महोरस्कं सिंहविक्रान्तगामिनम् । नृसिंहं सिंहसंकाशमहं राममनुव्रता ॥३५॥
पूर्णचन्द्राननं रामं राजवत्सं जितेन्द्रियम् । पृथुकीर्तिं महात्मानमहं राममनुव्रता ॥३६॥
त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिच्छसि सुदुर्लभाम् । नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥३७॥
पादपान् काञ्चनान्नूनं बहून् पश्यसि मन्दभाक् । राघवस्य प्रियां भार्यां यस्त्वमिच्छसि रावण ॥३८॥
क्षुधितस्य हि सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः । आशीविषस्य वदनाद्दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥३९॥
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि । कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान् गन्तुमिच्छसि ॥४०॥
अक्षि सूच्या प्रमृजसि जिह्वया लेढि च क्षुरम् । राघवस्य प्रियां भार्यां योऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥४१॥
अवसज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि । सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि ॥४२॥
यो रामस्य प्रियां भार्यां प्रधर्षयितुमिच्छसि । अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ॥४३॥

इस प्रकार का वनवास पसन्द नहीं करता ॥ ३० ॥ हे सीते ! यदि तुम मेरी स्त्री हो जाओ, तो सम्पूर्ण आभूषणों से आभूषित मेरी पाँच हजार दासियां तुम्हारी सेवा करेंगी ॥३१॥ रावण के इस प्रकार निवेदन करने पर अनिन्दित अंग वाली सीता अत्यन्त कुपित हो गई और रावण का अनादर करती हुई बोली॥३२॥ महान् पर्वत के समान निष्कम्प, विशाल समुद्र के समान अक्षोभ्य, इन्द्र के समान अपने पति रामचन्द्र की मैं अनुगामिनी हूँ ॥ ३३ ॥ सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त, वटवृक्ष के समान अपने आश्रितों की रक्षा करने वाले सत्यव्रती, महातपस्वी अपने पति रामचन्द्र की मैं अनुगामिनी हूं ॥ ३४ ॥ विशाल भुजा वाले, विशाल वक्षःस्थल वाले, सिंह के समान गमन करने वाले तथा सिंह के समान ही पराक्रम करने वाले नरकेसरी अपने पति रामचन्द्र की मैं अनुगमन करने वाली हूं ॥ ३५ ॥ पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले, जितेन्द्रिय, विस्तृत कीर्ति वाले तथा विशाल भुजा वाले राजकुमार रामचन्द्र की मैं आज्ञाकारिणी धर्मपत्नी हूँ ॥३६॥ तू गीदड़ दुर्लभ मुझ सिंहनी को प्राप्त नहीं कर सकता । सूर्य की प्रभा की तरह तू मेरा स्पर्श भी नहीं कर सकता ॥ ३७ ॥ हे राक्षसराज रावण ! रामचन्द्र की प्राणप्रिय भार्या की जो तुम इच्छा कर रहे हो, वह तुम्हारे अभागेपन का सूचक है और मानो बहुत से काञ्चन वृक्षों को तुम देख रहे हो [यह किंवदन्ती है कि स्वप्न या जाग्रत अवस्था में काञ्चन वृक्षों का देखना अमंगल सूचक होता है] ॥ ३८ ॥ भूखे मृगराज सिंह के मुख से तथा भयंकर विष वमन करने वाले सर्प के मुख से तुम उनकी दन्तपंक्ति तोड़ना चाहते हो ॥ ३९ ॥ पर्वत श्रेष्ठ मन्दराचल को तुम अपनी भुजाओं से उठाना चाहते हो या कालकूट (हलाहल) विष पान करके तुम कुशल पूर्वक लौट जाना चाहते हो ॥ ४० ॥ अपनी आँखों को तुम सूई के अग्रभाग से खुजलाना चाहते हो । तेज छुरे की धार को जिह्वा से चाटना चाहते हो जो रामचन्द्र की प्राणप्रिय भार्या को इस प्रकार अपहरण करना चाहते हो ॥ ४१ ॥ गले में पाषाण शिला को बांध कर तुम समुद्र में तैरना चाहते हो । सूर्यचन्द्र को मानो अपने हाथों से पकड़ना चाहते हो ॥ ४२ ॥ जो रामचन्द्र की प्राणप्रिय भार्या को हठात् अपहरण करना चाहते हो । इस का अर्थ यह है कि प्रज्वलित अग्नि को अपने वस्त्र में बाँध कर ले जाना चाहते हो ॥ ४३ ॥ पवित्र आचरण करने वाली रामचन्द्र की प्राणप्रिय भार्या का जो अपहरण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कल्याणवृत्तां रामस्य यो भार्यां हर्तुमिच्छसि । अयोमुखानां शूलानां मध्ये चरितुमिच्छसि ॥४४॥
रामस्य सदृशीं भार्यां योऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥

यदन्तरं सिंहशृगालयोर्वने यदन्तरं स्यन्दिनिकासमुद्रयोः ।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरं तदन्तरं वै तव राघवस्य च ॥४५॥
यदन्तरं काञ्चनसीसलोहयोर्यदन्तरं चन्दनवारिपङ्कयोः ।
यदन्तरं हस्तिविडालयोर्वने तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥४६॥
यदन्तरं वायसवैनतेययोर्यदन्तरं मद्गुमयूरयोरपि ।
यदन्तरं सारसगृध्रयोर्वने तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥४७॥
तस्मिन् सहस्राक्षसमप्रभावे रामे स्थिते कार्मुकबाणपाणौ ।
हृतापि तेऽहं न जरां गमिष्ये आज्यं यथा मक्षिकयावगीर्णम् ॥४८॥
इतीव तद्वाक्यमदुष्टभावा सुधृष्टमुक्त्वा रजनीचरं तम् ।
गात्रप्रकम्पाद्व्यथिता बभूव वातोद्धता सा कदलीव तन्वी ॥४९॥
तां वेपमानामुपलक्ष्य सीतां स रावणो मृत्युसमप्रभावः ।
कुलं बलं नाम च कर्म च स्वं समाचचक्षे भयकारणार्थम् ॥५०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे रावणाधिक्षेपो नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र तिथि ..... क्रमांक ..... भारती पुस्तकालय

करना चाहते हो, वह लोहे के बने हुए तीक्ष्ण शूलों पर गमन करने के समान होगा। रामचन्द्र के अनुकूल वर्त्ताव करने वाली भार्या का अपहरण करना मानो इन पूर्वोक्त विपत्तियों का सामना करना है ॥ ४४ ॥ वन में सिंह और सियार में जो अन्तर है, एक नदी और समुद्र में जो अन्तर है, अमृत और कांजी में जो अन्तर है, उतना ही अन्तर तुम और रामचन्द्र में है ॥४५॥ जो अन्तर काञ्चन और जस्ते में है, जो अन्तर चन्दनयुक्त जल और कीचड़ में है तथा जो अन्तर वन में गजराज और बिल्ली में है, उतना ही अन्तर तुम और श्री रामचन्द्र में है ॥ ४६ ॥ जो अन्तर गरुड़ और कौवे में है, जो अन्तर मयूर और पनडुब्बी (जल काक) में है तथा जो अन्तर वन में हंस और गिद्ध में है, वही अन्तर तुम में और श्री रामचन्द्र में है ॥ ४७ ॥ हाथ में धनुष बाण लिये हुए, इन्द्र के समान प्रभाव वाले मेरे पति रामचन्द्र के होते हुए तुम मुझे हरण कर लेने पर भी मुझे उसी प्रकार नहीं पचा सकते जिस प्रकार निगले हुए घी को मक्खी नहीं पचा सकती ॥ ४८ ॥ इस प्रकार पवित्र विचार रखने वाली सीता उस राक्षसराज रावण के प्रति कटु शब्दों का प्रयोग कर के भय तथा रोषोत्पन्न शरीर कम्पन से इस प्रकार दुःखी हुई जैसे प्रबल पवन के वेग से हिलाई गई कदली वृक्ष की शाखा ॥ ४९ ॥ उस समय इस प्रकार सीता को काँपती हुई देख कर मृत्यु के समान भयङ्कर प्रभाव वाला रावण जानकी को आतङ्कित करने के लिये अपने कुल, बल, नाम तथा भयङ्कर क्रिया कलापों का वर्णन करने लगा ॥ ५० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'रावण की भर्त्सना' विषयक सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४७॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

रावणविकत्थनम्

एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां संरब्धः परुषं वचः । ललाटे भ्रुकुटीं कृत्वा रावणः प्रत्युवाच ह ॥ १ ॥
भ्राता वैश्रवणस्याहं सापत्नो वरवर्णिनि । रावणो नाम भद्रं ते दशग्रीवः प्रतापवान् ॥ २ ॥
यस्य देवाः सगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः । विद्रवन्ति भयाद्भीता मृत्योरिव सदा प्रजाः ॥ ३ ॥
येन वैश्रवणो भ्राता वैमात्रः कारणान्तरे । द्वन्द्वमासादितः क्रोधाद्रणे विक्रम्य निर्जितः ॥ ४ ॥
यद्भयार्तः परित्यज्य स्वमधिष्ठानमृद्धिमत् । कैलासं पर्वतश्रेष्ठमध्यास्ते नरवाहनः ॥ ५ ॥
यस्य तत्पुष्पकं नाम विमानं कामगं शुभम् । वीर्यादेवार्जितं भद्रे येन यामि विहायसम् ॥ ६ ॥
मम संजातरोषस्य मुखं दृष्ट्वैव मैथिली । विद्रवन्ति परित्रस्ताः सुराः शक्रपुरोगमाः ॥ ७ ॥
यत्र तिष्ठाम्यहं तत्र मारुतो वाति शङ्कितः । तीव्रांशुः शिशिरांशुश्च भयात्संपद्यते रविः ॥ ८ ॥
निष्कम्पपत्रास्तरवो नद्यश्च स्तिमितोदकाः । भवन्ति तत्र यत्राहं तिष्ठामि विचरामि च ॥ ९ ॥
मम पारे समुद्रस्य लङ्का नाम पुरी शुभा । संपूर्णा राक्षसैर्घोरैर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ १० ॥

अड़तालीसवां सर्ग

रावण की आत्म प्रशंसा

अपने प्रति इस प्रकार सीता के कठोर वचन के कहने पर क्रोधाविष्ट रावण भयङ्कर भृकुटि बना कर यह वचन बोला ॥ १ ॥ हे शोभन वर्ण वाली सीते ! मैं अलकापति कुबेर का सौतेला भाई हूँ। तुम्हारा कल्याण हो, मैं प्रतापी दशवदन (साङ्गोपाङ्ग वेद का विद्वान्) हूँ, मेरा नाम रावण है ॥ २ ॥ जिस के समक्ष पिशाच, देव, गन्धर्व, पक्षी, सर्प आदि सभी प्राणी वर्ग मृत्यु से डरी हुई प्रजा के समान सदा भयभीत होकर भाग जाया करते हैं ॥ ३ ॥ जिस ने किसी कारण अपने सौतेले भाई कुबेर के साथ द्वन्द्व युद्ध छिड़ जाने पर अपने विक्रम से उसे पराजित किया था ॥ ४ ॥ मेरे भय से दुःखी होकर जिस नरवाहन ने धनधान्य पूर्ण अपनी नगरी को छोड़ कर कैलास पर्वत का आश्रय ले लिया है ॥ ५ ॥ स्वेच्छानुसार चलने वाला जिसका पुष्पक विमान भी मैंने बलपूर्वक छीन लिया है, जिस के द्वारा मैं आकाश में गमन करता हूँ ॥ ६ । हे मिथिला की राजकुमारी ! क्रोधाविष्ट मेरे मुख को देखकर इन्द्र आदि देव भी त्रस्त हो कर दिशाओं में भाग जाते हैं ॥ ७ ॥ जहाँ मैं ठहरता हूँ, वहाँ वायु भी शङ्कित हो कर बहता है। आकाश में मेरे भय से सूर्य और चन्द्र भी आतङ्कित हो जाते हैं ॥ ८ ॥ जहाँ पर मैं रहता हूँ, वहाँ वृक्ष भी कम्पन हीन हो जाते हैं। नदियों की गति भी अवरुद्ध हो जाती है (अर्थात् मेरे आतङ्क से जड़-चेतन वर्ग सभी आतङ्कित रहते हैं) ॥ ९ ॥ समुद्र के पार मेरी लङ्का नामक शोभायमान नगरी है । सम्पूर्ण राक्षस योद्धाओं से वह नगरी उसी प्रकार भरी हुई है जिस प्रकार देवताओं से इन्द्र की अमरावती ॥ १० ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राकारेण परिक्षिप्ता पाण्डरेण विराजता । हेमकक्ष्या पुरी रम्या वैडूर्यमयतोरणा ॥११॥
हस्त्यश्वरथसंबाधा तूर्यनादविनादिता । सर्वकालफलैर्वृक्षैः संकुलोद्यानशोभिता ॥१२॥
तत्र त्वं वसती सीते राजपुत्रि मया सह । न स्मरिष्यसि नारीणां मानुषीणां मनस्विनि ॥१३॥
भुञ्जाना मानुषान् भोगान् दिव्यांश्च वरवर्णिनि । न स्मरिष्यसि रामस्य मानुषस्य गतायुषः ॥१४॥
स्थापयित्वा प्रियं पुत्रं राज्ये दशरथेन यः । मन्दवीर्यः सुतो ज्येष्ठस्ततः प्रस्थापितो वनम् ॥१५॥
तेन किं भ्रष्टराज्येन रामेण गतचेतसा । करिष्यसि विशालाक्षि तापसेन तपस्विना ॥१६॥
सर्वराक्षसभर्तारं कामय स्वयमागतम् । न मन्मथशराविष्टं प्रत्याख्यातुं त्वमर्हसि ॥१७॥
प्रत्याख्याय हि मां भीरु परितापं गमिष्यसि । चरणेनाभिहत्येव पुरूरवसमुर्वशी ॥१८॥
अङ्गुल्या न समो रामो मम युद्धे स मानुषः । तव भाग्येन संप्राप्तं भजस्व वरवर्णिनि ॥१९॥
एवमुक्ता तु वैदेही क्रुद्धा संरक्तलोचना । अब्रवीत्परुषं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपम् ॥२०॥
कथं वैश्रवणं देवं सर्वभूतनमस्कृतम् । भ्रातरं व्यपदिश्य त्वमशुभं कर्तुमिच्छसि ॥२१॥
अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः । येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥२२॥
अपहृत्य शचीं भार्यां शक्यमिन्द्रस्य जीवितुम् । न च रामस्य भार्यां मामपनीयास्ति जीवितम् ॥२३॥

जिस के चारों ओर सफेद चहार दीवारी है पुरी का आभ्यन्तर भाग स्वर्ण निर्मित है, जिस के बाहरी फाटक वैदूर्य मणि से निर्मित हैं । ॥ ११ ॥ गज, घोड़े और रथों की जहां निरन्तर भीड़ रहती है, सब प्रकार के बाजे सदा बजते रहते हैं । जहां का उद्यान सब ऋतु में फल देने वाले वृक्षों से सुभूषित हो रहा है ॥ १२ ॥ हे राजकुमारी सीते ! तुम वहां मेरे साथ निवास करो । हे मनस्विनी ! वहां निवास करने पर तुम्हें सामान्य स्त्रियों के भोग आदि का स्मरण नहीं होगा ॥ १३ ॥ हे शोभन वर्ण वाली सीते ! वहां मानवी तथा दिव्य भोगों का उपभोग करते हुए अल्पायु साधारण मनुष्य राम का तुम्हें स्मरण भी नहीं होगा ॥ १४ ॥ राजा दशरथ ने भरत को अपना प्रिय पुत्र समझ कर राजसिंहासन पर बैठाया । ज्येष्ठ होते हुए भी मन्द बुद्धि समझ कर राम को वनवास दे दिया ॥ १५ ॥ जो राज्य से वञ्चित हो चुका है, जिस की बुद्धि मन्द हो चुकी हैं, हे विशालाक्षि सीते ! उस क्लेश सहने वाले तपस्वी राम को ले कर तू क्या करेगी ॥ १६ ॥ स्वयं आये हुए सम्पूर्ण राक्षसों के स्वामी का तुम स्वागत करो । काम के बाणों से सन्तप्त मेरा परित्याग करना तुम्हें उचित नहीं ॥ १७ ॥ हे भीरु ! मेरा परित्याग करके तुम्हें उसी प्रकार पश्चात्ताप करना पड़ेगा, जैसे पुरूरवा पर चरण प्रहार कर के उर्वशी को पश्चात्ताप करना पड़ा था ॥ १८ ॥ संग्राम में राम मेरे सामने अंगुली के समान भी नहीं है । हे सुन्दरी ! मैं तुम्हारे भाग्य से ही यहां उपस्थित हुआ हूं । इस आगन्तुक का तुम स्वागत करो ॥ १९ ॥ रावण के इस प्रकार बातें कहने पर जानकी के नेत्र रक्तवर्ण हो गये तथा वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गई । राम-लक्ष्मण से शून्य उस आश्रम में राक्षसपति रावण को कटु शब्दों से फटकारा ॥ २० ॥ सम्पूर्ण देवों के नमस्करणीय कुबेर के भाई अपने को बताते हुए भी तुम इस प्रकार के निन्दनीय कर्म करने की इच्छा क्यों कर रहे हो ॥ २१ ॥ हे रावण ! उन सम्पूर्ण राक्षसों का अवश्यमेव विनाश होगा, अजितेन्द्रिय, दुर्बुद्धि तथा कर्कश स्वभाव वाले तुम जिसके राजा हो ॥ २२ ॥ इन्द्र की धर्मपत्नी का अपहरण करके कोई जीवित रह सकता है किन्तु रामचन्द्र की धर्मपत्नी मेरा अपहरण कर के कोई व्यक्ति भी सुख शान्ति पूर्वक जीवित नहीं रह सकता ॥ २३ ॥ अप्रतिम रूप वाली, वज्रधर की धर्मपत्नी शची का अपहरण करने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवेच्चिरं वज्रधरस्य हस्ताच्छचीं प्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ।
न मादृशीं राक्षस दूषयित्वा पीतामृतस्यापि तवास्ति मोक्षः ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे रावणविकत्थनं नाम अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः

सीतापहरणम्

सीताया वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् । हस्ते हस्तं समाहत्य चकार सुमहद्वपुः ॥ १ ॥
स मैथिलीं पुनर्वाक्यं बभाषे वाक्यकोविदः । नोन्मत्तया श्रुतौ मन्ये मम वीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥
उद्वहेयं भुजाभ्यां तु मेदिनीमम्बरे स्थितः । आपिबेयं समुद्रं च हन्यां मृत्युं रणे स्थितः ॥ ३ ॥
अर्कं रुन्ध्यां शरैस्तीक्ष्णैर्निर्भिन्द्यां हि महीतलम् । कामरूपिणमुन्मत्ते पश्य मां कामदं पतिम् ॥ ४ ॥
एवमुक्तवतस्तस्य रावणस्य शिखिप्रभे । क्रुद्धस्य हरिपर्यन्ते रक्ते नेत्रे बभूवतुः ॥ ५ ॥
सद्यः सौम्यं परित्यज्य भिक्षुरूपं स रावणः । स्वं रूपं कालरूपाभं भेजे वैश्रवणानुजः ॥ ६ ॥

वाला जीवित रह सकता है, किन्तु हे राक्षसराज ! मेरा अपमान कर के अमृत पान करने पर भी तुम अपना प्राण नहीं बचा सकोगे ॥ २४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'रावण की आत्मप्रशंसा' विषयक अड़तालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥

उनञ्चासवां सर्ग

सीता का अपहरण

सीता की इन बातों को सुन कर प्रतापी रावण ने हाथ से हाथ को ठोंक कर शरीर को विशाल बना लिया ॥ १ ॥ वाक्य विशारद रावण जानकी से पुनः इस प्रकार बोला—उन्मत्तता के कारण तुमने मेरे बल और पराक्रम की बात नहीं सुनी, मैं ऐसा समझता हूं ॥ २ ॥ आकाश में ठहर कर मैं अपनी दोनों भुजाओं से पृथ्वी को उठा सकता हूं, सम्पूर्ण समुद्रों को मैं पी सकता हूं । संग्राम में मैं मृत्यु को भी मार सकता हूं ॥ ३ ॥ अपने तीक्ष्ण बाणों से सूर्य को भी मैं व्यथित कर सकता हूं, इस पृथ्वी को भी मैं कई टुकड़े कर सकता हूं । हे उन्मत्ते ! काम रूप से स्वेच्छा पूर्वक रूप धारण करने वाले मुझ को तुम देखो ॥ ४ ॥ इस प्रकार की बातें करते हुए क्रुद्ध हुए रावण के दोनों नेत्र मयूर-पुच्छ के समान रक्त तथा हरित वर्ण के हो गये ॥ ५ ॥ कुबेर के भाई उस रावण ने संन्यासी के सौम्य रूप को छोड़ कर काल के समान अपने तीक्ष्ण असली रूप को धारण कर लिया ॥ ६ ॥ उस के नेत्र रक्त वर्ण हो गये, तप्त काञ्चन के आभूषणों से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संरक्तनयनः श्रीमांस्तप्तकाञ्चनभूषणः । क्रोधेन महताविष्टो नीलजीमूतसंनिभः ॥ ७ ॥
दशास्यो विंशतिभुजो बभूव क्षणदाचरः । स परिव्रजकच्छद्म महाकायो विहाय तत् ॥ ८ ॥
प्रतिपेदे स्वकं रूपं रावणो राक्षसाधिपः । रक्ताम्बरधरस्तस्थौ स्त्रीरत्नं प्रेक्ष्य मैथिलीम् ॥ ९ ॥
सीतामसितकेशान्तां भास्करस्य प्रभामिव । वसनाभरणोपेतां मैथिलीं रावणोऽब्रवीत् ॥१०॥
त्रिषु लोकेषु विख्यातं यदि भर्तारमिच्छसि । मामाश्रय वरारोहे तवाहं सदृशः पतिः ॥११॥
मां भजस्व चिराय त्वमहं श्लाघ्यः पतिस्तव । नैव चाहं क्वचिद्भद्रे करिष्ये तव विप्रियम् ॥१२॥
त्यज्यतां मानुषो भावो मयि भावः प्रणीयताम् । राज्याच्च्युतमसिद्धार्थं रामं परिमितायुषम् ॥१३॥
कैर्गुणैरनुरक्तासि मूढे पण्डितमानिनि । यः स्त्रियो वचनाद्राज्यं विहाय ससुहृज्जनम् ॥१४॥
अस्मिन् व्यालानुचरिते वने वसति दुर्मतिः । इत्युक्त्वा मैथिलीं वाक्यं प्रियार्हां प्रियवादिनीम् ॥१५॥
अभिगम्य सुदुष्टात्मा राक्षसः काममोहितः । जग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहिणीमिव ॥१६॥
वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः । ऊर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना ॥१७॥
तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं तीक्ष्णदंष्ट्रं महाभुजम् । प्राद्रवन् गिरिसंकाशं भयार्ता वनदेवताः ॥१८॥
स च मायामयो दिव्यः खरयुक्तः खरस्वनः । प्रत्यदृश्यत हेमाङ्गो रावणस्य महारथः ॥१९॥
ततस्तां परुषैर्वाक्यैर्भर्त्सयन् स महास्वनः । अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोपयत्तदा ॥२०॥

विभूषित कान्ति वाला वह रावण महान् क्रोध के आ जाने पर नील मेघ के समान प्रतीत होने लगा ॥ ७ ॥ उस राक्षसराज रावण ने अपने परिव्राजक वेष को छोड़ कर दस मुख वाले, बीस भुजा वाले तथा महान् शरीर को धारण कर लिया ॥ ८ ॥ राक्षसाधिप रावण ने अपने असली रूप को धारण कर लिया । रक्ताम्बर धारी वह स्त्रीरत्न सीता को देख कर वहीं खड़ा रहा ॥ ९ ॥ काले केशों वाली, सूर्य की प्रभा के समान वर्ण वाली, वस्त्र-आभूषणों से अलंकृत उस सीता से रावण बोला ॥ १० ॥ हे उत्तम कुलोत्पन्न सीते ! यदि त्रिलोकी में विख्यात पति की इच्छा रखती हो तो तुम मेरा आश्रय ग्रहण करो क्यों कि मैं तुम्हारे लिये मनोवाञ्छित पति हूं ॥ ११ ॥ चिर काल के लिये तुम मेरा आश्रय लो । मैं तुम्हारा उत्तम पति हो सकता हूँ । हे भद्रे ! मैं कभी भी किसी अवस्था में तुम्हारे प्रतिकूल आचरण नहीं करूंगा ॥ १२ ॥ सामान्य मनुष्य के प्रति जो तुम्हारा स्नेह है उसे छोड़ दो । तुम मेरे प्रति स्नेह का पूर्ण परिचय दो । राज्य से भ्रष्ट, असफल-मनोरथ, अल्पायु वाले राम के प्रति ॥ १३ ॥ व्यर्थ में अपने को पण्डित मानने वाली हे मन्दबुद्धि सीते ! तुम किन गुणों से अनुरक्त हो, जो दुर्मति एक स्त्री के वचन में आकर अपने शुभ चिन्तकों तथा राज्य को छोड़ कर ॥ १४ ॥ सर्प आदि हिंसक जन्तु वाले इस वन में निवास कर रहा है । प्रिय व्यवहार करने योग्य प्रियवादिनी सीता से इस प्रकार बातें कर के ॥ १५ ॥ कामासक्त उस दुष्टात्मा राक्षस ने सीता के समीप जा कर सीता को उसी प्रकार पकड़ लिया जैसे आकाश में रोहिणी नामक नक्षत्र पर बुध का आक्रमण होता है ॥ १६ ॥ बायें हाथ से कमलनेत्रा जानकी के मस्तक को पकड़ लिया और दायें हाथ से उस के ऊरुद्वय को पकड़ लिया ॥ १७ ॥ विशाल भुजा वाले, तीक्ष्ण दाँतों वाले, पर्वत के शिखर के समान विशाल काय, मृत्यु के समान उस रावण को देख कर भय से त्रस्त वन के सम्पूर्ण देवता वहाँ से भाग गये ॥ १८ ॥ खच्चर जिसमें जुते हैं, सोने का बना हुआ, मायामय रावण का वह दिव्य रथ दिखाई दिया ॥१९॥ ऊँचे शब्दों में तथा कठोर वाक्यों से सीता को धमका कर, उसे अपनी गोद में ले कर रथ पर बैठा दिया ॥ २० ॥ वह यशस्विनी सीता रावण के द्वारा पकड़ी जाने पर उच्च स्वर में रोने लगी । वन में दूर गये हुए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सा गृहीता विचुक्रोश रावणेन यशस्विनी । रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरगतं वने ॥२१॥
तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव । विवेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावणः ॥२२॥
ततः सा राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा । भृशं चुक्रोश मत्तेव भ्रान्तचित्ता यथातुरा ॥२३॥
हा लक्ष्मण महाबाहो गुरुचित्त प्रसादकः । ह्रियमाणां न जानीषे रक्षसा माममर्शिणा ॥२४॥
जीवितं सुखमर्थांश्च धर्महेतोः परित्यजन् । ह्रियमाणामधर्मेण मां राघव न पश्यसि ॥२५॥
ननु नामाविनीतानां विनेतासि परंतप । कथमेवंविधं पापं न त्वं शाधि हि रावणम् ॥२६॥
ननु सद्योऽविनीतस्य दृश्यते कर्मणः फलम् । कालोऽप्यङ्गी भवत्यत्र सस्यानामिव पक्तये ॥२७॥
स कर्म कृतवानेतत्कालोपहतचेतनः । जीवितान्तकरं घोरं रामाद्व्यसनमाप्नुहि ॥२८॥
हन्तेदानीं सकामास्तु कैकेयी सह बान्धवैः । ह्रिये यद्धर्मकामस्य धर्मपत्नी यशस्विनः ॥२९॥
आमन्त्रये जनस्थाने कर्णिकारान् सुपुष्पितान् । क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ॥३०॥
हंसकारण्डवाकीर्णां वन्दे गोदावरीं नदीम् । क्षिप्रं रामाय शंस त्वं सीतां हरति रावणः ॥३१॥
दैवतानि च यान्यस्मिन् वने विविधपादपे । नमस्करोम्यहं तेभ्यो भर्तुः शंसत मां हृताम् ॥३२॥
यानि कानिचिदप्यत्र सत्त्वानि निवसन्त्युत । सर्वाणि शरणं यामि मृगपक्षिगणानपि ॥३३॥
ह्रियमाणां प्रियां भर्तुः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् । विवशापहृता सीता रावणेनेति शंसत ॥३४॥

अपने पति को हे राम ! ऐसा कह कर पुकारने लगी ॥ २१ ॥ वह कामी रावण सर्पिणी के समान छटपटाती हुई कामना रहित सीता को पकड़ कर आगे चल पड़ा ॥ २२ ॥ रावण के द्वारा हरण की हुई वह सीता आतुर तथा भ्रान्त चित्त उन्मत्त व्यक्ति के समान बार बार रोने लगी ॥ २३ ॥ अपने बड़े भाई के चित्त को प्रसन्न करने वाले हे विशाल भुजा वाले लक्ष्मण ! कामाचारी राक्षस के द्वारा मैं अपहृत की जा रही हूं, इसे तुम नहीं जानते हो ॥ २४ ॥ धर्म के लिये जीवन, सुख, सम्पत्ति को छोड़ने वाले हे रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ! अधर्म पूर्वक राक्षस के द्वारा मेरा अपहरण हो रहा है, इसको तुम नहीं देख रहे हो ॥ २५ ॥ हे शत्रुओं के मान मर्दन करने वाले रामचन्द्र ! पथभ्रष्टों को तुम सन्मार्ग पर चलाने वाले हो, पुनः इस प्रकार के महान् पापी रावण को तुम क्यों नहीं शिक्षा देते हो ॥ २६ ॥ पाप करने वाले पापियों को कर्म का फल शीघ्र नहीं मिलता । उस में समय की उसी प्रकार अपेक्षा होती है, जिस प्रकार सस्य (धान्य) के पकने में समय की अपेक्षा होती है ॥ २७ ॥ काल से प्रेरित हो कर नष्ट बुद्धि वाले तुमने इस प्रकार प्राणान्त कारी घोर पाप को किया है, इस लिये राम के हाथों से तुम्हें विपत्ति भोगनी पड़ेगी ॥ २८ ॥ आज अपने बन्धु बाँधवों के साथ कैकेयी का मनोरथ पूरा हुआ जो कि धर्म की कामना रखने वाले यशस्वी रामचन्द्र की धर्मपत्नी मैं राक्षस के द्वारा अपहृत हो रही हूँ ॥ २९ ॥ जनस्थान के पुष्पित कनेर वृक्षों से मैं प्रार्थना करती हूँ कि तुम शीघ्र ही रामचन्द्र को सूचित करो कि रावण सीता को हर कर लिये जा रहा है ॥३०॥ हंस तथा सारस पक्षियों से परिपूर्ण गोदावरी नदी को मैं प्रणाम करती हूँ । तुम शीघ्र ही राम को यह सूचित करो कि रावण सीता का अपहरण करके लिये जा रहा है ॥ ३१ ॥ नाना प्रकार के वृक्षों से भरे हुए इस वन में जो कोई भी देवता रहते हैं, मैं उन सभी को नमस्कार करती हूँ । मेरे अपहरण का समाचार मेरे पति से वे कह देवें ॥ ३२ ॥ जो कोई भी नाना प्रकार के पशुपक्षी प्राणधारी इस वन में रहते है, आज मैं उन सभी से शरण की याचना करती हूँ ॥ ३३ ॥ प्राणों से भी प्यारी आपकी स्त्री विवशता पूर्वक रावण के द्वारा अपहृत की गई है, इसे रामचन्द्र से निवेदन करें ॥ ३४ ॥ मेरा पता लगने पर महाबली रामचन्द्र यमराज के द्वारा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विदित्वा मां महाबाहुरमुत्रापि महाबलः। आनेष्यति पराक्रम्य वैवस्वतहृतामपि ॥३५॥
सा तदा करुणा वाचो विलपन्ती सुदुःखिता। वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायतलोचना ॥३६॥
सा नतमुद्वीक्ष्य सुश्रोणी रावणस्य वशं गता। समाक्रन्दद्भयपरा दुःखोपहतया गिरा ॥३७॥
जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत्। अनेन राक्षसेन्द्रेण करुणं पापकर्मणा ॥३८॥
नैष वारयितुं शक्यस्तव क्रूरो निशाचरः। सत्त्ववाञ्जितकाशी च सायुधश्चैव दुर्मतिः ॥३९॥
रामाय तु यथातत्त्वं जटायो हरणं मम। लक्ष्मणाय च तत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सीतापहरणं नाम एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥४९॥

पञ्चाशः सर्गः

जटायुरभियोगः

तं शब्दमवसुप्तस्तु जटायुरथ शुश्रुवे। निरीक्ष्य रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः ॥१॥
ततः पर्वतकूटाभस्तीक्ष्णतुण्डः खगोत्तमः। वनस्पतिगतः श्रीमान् व्याजहार शुभां गिरम् ॥२॥
दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रयः। भ्रातस्त्वं निन्दितं कर्म कर्तुं नार्हसि साम्प्रतम् ॥३॥

हरण की गई तथा परलोक में गई भी मुझ को लौटा लायेंगे ॥ ३५ ॥ दुःख से करुणा पूर्वक विलाप करती हुई विशालनेत्रा सीता ने वृक्षों के बीच में बैठे हुए गृध्रकूट के वनवासी, तपस्वी राजा जटायु को देखा ॥ ३६ ॥ रावण के वश में आई हुई सीता उस जटायु को देखकर डरती हुई दुःखमय शब्दों में रोने लगी ॥ ३७ ॥ हे आर्य जटायु ! यह पाप करने वाला राक्षसपति रावण निर्दयता पूर्वक अनाथों के समान मुझे हरण करके लिये जा रहा है, इसे तुम देखो ॥ ३८ ॥ यह क्रूर राक्षस तुम्हारे द्वारा रोका नहीं जा सकता क्योंकि यह दुर्मति बहुतों को जीतने वाला बलवान् तथा शस्त्रास्त्र सम्पन्न है ॥ ३९ ॥ किन्तु हे आर्य जटायु ! मेरे अपहरण का सम्पूर्ण समाचार यथावत् मेरे पति रामचन्द्र और देवर लक्ष्मण से निवेदन कर देना ॥ ४० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'सीता का अपहरण' विषयक उनञ्चासवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४९ ॥

पचासवां सर्ग

जटायु का युद्ध-आह्वान

निद्रा में सोये हुए भी जटायु ने सीता के उस आर्त्त शब्द को सुना। पश्चात् शीघ्र ही रावण तथा मिथिलेश कुमारी सीता को देखा ॥ १ ॥ वनस्पतियों के बीच में बैठे हुए विशालकाय, भयङ्कर मुख वाले, देव तुल्य जटायु मनोहारी शब्दों में बोले ॥ २ ॥ सत्यप्रतिज्ञ, प्राचीन धर्म में स्थित रहने वाले हे बन्धु रावण ! इस समय तुम को ऐसा निन्दित कर्म नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥ मैं भूतपूर्व गृध्रकूट का महाबली

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराजो महाबलः । राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः ॥ ४ ॥
लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः । तस्यैषा लोकनाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी ॥ ५ ॥
सीता नाम वरारोहा यां त्वं हर्तुमिहेच्छसि । कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान् परामृशेत् ॥ ६ ॥
रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबल । निवर्तय मतिं नीचां परदाराभिमर्शनात् ॥ ७ ॥
न तत्समाचरेद्धीरो यत्परोऽस्य विगर्हयेत् । यथात्मनस्तथान्येषां दारा रक्ष्या विपश्चिता ॥ ८ ॥
धर्ममर्थं च कामं च शिष्टाः शास्त्रेष्वनागतम् । व्यवस्यन्ति न राजानः पौलस्त्यकुलनन्दन ॥ ९ ॥
राजा धर्मश्च कामश्च द्रव्याणां चोत्तमो निधिः । धर्मः शुभं वा पापं वा राजमूलं प्रवर्तते ॥१०॥
पापस्वभावश्चपलः कथं त्वं रक्षसां वर । ऐश्वर्यमभिसंप्राप्तो विमानमिव दुष्कृती ॥११॥
कामं स्वभावो यो यस्य न शक्यः परिमार्जितुम् । न हि दुष्टात्मनामायमावसत्यालये चिरम् ॥१२॥
विषये वा पुरे वा ते यदा रामो महाबलः । नापराध्यति धर्मात्मा कथं तस्यापराध्यसि ॥१३॥
यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः । अतिवृत्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥१४॥
अत्र ब्रूहि यथातत्त्वं को रामस्य व्यतिक्रमः । यस्य त्वं लोकनाथस्य भार्यां हृत्वा गमिष्यसि॥१५॥
क्षिप्रं विसृज वैदेहीं मा त्वा घोरेण चक्षुषा । दहेद्दहनभूतेन वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा ॥१६॥

राजा हूँ तथा मेरा नाम जटायु है। महेन्द्र और वरुण के समान विश्व के सम्राट राजा दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्र प्राणिमात्र के हित करने में निरन्तर लगे रहते हैं। उसी लोकनाथ श्री रामचन्द्र की यह यशस्विनी सीता धर्मपत्नी है ॥ ४, ५ ॥ स्त्रियों में श्रेष्ठ यह सीता है जिसको तुम हरना चाहते हो। धर्म पर स्थित रहने वाला कोई राजा परायी स्त्री का इस प्रकार स्पर्श कैसे कर सकता है ॥ ६ ॥ विशेषतः राजदाराओं की रक्षा करना तो परम कर्त्तव्य है। हे महाबली रावण ! परवधू से सम्पर्क रखने वाली नीच बुद्धि से तुम हट जाओ ॥ ७ ॥ जिस काम की संसार में लोग निन्दा करते हों, धीर लोगों को वह काम नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार अपनी स्त्रियाँ रक्षण करने योग्य होती हैं उसी प्रकार विचार करके पर स्त्रियों की भी रक्षा करनी चाहिये ॥ ८ ॥ हे पौलस्त्यनन्दन ! वह धन या भोग जिसके भोगने का अधिकार शास्त्र नहीं देते, न्यायप्रिय राजा के लिये वर्जित माना गया है ॥ ९ ॥ राजा ही धर्म-अर्थ-काम इस त्रिवर्ग की निधि माना जाता है, क्योंकि शुभ और अशुभ कर्मों का प्रचार प्रजा में राजा द्वारा ही होता है ॥ १० ॥ तुम पापी स्वभाव वाले हो तथा तुम्हारी सम्पूर्ण वृत्तियाँ चञ्चल हैं। इसलिये हे राक्षसों में श्रेष्ठ तुम्हारे जैसे दुष्कर्मी को ऐश्वर्य से परिपूर्ण विमान के समान यह राज्य कैसे प्राप्त हो गया ॥ ११ ॥ जिस पुरुष का कामी स्वभाव हो जाता है, वह विद्या-बुद्धि सम्पन्न होने पर भी उस नीच स्वभाव का परिमार्जन नहीं कर सकता। दुष्ट स्वभाव वाले व्यक्तियों के घर में श्रेष्ठ धन ऐश्वर्य आदि चिरकाल तक नहीं रह सकते ॥ १२ ॥ तुम्हारे राष्ट्र या नगर में महाबली रामचन्द्र ने जब कोई अपराध नहीं किया तो ऐसे धर्मात्मा निरपराधी के प्रति तुम यह जघन्य अपराध क्यों कर रहे हो ॥ १३ ॥ आनाचारी खर ने यदि शूर्पणखा के कहने से जनस्थान-गत रामचन्द्र पर आक्रमण किया और धर्मात्मा रामचन्द्र ने उसका वध कर दिया, तो अब तुम्हीं इसका निर्णय करो कि रामचन्द्र का इसमें कौन सा अपराध है, जिस कारण लोक के रक्षक रामचन्द्र की धर्म-पत्नी को हरण करके ले जाना चाहते हो ॥ १४, १५ ॥ इसलिये शीघ्र ही विदेह कुमारी सीता को छोड़ दो। इन्द्र के वज्र से जैसे वृत्र मारा गया उसी प्रकार अग्नि के समान जाज्वल्यमान नेत्रों से कहीं तुम भी न जला दिये जाओ ॥ १६ ॥ भयङ्कर विष वमन करने वाले सर्प को तुमने अपने वस्त्र में बाँधा है, किन्तु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्पमाशीविषं वद्ध्वा वस्त्रान्ते नावबुध्यसे । ग्रीवायां प्रतिमुक्तं च कालपाशं न पश्यसि ॥१७॥
स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसीदयेत् । तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम् ॥१८॥
यत्कृत्वा न भवेद्धर्मो न कीर्तिर्न यशो भुवि । शरीरस्य भवेत्खेदः कस्तत्कर्म समाचरेत् ॥१९॥
षष्टिवर्षोत्तरशतं मम जातस्य रावण । पितृपैतामहं राज्यं यथावदनुतिष्ठतः ॥२०॥
वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सशरः कवची रथी । तथाप्यादाय वैदेहीं कुशली न गमिष्यसि ॥२१॥
न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः । हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव ॥२२॥
युध्यस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण । शयिष्यसे हतो भूमौ यथा पूर्वं खरस्तथा ॥२३॥
असकृत्संयुगे येन निहता दैत्यदानवाः । न चिराच्चीरवासास्त्वां रामो युधि वधिष्यति ॥२४॥
किं नु शक्यं मया कर्तुं गतौ दूरं नृपात्मजौ । क्षिप्रं त्वं नश्यसे नीच तयोर्भीतो न संशयः ॥२५॥
न हि मे जीवमानस्य नयिष्यसि शुभामिमाम् । सीतां कमलपत्राक्षीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ॥२६॥
अवश्यं तु मया कार्यं प्रियं तस्य महात्मनः । जीवितेनापि रामस्य तथा दशरथस्य च ॥२७॥
तिष्ठ तिष्ठ दशग्रीव मुहूर्तं पश्य रावण । युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर ॥२८॥
वृन्तादिव फलं त्वां तु पातयेयं रथोत्तमात् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे जटायुरभियोगो नाम पञ्चाशः सर्गः ॥५०॥

उस की प्राणहारी भयंकरता का तुम्हें ध्यान नहीं है। यम फांस तुम्हारे गले में पड़ चुकी है, किन्तु तुम उसको नहीं देख रहे हो। हे सौम्य! मनुष्य को उतना ही भार उठाना चाहिये जिससे उसको किसी प्रकार पीड़ा न हो, वही अन्न खाना चाहिये जो सुखपूर्वक पच जाय ॥ १७, १८ ॥ जिन कार्यों से धर्म, कीर्त्ति तथा स्थिर यश न प्राप्त होता हो, केवल शारीरिक कष्ट प्राप्त होता हो, ऐसे कर्म में कौन भाग्यहीन व्यक्ति प्रवृत्त हो सकता है ॥ १९ ॥ हे रावण! मेरी आयु के १६० वर्ष हो गये हैं। इतनी दीर्घ आयु में मैंने बहुत समय तक अपने पिता पितामह के राज्य का यथावत् शासन किया ॥ २० ॥ इस समय मैं वृद्ध हूँ और तुम युवा हो तथा कवच, बाण, रथ आदि साधनों से परिपूर्ण हो, तब भी तुम सीता को लेकर कुशलपूर्वक नहीं जा सकते हो ॥ २१ ॥ मेरे देखते हुए तुम सीता को बलात् उसी प्रकार हरण नहीं कर सकते हो, जिस प्रकार तर्क आदि हेतुओं के द्वारा ध्रुव वेदश्रुति का कोई खण्डन नहीं कर सकता ॥ २२ ॥ हे रावण! यदि तुम वीर हो तो थोड़ी देर ठहरो और मेरे साथ युद्ध करो। मेरे द्वारा मारे जाने पर तुम भूमि पर उसी प्रकार सोओगे जैसे जनस्थान में खर मारा गया था ॥ २३ ॥ जिसने अनेक बार संग्राम में दैत्य-दानवों को मारा है, वह वल्कल-चीर धारी रामचन्द्र संग्राम में तुम्हारा शीघ्र ही बध करेंगे ॥ २४ ॥ मैं कर ही क्या सकता हूँ, वे दोनों राजकुमार यहां से दूर चले गये हैं। क्योंकि हे नीच! राम-लक्ष्मण से डर कर तुम शीघ्र ही यहां से भाग जाना चाहते हो ॥ २५ ॥ मेरे जीते हुए कमलनयनी, शुभ आचार वाली, रामचन्द्र की प्रिय धर्मपत्नी सीता को तुम नहीं ले जा सकते ॥ २६ ॥ मुझे महात्मा रामचन्द्र तथा राजा दशरथ के प्रिय कार्य के लिये अपने प्राणों की बाजी लगानी ही पड़ेगी ॥ २७ ॥ हे रावण! थोड़ी देर तक ठहरो और पुनः देखो। जैसे अपनी डाली से फल तोड़कर गिरा दिया जाता है, उसी प्रकार तुमको मैं इस उत्तम रथ से गिराता हूँ। हे राक्षस! युद्ध के द्वारा मैं तुम्हारा यथा शक्ति आतिथ्य सत्कार करूँगा ॥ २८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'जटायु का युद्ध-आह्वान' विषयक पचासवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५० ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकपञ्चाशः सर्गः

जटायूरावणयुद्धम्

इत्युक्तः क्रोधताम्राक्षः तप्तकाञ्चनकुण्डलः । राक्षसेन्द्रोऽभिदुद्राव पतगेन्द्रममर्षणः ॥ १ ॥
स संग्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन् महावने । बभूव वातोद्धतयोर्मेघयोर्गगने यथा ॥ २ ॥
तद्बभूवाद्भुतं युद्धं गृध्रराक्षसयोस्तदा । सपक्षयोर्माल्यवतोर्महापर्वतयोरिव ॥ ३ ॥
ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः । अभ्यवर्षन्महाघोरैर्गृध्रराजं महाबलः ॥ ४ ॥
स तानि शरजालानि गृध्रः पत्ररथेश्वरः । जटायुः प्रतिजग्राह रावणास्त्राणि संयुगे ॥ ५ ॥
तस्य तीक्ष्णनखाभ्यां तु चरणाभ्यां महाबलः । चकार बहुधा गात्रे व्रणान् पतगसत्तमः ॥ ६ ॥
अथ क्रोधाद्दशग्रीवो जग्राह दश मार्गणान् । मृत्युदण्डनिभान् घोराञ्शत्रोर्निधनकाङ्क्षया ॥ ७ ॥
स तैर्बाणैर्महावीर्यः पूर्णमुक्तैरजिह्मगैः । बिभेद निशितैस्तीक्ष्णैर्गृध्रं घोरैः शिलीमुखैः ॥ ८ ॥
स राक्षसरथे पश्यञ्जानकीं बाष्पलोचनाम् । अचिन्तयित्वा तान् बाणान् राक्षसं समभिद्रवत् ॥ ९ ॥
ततोऽस्य सशरं चापं मुक्तामणिविभूषितम् । चरणाभ्यां महातेजा बभञ्ज पतगेश्वरः ॥१०॥
ततोऽन्यद्धनुरादाय रावणः क्रोधमूर्च्छितः । ववर्ष शरवर्षाणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥११॥

इक्यावनवां सर्ग

जटायु रावण युद्ध

जटायु के इस प्रकार कहने पर क्रोध के कारण जिस की आंखें रक्तवर्ण हो रही हैं और जो कानों में सुवर्ण कुण्डल पहने हुए है, किसी की बात को न सहन करने वाला राक्षसराज रावण वनवासी जटायु की ओर दौड़ा ॥ १ ॥ उस समय वहाँ भयानक संग्राम में रावण तथा जटायु का इस प्रकार तुमुल युद्ध हुआ जैसे आकाश में दो मेघों का परस्पर संघर्ष होता है ॥ २ ॥ गृध्रकूट के भूतपूर्व राजा जटायु तथा रावण का परस्पर इस प्रकार का अद्भुत युद्ध हुआ जैसे पक्षयुक्त माल्यवान् पर्वत तथा हिमवान् पर्वत का युद्ध हो रहा हो ॥ ३ ॥ तत्पश्चात् विकर्णी नालीक आदि तीक्ष्ण बाणों की घोर वर्षा से रावण ने महाबली जटायु को आच्छादित कर दिया ॥ ४ ॥ संग्राम में रावण के उस शरसमूह को तपस्वी जटायु ने अपने पराक्रम से रोक दिया ॥ ५ ॥ तपस्वियों में श्रेष्ठ जटायु ने अपने तीक्ष्ण नखों तथा चरण प्रहार से रावण को अनेक प्रकार से क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ६ ॥ जटायु के द्वारा क्षत-विक्षत होने पर क्रोधाविष्ट रावण ने शत्रु जटायु को मारने के लिये मृत्यु दण्ड के समान दस बाणों को ग्रहण किया ॥ ७ ॥ तत्पश्चात् महापराक्रमी रावण ने सान पर चढ़ाये हुए, सीधी गति वाले तथा तीक्ष्ण धार वाले घोर बाणों से तपस्वी जटायु को आहत कर दिया ॥ ८ ॥ राक्षसराज रावण के रथ पर आंखों में आंसू भरे हुए जानकी को देख कर रावण के बाणप्रहारों की परवाह न कर तपस्वी जटायु ने रावण पर आक्रमण कर दिया ॥ ९ ॥ पश्चात् तपस्वियों में श्रेष्ठ महातेजस्वी जटायु ने मुक्तामणियों से विभूषित तथा बाण से परिपूर्ण रावण के उस धनुष को अपने चरणों से तोड़ डाला ॥ १० ॥ धनुष के टूट जाने पर क्रोध-मूर्च्छित रावण दूसरे धनुष को ले कर जटायु पर सैकड़ों-हजारों बाणों की वर्षा करने लगा ॥ ११ ॥ संग्राम में रावण की बाणवर्षा से घिर जाने पर तपस्वी श्रेष्ठ जटायु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शरैरावारितस्तस्य संयुगे पतगेश्वरः । कुलायमुपसंप्राप्तः पक्षीव प्रबभौ तदा ॥१२॥
स तानि शरवर्षाणि पक्षाभ्यां च विधूय च । चरणाभ्यां महातेजा बभञ्जास्य महद्धनुः ॥१३॥
तच्चाग्निसदृशं दीप्तं रावणस्य शरावरम् । पक्षाभ्यां स महावीर्यो व्याधुनोत्पतगेश्वरः ॥१४॥
काञ्चनोरश्छदान् दिव्यान् पिशाचवदनान् खरान् । तांश्चास्य जवसंपन्नाञ्जघान समरे बली ॥१५॥
वरं त्रिवेणुसंपन्नं कामगं पावकार्चिषम् । मणिहेमविचित्राङ्गं बभञ्ज च महारथम् ॥१६॥
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशं छत्रं च व्यजनैः सह । पातयामास वेगेन ग्राहिभी राक्षसैः सह ॥१७॥
सारथेश्चास्य वेगेन तुण्डेनैव महच्छिरः । पुनर्व्यपाहरच्छ्रीमान् पक्षिराजो महाबलः ॥१८॥
स भग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । अङ्केनादाय वैदेहीं पपात भुवि रावणः ॥१९॥
दृष्ट्वा निपतितं भूमौ रावणं भग्नवाहनम् । साधु साध्विति भूताति गृध्रराजमपूजयन् ॥२०॥
परिश्रान्तं तु तं दृष्ट्वा जरया पक्षियूथपम् । उत्पपात पुनर्हृष्टो मैथिलीं गृह्य रावणः ॥२१॥
तं प्रहृष्टं निधायाङ्के रावणं जनकात्मजाम् । गच्छन्तं खड्गशेषं च प्रनष्टहतसाधनम् ॥२२॥
गृध्रराजः समुत्पत्य समभिद्रुत्य रावणम् । समावार्य महातेजा जटायुरिदमब्रवीत् ॥२३॥
वज्रसंस्पर्शबाणस्य भार्यां रामस्य रावण । अल्पबुद्धे हरस्येनां वधाय खलु रक्षसाम् ॥२४॥
समित्रबन्धुः सामात्यः सबलः सपरिच्छदः । विषपानं पिबस्येतत्पिपासित इवोदकम् ॥२५॥
अनुबन्धमजानन्तः कर्मणामविचक्षणाः । शीघ्रमेव विनश्यन्ति यथा त्वं विनशिष्यसि ॥२६॥

घौंसले में बैठे हुए पक्षी के समान प्रतीत होने लगे ॥ १२ ॥ रावण के उस बाण समूह को अपनी भुजाओं से हटा कर महातेजस्वी जटायु ने द्वितीय महान् धनुष को अपने पैरों से तोड़ डाला ॥ १३ ॥ अग्नि के समान देदीप्यमान रावण के उस कवच को तपस्वी तथा महातेजस्वी जटायु ने अपनी भुजाओं से तोड़ दिया ॥ १४ ॥ काञ्चनकवच धारण करने वाले, भयंकर मुख वाले तथा अत्यन्त वेगवान्, रावण के रथ में जुते हुए उन दिव्य खरों को संग्राम में बली जटायु ने मार डाला ॥ १५ ॥ पश्चात् अग्नि शिखा के समान प्रकाशमान, स्वर्ण-रत्नों से विभूषित, युगंधर (जुआ) युक्त स्वेच्छा से चलने वाले उस रावण के रथ को जटायु ने तोड़ डाला ॥ १६ ॥ चंवरों से युक्त पूर्ण चन्द्र के समान रावण के छत्र को, उस को धारण करने वाले राक्षसों के साथ बड़े वेग से जटायु ने पृथ्वी पर गिरा दिया ॥१७॥ रावण के सारथि के मस्तक पर महाबली तपस्वी जटायु ने घोर दन्तप्रहार किया ॥ १८ ॥ धनुष के टूट जाने पर, घोड़े सारथि सहित रथ के नष्ट हो जाने पर रावण सीता को गोद में ले कर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ १९ ॥ वाहन आदि के टूट जाने पर रावण को पृथ्वी पर गिरा हुआ देख कर वनवासी सम्पूर्ण प्राणियों ने साधु २ (बहुत ठीक बहुत ठीक) ऐसा कह कर जटायु का अभिनन्दन किया ॥ २० ॥ वृद्धावस्था के कारण जटायु को परिश्रान्त देख कर प्रसन्न होता हुआ रावण सीता को ले कर आगे बढ़ा ॥ २१ ॥ जिसके सम्पूर्ण साधन नष्ट हो गये हैं, केवल खड्गमात्र ही शेष रह गया है, इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक गोद में ले कर जाते हुए रावण के प्रति जटायु दौड़ कर तथा उस को चारों ओर से घेर कर इस प्रकार बोला ॥ २२,२३ ॥ वज्रस्पर्श के समान जिनके बाण हैं उस धर्मात्मा रामचन्द्र की धर्मपत्नी इस सीता को हे दुर्बुद्धि रावण ! तुम सम्पूर्ण राक्षसों के वध कराने के लिये ही हरण करके लिये जा रहे हो ॥ २४ ॥ मित्र, बन्धु, मन्त्रिमण्डल, सेना आदि साधनों के सहित तू सीता हरण रूपी विष को इस प्रकार पान कर रहा है, जिस प्रकार पिपासा से आतुर मनुष्य विषसंपृक्त जल का पान करता है ॥ २५ ॥ जैसे मन्दबुद्धि दुष्कर्म के परिणाम को न जान कर शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार तुम भी शीघ्र ही नष्ट हो जाओगे ॥ २६ ॥ तुम कहां जा कर इस प्रकार बच सकोगे क्योंकि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बद्धस्त्वं कालपाशेन क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे । वधाय बडिशं गृह्य सामिषं जलजो यथा ॥२७॥
न हि जातु दुराधर्षौ काकुत्स्थौ तव रावण । धर्षणं चाश्रमस्यास्य क्षमिष्येते तु राघवौ ॥२८॥
यथा त्वया कृतं कर्म भीरुणा लोकगर्हितम् । तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः ॥२९॥
युध्यस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण । शयिष्यसे हतो भूमौ यथा भ्राता खरस्तथा ॥३०॥
परेतकाले पुरुषो यत्कर्म प्रतिपद्यते । विनाशायात्मनोऽधर्म्यं प्रतिपन्नोऽसि कर्म तत् ॥३१॥
पापानुबन्धो वै यस्य कर्मणः कर्म को नु तत् । कुर्वीत लोकाधिपतिः स्वयंभूर्भगवानपि ॥३२॥
एवमुक्त्वा शुभं वाक्यं जटायुस्तस्य रक्षसः । निपपात भृशं पृष्ठे दशग्रीवस्य वीर्यवान् ॥३३॥
तं गृहीत्वा नखैस्तीक्ष्णैर्विददार समन्ततः । अधिरूढो गजारोहो यथा स्याद्दुष्टवारणम् ॥३४॥
विददार नखैरस्य तुण्डं पृष्ठे समर्पयन् । केशांश्चोत्पाटयामास नखपक्षमुखायुधः ॥३५॥
स तथा गृध्रराजेन क्लिश्यमानो मुहुर्मुहुः । अमर्षस्फुरितोष्ठः सन् प्राकम्पत स रावणः ॥३६॥
स परिष्वज्य वैदेहीं वामेनाङ्केन रावणः । तलेनाभिजघानाशु जटायुं क्रोधमूर्च्छितः ॥३७॥
[जटायुस्तमभिक्रम्य तुण्डेनास्य खगाधिपः । वामबाहून् दश तदा व्यपाहरदरिंदमः ॥३८॥
संछिन्नबाहोः सद्यैव बाहवः सहसाभवन् । विषज्वालावलीयुक्ता वल्मीकादिव पन्नगाः ॥३९॥]

तुम यमपाश में इस प्रकार फंस गये हो जैसे मछली मरने के लिये मांसयुक्त बंसी को पकड़ लेती है ॥ २७ ॥ हे रावण ! तुम्हारे द्वारा आश्रम का इस प्रकार घोर अपमान दुराधर्ष, अजेय, ककुत्स्थवंशी रघुकुल शिरोमणि राम-लक्ष्मण कभी भी सहन नहीं कर सकेंगे ॥ २८ ॥ जिस प्रकार तुम भीरु ने लोकगर्हित यह काम किया है, वस्तुतः यह चोरों के आचरण के तुल्य है, किन्तु यह वीरोचित मार्ग नहीं है ॥ २९ ॥ हे रावण ! यदि तुम वीर हो तो थोड़ी देर ठहरो और मेरे साथ युद्ध करो । मेरे द्वारा मारे जाने पर तुम उसी प्रकार भूमि पर सोओगे जैसे जनस्थान में मरने पर तुम्हारा भाई खर सोया था ॥३०॥ मृत्यु के समय जैसे मनुष्य अपने विनाश के लिये आचरण करता है तुम भी आज उसी प्रकार अपने नाश के लिये अधर्मयुक्त कर्म में लग गये हो ॥ ३१ ॥ जिन पाप कर्मों का फल क्लेशयुक्त है उन कर्मों को लोक के अधिपति इन्द्र तथा स्वयंभू कर के भी नहीं बच सकते, तो सामान्य मनुष्यों की बात ही क्या ॥ ३२ ॥ पराक्रमी जटायु ने रावण के प्रति इस प्रकार शुभ वाक्यों को कह कर उस के पृष्ठ भाग पर प्रहार किया ॥ ३३ ॥ रावण को पकड़ कर जटायु ने अपने तीव्र नखों से उस के शरीर पर इस प्रकार प्रहार किया जिस प्रकार मतवाले गज पर गजारोही अंकुश से प्रहार करता है ॥ ३४ ॥ अपने तीव्र नखों से तथा दांतों से उसकी पीठ को क्षत-विक्षत कर दिया और हाथों से केशों को उखाड़ दिया, क्योंकि उस समय जटायु का नख-मुख-हाथ यही आयुध था ॥ ३५ ॥ उस समय जटायु के द्वारा इस प्रकार बार २ पीड़ित होने पर क्रोध से जिस का अधर फड़क रहा है वह रावण कम्पायमान हो गया ॥ ३६ ॥ क्रोध से मूर्छित रावण ने अपने बायें अङ्क में सीता को ले कर तल (तमाचे) से जटायु पर प्रहार किया ॥ ३७ ॥ शत्रु के मान मर्दन करने वाले जटायु ने रावण पर प्रहार कर उसकी बायीं ओर की दस भुजाओं को अपने मुख से काट डाला ॥ ३८ ॥ भुजाओं के कट जाने पर उसकी दसों भुजाएं सहसा इस प्रकार तत्काल निकल आईं जिस प्रकार विषज्वाला माला से युक्त सर्प बल्मीक से निकल आते हैं* ॥ ३९ ॥ पश्चात् क्रोधाविष्ट पराक्रमी रावण सीता को छोड़ कर लात और घूंसों से जटायु को

* दस सिर तथा बीस भुजा का वर्णन रावण के लिये पुराणों में जहाँ तहां आया है । दस सिर बीस पग या भुजा वाले एक प्रकार के ब्राह्मण नामक तिर्यक् जन्तु का वर्णन भी जहां तहां वैदिक साहित्य में आया है । राम के अवतार की कल्पना करने वाले साम्प्रदायिक रामभक्तों ने इस ब्राह्मण शब्द को देख कर ब्रह्मबन्धु (दुष्ट ब्राह्मण) रावण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततः क्रोधाद्दशग्रीवः सीतामुत्सृज्य रावणः । मुष्टिभ्यां चरणाभ्यां च गृध्रराजमपोथयत् ॥४०॥
ततो मुहूर्तं संग्रामो बभूवातुलवीर्ययोः । राक्षसानां च मुख्यस्य पक्षिणां प्रवरस्य च ॥४१॥
तस्य व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थे स रावणः । पक्षौ पार्श्वौ च पादौ च खड्गमुद्धृत्य सोऽच्छिनत् ॥४२॥
स च्छिन्नपक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा । निपपात हतो गृध्रो धरण्यामल्पजीवितः ॥४३॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम् । अभ्यधावत वैदेही स्वबन्धुमिव दुःखिता ॥४४॥
तं नीलजीमूतनिकाशकल्पं सपाण्डरोरस्कमुदारवीर्यम् ।
ददर्श लङ्काधिपतिः पृथिव्यां जटायुषं शान्तमिवाग्निदावम् ॥४५॥
ततस्तु तं पत्ररथं महीतले निपातितं रावणवेगमर्दितम् ।
पुनः परिष्वज्य शशिप्रभानना रुरोद सीता जनकात्मजा तदा ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे जटायूरावणयुद्धं नाम एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः

सीताविक्रोशः

सा तु ताराधिपमुखी रावणेन समीक्ष्य तम् । गृध्रराजं विनिहतं विललाप सुदुःखिता ॥ १ ॥

मारने लगा ॥ ४० ॥ तत्पश्चात् एक मुहूर्त्त तक अतुलपराक्रम वाले राक्षसराज रावण तथा तपस्वियों में श्रेष्ठ जटायु का घोर संग्राम हुआ ॥ ४१ ॥ रामचन्द्र की सहायता के परिश्रम करने वाले जटायु के अगल-बगल के दोनों हाथ पैरों को रावण ने अपनी तलवार को निकाल कर काट दिया ॥ ४२ ॥ भयंकर कर्म करने वाले राक्षस के द्वारा हाथ पैर कट जाने पर अल्प जीवन वाले जटायु पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ४३ ॥ रक्तसिञ्चित जटायु को पृथ्वी पर गिरा हुआ देख कर दुःखी सीता अपने बान्धव के समान जटायु के प्रति दौड़ पड़ी ॥ ४४ ॥ नीले मेघ के समान, विशाल वक्षःस्थल वाले, प्रसिद्ध पराक्रमी जटायु को वन में शान्त हुई वनाग्नि के समान, पृथ्वी पर पड़े हुए, लंकापति रावण ने देखा ॥ ४५ ॥ रावण के पराक्रम से मर्दित, पृथ्वी पर गिराये हुए उस जटायु का स्पर्श करते हुए चन्द्रानना जनकपुत्री सीता उस समय रोने लगी ॥ ४६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'जटायुरावण युद्ध' विषयक इक्यावनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥

बावनवां सर्ग

सीता का विलाप

रावण के द्वारा इस प्रकार निहत जटायु को देख कर चन्द्रानना सीता दुःखपूर्वक विलाप करने लगी ॥ १ ॥ मनुष्यों को सुख दुःख अवस्था में स्वप्न में पक्षियों का दर्शन तथा उन का शब्द निमित्त या लक्षण के

के दस सिर और बीस भुजाओं की कल्पना की है। वस्तुतः रावण का एक सिर और दो हाथ थे। सिर-भुजाओं का कटना तथा सद्यः उत्पन्न हो जाना भी साम्प्रदायिक पौराणिकों की ही कल्पना है। प्रकरण तथा सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने से इस प्रकार के श्लोक प्रक्षिप्त हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निमित्तं लक्षणं स्वप्नं शकुनिस्वरदर्शनम् । अवश्यं सुखदुःखेषु नराणां प्रतिदृश्यते ॥ २ ॥
नूनं राम न जानासि महद्व्यसनमात्मनः । धावन्ति नूनं काकुत्स्थं मदर्थं मृगपक्षिणः ॥ ३ ॥
अयं हि कृपया राम मां त्रातुमभिसंगतः । शेते विनिहतो भूमौ ममाभाग्याद्विहंगमः ॥ ४ ॥
त्राहि मामद्य काकुत्स्थ लक्ष्मणेति वराङ्गना । सुसंत्रस्ता समाक्रन्दच्छृण्वतां तु यथान्तिके ॥ ५ ॥
तां क्लिष्टमाल्याभरणां विलपन्तीमनाथवत् । अभ्यधावत वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥
तां लतामिव वेष्टन्तीमालिङ्गन्तीं महाद्रुमान् । मुञ्च मुञ्चेति बहुशः प्रवदन् राक्षसाधिपः ॥ ७ ॥
क्रोशन्तीं राम रामेति रामेण रहितां वने । जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसंनिभः ॥ ८ ॥
प्रधर्षितायां सीतायां बभूव सचराचरम् । जगत्सर्वममर्यादं तमसान्धेन संवृतम् ॥ ९ ॥
न वाति मारुतस्तत्र निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः । दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां दीनां दिव्येन चक्षुषा ॥१०॥
कृतं कार्यमिति श्रीमान् व्याजहार पितामहः । प्रहृष्टा व्यथिताश्चासन् सर्वे ते परमर्षयः ॥११॥
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां दण्डकारण्यवासिनः । रावणस्य विनाशं च प्राप्तं बुद्ध्वा यदृच्छया ॥१२॥
स तु तां राम रामेति रुदन्तीं लक्ष्मणेति च । जगामादाय चाकाशं रावणो राक्षसेश्वरः ॥१३॥
तप्ताभरणवर्णाङ्गी पीतकौशेयवासिनी । रराज राजपुत्री तु विद्युत्सौदामिनी यथा ॥१४॥

रूप में अवश्य दिखाई देते हैं ॥ २ ॥ मेरे लिये निश्चय ही यह पशु पक्षिगण इधर उधर दौड़ रहे हैं। हे रामचन्द्र ! पशुपक्षियों के दौड़धूप रूपी विपत्तिद्योतक निमित्त को निश्चय ही आप नहीं जान रहे हैं ॥ ३ ॥ हे रामचन्द्र ! मेरे ऊपर कृपा करके मुझे बचाने वाले ये तपस्वी जटायु मेरे अभाग्य के कारण क्षत-विक्षत हो कर भूमि पर सो रहे हैं ॥ ४ ॥ हे ककुत्स्थवंशी रामचन्द्र ! लक्ष्मण ! मुझ को बचाओ। इस प्रकार संत्रस्त परमशोभना सीता उच्च शब्दों में विलाप करने लगी जिस से समीप के लोग सुन सकें ॥ ५ ॥ जिस के माला तथा आभरण टूट कर इधर उधर बिखर गये हैं, जो अनाथों के समान विलाप कर रही है, उस सीता की ओर राक्षसराज रावण दौड़ पड़ा ॥ ६ ॥ जैसे लतायें वृक्ष का आलिङ्गन करती हैं उसी प्रकार सीता को वृक्षों का आलिङ्गन करते तथा पकड़ते हुए देख कर 'छोड़ दो, छोड़ दो' अनेक बार कहते हुए राक्षसराज सीता के पास पहुँच गया ॥७॥ राम से रहित उस वन में 'हे राम ! हे राम !' इस प्रकार शब्द करती हुई सीता के केशपाशों को अपने नाश के लिये रावण ने यमराज के समान पकड़ लिया ॥ ८ ॥ इस प्रकार सीता को अपमानित होते देख कर सम्पूर्ण चराचर जगत् मर्यादा रहित तथा घोर अन्धकार से आवृत हो गया ॥ ९ ॥ रावण के द्वारा सीता के पकड़ लिये जाने पर वायु का चलना बन्द सा हो गया, सूर्य का प्रकाश म्लान हो गया (अर्थात् इसका प्रभाव जड़-चेतन प्रकृति मण्डल पर भी पड़ गया)। दिव्य नेत्रों से वेदवित् ब्रह्मा ने भी इसे देखा ॥ १० ॥ कार्य हो गया, ऐसा शब्द पितामह ब्रह्माजी ने भी कहा। वनवासी तपस्वी गण इस दृश्य को देख कर दुःखी भी हुए और प्रसन्न भी हुए (सीता के अपार कष्टों को देख कर वनवासी ऋषिगण दुःखी हुए और रावण का विनाश ध्रुव हो गया, इसलिये वे लोग प्रसन्न हो गये) ॥ ११ ॥ सीता को इस प्रकार अपमानित होते हुए देख कर दण्डकारण्य वासी सम्पूर्ण व्यक्तियों ने अनायास ही यह समझ लिया कि अब रावण का नाश निश्चित हो गया ॥ १२ ॥ हा राम ! हा लक्ष्मण ! इस प्रकार शब्द कर रोती हुई सीता को लेकर राक्षसराज रावण आकाश की ओर चला गया ॥ १३ ॥ तप्त काञ्चन के आभूषणों को पहनने वाली, कांचन समान गौरवर्णा, पीताम्बर धारण करने वाली राजकुमारी सीता आकाश में इस प्रकार शोभित हुई जैसे घनमण्डल में विद्युत् ॥ १४ ॥ सीता के उड़ते हुए पीत वस्त्रों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उद्धूतेन च वस्त्रेण तस्याः पीतेन रावणः । अधिकं प्रतिबभ्राज गिरिर्दीप्त इवाग्निना ॥१५॥
तस्याः परमकल्याण्यास्ताम्राणि सुरभीणि च । पद्मपत्राणि वैदेह्या अभ्यकीर्यन्त रावणम् ॥१६॥
तस्याः कौशेयमुद्धूतमाकाशे कनकप्रभम् । बभौ चादित्यरागेण ताम्रमभ्रमिवातपे ॥१७॥
तस्यास्तद्विमलं वक्त्रमाकाशे रावणाङ्कगम् । न रराज विना रामं विनालमिव पङ्कजम् ॥१८॥
बभूव जलदं नीलं भित्त्वा चन्द्र इवोदितः । सुललाटं सुकेशान्तं पद्मगर्भाभमव्रणम् ॥१९॥
शुक्लैः सुविमलैर्दन्तैः प्रभावद्भिरलंकृतम् । तस्याः सुनयनं वक्त्रमाकाशे रावणाङ्कगम् ॥२०॥
रुदितं व्यपमृष्टास्रं चन्द्रवत्प्रियदर्शनम् । सुनासं चारु ताम्रोष्ठमाकाशे हाटकप्रभम् ॥२१॥
राक्षसेन्द्रसमाधृतं तस्यास्तद्वदनं शुभम् । शुशुभे न विना रामं दिवा चन्द्र इवोदितः ॥२२॥
सा हेमवर्णा नीलाङ्गं मैथिली राक्षसाधिपम् । शुशुभे काञ्चनी काञ्ची नीलं गजमिवाश्रिता ॥२३॥
सा पद्मगौरी हेमाभा रावणं जनकात्मजा । विद्युद्घनमिवाविश्य शुशुभे तप्तभूषणा ॥२४॥
तस्या भूषणघोषेण वैदेह्या राक्षसाधिपः । बभौ सचपलो नीलः सघोष इव तोयदः ॥२५॥
उत्तमाङ्गच्युता तस्याः पुष्पवृष्टिः समन्ततः । सीताया ह्रियमाणायाः पपात धरणीतले ॥२६॥
सा तु रावणवेगेन पुष्पवृष्टिः समन्ततः । समाधूता दशग्रीवं पुनरेवाभ्यवर्तत ॥२७॥
अभ्यवर्तत पुष्पाणां धारा वैश्रवणानुजम् । नक्षत्रमाला विमला मेरुं नगमिवोन्नतम् ॥२८॥

के द्वारा वह रावण इस प्रकार अधिक शोभायमान हुआ जिस प्रकार अग्नि से दीप्त पर्वत प्रकाशित होता है ॥ १५ ॥ उस परम कल्याणी सीता के हारों से बिखरे हुए लालवर्ण वाले सुगन्धित कमल पुष्पों से रावण का शरीर आच्छादित हो गया ॥ १६ ॥ गगनमण्डल में उड़ता हुआ कांचन के समान सीता का वह रेशमी वस्त्रांचल इस प्रकार शोभा को प्राप्त हुआ जिस प्रकार सूर्यास्त के समय सूर्य की किरणों से घनमण्डल प्रकाशित होता है ॥ १७ ॥ जैसे नाल हीन कमल शोभा को प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार आकाश गत रावण के अङ्क में बैठी हुई सीता का विमल मुखमण्डल राम के विना शोभा को प्राप्त नहीं हो रहा था ॥ १८ ॥ प्रशस्त ललाट, सुन्दर केश, पद्मकुड्मल के समान श्वेत दन्तपंक्ति तथा सुन्दर नेत्र आदि से अलंकृत, आकाशगत रावण के अङ्क में सीता का वह मुखमण्डल नील जलद को भेद कर उदय हुए चन्द्रमा के समान प्रतीत होने लगा ॥ १९, २० ॥ रोते हुए जिस की आंखों से अश्रुपात हो रहा है, जिसकी सुन्दर नाक है, ताम्रवर्ण जिस का सुन्दर ओष्ठ है, तपाये हुए सुवर्ण के समान जिसकी कान्ति है, ऐसा चन्द्रमा के समान सीता का मुखमण्डल राक्षसराज रावण के द्वारा कम्पित किये जाने पर राम के बिना इस प्रकार शोभाहीन हो रहा था जिस प्रकार दिन में उदय होने वाला चन्द्र शोभाहीन हो जाता है ॥ २१, २२ ॥ नील वर्ण वाले राक्षसराज रावण के समीप कांचनवर्णा सीता इस प्रकार शोभायमान प्रतीत हो रही थी जैसे नील वर्ण वाले गज की कांचनी कांची (मेखला) शोभा को प्राप्त होती है ॥ २३ ॥ पद्म तथा कांचन के समान पीत वर्ण तप्त काञ्चन भूषणों से अलंकृता जनकनन्दिनी सीता रावण के समीप काले बादलों में प्रविष्ट विद्युत् के समान शोभा को प्राप्त हुई ॥ २४ ॥ सीता के आभूषणों के शब्द से युक्त वह राक्षसराज रावण शब्दायमान श्याम घन के समान प्रतीत होने लगा ॥ २५ ॥ हरण की जाती हुई सीता के मस्तक से बिखरी हुई पुष्प वृष्टि पृथ्वीतल पर गिर पड़ी ॥२६॥ वह पुष्पवृष्टि रावण के वेग से आक्रान्त हो कर पुनः रावण के समीप आकर गिर गई ॥ २७ ॥ उस पुष्पों की अजस्र धारा ने कुबेर के अनुज रावण को इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार विमल नक्षत्रों की माला देदीप्यमान सूर्यमण्डल को घेरे रहती है ॥ २८ ॥ रत्नों से भूषित सीता के चरण से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चरणान्नूपुरं भ्रष्टं वैदेह्या रत्नभूषितम् । विद्युन्मण्डलसंकाशं पपात धरणीतले ॥२९॥
तरुप्रवालरक्ता सा नीलाङ्गं राक्षसेश्वरम् । प्राशोभयत वैदेही गजं कक्ष्येव काञ्चनी ॥३०॥
तां महोल्कामिवाकाशे दीप्यमानां स्वतेजसा । जहाराकाशमाविश्य सीतां वैश्रवणानुजः ॥३१॥
तस्यास्तान्यग्निवर्णानि भूषणानि महीतले । सघोषाण्यवशीर्यन्त क्षीणास्तारा इवाम्बरात् ॥३२॥
तस्याः स्तनान्तराद्भ्रष्टो हारस्ताराधिपद्युतिः । वैदेह्या निपतन् भाति गङ्गेव गगनाच्च्युता ॥३३॥
उत्पातवाताभिहता नानाद्विजगणायुताः । मा भैरिति विधूताग्रा व्याजहुरिव पादपाः ॥३४॥
नलिन्यो ध्वस्तकमलास्त्रस्तमीनजलेचराः । सखीमिव गतोच्छ्वासामन्वशोचन्त मैथिलीम् ॥३५॥
समन्तादभिसंपत्य सिंहव्याघ्रमृगद्विजाः । अन्वधावंस्तदा रोषात्सीतां छायानुगामिनः ॥३६॥
जलप्रपातास्रमुखाः शृङ्गैरुच्छ्रितबाहवः । सीतायां ह्रियमाणायां विक्रोशन्तीव पर्वताः ॥३७॥
ह्रियमाणां तु वैदेहीं दृष्ट्वा दीनो दिवाकरः । प्रतिध्वस्तप्रभः श्रीमानासीत्पाण्डरमण्डलः ॥३८॥
नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नार्जवं नानृशंसता । यत्र रामस्य वैदेहीं भार्यां हरति रावणः ॥३९॥
इति सर्वाणि भूतानि गणशः पर्यदेवयन् । वित्रस्तका दीनमुखा रुरुदुर्मृगपोतकाः ॥४०॥
उद्वीक्ष्योद्वीक्ष्य नयनैरस्रपाताविलेक्षणाः । सुप्रवेपितगात्राश्च बभूवुर्वनदेवताः ॥४१॥
विक्रोशन्तीं दृढं सीतां दृष्ट्वा दुःखं तथागताम् । तां तु लक्ष्मण रामेति क्रोशन्तीं मधुरस्वराम् ॥४२॥
अवेक्षमाणां बहुशो वैदेहीं धरणीतलम् । स तामाकुलकेशान्तां विप्रमृष्टविशेषकाम् ॥४३॥
जहारात्मविनाशाय दशग्रीवो मनस्विनीम् ॥

छूटा हुआ नूपुर विद्युन्मण्डल के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ २९ ॥ वृक्षों के नूतन रक्तपल्लव के समान वर्ण वाली सीता ने श्याम वर्ण वाले राक्षसराज रावण को इस प्रकार शोभित किया जैसे स्वर्णमयी शृंखला हाथी को शोभित करती है ॥ ३० ॥ आकाश में देदीप्यमान महती उल्का के समान उस सीता का कुबेर के छोटे भाई रावण ने आकाश मार्ग से हरण किया ॥ ३१ ॥ अग्नि के समान- देदीप्यमान सीता के आभूषण शब्द करते हुए गगनमण्डल से गिरे हुए नक्षत्र के समान पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३२ ॥ सीता के वक्षःस्थल से भ्रष्ट हुई चन्द्रकान्ति के समान गिरती हुई हारावली आकाश से गिरती हुई गंगा के समान प्रतीत हुई ॥ ३३ ॥ नाना पक्षिगणों से युक्त, उद्धत वायु से कम्पित वृक्ष अपने कम्पित पल्लवों से 'मत डरो' 'मत डरो' मानों ऐसा कह रहे थे ॥ ३४ ॥ सरोवरों के कमल मुरझा गये, मीन आदि जलचर क्षुभित हो गये, मानो उत्साह रहित शोक करती हुई अपनी प्रिय सखी सीता के प्रति शोक प्रकट कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ सब ओर से एकत्र हो कर सिंह, व्याघ्र, हरिण, पक्षिगण सीता की छाया का अनुमान करते हुए दुःखपूर्वक उसके पीछे दौड़ने लगे ॥ ३६ ॥ जलप्रपातरूपी आंसू बहाने वाले पर्वत शिखररूपी अपनी भुजाओं को उठा कर हरण की जाती हुई सीता के प्रति मानों शोक प्रकट कर रहे हैं ॥ ३७ ॥ सीता को इस प्रकार हरण करते हुए देख कर सूर्य प्रभाहीन हो गया, आकाश मण्डल पीत वर्ण हो गया ॥ ३८ ॥ अब संसार में धर्म नहीं रहा, सत्य, आर्जवता, दयालुता कहां चली गई, जब कि राम की प्रिय पत्नी विदेह कुमारी सीता का हरण रावण कर रहा है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार झुण्ड के झुण्ड सब प्राणी वर्ग दुःखपूर्वक रोने लगे । डरे हुए खिन्नमुख मृगशावक भी जहां तहां रोने लगे ॥ ४० ॥ शोभाहीन चञ्चल नेत्रों से भयपूर्वक बार २ देखते हुए वनदेवतागण कम्पायमान हो गये ॥ ४१ ॥ इस प्रकार के आये हुए दुःख को देख कर हा राम ! हा लक्ष्मण !! इस प्रकार मधुर शब्द करती हुई, सम्पूर्ण दिशाओं का बार २ अवलोकन करती हुई, जिस के बाल बिल्कुल बिखर गये हैं, चन्दन आदि का लेप जिस का नष्ट हो गया है, ऐसी मनस्विनी सीता का रावण ने अपने नाश करने के लिये हरण किया ॥ ४२,४३ ॥ शोभन दन्तपंक्ति वाली, पवित्र हास्य करने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततस्तु सा चारुदती शुचिस्मिता विनाकृता बन्धुजनेन मैथिली ।
अपश्यती राघवलक्ष्मणावुभौ विवर्णवक्त्रा भयभारपीडिता ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सीताविक्रोशो नाम द्विपञ्चाशः सर्गः

त्रिपञ्चाशः सर्गः

रावणभर्त्सनम्

खमुत्पतन्तं तं दृष्ट्वा मैथिली जनकात्मजा । दुःखिता परमोद्विग्ना भये महति वर्तिनी ॥ १ ॥
रोषरोदनताम्राक्षी भीमाक्षं राक्षसाधिपम् । रुदती करुणं सीता ह्रियमाणेदमब्रवीत् ॥ २ ॥
न व्यपत्रपसे नीच कर्मणानेन रावण । ज्ञात्वा विरहितां यन्मां चोरयित्वा पलायसे ॥ ३ ॥
त्वयैव नूनं दुष्टात्मन् भीरुणा हर्तुमिच्छता । ममापवाहितो भर्ता मृगरूपेण मायया ॥ ४ ॥
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं साऽप्ययं विनिपातितः । गृध्रराजः पुराणोऽसौ श्वशुरस्य सखा मम ॥ ५ ॥
परमं खलु ते वीर्यं दृश्यते राक्षसाधम । विश्राव्य नामधेयं हि युद्धे नास्मि जिता त्वया ॥ ६ ॥
ईदृशं गर्हितं कर्म कथं कृत्वा न लज्जसे । स्त्रियाश्च हरणं नीच रहिते तु परस्य च ॥ ७ ॥

वाली, भय के आक्रमण से पीडित, तथा आत्मरक्षक बान्धवों से हीन वह सीता राम-लक्ष्मण को न देखती हुई विवर्ण मुख वाली हो गई (मुखमण्डल की कमनीय कान्ति जाती रही) ॥ ४४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'सीता का विलाप' विषयक बावनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५२ ॥

तीरपनवां सर्ग

रावण की भर्त्सना

भय से अत्यन्त घबराई हुई तथा क्रोध और रोदन करने से जिसकी आंखें लाल हो गई हैं, ऐसी हरण की जाती हुई दुःखी सीता आकाश में जाते हुए रावण को देख कर करुणापूर्ण शब्दों में बोली ॥ १,२ ॥ हे नीच रावण ! इस अत्यन्त गर्हित कर्म से तुम को लज्जा नहीं आ रही है ? जो कि मुझे रामचन्द्र से रहित समझते हुए चोरी से ले कर भाग रहे हो ॥ ३ ॥ हे दुष्टात्मा रावण ! मेरे हरण करने की इच्छा से तुम्हीं भीरु ने माया रूपी मृग के द्वारा मेरे पति को दूर भिजवा दिया ॥ ४ ॥ मेरे पूज्य स्वसुर के परम मित्र जटायु जो मेरी रक्षा के लिये उद्यत हुए थे, उनको भी तुम ने मार दिया ॥५॥ हे राक्षसाधम ! तुमने अपना गौरवमय नाम वर्णन कर के जो यह निर्लज्ज पराक्रम दिखलाया है वह तुम्हारे गौरवपूर्ण नाम के अनुकूल नहीं है । वस्तुतः तुमने मुझे संग्राम में नहीं जीता है ॥ ६ ॥ हे नीच रावण ! पति से रहित पराई स्त्री का हरणरूपी अत्यन्त गर्हित कर्म करके तुम्हें लज्जा क्यों नहीं आ रही है ॥ ७ ॥ अपने को पराक्रमी तथा वीर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कथयिष्यन्ति लोकेषु पुरुषाः कर्म कुत्सितम् । सुनृशंसमधर्मिष्ठं तव शौण्डीर्यमानिनः ॥ ८ ॥
धिक् ते शौर्यं च सत्त्वं च यत्त्वं कथितवांस्तदा । कुलाक्रोशकरं लोके धिक् ते चारित्रमीदृशम् ॥ ९ ॥
किं कर्तुं शक्यमेवं हि यज्जवेनैव धावसि । मुहूर्तमपि तिष्ठ त्वं न जीवन् प्रतियास्यसि ॥१०॥
न हि चक्षुष्पथं प्राप्य तयोः पार्थिवपुत्रयोः । ससैन्योऽपि समर्थस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम् ॥११॥
न त्वं तयोः शरस्पर्शं शक्तः सोढुं कथंचन । वने प्रज्वलितस्येव स्पर्शमग्नेर्विहंगमः ॥ १२ ॥
साधु कृत्वात्मनः पथ्यं साधु मां मुञ्च रावण । मत्प्रधर्षणरुष्टो हि भ्राता सह पतिर्मम ॥१३॥
विधास्यति विनाशाय त्वं मां यदि न मुञ्चसि । येन त्वं व्यवसायेन बलान्मां हर्तुमिच्छसि ॥१४॥
व्यवसायः स ते नीच भविष्यति निरर्थकः । न ह्यहं तमपश्यन्ती भर्तारं विबुधोपमम् ॥१५॥
उत्सहे शत्रुवशगा प्राणान् धारयितुं चिरम् । न नूनं चात्मनः श्रेयः पथ्यं वा समवेक्षसे ॥१६॥
मृत्युकाले यथा मर्त्यो विपरीतानि सेवते । मुमूर्षूणां हि सर्वेषां यत्पथ्यं तन्न रोचते ॥१७॥
पश्याम्यद्य हि कण्ठे त्वां कालपाशावपाशितम् । यथा चास्मिन् भयस्थाने न बिभेषि दशानन ॥१८॥
व्यक्तं हिरण्मयान् हि त्वं संपश्यसि महीरुहान् । नदीं वैतरणीं घोरां रुधिरौघप्रवाहिनीम् ॥१९॥

समझने वाले तुम्हारे इस नृशंस कर्म की संसार में सत्पुरुष अवश्य निन्दा करेंगे ॥ ८ ॥ अपने विषय में आपने शौर्य तथा धैर्य की जो प्रशंसा की है, उसे धिक्कार है, कुल की कीर्त्ति को नष्ट करने वाले तुम्हारे इस प्रकार के चरित्र को भी धिक्कार है ॥ ९ ॥ तुम मुझे लेकर अत्यन्त वेग से भाग रहे हो, मैं कर ही क्या सकती हूं । तुम थोड़ी देर ठहर जाओ, तो अपना प्राण भी बचा कर तुम्हारा जाना कठिन हो जायेगा ॥१०॥ उन दोनों राजकुमारों के दृष्टि पथ में आजाने पर अपने सैन्यबल के साथ भी एक मुहूर्त्त तुम जीवित नहीं रह सकते हो ॥ ११ ॥ वन में प्रज्वलित दावाग्नि के स्पर्श को जैसे पक्षिगण नहीं सहन कर सकते उसी प्रकार रामलक्ष्मण के कर्कश बाणों के स्पर्श को तुम भी किसी प्रकार नहीं सहन कर सकते हो ॥ १२ ॥ हे रावण ! अपने कल्याण पथ का अच्छी तरह से विचार कर के मुझे शीघ्र ही छोड़ दो अन्यथा मेरे हरण-रूपी अपमान से क्रुद्ध मेरे पति अपने भाई लक्ष्मण के साथ ॥१३॥ तुम्हारा समूलोन्मूलन विनाश कर डालेंगे, यदि तुम मुझको नहीं छोड़ोगे । जिस अभिप्राय से प्रेरित हो कर तुम मेरा बलात् अपहरण करना चाहते हो ॥ १४ ॥ हे नीच रावण ! वह तुम्हारा कुत्सित मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकेगा । देवतुल्य अपने पति को न देख कर ॥ १५ ॥ शत्रु के वश में होती हुई मैं अपने प्राणों को अधिक समय तक नहीं रख सकती । निश्चय ही तुम अपने वर्तमान कल्याण को तथा भविष्य के हित को उसी प्रकार नहीं देख रहे हो ॥ १६ ॥ जिस प्रकार मृत्यु के समय में मनुष्य अपने कल्याण के विपरीत ही आचरण करता है । क्योंकि आसन्न मृत्यु वाले व्यक्ति को हित की बातें अच्छी नहीं लगतीं ॥१७॥ हे निशाचर रावण ! तुम्हारे गले में मृत्यु की फांस पड़ गई है, ऐसा मैं देख रही हूं, क्यों कि इस भय वाले स्थान में तुम्हें भय नहीं हो रहा है ॥ १८ ॥ स्पष्ट ही तुम हिरण्यमय वृक्षों को देख रहे हो । रक्तधार से परिपूर्ण ❀वैतरणी नदी को तुम देख रहे हो ॥ १९ ॥ हे रावण ! तुम भयङ्कर असिपत्रवन को देखना चाहते हो । वैदूर्यमणि के पत्तों से युक्त तप्त काञ्चन

❀ १९-२१ श्लोकों में जो भाव प्रदर्शित किये गये हैं, प्रायः वे अर्थवाद हैं । अर्थात् किसी की रमणीयता या भयंकरता को प्रतिपादन करने वाले जो शब्द होते हैं, वहां शब्दार्थ नहीं लिया जाता । किन्तु उस विषय की सामान्य रमणीयता या भयंकरता उनके द्वारा प्रतिपादित होती है । मुमूर्षु व्यक्तियों के सामने इस प्रकार की अमंगल तथा अघटित घटनाएं प्रायः हुआ करती हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असिपत्रवनं चैव भीमं पश्यसि रावण । तप्तकाञ्चनपुष्पां च वैडूर्यप्रवरच्छदाम् ॥२०॥
द्रक्ष्यसे शाल्मलीं तीक्ष्णाऽमायसैः कण्टकैश्चिताम् । न हि त्वमीदृशं कृत्वा तस्यालीकं महात्मनः ॥२१॥
धरितुं शक्ष्यसि चिरं विषं पीत्वेव निर्घृण । बद्धस्त्वं कालपाशेन दुर्निवारेण रावण ॥२२॥
क्व गतो लप्स्यसे शर्म भर्तुर्मम महात्मनः । निमेषान्तरमात्रेण विना भ्रातरमाहवे ॥२३॥
राक्षसा निहता येन सहस्राणि चतुर्दश । स कथं राघवो वीरः सर्वास्त्रकुशलो बली ॥२४॥
न त्वां हन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् । एतच्चान्यच्च परुषं वैदेही रावणाङ्कगा ॥२५॥
भयशोकसमाविष्टा करुणं विललाप ह ॥

तथा भृशार्तां बहु चैव भाषिणीं विलापपूर्वं करुणं च भामिनीम् ।
जहार पापः करुणं विवेष्टतीं नृपात्मजामागतगात्रवेपथुम् ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे रावणभर्त्सनं नाम त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशः सर्गः

लङ्काप्रापणम्

ह्रियमाणा तु वैदेही कंचिन्नाथमपश्यती । ददर्श गिरिशृङ्गस्थान् पञ्च वानरपुंगवान् ॥ १ ॥

पुष्प वाले ॥ २० ॥ तथा तीक्ष्ण लोहे के कांटों से परिपूर्ण शाल्मली (सेमर) वृक्ष को तुम देखना चाहते हो। हे पापात्मा रावण ! जैसे कोई विष पान कर के जीवित नहीं रह सकता उसी प्रकार तुम महात्मा रामचन्द्र का अप्रिय आचरण करके जीवित नहीं रह सकते । हे रावण ! तुम निश्चय ही दुर्निवार यमराज के फांस में पड़ गये हो ॥ २१, २२ ॥ महात्मा मेरे पति का अपराध कर के तुम कहां जा कर शान्ति प्राप्त कर सकते हो। निमेष मात्र में अपने भाई लक्ष्मण के बिना संग्राम में ॥२३॥ जिस रामचन्द्र ने १४ हज़ार राक्षसों को मार दिया था । सम्पूर्ण अस्त्रों में कुशल, बली तथा पराक्रमी रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र ॥ २४ ॥ अपनी इष्ट धर्मपत्नी का अपहरण करने वाले तुमको तीक्ष्ण बाणों से नहीं मारेंगे, यह कैसे हो सकता है ? रावण के वश में आई हुई तथा भय-शोक से परिपूर्ण सीता इस प्रकार की तथा अन्य बहुत से कठोर शब्दों को कहती हुई करुणामय विलाप करने लगी ॥ २५ ॥ इस तरह नाना प्रकार के विलापपूर्वक करुणामय भाषण करने वाली भय से कम्पायमान शरीर वाली तथा अपनी रक्षा की चेष्टा करने वाली दुःखिनी राजकुमारी तरुणी सीता का उस पापी ने अपहरण किया ॥ २६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'रावण की भर्त्सना' विषयक तिरपनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥

चौवनवां सर्ग

लङ्का में पहुँचाना

रावण के द्वारा हरण की हुई सीता ने आस पास किसी रक्षक को देखते हुए कुछ दूर पर्वत की चोटी पर बैठे हुए पाँच वनवासी वीरों को देखा ॥ १ ॥ विशालनेत्रा सीता ने काञ्चन कान्तिवाले अपने रेशमी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम् । उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च ॥ २ ॥
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति मैथिली । वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम् ॥ ३ ॥
संभ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म न स बुद्धवान् । पिङ्गाक्षास्तां विशालाक्षीं नेत्रैरनिमिषैरिव ॥ ४ ॥
विक्रोशन्तीं तथा सीतां ददृशुर्वानरर्षभाः । स च पम्पामतिक्रम्य लङ्कामभिमुखः पुरीम् ॥ ५ ॥
जगाम रुदतीं गृह्य वैदेहीं राक्षसेश्वरः । तां जहार सुसंहृष्टो रावणो मृत्युमात्मनः ॥ ६ ॥
उत्सङ्गेनेव भुजगीं तीक्ष्णदंष्ट्रां महाविषाम् । वनानि सरितः शैलान् सरांसि च विहायसा ॥ ७ ॥
स क्षिप्रं समतीयाय शरश्चापादिव च्युतः । तिमिनक्रनिकेतं तु वरुणालयमक्षयम् ॥ ८ ॥
सरितां शरणं गत्वा समतीयाय सागरम् । संभ्रमात्परिवृत्तोर्मी रुद्धमीनमहोरगः ॥ ९ ॥
वैदेह्यां ह्रियमाणायां बभूव वरुणालयः । अन्तरिक्षगता वाचः ससृजुश्चारणास्तदा ॥१०॥
एतदन्तो दशग्रीव इति सिद्धास्तदाब्रुवन् । स तु सीतां विवेष्टन्तीमङ्केनादाय रावणः ॥११॥
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रूपिणीं मृत्युमात्मनः । सोऽभिगम्य पुरीं लङ्कां सुविभक्तमहापथाम् ॥१२॥
संरूढकक्ष्यावहुलं स्वमन्तःपुरमाविशत् । तत्र तामसितापाङ्गीं शोकमोहपरायणाम् ॥१३॥
निदधे रावणः सीतां मयो मायामिव स्त्रियम् । अब्रवीच्च दशग्रीवः पिशाचीर्घोरदर्शनाः ॥१४॥
यथा नेमां पुमान् स्त्री वा सीतां पश्यत्यसंमतः । मुक्तामणिसुवर्णानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥१५॥
यद्यदिच्छेत्तदेवास्या देयं मच्छन्दतो यथा । या च वक्ष्यति वैदेहीं वचनं किंचिदप्रियम् ॥१६॥

चादर में स्वकीय आभरणों को बांध कर उन वनवासी महात्माओं के मध्य में छोड़ दिया ॥ २ ॥ वस्त्र से आवेष्टित आभूषणों को सीता ने उनके मध्य में गिरा कर यह आशा की कि ये लोग इन आभूषणों के द्वारा मेरे हरण के समाचार को रामचन्द्र से निवेदन कर देंगे ॥ ३ ॥ घबराहट के कारण रावण जानकी के इस कर्म को न जान सका । भूरे नेत्र वाले वनवासी वीरों ने विलाप करने वाली विशालनेत्रा सीता को देखा । वह राक्षसराज रावण पम्पा को लांघ कर लंका पुरी की ओर ॥४,५॥ रोती हुई सीता को लेकर चला गया । प्रसन्नता पूर्वक रावण ने अपनी मृत्यु के समान महा विषधरा, तीक्ष्ण दांतों वाली सर्पिणी के समान सीता को गोद में लेकर उसका अपहरण किया । आकाश मार्ग से वन, नदी, सरोवर तथा पर्वतों को ॥ ६, ७ ॥ इस प्रकार शीघ्र ही पार कर गया जिस प्रकार धनुष से छूटा हुआ बाण । मीन, ग्राहों के निकेतन, नदियों के विश्राम धाम, उस अक्षोभ्य, अगाध जलराशि वाले समुद्र के पास जा कर उसको पार किया । जानकी का हरण करते समय वह समुद्र अपनी तरङ्गों के क्षोभ से रहित हो गया । मीन, सर्प आदि जलजन्तुओं की गति रुक गई । विमानगत आकाश में भ्रमण करने वाले चारणों ने इस प्रकार की बातें कहीं ॥ ८-१० ॥ उस समय सिद्धों ने यह कहा—अब रावण का अन्त समीप ही समझो । इस प्रकार अपने छुटकारे के लिये चेष्टा करती हुई सीता को अपनी मृत्यु के समान गोद में ले कर ॥ ११ ॥ रावण ने लंका पुरी में प्रवेश किया । विशाल पथ वाली उस लंका पुरी में जाकर रावण ने ॥ १२ ॥ नाना प्रकार के लोग जिसके दरवाजे पर खड़े हैं ऐसे अन्तःपुर में प्रवेश किया । शोक-मोह से युक्त, आञ्जन नेत्रा ॥ १३ ॥ सीता को रावण ने अन्तःपुर में इस प्रकार रखा जिस प्रकार मायावी असुर मय ने अपनी छल-प्रपञ्चिका माया को रखा हो । वहां पर सीता को रख कर भयङ्कर रूप वाली राक्षसियों से रावण बोला ॥१४॥ कोई स्त्री वा पुरुष विना मेरी आज्ञा के इसको न देख सके । मोती, हीरा, सुवर्ण, वस्त्र तथा आभूषणों को ॥१५॥ जो भी यह सीता चाहे वह स्वेच्छा पूर्वक प्राप्त कर सके । अज्ञान या ज्ञान पूर्वक जो कोई भी सीता के प्रति अप्रिय वचन बोलेगा ॥१६॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानान्न तस्या जीवितं प्रियम्। तथोक्त्वा राक्षसीस्तास्तु राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥१७॥
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्किं कृत्यमिति चिन्तयन्। ददर्शाष्टौ महावीर्यान् राक्षसान्पिशिताशनान्।१८॥
स तान् दृष्ट्वा महावीर्यो वरदानेन मोहितः। उवाचैतानिदं वाक्यं प्रशस्य बलवीर्यतः ॥१९॥
नानाप्रहरणाः क्षिप्रमितो गच्छत सत्वरा। जनस्थानं हतस्थानं भूतपूर्वं खरालयम् ॥२०॥
तत्रोष्यतां जनस्थाने शून्ये निहतराक्षसे। पौरुषं बलमाश्रित्य त्रासमुत्सृज्य दूरतः ॥२१॥
बलं हि सुमहद्यन्मे जनस्थाने निवेशितम्। सदूषणखरं युद्धे हतं रामेण सायकैः ॥२२॥
तत्र क्रोधो ममामर्षाद्धैर्यस्योपरि वर्तते। वैरं च सुमहज्जातं रामं प्रति सुदारुणम् ॥२३॥
निर्यातयितुमिच्छामि तच्च वैरमहं रिपोः। न हि लप्स्याम्यहं निद्रामहत्वा संयुगे रिपुम् ॥२४॥
तं त्विदानीमहं हत्वा खरदूषणघातिनम्। रामं शर्मोपलप्स्यामि धनं लब्ध्वेव निर्धनः ॥२५॥
जनस्थाने वसद्भिस्तु भवद्भी राममाश्रिता। प्रवृत्तिरुपनेतव्या किं करोतीति तत्त्वतः ॥२६॥
अप्रमादाच्च गन्तव्यं सर्वैरपि निशाचरैः। कर्तव्यश्च सदा यत्नो राघवस्य वधं प्रति ॥२७॥
युष्माकं च बलज्ञोऽहं बहुशो रणमूर्धनि। अतश्चास्मिञ्जनस्थाने मया यूयं नियोजिताः ॥२८॥

ततः प्रियं वाक्यमुपेत्य राक्षसा महार्थमष्टावभिवाद्य रावणम्।
विहाय लङ्कां सहिता प्रतस्थिरे यतो जनस्थानमलक्ष्यदर्शनाः ॥२९॥

उसके जीवन का अन्त कर दिया जायेगा। प्रतापी राक्षसराज रावण राक्षसियों से ऐसा कह कर ॥ १७ ॥ तथा उस अन्तःपुर (रनिवास) से निकल कर अब आगे क्या करना चाहिये, इस प्रकार की चिन्ता करने लगा। राजमहल से निकलते ही रावण ने महापराक्रमी मांसाहारी आठ राक्षसों को देखा ॥ १८ ॥ नाना प्रकार के वरदान से उन्मत्त हुआ महापराक्रमी वह रावण उन राक्षसों को देख कर उन के बल पराक्रम की प्रशंसा करता हुआ यह वचन बोला ॥ १९ ॥ हे राक्षसो! तुम सभी नाना प्रकार के शस्त्र-अस्त्रों को ले कर शीघ्र ही यहाँ से वेग पूर्वक उस जनस्थान खर के निवास स्थान को जाओ जिस को रामचन्द्र ने उजाड़ दिया है ॥ २० ॥ जहाँ के रक्षक सभी राक्षस मार दिये गये हैं, उस शून्य जनस्थान में अपने पुरुषार्थ तथा बल का आश्रय ले कर निर्भयतापूर्वक तुम लोग निवास करो ॥ २१ ॥ मैंने विशाल सेना से युक्त खर-दूषण को वहाँ रखा था, किन्तु राम के बाणों के द्वारा वे सभी युद्ध में मारे गये ॥ २२ ॥ इस लिये बढ़ा हुआ यह मेरा अभूतपूर्व क्रोध मेरे धैर्य को समाप्त कर रहा है। राम के साथ मेरा महान् दारुण वैर उत्पन्न हो गया है ॥ २३ ॥ उस महान् शत्रु से मैं अपना बदला चुकाना चाहता हूं। संग्राम में अपने शत्रु राम को बिना मारे मैं सो भी नहीं सकता ॥ २४ ॥ जैसे कोई निर्धन व्यक्ति धन को प्राप्त कर शान्ति का अनुभव करता है, उसी प्रकार इस समय खर-दूषण के घातक रामचन्द्र को मार कर शान्ति प्राप्त करूँगा ॥ २५ ॥ आप लोग जनस्थान में रहते हुए रामचन्द्र क्या कर रहे हैं, उनकी चेष्टाओं का यथार्थ समाचार मेरे पास भेजना ॥ २६ ॥ तुम सभी लोग बड़ी सावधानी से वहाँ जाना और रामचन्द्र के मारने के लिये जो भी कोई उपाय हो, उस के लिये यत्न करना ॥ २७ ॥ कई बार संग्राम में तुम लोगों के बल-पराक्रम को मैंने जान लिया है। इस लिये मैं तुम लोगों को वहां जनस्थान में भेज रहा हूं ॥ २८ ॥ रावण के इन प्रिय वाक्यों को सुन कर वे आठों राक्षस उसे प्रणाम करके गुप्त रूप से लंका को छोड़ कर जनस्थान को चले गये ॥ २९ ॥ मिथिला

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततस्तु सीतामुपलभ्य रावणः सुसंप्रहृष्टः परिगृह्य मैथिलीम् ।
प्रसज्य रामेण च वैरमुत्तमं बभूव मोहान्मुदितः स रावणः ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे लङ्काप्रापणं नाम चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः

सीताविलोभनोद्यमः

सांदिश्य राक्षसान् घोरान् रावणोऽष्टौ महाबलान् । आत्मानं बुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥ १ ॥
स चिन्तयानो वैदेहीं कामबाणप्रपीडितः । प्रविवेश गृहं रम्यं सीतां द्रष्टुमभित्वरन् ॥ २ ॥
स प्रविश्य तु तद्वेश्म रावणो राक्षसाधिपः । अपश्यद्राक्षसीमध्ये सीतां शोकपरायणाम् ॥ ३ ॥
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां शोकभाराभिपीडिताम् । वायुवेगैरिवाक्रान्तां मज्जन्तीं नावमर्णवे ॥ ४ ॥
मृगयूथपरिभ्रष्टां मृगी श्वभिरिवावृताम् । अधोमुखमुखीं सीतामभ्येत्य च निशाचरः ॥ ५ ॥
तां तु शोकपरां दीनामवशां राक्षसाधिपः । स बलाद्दर्शयामास गृहं देवगृहोपमम् ॥ ६ ॥
हर्म्यप्रासादसंबाधं स्त्रीसहस्रनिषेवितम् । नानापक्षिगणैर्जुष्टं नानारत्नसमन्वितम् ॥ ७ ॥

की राजकुमारी सीता को प्राप्त कर रावण बहुत प्रसन्न हुआ। राम के साथ भयङ्कर शत्रुता करके भी वह मन्दमति रावण अज्ञानवश प्रसन्न हुआ ॥३०॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'लंका में पहुँचाना' विषयक चौवनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥

पचपनवां सर्ग

सीता को लुभाने का यत्न

महाबली उन भयानक आठ राक्षसों को सन्देश देकर विपरीत बुद्धि वाला वह रावण अपने आपको सफल मनोरथ समझने लगा ॥ १ ॥ कामबाणों से पीड़ित जानकी की चिन्ता करता हुआ उसे देखने के लिये उस रमणीय गृह में शीघ्रता से प्रवेश किया ॥ २ ॥ राक्षसराज रावण ने उस गृह में प्रवेश कर दुःख परायणा सीता को राक्षसियों के मध्य में देखा ॥ ३ ॥ आंखों में आंसू भरे हुए शोक भाराक्रान्त दीन मुख वाली सीता को रावण ने इस प्रकार देखा जैसे वायु वेग से आक्रान्त समुद्र में कोई नौका डूब रही हो ॥ ४ ॥ अपने दल से विचलित हुई तथा स्वानों से घिरी हुई मृगी के समान नीचे मुख कर के बैठने वाली जानकी के समीप रावण पहुँचा ॥ ५ ॥ शोक के कारण दीन दशा को प्राप्त होने वाली असहाय उस सीता को राक्षसराज रावण ने बलपूर्वक अपने देवतुल्य गृह को दिखलाया ॥ ६ ॥ उस विशाल राजमहल में छोटे बड़े अनेक प्रकार के गृह बने हुए थे। हजारों स्त्रियां वहाँ निवास कर रही थीं, नाना प्रकार के पक्षिगण वहां निवास करते थे तथा विविध प्रकार के रत्न उसमें जड़े हुए थे ॥ ७ ॥ हाथी दांत, तप्तकाञ्चन, स्फटिक मणि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दान्तकैस्तापनीयैश्च स्फाटिकै राजतैरपि । वज्रवैडूर्यचित्रैश्च स्तम्भैर्दृष्टिमनोहरैः ॥ ८ ॥
दिव्यदुन्दुभिनिर्ह्रादं तप्तकाञ्चनतोरणम् । सोपानं काञ्चनं चित्रमारुरोह तया सह ॥ ९ ॥
दान्तका राजताश्चैव गवाक्षाः प्रियदर्शनाः । हेमजालावृताश्चासंस्तत्र प्रासादपङ्क्तयः ॥१०॥
सुधामणिविचित्राणि भूमिभागानि सर्वशः । दशग्रीवः स्वभवने प्रादर्शयत मैथिलीम् ॥११॥
दीर्घिका पुष्करिण्यश्च नानावृक्षसमन्विताः । रावणो दर्शयामास सीतां शोकपरायणाम् ॥१२॥
दर्शयित्वा तु वैदेह्याः कृत्स्नं तद्भवनोत्तमम् । उवाच वाक्यं पापात्मा सीतां लोभितुमिच्छया ॥१३॥
दश राक्षसकोट्यश्च द्वाविंशतिरथापराः । वर्जयित्वा जरावृद्धान् बालांश्च रजनीचरान् ॥१४॥
तेषां प्रभुरहं सीते सर्वेषां भीमकर्मणाम् । सहस्रमेकमेकस्य मम कार्यपुरःसरम् ॥१५॥
यदिदं राजतन्त्रं मे त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । जीवितं च विशालाक्षि त्वं मे प्राणैर्गरीयसी ॥१६॥
बहूनां स्त्रीसहस्राणां मम योऽसौ परिग्रहः । तासां त्वमीश्वरी सीते मम भार्या भव प्रिये ॥१७॥
साधु किं तेऽन्यथा बुद्ध्या रोचयस्व वचो मम । भजस्व मामितप्तस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥१८॥
परिक्षिप्ता समुद्रेण लङ्केयं शतयोजना । नेयं धर्षयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥१९॥
न देवेषु न यक्षेषु न गन्धर्वेषु नर्षिषु । अहं पश्यामि लोकेषु यो मे वीर्यसमो भवेत् ॥२०॥
राज्यभ्रष्टेन दीनेन तापसेन पदातिना । किं करिष्यसि रामेण मानुषेणाल्पतेजसा ॥२१॥
भजस्व सीते मामेव भर्ताहं सदृशस्तव । यौवनं ह्यध्रुवं भीरु रमस्वेह मया सह ॥२२॥

तथा चांदी के दर्शनीय, मनोरम खम्भ लगे हुए थे, जिन पर हीरों और वैदूर्य मणि की कारीगरी की हुई थी । ॥ ८ ॥ देव-दुन्दुभि के समान जहां शब्द हो रहे थे, तपे हुए स्वर्ण के आभूषणों से सुशोभित चित्र-विचित्र काञ्चन सीढ़ियों पर सीता को लेकर रावण चढ़ा ॥ ९ ॥ हाथी दांत तथा चांदी की बनी हुई शोभायमान खिड़कियां लगी हुई थीं जो सोने के तारों से आवेष्टित थीं । इस प्रकार वहां मकानों की पंक्तियां थीं ॥ १० ॥ सफ़ेद मणियों से चित्रित जहां के भूमिभाग बने हुए थे, ऐसे अपने भवन को रावण ने सीता को दिखलाया ॥ ११ ॥ नाना प्रकार के कमल पुष्पों से परिपूर्ण उन बावड़ियों को रावण ने शोकपरायणा सीता को दिखलाया ॥ १२ ॥ सीता को सम्पूर्ण उत्तम भवनों को दिखला कर वह पापात्मा रावण लोभायमान करने की इच्छा से सीता के प्रति बोला ॥ १३ ॥ बालक तथा वृद्ध राक्षसों को छोड़ कर केवल युवा राक्षसों के दस बाईस = ३२ गण (डिवीज़न) जिस सेना में हैं ॥ १४ ॥ हे सीते ! ऐसे भीषण कर्म करने वाले उन सैनिकों तथा सेनापतियों का मैं स्वामी हूँ । केवल मेरे अकेले की सेवा करने वाले एक हज़ार सेवक हैं ॥ १५ ॥ यह जो कुछ भी मेरा राज्य तथा यह मेरा जीवन है, हे विशालाक्षि सीते ! वह सब तुम्हारे अधीन है क्योंकि तुम मुझे प्राणों से प्यारी हो ॥ १६ ॥ अनेक स्त्रियों में जो मेरी उत्तम स्त्रियाँ हैं, उनकी भी तुम स्वामिनी हो । इस लिये हे सीते ! तुम मेरी भार्या बन जाओ ॥ १७ ॥ और बातों को छोड़ कर मेरी इन बातों को मानो । मुझको स्वीकार करो । कामसन्तप्त मुझ पर दया करो ॥ १८ ॥ समुद्र से घिरी हुई सौ योजन (चार सौ कोस) की यह लंका है । यह इन्द्र के सहित देव-असुर लोगों से भी नहीं विजय की जा सकती ॥ १९ ॥ देव, यक्ष, गन्धर्व तथा ऋषि वर्ग में किसी को भी मैं ऐसा नहीं देखता जो मेरे समान बलवान् या पराक्रमी हो ॥ २० ॥ राज्य भ्रष्ट, दीन-दुःखी, सन्तापयुक्त, पैदल पर्यटन करने वाले, अल्प तेज वाले साधारण मनुष्य राम को ले कर तुम क्या करोगी ॥ २१ ॥ हे सीते ! तुम मुझे स्वीकार करो क्योंकि तुम्हारे योग्य पति मैं ही हूं । यह यौवन अस्थिर है, इस लिये इसका उपयोग मेरे साथ करो ॥ २२ ॥ हे शोभने ! राम के दर्शन की आशा छोड़ दो । हे सीते ! मन से भी यहाँ आने की राम की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दर्शने मा कृथा बुद्धिं राघवस्य वरानने । कास्य शक्तिरिहागन्तुमपि सीते मनोरथैः ॥२३॥
न शक्यो वायुराकाशे पाशैर्बन्द्धुं महाजवः । दीप्यमानस्य चाप्यग्नेर्ग्रहीतुं विमला शिखा ॥२४॥
त्रयाणामपि लोकानां न तं पश्यामि शोभने । विक्रमेण नयेद्यस्त्वां मद्बाहुपरिपालिताम् ॥२५॥
लङ्कायां सुमहद्राज्यमिदं त्वमनुपालय । त्वत्प्रेष्या मद्विधाश्चैव देवाश्चापि चराचराः ॥२६॥
अभिषेकोदकक्लिन्ना तुष्टा च रमयस्व माम् । दुष्कृतं यत्पुरा कर्म वनवासेन तद्गतम् ॥२७॥
यश्च ते सुकृतो धर्मस्तस्येह फलमाप्नुहि । इह माल्यानि सर्वाणि दिव्यगन्धानि मैथिलि ॥२८॥
भूषणानि च मुख्यानि सेवस्व च मया सह । पुष्पकं नाम सुश्रोणि भ्रातुर्वैश्रवणस्य मे ॥२९॥
विमानं सूर्यसंकाशं तरसा निर्जितं मया । विशालं रमणीयं च तद्विमानं मनोजवम् ॥३०॥
तत्र सीते मया सार्धं विहरस्व यथासुखम् । वदनं पद्मसंकाशं विमलं चारुदर्शनम् ॥३१॥
शोकार्तं तु वरारोहे न भ्राजति वरानने । एवं वदति तस्मिन् सा वस्त्रान्तेन वराङ्गना ॥३२॥
पिधायेन्दुनिभं सीता मुखमश्रूण्यवर्तयत् । ध्यायन्तीं तामिवास्वस्थां दीनां चिन्ताहतप्रभाम् ॥३३॥
उवाच वचनं पापो रावणो राक्षसेश्वरः । अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोपकृतेन च ॥३४॥
आर्षोऽयं दैवनिष्यन्दो यस्त्वामभिगमिष्यति । एतौ पादौ मया स्निग्धौ शिरोभिः परिपीडितौ ॥३५॥
प्रसादं कुरु मे क्षिप्रं वश्यो दासोऽहमस्मि ते । इमाः शून्या मया वाचः शुष्यमाणेन भाषिताः ॥३६॥

क्या शक्ति है ॥ २३ ॥ आकाश में महावेग से गमन करने वाले वायु को कोई रस्सी से नहीं बाँध सकता, देदीप्यमान अग्नि की प्रज्वलित शिखा को कोई पकड़ नहीं सकता ॥ २४ ॥ इस त्रिलोकी में किसी को भी मैं ऐसा नहीं देखता, हे शुभानने ! जो मेरे भुजबल से रक्षित तुम को पराक्रम पूर्वक यहाँ से ले जाय ॥ २५ ॥ लंका के इस विशाल राज्य का तुम पालन करो। मेरे समान देवता तथा दानव वर्ग और मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा ॥ २६ ॥ अभिषेक जल से सिक्त तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ और मुझ से रमण करो। इससे पूर्व जो भी तुम्हारा दुष्कर्म जनित दुर्भाग्य था, वह वनवास के द्वारा समाप्त हो गया ॥ २७ ॥ अब जो तुम्हारे सुकर्म जनित सौभाग्य का फल है, उस को प्राप्त करो। हे मिथिला की राजकुमारि ! दिव्य गन्ध वाली इन सम्पूर्ण मालाओं ॥ २८ ॥ तथा मुख्य आभूषणों का तुम मेरे साथ सेवन करो। हे उत्तमाङ्गी ! मेरे भाई कुबेर का पुष्पक ॥ २९ ॥ विमान जो सूर्य के समान देदीप्यमान, मनोवेग के समान गति वाला, विशाल तथा रमणीय है और जिसे मैंने संग्राम में जीता है ॥ ३० ॥ हे सीते ! तुम मेरे साथ उसपर विहार करो। कमल के समान विमल तुम्हारा शोभनीय यह मुखमण्डल ॥ ३१ ॥ हे शुभानने सीते ! शोक के कारण आज सुशोभित नहीं हो रहा है। रावण के ऐसा कहने पर वह सर्वश्रेष्ठ सीता वस्त्र के प्रान्त से ॥ ३२ ॥ चन्द्रमा के समान अपने मुख मण्डल को ढांप कर मन्द मन्द स्वर में रोने लगी। चिन्ता से जिस की प्रभा नष्ट हो गई है, ऐसी ध्यान परायणा सीता के प्रति ॥३३॥ वीर राक्षसराज रावण बोला—हे सीते ! धर्मलोप की जो तुम्हें लज्जा है उसे अब समाप्त करो ॥ ३४ ॥ हे देवी ! तुम्हारे विषय में मैं ने जो यह भाव प्रदर्शित किया है, वह ऋषि सम्मत है। तुम्हारे इन कोमल चरणों को मैं अपने सिर पर रखता हूं अर्थात् मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं ॥ ३५ ॥ तुम मुझ पर शीघ्र ही दया करो, मैं तुम्हारा प्रिय, अधीन रहने वाला दास हूँ। काम संतप्त रावणने इस प्रकार सीता के प्रति नीच बातें कहीं ॥ ३६ ॥ इस रावण ने आज तक किसी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न चापि रावणः कांचिन्मूर्ध्ना स्त्रीं प्रणमेत ह। एवमुक्त्वा दशग्रीवो मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥३७॥
कृतान्तवशमापन्नो ममेयमिति मन्यते ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सीताविलोभनोद्यमो नाम पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः

वत्सरावधिकरणम्

सा तथोक्ता तु वैदेही निर्भया शोककर्शिता। तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत ॥ १ ॥
राजा दशरथो नाम धर्मसेतुरिवाचलः। सत्यसन्धः परिज्ञातो यस्य पुत्रः स राघवः ॥ २ ॥
रामो नाम स धर्मात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः। दीर्घबाहुर्विशालाक्षो दैवतं स पतिर्मम ॥ ३ ॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा यत्ते प्राणान् हरिष्यति ॥ ४ ॥
प्रत्यक्षं यद्यहं तस्य त्वया स्यां धर्षिता बलात्। शयिता त्वं हतः संख्ये जनस्थाने यथा खरः ॥ ५ ॥
य एते राक्षसाः प्रोक्ता घोररूपा महाबलाः। राघवे निर्विषाः सर्वे सुपर्णे पन्नगा यथा ॥ ६ ॥
तस्य ज्याविप्रमुक्तास्ते शराः काञ्चनभूषणाः। शरीरं विधमिष्यन्ति गङ्गाकूलमिवोर्मयः ॥ ७ ॥
असुरैर्वा सुरैर्वा त्वं यद्यवध्योऽसि रावण। उत्पाद्य सुमहद्वैरं जीवंस्तस्य न मोक्ष्यसे ॥ ८ ॥

स्त्री को सिर झुका कर प्रणाम नहीं किया। इस प्रकार की बातें सीता के प्रति कह कर मरणासन्न वह रावण यह समझने लगा कि यह सीता मेरे अधीन हो गई ॥ ३७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'सीता को लुभाने का यत्न' विषयक पचपनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥५५॥

छप्पनवां सर्ग

वर्ष भर की अवधि करना

रावण के इस प्रकार कहने पर शोक से पीड़ित तथा निर्भय सीता अपने तथा रावण के मध्य में तृण को रख कर यह बोली ॥ १ ॥ अचल धर्म सेतु के समान राजा दशरथ नाम के सम्राट् हैं। सत्यप्रतिज्ञ विश्वविदित रामचन्द्र उन के पुत्र हैं ॥ २ ॥ इस त्रिलोकी में वह धर्मात्मा 'राम' इस नाम से प्रसिद्ध हैं। विशाल भुजा वाले, विशालाक्ष, देव के तुल्य वे मेरे पति हैं ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न होने वाले, सिंह के समान कंधे वाले, महातेजस्वी रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण के साथ तुम्हारे प्राणों का वध कर डालेंगे ॥ ४ ॥ यदि तुम रामचन्द्र के सामने इस प्रकार मेरा बलात् अपहरण करते तो संग्राम में उसी समय मर कर इस प्रकार सो जाते जैसे जनस्थान में खर सो गया ॥ ५ ॥ भयंकर महाबली जिन राक्षसों का वर्णन तुमने मेरे सामने किया है, वे रामचन्द्र के सामने उसी प्रकार शक्तिहीन हैं जैसे गरुड़ पक्षी के सामने सर्प ॥ ६ ॥ रामचन्द्र के प्रत्यञ्चायुक्त धनुष से छूटे हुए काञ्चन भूषणभूषित वे बाण तुम्हारे शरीर को उसी प्रकार विद्ध करेंगे जैसें गंगा की लहरें उसके तट को तोड़ती हैं ॥ ७ ॥ हे रावण ! तुम देव और असुरों के द्वारा जो अवध्य हो, तब भी रामचन्द्र के साथ महान् वैर कर के अपने प्राणों को नहीं बचा सकते ॥ ८ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स ते जीवितशेषस्य राघवोऽन्तकरो बली। पशोर्यूपगतस्येव जीवितं तव दुर्लभम् ॥ ९ ॥
यदि पश्येत्स रामस्त्वां रोषदीप्तेन चक्षुषा। रक्षस्त्वमद्य निर्दग्धो यथा रुद्रेण मन्मथः ॥१०॥
यश्चन्द्रं नभसो भूमौ पातयेन्नाशयेत वा। सागरं शोषयेद्वापि स सीतां मोचयेदिह ॥११॥
गतायुस्त्वं गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः। लङ्का वैधव्यसंयुक्ता त्वत्कृते न भविष्यति ॥१२॥
न ते पापमिदं कर्म सुखोदर्कं भविष्यति। याहं नीता विनाभावं पतिपार्श्वात्त्वया बलात् ॥१३॥
स हि देवरसंयुक्तो मम भर्ता महाद्युतिः। निर्भयो वीर्यमाश्रित्य शून्ये वसति दण्डके ॥१४॥
स ते दर्पं बलं वीर्यमुत्सेकं च तथाविधम्। अपनेष्यति गात्रेभ्यः शरवर्षेण संयुगे ॥१५॥
यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः। तदा कार्येषु प्रमाद्यन्ति नराः कालवशं गताः॥१६॥
मां प्रधृष्य स ते कालः प्राप्तोऽयं राक्षसाधम। आत्मनो राक्षसानां च वधायान्तःपुरस्य च ॥१७॥
न शक्या यज्ञमध्यस्था वेदिः स्रुग्भाण्डमण्डिता। द्विजातिमन्त्रसंपूता चण्डालेनावमर्दितुम् ॥१८॥
तथाहं धर्मनित्यस्य धर्मपत्नी पतिव्रता। त्वया स्प्रष्टुं न शक्यास्मि राक्षसाधम पापिना ॥१९॥
क्रीडन्ती राजहंसेन पद्मषण्डेषु नित्यदा। हंसी सा तृणषण्डस्थं कथं द्रक्ष्येत मद्गुकम् ॥२०॥
इदं शरीरं निःसंज्ञं बन्ध वा घातयस्व वा। नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापि राक्षस ॥२१॥
न तु शक्ष्याम्युपक्रोशं पृथिव्यां दातुमात्मनः। एवमुक्त्वा तु वैदेही क्रोधात्सुपरुषं वचः ॥२२॥
रावणं मैथिली तत्र पुनर्नोवाच किंचन। सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं रोमहर्षणम् ॥२३॥

वह बली रामचन्द्र तुम्हारे शेष जीवन का अन्त कर देंगे। वध करने के लिये खम्भे में बंधे हुए पशु के समान अब तुम्हारा जीवन दुर्लभ है ॥ ९ ॥ यदि रोषपरिपूर्ण नेत्रों से राम तुम्हें देखें तो तुम आज ही उसी प्रकार दग्ध हो जाओ जैसे रुद्र के दिव्यनेत्र से काम जल गया ॥ १० ॥ जो क्रुद्ध होकर चन्द्रमण्डल को भी आकाश से गिरा सकते हैं तथा उसे नष्ट कर सकते हैं। जो समुद्र को भी अपने तीक्ष्ण बाणों से सुखा सकते हैं, वे ही रामचन्द्र मुझ सीता का भी यहां से उद्धार कर सकते हैं ॥ ११ ॥ तुम्हारे प्राण, तुम्हारी लक्ष्मी, तुम्हारा पराक्रम तथा तुम्हारी सम्पूर्ण शक्ति नष्ट होगी। तुम्हारे इस दुष्कर्म से लंका नगरी भी स्वामिहीन हो जायेगी ॥ १२ ॥ तुम्हारा यह पापकर्म तुम्हारे लिये सुखकर नहीं होगा। क्यों कि तुम ने मुझे अकारण हठपूर्वक पति से वियुक्त किया है ॥१३॥ मेरे देवर से युक्त महान् कान्तिवाले मेरे पति अपने पराक्रम का आश्रय ले कर निर्भय इस दण्डक वन में रहते हैं ॥ १४ ॥ वे रामचन्द्र तुम्हारे पराक्रम, बल, मदावलेप (किसी की बात को न मानना) इन सारी बातों को संग्राम में अपने बाणों की वर्षा के द्वारा तुम्हारे शरीर से पृथक कर देंगे ॥ १५ ॥ काल से प्रेरित जब प्राणियों का विनाश काल उपस्थित हो जाता है, तब कालकवलित वे प्राणी अपने शुभ कार्यों में प्रमाद करने लगते हैं ॥ १६ ॥ हे राक्षसाधम रावण ! मेरा इस प्रकार अपमान करने पर अपना, राक्षसों का तथा अन्तःपुर की स्त्रियों का वध करने के लिये वह काल आ पहुँचा है ॥ १७ ॥ ब्राह्मणों के मन्त्र से पूजित यज्ञवेदि के मध्य में स्रुवा-यज्ञपात्रादि को जैसे चाण्डाल स्पर्श नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ उसी प्रकार हे राक्षसाधम रावण ! धर्म प्रेमी, दृढव्रती उस रामचन्द्र की मुझ धर्मपत्नी को तू पापी स्पर्श नहीं कर सकता ॥ १९ ॥ जो राजहंसी कमल कानन में राजहंस के साथ नित्य क्रीडा करती है वह घासों के बीच में रहने वाले जल कौवे को कैसे देखेगी ॥ २० ॥ चेष्टा रहित इस शरीर को बांधो या मार डालो। हे राक्षस रावण ! मैं इस शरीर तथा जीवन की रक्षा नहीं करना चाहती। ॥ २१ ॥ इस पृथ्वी पर मैं अपनी अपकीर्ति नहीं कराना चाहती। क्रोधावेश में सीता इस प्रकार कठोर वचनों को कह कर ॥ २२ ॥ पुनः रावण के प्रति और कुछ न बोली। रोंगटे खड़े करने वाले जानकी के इन कठोर वचनों को सुनकर ॥ २३ ॥ जानकी को आतङ्कित करने वाले इन वाक्यों को रावण ने कहा—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्युवाच ततः सीतां भयसंदर्शनं वचः । शृणु मैथिलि मद्वाक्यं मासान् द्वादश भामिनि ॥२४॥
कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि । ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः ॥२५॥
इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणः शत्रुरावणः । राक्षसीश्च ततः क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥२६॥
शीघ्रमेव हि राक्षस्यो विकृता घोरदर्शनाः । दर्पमस्या विनेष्यध्वं मांसशोणितभोजनाः ॥२७॥
वचनादेव तास्तस्य सुघोरा राक्षसीगणाः । कृतप्राञ्जलयो भूत्वा मैथिलीं पर्यवारयन् ॥२८॥
स ताः प्रोवाच राजासौ रावणो घोरदर्शनः । प्रचाल्य चरणोत्कर्षैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥२९॥
अशोकवनिकामध्ये मैथिली नीयतामियम् । तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता ॥३०॥
तत्रैनां तर्जनैर्घोरैः पुनः सान्त्वैश्च मैथिलीम् । आनयध्वं वशं सर्वा वन्यां गजवधूमिव ॥३१॥
इति प्रतिसमादिष्टा राक्षस्यो रावणेन ताः । अशोकवनिकां जग्मुर्मैथिलीं प्रतिगृह्य तु ॥३२॥
सर्वकालफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् । सर्वकालमदैश्चापि द्विजैः समुपसेविताम् ॥३३॥
सा तु शोकपरीताङ्गी मैथिली जनकात्मजा । राक्षसीवशमापन्ना व्याघ्रीणां हरिणी यथा ॥३४॥
शोकेन महता ग्रस्ता मैथिली जनकात्मजा । न शर्म लभते भीरु पाशबद्धा मृगी यथा ॥३५॥
न विन्दते तत्र तु शर्म मैथिली विरूपनेत्राभिरतीव तर्जिता ।
पतिं स्मरन्ती दयितं च दैवतं विचेतनाभूद्भयशोकपीडिता ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे वत्सरावधिकरणं नाम षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

हे मिथिला की राजकुमारी जानकी ! मेरी इन बातों को सुनो । हे भामिनी ! बारह महीने का समय मैं तुम्हें दे रहा हूँ ॥ २४ ॥ हे सीते ! इस अवधि के अन्दर मुझ को नहीं स्वीकार किया तो प्रातःकाल के भोजन के लिये पाचक तुम्हारे शरीर के टुकड़े २ कर डालेंगे ॥ २५ ॥ शत्रुओं को रुलाने वाला रावण सीता से इस प्रकार कठोर बातें कह कर पास में उपस्थित राक्षसियों से क्रोधपूर्वक यह वचन बोला ॥२६॥ मांस-रक्त का पान करने वाली तथा विख्यात भयंकर रूप वाली राक्षसियों ! तुम शीघ्र ही इस सीता के दर्प को दूर करो ॥ २७ ॥ रावण के कथनानुसार उन भयंकर रूप वाली राक्षसियों ने करबद्ध चारों ओर से सीता को घेर लिया ॥ २८ ॥ चलते समय अपने चरणों के आघात से पृथ्वी को कम्पायमान करता हुआ वह रावण उन भयानक राक्षसियों से इस प्रकार बोला ॥ २९ ॥ तुम सभी सीता को अशोकवाटिका में ले जाओ और वहां इसके साथ में रह कर इसकी रक्षा करो ॥ ३० ॥ वहां अपने गर्जन-तर्जन के द्वारा तथा सान्त्वना आदि के मार्ग से सीता को तुम सभी इस प्रकार अपने वश में ले आओ जैसे वन के हाथी को वश में लाया जाता है ॥ ३१ ॥ रावण के ऐसा आदेश देने पर वे राक्षसियां सीता को ले कर अशोक-वाटिका में चली गईं ॥ ३२ ॥ जो (अशोकवाटिका) सम्पूर्ण ऋतुओं में फल देने वाले वृक्षों तथा पुष्पों से आवृत है, सर्व काल में जहां पक्षिगण आनन्द से शब्द करते हैं ॥ ३३ ॥ शोक से दुर्बल होने वाली वह मिथिला की राजकुमारी जानकी राक्षसियों के अधीन इस प्रकार हो गई, जैसे बाघिन के अधीन कोई मृगी हो जाती है ॥ ३४ ॥ महान् शोक से त्रस्त वह सीता सर्वथा सुख-शान्ति से इस प्रकार रहित हो गई जिस प्रकार कोई मृगी जाल में बंध गई हो ॥ ३५ ॥ विकराल नेत्रवाली उन राक्षसियों के डराने धमकाने से मिथिला की राजकुमारी सीता को उस अशोकवाटिका में शान्ति नहीं मिली । भय तथा शोक से पीड़ित जानकी अपने प्राणप्रिय पति तथा प्रिय देवर का स्मरण करती हुई मूर्च्छित हो गई ॥ ३६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'वर्ष भर की अवधि करना' विषयक छप्पनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥५६॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सप्तपञ्चाशः सर्गः

रामप्रत्यागमनम्

राक्षसं मृगरूपेण चरन्तं कामरूपिणम् । निहत्य रामो मारीचं तूर्णं पथि निवर्तते ॥ १ ॥
तस्य संत्वरमाणस्य द्रष्टुकामस्य मैथिलीम् । क्रूरस्वनोऽथ गोमायुर्विननादास्य पृष्ठतः ॥ २ ॥
स तस्य स्वरमाज्ञाय दारुणं रोमहर्षणम् । चिन्तयामास गोमायोः स्वरेण परिशङ्कितः ॥ ३ ॥
अशुभं बत मन्येऽहं गोमायुर्वाशते यथा । स्वस्ति स्यादपि वैदेह्या राक्षसैर्भक्षणं विना ॥ ४ ॥
मारीचेन तु विज्ञाय स्वरमालक्ष्य मामकम् । आक्रुष्टं मृगरूपेण लक्ष्मणः शृणुयाद्यदि ॥ ५ ॥
स सौमित्रिः स्वरं श्रुत्वा तां च हित्वा च मैथिलीम् । तयैव प्रहितः क्षिप्रं मत्सकाशमिहैष्यति ॥ ६ ॥
राक्षसैः सहितैर्नूनं सीताया ईप्सितो वधः । काञ्चनश्च मृगो भूत्वा व्यपनीयाश्रमात्तु माम् ॥ ७ ॥
दूरं नीत्वा तु मारीचो राक्षसोऽभूच्छराहतः । हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति यद्वाक्यं व्याजहार ह ॥ ८ ॥
अपि स्वस्ति भवेद्द्वाभ्यां रहिताभ्यां मया वने । जनस्थाननिमित्तं हि कृतवैरोऽस्मि राक्षसैः ॥ ९ ॥
निमित्तानि च घोराणि दृश्यन्तेऽद्य बहूनि च । इत्येवं चिन्तयन् रामः श्रुत्वा गोमायुनिःस्वनम् ॥ १० ॥

सत्तावनवां सर्ग

राम का लौटना

मृग के रूप में दौड़ते हुए कामाचारी राक्षस मारीच को मार कर रामचन्द्र मार्ग से शीघ्र ही लौट पड़े ॥ १ ॥ सीता को देखने की लालसा से शीघ्रता पूर्वक लौटने वाले रामचन्द्र के पृष्ठ भाग में सियार भयंकर शब्दों में बोलने लगा ॥ २ ॥ रोंगटे खड़े करने वाले तथा अनेक प्रकार की आशंका उत्पन्न करने वाले सियार के उस दारुण शब्द को सुनकर रामचन्द्र अत्यन्त शङ्कित हो गये ॥ ३ ॥ जिस प्रकार यह सियार बोल रहा है, इससे मुझे अत्यन्त अमंगल की आशङ्का हो रही है । राक्षसों ने सीता को नहीं खाया, या सीता कुशल पूर्वक है क्या ? ॥ ४ ॥ मृगरूपी मारीच ने मेरे शब्द का अनुकरण करता हुआ शब्द किया है । इस लिये स्यात् लक्ष्मण इस शब्द को सुन ले ॥ ५ ॥ उस शब्द को सुन कर, सीता को छोड़ कर अथवा सीता के भेजे जाने पर लक्ष्मण शीघ्र ही यहां मेरे पास आ जायेगा ॥ ६ ॥ काञ्चन मृग वन कर और मुझे आश्रम से दूर ले जाकर संघटित राक्षसों को सीता का बध करना निश्चय ही अभीष्ट था ॥ ७ ॥ वह मृगरूपी मारीच मुझे दूर ले जाकर मेरे बाणों से आहत होने पर अपने असली राक्षस रूप को प्राप्त हो गया और हा लक्ष्मण ! मैं मारा गया, इस प्रकार का जो शब्द बोला है ॥ ८ ॥ इस प्रकार मेरे शब्द का अनुकरण करने वाले मारीच के शब्द को सुन कर सीता तथा लक्ष्मण को उस वन में शान्ति और धैर्य कैसे प्राप्त होगा । जनस्थान की घटना को ले कर राक्षसों से मेरा वैर भी हो गया है ॥ ९ ॥ आज अनेक प्रकार के भयानक दृश्य दिखाई दे रहे हैं । सियार के इस प्रकार के शब्द को सुन कर रामचन्द्र चिन्ता करने लगे ॥ १० ॥ मृगरूपी राक्षस के द्वारा अपने को आसन से हटाये जाने पर चिन्ता करते हुए शंकित

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आत्मनश्चापनयनान्मृगरूपेण रक्षसा । आजगाम जनस्थानं राघवः परिशङ्कितः ॥११॥
तं दीनमानसं दीनमासेदुर्मृगपक्षिणः । सव्यं कृत्वा महात्मानं घोरांश्च ससृजुः स्वरान् ॥१२॥
तानि दृष्ट्वा निमित्तानि महाघोराणि राघवः । न्यवर्तताथ त्वरितो जवेनाश्रममात्मनः ॥१३॥
स तु सीतां वरारोहां लक्ष्मणं च महाबलम् । आजगाम जनस्थानं चिन्तयन्नेव राघवः ॥१४॥
ततो लक्ष्मणमायान्तं ददर्श विगतप्रभम् । ततोऽविदूरे रामेण समीयाय स लक्ष्मणः ॥१५॥
विषण्णः सुविषण्णेन दुःखितो दुःखभागिना । संजगर्हेऽथ तं भ्राता दृष्ट्वा लक्ष्मणमागतम् ॥१६॥
विहाय सीतां विजने वने राक्षससेविते । गृहीत्वा च करं सव्यं लक्ष्मणं रघुनन्दनः ॥१७॥
उवाच मधुरोदर्कमिदं वचनमार्तवत् । अहो लक्ष्मण गर्ह्यं ते कृतं यस्त्वं विहाय ताम् ॥१८॥
सीतामिहागतः सौम्य कच्चित्स्वस्ति भवेदिह । न मेऽस्ति संशयो वीर सर्वथा जनकात्मजा ॥१९॥
विनष्टा भक्षिता वापि राक्षसैर्वनचारिभिः । अशुभान्येव भूयिष्ठं यथा प्रादुर्भवन्ति मे ॥२०॥
अपि लक्ष्मण सीतायाः सामग्र्यं प्राप्नुयावहे । जीवन्त्याः पुरुषव्याघ्र सुतायाः जनकस्य वै ॥२१॥
यथा वै मृगसङ्घाश्च गोमायुश्चैव भैरवम् । वाशन्ते शकुनाश्चापि प्रदीप्तामभितो दिशम् ॥२२॥
अपि स्वस्ति भवेत्तस्या राजपुत्र्या महाबल ॥

इदं हि रक्षो मृगसंनिकाशं प्रलोभ्य मां दूरमनुप्रयातम् ।
हतं कथंचिन्महता श्रमेण स राक्षसोऽभून्म्रियमाण एव ॥२३॥

रामचन्द्र जनस्थान की ओर चले ॥ ११ ॥ उस दुःखी चित्त वाले दीन महात्मा रामचन्द्र के बाएं पार्श्व में मृग-पक्षियों ने घोर शब्द करना आरम्भ कर दिया ॥ १२ ॥ महान् घोर उपद्रवी निमित्तों को देख कर रामचन्द्र शीघ्र ही अत्यन्त वेग से अपने आश्रम की ओर लौट पड़े ॥ १३ ॥ उत्तम कुल में उत्पन्न होने वाली सीता तथा महाबली लक्ष्मण की चिन्ता करते हुए रामचन्द्र जनस्थान में आ गये ॥ १४ ॥ पश्चात् आते हुए प्रभाहीन लक्ष्मण को राम ने देखा। कुछ दूर पर ही लक्ष्मण रामचन्द्र से जा कर मिले ॥ १५ ॥ खिन्न चित्त वाले लक्ष्मण दुःखी तथा खिन्न चित्त वाले अपने भाई रामचन्द्र से मिले। राक्षसों से परिपूर्ण उस विजन वन में सीता को छोड़ कर अपने भाई लक्ष्मण को आते हुए देख कर रामचन्द्र उन्हें फटकारने लगे। अपने भाई लक्ष्मण का बायां हाथ पकड़ कर ॥ १६, १७ ॥ परिणाम में मधुर तथा ऊपर से कठोर शब्द दुःखी रामचन्द्र बोले—हे लक्ष्मण! सीता को जो तुम अकेली छोड़ आये हो, यह बहुत घृणित काम तुमने किया है ॥ १८ ॥ सीता को छोड़ कर तुम जो यहां आये हो, ऐसी अवस्था में क्या सीता मंगलमयी होगी। सीता अब कुशलपूर्वक होगी, क्या इसमें अब भी सन्देह है अर्थात् मुझे तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥ १९ ॥ जिस प्रकार ये अशुभ सूचक अपशकुन हो रहे हैं, उस से तो यही पता चल रहा है कि वनचारी राक्षसों ने उसको मार दिया है अथवा खा लिया है ॥ २० ॥ हे लक्ष्मण! क्या सीता के जीवन का कुशल समाचार हम प्राप्त कर सकेंगे। हे नरकेसरी! क्या जनक की राजकुमारी सीता को हम लोग जीवित अवस्था में प्राप्त कर सकेंगे ॥ २१ ॥ जिस प्रकार मृगों तथा सियारों के ये भयानक शब्द हो रहे हैं, पक्षियों के रूखे शब्द हो रहे हैं तथा दिशाएं अग्नि शिखा से परिपूर्ण दिखाई दे रही हैं, हे महाबली लक्ष्मण! इससे तो स्यात् ही सीता कुशलपूर्वक हो ॥ २२ ॥ मृग के रूप में यह मारीच राक्षस मुझ को लोभायमान करके अत्यन्त दूर ले गया। अत्यन्त परिश्रम से जब मैंने किसी प्रकार इसको मारा तो यह अपने राक्षस के रूप में आ गया ॥ २३ ॥ हे लक्ष्मण! मेरा चित्त अत्यन्त खिन्न हो रहा है,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनश्च मे दीनमिहाप्रहृष्टं चक्षुश्च सव्यं कुरुते विकारम् ।
असंशयं लक्ष्मण नास्ति सीता हृता मृता वा पथि वर्तते वा ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे रामप्रत्यागमनं नाम सप्तपञ्चाशः सर्गः॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः

अनिमित्तदर्शनम्

स दृष्ट्वा लक्ष्मणं दीनं शून्यं दशरथात्मजः । पर्यपृच्छत धर्मात्मा वैदेहीमागतं विना ॥ १ ॥
प्रस्थितं दण्डकारण्यं या मामनुजगाम ह । क्व सा लक्ष्मण वैदेही यां हित्वा त्वमिहागतः ॥ २ ॥
राज्यभ्रष्टस्य दीनस्य दण्डकान् परिधावतः । क्व सा दुःखसहाया मे वैदेहीतनुमध्यमा ॥ ३ ॥
यां विना नोत्सहे वीर मुहूर्तमपि जीवितुम् । क्व सा प्राणसहाया मे सीता सुरसुतोपमा ॥ ४ ॥
पतित्वममराणां वा पृथिव्याश्चापि लक्ष्मण । तां विना तपनीयाभां नेच्छेयं जनकात्मजाम् ॥ ५ ॥
कच्चिज्जीवति वैदेही प्राणैः प्रियतरा मम । कच्चित्प्रव्राजनं सौम्य न मे मिथ्या भविष्यति ॥ ६ ॥
सीतानिमित्तं सौमित्रे मृते मयि गते त्वयि । कच्चित्सकामा सुखिता कैकेयी सा भविष्यति ॥ ७ ॥

मेरी बायीं आँख फड़क रही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सीता अब नहीं है। हरण कर ली गई, मर गई या हरण करके कोई लिये जा रहा है ॥ २४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'राम का लौटना' विषयक सत्तावनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवां सर्ग

अनिमित्तदर्शन

सीता के विना दीन तथा अप्रसन्न आये हुए लक्ष्मण को देख कर धर्मात्मा रामचन्द्र ने उनसे पूछा ॥१॥ दण्डकारण्य में प्रवेश करते समय जो सीता मेरे साथ आई थी, हे लक्ष्मण ! अब वह कहां है जिसे छोड़ कर यहाँ आये हो ॥ २ ॥ राज्यच्युत दीन दुःखी दण्डकारण्य में भ्रमण करने वाले मेरे दुःख में सदा सहायक रहने वाली मेरी सहचरी कृशाङ्गी सीता कहां है ॥ ३ ॥ हे वीर ! जिस के विना मैं एक मुहूर्त्त भी जीवित नहीं रह सकता, देवकन्या के समान मेरी प्राणप्यारी कहां है ॥ ४ ॥ तपनीय कनक की कान्तिवाली सीता के विना हे लक्ष्मण ! मैं पृथ्वी तथा अमर लोक का राज्य भी नहीं चाहता ॥ ५ ॥ प्राणप्रिय सीता क्या जीवित है ? हे वीर ! मेरा वनवास-व्रत क्या पूरा होगा या यों ही अधूरा रह जायेगा ॥ ६ ॥ सीता के कारण मेरी मृत्यु हो जाने पर तथा तुम्हारे अयोध्या लौट जाने पर माता कैकेयी अपने मनोरथ के पूर्ण हो जाने पर क्या सुखी होगी ॥ ७ ॥ राज्ययुक्त पुत्र को प्राप्त कर सफल मनोरथ वाली कैकेयी की सेवा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सपुत्रराज्यां सिद्धार्थां मृतपुत्रा तपस्विनी । उपस्थास्यति कौसल्या कच्चित्सौम्य न कैकयीम् ॥८॥
यदि जीवति वैदेही गमिष्याम्याश्रमं पुनः । सुवृत्ता यदि वृत्ता सा प्राणांस्त्यक्ष्यामि लक्ष्मण ॥९॥
यदि मामाश्रमगतं वैदेही नाभिभाषते । पुनः प्रहसिता सीता विनशिष्यामि लक्ष्मण ॥१०॥
ब्रूहि लक्ष्मण वैदेही यदि जीवति वा न वा । त्वयि प्रमत्ते रक्षोभिर्भक्षिता वा तपस्विनी ॥११॥
सुकुमारी च बाला च नित्यं चादुःखदर्शिनी । मद्वियोगेन वैदेही व्यक्तं शोचति दुर्मनाः ॥१२॥
सर्वथा रक्षसा तेन जिह्मेन सुदुरात्मना । वदता लक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापि जनितं भयम् ॥१३॥
श्रुतस्तु शङ्के वैदेह्या स स्वरः सदृशो मम । त्रस्तया प्रेषितस्त्वं च द्रष्टुं मां शीघ्रमागतः ॥१४॥
सर्वथा तु कृतं कष्टं सीतामुत्सृजता वने । प्रतिकर्तुं नृशंसानां रक्षसां दत्तमन्तरम् ॥१५॥
दुःखिताः खरघातेन राक्षसाः पिशिताशनाः । तैः सीता निहता घोरैर्भविष्यति न संशयः ॥१६॥
अहोऽस्मिन् व्यसने मग्नः सर्वथा शत्रुसूदन । किं न्विदानीं करिष्यामि शङ्के प्राप्तव्यमीदृशम् ॥१७॥
इति सीतां वरारोहां चिन्तयन्नेव राघवः । आजगाम जनस्थानं त्वरया सहलक्ष्मणः ॥१८॥

विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपं क्षुधा श्रमाच्चैव पिपासया च ।
विनिःश्वसञ्शुष्कमुखो विवर्णः प्रतिश्रयं प्राप्य समीक्ष्य शून्यम् ॥१९॥

में मृतपुत्रा मेरी माता कौसल्या क्या सेविका के रूप में उपस्थित होगी ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! यदि आश्रम में सीता जीवित है तो मैं आश्रम में जाऊंगा। यदि शुभ आचार वाली सीता इस संसार में नहीं है तो मैं भी प्राण त्याग दूंगा ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! आश्रम में जाने पर यदि हंसती हुई सीता मुझ से भाषण नहीं करेगी तो मैं अवश्य ही प्राण त्याग दूँगा ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण ! बोलो, सीता जीवित है या नहीं। अथवा तुम्हारी असावधानी से राक्षसों ने तपस्विनी सीता को खा तो नहीं लिया ॥ ११ ॥ कोमलाङ्गी, कभी भी दुःख न सहने वाली, बालस्वभावा सीता मेरे वियोग से निश्चय ही खिन्न मन तथा उदास हो गई होगी ॥ १२ ॥ उस कुटिल दुरात्मा राक्षस मारीच ने 'हे लक्ष्मण' इस शब्द को कहते हुए तुम्हें भी आतङ्कित कर दिया है ॥ १३ ॥ मेरे शब्द का अनुकरण कर के जो शब्द उस कुटिल राक्षस ने किया था, सीता ने अवश्य उसको सुन लिया, जिससे डर कर सीता ने मुझे देखने के लिये तुम्हें भेजा। अतः तुम शीघ्र यहाँ चले आये हो ॥ १४ ॥ उस विजन वन में सीता को छोड़ कर तुम ने अत्यन्त अनुचित काम किया है तथा उन निर्दयी राक्षसों को बदला लेने का तुमने अवसर दिया है ॥ १५ ॥ ये मांसाहारी राक्षस अपने स्वामी खर के मारे जाने से दुःखी हैं। इसलिये उन भयङ्कर राक्षसों ने निस्सन्देह सीता को मार दिया होगा ॥ १६ ॥ हे शत्रुओं के नाश करने वाले लक्ष्मण ! मैं भयंकर विपत्ति में सर्वथा फंस गया हूं। मैं इस समय कर ही क्या सकता हूं। इस आये हुए दुःख को तो भोगना ही पड़ेगा ॥ १७ ॥ रमणीय सीता के सम्बन्ध में इस प्रकार की बातें सोचते हुए रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण के साथ शीघ्रतापूर्वक जनस्थान में आये ॥ १८ ॥ क्षुधा, प्यास तथा श्रम से दुःखी, मुख जिसका सूख रहा है, लम्बी सांस लेते हुए दुःखी रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण को फटकारते हुए आश्रम के समीप आये तथा अपने आश्रम को शून्य देखा ॥ १९ ॥ वह रामचन्द्र अपने आश्रम में प्रवेश कर सीता के विहार करने वाले कुछ क्रीडास्थलों को देख

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वमाश्रमं संप्रविगाह्य वीरो विहारदेशाननुसृत्य कांश्चित् ।
एतत्तदित्येव निवासभूमौ प्रहृष्टरोमा व्यथितो बभूव ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे अनिमित्तदर्शनं नाम अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः

लक्ष्मणागमनविगर्हणम्

अथाश्रमादुपावृत्तमन्तरा रघुनन्दनः । परिपप्रच्छ सौमित्रिं रामो दुःखादिदं वचः ॥ १ ॥
तमुवाच किमर्थं त्वमागतोऽपास्य मैथिलीम् । यदा सा तव विश्वासाद्वने विरहिता मया ॥ २ ॥
दृष्ट्वैवाभ्यागतं त्वां मे मैथिलीं त्यज्य लक्ष्मण । शङ्कमानं महत्पापं यत्सत्यं व्यथितं मनः ॥ ३ ॥
स्फुरते नयनं सव्यं बाहुश्च हृदयं च मे । दृष्ट्वा लक्ष्मण दूरे त्वां सीताविरहितं पथि ॥ ४ ॥
एवमुक्तस्तु सौमित्रिर्लक्ष्मणः शुभलक्षणः । भूयोदुःखसमाविष्टो दुःखितं राममब्रवीत् ॥ ५ ॥
न स्वयं कामकारेण तां त्यक्त्वाहमिहागतः । प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥ ६ ॥
आर्येणेव परिक्रुष्टं हा सीते लक्ष्मणेति च । परित्राहीति यद्वाक्यं मैथिल्यास्तच्छ्रुतिं गतम् ॥ ७ ॥

कर, यह वही स्थान है, ऐसा कह कर अपने निवास स्थान में आये। उस को देख कर रोमाञ्चित तथा अत्यन्त दुःखी हो गये ॥ २० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'अनिमित्त दर्शन' विषयक अट्ठावनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥५८॥

उनसठवां सर्ग

लक्ष्मणागमन की निन्दा

रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ने अपने आने के पश्चात् सम्पूर्ण आश्रम का वृत्तान्त दुःख पूर्वक लक्ष्मण से पूछा ॥ १ ॥ सीता को छोड़ कर तुम वन में यहां क्यों आये जब कि सीता को विश्वासपूर्वक मैंने तुम्हारे ऊपर छोड़ दिया था ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! जब तुम सीता को छोड़ कर यहां आये तो तुम्हें देखते ही मेरे हृदय में महान् अनिष्ट की आशंका होने लगी और मेरा मन अत्यन्त दुःखी हो गया ॥ ३ ॥ मेरा बायां नेत्र, बायीं भुजा और मेरे हृदय का वाम भाग फड़कने लगा। सीता के विना तुम को देखते ही ये सारी बातें होने लगीं ॥ ४ ॥ शुभ लक्षण वाले सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण रामचन्द्र के ऐसा कहने पर अत्यन्त दुःखी हो गये और दुःखी भ्राता रामचन्द्र से बोले ॥ ५ ॥ मैं स्वयं अपनी इच्छा से सीता को छोड़ कर यहां नहीं आया, किन्तु सीता के ही मर्मवेधी वाक्यों से व्यथित हो कर मैं आप के पास आया हूं ॥ ६ ॥ आप ने ही 'हे लक्ष्मण ! मेरी रक्षा करो, ऐसा उच्च स्वर में शब्द किया जिस को मिथिला की राजकुमारी जानकी ने सुन लिया ॥ ७ ॥ आपके इस आर्त्त शब्द को सुन कर आप से स्नेह रखने वाली सीता अत्यन्त विह्वल हो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सा तमार्तस्वरं श्रुत्वा तव स्नेहेन मैथिली । गच्छ गच्छेति मामाह रुदती भयविह्वला ॥ ८ ॥
प्रचोद्यमानेन मया गच्छेति बहुशस्तया । प्रत्युक्ता मैथिली वाक्यमिदं त्वत्प्रत्ययान्वितम् ॥ ९ ॥
न तत्पश्याम्यहं रक्षो यदस्य भयमावहेत् । निर्वृता भव नास्त्येतत्केनाप्येवमुदाहृतम् ॥१०॥
विगर्हितं च नीचं च कथमार्योऽभिधास्यति । त्राहीति वचनं सीते यस्त्रायेत्त्रिदशानपि ॥११॥
किंनिमित्तं तु केनापि भ्रातुरालम्ब्य मे स्वरम् । विस्वरं व्याहृतं वाक्यं लक्ष्मण त्राहि मामिति॥१२॥
राक्षसेनेरितं वाक्यं त्राहि त्राहीति शोभने । न भवत्या व्यथा कार्या कुमारीजनसेविता ॥१३॥
अलं वैक्लव्यमालम्ब्य स्वस्था भव निरुत्सुका । न सोऽस्ति त्रिषु लोकेषु पुमान् यो राघवं रणे ॥१४॥
जातो वा जायमानो वा संयुगे यः पराजयेत् । न जय्यो राघवो युद्धे देवैः शक्रपुरोगमैः ॥१५॥
एवमुक्ता तु वैदेही परिमोहितचेतना । उवाचाश्रूणि मुञ्चन्ती दारुणं मामिदं वचः ॥१६॥
भावो मयि तवात्यर्थं पाप एव निवेशितः । विनष्टे भ्रातरि प्राप्तुं न च त्वं मामवाप्स्यसि ॥१७॥
संकेताद्भरतेन त्वं रामं समनुगच्छसि । क्रोशन्तं हि यथात्यर्थं नैनमभ्यवपद्यसे ॥१८॥
रिपुः प्रच्छन्नचारी त्वं मदर्थमनुगच्छसि । राघवस्यान्तरं प्रेप्सुस्तथैनं नाभिपद्यसे ॥१९॥
एवमुक्तो हि वैदेह्या संरब्धो रक्तलोचनः । क्रोधात्प्रस्फुरमाणोष्ठः आश्रमादस्मि निर्गतः ॥२०॥
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं रामः संतापमोहितः । अब्रवीद्दुष्कृतं सौम्य तां विना यत्त्वमागतः ॥२१॥

कर रोती हुई हे लक्ष्मण ! शीघ्र जाओ २ ऐसा कहने लगी ॥ ८ ॥ सीता के बार २ ऐसा कहने पर मैंने उन्हें विश्वास दिलाने के लिये ये बातें कहीं ॥ ९ ॥ संसार में ऐसा कोई राक्षस नहीं दिखाई देता जिससे भ्राता रामचन्द्र को भय हो । आप इस चिन्ता को छोड़ देवें । भय का कोई कारण नहीं । ये शब्द किसी और के हैं ॥ १० ॥ निन्दित तथा नीच 'त्राहि' इस शब्द को आर्य कुल कमल दिवाकर भाई रामचन्द्र कैसे कहेंगे, जो अपने भुजबल से देवताओं की भी रक्षा कर सकते हैं ॥ ११ ॥ किसी नीच अभिप्राय को ले कर भाई रामचन्द्र के स्वर का अनुकरण करते हुए किसी पतित व्यक्ति ने 'हे लक्ष्मण ! बचाओ' ऐसा शब्द कहा होगा ॥ १२ ॥ भयभीत हो कर उस राक्षस ने ही 'बचाओ, ऐसा शब्द प्रयोग किया है । हे देवि! सामान्य स्त्री के समान आप को शोक नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥ आप इतनी दुःखी क्यों हो रही हैं, धैर्य रखें, घबराहट को आप छोड़ देवें । त्रिलोकी में कोई भी पुरुष ऐसा न हुआ, न है और न होगा जो संग्राम में भ्राता रामचन्द्र को पराजित कर सके । इन्द्र आदि के नेतृत्व से युक्त देवताओं से भी संग्राम में भाई रामचन्द्र अजेय हैं ॥ १४,१५ ॥ मेरे इस प्रकार कहने पर आपके प्रति स्नेह रखने वाली आर्या सीता आंखों से आंसू बहाती हुई मुझ से यह दारुण वचन बोली ॥१६॥ भाई के मर जाने पर तुम मुझे प्राप्त करना चाहते हो, पापमय भाव तुम्हारे मन में है । किन्तु तुम किसी भी अवस्था में मुझे प्राप्त नहीं कर सकते ॥ १७ ॥ तुम भरत के संकेत पर ही रामचन्द्र का पीछा कर रहे हो जो कि रक्षा के लिये बार २ पुकारे जाने पर भी उनके पास नहीं जा रहे हो ॥ १८ ॥ तुम रामचन्द्र के छिपे हुए शत्रु हो जो मुझे पाने के लिये अवसर की प्रतीक्षा में रामचन्द्र के साथ आये हो । इसी लिये रामचन्द्र की विपन्न अवस्था में तुम उनकी सहायता के लिये नहीं जा रहे हो ॥ १९ ॥ जानकी के ऐसा कहने पर मुझे अत्यन्त क्रोध आ गया, मेरी आंखें लाल हो गईं, तथा मेरा ओंठ कांपने लगा । इस अवस्था में मैं आश्रम से बाहर निकल गया ॥ २० ॥ लक्ष्मण के ऐसा कहने पर अत्यन्त दुःखित रामचन्द्र ने अपने भाई लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण ! सीता के विना तुम जो यहां आगये, यह अच्छा नहीं किया ॥२१॥ यह जानते हुए भी कि मैं राक्षसों को नष्ट करने के लिये सर्वथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जानन्नपि समर्थं मां रक्षसां विनिवारणे । अनेन क्रोधवाक्येन मैथिल्या निःसृतो भवान् ॥२२॥
न हि ते परितुष्यामि त्यक्त्वा यदसि मैथिलीम् । क्रुद्धायाः परुषं वाक्यं श्रुत्वा यच्चमिहागतः ॥२३॥
सर्वथा त्वपनीतं ते सीतया यत्प्रचोदितः । क्रोधस्य वशमापन्नो नाकरोः शासनं मम ॥२४॥
असौ हि राक्षसः शेते शरेणाभिहतो मया । मृगरूपेण येनाहमाश्रमादपवाहितः ॥२५॥
विकृष्य चापं परिधाय सायकं सलीलबाणेन च ताडितो मया ।
मार्गीं तनुं त्यज्य स विक्लवस्वरो बभूव केयूरधरः स राक्षसः ॥२६॥
शराहतेनैव तदार्तया गिरा स्वरं ममालम्ब्य सुदूरसंश्रवम् ।
उदाहृतं तद्वचनं सुदारुणं त्वमागतो येन विहाय मैथिलीम् ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे लक्ष्मणागमनविगर्हणं नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः

रामोन्मादः

भृशमाव्रजमानस्य तस्याधोवामलोचनम् । प्रास्फुरच्चास्खलद्रामो वेपथुश्चाप्यजायत ॥ १ ॥
उपालक्ष्य निमित्तानि सोऽशुभानि मुहुर्मुहुः । अपि क्षेमं नु सीताया इति वै व्याजहार च ॥ २ ॥

समर्थ हूं, तो भी सीता की इन क्रोधपूर्ण बातों को सुन कर तुम यहां चले आये ॥ २२ ॥ मैं तुम्हारे इस व्यवहार से प्रसन्न नहीं हूं, जो क्रुद्ध हुई सीता की बातों को सुन कर उसे छोड़ कर यहां चले आये ॥ २३ ॥ तुम्हारा यह काम सर्वथा नीति विरुद्ध हुआ है जो क्रोध में आई हुई सीता की प्रेरणा से मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है ॥ २४ ॥ मेरे बाणों से मरा हुआ यह मारीच राक्षस सो रहा है, जो कि मृग का रूप धारण करके आश्रम से मुझे यहां ले आया ॥ २५ ॥ खिंचे हुए धनुष पर बाण संधान कर विना प्रयास ही मैंने उसे बाण से मारा। बाण लगते ही मृग के शरीर को छोड़ कर आर्त शब्द को करता हुआ केयूर धारण करने वाला यह राक्षस के रूप में हो गया ॥ २६ ॥ बाण से आहत होने पर मेरे स्वर का अनुकरण करते हुए उसने जो आर्त अवस्था में दूर तक सुनाई देने वाले दारुण शब्द का प्रयोग किया, उसे सुनकर ही सीता को छोड़ कर तुम यहां आये ॥ २७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'लक्ष्मणागमन की निन्दा' विषयक उनसठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥५९॥

साठवां सर्ग

राम का उन्माद

मृग को मार कर आश्रम में आते हुए रामचन्द्र के बाएं नेत्र का निचला भाग फड़कने लगा। उनके शरीर में कम्पन होने लगा तथा वे चलते हुए फिसल पड़े ॥ १ ॥ बार-बार इस प्रकार अशुभ निमित्तों को देख कर "सीता का कल्याण हो" इस प्रकार का शब्द कहा ॥ २ ॥ सीता के दर्शन की लालसा से शीघ्रता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्वरमाणो जगामाथ सीतादर्शनलालसः । शून्यमावसथं दृष्ट्वा बभूवोद्विग्नमानसः ॥ ३ ॥
उद्भ्रमन्निव वेगेन विक्षिपन् रघुनन्दनः । तत्र तत्रोटजस्थानमभिवीक्ष्य समन्ततः ॥ ४ ॥
ददर्श पर्णशालां च रहितां सीतया तदा । श्रिया विरहितां ध्वस्तां हेमन्ते पद्मिनीमिव ॥ ५ ॥
रुदन्तमिव वृक्षैश्च म्लानपुष्पमृगद्विजम् । श्रिया विहीनं विध्वस्तं संत्यक्तवनदेवतम् ॥ ६ ॥
विप्रकीर्णाजिनकुशं विप्रविद्धबृसीकटम् । दृष्ट्वा शून्योटजस्थानं विललाप पुनः पुनः ॥ ७ ॥
हृता मृता वा नष्टा वा भक्षिता वा भविष्यति । निलीनाप्यथवा भीरुरथवा वनमाश्रिता ॥ ८ ॥
गता विचेतुं पुष्पाणि फलान्यपि च वा पुनः । अथवा पद्मिनीं याता जलार्थं वा नदीं गता ॥ ९ ॥
यत्नान्मृगयमाणस्तु नाससाद वने प्रियाम् । शोकरक्तेक्षणः शोकादुन्मत्त इव लक्ष्यते ॥१०॥
वृक्षाद्वृक्षं प्रधावन् स गिरेश्चाद्रिं नदान्नदीम् । बभूव विलपन् रामः शोकपङ्कार्णवाप्लुतः ॥११॥
अपि क्वचित्त्वया दृष्टा सा कदम्बप्रिया प्रिया । कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम् ॥१२॥
स्निग्धपल्लवसंकाशा पीतकौशेयवासिनी । शंसस्व यदि वा दृष्टा बिल्व बिल्वोपमस्तनी ॥१३॥
अथवार्जुन शंस त्वं प्रियां तामर्जुनप्रियाम् । जनकस्य सुता भीरुर्यदि जीवति वा न वा ॥१४॥
ककुभः ककुभोरूं तां व्यक्तं जानाति मैथिलीम् । यथा पल्लवपुष्पाढ्यो भाति ह्येष वनस्पतिः ॥१५॥
भ्रमरैरुपगीतश्च यथा द्रुमवरो ह्ययम् । एष व्यक्तं विजानाति तिलकस्तिलकप्रियाम् ॥१६॥

पूर्वक रामचन्द्र चल पड़े। सीता से शून्य उस आश्रम को देख कर रामचन्द्र का मन अत्यन्त उद्विग्न हो गया ॥ ३ ॥ रामचन्द्र आश्रम के समीप सीता को ढूंढने के लिये इधर उधर घूमने लगे। चारों तरफ आश्रम को देखकर [शोकावेग में हाथ पैर पटकने लगे] ॥ ४ ॥ हेमन्त ऋतु में ध्वस्त कमलिनी की तरह सीता के बिना कान्ति हीन उस पर्णशला को देखा ॥ ५ ॥ मानो सम्पूर्ण वृक्ष जहां रो रहे हैं, पशुपक्षी गण मलिन हो गए हैं, वन के देवताओं ने जिस स्थान को छोड़ दिया है, जिसकी कान्ति बिलकुल नष्ट हो गई है ॥ ६ ॥ मृगाजिन, कुशासन, कुश तथा चटाइयां जहां तहां बिखेर दी गई हैं, इस प्रकार उस शून्य पर्णकुटी में रामचन्द्र बार २ विलाप करने लगे ॥७॥ सीता हर ली गई, मर गई, कहीं चली गई, या उसे राक्षसों ने खा लिया अथवा स्वयं कहीं अपने आप छिप गई है या कहीं वन में घूमने चली गई है ॥ ८ ॥ फूल या फल को चुनने तो नहीं चली गई अथवा कहीं सरोवर पर तो नहीं चली गई या जल लाने के लिये गोदावरी नदी पर तो नहीं चली गई ॥ ९ ॥ अनेक प्रयत्न करने पर भी रामचन्द्र प्रिय जानकी को प्राप्त न कर सके। शोक से नेत्र रक्तवर्ण हो गये तथा उन्मत्त की तरह वे लक्षित होने लगे ॥ १० ॥ शोकपङ्क के समुद्र में डूबते हुए तथा नाना प्रकार के विलाप करते हुए, एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष के पास दौड़ते हुए पर्वत, नदी तथा विशाल नद के तटों पर घूमने लगे ॥ ११ ॥ हे कदम्ब ! कदम्ब से प्रेम करने वाली मेरी प्राण-प्यारी सीता को क्या तुमने देखा है। यदि तुम जानते हो तो चन्द्रमुखी सीता को बताओ ॥ १२ ॥ चिकने पल्लव के समान कोमलाङ्गी, पीताम्बर धारण करने वाली, बिल्व फल के समान स्तन वाली सीता को तुमने देखा है तो बताओ ॥१३॥ हे अर्जुन वृक्ष ! अर्जुन वृक्ष से प्रेम करने वाली जानकी को तुम बताओ— जनक की राजकुमारी, कृशाङ्गी सीता जीवित है या नहीं ॥ १४ ॥ लता, पल्लव, पुष्पों से समन्वित यह ककुभ वृक्ष अत्यन्त शोभित हो रहा है। शुभाङ्गी मिथिला की राजकुमारी को यह अवश्य जानता है ॥ १५ ॥ भ्रमर जिस पर गुञ्जार कर रहे हैं ऐसे यह तिलक वृक्ष सबमें श्रेष्ठ हैं। तिलक से प्रेम करने वाली सीता को स्पष्ट ही यह तिलक वृक्ष जानता है ॥ १६ ॥ हे अशोक ! तुम शोक के दूर करने वाले हो। शोकापहत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अशोक शोकापनुद शोकोपहतचेतसम् । त्वन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रियासंदर्शनेन माम् ॥१७॥
यदि ताल त्वया दृष्टा पक्वतालफलस्तनी । कथयस्व वरारोहां कारुण्यं यदि ते मयि ॥१८॥
यदि दृष्टा त्वया सीता जम्बु जाम्बूनदप्रभा । प्रियां यदि विजानीषे निःशङ्कं कथयस्व मे ॥१९॥
अहो त्वं कर्णिकाराद्य सुपुष्पैः शोभसे भृशम् । कर्णिकारप्रिया साध्वी शंस दृष्टा प्रिया यदि ॥२०॥
चूतनीपमहासालान् पनसान् कुरवान् धवान् । दाडिमाननसान् गत्वा दृष्ट्वा रामो महायशाः ॥२१॥
वकुलानथ पुंनागान् चम्पकान् केतकीस्तथा । पृच्छन् रामो वने भ्रान्त उन्मत्त इव लक्ष्यते ॥२२॥
अथवा मृगशावाक्षीं मृग जानासि मैथिलीम् । मृगविप्रेक्षणी कान्ता मृगीभिः सहिता भवेत् ॥२३॥
गज सा गजनासोरूर्यदि दृष्टा त्वया भवेत् । तां मन्ये विदितां तुभ्यमाख्याहि वरवारण ॥२४॥
शार्दूल यदि सा दृष्टा प्रिया चन्द्रनिभानना । मैथिली मम विस्रब्धं कथयस्व न ते भयम् ॥२५॥
किं धावसि प्रिये दूरं दृष्टासि कमलेक्षणे । वृक्षैराच्छाद्य चात्मानं किं मां न प्रतिभाषसे ॥२६॥
तिष्ठ तिष्ठ वरारोहे न तेऽस्ति करुणा मयि । नात्यर्थं हास्यशीलासि किमर्थं मामुपेक्षसे ॥२७॥
पीतकौशेयकेनासि सूचिता वरवर्णिनि । धावन्त्यपि मया दृष्टा तिष्ठ यद्यस्ति सौहृदम् ॥२८॥
नैव सा नूनमथवा हिंसिता चारुहासिनी । कृच्छ्रं प्राप्तं हि मां नूनं यथोपेक्षितुमर्हति ॥२९॥
व्यक्तं सा भक्षिता बाला राक्षसैः पिशिताशनैः । विभज्याङ्गानि सर्वाणि मया विरहिता प्रिया ॥३०॥

चित्तवाले मुझको प्रिय जानकी का दर्शन करने से अपने अशोक नाम को चरितार्थ करो ॥ १७ ॥ हे ताल वृक्ष ! पक्व ताल फल के समान स्तन वाली सीता को यदि तुमने देखा है तो मुझ पर दया करके बताओ सीता कहां है ॥ १८ ॥ हे जामुन वृक्ष ! जाम्बूनद अर्थात् काञ्चनवर्णवाली प्राणप्रिया सीता को तुमने देखा है या जानते हो तो निःशङ्क हो कर बताओ ॥ १९ ॥ हे कर्णिकार ! (कनेर) तुम अपने पुष्पित फूलों से अत्यन्त शोभित हो रहे हो । कर्णिकार पुष्पों से प्रेम करने वाली साध्वी प्राणप्रिया सीता को यदि तुमने देखा है तो बताओ कि वह कहां है ॥ २० ॥ आम्र, कदम्ब, साल, कटहल, कुरर, अनार, इन वृक्षों के पास महायशस्वी रामचन्द्र गए और इनको देख कर ॥ २१ ॥ मौलसरी, पुन्नाग, चन्दन, केवड़ा आदि वृक्षों से पूछते हुए शोकोद्भ्रान्त रामचन्द्र उस समय उन्मत्त के समान दिखाई देते थे ॥ २२ ॥ अथवा हे मृग ! मृगों के समान देखनेवाली उस सीता को तुम जानते हो ? मेरी कान्ता मृगनयनी सीता मृगियों के साथ अवश्य होगी ॥ २३ ॥ हे गज ! तुम्हारे सूंड के समान ऊरु (जंघा) वाली सीता को यदि तुमने देखा है तो तुम बताओ । हे श्रेष्ठ गज ! तुम उसे अवश्य जानते हो ऐसा मुझे ज्ञात है ॥ २४ ॥ हे शार्दूल ! यदि चन्द्रमुखी सीता को देखा हो तो विश्वासपूर्वक तुम मुझे बताओ । तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥ हे प्रिये ! तुम क्यों भाग रही हो । हे कमलनयनी ! मैंने निश्चय ही तुमको देख लिया, अपने आप को वृक्षों में छिपा कर मुझ से क्यों नहीं बोल रही हो ॥ २६ ॥ हे उत्तमाङ्गी सीते ! ठहरो, ठहरो मेरे ऊपर आज तुम्हारी दया क्यों नहीं हो रही है । तुम इतनी हास्य करने वाली तो थी नहीं, तौ भी आज मेरे प्रति यह हंसी दिल्लगी कैसी ? ॥ २७ ॥ हे सीते ! पीले वस्त्रों के द्वारा मैं ने तुम को पहचान लिया । दौड़ती हुई तुमको मैंने देख लिया । यदि मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम है तो खड़ी हो जाओ ॥ २८ ॥ निश्चय यह सीता नहीं है अथवा सीता को रावण ने मार दिया । क्योंकि इस दीनअवस्था में सीता मेरी इतनी उपेक्षा नहीं कर सकती ॥ २९ ॥ मांसाहारी राक्षसों ने मुझसे रहित सीता के अंग प्रत्यंग को टुकड़े २ कर के खा लिया ॥ ३० ॥ सुन्दर दांत, ओष्ठ और नासिका वाला तथा सुन्दर कुण्डलों वाला, पूर्ण चन्द्रमा के समान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नूनं तच्छुभदन्तोष्ठं सुनासं चारुकुण्डलम् । पूर्णचन्द्रनिभं ग्रस्तं मुखं निष्प्रभतां गतम् ॥३१॥
सा हि चम्पकवर्णाभा ग्रीवा ग्रैवेयशोभिता । कोमला विलपन्त्यास्तु कान्ताया भक्षिता शुभा ॥३२॥
नूनं विक्षिप्यमाणौ तौ बाहू पल्लवकोमलौ । भक्षितौ वेपमानाग्रौ सहस्ताभरणाङ्गदौ ॥३३॥
मया विरहिता बाला रक्षसां भक्षणाय वै । सार्थेनेव परित्यक्ता भक्षिता बहुबान्धवा ॥३४॥
हा लक्ष्मण महाबाहो पश्यसि त्वं प्रियां क्वचित् । हा प्रिये क्व गता भद्रे हा सीतेति पुनः पुनः ॥३५॥
इत्येवं विलपन् रामः परिधावन् वनाद्वनम् । क्वचिदुद्भ्रमते वेगात् क्वचिद्विभ्रमते बलात् ॥३६॥
क्वचिन्मत्त इवाभाति कान्तान्वेषणतत्परः । स वनानि नदीः शैलान् गिरिप्रस्रवणानि च ॥३७॥
काननानि च वेगेन भ्रमत्यपरिसंस्थितः ॥

तथा स गत्वा विपुलं महद्वनं परीत्य सर्वं त्वथ मैथिलीं प्रति ।
अनिष्ठिताशः स चकार मार्गणे पुनः प्रियायाः परमं परिश्रमम् ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे रामोन्मादो नाम षष्टितमः सर्गः ॥६० ॥

जानकी का मुखमण्डल उस समय अवश्य ही प्रभाहीन हो गया होगा ॥ ३१ ॥ हारों के पहनने से सुशोभित चन्दन वर्ण के समान, कोमल विलाप करती हुई जानकी का गला राक्षसों ने अवश्य खा लिया होगा ॥३२॥ अङ्गदादि आभूषणों से भूषित इधर-उधर घुमाने पर कम्पायमान पल्लवों के समान सीता की भुजाओं को राक्षसों ने अवश्य खा लिया है ॥ ३३ ॥ राक्षसों के खाने के लिये ही मैंने सीता को अपने से अलग किया जैसे बहुत बन्धु-बांधवों वाली स्त्री अपने साथियों से रहित मार दी जाती है ॥ ३४ ॥ हे विशाल भुजा वाले लक्ष्मण ! क्या तुम प्राणप्रिया जानकी को कहीं देख रहे हो । हा प्राणप्रिये सीते ! हा भद्रे ! तुम कहां चली गई हो ॥ ३५ ॥ इस प्रकार बार २ विलाप करते हुए इस वन से उस वन में दौड़ते हुए रामचन्द्र कहीं एक दम उछल पड़ते हैं तथा सीता के सादृश्य वाली किसी वस्तु को देख कर सहसा उद्भ्रान्त हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ सीता के अन्वेषण करने में तत्पर नदी, वन, पर्वतीय झरनों पर घूमते हुए रामचन्द्र उन्मत्त के समान प्रतीत होते थे । वन आदि के भ्रमण में वे शान्ति पूर्वक कहीं ठहरते नहीं थे ॥ ३७ ॥ विशाल वन में जा कर सीता के खोजने के लिये जहां तहां बहुत प्रयत्न किया, [सीता के न मिलने पर भी] मिलने की आशा रखते हुए प्राणप्रिया सीता को खोजने का प्रयत्न उन्होंने पुनः प्रारम्भ कर दिया ॥ ३८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'राम का उन्माद' विषयक साठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६० ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकषष्टितमः सर्गः

सीतान्वेषणम्

दृष्ट्वाश्रमपदं शून्यं रामो दशरथात्मजः । रहितां पर्णशालां च विध्वस्तान्यासनानि च ॥ १ ॥
अदृष्ट्वा तत्र वैदेहीं संनिरीक्ष्य च सर्वशः । उवाच रामः प्राक्रुश्य प्रगृह्य रुचिरौ भुजौ ॥ २ ॥
क्व नु लक्ष्मण वैदेही कं वा देशमितो गता । केनाहृता वा सौमित्रे भक्षिता केन वा प्रिया ॥ ३ ॥
वृक्षेणाच्छाद्य यदि मां सीते हसितुमिच्छसि । अलं ते हसितेनाद्य मां भजस्व सुदुःखितम् ॥ ४ ॥
यैः सह क्रीडसे सीते विश्वस्तैर्मृगपोतकैः । एते हीनास्त्वया सौम्ये ध्यायन्त्यस्राविलेक्षणाः ॥ ५ ॥
सीता रहितोऽहं वै न हि जीवामि लक्ष्मण । वृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम् ॥ ६ ॥
परलोके महाराजो नूनं द्रक्ष्यति मे पिता । कथं प्रतिज्ञां संश्रुत्य मया त्वमभियोजितः ॥ ७ ॥
अपूरयित्वा तं कालं मत्सकाशमिहागतः । कामवृत्तमनार्यं मां मृषावादिनमेव च ॥ ८ ॥

इकसठवां सर्ग

सीता की खोज

दशरथ के राजकुमार रामचन्द्र ने उस शून्य आश्रम को देखा। सीता से रहित उस आश्रम को देखा जहां पर बैठने के आसन इधर-उधर बिखरे पड़े थे ॥ १ ॥ जानकी को वहां न देख कर तथा चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर रामचन्द्र अपनी दोनों भुजाओं को उठा कर जोर से बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! सीता कहां है ? वह यहां से कहां चली गई ? हे वीर ! उसका किस ने हरण कर कर लिया अथवा उस को किस ने खा लिया ॥ ३ ॥ हे सीते ! यदि तुम अपने आप को वृक्षों से छिपा कर हँसी करना चाहती हो, तो उस हंसी को अब बन्द कर दो। मुझ दुःखी के समीप अब तुम आ जाओ ॥ ४ ॥ हे सीते ! जिन पालतू मृगों के साथ तुम खेला करती थी, हे सुकुमारि ! आज तुम्हारे विना वे चिन्ताग्रस्त हो कर आंखों से आंसू बहा रहे हैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण ! जानकी के विना मैं जी नहीं सकता। सीता के हरण जनित महान् शोकों ने मुझे घेर लिया है ॥६॥ मेरी मृत्यु के पश्चात् ❀ स्वर्ग में शोकाक्रान्त मुझ को पिता जी देखेंगे और वे मुझ से पूछेंगे कि तुम ने वनवास की पूर्ण प्रतिज्ञा करके उसे पहिले ही क्यों तोड़ दिया ॥ ७ ॥ अपने वनवास की प्रतिज्ञा को विना पूर्ण किये हुए हमारे पास कैसे आये ? तुम स्वेच्छाचारी तथा मृषावादी हो ॥ ८ ॥

❀ यहां अर्थवाद है। प्रत्येक शब्द का अर्थ अभीष्ट नहीं है, केवल उनका आशय लेकर यह दिखलाया गया है कि यदि जानकी के वियोग में वनवास की अवधि के पूर्व ही मैं मर जाता हूँ, तो यह प्रश्न अवश्य उठ सकता है कि पिता के सामने १४ वर्ष वनवास की प्रतिज्ञा कर रामचन्द्र बीच में ही वनवासव्रत को तोड़ कर क्यों लोकान्तर चला गया। यह घटना राम के महत्त्व तथा प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचा रही है। क्योंकि इसके विषय में कहा गया है— लक्षणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम्। केवल इन भावों को प्रदर्शित करने मात्र के लिये यहां इन शब्दों का प्रयोग हुआ है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धिक् त्वामिति परे लोके व्यक्तं वक्ष्यति मे पिता । विवशं शोकसंतप्तं दीनं भग्नमनोरथम् ॥ ९ ॥
मामिहोत्सृज्य करुणं कीर्त्तिर्नरमिवानृजुम् । क्व गच्छसि वरारोहे मां नोत्सृज सुमध्यमे ॥१०॥
त्वया विरहितश्चाहं त्यक्ष्ये जीवितमात्मनः । इतीव विलपन् रामः सीतादर्शनलालसः ॥११॥
न ददर्श सुदुःखार्तो राघवो जनकात्मजाम् । अनासोदयमानं तं सीतां शोकपरायणम् ॥१२॥
पङ्कमासाद्य विपुलं सीदन्तमिव कुञ्जरम् । लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाच हितकाम्यया ॥१३॥
मा विषादं महाबुद्धे कुरु यत्नं मया सह । इदं गिरिवरं शूर बहुकन्दरशोभितम् ॥१४॥
प्रियकाननसंचारा वनोन्मत्ता च मैथिली । सा वनं वा प्रविष्टा स्यान्नलिनीं वा सुपुष्पिताम् ॥१५॥
सरितं वापि संतप्ता मीनवञ्जुलसेविताम् । वित्रासयितुकामा वा लीना स्यात्कानने क्वचित् ॥१६॥
जिज्ञासमाना वैदेही त्वां मां च पुरुषर्षभ । तस्या ह्यन्वेषणे श्रीमन् क्षिप्रमेव यतावहै ॥१७॥
वनं सर्वं विचिन्वानो यत्र सा जनकात्मजा । मन्यसे यदि काकुत्स्थ मा स्म शोके मनः कृथाः ॥१८॥
एवमुक्तस्तु सौहार्दाल्लक्ष्मणेन समाहितः । सह सौमित्रिणा रामो विचेतुमुपचक्रमे ॥१९॥
तौ वनानि गिरींश्चैव सरितश्च सरांसि च । निखिलेन विचिन्वानौ सीतां दशरथात्मजौ ॥२०॥
तस्य शैलस्य सानूनि गुहाश्च शिखराणि च । निखिलेन विचिन्वन्तौ नैव तामभिजग्मतुः ॥२१॥
विचित्य सर्वतः शैलं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । नेह पश्यामि सौमित्रे वैदेहीं पर्वते शुभाम् ॥२२॥

तुम को धिक्कार है । इस प्रकार जिनका मनोरथ समाप्त हो गया है, विवश तथा शोक से सन्तप्त पिता जी परलोक में मुझसे कहेंगे ॥ ९ ॥ हे कमनीय सीते ! जैसे कुटिल व्यक्ति को कीर्ति छोड़ देती है, उसी प्रकार आज तुम मुझ को छोड़ कर कहां जाती हो ॥ १० ॥ इस प्रकार सीता के दर्शन की लालसा रखते हुए तथा विलाप करते हुए यह कहा—हे सीते ! तुम से वियुक्त हो कर मैं अपने प्राणों को छोड़ दूंगा ॥ ११ ॥ प्रयत्न करने पर भी दुःखी रामचन्द्र जानकी को नहीं देख पाये । अगाध कीचड़ में फंसे हुए दुःखी हाथी के समान सीता के न प्राप्त होने पर शोक संतप्त रामचन्द्र के प्रति हितकामना की दृष्टि से लक्ष्मण यह बोले ॥१२,१३॥ हे विशाल बुद्धि वाले रामचन्द्र ! आप दुःखी न हों । मेरे साथ सीता को खोजने का प्रयत्न करें । हे वीर ! यह पर्वत अनेक प्रकार की कन्दराओं से शोभित है ॥ १४ ॥ वन में घूमना सीता को अत्यन्त प्रिय है । वन की रमणीयता को देख कर वह उद्भ्रान्त सी हो जाती है । या तो वह वन में छिप गई है अथवा कमल-विकसित किसी सरोवर पर चली गई है ॥ १५ ॥ अथवा वेतस शाखा तथा मछलियों से परिपूर्ण किसी नदी तट पर चली गई है, या हम लोगों को आतङ्कित करने के लिये कहीं वन में छिप गई है ॥ १६ ॥ हे नर-केसरी ! वह हम लोगों की अन्वेषण शक्ति की परीक्षा करना चाहती है । इस लिये हे बन्धु ! उस को खोजने के लिये हम लोग शीघ्र ही प्रयत्न करें ॥ १७ ॥ हम लोग इस सम्पूर्ण वन को खोजें अथवा जहां कहीं भी वह जानकी हो, आप खोजना चाहते हों, तो उसे खोजें । आप मन में शोक न करें ॥ १८ ॥ प्रेम पूर्वक लक्ष्मण के ऐसा कहने पर रामचन्द्र सावधान हो गये तथा लक्ष्मण के साथ सीता का स्वयं अन्वेषण करने लगे ॥ १९ ॥ सम्राट् दशरथ के वे दोनों राजकुमार वन, पर्वत, नदी तथा तालाबों के समीप सीता को खोजने लगे ॥ २० ॥ उस पर्वत के शिखर पर्वतीय चट्टान तथा सम-विषम भूमियों को दोनों भाईयों ने खोजा किन्तु जानकी का पता नहीं लगा ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण पर्वत को खोजकर रामचन्द्र लक्ष्मण से बोले—हे लक्ष्मण ! इस शुभ पर्वत पर मैं जानकी को नहीं देख रहा हूं ॥ २२ ॥ दण्डकवन में घूमते हुए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततो दुःखाभिसंतप्तो लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । विचरन् दण्डकारण्यं भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥२३॥
प्राप्स्यसि त्वं महाप्राज्ञ मैथिलीं जनकात्मजाम् । यथा विष्णुर्महाबाहुर्बलिं बद्ध्वा महीमिमाम् ॥२४॥
एवमुक्तस्तु सौहार्दाल्लक्ष्मणेन स राघवः । उवाच दीनया वाचा दुःखाभिहतचेतनः ॥२५॥
वनं सर्वं सुविचितं पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः । गिरिश्चायं महाप्राज्ञ बहुकन्दरनिर्झरः ॥२६॥
न हि पश्यामि वैदेहीं प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥
एवं स विलपन् रामः सीताहरणकर्शितः । दीनः शोकसमाविष्टो मुहूर्तं विह्वलोऽभवत् ॥२७॥
स विह्वलितसर्वाङ्गो गतबुद्धिर्विचेतनः । निषसादातुरो दीनो निःश्वस्याशीतमायतम् ॥२८॥
बहुशः स तु निःश्वस्य रामो राजीवलोचनः । हा प्रियेति विचुक्रोश बहुशो बाष्पगद्गदः ॥२९॥
तं ततः सान्त्वयामास लक्ष्मणः प्रियबान्धवः । बहुप्रकारं धर्मज्ञः प्रश्रितः प्रश्रिताञ्जलिः ॥३०॥
अनादृत्य तु तद्वाक्यं लक्ष्मणोष्ठपुटाच्च्युतम् । अपश्यंस्तां प्रियां सीतां प्राक्रोशत्स पुनः पुनः ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सीतान्वेषणं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥६१॥

तेजस्वी अपने भाई राम के प्रति दुःख से सतंप्त लक्ष्मण बोले ॥ २३ ॥ हे विशाल भुजा वाले प्राज्ञ रामचन्द्र मिथिला की राजकुमारी जानकी को आप अवश्य प्राप्त होंगे जिस प्रकार महाराज विष्णु ने असुर बली को बांध कर विश्व का राज्य प्राप्त किया किया था ॥ २४ ॥ दुःख से आक्रान्त रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण के ऐसा कहने पर दीनता पूर्वक उन से यह वचन बोले ॥ २५ ॥ सम्पूर्ण वन, खिले हुए कमलों से सरोवर अच्छी तरह खोज डाले और नाना प्रकार की कन्दरा और झरनों से परिपूर्ण इस पर्वत को भी खोज डाला किन्तु हे महाप्राज्ञ ! प्राणों से भी प्रिय उस विदेहकुमारी को मैं नहीं देख पा रहा हूं ॥ २६ ॥ सीता के हरण से अत्यन्त दुर्बल, शोकाक्रान्त विलाप करते हुए रामचन्द्र कुछ समय के लिये अत्यन्त विचलित हो गये ॥ २७ ॥ अत्यन्त विह्वलता के कारण जिसके अंग शिथिल हो गये हैं जिस की बुद्धि तथा चेतना लुप्त सी हो गई है, ऐसे रामचन्द्र सीता वियोग जनित दुःख न सहने के कारण गरम २ लम्बे सांस लेने लगे ॥ २८ ॥ अनेक बार लम्बे २ सांस लेते हुए कमलनयन रामचन्द्र हा प्रिये ! हा प्रिये ! शब्दों को कहते हुए रोने लगे ॥ २९ ॥ इस प्रकार विलाप करने वाले अपने बन्धु रामचन्द्र को शोकाक्रान्त लक्ष्मण हाथ जोड़ कर शान्ति पूर्वक समझाने लगे ॥ ३० ॥ लक्ष्मण के मुँह से निकली हुई बातों को अनसुनी करके रामचन्द्र अपनी प्राण-प्रिया सीता को न देखते हुए उसे बार २ पुकारने लगे ॥ ३१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'सीता की खोज' विषयक इकसठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥६१॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्विषष्टितमः सर्गः

राघवविलापः

सीतामपश्यन् धर्मात्मा शोकोपहतचेतनः । विललाप महाबाहू रामः कमललोचनः ॥ १ ॥
पश्यन्निव स तां सीतामपश्यन् मदनार्दितः । उवाच राघवो वाक्यं विलापाश्रयदुर्वचम् ॥ २ ॥
त्वमशोकस्य शाखाभिः पुष्पप्रियतया प्रिये । आवृणोषि शरीरं ते मम शोकविवर्धनी ॥ ३ ॥
कदलीकाण्डसदृशौ कदल्या संवृतावुभौ । ऊरू पश्यामि ते देवि नासि शक्ता निगूहितुम् ॥ ४ ॥
कर्णिकारवनं भद्रे हसन्ती देवि सेवसे । अलं ते परिहासेन मम बाधावहेन वै ॥ ५ ॥
विशेषेणाश्रमस्थाने हासोऽयं न प्रशस्यते । अवगच्छामि ते शीलं परिहासप्रियं प्रिये ॥ ६ ॥
आगच्छ त्वं विशालाक्षि शून्योऽयमुटजस्तव । सुव्यक्तं राक्षसैः सीता भक्षिता वा हृतापि वा ॥ ७ ॥
न हि सा विलपन्तं मामुपसंप्रैति लक्ष्मण । एतानि मृगयूथानि साश्रुनेत्राणि लक्ष्मण ॥ ८ ॥
शंसन्तीव हि वैदेहीं भक्षितां रजनीचरैः । हा ममार्ये क्व यातासि हा साध्वि वरवर्णिनि ॥ ९ ॥
हा सकामाद्य कैकेयी देवी सापि भविष्यति । सीतया सह निर्यातो विना सीतामुपागतः ॥१०॥
कथं नाम प्रवेक्ष्यामि शून्यमन्तःपुरं पुनः । निर्वीर्य इति लोको मां निर्दयश्चेति वक्ष्यति ॥११॥

बासठवां सर्ग

राघव का विलाप

शोक से नष्ट चेतन वाले विशालबाहु धर्मात्मा रामचन्द्र सीता को न देखते हुए विलाप करने लगे ॥ १ ॥ मन्मथ पीडित रामचन्द्र मानो सीता को मैं देख रहा हूं इस अवस्था में विलापपूर्वक अवाच्य बातें भी बोलने लगे ॥ २ ॥ हे पुष्पों से प्रेम करने वाली प्रिये सीते ! अशोक वृक्ष की शाखाओं से तुम अपने शरीर को छिपा रही हो, इससे मेरा शोक बढ़ रहा है ॥ ३ ॥ केले के स्तम्भ के समान तुम्हारे ऊरुद्वय जिन को तुम केले के पत्तों से छिपा रही हो, उन्हें मैं देख रहा हूं। उन्हें तुम छिपा नहीं सकती हो ॥ ४ ॥ हे देवि ! परिहास करती हुई तुम कनेर-वृक्षों के वन में घूम रही हो। उस परिहास को अब बन्द करो। इस से मुझे दुःख हो रहा है ॥ ५ ॥ हे प्रिये जानकी ! मैं तुम्हारे स्वभाव को जानता हूं कि तुम परिहास प्रिय हो किन्तु इन तपस्वियों के आश्रम के समीप इस प्रकार का परिहास अच्छा नहीं ॥ ६ ॥ हे विशालनेत्रे सीते ! यह तुम्हारी पर्णकुटी तुम्हारे विना रिक्त है, तुम आ जाओ। अब प्रतीत होता है कि राक्षसों ने सीता को हरण कर लिया या खा लिया है ॥ ७ ॥ क्योंकि इतना विलाप करने पर भी वह मेरे पास नहीं आ रही है। हे लक्ष्मण ! आंखों से आँसू भरे हुए ये मृगों के समूह मानो यह बता रहे हैं कि ॥ ८ ॥ सीता को राक्षसों ने खा लिया है। उत्तमाङ्गी साध्वी सीता ! हा मेरी प्राणप्रिये आर्ये ! तुम कहां चली गई हो ॥ ९ ॥ हा देवी सीते ! आज माता कैकेयी का मनोरथ पूरा हो गया। [अयोध्या जाने पर लोग यही कहेंगे] यह सीता के साथ वन में तो गया किन्तु सीता के विना वन से लौट आया ॥ १० ॥ हे सीते ! तुम्हारे विना मैं अयोध्याके अन्तःपुर में कैसे प्रवेश करूंगा। [यदि चला भी जाऊं तो] लोग मुझे पराक्रमहीन तथा निर्दयी कहेंगे ॥ ११ ॥ जानकी के नष्ट हो जाने से आज मेरी कायरता तथा असावधानी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कातरत्वं प्रकाशं हि सीतापनयनेन मे । निवृत्तवनवासश्च जनकं मिथिलाधिपम् ॥१२॥
कुशलं परिपृच्छन्तं कथं शक्ष्ये निरीक्षितुम् । विदेहराजो नूनं मां दृष्ट्वा विरहितं तया ॥१३॥
सुतास्नेहेन संतप्तो मोहस्य वशमेष्यति । अथवा न गमिष्यामि पुरीं भरतपालिताम् ॥१४॥
स्वर्गोऽपि सीतया हीनः शून्य एव मतो मम । मामिहोत्सृज्य हि वने गच्छायोध्यां पुरीं शुभाम्॥१५॥
न त्वहं तां विना सीतां जीवेयं हि कथंचन । गाढमाश्लिष्य भरतो वाच्यो मद्वचनात्त्वया ॥१६॥
अनुज्ञातोऽसि रामेण पालयेति वसुंधराम् । अम्बा च मम कैकेयी सुमित्रा च त्वया विभो ॥१७॥
कौसल्या च यथान्यायमभिवाद्या ममाज्ञया । रक्षणीया प्रयत्नेन भवता सूक्तकारिणा ॥१८॥
सीतायाश्च विनाशोऽयं मम चामित्रकर्शन । विस्तरेण जनन्या मे विनिवेद्यस्त्वया भवेत् ॥१९॥

इति विलपति राघवे सुदीने वनमुपगम्य तया विना सुकेश्या ।
भयविकलमुखस्तु लक्ष्मणोऽपि व्यथितमना भृशमातुरो बभूव ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे राघवविलापो नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

स्पष्ट हो गई है । वनवास से लौट कर जब मैं मिथिलापति राजा जनक से मिलूंगा ॥ १२ ॥ मिलने पर उस समय वे कुशलवार्ता पूछेंगे तो मैं उन की ओर कैसे देख सकूंगा । सीता से रहित मुझको देख कर निश्चय ही मिथिलापति राजा जनक ॥ १३ ॥ पुत्री विनाश की आशंका से संतप्त अवश्य ही मूर्छित हो जायेंगे । अथवा [इन घटनाओं की चिन्ता करते हुए] भरत से पालित अयोध्या में मैं जाऊंगा ही नहीं ॥ १४ ॥ उस सीता के विना स्वर्ग भी मुझे आज शून्य सा प्रतीत हो रहा है । इसलिये हे लक्ष्मण ! तुम मुझे यहीं वन में छोड़ कर शुभ अयोध्यापुरी को चले जाओ ॥ १५ ॥ मैं उस सीता के विना किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकता । हे लक्ष्मण ! तुम अयोध्या जाकर भाई भरत का गाढ़ आलिङ्गन करना और मेरी ओर से कहना ॥ १६ ॥.भाई रामचन्द्र की आज्ञा है कि सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन करो । मेरी आज्ञा से माता कैकेयी, सुमित्रा तथा कौसल्या को यथायोग्य प्रणाम करते रहना । आज्ञाकारी तुम यत्नपूर्वक उन सब की रक्षा करना ॥ १७,१८ ॥ हे शत्रुंजय लक्ष्मण ! मेरा तथा सीता का इस प्रकार निधन विस्तार पूर्वक मेरी माता को तुम सुना देना ॥ १९ ॥ उस सीता के विना वन में जा कर रामचन्द्र के इस प्रकार विलाप करने पर भय से विकल मुख वाले लक्ष्मण अत्यन्त दुःखी हुए तथा घबरा गये ॥ २० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'राघव का विलाप' विषयक बासठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६२ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रिषष्टितमः सर्गः

दुःखानुचिन्तनम्

स राजपुत्रः प्रियया विहीनः शोकेन मोहेन च पीड्यमानः ।
विषादयन् भ्रातरमार्तरूपो भूयो विषादं प्रविवेश तीव्रम् ॥ १ ॥

स लक्ष्मणं शोकवशाभिपन्नं शोके निमग्नो विपुले तु रामः ।
उवाच वाक्यं व्यसनानुरूपमुष्णं विनिःश्वस्य रुदन् सशोकम् ॥ २ ॥

न मद्विधो दुष्कृतकर्मकारी मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुंधरायाम् ।
शोकेन शोको हि परम्पराया मामेति भिन्दन् हृदयं मनश्च ॥ ३ ॥

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि ।
तत्रायमद्यापतितो विपाको दुःखेन दुःखं यदहं विशामि ॥ ४ ॥

राज्यप्रणाशः स्वजनैर्वियोगः पितुर्विनाशो जननीवियोगः ।
सर्वाणि मे लक्ष्मण शोकवेगमापूरयन्ति प्रविचिन्तितानि ॥ ५ ॥

सर्वं तु दुःखं मम लक्ष्मणेदं शान्तं शरीरे वनमेत्य शून्यम् ।
सीतावियोगात्पुनरप्युदीर्णं काष्ठैरिवाग्निः सहसा प्रदीप्तः ॥ ६ ॥

तिरसठवां सर्ग

दुःखों का अनुचिन्तन

जानकी से वियुक्त वियोगजनित शोक तथा मोह से पीड़ित होते हुए दुःखी राजकुमार रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण को दुःखी करते हुए पुनः दुःख के तीव्र वेग से आक्रान्त हो गये ॥ १ ॥ अगाध शोक में निमग्न होते हुए रामचन्द्र बार २ लम्बी सांस लेते हुए तथा शोक पूर्वक रोते हुए शोकाक्रान्त अपने भाई लक्ष्मण से शोक को बढ़ाने वाले वाक्य इस प्रकार बोले ॥२॥ इस भूमण्डल पर मेरे समान पापी दूसरा कोई नहीं दिखाई देता क्योंकि अविच्छिन्न गति से दुःखों की परम्परा मेरे हृदय तथा मन को भेद रही है ॥३॥ पहले मैंने अनेकों इस प्रकार के यथेष्ट पाप किये हैं। उन पापों का ही आज यह परिणाम है कि मैं दुःख पर दुःख उठा रहा हूं ॥ ४ ॥ राज्य हाथ से निकल गया, बन्धु-बान्धवों का वियोग हो गया, पिता की मृत्यु हो गई, माता का भी वियोग हो गया। हे लक्ष्मण ! इन सारी घटनाओं का स्मरण करने पर मेरे दुःख और बढ़ जाते हैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण ! ये सारे दुःख इस रमणीय शून्य वन में आकर शान्त हो गये थे। किन्तु आज सीता के वियोग से ये सभी पुनः इस प्रकार नये तथा जागरित हो गये जिस प्रकार लकड़ियों के डालने से अग्नि प्रदीप्त हो जाती है ॥ ६ ॥ निश्चय ही मेरी भार्या सीता को राक्षसों ने आकाश मार्ग

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सा नूनमार्या मम राक्षसेन बलाद्धृता खं समुपेत्य भीरुः ।
अपस्वरं सस्वरविप्रलापा भयेन विक्रन्दितवत्यभीक्ष्णम् ॥ ७ ॥
तौ लोहितस्य प्रियदर्शनस्य सदोचितावुत्तमचन्दनस्य ।
वृत्तौ स्तनौ शोणितपङ्कदिग्धौ नूनं प्रियाया मम नाभिपातः ॥ ८ ॥
तच्छ्लक्ष्णसुव्यक्तमृदुप्रलापं तस्या मुखं कुञ्चितकेशभारम् ।
रक्षोवशं नूनमुपागताया न भ्राजते राहुमुखे यथेन्दुः ॥ ९ ॥
तां हारपाशस्य सदोचिताया ग्रीवां प्रियाया मम सुव्रतायाः ।
रक्षांसि नूनं परिपीतवन्ति विभिद्य शून्ये रुधिराशनानि ॥१०॥
मया विहीना विजने वने या रक्षोभिराहृत्य विकृष्यमाणा ।
नूनं विनादं कुररीव दीना सा मुक्तवत्यायतकान्तनेत्रा ॥११॥
अस्मिन् मया सार्धमुदारशीला शिलातलं पूर्वमुपोपविष्टा ।
कान्तस्मिता लक्ष्मण जातहासा त्वामाह सीता बहुवाक्यजातम् ॥१२॥
गोदावरीयं सरितां वरिष्ठा प्रिया प्रियाया मम नित्यकालम् ।
अप्यत्र गच्छेदिति चिन्तयामि नैकाकिनी याति हि सा कदाचित् ॥१३॥
पद्मानना पद्मविशालनेत्रा पद्मानि वानेतुमभिप्रयाता ।
तदप्ययुक्तं न हि सा कदाचिन्मया विना गच्छति पङ्कजानि ॥१४॥
कामं त्विदं पुष्पितवृक्षषण्डं नानाविधैः पक्षिगणैरुपेतम् ।
वनं प्रयाता नु तदप्ययुक्तमेकाकिनी सातिबिभेति भीरुः ॥१५॥

से हरण किया है। ऊंचे स्वर से रोने वाली सीता राक्षसों के भय के कारण अवश्य ही मन्द स्वर से रोई होगी ॥ ७ ॥ लाल चन्दन से परिपूर्ण प्रिय दर्शी प्राणप्रिया जानकी के दोनों वर्त्तुल (गोल) स्तन अवश्य ही रक्तसिञ्चित हो गये होंगे। इतने पर मेरे शरीर का पात नहीं हो रहा है ॥ ८ ॥ मधुर भाषण करने वाली, कुञ्चित, घुंघराले केशों वाली जानकी का वह मुखमण्डल राक्षसों के वश में आ जाने पर उसी प्रकार शोभारहित हो गया होगा जिस प्रकार पर्व के दिन अर्थात् ग्रहण के समय चन्द्रमण्डल शोभाहीन हो जाता है ॥ ९ ॥ सर्वदा हारों से अलंकृत रहने वाली, उत्तम व्रतवाली मेरी प्राणप्रिय जानकी की ग्रीवा (गला) को रुधिर पान करने वाले राक्षस लोगों ने शून्य वन में भेदन कर के अवश्य रक्तपान किया होगा ॥ १० ॥ उस विजन वन में विशालनेत्रा जानकी को मेरे बिना असहायावस्था में राक्षस लोग घसीटते होंगे। उस अवस्था में कुररी (क्रौंच पक्षी) के समान जानकी ने अवश्य ही विलाप किया होगा ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण ! उदार स्वभाव वाली सीता पहले इस शिला तल पर मेरे साथ बैठ कर रमणीय मन्द हास्य के द्वारा तुम से बहुत देर तक बातें किया करती थी ॥ १२ ॥ मेरी प्राणप्रिया जानकी की प्रिय सखी रूपी नदियों में श्रेष्ठ यह गोदावरी है। सम्भव है सीता इस गोदावरी नदी पर चली गई हो। किन्तु अकेली वह वहां कभी जाती भी नहीं थी ॥ १३ ॥ कमलानना तथा कमल के समान नेत्र वाली सीता सम्भव है कमल लेने के लिये चली गई हो। किन्तु यह भी अयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि मेरे विना अकेली कभी भी वह कमलों के पास नहीं जाती थी ॥ १४ ॥ पक्षि गणों से परिपूर्ण, पुष्पित नाना प्रकार के वृक्षों से युक्त इस रमणीय वन में, सम्भव है, चली गई हो। किन्तु यह बात भी मुझे नहीं जंच रही है क्यों कि भीरु सीता अकेली जाने में डरती है ॥ १५ ॥ हे सूर्य ! आप संसार के कृत-अकृत, सत्य तथा अनृत के साक्षी हैं। वह मेरी प्राणप्रीया

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदित्य भो लोककृताकृतज्ञ लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन् ।
मम प्रिया सा क्व गता हृता वा शंसस्व मे शोकवशस्य नित्यम् ॥१६॥
लोकेषु सर्वेषु च नास्ति किंचिद्यत्ते न नित्यं विदितं भवेत्तत् ।
शंसस्व वायो कुलशालिनीं तां हृता मृता वा पथि वर्तते वा ॥१७॥
इतीव तं शोकविधेयदेहं रामं विसंज्ञं विलपन्तमेव ।
उवाच सौमित्रिरदीनसत्त्वो न्याय्ये स्थितः कालयुतं च वाक्यम् ॥१८॥
शोकं विमुञ्चार्य धृतिं भजस्व सोत्साहता चास्तु विमार्गणेऽस्याः ।
उत्साहवन्तो हि नरा न लोके सीदन्ति कर्मस्वतिदुष्करेषु ॥१९॥
इतीव सौमित्रिमुदग्रपौरुषं ब्रुवन्तमार्तो रघुवंशवर्धनः ।
न चिन्तयामास धृतिं विमुक्तवान् पुनश्च दुःखं महदभ्युपागमत् ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे दुःखानुचिन्तनं नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥६३॥

चतुःषष्टितमः सर्गः

रामक्रोधः

स दीनो दीनया वाचा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् । शीघ्रं लक्ष्मण जानीहि गत्वा गोदावरीं नदीम् ॥१॥
अपि गोदावरीं सीता पद्मान्यानयितुं गता । एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः पुनरेव हि ॥ २ ॥

सीता कहां गई, किस ने हर ली, मुझ दुःखी को ये बातें बताओ ॥ १६ ॥ हे वायो ! इस संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिस को तुम न जानते हो । बताओ मेरे कुल की रक्षिका जानकी कहां है ? मर गई, अपहरण कर ली गई या कहीं मार्ग में जा रही है ॥ १७ ॥ इस प्रकार शोकाक्रान्त बार २ विलाप करने से चेतनाहीन रामचन्द्र के प्रति न्याय पथ पर चलने वाले उदार चेता, धीर लक्ष्मण समयोचित वचन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य रामचन्द्र ! शोक को छोड़ कर आप धैर्य का अवलम्बन कीजिये, जानकी के खोजने के लिये आप उत्साह दिखलावें, क्योंकि उत्साही व्यक्ति इस संसार में 'विकट परिस्थिति में भी दुःखी नहीं होते ॥ १९ ॥ विख्यात पराक्रम वाले दुःखी लक्ष्मण के इस प्रकार कहने पर भी रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया और धैर्य छोड़ कर महान् दुःख प्रकट करने लगे ॥ २० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'दुःखों का अनुचिन्तन' विषयक तिरसठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६३ ॥

चौंसठवां सर्ग

राम का क्रोध

दीन दुःखी रामचन्द्र आर्त्त शब्दों में लक्ष्मण से बोले—हे लक्ष्मण ! शीघ्र ही गोदावरी पर जाकर सीता का पता लगाओ ॥ १ ॥ सम्भव है कमलों को लाने के लिये सीता गोदावरी नदी पर गई हो । राम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण पुनः ॥ २ ॥ बहुत शीघ्रता से रमणीय गोदावरी के तट पर चले गये । वहाँ सीता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नदीं गोदावरीं रम्यां जगाम लघुविक्रमः । तां लक्ष्मणस्तीर्थवतीं विचित्वा राममब्रवीत् ॥ ३ ॥
नैनां पश्यामि तीर्थेषु क्रोशतो न शृणोति मे । कं नु सा देशमापन्ना वैदेही क्लेशनाशिनी ॥ ४ ॥
न हि तं वेद्मि वै राम यत्र सा तनुमध्यमा । लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दीनः सन्तापमोहितः ॥ ५ ॥
रामः समभिचक्राम स्वयं गोदावरीं नदीम् । स तामुपस्थितो रामः क्व सीतेत्येवमब्रवीत् ॥ ६ ॥
[भूतानि राक्षसेन्द्रेण वधार्हेण हृतामपि । न तां शशंसू रामाय तथा गोदावरी नदी ॥ ७ ॥
ततः प्रचोदिता भूतैः शंसास्मै तां प्रियामिति । न च साभ्यवदत्सीतां पृष्टा रामेण शोचता ॥ ८ ॥
रावणस्य च तद्रूपं कर्माणि च दुरात्मनः । ध्यात्वा भयात्तु वैदेहीं सा नदी न शशंस ताम् ॥ ९ ॥
निराशस्तु तया नद्या सीताया दर्शने कृतः । उवाच रामः सौमित्रिं सीतादर्शनकर्शितः ॥१०॥
एषा गोदावरी सौम्य किंचिन्न प्रतिभाषते । किं नु लक्ष्मण वक्ष्यामि समेत्य जनकं वचः ॥ ११ ॥]
मातरं चैव वैदेह्या विना तामहमप्रियम् । या मे राज्यविहीनस्य वने वन्येन जीवतः ॥१२॥
सर्वं व्यपानयच्छोकं वैदेही क्व नु सा गता । ज्ञातिपक्षविहीनस्य राजपुत्रीमपश्यतः ॥१३॥
मन्ये दीर्घा भविष्यन्ति रात्रयो मम जाग्रतः । मन्दाकिनीं जनस्थानमिमं प्रस्रवणं गिरिम् ॥१४॥
सर्वाण्यनुचरिष्यामि यदि सीता हि दृश्यते । एते मृगा महावीर्या मामीक्षन्ते मुहुर्मुहुः ॥१५॥

का इधर उधर अन्वेषण करके लौट आये तथा रामचन्द्र से बोले ॥ ३ ॥ हे आर्य रामचन्द्र ! जानकी को मैंने वहाँ नहीं देखा । गोदावरी के तट पर बार-बार बुलाने पर भी उसने नहीं सुना । हम लोगों के क्लेश को दूर करने वाली जानकी न जाने कहाँ चली गई ॥ ४ ॥ हे आर्य रामचन्द्र ! मैं नहीं जान सका कि जानकी इस समय कहाँ हैं । लक्ष्मण की इस बात को सुनकर रामचन्द्र अत्यन्त दुःखी तथा सन्ताप से विचलित हो गये ॥ ५ ॥ रामचन्द्र स्वयं गोदावरी के तट पर गये । वहाँ जाकर उन्हों ने कहा—सीता यहाँ कहाँ है ? ॥ ६ ॥ वध के योग्य रावण के द्वारा सीता हरी गई है, इस बात को प्राणिवर्ग तथा नदी गोदावरी जानती थी, किन्तु सीता के हरण का वृत्तान्त नहीं बताया * ॥ ७ ॥ शोकातुर रामचन्द्र के बार बार पूछने पर भी प्राणप्रिया सीता का समाचार किसी ने नहीं बताया ॥ ८ ॥ रावण का वह भयानक रूप तथा उसके उन क्रूर कर्मों का ध्यान करके भय के मारे उस गोदावरी नदी ने सीता का पता नहीं बताया ॥ ९ ॥ सीता के वियोग से कृश रामचन्द्र को जिन्हें सीता के दर्शन की उत्कण्ठा हो रही है नदी गोदावरी से निराश होना पड़ा । पश्चात् रामचन्द्र लक्ष्मण से बोले ॥ १० ॥ हे सौम्य लक्ष्मण ! यह गोदावरी नदी कुछ भी नहीं बता रही है, अब मैं जनक के पास जाकर क्या उत्तर दूँगा ॥ ११ ॥ सीता की माता से मिलने पर मैं यह अप्रिय घटना कैसे बताऊँगा । जो जानकी राज्य से हीन वन में वनवासियों का जीवन व्यतीत करते हुए ॥ १२ ॥ मेरे सारे वनवास के दुःखों को अपने प्रेममय व्यवहारों से दूर करती थी, आज वह विदेह की राजकुमारी कहाँ है ? बन्धु-बान्धवों से हीन तो मैं हो ही गया था किन्तु जानकी को न देखते हुए [मेरी जो निद्रा भंग हो गई है इसलिये] ॥ १३ ॥ ये रातें मेरे लिये बहुत लम्बी हो जायेंगी । यह मन्दाकिनी नदी, यह जनस्थान, तथा यह प्रस्रवण पर्वत ॥१४॥ इन सभी का मैं अन्वेषण करूँगा यदि सीता उपलब्ध हो जाय । ये तीव्र गति वाले मृग बार-बार मेरी ओर देख रहे हैं ॥ १५ ॥ ये मुझसे कुछ कहना चाहते हैं । इनके संकेत को मैं समझ रहा हूँ । नरकेसरी,

* इन पंक्तियों में भी प्रायः अर्थवाद ही कहा जा सकता है । यहाँ नदी, हरिण, पक्षी, आदि से जो वार्तालाप कराया है या रावण के आतंक से वे उत्तर नहीं दे सके, यह दिखलाया है, उन सबका निष्कर्ष यही है कि रावण के आतंक से चराचर जगत् तथा सम्पूर्ण वायुमण्डल अत्यन्त आतंकित हो रहा था । इस आतंक को प्रदर्शित करने के लिये ये शब्द कहे गये हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वक्तुकामा इव हि मे इङ्गितान्युपलक्षये । तांस्तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो राघवः प्रत्युवाच ह ॥१६॥
क्व सीतेति निरीक्षन् वै बाष्पसंरुद्धया गिरा । एवमुक्ता नरेन्द्रेण ते मृगाः सहसोत्थिताः ॥१७॥
दक्षिणाभिमुखः सर्वे दर्शयन्तो नभः स्थलम् । मैथिली ह्रियमाणा सा दिशं यामन्वपद्यत ॥१८॥
तेन मार्गेण धावन्तो निरीक्षन्ते नराधिपम् । येन मार्गं च भूमिं च निरीक्षन्ते स्म ते मृगाः ॥१९॥
पुनश्च मार्गमिच्छन्तो लक्ष्मणेनोपलक्षिताः । तेषां वचनसर्वस्वं लक्षयामास चेङ्गितम् ॥२०॥
उवाच लक्ष्मणो ज्येष्ठं धीमान् भ्रातरमार्तवत् । क्व सीतेति त्वया पृष्टा यथेमे सहसोत्थिताः ॥२१॥
दर्शयन्ति क्षितिं चैव दक्षिणां च दिशं मृगाः । साधु गच्छावहै देव दिशमेतां हि नैर्ऋतीम् ॥२२॥
यदि स्यादागमः कश्चिदार्या वा साथ लक्ष्यते । बाढमित्येव काकुत्स्थः प्रस्थितो दक्षिणां दिशम् ॥२३॥
लक्ष्मणानुगतः श्रीमान् वीक्षमाणो वसुंधराम् । एवं संभाषमाणौ तावन्योन्यं भ्रातरावुभौ ॥२४॥
वसुंधरायां पतितं पुष्पमार्गमपश्यताम् । तां पुष्पवृष्टिं पतितां दृष्ट्वा रामो महीतले ॥२५॥
उवाच लक्ष्मणं वीरो दुःखितो दुःखितं वचः । अभिजानामि पुष्पाणि तानीमानीह लक्ष्मण ॥२६॥
अपिनद्धानि वैदेह्या मया दत्तानि कानने । मन्ये सूर्यश्च वायुश्च मेदिनी च यशस्विनी ॥२७॥
अभिरक्षन्ति पुष्पाणि प्रकुर्वन्तो मम प्रियम् । एवमुक्त्वा महाबाहुं लक्ष्मणं पुरुषर्षभः ॥२८॥

रामचन्द्र ने उनको देखकर उनसे यह पूछा ॥ १६ ॥ गला भर जाने के कारण जिसकी वाणी रुकी हुई है ऐसे रामचन्द्र ने उन मृगों की ओर देखते हुए पूछा—सीता कहाँ है ? रामचन्द्र के ऐसा पूछने पर वे मृग सहसा खड़े हो गये ॥ १७ ॥ आकाश को दिखलाते हुए वे सब के सब दक्षिण मुख करके दौड़ने लगे। जिस दिशा में सीता का हरण हुआ था, उसी ओर वे दौड़ पड़े ॥ १८ ॥ उस मार्ग से दौड़ते हुए उन मृगों ने रामचन्द्र को देखा, जिस मार्ग से दौड़ते हुए वे मृग जिस भूमि को देखते थे [रामचन्द्र ने भी उसको देखा] ॥ १९ ॥ वे मृग उधर दौड़ते हुए कुछ बोलते भी जाते थे। लक्ष्मण ने इस बात को ध्यान से सुना। उन मृगों की सम्पूर्ण चेष्टाओं तथा उनके शब्दगत भावों को लक्ष्मण ने समझ लिया ॥ २० ॥ दुःखी लक्ष्मण अपने भाई रामचन्द्र से बोले—हे आर्य ! आपके यह पूछने पर कि सीता कहाँ है, सहसा ये सभी मृग खड़े हो गये ॥ २१ ॥ ये मृग दक्षिण दिशा में दौड़ते हुए उधर के मार्ग तथा उस दिशा का संकेत कर रहे हैं। इसलिये हे देव रामचन्द्र ! राक्षस सेवित इसी दक्षिण दिशा को हम लोग चलें, यही ठीक होगा ॥ २२ ॥ हो सकता है, इस दिशा में चलने से आर्या जानकी मिल जाय। बहुत ठीक, ऐसा कह कर रामचन्द्र दक्षिण दिशा की ओर चल दिये ॥ २३ ॥ भूमि को देखते हुए श्रीमान् लक्ष्मण रामचन्द्र के पीछे चल पड़े। चलते हुए दोनों भाई आपस में बातचीत कर रहे थे ॥ २४ ॥ मार्ग में चलते हुए राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों ने आकाश से पृथ्वी पर गिरे हुए फूलों को देखा। भूमि पर गिरे हुए फूलों को देखकर दुःखित रामचन्द्र ॥ २५ ॥ अपने भाई लक्ष्मण से दुःखपूर्वक यह बोले—हे लक्ष्मण ! मैं जानता हूँ, ये वही फूल हैं ॥ २६ ॥ इन फूलों को चुनकर मैंने सीता को दिया था और उसने इन फूलों को अपनी चोटी में लगा लिया था। मालूम पड़ता है कि सूर्य, वायु, यशस्विनी पृथ्वी ने ॥ २७ ॥ मेरा परम उपकार करते हुए इन फूलों की रक्षा की है। इस प्रकार नरकेसरी रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण से कह कर ॥ २८ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[उवाच रामो धर्मात्मा गिरिं प्रस्रवणाकुलम् । कच्चित्क्षितिभृतां नाथ दृष्टा सर्वाङ्गसुन्दरी ॥२९॥
रामा रम्ये वनोद्देशे मया विरहिता त्वया । क्रुद्धोऽब्रवीद्गिरिं तत्र सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥३०॥
तां हेमवर्णां हेमाभां सीतां दर्शय पर्वत । यावत्सानूनि सर्वाणि न ते विध्वंसयाम्यहम् ॥३१॥
एवमुक्तस्तु रामेण पर्वतो मैथिलीं प्रति । दर्शयन्निव तां सीतां नादर्शयत राघवे ॥३२॥
ततो दाशरथी राम उवाच च शिलोच्चयम् । मम बाणाग्निनिर्दग्धो भस्मीभूतो भविष्यसि ॥३३॥
असेव्यः सर्वतश्चैव निस्तृणद्रुमपल्लवः । इमां वा सरितं चाद्य शोषयिष्यामि लक्ष्मण ॥३४॥
यदि नाख्याति मे सीतामद्य चन्द्रनिभाननाम् । एवं स रुषितो रामो दिधक्षन्निव चक्षुषा ॥३५॥]
ददर्श भूमौ निष्क्रान्तं राक्षसस्य पदं महत् । त्रस्ताया रामकाङ्क्षिण्याः प्रधावन्त्या इतस्ततः॥३६॥
राक्षसेनानुवृत्ताया मैथिल्याश्च पदान्यथ । स समीक्ष्य परिक्रान्तं सीताया राक्षसस्य च ॥३७॥
भग्नं धनुश्च तूणी च विकीर्णं बहुधा रथम् । संभ्रान्तहृदयो रामः शशंस भ्रातरं प्रियम् ॥३८॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः शीर्णाः कनकबिन्दवः । भूषणानां हि सौमित्रे माल्यानि विविधानि च॥३९॥
तप्तबिन्दुनिकाशैश्च चित्रैः क्षतजबिन्दुभिः । आवृतं पश्य सौमित्रे सर्वतो धरणीतलम् ॥४०॥
मन्ये लक्ष्मण वैदेही राक्षसैः कामरूपिभिः । भित्त्वा भित्त्वा विभक्ता वा भक्षिता वा भविष्यति ॥४१॥
तस्या निमित्तं वैदेह्या द्वयोर्विवदमानयोः । बभूव युद्धं सौमित्रे घोरं राक्षसयोरिह ॥४२॥

धर्मात्मा रामचन्द्र उस प्रस्रवणाकुल पर्वत से बोले—हे पर्वतराज ! मुझसे वियुक्त इस रमणीय वन में सर्वाङ्ग-सुन्दरी किसी स्त्री को देखा है क्या ? इस प्रकार क्रुद्ध होकर रामचन्द्र इस प्रकार बोले जैसे सिंह क्षुद्र पशुओं से बोल रहा हो ॥ २९-३० ॥ जब तक मैं अपने बाणों से तुम्हारे शिखरों को ध्वस्त नहीं कर देता, उसके पहले ही स्वर्ण समान अंग वाली सीता को तुम दिखला दो ॥ ३१ ॥ रामचन्द्र के ऐसा पूछने पर जानकी की जानकारी रखते हुए भी उस पर्वतराज ने जानकी का पता रामचन्द्र को नहीं बताया ॥ ३२ ॥ पश्चात् दशरथ कुमार रामचन्द्र ने उस प्रस्रवणाचल से यह कहा—मेरे बाणों की अग्नि से जलकर तुम भस्मीभूत हो जाओगे ॥ ३३ ॥ तृण-वृक्ष-पल्लव आदि के जल जाने पर यह स्थान पुनः किसी के निवास योग्य नहीं रह जायेगा । हे लक्ष्मण ! आज इस गोदावरी नदी को भी मैं शुष्क कर देता हूँ ॥ ३४ ॥ यदि चन्द्रमुखी सीता को ये नहीं बताते हैं । इस प्रकार क्रोध में आये हुए तथा आँखों से प्रज्वलित अग्नि की वर्षा करते हुए रामचन्द्र ने ॥ ३५ ॥ राक्षस के चरणचिह्न को भूमि पर देखा तथा राम में अनुराग रखने वाली डरी हुई इधर उधर दौड़ती हुई ॥ ३६ ॥ जिस का पीछा राक्षस कर रहा है ऐसी सीता के चरणचिह्नों को भी देखा । जानकी तथा राक्षस के चरणचिह्नों को देखते हुए ॥ ३७ ॥ आगे रामचन्द्र ने टूटे हुए धनुष तरकश तथा टूटे हुए रथ को देखा । इन सब को देख कर घबराये हुए हृदय वाले रामचन्द्र ने अपने भाई लक्ष्मण से कहा ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण देखो सीता के आभूषणों से गिरे हुए ये सोने के घूंघरू जहां तहां पड़े हैं तथा उसकी पहनी हुई मालाएं जहां तहां पड़ी हैं ॥ ३९ ॥ हे लक्ष्मण ! तप्तकाञ्चन के समान शोणितबिन्दुओं से यह सम्पूर्ण पृथ्वी सिञ्चित हो रही है, इस को देखो ॥ ४० ॥ हे लक्ष्मण ! प्रतीत होता है कि कामरूपी राक्षसों ने सीता को मार कर तथा उस के टुकड़े २ कर के उन्होंने खा लिया है ॥ ४१ ॥ उस सीता के निमित्त परस्पर विवाद करते हुए उन दोनों राक्षसों में युद्ध हुआ है, हे लक्ष्मण ! ऐसा मैं समझता हूँ ॥ ४२ ॥ हे सौम्य लक्ष्मण ! मुक्तामणियों से जटित तथा अत्यन्त रमणीय, अनेक प्रकार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुक्तामणिचितं चेदं तपनीयविभूषितम् । धरण्यां पतितं सौम्य कस्य भग्नं महद्धनुः ॥४३॥
राक्षसानामिदं वत्स शूराणामथ वापि वा । तरुणादित्यसंकाशं वैदूर्यगुलिकाचितम् ॥४४॥
विशीर्णं पतितं भूमौ कवचं कस्य काञ्चनम् । छत्रं शतशलाकं च दिव्यमाल्योपशोभितम् ॥४५॥
भग्नदण्डमिदं कस्य भूमौ सम्यङ्निपातितम् । काञ्चनोरश्छदाश्चेमे पिशाचवदनाः खराः ॥४६॥
भीमरूपा महाकायाः कस्य वा निहता रणे । दीप्तपावकसंकाशो द्युतिमान् समरध्वजः ॥४७॥
अपविद्धश्च भग्नश्च कस्य सांग्रामिको रथः । रथाक्षमात्रा विशिखास्तपनीयविभूषणाः ॥४८॥
कस्येमेऽभिहता बाणाः प्रकीर्णा घोरकर्मणः । शरावरौ शरैः पूर्णौ विध्वस्तौ पश्य लक्ष्मण ॥४९॥
प्रतोदाभीषुहस्तोऽयं कस्यायं सारथिर्हतः । पदवी पुरुषस्यैषा व्यक्तं कस्यापि रक्षसः ॥५०॥
वैरं शतगुणं पश्य ममेदं जीवितान्तकम् । सुघोरहृदयैः सौम्य राक्षसैः कामरूपिभिः ॥५१॥
हृता मृता वा सीता सा भक्षिता वा तपस्विनी। न धर्मस्त्रायते सीतां ह्रियमाणां महावने ॥५२॥
भक्षितायां हि वैदेह्यां हृतायामपि लक्ष्मण । के हि लोके प्रियं कर्तुं शक्ताः सौम्य ममेश्वराः ॥५३॥
कर्तारमपि लोकानां शूरं करुणवेदिनम् । अज्ञानादवमन्येरन् सर्वभूतानि लक्ष्मण ॥५४॥
मृदुं लोकहिते युक्तं दान्तं करुणवेदिनम् । निर्वीर्य इति मन्यन्ते नूनं मां त्रिदशेश्वराः ॥५५॥
मां प्राप्य हि गुणो दोषः संवृत्तः पश्य लक्ष्मण। अद्यैव सर्वभूतानां रक्षसामभवाय च ॥५६॥

से सुशोभित, टूट कर पृथ्वी पर गिरा हुआ यह किस का धनुष है ॥४३॥ वैदूर्य मणियों से जटित, देदीप्यमान सूर्य के समान चमकने वाला यह धनुष किन्हीं देवों का है अथवा दानवों का ॥ ४४ ॥ अनेक दिव्य मालाओं से सुशोभित, स्वर्ण की सौ शलाकाओं वाला यह छत्र तथा टूटा हुआ यह विशाल स्वर्णमय कवच किस का है ॥ ४५ ॥ टूटा हुआ स्वर्णमय यह ध्वज-दण्ड पृथ्वी पर किसका गिरा हुआ है। स्वर्णमय कवच जिसके वक्षःस्थल पर लगे हुए हैं, विकराल मुख वाले, विशालकाय, भयंकर संग्राम में मरे हुए ये किस के खच्चर हैं तथा प्रज्वलित अग्नि के समान देदीप्यमान सांग्रामिक यह किसका ध्वज है ॥ ४६, ४७ ॥ टूट-फूट कर गिरा हुआ यह सांग्रामिक रथ किसका है ? रथ के अक्ष समान लम्बे, तपनीय काञ्चन विभूषित, शिखारहित ॥ ४८ ॥ टूटे हुए, भयंकर ये किस के बाण हैं ? हे लक्ष्मण ! उत्तम बाणों से परिपूर्ण टूटे हुए ये दो तरकश हैं, इन्हें देखो ॥ ४९ ॥ कोड़े तथा लगाम को हाथ में पकड़े हुए यह किस का सारथि मारा गया है ? यह पैर का चिह्न स्पष्ट ही किसी राक्षस पुरुष का मालूम पड़ता है ॥ ५० ॥ हे लक्ष्मण ! काम रूपी पाषाण हृदय वाले उन राक्षसों के साथ मेरा प्रलयंकर वैर सौ गुना बढ़ गया है, इसे देखो ॥ ५१ ॥ सीता हर ली गई, मर गई या उस तपस्विनी को राक्षसों ने खा लिया। इस विशाल वन में सीता का हरण करते समय मेरे धर्म नियमादिकों ने कोई रक्षा नहीं की ॥ ५२ ॥ हे लक्ष्मण ! जानकी के हरण कर लेने या खा जाने पर संसार में अब कौन इस समय मेरे समर्थ सहायक हैं ॥ ५३ ॥ लोगों के अत्यन्त रक्षक होने पर भी यदि कोई व्यक्ति प्रत्येक स्थान में दया तथा करुणा का सहारा लेता है तो अज्ञानी लोग उसका भी तिरस्कार करते हैं ॥ ५४ ॥ मृदु स्वभाव वाले, संसार के हित की कामना रखने वाले, वशी, दयालु मेरा भी यह देव मण्डल पराक्रम हीन समझ कर तिरस्कार कर रहा है ॥ ५५ ॥ आज ये पूर्वोक्त गुण मेरे अन्दर आकर दोष के रूप में परिणत हो गये हैं। हे लक्ष्मण ! मैं आज ही सम्पूर्ण राक्षस प्राणियों का नाश करने के लिए प्रयत्न करूंगा ॥ ५६ ॥ जैसे सूर्य उदय हो कर चन्द्रमा की कान्ति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संहृत्यैव शशिज्योत्स्नां महान् सूर्य इवोदितः। संहृत्यैव गुणान् सर्वान् मम तेजः प्रकाशये ॥५७॥
नैव यक्षा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः। किंनरा वा मनुष्या वा सुखं प्राप्स्यन्ति लक्ष्मण ॥५८॥
ममास्त्रबाणसंपूर्णमाकाशं पश्य लक्ष्मण। निःसंपातं करिष्यामि ह्यद्य त्रैलोक्यचारिणाम् ॥५९॥
संनिरुद्धग्रहगणमावारितनिशाकरम्। निप्रनष्टानलमरुद्भास्करद्युतिसंवृतम् ॥६०॥
विनिर्मथितशैलाग्रं शुष्यमाणजलाशयम्। ध्वस्तद्रुमलतागुल्मं विप्रणाशितसागरम् ॥६१॥
त्रैलोक्यं तु करिष्यामि संयुक्तं कालकर्मणा। न तां कुशलिनीं सीतां प्रदास्यन्ति यदीश्वराः ॥६२॥
अस्मिन् मुहूर्ते सौमित्रे मम द्रक्ष्यन्ति विक्रमम्। नाकाशमुत्पतिष्यन्ति सर्वभूतानि लक्ष्मण ॥६३॥
समाकुलममर्यादं जगत्पश्याद्य लक्ष्मण। आकर्णपूर्णैरिषुभिर्जीवलोकं दुरासदैः ॥६४॥
करिष्ये मैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम्। मम रोषप्रयुक्तानां सायकानां बलं सुराः ॥६५॥
द्रक्ष्यन्त्यद्य विमुक्तानाममर्षाद् दूरगामिनाम्। नैव देवा न दैतेया न पिशाचा न राक्षसाः ॥६६॥
भविष्यन्ति मम क्रोधात्त्रैलोक्ये विप्रणाशिते। देवदानवयक्षाणां लोका ये रक्षसामपि ॥६७॥
बहुधा निपतिष्यन्ति बाणौघैः शकलीकृताः। निर्मर्यादानिमाँल्लोकान् करिष्याम्यद्य सायकैः ॥६८॥
हृतां मृतां वा सौमित्रे न दास्यन्ति ममेश्वराः। तथारूपां हि वैदेहीं न दास्यन्ति यदि प्रियाम् ॥६९॥
नाशयामि जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्। यावद्दर्शनमस्या वै तापयापि च सायकैः ॥७०॥
इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षः स्फुरमाणोष्ठसंपुटः। वल्कलाजिनमाबध्य जटाभारमबन्धयत् ॥७१॥

को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार आज हमारा तेज भी हमारे उन गुणों को जो दुर्गुण माने जा रहे हैं, दबा कर प्रकाशित होगा ॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण ! आज यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, किन्नर आदि जाति के कोई भी मनुष्य सुख शान्ति की प्राप्ति न कर सकेंगे (अर्थात् ये सभी मेरे कोप के भाजन होंगे) ॥ ५८ ॥ हे लक्ष्मण ! मैं अपने अस्त्र तथा बाणों से सम्पूर्ण आकाश को आच्छादित कर दूँगा आज मैं देव-असुर-मनुष्य सबकी गति को अवरुद्ध कर दूँगा ॥ ५९ ॥ आज मैं अपने दिव्य अस्त्रों से ग्रह गण, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु की गति को भी अवरुद्ध कर दूंगा ॥ ६० ॥ पर्वत की चोटियों को तोड़ दूँगा। छोटे-बड़े सभी जलाशयों को शुष्क कर दूँगा। वृक्ष तथा गुल्मों को ध्वस्त कर दूँगा ॥ ६१ ॥ आज मैं त्रिलोकी में प्रलय करके छोड़ूंगा, यदि सभ्य देवमण्डल कुशल पूर्वक सीता को नहीं दे देता ॥ ६२ ॥ हे लक्ष्मण ! इस समय मेरे पराक्रम को सभी लोग देखें। गगनचारी पक्षिगण आकाश में नहीं उड़ सकेंगे। ॥ ६३ ॥ हे लक्ष्मण ! कान तक खींचे हुए प्राणि मात्र के लिए दुर्निवार अपने दिव्य बाणों से सम्पूर्ण जगत् में हलचल मचा दूंगा, इस को तुम देखो ॥ ६४ ॥ आज जानकी के कारण सम्पूर्ण जगत् को नरपिशाच तथा नरदानवों से मुक्त कर दूँगा। मेरे रोष के द्वारा प्रयुक्त जिन की गति दूर से दूर जा सकती है ऐसी भयङ्कर मेरी बाण वर्षा सम्पूर्ण देवमण्डल देखे। देव-दानव-पिशाच-राक्षस ॥ ६५,६६ ॥ मेरे क्रोध के द्वारा त्रिलोकी के भस्मीभूत होने पर ये सभी समाप्त हो जायेंगे। देव, दानव, यक्ष तथा राक्षसों के जो लोक हैं वे ॥ ६७ ॥ मेरे बाण समूह के आधार से टुकड़े टुकड़े होकर नाश को प्राप्त हो जायेंगे। अपने दिव्य शस्त्र-अस्त्रों के द्वारा सम्पूर्ण जगत् में हाहाकार मचा दूंगा ॥ ६८ ॥ हे लक्ष्मण ! सीता हरण करली गई हो, मर गई हो या किसी भी अवस्था में हो, यदि मेरी प्राणप्रिया सीता को देव लोग नहीं देंगे ॥ ६९ ॥ तो चराचर सम्पूर्ण जगत् को मैं नष्ट कर दूंगा। जब तक सीता का दर्शन नहीं होता तब तक मैं अपने दिव्य बाणों से सब को कम्पायमान करता हूं ॥ ७० ॥ इन बातों को कह कर क्रोध से जिस की आखें लाल हो गई हैं तथा अधर कम्पित हो रहे हैं, ऐसे रामचन्द्र ने वल्कल तथा अजिन वस्त्रों को बांध कर अपने जटा मण्डल को सम्भाला ॥ ७१ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्य क्रुद्धस्य रामस्य तथाभूतस्य धीमतः । त्रिपुरं जघ्नुषः पूर्वं रुद्रस्येव बभौ तनुः ॥७२॥
लक्ष्मणादथ चादाय रामो निष्पीड्य कार्मुकम् । शरमादाय संदीप्तं घोरमाशीविषोपमम् ॥७३॥
संदधे धनुषि श्रीमान् रामः परपुरंजयः । युगान्ताग्निरिव क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥७४॥
यथा जरा यथा मृत्युर्यथा कालो यथा विधिः । नित्यं न प्रतिहन्यन्ते सर्वभूतेषु लक्ष्मण ॥७५॥
तथाहं क्रोधसंयुक्तो न निवार्योऽस्म्यसंशयम् ॥
पुरेव मे चारुदतीमनिन्दितां दिशन्ति सीतां यदि नाद्य मैथिलीम् ।
सदेवगन्धर्वमनुष्यपन्नगं जगत्सशैलं परिवर्तयाम्यहम् ॥७६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे रामक्रोधो नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः

क्रोधसंहारप्रार्थना

तप्यमानं तथा रामं सीताहरणकर्शितम् । लोकानामभवे युक्तं संवर्तकमिवानलम् ॥ १ ॥
वीक्षमाणं धनुः सज्यं निःश्वसन्तं पुनः पुनः । दग्धुकामं जगत्सर्वं युगान्ते तु यथा हरम् ॥ २ ॥

क्रोध में आये हुए उस समय बुद्धिमान् रामचन्द्र का सम्पूर्ण शरीर त्रिपुर दाह करने वाले रुद्र के समान भयंकर हो रहा था ॥ ७२ ॥ लक्ष्मण के हाथ से धनुष ले कर रामचन्द्र ने उसे झुका कर प्रत्यञ्चा चढ़ाई और सर्प के समान प्रज्वलित बाणों को हाथ में लिया ॥ ७३ ॥ शत्रुओं के नगर ध्वस्त करने वाले क्रुद्ध श्री रामचन्द्र अपने धनुष पर देदीप्यमान बाणों का सन्धान करके यह वचन बोले ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मण ! सम्पूर्ण प्राणियों के लिए नियत जिस प्रकार वृद्धावस्था, मृत्यु तथा भाग्य-अभाग्य को कोई हटा नहीं सकता, उसी प्रकार मेरे क्रोध के वेग को भी कोई रोक नहीं सकता, यह ध्रुव निश्चित है ॥ ७५ ॥ यदि पहले के समान शोभन दन्त वाली, सुन्दरी, मिथिला की राजकुमारी मुझे न सौंपी गई तो देव, गन्धर्व, मनुष्य, पन्नग जाति के सम्पूर्ण मनुष्य तथा सम्पूर्ण पर्वत के साथ इस जगत् को रूप रेखा ध्वस्त कर दूंगा ॥ ७६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'राम का क्रोध' विषयक चौंसठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६४ ॥

पैंसठवां सर्ग

क्रोधसमाप्ति की प्रार्थना

सीता के हरण से चिन्तित भीतर ही भीतर जगत् को नष्ट करने के लिये प्रलयाग्नि की तरह ॥ १ ॥ जो बार-बार लम्बी साँस ले रहे हैं, त्रिपुर दाह के समय नगर को दग्ध करने के लिये रुद्र के समान जो अपने धनुष पर बाण चढ़ाये हुए हैं ॥ २ ॥ ऐसे अदृष्ट पूर्व क्रुद्ध अपने भाई रामचन्द्र को देखकर हाथ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अदृष्टपूर्वं संक्रुद्धं दृष्ट्वा रामं तु लक्ष्मणः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥ ३ ॥
पुरा भूत्वा मृदुर्दान्तः सर्वभूतहिते रतः । न क्रोधवशमापन्नः प्रकृतिं हातुमर्हसि ॥ ४ ॥
चन्द्रे लक्ष्मीः प्रभा सूर्ये गतिर्वायौ भुवि क्षमा । एतच्च नियतं सर्वं त्वयि चानुत्तमं यशः ॥ ५ ॥
एकस्य नापराधेन लोकान् हन्तुं त्वमर्हसि । न नु जानामि कस्यायं भग्नः सांग्रामिको रथः ॥ ६ ॥
केन वा कस्य वा हेतोः सायुधः सपरिच्छदः । खुरनेमिक्षतश्चायं सिक्तो रुधिरबिन्दुभिः ॥ ७ ॥
देशो निर्वृत्तसंग्रामः सुघोरः पार्थिवात्मज । एकस्य तु विमर्दोऽयं न द्वयोर्वदतां वर ॥ ८ ॥
न हि वृत्तं हि पश्यामि बलस्य महतः पदम् । नैकस्य तु कृते लोकान् विनाशयितुमर्हसि ॥ ९ ॥
युक्तदण्डा हि मृदवः प्रशान्ता वसुधाधिपाः । सदा त्वं सर्वभूतानां शरण्यः परमा गतिः ॥१०॥
को नु दारप्रणाशं ते साधु मन्येत राघव । सरितः सागराः शैला देवगन्धर्वदानवाः ॥११॥
नालं ते विप्रियं कर्तुं दीक्षितस्येव साधवः । येन राजन् हृता सीता तमन्वेषितुमर्हसि ॥१२॥
मद्द्वितीयो धनुष्पाणिः सहायैः परमर्षिभिः । समुद्रं च विचेष्यामः पर्वतांश्च वनानि च ॥१३॥
गुहाश्च विविधा घोरा नदीः पद्मवनानि च । देवगन्धर्वलोकांश्च विचेष्यामः समाहिताः ॥१४॥
यावन्नाधिगमिष्यामस्तत्र भार्यापहारिणम् । न चेत्साम्ना प्रदास्यन्ति पत्नीं ते त्रिदशेश्वराः ॥१५॥
कोसलेन्द्र ततः पश्चात्प्राप्तकालं करिष्यसि ॥

जोड़ते हुए सूखते मुख से लक्ष्मण इस प्रकार बोले ॥ ३ ॥ हे आर्य रामचन्द्र ! आप पहले अत्यन्त मृदु, वशी, सम्पूर्ण प्राणिमात्र के हित चिन्तक थे। इसलिये क्रोधावेश में आकर आप अपने स्वभाव को न छोड़ें ॥ ४ ॥ चन्द्रमा में कान्ति, सूर्य में प्रभा, वायु में गति, पृथ्वी में क्षमा और आप में अक्षुण्ण कीर्त्ति, ये सभी स्वभाव नियत हैं ॥ ५ ॥ केवल एक व्यक्ति के अपराध से सम्पूर्ण जनपद का नाश नहीं करना चाहिये। संग्राम में काम आने वाला यह टूटा हुआ रथ किसका है, यह मैं नहीं जानता ॥ ६ ॥ इसका किसके साथ तथा क्यों शस्त्रास्त्र युक्त संग्राम हुआ, यह भी मैं नहीं जानता। घोड़ों की टाप, रथ की नेमि से चिह्नित यह भूमि रुधिर बिन्दुओं से सिञ्चित हो रही है ॥ ७ ॥ हे राजकुमार रामचन्द्र ! इस स्थान में भयंकर घोर संग्राम हुआ है, ऐसा मालूम पड़ता है। हे प्रगल्भ वक्ता रामचन्द्र ! पदपंक्ति से मालूम पड़ता है कि एक ही व्यक्ति के द्वारा यह स्थान रौंदा गया है, दो के द्वारा नहीं ॥ ८ ॥ किसी बड़ी सेना के द्वारा यह संग्राम हुआ है, पदचिह्नों से ऐसा नहीं प्रतीत होता। इसलिये एक व्यक्ति के अपराध के कारण विशाल जन समुदाय का नाश करना आप के लिये अच्छा नहीं ॥ ९ ॥ राजा लोग अपराध के अनुकूल ही दण्ड देने वाले, कोमल स्वभाव वाले तथा शान्त होते हैं। आप सदा सम्पूर्ण प्राणियों के लिये शरणागत-वत्सल कहे गये हैं ॥ १० ॥ नदी तट पर रहने वाले, सागर तट पर रहने तथा पर्वत पर रहने वाले देव, दानव, गन्धर्व, इन में से कोई भी आपकी धर्मपत्नी सीता का नाश होना उसी प्रकार अच्छा नहीं समझता ॥ ११ ॥ जैसे यज्ञ में दीक्षित व्यक्ति का कोई अप्रिय आचरण नहीं करता। हे आर्य ! जिस ने जानकी का अपहरण किया है उसी की खोज करनी चाहिये ॥ १२ ॥ धनुष-बाण लेकर मेरे साथ ऋषियों की सहायता द्वारा समुद्र, पर्वत, वन आदि स्थानों को आप खोजें ॥ १३ ॥ इसके अतिरिक्त पर्वत की सारी घोर गुफाएँ, नाना प्रकार के सरोवर, जहाँ देव-गन्धर्व जाति के लोग वास करते हैं वहाँ सावधान चित्त होकर हम लोग खोजेंगे ॥ १४ ॥ जब तक सीता के हरण करने वाले उस अपराधी का पता न चलेगा, तब तक हम लोग खोज करेंगे। यदि शान्तिपूर्वक यह सभ्य देव मण्डल सीता को नहीं दे देता, तो हे कोसलाधीश रामचन्द्र ! पश्चात् आप जैसा उचित समझें वैसा करें ॥१५॥ नम्रता से, शान्ति से, नय-विनय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शीलेन साम्ना विनेयन सीतां नयेन न प्राप्स्यसि चेन्नरेन्द्र ।
ततः समुत्सादय हेमपुङ्खैर्महेन्द्रवज्रप्रतिमैः शरौघैः ॥१६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे क्रोधसंहारप्रार्थना नाम पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः

औचित्यप्रबोधनम्

तं तथा शोकसंतप्तं विलपन्तमनाथवत् । मोहेन महताविष्टं परिद्यूनमचेतसम् ॥ १ ॥
ततः सौमित्रिराश्वास्य मुहूर्तादिव लक्ष्मणः । रामं संबोधयामास चरणौ चाभिपीडयन् ॥ २ ॥
महता तपसा राम महता चापि कर्मणा । राज्ञा दशरथेनासि लब्धोऽमृतमिवामरैः ॥ ३ ॥
तव चैव गुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीपतिः । राजा देवत्वमापन्नो भरतस्य यथा श्रुतम् ॥ ४ ॥
यदि दुःखमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ न सहिष्यसे । प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्च इतरः कः सहिष्यते ॥ ५ ॥
स्पृशन्त्यनिलवद्राजन् क्षणेन न भवन्ति च । आश्वसिहि नरश्रेष्ठ प्राणिनः कस्य नापदः ॥ ६ ॥

से यदि हे रामचन्द्र ! जानकी न प्राप्त हो तब इन्द्र वज्र के समान स्वर्ण पुंखित बाणों के समूह से आप जिसको चाहें यथोचित दण्ड दें ॥ १६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'क्रोध समाप्ति की प्रार्थना' विषयक पैंसठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥६५॥

छियासठवां सर्ग

औचित्य का बोध

शोक से सन्तप्त नाना प्रकार से इस प्रकार अनाथवत् विलाप करते हुए किंकर्त्तव्य विमूढ़ तथा अत्यन्त दुर्बल रामचन्द्र के चरणों को पकड़ कर सुमित्रानन्दन लक्ष्मण ने थोड़े ही समय में उनको समझाया ॥ १, २ ॥ महती तपश्चर्या तथा महान् शुभ कर्मों के द्वारा पूज्य पिता राजा दशरथ ने आप को इस प्रकार प्राप्त किया था जिस प्रकार विद्वान् देवताओं ने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर अमृत पद प्राप्त किया था * ॥ ३ ॥ आपके गुणों में अनुरक्त तथा स्नेहबद्ध पृथ्वीपति पूज्य पिता राजा दशरथ आपके वियोग को न सहकर देवत्व (मृत्यु) को प्राप्त हो गये, जैसा भाई भरत के मुख से हमने सुना ॥ ४ ॥ हे आर्य रामचन्द्र ! इस आये हुए दुःख को यदि आप नहीं सहेंगे तो चपल स्वभाव वाला सामान्य व्यक्ति और कौन सहेगा ॥ ५ ॥ संसार में किस प्राणधारी को आपत्ति का सामना नहीं करना पड़ता । हे नरश्रेष्ठ ! आप धैर्य रखें । क्योंकि अग्नि की तरह ये आपदाएँ आती हैं तथा समाप्त हो जाती हैं ॥ ६ ॥ संसार की

* 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत' । 'विद्यया ऽमृतमश्नुते'

CC-0. Jangamwadi Math Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोकस्वभाव एवैष ययातिर्नहुषात्मजः । गतः शक्रेण सालोक्यमनयस्तं समस्पृशत् ॥ ७ ॥
महर्षिर्यो वसिष्ठस्तु यः पितुर्नः पुरोहितः । अह्ना पुत्रशतं जज्ञे तथैवास्य पुनर्हतम् ॥ ८ ॥
या चेयं जगतां माता देवी लोकनमस्कृता । अस्याश्च चलनं भूमेर्दृश्यते कोसलेश्वर ॥ ९ ॥
यौ धर्मौ जगतां नेत्रौ यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । आदित्यचन्द्रौ ग्रहणमभ्युपेतौ महाबलौ ॥१०॥
सुमहान्त्यपि भूतानि देवाश्च पुरुषर्षभ । न दैवस्य प्रमुञ्चन्ति सर्वभूतानि देहिनः ॥११॥
शक्रादिष्वपि देवेषु वर्तमानौ नयानयौ । श्रूयेते नरशार्दूल न त्वं व्यथितुमर्हसि ॥१२॥
नष्टायामपि वैदेह्यां हृतायामपि राघव । शोचितुं नार्हसे वीर यथान्यः प्राकृतस्तथा ॥१३॥
त्वद्विधा न हि शोचन्ति सततं सत्यदर्शिनः । सुमहत्स्वपि कृच्छ्रेषु रामानिर्विण्णदर्शनाः ॥१४॥
तत्त्वतो हि नरश्रेष्ठ बुद्ध्या समनुचिन्तय । बुद्ध्या युक्ता महाप्राज्ञा विजानन्ति शुभाशुभे ॥१५॥
अदृष्टगुणदोषाणामध्रुवाणां च कर्मणाम् । नान्तरेण क्रियां तेषां फलमिष्टं प्रवर्तते ॥१६॥
त्वमेव हि पुरा राम मामेवं बहुशोऽन्वशः । अनुशिष्याद्धि को नु त्वामपि साक्षाद्बृहस्पतिः ॥१८॥

यही गति है। राजा नहुष के पुत्र ययाति ने अपने शुभ कर्मों के द्वारा स्वर्ग-सुख शान्तिमय जीवन को प्राप्त किया, किन्तु अपने कुत्सित कर्म प्रमाद के द्वारा अपने सुख-शान्तिमय जीवन से भ्रष्ट हो गये ॥ ७ ॥ पूज्य पिताजी के पुरोहित महर्षि वसिष्ठ के अनेक पुत्र थे जो विश्वामित्र के द्वारा एक ही दिन में मार दिये गये ॥ ८ ॥ जगद्धात्री, सर्वलोक नमस्या जो यह भूमि है, हे कोसलाधीश ! उसमें भी समय २ पर भूकम्प हो जाया करता है ॥ ९ ॥ जगत् के नेत्रभूत तथा जिनके सहारे सम्पूर्ण जगत् है, उन चन्द्र-सूर्य पर भी पर्व के समय ग्रहण लग ही जाता है ॥ १० ॥ हे नरकेसरी ! इस संसार के निर्माण कौशल में जड़ चेतन शरीरधारी कोई भी ईश्वर के अटल विधान से मुक्त नहीं है ॥ ११ ॥ इन्द्र आदि तथा देव पद आदि प्राप्त करने वाले भाग्यवान् पुरुषों को भी सुख दुःख का सामना करना पड़ता है, ऐसा सुना जाता है। हे नरकेसरी आर्य रामचन्द्र ! इस अवस्था में आपको दुःखित नहीं होना चाहिये ॥ १२ ॥ जानकी के मर जाने पर या हरण किये जाने पर भी हे रामचन्द्र ! आप को इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये, जिस प्रकार इस अवस्था में सामान्य लोग दुःखी होते हैं ॥ १३ ॥ सर्वदा प्रसन्न रहने वाले, सर्वदर्शी आप जैसे व्यक्ति हे आर्य रामचन्द्र ! बड़ी से बड़ी विपत्ति में भी शोक नहीं किया करते ॥ १४ ॥ हे नरश्रेष्ठ आर्य रामचन्द्र ! आप बुद्धि के द्वारा ही कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय कीजिये, क्योंकि बुद्धिमान् लोग अपनी बुद्धि के द्वारा ही शुभाशुभ कर्मों का निर्णय करते हैं ॥ १५ ॥ वे अनिश्चित कर्म जिनके गुण दोष का पता नहीं है, उनका फल तो अवश्य ही भोगना पड़ता है, चाहे हमें यह न पता हो कि यह हमारे किन अनिष्ट कर्मों का फल है। क्योंकि शुभाशुभ कर्म के विना कोई प्राणी भी सुख दुःख का भागी नहीं होता ॥ १६ ॥ हे वीर आर्य रामचन्द्र ! ये सब बातें आपने ही पहले मुझ से कही हैं। आप को कौन समझा सकता है, चाहे वह साक्षात् बृहस्पति ही क्यों न हो ॥ १७ ॥ हे महाप्राज्ञ ! आप की अगाध बुद्धि जानने के लिये विद्वान् देववर्ग भी किङ्कर्त्तव्य विमूढ़ है। इस समय शोक के कारण आपकी वह अगाध बुद्धि सो गई है, उसी को मैं जागरित कर रहा हूं, न कि मैं आपको समझा सकता हूँ ॥१८॥ आपके जिस दिव्य तथा मानवी पराक्रम की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बुद्धिश्च ते महाप्राज्ञ देवैरपि दुरन्वया । शोकेनाभिप्रसुप्तं ते ज्ञानं संबोधयाम्यहम् ॥१९॥
दिव्यं च मानुषं च त्वमात्मनश्च पराक्रमम् । इक्ष्वाकुवृषभावेक्ष्य यतस्व द्विषतां वधे ॥२०॥
किं ते सर्वविनाशेन कृतेन पुरुषर्षभ । तमेव त्वं रिपुं पापं विज्ञायोद्धर्तुमर्हसि ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रारामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे औचित्यप्रबोधनं नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः

गृध्रराजदर्शनम्

पूर्वजोऽप्युक्तमात्रस्तु लक्ष्मणेन सुभाषितम् । सारग्राही माहासारं प्रतिजग्राह राघवः ॥ १ ॥
संनिगृह्य महाबाहुः प्रवृद्धं रोषमात्मनः । अवष्टभ्य धनुश्चित्रं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥
किं करिष्यावहे वत्स क्व वा गच्छाव लक्ष्मण । केनोपायेन पश्याव सीतामिति विचिन्तय ॥ ३ ॥
तं तथा परितापार्तं लक्ष्मणो राममब्रवीत् । इदमेव जनस्थानं त्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ४ ॥
राक्षसैर्बहुभिः कीर्णं नानाद्रुमलतायुतम् । सन्तीह गिरिदुर्गाणि निर्दराः कन्दराणि च ॥ ५ ॥

सभी लोग प्रशंसा करते हैं, हे इक्ष्वाकु कुलश्रेष्ठ रामचन्द्र ! उसी का सहारा ले कर आप शत्रुओं के मारने का प्रयत्न कीजिये ॥ १९ ॥ हे नरश्रेष्ठ रामचन्द्र ! इस सम्पूर्ण जनविनाश से आपका क्या लाभ होगा। जानकी का हरण करने वाले उसी पापी का आप पता लगायें तथा उसके साथ संग्राम करें ॥ २० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'औचित्य का बोधन' विषयक छियासठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६६ ॥

सड़सठवां सर्ग

गृध्रराज का दर्शन

लक्ष्मण के इस प्रकार सुभाषित वाक्यों के कहने पर सारग्राही रामचन्द्र ने लक्ष्मण की सारगर्भित बातों को स्वीकार कर लिया ॥ १ ॥ विशाल भुजा वाले रामचन्द्र बढ़े हुए अपने क्रोध को रोक कर तथा धनुष से प्रत्यञ्चा उतार कर लक्ष्मण से बोले ॥ २ ॥ हे प्रिय लक्ष्मण ! अब हम लोग क्या करें, कहाँ जायें, जानकी को हम लोग किस उपाय से देखें, इस पर तुम विचार करो ॥ ३ ॥ जानकी के शोक से संतप्त रामचन्द्र से लक्ष्मण यह बोले—हे आर्य ! इसी जनस्थान में सीता की खोज करें ॥ ४ ॥ यह जन स्थान नाना प्रकार के वृक्ष-लताओं से परिपूर्ण है। राक्षस इसमें जहाँ तहाँ वास कर रहे हैं। इसमें अनेक अगमनीय पर्वत कन्दराएँ हैं ॥ ५ ॥ यहाँ नाना प्रकार के पशु पक्षियों से भरी हुई अनेकों गुफायें हैं। इस में किन्नर जाति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुहाश्च विविधा घोरा नानामृगगणाकुलाः । आवासाः किंनराणां च गन्धर्वभवनानि च ॥ ६ ॥
तानि युक्तो मया सार्धं समन्वेषितुमर्हसि । त्वद्विधा बुद्धिसंपन्ना महात्मानो नरर्षभाः ॥ ७ ॥
आपसु न प्रकम्पन्ते वायुवेगैरिवाचलाः । इत्युक्तस्तद्वनं सर्वं विचचार सलक्ष्मणः ॥ ८ ॥
क्रुद्धो रामः शरं घोरं संधाय धनुषि क्षुरम् । ततः पर्वतकूटाभं महाभागं द्विजोत्तमम् ॥ ९ ॥
ददर्श पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम् । तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १० ॥
अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशयः । गृध्ररूपमिदं व्यक्तं रक्षो भ्रमति काननम् ॥ ११ ॥
भक्षयित्वा विशालाक्षीमास्ते सीतां यथासुखम् । एनं वधिष्ये दीप्तास्यैर्घोरैर्बाणैरजिह्मगैः ॥ १२ ॥
इत्युक्त्वाभ्यपतद्गृध्रं संधाय धनुषि क्षुरम् । क्रुद्धो रामः समुद्रान्तां चालयन्निव मेदिनीम् ॥ १३ ॥
तं दीनं दीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन् । अभ्यभाषत पक्षी तु रामं दशरथात्मजम् ॥ १४ ॥
यामोषधिमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने । सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम् ॥ १५ ॥
त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव । ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा ॥ १६ ॥
सीतामभ्यवपन्नोऽहं रावणश्च रणे मया । विध्वंसितरथच्छत्रः पातितो धरणीतले ॥ १७ ॥
एतदस्य धनुर्भग्नमेते चास्य शरास्तथा । अयमस्य रणे राम भग्नः सांग्रामिको रथः ॥ १८ ॥
अयं तु सारथिस्तस्य मत्पक्षनिहतो भुवि । परिश्रान्तस्य मे पक्षौ छित्त्वा खड्गेन रावणः ॥ १९ ॥
सीतामादाय वैदेहीमुत्पपात विहायसम् । रक्षसा निहतं पूर्वं न मां हन्तुं त्वमर्हसि ॥ २० ॥

तथा गन्धर्व जाति के मनुष्यों के अनेकों भवन हैं ॥ ६ ॥ मेरे साथ आप इन स्थानों में सीता की खोज करें। आप जैसे बुद्धिमान् श्रेष्ठ महात्मा ॥ ७ ॥ विपत्ति में कभी भी कम्पायमान नहीं होते, जैसे वायु के वेग से पर्वत कभी चलायमान नहीं होते। इन बातों को सुन कर क्रुद्ध रामचन्द्र अपने धनुष पर भयंकर बाणों को चढ़ा कर लक्ष्मण के साथ उस वन में घूमने लगे। घूमते हुए रामचन्द्र ने द्विजातियों में श्रेष्ठ विशाल काय महातपस्वी ॥ ८,९ ॥ रक्त से सने हुए तथा भूमि पर गिरे हुए जटायु को देखा। विशालकाय तपस्वी जटायु को देख कर रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण से बोले ॥ १० ॥ इसने ही सीता का भक्षण किया है, अब इस में कोई संशय नहीं। तपस्वी के रूप में स्पष्ट ही यह राक्षस है जो इस वन में घूम रहा है ॥ ११ ॥ विशाल नेत्रा सीता का भक्षण कर यह सुख पूर्वक यहाँ बैठा है। अपने देदीप्यमान सरल तीव्र बाणों से मैं इस को मारूँगा ॥ १२ ॥ इतनी बातें कह कर और अपने धनुष पर तेज बाणों को संयुक्त कर समुद्र पर्यन्त पृथ्वी को कम्पायमान करते हुए क्रुद्ध रामचन्द्र जटायु की ओर चल पड़े ॥ १३ ॥ मुख से रुधिर वमन करते हुए दीन शब्दों में तपस्वी जटायु दशरथ कुमार रामचन्द्र से बोले ॥ १४ ॥ हे आयुष्मन्! इस वन में ओषधि के समान जिस जानकी को आप खोज रहे हैं, उस जानकी तथा मेरे प्राणों को रावण हर ले गया ॥ १५ ॥ बलवान् रावण ने लक्ष्मण तथा आप से रहित सीता को हरण किया। हे रामचन्द्र! इसको मैंने देखा ॥ १६ ॥ हे कृपालु! संकट में आई हुई जानकी की रक्षा के लिये मैंने रावण का सामना किया और उसके छत्र तथा बाणों को तोड़ कर भूमि पर गिरा दिया ॥ १७ ॥ यह उसका टूटा हुआ धनुष है, ये बाण हैं। हे रामचन्द्र! संग्राम में टूटा हुआ उसका यह युद्ध रथ है ॥ १८ ॥ मेरी भुजाओं से मारा गया यह उसका सारथि है। जब मैं थक गया तो उसने अपने खड्ग से मेरी भुजाओं को काट दिया ॥ १९ ॥ मेरे आहत हो जाने पर जानकी को ले कर रावण विमान से आकाश में चला गया ॥ २० ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रामस्तस्य तु विज्ञाय सीतासक्तां प्रियां कथाम् । गृध्रराजं परिष्वज्य परित्यज्य महद्धनुः ॥२१॥
निपपातावशो भूमौ रुरोद सहलक्ष्मणः । द्विगुणीकृततापार्त्तो रामो धीरतरोऽपि सन् ॥२२॥
एकमेकायने दुर्गे निःश्वसन्तं कथंचन । समीक्ष्य दुःखिततरो रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥२३॥
राज्याद्भ्रंशो वने वासः सीता नष्टा द्विजो हतः । ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्निर्दहेदपि पावकम् ॥२४॥
संपूर्णमपि चेदद्य प्रतरेयं महोदधिम् । सोऽपि नूनं ममालक्ष्म्या विशुष्येत्सरितां पतिः ॥२५॥
नास्त्यभाग्यतरो लोके मत्तोऽस्मिन् सचराचरे । येनेयं महती प्राप्ता मया व्यसनवागुरा ॥२६॥
अयं पितृवयस्यो मे गृध्रराजो जरान्वितः । शेते विनिहतो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात् ॥२७॥
इत्येवमुक्त्वा बहुशो राघवः सहलक्ष्मणः । जटायुषं च पस्पर्श पितृस्नेहं विदर्शयन् ॥२८॥

निकृत्तपक्षं रुधिरावसिक्तं स गृध्रराजं परिरभ्य रामः ।
क्व मैथिली प्राणसमा ममेति विमुच्य वाचं निपपात भूमौ ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे गृध्रराजदर्शनं नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

मैं पहले ही राक्षस के द्वारा आहत हो चुका हूँ । अब आप मुझे मत मारिये ॥ २१ ॥ अपनी प्रिया सीता सम्बन्धी इस दयनीय कथा को सुन कर रामचन्द्र ने अपने धनुष को फेंक कर जटायु को गले से लगा लिया ॥ २२ ॥ धीर होने पर भी जटायु को देख कर जिसका सन्ताप द्विगुणित हो गया है, ऐसे रामचन्द्र विवश होकर भूमि पर गिर पड़े तथा लक्ष्मण के साथ फूट फूट कर रोने लगे ॥ २३ ॥ संकीर्ण स्थान में गिरे हुए तथा बार-बार जो लम्बी सांस ले रहे हैं, ऐसे तपस्वी दुःखी जटायु को देख कर संतप्त हृदय रामचन्द्र लक्ष्मण से बोले ॥ २४ ॥ राज्य हाथ से निकल गया, वन में वास कर रहा हूँ, सीता भी चली गई और मेरे कारण यह तपस्वी भी मारा गया । इस प्रकार का मेरा यह अभाग्य अग्नि को भी जला सकता है ॥ २५ ॥ आज मैं समुद्र में तैरने के लिये जाऊँ तो नदीश समुद्र भी मेरे अभाग्य के कारण निश्चय ही सूख जायेगा ॥ २६ ॥ इस चराचर जगत् में मुझसे बढ़ कर अभागा और कोई व्यक्ति नहीं दिखाई देता, जिससे कि मैं इस भयंकर विपत्ति के जाल में फंस गया हूँ ॥ २७ ॥ मेरे पूज्य पिता के परम मित्र यह महाबली तपस्वी जटायु मेरे भाग्य के विपरीत होने से आज आहत हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ २८ ॥ ऐसी अनेक प्रकार की बातें कहते हुए दोनों भाई रामलक्ष्मण ने जटायु के प्रति पितृस्नेह का प्रदर्शन करते हुए तपस्वी जटायु का स्पर्श किया ॥ २९ ॥ जिसकी दोनों भुजाएँ कट गई हैं, रक्त से सम्पूर्ण शरीर जिसका भीग गया है, ऐसे उस तपस्वी जटायु से मेरी प्राणप्रिया सीता कहाँ गई यह शब्द कह कर रामचन्द्र पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३० ॥

इस प्रकार वाल्मीरामायण के अरण्यकाण्ड का 'गृध्रराज का दर्शन' विषयक सड़सठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६७ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टषष्टितमः सर्गः

जटायुस्संस्कारः

रामः संप्रेक्ष्य तं गृध्रं भुवि रौद्रेण पातितम् । सौमित्रिं मित्रसंपन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
ममायं नूनमर्थेषु यतमनो विहङ्गमः । राक्षसेन हतः संख्ये प्राणांस्त्यजति दुस्त्यजान् ॥२ ॥
अतिखिन्नः शरीरेऽस्मिन् प्राणो लक्ष्मण विद्यते । तथा स्वरविहीनोऽयं विक्लवः समुदीक्षते ॥ ३ ॥
जटायो यदि शक्तोपि वाक्यं व्याहरितुं पुनः । सीतामाख्याहि भद्रं ते वधमाख्याहि चात्मनः ॥ ४ ॥
किंनिमित्तोऽहरत्सीतां रावणस्तस्य किं मया । अपराधं तु यं दृष्ट्वा रावणेन हृता प्रिया ॥ ५ ॥
कथं तच्चन्द्रसंकाशं मुखमासीन्मनोहरम् । सीतया कानि चोक्तानि तस्मिन् काले द्विजोत्तम ॥ ६॥
कथंवीर्यः कथंरूपः किंकर्मा स च राक्षसः । क्व चास्य भवनं तात ब्रूहि मे परिपृच्छतः ॥ ७ ॥
तमुद्वीक्ष्य स धर्मात्मा विलपन्तमनाथवत् । वाचा विक्लवया रामं जटायुरिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥
हृता सा राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना । मायामास्थाय विपुलां वातदुर्दिनसंकुलाम् ॥ ९ ॥
परिश्रान्तस्य मे तात पक्षौ छित्त्वा स राक्षसः । सीतामादाय वैदेहीं प्रयातो दक्षिणां दिशम् ॥१०॥

अड़सठवां सर्ग

जटायु का संस्कार

राक्षस के द्वारा आहत कर पृथ्वी पर गिराये हुए उस तपस्वी जटायु को देख कर आर्य रामचन्द्र मित्रतामय व्यवहार करने वाले अपने भाई लक्ष्मण से बोले ॥ १ ॥ मेरे लिये प्रयत्न करता हुआ यह तपस्वी जटायु संग्राम में राक्षस के द्वारा आहत होकर जानकी के रक्षार्थ ही अपने प्राणों को छोड़ रहा है ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! यह अत्यन्त क्षीण हो चुका है। इस तपस्वी के प्राण का अब अन्त होने वाला है। इनके शब्द की गति भी अब धीमी हो गई है। ये संज्ञाहीन होकर इधर-उधर देख रहे हैं ॥ ३ ॥ हे तपस्वी जटायु ! यदि तुम बोलने में समर्थ हो, तो सीता के हरण तथा अपने वध का आद्योपान्त समाचार पुनः सुनाओ ॥ ४ ॥ रावण ने किस कारण सीता का हरण किया। मैंने उसका क्या बिगाड़ा था। मेरे किस अपराध के कारण रावण ने प्राणप्रिया जानकी का हरण किया ॥ ५ ॥ जानकी के अपहरण समय में चन्द्रमा के समान मनोहर जानकी का मुख मण्डल किस प्रकार हो गया था। हे तपस्वी ! उस समय जानकी ने क्या बातें कहीं ॥ ६ ॥ उस राक्षस का पराक्रम कैसा है ? उसकी आकृति कैसी है ? वह क्या काम करता है ? तथा उसके रहने का स्थान कहाँ है ? हे तात ! मैं आप से पूछ रहा हूं, आप बताइये ॥७॥ अनाथों के समान करुणामय शब्दों में विलाप करते हुए उस रामचन्द्र को देखकर धर्मात्मा जटायु अपने क्षीण शब्दों में उनसे बोले ॥ ८ ॥ आँधी-पानी से परिपूर्ण विकराल माया करके दुरात्मा राक्षसराज रावण ने सीता का हरण किया ॥ ९ ॥ संग्राम में जब मैं लड़कर क्लान्त हो गया तब राक्षस ने मेरी दोनों भुजाओं को काट दिया। पश्चात् जानकी को लेकर दक्षिण दिशा में चला गया ॥ १० ॥ हे रामचन्द्र ! मेरे प्राणों की गति अब रुक रही है। मेरे दोनों नेत्र अब घूम रहे हैं। मुझे ये सम्पूर्ण वृक्ष काञ्चनमय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपरुध्यन्ति मे प्राणा दृष्टिर्भ्रमति राघव । पश्यामि वृक्षान् सौवर्णानुशीरकृतमूर्धजान् ॥११॥
येन यातो मुहूर्तेन सीतामादाय रावणः । विप्रनष्टं धनं क्षिप्रं तत्स्वामी प्रतिपद्यते ॥१२॥
विन्दो नाम मुहूर्तोऽसौ स च काकुत्स्थ नाबुधत् । झषवद्बडिशं गृह्य क्षिप्रमेव विनश्यति ॥१३॥
न च त्वया व्यथा कार्या जनकस्य सुतां प्रति । वैदेह्या रंस्यसे क्षिप्रं हत्वा तं राक्षसं रणे ॥१४॥
असंमूढस्य गृध्रस्य रामं प्रत्यनुभाषतः । आस्यात्सुस्राव रुधिरं म्रियमाणस्य सामिषम् ॥१५॥
पुत्रो विश्रवसः साक्षाद्भ्राता वैश्रवणस्य च । इत्युक्त्वा दुर्लभान् प्राणान् मुमोच पतगेश्वरः ॥१६॥
ब्रूहि ब्रूहीति रामस्य ब्रुवाणस्य कृताञ्जलेः । त्यक्त्वा शरीरं गृध्रस्य जग्मुः प्राणा विहायसम् ॥१७॥
स निक्षिप्य शिरो भूमौ प्रसार्य चरणौ तदा । विक्षिप्य च शरीरं स्वं पपात धरणीतले ॥१८॥
तं गृध्रं प्रेक्ष्य ताम्राक्षं गतासुमचलोपमम् । रामः सुबहुभिर्दुःखैर्दीनः सौमित्रिमब्रवीत् ॥१९॥
बहूनि रक्षसां वासे वर्षाणि वसता सुखम् । अनेन दण्डकारण्ये विशीर्णमिह पक्षिणा ॥२०॥
अनेकवार्षिको यस्तु चिरकालसमुत्थितः । सोऽयमद्य हतः शेते कालो हि दुरतिक्रमः ॥२१॥
पश्य लक्ष्मण गृध्रोऽयमुपकारी हतश्च मे । सीतामभ्यवपन्नो वै रावणेन बलीयसा ॥२२॥
गृध्रराज्यं परित्यज्य पितृपैतामहं महत् । मम हेतोरयं प्राणान् मुमोच पतगेश्वरः ॥२३॥
सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः । शूराः शरण्याः सौमित्रे चातुर्वर्ण्येषु मानवाः ॥२४॥

दिखाई दे रहे हैं तथा लोगों के केशपाश खस के समान दिखाई दे रहे हैं। (मृत्यु के समय इस प्रकार दृष्टिदोष हो जाते हैं)॥ ११ ॥ जिस मुहूर्त्त में जानकी को रावण ले गया, उस मुहूर्त्त में खोई हुई सम्पत्ति उसको मिल जाती है ॥ १२ ॥ वह विन्द नामक मुहूर्त्त था, जिसका पता रावण को नहीं था। जिस प्रकार बडिश (बंशी) में फँसी हुई मछलियाँ अपने प्राणों को खोती हैं, उसी प्रकार वह पापी रावण भी अपने जीवन को खोयेगा ॥ १३ ॥ हे रामचन्द्र ! जनक की राजकुमारी जानकी के प्रति शोक न करें। संग्राम में उस पापी रावण को मारकर शीघ्र ही आप सीता के साथ रमण करेंगे ॥ १४ ॥ आसन्न मृत्यु होने पर भी चेतनायुक्त रामचन्द्र के प्रश्नों का उत्तर देते हुए जटायु के मुख से मांस मिश्रित रक्त स्रवित होने लगा ॥ १५ ॥ वह रावण विश्रवा का पुत्र है तथा प्रसिद्ध कुवेर का साक्षात् छोटा सगा भाई है। इतनी बातें कहकर उस तपस्वी जटायु ने अपने दुर्लभ प्राणों को छोड़ दिया ॥ १६ ॥ हाथ जोड़कर रामचन्द्र के ऐसा कहते हुए—बोलिये २ हे आर्य जटायु ! बोलिये—जटायु के प्राण शरीर को छोड़कर आकाश को चले गये ॥ १७ ॥ जटायु ने अपने हाथ-पैरों को फैला दिया। उनका शरीर शिथिल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ १८ ॥ प्राण रहित रक्तवर्ण की आँखों वाले जटायु को देखकर अत्यन्त दुःखी होते हुए रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण से बोले ॥ १९ ॥ इस राक्षस परिपूर्ण दण्डकवन की भूमि में आज इस तपस्वी जटायु ने अपने शरीर को छोड़ दिया ॥ २० ॥ यह दीर्घायु जटायु चिरकाल से यहाँ निवास कर रहा था, आज वह भी मरकर पृथ्वी पर सो रहा है। यह मृत्यु अनतिक्रमणीय है ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो, सीता की रक्षा के लिये यह मेरा परम उपकारी जटायु बलवान् रावण के हाथों मारा गया ॥ २२ ॥ पिता-पितामह के द्वारा प्राप्त किये हुए अपने गृध्रकूट राज्य को छोड़कर आज यह तपस्वी जटायु मेरे ही कारण मारा गया ॥ २३ ॥ हे लक्ष्मण ! सर्वत्र चारों वर्णों में वीर, शरणागतवत्सल, धर्मात्मा, साधु स्वभाव वाले मनुष्य दिखाई देते हैं ॥ २४ ॥ हे सौम्य लक्ष्मण ! जानकी के हरण का मुझे इतना

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम् । यथा विनाशे गृध्रस्य मत्कृते च परंतप ॥२५॥
राजा दशरथः श्रीमान् यथा मम महायशाः । पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः ॥२६॥
सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् । गृध्रराजं दिधक्षामि मत्कृते निधनं गतम् ॥२७॥
नाथं पतगलोकस्य चितामारोपयाम्यहम् । इमं धक्ष्यामि सौमित्रे हतं रौद्रेण रक्षसा ॥२८॥
या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः । अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम् ॥२९॥
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान् । गृध्रराज महासत्त्व संस्कृतश्च मया व्रज ॥३०॥
एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम् । ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ॥३१॥
[रामोऽथ सहसौमित्रिर्वनं गत्वा स वीर्यवान् । स्थूलान् हत्वा महारोहीननु तस्तार तं द्विजम् ॥३२॥
रोहिमांसानि चोत्कृत्य पेशीकृत्य महायशाः । शकुनाय ददौ रामो रम्ये हरितशाद्वले ॥३३॥
यत्तत्प्रेतस्य मर्त्यस्य कथयन्ति द्विजातयः । तत्स्वर्गगमनं तस्य पित्र्यं रामो जजाप ह ॥३४॥
ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजौ । उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ ॥३५॥
शास्त्रदृष्टेन विधिना जलं गृध्राय राघवौ । स्नात्वा तौ गृध्रराजाय उदकं चक्रतुस्तदा ॥३६॥]

दुःख नहीं है, जितना कि आज इस तपस्वी जटायु की मृत्यु का मुझे दुःख हो रहा है ॥ २५ ॥ जैसे मेरी दृष्टि में महायशस्वी पूजनीय पिता राजा दशरथ थे, उसी प्रकार आदरणीय यह जटायु है ॥ २६ ॥ हे लक्ष्मण ! काष्ठों का संचय करो । मैं अरणी को मथन कर उस अग्नि से तपस्वी जटायु की अन्त्येष्टि करूँगा जो कि मेरे लिये मारा गया है ॥ २७ ॥ भूतपूर्व गृध्रकूट के राजा जटायु के शव को मैं अपने हाथों से चिता पर रखूँगा । हे लक्ष्मण ! उस भयंकर राक्षस के द्वारा मारे गये इस महापुरुष को मैं अपने हाथ से जलाऊँगा ॥ २८ ॥ जो सद्गति यज्ञानुष्ठान करने वालों की होती है, दीक्षित अग्निहोत्रियों को होती है, संग्राम में न लौटकर सीधे-छाती मरने वाले वीरों की होती है तथा भूमिदान करने वालों की जो सद्गति होती है ॥ २९ ॥ हे महातपस्वी जटायु ! मेरे द्वारा अन्त्येष्टि संस्कार किये जाने पर तथा मेरे द्वारा हार्दिक प्रार्थना करने पर तुम उसी सद्गति को प्राप्त होओ ॥ ३० ॥ इस प्रकार कहकर धर्मात्मा रामचन्द्र ने अपने कुटुम्बी की तरह जटायु को चिता पर रखकर उसमें अग्नि लगाई ॥ ३१ ॥ लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र ने वन में जाकर मोटे मृगों को मारकर जटायु के पिंडदान के लिये तृण बिछाया ॥ ३२ ॥ रोहित मृग के मांस को निकाल कर तथा उसके टुकड़े करके हरी २ घास पर जटायु के निमित्त रखे ॥ ३३ ॥ मरे हुए व्यक्तियों को स्वर्ग जाने के लिये ब्राह्मण लोग जिन मन्त्रों का जप करते हैं, जटायु के स्वर्ग जाने के लिये रामचन्द्र ने उन्हीं मन्त्रों का जप किया ॥ ३४ ॥ पश्चात् दोनों राजकुमारों ने गोदावरी पर जाकर जटायु के लिये जलाञ्जलि दी ॥ ३५ ॥ दोनों भाइयों ने स्नान कर शास्त्रविधि के अनुसार जटायु को जलाञ्जलि दी❀ ॥ ३६ ॥ जो जटायु ने संग्राम में प्राण त्यागकर अक्षुण्ण कीर्त्ति प्राप्त की थी, इसलिये महर्षियों के समान रामचन्द्र ने उनका अन्त्येष्टि संस्कार किया जिससे जटायु उत्तम

❀ मृत पितरों को पिण्डदान करना तथा एक बनवासी राजर्षि के निमित्त मांस आदि का प्रयोग करना सर्वथा अवैदिक तथा अवैधानिक है । पुराणों में जहाँ-तहाँ इस प्रकार के श्लोक आये हुए हैं । पौराणिक वृत्तिवाले मृतक श्राद्ध मानने वाले व्यक्तियों के द्वारा इस प्रकार के श्लोक तथा विचार यत्र-तत्र आर्षग्रन्थों में मिलाये गये हैं । इस दृष्टि से महर्षि महाकवि वाल्मीकि के बनाये ये श्लोक नहीं हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स गृध्रराजः कृतवान् यशस्करं सुदुष्करं कर्म रणे निपातितः ।
महर्षिकल्पेन च संस्कृतस्तदा जगाम पुण्यां गतिमात्मनः शुभाम् ॥३७॥
कृतोदकौ तावपि रामलक्ष्मणौ स्थिरां च बुद्धिं प्रणिधाय जग्मतुः ।
प्रवेश्य सीताधिगमे ततो मनो वनं सुरेन्द्राविव विष्णुवासवौ ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे जटायुस्संस्कारो नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः

कबन्धग्राहः

कृत्वैवमुदकं वीरौ प्रस्थितौ रामलक्ष्मणौ । अवेक्षन्तौ वने सीतां पश्चिमां जग्मतुर्दिशम् ॥ १ ॥
तौ दिशं दक्षिणां गत्वा शरचापासिधारिणौ । अविग्रहतमैक्ष्वाकौ पन्थानं प्रतिजग्मतुः ॥ २ ॥
गुल्मैर्वृक्षैश्च बहुभिर्लताभिश्च प्रवेष्टितम् । आवृतं सर्वतो दुर्गं गहनं घोरदर्शनम् ॥ ३ ॥
व्यतिक्रम्य तु वेगेन गृहीत्वा दक्षिणां दिशम् । सुभीमं तन्महारण्यं व्यतियातौ महाबलौ ॥ ४ ॥
ततः परं जनस्थानात्त्रिक्रोशं गम्य राघवौ । क्रौञ्चारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ ॥ ५ ॥

गति को प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ स्नान करने के पश्चात् वे दोनों भाई राम-लक्ष्मण जटायु का ही ध्यान करते हुए जानकी की खोज करने के लिये विष्णु तथा इन्द्र के समान उस वन में घूमने लगे ॥ ३८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड के 'जटायु का संस्कार' विषयक अड़सठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६८ ॥

उनहत्तरवां सर्ग

कबन्ध-ग्राह

दोनों वीर राम-लक्ष्मण स्नानादि से निवृत्त होकर वन में सीता की खोज करते हुए पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े ॥ १ ॥ तलवार तथा बाण को धारण करने वाले राम-लक्ष्मण दक्षिण-पश्चिम की अन्तराल दिशा से होकर विजनवन में पहुँचे ॥ २ ॥ लताओं से वेष्टित वृक्षों के समूहों से भरे हुए सब ओर से दुर्गमनीय घोर वन में प्रवेश किया ॥ ३ ॥ वेगपूर्वक दक्षिण दिशा में जाकर महाबली राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों ने उस विशाल वन को पार किया ॥ ४ ॥ उस जनस्थान से तीन कोस आगे जाकर तेजस्वी राम-लक्ष्मण ने क्रौञ्चारण्य नामक गहन वन में प्रवेश किया ॥ ५ ॥ वह वन सघन वृक्षों के द्वारा नील मेघ के समान प्रतीत हो रहा था, जहाँ नाना प्रकार के रमणीय फूल खिले हुए थे तथा उत्तम मृग और पक्षियों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नानामेघघनप्रख्यं प्रहृष्टमिव सर्वतः । नानावर्णैः शुभैः पुष्पैः मृगपक्षिगणैर्वृतम् ॥ ६ ॥
दिदृक्षमाणौ वैदेहीं तद्वनं तौ विचिक्यतुः । तत्र तत्रावतिष्ठन्तौ सीताहरणकर्शितौ ॥ ७ ॥
ततः पूर्वेण तौ गत्वा त्रिक्रोशं भ्रातरौ तदा । क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रममन्तरे ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा तु तद्वनं घोरं बहुभीममृगद्विजम् । नानासत्त्वसमाकीर्णं सर्वं गहनपादपम् ॥ ९ ॥
ददृशाते गिरौ तत्र दरीं दशरथात्मजौ । पातालसमगम्भीरां तमसा नित्यसंवृताम् ॥१०॥
आसाद्य तौ नरव्याघ्रौ दर्यास्तस्याविदूरतः । ददृशाते महारूपां राक्षसीं विकृताननाम् ॥११॥
भयदामल्पसत्त्वानां बीभत्सां रौद्रदर्शनाम् । लम्बोदरीं तीक्ष्णदंष्ट्रां करालां परुषत्वचम् ॥१२॥
भक्षयन्तीं मृगान् भीमान् विकटां मुक्तमूर्धजाम् । प्रेक्षेतां तौ ततस्तत्र भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१३॥
सा समासाद्य तौ वीरौ व्रजन्तं भ्रातुरग्रतः । एहि रंस्यावहेत्युक्त्वा समालम्बत लक्ष्मणम् ॥१४॥
उवाच चैनं वचनं सौमित्रिमुपगूह्य सा । अहं त्वयोमुखी नाम लाभस्ते त्वमसि प्रियः ॥१५॥
नाथ पर्वतकूटेषु नदीनां पुलिनेषु च । आयुः शेषमिमं वीर त्वं मया सह रंस्यसे ॥१६॥
एवमुक्तस्तु कुपितः खड्गमुद्धृत्य लक्ष्मणः । कर्णनासस्तनं चास्या निचकर्तारिसूदनः ॥१७॥
कर्णनासे निकृत्ते तु विस्वरं सा विनद्य च । यथागतं प्रदुद्राव राक्षसी भीमदर्शना ॥१८॥
तस्यां गतायां गहनं विशन्तौ वनमोजसा । आसेदतुरमित्रघ्नौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१९॥
लक्ष्मणस्तु महातेजाः सत्त्ववान्शीलवाञ्शुचिः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥२०॥

से परिपूर्ण था ॥ ६ ॥ जानकी के अपहरण से दुःखी दोनों भाई राम-लक्ष्मण जहाँ-तहाँ बैठकर विश्राम करते हुए तथा जानकी को इधर-उधर देखते हुए उस वन की छानबीन करने लगे ॥ ७ ॥ उन दोनों भाइयों ने उस वन में तीन कोस पूर्व जाकर क्रौञ्चारण्य को पार कर मतङ्ग ऋषि के आश्रम को देखा ॥ ८ ॥ मतङ्गाश्रम वाला वन नाना वृक्षों से सघन, अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों से परिपूर्ण तथा भय उत्पन्न करने वाला था ॥ ९ ॥ मतङ्ग वन की पहाड़ी पर दशरथ कुमार राम-लक्ष्मण ने एक बड़ी विशाल गुफा को देखा जो पाताल के समान गहरी तथा अन्धकार से आवृत थी ॥ १० ॥ उस गुफा के समीप पहुँचने पर नर-केसरी राम-लक्ष्मण ने उसके समीप ही विकराल मुख वाली एक भयंकर राक्षसी को देखा ॥ ११ ॥ वह राक्षसी दुर्बल हृदय वालों को भय देने वाली, विकराल दर्शना, रूखी त्वचा, तीखे दांत तथा लम्बे पेट वाली थी ॥ १२ ॥ जो मृग के मांस को खा रही थी, जिसके विकराल केश खुले हुए थे, ऐसी विकट राक्षसी को दोनों भाई राम-लक्ष्मण ने देखा ॥ १३ ॥ उस राक्षसी ने दोनों भाइयों के समीप जाकर राम के समक्ष ही जाते हुए आओ, हम दोनों दाम्पत्य जीवन व्यतीत करें, ऐसा कहकर लक्ष्मण को पकड़ लिया ॥ १४ ॥ लक्ष्मण को पकड़कर उसने यह वचन कहा—मेरा नाम अयोमुखी है, इसमें तुम्हारा लाभ ही होगा, तुम मेरे प्रिय हो ॥ १५ ॥ हे नाथ ! इन दुर्गम पर्वतों पर तथा नदियों के तट पर यह शेष आयु तुम सुखपूर्वक मेरे साथ में बिताओगे ॥ १६ ॥ राक्षसी के ऐसा कहने पर कुपित अरिमर्दन लक्ष्मण ने अपने खड्ग को निकालकर उसके नाक-कान तथा स्तन को काट दिया ॥ १७ ॥ नाक-कान के कट जाने पर वह भयंकर नाद करने लगी तथा वह विकराल राक्षसी जिस रास्ते से आई थी, उधर ही चली गई ॥ १८ ॥ उस राक्षसी के चले जाने पर शत्रुनाशक दोनों भाई राम-लक्ष्मण ने बड़े वेग से चलकर गहन वन में प्रवेश किया ॥ १९ ॥ मार्ग में चलते हुए सत्यवादी, चरित्रवान्, महातेजस्वी, शुद्ध विचार वाले लक्ष्मण हाथ जोड़कर अपने तेजस्वी भाई रामचन्द्र से बोले ॥ २० ॥ मेरी दृढ़ भुजा फड़क रही है, मेरे मन में घबराहट सी हो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्पन्दते मे दृढं बाहुरुद्विग्नमिव मे मनः । प्रायशश्चाप्यनिष्टानि निमित्तान्युपलक्षये ॥२१॥
तस्मात्सज्जीभवार्य त्वं कुरुष्व वचनं हितम् । ममैव हि निमित्तानि सद्यः शंसन्ति संभ्रमम् ॥२२॥
एष वञ्चुलको नाम पक्षि परमदारुणः । आवयोर्विजयं युद्धे शंसन्निव विनर्दति ॥२३॥
तयोरन्वेषतोरेवं सर्वं तद्वनमोजसा । संजज्ञे विपुलः शब्दः प्रभञ्जन्निव तद्वनम् ॥२४॥
संवेष्टितमिवात्यर्थं गगनं मातरिश्वना । वनस्य तस्य शब्दोऽभूद्दिवमापूरयन्निव ॥२५॥
तं शब्दं काङ्क्षमाणस्तु रामः कक्षे सहानुजः । ददर्श सुमहाकायं राक्षसं विपुलोरसम् ॥२६॥
आसेदतुस्ततस्तत्र तावुभौ प्रमुखे स्थितम् । विवृद्धमशिरोग्रीवं कबन्धमुदरेमुखम् ॥२७॥
रोमभिर्निचितैस्तीक्ष्णैर्महागिरिमिवोच्छ्रितम् । नीलमेघनिभं रौद्रं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥२८॥
अग्निज्वालानिकाशेन ललाटस्थेन दीप्यता । महापक्ष्मेण पिङ्गेन विपुलेनायतेन च ॥२९॥
एकेनोरसि घोरेण नयनेनाशुदर्शिना । महादंष्ट्रोपपन्नं तं लेलिहानं महामुखम् ॥३०॥
भक्षयन्तं महाघोरानृक्षसिंहमृगद्विपान् । घोरौ भुजौ विकुर्वाणमुभौ योजनमायतौ ॥३१॥
कराभ्यां विविधान् गृह्य ऋक्षान् पक्षिगणान् मृगान् । आकर्षन्तं विकर्षन्तमनेकान् मृगयूथपान् ॥३२॥
स्थितमावृत्य पन्थानं तयोर्भ्रात्रोः प्रपन्नयोः । अथ तौ समभिक्रम्य क्रोशमात्रे ददर्शतुः ॥३३॥
महान्तं दारुणं भीमं कबन्धं भुजसंवृतम् । कबन्धमिव संस्थानादतिघोरप्रदर्शनम् ॥३४॥
स महाबाहुरत्यर्थं प्रसार्य विपुलौ भुजौ । जग्राह सहितावेव राघवौ पीडयन् बलात् ॥३५॥

रही है, यह सब घटना आने वाले अनिष्ट की सूचना दे रही हैं ॥ २१ ॥ हे आर्य ! आप सर्वथा सन्नद्ध हो जायें, मेरी बात को ध्यान से सुनें, यह सब दुर्निमित्त मेरे लिये ही भय की सूचना दे रहे हैं ॥ २२ ॥ इस भयानक वन में यह वञ्चुलक नामक जो पक्षी बोल रहा है, वह संग्राम में हम लोगों की विजय की सूचना दे रहा है ॥ २३ ॥ अपने पराक्रम से उस वन में दोनों भाइयों के खोजते हुए एक भयानक शब्द हुआ जिससे वनस्थली काँप गई ॥ २४ ॥ वायु के वेग से वह सारा वन आक्रान्त हो गया और उस शब्द से सम्पूर्ण वनस्थली गुञ्जायमान हो गई ॥ २५ ॥ उस भयानक शब्द को जानने की आकांक्षा खड्गधारी रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ कर ही रहे थे कि उसी समय विशाल वक्षःस्थल वाले विकराल एक राक्षस को देखा ॥ २६ ॥ उस राक्षस के सामने वे दोनों भाई खड़े हो गये। उसका शरीर इतना विशालकाय था कि उसके समक्ष सिर तथा ग्रीवा नहीं के बराबर था। विशाल उदर वाले उस राक्षस का नाम कबन्ध था ॥ २७ ॥ विशाल-काय, नील मेघ के समान, तीखे-विकराल रोमवाला वह भयानक कबन्ध मेघ के समान गरज रहा था ॥ २८ ॥ लम्बे २ पीतवर्ण वाले अग्नि के समान उसके ललाट पर बाल थे ॥ २९ ॥ घोर एक ज्ञाननेत्र उसके हृदय में था जिसके द्वारा वह दूर की बातें देखता था, सोचता था। विकराल दाढ़ें तथा लम्बी जिह्वा वाला उसका मुख था ॥ ३० ॥ विकराल, रीछ, सिंह, मृग तथा पक्षियों के मांस को खा रहा था। अपनी लम्बी विशाल भुजाओं को इधर-उधर फेंक रहा था ॥ ३१ ॥ विशाल अपनी भुजाओं से ऋक्ष, पक्षी आदि जन्तुओं को पकड़ता तथा छोड़ता जाता था ॥३२॥ उसने उन दोनों भाई राम-लक्ष्मण का एक प्रकार से मार्ग ही घेर लिया। उन दोनों भाइयों ने उसको लांघकर तथा एक कोस आगे जाकर देखा ॥ ३३ ॥ भीषण आकार वाला, भुजाओं को फैलाए हुए कबन्ध की तरह उस कबन्ध को विकराल रूप में देखा ॥ ३४ ॥ उस विशाल भुजा वाले कबन्ध ने अपनी दोनों विशाल भुजाओं को फैलाकर बलपूर्वक दोनों भाई राम, लक्ष्मण को पकड़ लिया ॥ ३५ ॥ धनुर्धारी, हाथ में खड्ग लिये हुए, देदीप्यमान, दीर्घबाहु तथा तेजस्वी दोनों भाई राम-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhantaeGangotri Gyaan Kosha

खड्गिनौ दृढधन्वानौ तिग्मतेजोवपुर्धरौ । भ्रातरौ विवशं प्राप्तौ कृष्यमाणौ महाबलौ ॥३६॥
तत्र धैर्येण शूरस्तु राघवो नैव विव्यथे । बाल्यादनाश्रयत्वाच्च लक्ष्मणस्त्वतिविव्यथे ॥३७॥
उवाच च विषण्णः सन् राघवं राघवानुजः । पश्य मां वीर विवशं राक्षसस्य वशं गतम् ॥३८॥
मयैकेन विनिर्युक्तः परिमुञ्चस्व राघव । मां हि भूतबलिं दत्त्वा पलायस्व यथासुखम् ॥३९॥
अधिगन्तासि वैदेहीमचिरेणेति मे मतिः । प्रतिलभ्य च काकुत्स्थ पितृपैतामहीं महीम् ॥४०॥
तत्र मां राम राज्यस्थः स्मर्तुमर्हसि सर्वदा । लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥४१॥
मा स्म त्रासं कृथा वीर न हि त्वादृग्विषीदति । एतस्मिन्नन्तरे क्रूरो भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥४२॥
पप्रच्छ घननिर्घोषः कबन्धो दानवोत्तमः । कौ युवां वृषभस्कन्धौ महाखड्गधनुर्धरौ ॥४३॥
घोरं देशमिमं प्राप्तौ दैवेन मम चाक्षुषौ । वदतं कार्यमिह वां किमर्थं चागतौ युवाम् ॥४४॥
इमं देशमनुप्राप्तौ क्षुधार्तस्येह तिष्ठतः । सबाणचापखड्गौ च तीक्ष्णशृङ्गाविवर्षभौ ॥४५॥
ममास्यमनुसंप्राप्तौ दुर्लभं जीवितं पुनः । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कबन्धस्य दुरात्मनः ॥४६॥
उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता । कृच्छ्रात्कृच्छ्रतरं प्राप्य दारुणं सत्यविक्रम ॥४७॥
व्यसनं जीवितान्ताय प्राप्तमप्राप्य तां प्रियाम् । कालस्य सुमहद्वीर्यं सर्वभूतेषु लक्ष्मण ॥४८॥
त्वां च मां च नरव्याघ्र व्यसनैः पश्य मोहितौ । नातिभारोऽस्ति दैवस्य सर्वभूतेषु लक्ष्मण ॥४९॥

लक्ष्मण उस राक्षस के हाथों में पड़ जाने से विवश हो गए ॥ ३६ ॥ धैर्यशाली, वीर रामचन्द्र ने राक्षस की पकड़ में आ जाने पर भी अपने धैर्य को नहीं छोड़ा। किन्तु अज्ञानवश धैर्य को छोड़कर लक्ष्मण उसकी पकड़ में आ जाने से अत्यन्त दुःखी हो गए ॥ ३७ ॥ दुःखी होते हुए रामानुज लक्ष्मण रामचन्द्र से बोले—हे वीर ! मुझको देखिये। मैं राक्षस की भयङ्कर पकड़ में आकर विवश हो गया हूँ ॥ ३८ ॥ इसलिये हे रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ! मुझको राक्षस के हवाले करके मुझ एक की ही बलि चढ़ाकर अर्थात् मुझे राक्षस को सौंपकर सुखपूर्वक आप यहाँ से भाग जायँ ॥ ३९ ॥ आप जानकी को अवश्यमेव प्राप्त करेंगे ऐसा मेरा दृढ़ विचार है। पिता-पितामह के द्वारा पालित इस पृथिवी को प्राप्त करके ॥ ४० ॥ हे रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ! राज्यशासन करते हुए सदा मेरा स्मरण करते रहना। दीनतापूर्वक लक्ष्मण के ऐसा कहने पर रामचन्द्र उनसे बोले ॥ ४१ ॥ हे वीर लक्ष्मण ! व्यर्थ में ही इस प्रकार भय मत करो। तुम्हारे जैसा वीर व्यक्ति इस प्रकार दुःखी नहीं होता। राम-लक्ष्मण के परस्पर इस प्रकार बात करते हुए ॥ ४२ ॥ विशाल भुजा वाला दानव श्रेष्ठ क्रूर कबन्ध बोला—विशाल भुजा वाले खड्ग, धनुर्धारी तुम दोनों कौन हो ? ॥ ४३ ॥ इस घोर वन में भाग्य से ही मेरी दृष्टि के सामने आने वाले तुम दोनों का यहाँ क्या कार्य है और तुम दोनों यहाँ क्यों आए ॥ ४४ ॥ धनुष, बाण, खड्ग के धारण करने वाले तीक्ष्ण सींग वाले बैल की तरह तुम इस देश में आए हो जब कि मैं भूखा बैठा हूं ॥ ४५ ॥ क्षुधातुर मेरे सामने आने वाले अब तुम दोनों का जीवन बचना अत्यन्त दुर्लभ है। दुरात्मा कबन्ध की इन बातों को सुन कर ॥ ४६ ॥ अतिभयङ्कर दुःख प्राप्त होने पर भी पराक्रमी रामचन्द्र सूखते हुए मुख से अपने भाई लक्ष्मण के प्रति बोले ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण ! सीता तो प्राप्त हुई नहीं उसके पहले ही जीवन का अन्त करने वाला यह दुःख हम लोगों पर आ पड़ा। विकराल काल का यह प्रकार सब प्राणियों पर होता है ॥ ४८ ॥ हे नरकेसरी ! उसी काल क्रम के प्रहार में आकर आज हम दोनों भी किंकर्तव्यविमूढ हो रहे हैं। किन्तु हे लक्ष्मण ! काल या भाग्य का विधान भी स्वतन्त्र नहीं है। अर्थात् वह भी कर्माधीन है ॥ ४९ ॥ शूर, बल-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च रणाजिरे। कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा बालुकसेतवः ॥५०॥
इति ब्रुवाणो दृढसत्यविक्रमो महायशा दाशरथिः प्रतापवान्।
अवेक्ष्य सौमित्रिमुदग्रपौरुषं स्थिरां तदा स्वां मतिमात्मनाकरोत् ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे कबन्धग्राहो नाम एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥६९॥

सप्ततितमः सर्गः

कबन्धबाहुच्छेदः

तौ तु तत्र स्थितौ दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ। बाहुपाशपरिक्षिप्तो कबन्धो वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
तिष्ठतः किं नु मां दृष्ट्वा क्षुधार्तं क्षत्रियर्षभौ। आहारार्थं तु संदिष्टौ दैवेन गतचेतसौ ॥ २ ॥
तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणो वाक्यं प्राप्तकालं हितं तदा। उवाचार्तिं समापन्नो विक्रमे कृतनिश्चयः ॥ ३ ॥
त्वां च मां च पुरा तूर्णमादत्ते राक्षसाधमः। तस्मादसिभ्यामस्याशु बाहू छिन्दावहै गुरू ॥ ४ ॥
भीषणोऽयं महाकायो राक्षसो भुजविक्रमः। लोकं ह्यतिजितं कृत्वा ह्यावां हन्तुमिहेच्छति ॥ ५ ॥

वान्, शस्त्रास्त्रकोविद भी सङ्ग्रामाङ्गण में उसी प्रकार हतमनोरथ हो जाते हैं जिस प्रकार बालू का सेतु देखते२ धराशायी हो जाता है ॥ ५० ॥ इस प्रकार की बातें करते हुए सत्यव्रती, स्थिर पराक्रमी, महयशस्वी तथा प्रतापी रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र ने अपने भाई लक्ष्मण को देखते हुए कर्तव्याकर्तव्य करने वाली बुद्धि को स्थिर किया ॥ ५१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'कबन्ध-ग्राह' विषयक उनहत्तरवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६९ ॥

सत्तरवां सर्ग

कबन्ध की बांह का काटना

इस प्रकार अपनी दोनों भुजाओं के फांस में बन्धे हुए इन दोनों भाई राम-लक्ष्मण को देखकर कबन्ध बोला ॥ १ ॥ हे क्षत्रियश्रेष्ठ क्षुधार्त मुझको देखकर तुम दोनों क्यों खड़े हो गए हो। मालूम पड़ता है तुम्हारे दुर्भाग्य ने ही तुम्हारी बुद्धि को नष्ट करके तुम दोनों को यहाँ भेजा है ॥ २ ॥ दुःख से परिपूर्ण अपने हित के लिए पराक्रम का निश्चय कर लिया है ऐसे लक्ष्मण उस राक्षस की बात को सुनकर अपने भाई रामचन्द्र से बोले ॥ ३ ॥ हे रामचन्द्र ! इस राक्षसाधम कबन्ध ने पहले से ही शीघ्रतापूर्वक आपको तथा मुझको पकड़ लिया है। इसलिये शीघ्र ही अपनी तलवारों से इसकी भुजाओं को काट दें ॥ ४ ॥ भयङ्कर, विशालकाय यह राक्षस कबन्ध अपने भुजबल से संसार के अनेक लोगों को जीत चुका है। अब हम लोगों को भी यह जीतना चाहता है ॥ ५ ॥ जो अपनी रक्षा करने में असमर्थ है, हे आर्य रामचन्द्र ! उसका बध करना उसी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निश्चेष्टानां वधो राजन् कुत्सितो जगतीपतेः । क्रतुमध्योपनीतानां पशूनामिव राघव ॥ ६ ॥
एतत्संजल्पितं श्रुत्वा तयोः क्रुद्धस्तु राक्षसः । विदार्यास्यं ततो रौद्रं तौ भक्षयितुमारभत् ॥ ७ ॥
ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ । अच्छिन्दतां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांसदेशतः ॥ ८ ॥
दक्षिणो दक्षिणं बाहुमसक्तमसिना ततः । चिच्छेद रामो वेगेन सव्यं वीरस्तु लक्ष्मणः ॥ ९ ॥
स पपात महाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः । खं च गां च दिशश्चैव नादयञ्जलदो यथा ॥१०॥
स निकृत्तौ भुजौ दृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः । दीनः पप्रच्छ तौ वीरौ कौ युवामिति दानवः ॥११॥
इति तस्य ब्रुवाणस्य लक्ष्मणः शुभलक्षणः । शशंस राघवं तस्य कबन्धस्य महाबलः ॥१२॥
अयमिक्ष्वाकुदायादो रामो नाम जनैः श्रुतः । अस्यैवावरजं विद्धि भ्रातरं मां च लक्ष्मणम् ॥१३॥
मात्रा प्रतिहते राज्ये रामः प्रव्राजितो वनम् । मया सह चरत्येष भार्यया च महद्वनम् ॥१४॥
अस्य देवप्रभावस्य वसतो विजने वने । रक्षसापहृता भार्या यामिच्छन्ताविहागतौ ॥१५॥
त्वं तु को वा किमर्थं वा कबन्धसदृशो वने । आस्येनोरसि दीप्तेन भग्नजङ्घो विवेष्टसे ॥१६॥
एवमुक्तः कबन्धस्तु लक्ष्मणेनोत्तरं वचः । उवाच परमप्रीतस्तदिन्द्रवचनं स्मरन् ॥१७॥
स्वागतं वां नरव्याघ्रौ दिष्ट्या पश्यामि वामहम् । दिष्ट्या चेमौ निकृत्तौ मे युवाभ्यां बाहुबन्धनौ ॥१८॥

प्रकार निन्दित माना गया है जिस प्रकार प्राणिमात्र के लिये उपयोगी पशुओं की यज्ञ में हत्या करना ॥ ६ ॥ राम, लक्ष्मण उन दोनों भाइयों की इन बातों को सुनकर क्रुद्ध हुआ वह राक्षस कबन्ध मुख फाड़कर खाना ही चाहता था ॥७॥ उसी समय देश काल के जानने वाले दोनों भाई राम, लक्ष्मण ने प्रसन्नता पूर्वक अपनी तीक्ष्ण तलवार से उस राक्षस की दोनों भुजाओं को कन्धे के पास से काट दिया ॥ ८ ॥ दाएँ तरफ बैठे हुए रामचन्द्र ने उसकी दायीं भुजा काट दी और बाएँ तरफ बैठे हुए लक्ष्मण ने अपनी तलवार से उसकी बायीं भुजा काट दी ॥ ९ ॥ भुजा के कट जाने पर वह राक्षस भयङ्कर शब्द करता हुआ पृथिवी पर गिर पड़ा और बादल के समान गर्जते हुए उसने सम्पूर्ण दिशाओं को गुञ्जायमान कर दिया ॥ १० ॥ रक्त से लथपथ कटी हुई दोनों भुजाओं को देखकर दीनता पूर्वक उस दानव ने पूछा—हे वीरो ! तुम दोनों कौन हो ॥ ११ ॥ कबन्ध के ऐसा पूछने पर महाबली शुभलक्षण वाले लक्ष्मण ने रामचन्द्र का सम्पूर्ण परिचय दिया ॥ १२ ॥ ये इक्ष्वाकुवंशीय राज्य के उत्तराधिकारी हैं । जगत्प्रसिद्ध इनका नाम रामचन्द्र है । मैं इनका छोटा भाई हूं और मेरा नाम लक्ष्मण है ॥ १३ ॥ राज्याभिषेक के समय माता के द्वारा प्रतिबन्ध उत्पन्न होने पर इनको वनवास दिया है । मेरे तथा अपनी धर्मपत्नी के साथ इस वन में घूम रहे हैं ॥ १४ ॥ देवता के समान प्रभाव वाले वन में निवास करते हुए भ्राता रामचन्द्र की भार्या को किसी राक्षस ने अपहरण कर लिया है । उसको खोजते हुए हम लोग यहाँ पर आए हैं ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् लक्ष्मण ने पूछा—कबन्ध के सदृश तुम इस वन में क्यों पड़े हो । देदीप्यमान तुम्हारा मुख छाती तक लटका हुआ है तथा जङ्घाएँ तुम्हारी टूटी हुई हैं ॥ १६ ॥ लक्ष्मण के इस प्रकार पूछने पर वह कबन्ध प्रसन्न हो कर इन्द्र की बातों को स्मरण करता हुआ बोला ॥ १७ ॥ हे नरकेसरी ! मैं तुम दोनों का स्वागत करता हूं । सौभाग्य से ही मैं आप दोनों का दर्शन कर रहा हूं । मेरे भुजबन्धनों को काट कर आप ने अच्छा ही किया ॥ १८ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विरूपं यच्च मे रूपं प्राप्तं ह्यविनयाद्यथा । तन्मे शृणु नरव्याघ्र तत्त्वतः शंसतस्तव ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे कबन्धबाहुच्छेदो नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः

कबन्धशापाख्यानम्

पुरा राम महाबाहो महाबलपराक्रमम् । रूपमासीन्ममाचिन्त्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ १ ॥
यथा सूर्यस्य सोमस्य शक्रस्य च यथा वपुः । सोऽहं रूपमिदं कृत्वा लोकवित्रासनं महत् ॥ २ ॥
ऋषीन् वनगतान् राम त्रासयामि ततस्ततः । ततः स्थूलशिरा नाम महर्षिः कोपितो मया ॥ ३ ॥
संचिन्वन् विविधं वन्यं रूपेणानेन धर्षितः । तेनाहमुक्तः प्रेक्ष्यैवं घोरशापाभिधायिना ॥ ४ ॥
एतदेव नृशंसं ते रूपमस्तु विगर्हितम् । स मया याचितः क्रुद्धः शापस्यान्तो भवेदिति ॥ ५ ॥
अभिशापकृतस्येति तेनेदं भाषितं वचः । यदा छित्त्वा भुजौ रामस्त्वां दहेद्विजने वने ॥ ६ ॥

अपने ही अविनय के द्वारा जो यह मेरा विकराल रूप हो गया है मैं उसके विषय में कहता हूं हे नरकेसरी ! आप ध्यान से सुनिये ॥ १९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'कबन्ध की बांह काटना' विषयक सत्तरवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ७० ॥

इकहत्तरवां सर्ग

कबन्ध के शाप की कथा

हे विशाल भुजा वाले रामचन्द्र ! पहले मैं महाबली तथा अत्यन्त पराक्रमी था। तीनों लोकों में मेरा सौन्दर्य अत्यन्त प्रसिद्ध था ॥ १ ॥ चन्द्र, सूर्य तथा इन्द्र की कान्ति के समान मेरी कान्ति तथा सौन्दर्य था। परन्तु संसार को त्रास देने के लिये यह विकराल रूप बनाकर ॥ २ ॥ हे रामचन्द्र ! वन में जहाँ तहाँ ऋषियों को त्रास देने लगा। इसी उद्दण्डता के कारण मैं महर्षि स्थूलशिरा के कोप का भाजन बन गया ॥ ३ ॥ वन में नाना प्रकार के फल फूल चयन करने वाले उस ऋषि को मैंने इसी भयानक रूप से आतङ्कित किया। भयङ्कर शाप के देने वाले वे ऋषि मुझ को देखकर इस प्रकार बोले ॥ ४ ॥ जाओ ! तुम्हारा यही निर्दय तथा भयानक रूप सदा के लिये हो जायगा। तब मैंने क्रोध में आए हुए उस ऋषि से याचना की ॥ ५ ॥ मेरे ही अविनय के कारण आपने जो वह शाप दिया है उसका अन्त किस प्रकार होगा। तब उस ऋषि ने यह कहा—जिस समय निर्जन वन में रामचन्द्र तुम्हारी दोनों भुजाओं को काटकर दाहसंस्कार करेंगे उस समय मेरे दिये हुए शाप का अन्त होगा ॥ ६ ॥ शापान्त के पश्चात् ही तुम अपने इस कमनीय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तदा त्वं प्राप्स्यसे रूपं स्वमेव विपुलं शुभम् । श्रिया विराजितं पुत्रं दनोस्त्वं विद्धि लक्ष्मण ॥ ७ ॥
इन्द्रकोपादिदं रूपं प्राप्तमेवं रणाजिरे । अहं हि तपसोग्रेण पितामहमतोषयम् ॥ ८ ॥
दीर्घमायुः स मे प्रादात्ततो मां विभ्रमोऽस्पृशत् । दीर्घमायुर्मया प्राप्तं किं मे शक्रः करिष्यति ॥ ९ ॥
इत्येवं बुद्धिमास्थाय रणे शक्रमधर्षयम् । तस्य बाहुप्रमुक्तेन वज्रेण शतपर्वणा ॥१०॥
सक्थिनी चैव मूर्धा च शरीरे संप्रवेशितम् । स मया याच्यमानः सन्नानयद्यमसादनम् ॥११॥
पितामहवचः सत्यं तदस्त्विति ममाब्रवीत् । अनाहारः कथं शक्तो भग्नसक्थिशिरोमुखः ॥१२॥
वज्रेणाभिहतः कालं सुदीर्घमपि जीवितुम् । एवमुक्तस्तु मे शक्रो बाहू योजनमायतौ ॥१३॥
प्रादादास्यं च मे कुक्षौ तीक्ष्णदंष्ट्रमकल्पयत् । सोऽहं भुजाभ्यां दीर्घाभ्यां संक्षिप्यास्मिन्वनेचरान्॥१४॥
सिंहद्विपमृगव्याघ्रान् भक्षयामि समन्ततः । स तु मामब्रवीदिन्द्रो यदा रामः सलक्ष्मणः ॥१५॥
छेत्स्यते समरे बाहू तदा स्वर्गं गमिष्यसि । अनेन वपुषा राम वनेऽस्मिन् राजसत्तम ॥१६॥
यद्यत्पश्यामि सर्वस्य ग्रहणं साधु रोचये । अवश्यं ग्रहणं रामो मन्येऽहं समुपैष्यति ॥१७॥
इमां बुद्धिं पुरस्कृत्य देहन्यासकृतश्रमः । स त्वं रामोऽसि भद्रं ते नाहमन्येन राघव ॥१८॥
शक्यो हन्तुं यथातत्त्वमेवमुक्तं महर्षिणा । अहं हि मतिसाचिव्यं करिष्यामि नरर्षभ ॥१९॥
मित्रं चैवोपदेक्ष्यामि युवाभ्यां संस्कृतोऽग्निना । एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दनुना तेन राघवः ॥२०॥

कान्तिमय रूप को पुनः प्राप्त करोगे । हे लक्ष्मण ! मैं दनु का पुत्र हूं ऐसा तुम मुझे समझो ॥ ७ ॥ वर्तमान कबन्ध का जो मेरा रूप है वह इन्द्र के साथ में सङ्गम करते हुए इन्द्र के शाप से मुझे प्राप्त हुआ है । मैंने उग्र तपश्चर्या करके ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ प्रसन्न हो कर ब्रह्मा जी ने मुझे दीर्घायु प्रदान किया जिसको प्राप्त कर मेरे अन्दर अहङ्कार की मात्रा आ गई और मैंने यह निश्चय किया कि मुझे अब दीर्घ आयु प्राप्त हो ही गई है, इन्द्र मेरा क्या कर सकेगा ॥ ९ ॥ इस प्रकार का बुद्धि में निश्चय कर के संग्राम के लिये मैंने इन्द्र का ललकारा । उस संग्राम में इन्द्र के बाहुबल से प्रयुक्त सौ पर्व वाले वज्र से ॥ १० ॥ मेरी हड्डियों तथा सिर पर इस प्रकार आघात पहुँचा कि ऐसा प्रतीत होने लगा मानों वे मेरे शरीर में ही विलीन हो गये । मेरे प्रार्थना करने पर मुझ को जान से नहीं मारा ॥ ११ ॥ जाओ ब्रह्मा जी का वचन ही सत्य हो, ऐसा उन्होंने कहा । तब मैंने कहा—मेरी हड्डी और सिर वज्र के आघात से टूट गये हैं, ऐसी अवस्था में मैं विना आहार आदि के कैसे जीऊँगा । इस प्रकार मेरे प्रार्थना करने पर इन्द्र ने विशाल भुजाओं ॥ १२, १३ ॥ तथा तीक्ष्ण दांतोंवाले मुख को ठीक कर दिया । ऐसी अवस्था में अपनी दृढ विशाल भुजाओं से ॥ १४ ॥ सिंह, व्याघ्र, मृग, हस्ती आदि वनचारियों को सब ओर से मार कर खाता हूं । इन्द्र ने भी यही कहा जब लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र ॥ १५ ॥ संग्राम में तुम्हारी भुजाओं को काटेंगे तब तुम सुख शान्ति को प्राप्त हो जाओगे । हे रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ! इस वन में इस शरीर से ॥ १६ ॥ जिन जिन को मैं देखता हूं उन सभी को मैं पकड़ना अच्छा समझता हूं और एक दिन रामचन्द्र भी इसी प्रकार मेरी पकड़ में आ जायेंगे ॥ १७ ॥ इसी प्रकार बुद्धि में निश्चय करके इस शरीर के त्याग का मैंने निश्चय किया । इस लिये अब निश्चय हो गया कि आप रामचन्द्र ही हैं ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्र ! आप को छोड़ कर मैं किसी अन्य के द्वारा नहीं मारा जा सकता, जैसा कि ऋषि ने कहा था । हे नरकेसरी रामचन्द्र ! मैं बुद्धि तथा वाणी से सहायता करूंगा ॥ १९ ॥ जिस समय आप मेरा अग्नि संस्कार करेंगे, उस समय मैं उस व्यक्ति का नाम बताऊंगा जिस के द्वारा आप का काम सिद्ध होगा । दनुपुत्र कबन्ध के ऐसा कहने पर धर्मात्मा रामचन्द्र ने ॥ २० ॥ लक्ष्मण के सामने उस से यह वचन कहा—यशस्विनी मेरी भार्या सीता का रावण ने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इदं जगाद वचनं लक्ष्मणस्योपशृण्वतः । रावणेन हृता भार्या मम सीता यशस्विनी ॥२१॥
निष्क्रान्तस्य जनस्थानात्सह भ्रात्रा यथासुखम् । नाममात्रं तु जानामि न रूपं तस्य रक्षसः ॥२२॥
निवासं वा प्रभावं वा वयं तस्य न विद्महे । शोकार्तानामनाथानामेवं विपरिधावताम् ॥२३॥
कारुण्यं सदृशं कर्तुमुपकारेण वर्तताम् । काष्ठान्यादाय शुष्काणि काले भग्नानि कुञ्जरैः ॥२४॥
धक्ष्यामस्त्वां वयं वीर श्वभ्रे महति कल्पिते । स त्वं सीतां समाचक्ष्व येन वा यत्र वा हृता ॥२५॥
कुरु कल्याणमत्यर्थं यदि जानासि तत्त्वतः । एवमुक्तस्तु रामेण वाक्यं दनुरनुत्तमम् ॥२६॥
प्रोवाच कुशलो वक्तुं वक्तारमपि राघवम् । दिव्यमस्ति न मे ज्ञानं नाभिजानामि मैथिलीम् ॥२७॥
यस्तां ज्ञास्यति तं वक्ष्ये दग्धः स्वं रूपमास्थितः । अदग्धस्य तु विज्ञातुं शक्तिरस्ति न मे प्रभो ॥२८॥
राक्षसं तं महावीर्यं सीता येन हृता तव । विज्ञानं हि मम भ्रष्टं शापदोषेण राघव ॥२९॥
स्वकृतेन मया प्राप्तं रूपं लोकविगर्हितम् । किं तु यावन्न यात्यस्तं सविता श्रान्तवाहनः ॥३०॥
तावन्मामवटे क्षिप्त्वा दह राम यथाविधि । दग्धस्त्वयाहमवटे न्यायेन रघुनन्दन ॥३१॥
वक्ष्यामि तमहं वीर यस्तं ज्ञास्यति राक्षसम् । तेन सख्यं च कर्तव्यं न्यायवृत्तेन राघव ॥३२॥

अपहरण किया ॥ २१ ॥ मैं उस समय अपने भाई लक्ष्मण के साथ सुखपूर्वक जनस्थान से बाहर चला गया था। मैं उस रावण का केवल नाम-मात्र जानता हूँ, किन्तु उस का रूप ॥ २२ ॥ निवास, अवस्था तथा उसके प्रभाव को मैं नहीं जानता। इस प्रकार जानकी की खोज में इधर-उधर दौड़ते हुए, शोक संतप्त हम अनाथों के साथ ॥ २३ ॥ उपकार की भावना से दया तथा करुणा का वर्ताव करो। हाथियों के द्वारा तोड़े हुए उन सूखे काष्ठों को लाकर ॥ २४ ॥ तथा विशाल गड्ढा खोद कर तुम्हारा दाह संस्कार हम लोग नियमानुसार कर देंगे। इसके पूर्व आप दया करके यह बतलायें कि जानकी इस समय कहाँ है, उसे कौन ले गया है तथा किस स्थान पर ले गया है ॥ २५ ॥ यदि आपको इस विषय की जानकारी है, तो मुझे इसे बता कर मेरा आप असीम कल्याण करेंगे। रामचन्द्र के ऐसा पूछने पर बोलने में चतुर कबन्ध वाग्मी रामचन्द्र से बोला—इस समय मेरा दिव्य ज्ञान नष्ट हो गया है, इसलिये जानकी के विषय में मैं कुछ कह नहीं सकता ॥ २६, २७ ॥ जिस समय आप दाह संस्कार करेंगे, पुनः अपनी परिमार्जित अवस्था में आने पर मैं उस व्यक्ति का पता बताऊँगा, जो जानकी की सम्पूर्ण जानकारी आप को करायेगा। हे समर्थ रामचन्द्र ! अदग्ध अर्थात् असंस्कृत अवस्था में उस को जानने की मेरी शक्ति नहीं है ॥ २८ ॥ जिससे मैं उस राक्षस तथा उसके पराक्रम आदि का वर्णन कर सकूँ, जिसने जानकी का हरण किया है। हे रामचन्द्र उस शाप दोष के कारण मेरा ज्ञान विज्ञान नष्ट हो गया है ॥ २९ ॥ जो कि मैंने लोकनिन्द्य अपने कर्म के रूप में ही पाया है। हे रामचन्द्र जब तक संतप्त किरणों वाला सूर्य अस्ताचल को नहीं जाता ॥ ३० ॥ उसके पूर्व ही आप मुझे इस विशाल गड्ढे में डाल कर मेरा अग्नि संस्कार कर देवें। हे रघुनन्दन रामचन्द्र ! न्यायपूर्वक उस गर्त में दाह संस्कार के पश्चात् ॥ ३१ ॥ मैं उस व्यक्ति का परिचय दूँगा जिसको सीता के हरण करने वाले राक्षस की जानकारी है। हे रामचन्द्र ! न्यायपूर्वक उस व्यक्ति के साथ आप मित्रता करें ॥ ३२ ॥ हे वीर ! वह महापुरुष आप की सब प्रकार की सहायता अवश्य करेगा। हे रघुकुल शिरोमणि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कल्पयिष्यति ते प्रीतः साहाय्यं लघुविक्रमः । न हि तस्यास्त्यविज्ञातं त्रिषु लोकेषु राघव ॥३३॥
सर्वान् परिसृतो लोकान् पुरासौ कारणान्तरे ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे कबन्धशापाख्यानं नाम एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः

सीताधिगमोपायः

एवमुक्तौ तु तौ वीरौ कबन्धेन नरेश्वरौ । गिरिप्रदरमासाद्य पावकं विससर्जतुः ॥ १ ॥
लक्ष्मणस्तु महोल्काभिर्ज्वलिताभिः समन्ततः । चितामादीपयामास सा प्रजज्वाल सर्वतः ॥ २ ॥
तच्छरीरं कबन्धस्य घृतपिण्डोपमं महत् । मेदसा पच्यमानस्य मन्दं दहति पावकः ॥ ३ ॥
[स विधूय चितामाशु विधूमोऽग्निरिवोत्थितः । अरजे वाससी बिभ्रन्मालां दिव्यां महाबलः ॥ ४ ॥
ततश्चिताया वेगेन भास्वरो विमलाम्बरः । उत्पपाताशु संहृष्टः सर्वप्रत्यङ्गभूषणः ॥ ५ ॥
विमाने भास्वरे तिष्ठन् हंसयुक्ते यशस्करे । प्रभया च महातेजा दिशो दश विराजयन् ॥ ६ ॥]

रामचन्द्र ! देव-दनुज-मानव वर्ग में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसको वह न जानता हो ? क्योंकि किसी कारणवश पहले वह सम्पूर्ण देशों में भ्रमण कर चुका है ॥ ३३ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्य काण्ड का 'कबन्ध के शाप की कथा' विषयक इकहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥७१॥

बहत्तरवाँ सर्ग

सीता की प्राप्ति का उपाय

कबन्ध के ऐसा कहने पर उन दोनों भाई राम लक्ष्मण ने कबन्ध को एक पर्वतीय गड्ढे में डाल कर उसमें अग्नि लगा दी ॥ १ ॥ लक्ष्मण ने एक जलते हुए काष्ठ के द्वारा चिता में जहाँ तहाँ अग्नि लगा दी जिससे वह चिता सब ओर से जलने लगी ॥ २ ॥ चर्बी युक्त घृत पिण्ड के समान कबन्ध के शरीर को अग्नि मन्द-गति से जलाने लगी ॥ ३ ॥ चिता को कम्पायमान करता हुआ देदीप्यमान अग्नि के समान वह कबन्ध चिता से निकल पड़ा । वह महाबली निर्मल वस्त्र तथा आभूषणों को धारण किये हुए था ॥ ४ ॥ अंग प्रत्यंग में आभूषण धारण कर तथा चमकने वाले वस्त्र पहने वेगपूर्वक वह चिता से निकल पड़ा ॥ ५ ॥ हंसवाहन युक्त देदीप्यमान विमल विमान पर बैठ कर वह महातेजस्वी कबन्ध अपनी प्रभाकान्ति से दसों दिशाओं को प्रकाशित करने लगा† ॥ ६ ॥ अन्तरिक्ष गमन

† ये तीनों श्लोक अप्रासंगिक, प्रकृति नियम विरुद्ध तथा असम्भव होने के कारण प्रक्षिप्त हैं । पद्मपुराण आदि के अन्दर इस प्रकार के असम्भव गपोड़े गाये गये हैं । अन्ध भक्तों द्वारा समय-समय पर रामायण में ऐसे श्लोकों का प्रक्षेप हुआ है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सोऽन्तरिक्षगतो रामं कबन्धो वाक्यमब्रवीत् । शृणु राघव तत्त्वेन यथा सीतामवाप्स्यसि ॥ ७ ॥
राम षड्युक्तयो लोके याभिः सर्वं विमृश्यते । परिमृष्टो दशान्तेन दशाभागेन सेव्यते ॥ ८ ॥
दशाभागगतो हीनस्त्वं हि राम सलक्ष्मणः । यत्कृते व्यसनं प्राप्तं त्वया दारप्रधर्षणम् ॥ ९ ॥
तदवश्यं त्वया कार्यः स सुहृत्सुहृदां वर । अकृत्वा हि न ते सिद्धिमहं पश्यामि चिन्तयन् ॥१०॥
श्रूयतां राम वक्ष्यामि सुग्रीवो नाम वानरः । भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन वालिना शक्रसूनुना ॥११॥
ऋश्यमूके गिरिवरे पम्पापर्यन्तशोभिते । निवसत्यात्मवान् वीरश्चतुर्भिः सह वानरैः ॥११॥
वानरेन्द्रो महावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः । सत्यसन्धो विनीतश्च धृतिमान् मतिमान् महान् ॥१३॥
दक्षः प्रगल्भो द्युतिमान् महाबलपराक्रमः । भ्रात्रा विवासितो राम राज्यहेतोर्महाबलः ॥१४॥
स ते सहायो मित्रं च सीतायाः परिमार्गणे । भविष्यति हि हे राम मा च शोके मनः कृथाः ॥१५॥
भवितव्यं हि यच्चापि न तच्छक्यमिहान्यथा । कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूल कालो हि दुरतिक्रमः ॥१६॥
गच्छ शीघ्रमितो राम सुग्रीवं तं महाबलम् । वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाद्य राघव ॥१७॥
अद्रोहाय समागम्य दीप्यमाने विभावसौ । स च ते नावमन्तव्यः सुग्रीवो वानराधिपः ॥१८॥
कृतज्ञः कामरूपी च सहायार्थी च वीर्यवान् । शक्तौ ह्यद्य युवां कर्तुं कार्यं तस्य चिकीर्षितम् ॥१९॥

अर्थात् मृत्यु के पहले मन्थर गति से जलने वाला वह कबन्ध श्री रामचन्द्र से इस प्रकार बोला—हे रामचन्द्र उन बातों को सुनो, जिससे तुम सीता को प्राप्त कर सकोगे ॥ ७ ॥ हे रामचन्द्र ! सन्धि, विग्रह, यान, आसन आदि छः नियमों से युक्त ही राजा अपने राज्य का संचालन करता है। अपने दुर्भाग्य के कारण ही प्राणी सुख दुःख आदि भोगों का सेवन करते हैं ॥ ८ ॥ हे रामचन्द्र ! आप भी लक्ष्मण के साथ इस भोगवाद की दशा में आ गये हैं, जिसके कारण ही अपनी भार्या जानकी के अपहरण का दुःख आपको भोगना पड़ रहा है ॥ ९ ॥ इसलिये मित्रों में श्रेष्ठ माने जाने वाले हे रामचन्द्र ! कथ्यमान उस व्यक्ति के साथ अवश्य मित्रता करना। उसकी मित्रता के विना लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो सकती, ऐसा मेरा विचार है। ॥ १० ॥ हे राम ! आप सुनिये, अब मैं उसे बतलाता हूँ। इन्द्र पुत्र अपने क्रुद्ध भाई बाली के द्वारा अपमान पूर्वक निकाल दिया गया सुग्रीव नामक एक वनवासी व्यक्ति है ॥ ११ ॥ पम्पा सरोवर तक जिसकी शोभा बढ़ रही है, ऐसे श्रेष्ठ ऋष्यमूक पर्वत पर अपने आत्म-विश्वासी चार वनवासी सेवकों के साथ निवास कर रहा है ॥ १२ ॥ वह वनवासी सुग्रीव महान् पराक्रमी, तेजस्वी, अमित प्रभाव वाला, सत्यव्रती, विनीत, धैर्यशाली, तीव्र बुद्धि वाला ॥ १३ ॥ अत्यन्त चतुर तथा महाबली है। राज्य के झगड़े को लेकर वह महापुरुष अपने भाई के द्वारा अपने राज्य से निकाल दिया गया है ॥ १४ ॥ जानकी की खोज करने में वह तुम्हारा मित्र तुम्हारी हर प्रकार की सहायता करेगा। हे रामचन्द्र ! इसलिये अपने मन में किसी प्रकार का शोक मत करो ॥ १५ ॥ जो भवितव्यता होने वाली है, उसको कोई टाल नहीं सकता। हे रघुकुल शारदूल ! निर्णीत काल या भावी का अतिक्रमण करना अत्यन्त कठिन है ॥ १६ ॥ हे महावीर रामचन्द्र ! आप शीघ्र ही यहाँ से महाबली सुग्रीव के पास चले जावें। वहाँ जाकर शीघ्र उसके साथ मैत्री करें ॥ १७ ॥ मित्रता करते समय प्रज्वलित अग्नि के समक्ष यह प्रतिज्ञा करना कि हम लोग एक दूसरे के प्रति विद्रोह न करेंगे। आप कभी भी सुग्रीव का अपमान न करें क्योंकि वह वनवासियों का सम्राट् है ॥ १८ ॥ वह सुग्रीव अपनी इच्छा से कई प्रकार के वेष धारण करने वाले, बलवान् तथा कृतज्ञ हैं। इस विपत्ति में वे स्वयं दूसरों की सहायता चाहते हैं। आप दोनों भाई उनकी कामना पूर्ण करने में समर्थ हैं ॥ १९ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृतार्थो वाकृतार्थो वा कृत्यं तव करिष्यति । स ऋक्षरजसः पुत्रः पम्पामटति शङ्कितः ॥२०॥
भास्करस्यौरसः पुत्रो वालिना कृतकिल्बिषः । संनिधायायुधं क्षिप्रमृश्यमूकालयं कपिम् ॥२१॥
कुरु राघव सत्येन वयस्यं वनचारिणम् । स हि स्थानानि सर्वाणि कार्त्स्न्येन कपिकुञ्जरः ॥२२॥
नरमांसाशिनां लोके नैपुण्यादधिगच्छति । न तस्याविदितं लोके किंचिदस्ति हि राघव ॥२३॥
यावत्सूर्यः प्रतपति सहस्रांशुररिंदम । स नदीर्विपुलाञ्शैलान् गिरिदुर्गाणि कन्दरान् ॥२४॥
अन्वेष्य वानरैः सार्धं पत्नीं तेऽधिगमिष्यति । वानरांश्च महाकायान् प्रेषयिष्यति राघव ॥२५॥
दिशो विचेतुं तां सीतां त्वद्वियोगेन शोचतीम् । स ज्ञास्यति वरारोहां निर्मलां रावणालये ॥२६॥
स मेरुशृङ्गाग्रगतामनिन्दितां प्रविश्य पातालतलेऽपि वा श्रिताम् ।
प्लवंगमानां प्रवरस्तव प्रियां निहत्य रक्षांसि पुनः प्रदास्यति ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सीताधिगमोपायो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः

ऋश्यमूकमार्गकथनम्

दर्शयित्वा तु रामाय सीतायाः परिमार्गणे । वाक्यमन्वर्थमर्थज्ञः कबन्धः पुनरब्रवीत् ॥ १ ॥

उनका मनोरथ सफल हो या न हो, किन्तु वे हर अवस्था में आप की सहायता करेंगे। वह ऋक्षरजा का क्षेत्रज पुत्र सुग्रीव अपने भाई बाली से शङ्कित होकर पम्पासर के आस-पास की भूमि में घूमता फिरता है ॥ २० ॥ वह सूर्य नामक राजर्षि का पुत्र बाली के द्वारा विपत्ति का आखेटक हो गया है। ऋष्यमूक पर वास करने वाले सुग्रीव के समीप अपने शस्त्रों के समक्ष ॥ २१ ॥ सत्य के द्वारा उस वनवासी से हे रामचन्द्र! अपनी मित्रता करो। वनवासियों में श्रेष्ठ नरमांसाहारी राक्षसों के स्थानों को अच्छी तरह जानता है। हे रामचन्द्र! इस पृथ्वी पर कोई स्थान नहीं है, जिसको वह न जानता हो ॥ २२, २३ ॥ इस पृथ्वी पर जहाँ तक सहस्र किरणों वाले सूर्य का प्रकाश पड़ता है, हे शत्रुजयी रामचन्द्र! वह सुग्रीव नदी, अनेकों पर्वत तथा उनकी कन्दराओं को ॥ २४ ॥ अपने वनवासी सैनिकों द्वारा आपकी धर्मपत्नी जानकी का पता लगावेगा। हे रामचन्द्र! वह अवश्य ही अपने विशाल काय वनवासियों को खोज करने के लिये भेजेगा ॥ २५ ॥ आप के वियोग में शोक करने वाली सीता की खोज करने के लियेह रेक दिशा में अपने दूतों को भेजेगा। सर्वाङ्गसुन्दरी मिथिला की राजकुमारी सीता के लिये वह रावण के स्थान का भी पता लगायेगा ॥ २६ ॥ वह सीता चाहे पर्वत की चोटी पर गई हो या पाताल में गई हो, तब भी वनवासियों का सम्राट् सुग्रीव राक्षसों को मार कर सीता को तुम्हें सौंप देगा ॥ २७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'सीता की प्राप्ति का उपाय' विषयक बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥७२॥

तेहत्तरवाँ सर्ग

ऋष्यमूक के मार्ग का कथन

जानकी की खोज करने के लिये सम्पूर्ण बातों को बताकर सम्पूर्ण तत्त्वों का जानने वाला वह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एष राम शिवः पन्था यत्रैते पुष्पिता द्रुमाः । प्रतीचीं दिशमाश्रित्य प्रकाशन्ते मनोरमाः ॥ २ ॥
जम्बूप्रियालपनसप्लक्षन्यग्रोधतिन्दुकाः । अश्वत्थाः कर्णिकाराश्च चूताश्चान्ये च पादपाः ॥ ३ ॥
धन्वना नागवृक्षाश्च तिलका नक्तमालकाः । नीलाशोकाः कदम्बाश्च करवीराश्च पुष्पिताः ॥ ४ ॥
अग्निमुख्या अशोकाश्च सुरक्ताः पारिभद्रकाः । तानारुह्याथवा भूमौ पातयित्वा च तान् बलात् ॥ ५ ॥
फलान्यमृतकल्पानि भक्षयन्तौ गमिष्यथः । तदतिक्रम्य काकुत्स्थ वनं पुष्पितपादपम् ॥ ६ ॥
नन्दनप्रतिमं चान्यत्कुरवो ह्युत्तरा इव । सर्वकामफला यत्र पादपास्तु मधुस्रवाः ॥ ७ ॥
सर्वे च ऋतवस्तत्र वने चैत्ररथे यथा । फलभारानतास्तत्र महाविटपधारिणः ॥ ८ ॥
शोभन्ते सर्वतस्तत्र मेघपर्वतसंनिभाः । तानारुह्याथवा भूमौ पातयित्वा यथासुखम् ॥ ९ ॥
फलान्यमृतकल्पानि लक्ष्मणस्ते प्रदास्यति । चङ्क्रमन्तौ वरान् देशाञ्शैलाच्छैलं वनाद्वनम् ॥१०॥
ततः पुष्करिणीं वीरौ पम्पां नाम गमिष्यथः । अशर्करामविभ्रंशां समतीर्थामशैवलाम् ॥११॥
राम संजातवालूकां कमलोत्पलशालिनीम् । तत्र हंसाः प्लवाः क्रौञ्चाः कुरराश्चैव राघव ॥१२॥
वल्गुस्वना निकूजन्ति पम्पासलिलगोचराः । नोद्विजन्ते नरान् दृष्ट्वा वधस्याकोविदाः पुरा ॥१३॥
घृतपिण्डोपमान् स्थूलांस्तान् द्विजान् भक्षयिष्यथः । रोहितान् वक्रतुण्डांश्च नडमीनांश्च राघव ॥१४॥

कबन्ध प्रयोजन वाली बातों को पुनः बोला ॥ १ ॥ हे रामचन्द्र ! पश्चिम दिशा में फूलों से भरे हुए ये जो मनोहारी वृक्ष दिखाई देते हैं, इधर ही तुम लोगों का वह कल्याणमय मार्ग है, जिससे तुम लोगों को जाना है ॥ २ ॥ मार्ग में जामुन, चिरौंजी, कटहल, वट, पाकड़, तिन्दुक, पीपल, कनेर, आम ॥ ३ ॥ धनुष, नागवृक्ष, तिलक, रजनिमाल, नील अशोक, कदम्ब, सफेद करवीर, ॥ ४ ॥ अग्निमुख, सफेद अशोक, लालचन्दन, परिभद्र आदि फल-फूल पूर्ण वृक्ष मिलेंगे। उन वृक्षों पर चढ़कर अथवा अपने बाहुबल से उन्हें झुका कर ॥ ५ ॥ उनके अमृतमय फलों को खा कर आगे जाना । हे रामचन्द्र ! फल-फूलसे भरे हुए उस वन को लाँघकर आगे जाना ॥ ६ ॥ नन्दन वन के समान तथा उत्तर कुरु में होने वाले, सम्पूर्ण ऋतुओं में फलने वाले और मीठे फल वाले वृक्ष उस वन में होते हैं ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण ऋतुएँ चैत्रवन के समान वहाँ निवास करती हैं। अपने फल भार से झुके हुए बड़ी-बड़ी शाखाओं वाले ॥ ८ ॥ काले २ मेघ तथा पर्वत के समान विशाल वृक्ष शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। उन पर चढ़कर अथवा उन्हें सुखपूर्वक झुकाकर ॥ ९ ॥ अमृत के समान फलों को तोड़कर लक्ष्मण तुम्हें देंगे। एक पर्वत से दूसरे पर्वत तथा एक वन से दूसरे वन में घूमते हुए ॥ १० ॥ आप दोनों कमल पुष्पों से भरे हुए उस पम्पा नामक सरोवर पर पहुँचेंगे, जहाँ कंकरीटें नहीं हैं, अच्छे घाट वाला तथा शैवाल से रहित वह सरोवर है ॥ ११ ॥ हे रामचन्द्र ! उसका तट बालू वाला है, कमल-पुष्पों से वह शोभित हो रहा है। हे रामचन्द्र ! उस पम्पा नामक सरोवर में हंस, प्लव, क्रौञ्च, कुरक, ॥ १२ ॥ आदि मधुर स्वर में बोलते हैं। वध आदि की आशंका जिनको पहले कभी नहीं हुई है, ऐसे वे पक्षिगण कभी डरते नहीं हैं ॥ १३ ॥ घृतपिण्ड के समान मोटे २ उन पक्षियों को आप लोग खावें*। रोहित, गोल मुखवाली तथा अन्य प्रकार की इन मछलियों को ॥ १४ ॥ जो पम्पा सरोवर में रहती हैं, उनको बाणों से मारकर तथा उन मछलियों और पक्षियों के

* यह वाक्य एक मांसाहारी राक्षस के हैं। वह अपने विचारों के अनुकूल रामचन्द्र को आदेश दे रहा है। यह आवश्यक नहीं है कि उसके राक्षसी विचार को रामचन्द्र भी अवश्य ही व्यवहार में लावें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पम्पायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्र राम वरान् हतान् । निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककण्टकान् ॥१५॥
तव भक्त्या समायुक्तो लक्ष्मणः संप्रदास्यति । भृशं ते खादतो मत्स्यान् पम्पायाः पुष्पसंचये॥१६॥
पद्मगन्धि शिवं वारि स्वादुशीतमनामयम् । उद्धृत्य सतताक्लिष्टं रौप्यस्फाटिकसंनिभम् ॥१७॥
असौ पुष्करपर्णेन लक्ष्मणः पाययिष्यति । स्थूलान् गिरिगुहाशय्यान् वानरान् वनचारिणः ॥१८॥
सायाह्ने विचरन् राम दर्शयिष्यति लक्ष्मणः । अपां लोभादुपावृत्तान् वृषभानिव नर्दतः ॥१९॥
रूपान्वितांश्च पम्पायां द्रक्ष्यसि त्वं नरोत्तम । सायाह्ने विचरन् राम विटपीमाल्यधारिणः ॥२०॥
शीतोदकं च पम्पाया दृष्ट्वा शोकं विहास्यसि । सुमनोभिश्चितास्तत्र तिलका नक्तमालकाः ॥२१॥
उत्पलानि च फुल्लानि पङ्कजानि च राघव । न तानि कश्चिन्माल्यानि तत्रारोपयिता नरः ॥२२॥
[न च वै म्लानतां यान्ति न च शीर्यन्ति राघव । मतङ्गशिष्यास्त ासन्नर्षयः सुसमाहिताः ॥२३॥
तेषां भाराभितप्तानां वन्यमाहरतां गुरोः । ये प्रपेतुर्महीं तूर्णं शरीरात्स्वेदबिन्दवः ॥२४॥
तानि जातानि माल्यानि मुनीनां तपसा तदा । स्वेदबिन्दुसमुत्थानि न विनश्यन्ति राघव ॥२५॥]
तेषामद्यापि तत्रैव दृश्यते परिचारिणी । श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी ॥२६॥
त्वां तु धर्मे स्थिता नित्यं सर्वभूतनमस्कृतम् । दृष्ट्वा देवोपमं राम स्वर्गलोकं गमिष्यति ॥२७॥
ततस्तद्राम पम्पायास्तीरमाश्रित्य पश्चिमम् । आश्रमस्थानमतुलं गुह्यं काकुत्स्थ पश्यसि ॥२८॥

त्वचा और पंखों को निकालकर तथा लोहे की शलाकों पर पकाकर और उनके काँटों को निकाल कर ॥ १५ ॥ लक्ष्मण भक्तिपूर्वक आप को देगा। उन मछलियों को खाकर पम्पासर में उत्पन्न होने वाले पुष्पों की शैया पर सोना ॥ १६ ॥ कमल गन्ध से सुगन्धित, शीतलता, सुख और आरोग्य का देने वाला, चांदी और स्फटिक मणि के समान स्वच्छ पानी को ॥ १७ ॥ कमल के पत्तों में लाकर लक्ष्मण आप को पिलायेंगे। मोटे-मोटे, पहाड़ की गुफाओं में रहने वाले वनचारी वानरों को ॥ १८ ॥ सायंकाल के समय हे रामचन्द्र ! लक्ष्मण आप को दिखायेंगे। जल पीने के लोभ से आये हुए, बलवान् बैलों के समान गरजते हुए ॥ १९ ॥ अत्यन्त सुन्दर वानरों को उस पम्पा सरोवर के समीप हे रामचन्द्र! आप स्वयं सायंकाल घूमते हुए उन पुष्पित वृक्षों को भी देखेंगे ॥ २० ॥ पम्पा के रमणीय जल को देख कर तथा फूलों से भरे हुए तिलक और नक्तमाल के वृक्षों को देख कर आप शोक से रहित हो जायेंगे ॥ २१ ॥ पुष्पित नील कमल तथा अन्य प्रकार के कमलों को वहां पर आरोपण करने वाला तथा उन की माला बनाने वाला कोई मनुष्य वहां नहीं है ॥ २२ ॥ हे रामचन्द्र ! वे पुष्प न कभी म्लान होते हैं और न कभी नष्ट होते हैं। मतङ्ग ऋषि के संयमी शिष्य तपस्वी के रूप में वहां रहा करते थे ॥ २३ ॥ अपने गुरु के लिये वन में उत्पन्न होने वाले फल-फूलों से भरे हुए भार को ढोने के समय उनके भार से आक्रान्त अवस्था में उनके शरीर से जो पसीने की बूंदें पृथ्वी पर गिरीं ॥ २४ ॥ वही पसीने की बूंदें मतङ्गमुनि की तपश्चर्या के द्वारा माला के रूप में परिणत हो गईं। हे रामचन्द्र ! क्योंकि वे स्वेद बिन्दुओं से उत्पन्न हुई हैं, इस लिये वे म्लान नहीं होतीं ॥ २५ ॥ हे रामचन्द्र ! दिवंगत ऋषियों की सेवा करने वाली, तपस्विनी तथा लम्बी आयु वाली शबरी आज भी वहां है ॥ २६ ॥ हे रामचन्द्र ! सम्पूर्ण प्राणियों के नमस्करणीय, धर्मात्मा, देवतुल्य आप को देख कर योग द्वारा वह अपने शरीर को छोड़ेगी ॥ २७ ॥ हे रामचन्द्र ! पम्पा सरोवर के पश्चिम तट पर अत्यन्त रक्षित एक विशाल आश्रम को आप देखेंगे ॥ २८ ॥ उस आश्रम पर हाथियों का आक्रमण नहीं हो सकता। मतङ्ग

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न तत्राक्रमितुं नागाः शक्नुवन्ति तमाश्रमम् । ऋषेस्तत्र मतङ्गस्य विधानात्तच्च काननम् ॥२९॥
मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन । तस्मिन्नन्दनसंकाशे देवारण्योपमे वने ॥३०॥
नानाविहगसंकीर्णे रंस्यसे राम निर्वृतः । ऋश्यमूकश्च पम्पायाः पुरस्तात्पुष्पितद्रुमः ॥३१॥
सुदुःखारोहणो नाम शिशुनागाभिरक्षितः । उदारो ब्रह्मणा चैव पूर्वकाले विनिर्मितः ॥३२॥
[शयानः पुरुषो राम तस्य शैलस्य मूर्धनि । यत्स्वप्ने लभते वित्तं तत्प्रबुद्धोऽधिगच्छति ॥३३॥]
यस्तु तं विषमाचारः पापकर्माधिरोहति । तत्रैव प्रहरन्त्येनं सुप्तमादाय राक्षसाः ॥३४॥
तत्रापि शिशुनागानामाक्रन्दः श्रूयते महान् । क्रीडतां राम पम्पायां मतङ्गारण्यवासिनाम् ॥३५॥
सिक्ता रुधिरधाराभिः संहत्य परमद्विपाः । प्रचरन्ति पृथक्कीर्णा मेघवर्णास्तरस्विनः ॥३६॥
ते तत्र पीत्वा पानीयं विमलं शीतमव्ययम् । निर्वृताः संविगाहन्ते वनानि वनगोचराः ॥३७॥
ऋक्षांश्च द्वीपिनश्चैव नीलकमलकप्रभान् । रुरूनपेतापजयान् दृष्ट्वा शोकं प्रहास्यसि ॥३८॥
राम तस्य तु शैलस्य महती शोभते गुहा । शिलापिधाना काकुत्स्थ दुःखं चास्याः प्रवेशनम् ॥३९॥
तस्या गुहायाः प्राग्द्वारे महाञ्शीतोदको ह्रदः । फलमूलान्वितो रम्यो नानामृगसमावृतः ॥४०॥
तस्यां वसति सुग्रीवश्चतुर्भिः सह वानरैः । कदाचिच्छिखरे तस्य पर्वतस्यावतिष्ठते ॥४१॥

ऋषि के तपोमय तेज से वह वन रक्षित हो रहा है ॥ २९ ॥ इस लिये हे रामचन्द्र ! उसको प्रसिद्ध मतङ्ग वन के नाम से लोग पुकारते हैं। देवताओं के रमणीय वन तथा नन्दन वन के समान ॥ ३० ॥ नाना प्रकार के पक्षियों से भरे हुए उस वन में हे रामचन्द्र ! आप प्रसन्नतापूर्वक रमण करना। पुष्पित वृक्षों से परिपूर्ण ऋश्यमूक पर्वत पम्पा सरोवर से कुछ आगे है ॥ ३१ ॥ उस पर्वत पर लोग बहुत कठिनाई से चढ़ पाते हैं। छोटे हाथियों के बच्चे सुरक्षित स्वच्छन्द जहां घूमा करते हैं। सृष्टि के आदि में सृष्टिकर्ता विश्वकर्मा ब्रह्म ने ही इस का निर्माण किया है (अर्थात् किसी व्यक्ति के द्वारा बनाया हुआ यह कृत्रिम पर्वत नहीं है) ॥ ३२ ॥ हे रामचन्द्र ! इस पर्वत की चोटी पर सोते हुए कोई व्यक्ति स्वप्न में जो धन प्राप्त करता है, जागने पर भी उस धन को प्राप्त कर लेता है ॥ ३३ ॥ जो कोई विरुद्ध आचरण वाला पापी इस पर्वत पर निवास करता है, तो उस व्यक्ति के सोने पर उसके राक्षसी विचार ही उस पर प्रहार करते हैं। (अर्थात् कोई पापात्मा इस पर्वत पर निवास नहीं कर सकता) ॥ ३४ ॥ हे रामचन्द्र ! मतङ्गवन में निवास करने वाले हाथियों के बच्चों की पम्पासर में स्नान करते समय चिंघाड़ के शब्द वहां सुनाई पड़ते हैं ॥ ३५ ॥ लाल वर्ण का मद क्षरण करने वाले, काले मेघ के समान विशालकाय हाथी अपने समूह वाले हाथियों के साथ तथा विजातीय गजों से पृथक् हो कर शीघ्रतापूर्वक चलते हैं ॥ ३६ ॥ सम्पूर्ण प्रकार के कमलगन्धों से युक्त, अत्यन्त सुख पूर्वक सेवन करने योग्य, स्वच्छ शोभायमान उस पम्पासरोवर के पानी को पीकर तथा स्नान करने के पश्चात् बनैले हाथी वन में चले जाते हैं ॥ ३७ ॥ नील कमल के समान काले, अजेय भालू, हाथी और मृगों को देख कर आप शोक रहित हो जायेंगे ॥ ३८ ॥ हे रामचन्द्र ! उस पर्वत पर शोभायमान गुफा है। हे रामचन्द्र ! वह गुफा पर्वतीय चट्टानों से ढकी हुई है और उस में प्रवेश करना अत्यन्त दुष्कर है ॥ ३९ ॥ उस गुफा के द्वार के समीप ही शीतल जल से भरा हुआ एक तालाब है। वह पर्वत नाना प्रकार के फल-मूल से युक्त तथा अनेक प्रकार के पशुओं से भरा हुआ है ॥ ४० ॥ अपने वनवासी सेवकों के साथ धर्मात्मा सुग्रीव उसी पर निवास करते हैं। कभी २ वे पर्वत के ऊँचे शिखर पर भी चले जाते हैं ॥४१॥ सूर्य के समान देदीप्यमान पराक्रमी वह कबन्ध राम लक्ष्मण को इस प्रकार बतला कर मरणानन्तर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कबन्धस्त्वनुशास्यैवं तावुभौ रामलक्ष्मणौ । स्रग्वी भास्करवर्णाभः खेव्यरोचत वीर्यवान् ॥४२॥
तं तु स्वस्थं महाभागं कबन्धं रामलक्ष्मणौ । प्रस्थितौ त्वं व्रजस्वेति वाक्यमूचतुरन्तिके ॥४३॥
गम्यतां कार्यसिद्ध्यर्थमिति तावब्रवीत्स च । सुप्रीतौ तावनुज्ञाप्य कबन्धः प्रस्थितस्तदा ॥४४॥
स तत्कबन्धः प्रतिपद्य रूपं वृतः श्रिया भास्करतुल्यदेहः ।
निदर्शयन् राममवेक्ष्य स्वस्थः सख्यं कुरुष्वेति तदाभ्युवाच ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे ऋश्यमूकमार्गकथनं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः

शबरीस्वर्गप्राप्तिः

तौ कबन्धेन तं मार्गं पम्पाया दर्शितं वने । प्रतस्थतुर्दिशं गृह्य प्रतीचीं नृवरात्मजौ ॥ १ ॥
तौ शैलेष्वाचितानेकान् क्षौद्रकल्पफलान् द्रुमान् । वीक्षन्तौ जग्मतुर्द्रष्टुं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ ॥ २ ॥
कृत्वा च शैलपृष्ठे तु तौ वासं रामलक्ष्मणौ । पम्पायाः पश्चिमं तीरं राघवावुपतस्थतुः ॥ ३ ॥
तौ पुष्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम् । अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम् ॥ ४ ॥
तौ तमाश्रममासाद्य द्रुमैर्बहुभिरावृतम् । सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतुः ॥ ५ ॥

आकाश गमन के पूर्व अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुआ ॥ ४२ ॥ प्रस्थान करने वाले दोनों भाई रामलक्ष्मण ने उस स्वस्थ, भाग्यवान् कबन्ध के पास जाकर 'अब तुम जाओ' यह वाक्य कहा ॥ ४३ ॥ कार्य की सिद्धि के लिये आप लोग भी जाइये, ऐसा कबन्ध भी बोला। प्रसन्न रामलक्ष्मण की आज्ञा को पाकर वह कबन्ध परलोक के प्रस्थान को उद्यत हो गया ॥ ४४ ॥ सीधे छाती संग्राम में मरने से जिस के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये हैं, तथा अग्नि की ज्वाला में देदीप्यमान शरीर वाला वह कबन्ध निर्मल जीवन को प्राप्त कर तथा रामचन्द्र को पूर्वोक्त समाचारों को बतलाता हुआ हे रामचन्द्र ! मैत्री अवश्य करो, ऐसा कह कर उसने अपनी ऐहिक लीला समाप्त कर दी ॥ ४५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'ऋश्यमूक के मार्ग का कथन' विषयक तेहत्तरवां सर्ग समाप्त हुआ ॥७३॥

चौहत्तरवां सर्ग

शबरी की स्वर्गप्राप्ति

कबन्ध के बताये हुए उस वन में वे दोनों भाई रामलक्ष्मण पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े ॥ १ ॥ वे दोनों भाई रामलक्ष्मण मधु-फल-फूल से भरे हुए उन पर्वतीय वृक्षों को देखते हुए सुग्रीव के दर्शन के लिये चले ॥ २ ॥ पर्वत की चोटियों पर विश्राम करते हुए वे दोनों भाई रामलक्ष्मण पम्पा सरोवर के पश्चिम तट पर पहुँचे ॥ ३ ॥ कमल से भरे हुए पम्पासरोवर के पश्चिमी तट पर जा कर रामलक्ष्मण ने तपस्विनी शबरी के रमणीय आश्रम को देखा ॥ ४ ॥ वे दोनों भाई रामलक्ष्मण नाना प्रकार के वृक्षों से आवृत उस आश्रम में पहुँच कर तथा वहां की रमणीय शोभा को देखते हुए शबरी से मिले ॥ ५ ॥ वह सिद्धा तपस्विनी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तौ च दृष्ट्वा तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः। रामस्य पादौ जग्राह लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥ ६ ॥
पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि। तामुवाच ततो रामः श्रमणीं संशितव्रताम् ॥ ७ ॥
कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः। कच्चित्ते नियतः क्रोध आहारश्च तपोधने ॥ ८ ॥
कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम्। कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि ॥ ९ ॥
रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसंमता। शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्युपस्थिता ॥ १० ॥
अद्य प्राप्ता तपःसिद्धिस्तव संदर्शनान्मया। अद्य मे सफलं तप्तं गुरवश्च सुपूजिताः ॥ ११ ॥
अद्य मे सफलं जन्म स्वर्गश्चैव भविष्यति। त्वयि देववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ ॥ १२ ॥
चक्षुषा तव सौम्येन पूतास्मि रघुनन्दन। गमिष्याम्यक्षयाँल्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिंदम ॥ १३ ॥
चित्रकूटं त्वयि प्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः। इतस्ते दिवमारूढा यानहं पर्यचारिषम् ॥ १४ ॥
तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः। आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम् ॥ १५ ॥
स ते प्रतिग्रहीतव्यः सौमित्रिसहितोऽतिथिः। तं च दृष्ट्वा वराँल्लोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि ॥ १६ ॥
मया तु विविधं वन्यं संचितं पुरुषर्षभ। तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसंभवम् ॥ १७ ॥
एवमुक्तः स धर्मात्मा शबर्या शबरीमिदम्। राघवः प्राह विज्ञाने तां नित्यमबहिष्कृताम् ॥ १८ ॥

शबरी रामलक्ष्मण को देख कर हाथ जोड़ती हुई उठी और रामचन्द्र तथा लक्ष्मण के चरणों को छू कर प्रणाम किया ॥ ६ ॥ पैर धोने तथा आचमन करने का जल उसने विधिपूर्वक दिया। पश्चात् धर्म तथा तपश्चर्या में स्थित रहने वाली तपस्विनी शबरी से श्री रामचन्द्र बोले ॥ ७ ॥ हे तपस्विनि! क्या तुम्हारी तपश्चर्या के सम्पूर्ण विघ्न समाप्त हो गये। तुम्हारी तपश्चर्या में वृद्धि तो हो रही है। तुम्हारे क्रोध आदि विकार तथा आहार आदि की प्रक्रिया नियमित तो है ॥ ८ ॥ तुम अपने यम नियम के पालन में सफल तो हो गई। तप के द्वारा प्राप्त होने वाली सुख-शान्ति तो तुम्हें प्राप्त हो गई? हे उत्तम बोलने वाली तपस्विनि! तुम्हारी गुरुजनों की सेवा तो सफल हो गई? ॥ ९ ॥ मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर सिद्ध जनों से सम्मानित उस वृद्धा तपस्विनी शबरी ने रामचन्द्र के समक्ष उपस्थित हो कर उन की बातों का उत्तर दिया ॥ १० ॥ हे रामचन्द्र! आज आप के दर्शन से मैंने तपश्चर्या की सिद्धि प्राप्त कर ली। आज हमारा, संसार में जन्म लेना सफल हुआ। गुरुजनों की सेवा भी आज सफल हुई ॥ ११ ॥ हे देवश्रेष्ठ! आज मेरी तपश्चर्या सफल हुई। आप की पूजा करने से हे नर-केसरी रामचन्द्र! मुझे सुख अवश्य प्राप्त होगा ॥ १२ ॥ हे सौम्य रामचन्द्र! आप के दर्शन मात्र से मैं पवित्र हो गई। हे शत्रुतापी रामचन्द्र! आप की कृपा तथा आशीर्वाद से मैं अक्षय लोकों को प्राप्त करूंगी ॥ १३ ॥ जिन तपस्वियों की मैं सेवा करती थी, वे तपस्वी लोग आप के चित्रकूट आने पर अतुल प्रभाव वाले अपने यम-नियम आदि के द्वारा यहाँ से स्वर्ग को चले गये ॥ १४ ॥ धर्म के जानने वाले ज्ञान विज्ञान सम्पन्न उन महर्षियों ने मुझसे कहा—हे तपस्विनि! इस पुण्य आश्रम में रामचन्द्र आवेंगे ॥ १५ ॥ इस लिये लक्ष्मण सहित रामचन्द्र का तुम आतिथ्य सत्कार करना। रामचन्द्र के दर्शन तथा उपदेश से तुम्हें अक्षय लोकों की प्राप्ति होगी अर्थात् तुम्हारी सद्गति होगी ॥ १६ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! उन तपस्वियों के ऐसा कहने पर मैंने वन में उत्पन्न होने वाले फलों को संचित कर रखा है। हे नरकेसरी! पम्पा सरोवर के तट पर उत्पन्न होने वाले ये फल आप के लिये ही संचित कर रखे हैं ॥ १७ ॥ तपस्विनी शबरी के ऐसा कहने पर रघुकुल-शिरोमणि रामचन्द्र ने उस से कहा तुम भूत-भविष्यत् का ज्ञान रखने वाली हो ॥ १८ ॥ कबन्ध के द्वारा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दनोः सकाशात्तत्त्वेन प्रभावं ते महात्मनः । श्रुतं प्रत्यक्षमिच्छामि संद्रष्टुं यदि मन्यसे ॥१९॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा रामवक्त्राद्विनिःसृतम् । शबरी दर्शयामास तावुभौ तद्वनं महत् ॥२०॥
पश्य मेघघनप्रख्यं मृगपक्षिसमाकुलम् । मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन ॥२१॥
इह ते भावितात्मानो गुरवो मे महावने । जुहवांचक्रिरे देहं मन्त्रवन्मन्त्रपूजितम् ॥२२॥
इयं प्रत्यक्स्थली वेदिर्यत्र ते मे सुसत्कृताः । पुष्पोपहारं कुर्वन्ति श्रमादुद्वेपिभिः करैः ॥२३॥
तेषां तपःप्रभावेण पश्याद्यापि रघूद्वह । द्योतयन्ति दिशः सर्वाः श्रिया वेद्योऽतुलप्रभाः ॥२४॥
अशक्नुवद्भिस्तैर्गन्तुमुपवासश्रमालसैः । चिन्तितेऽभ्यागतान् पश्य सहितान् सप्त सागरान् ॥२५॥
कृताभिषेकैस्तैर्न्यस्ता वल्कलाः पादपेष्विह । अद्यापि नावशुष्यन्ति प्रदेशे रघुनन्दन ॥२६॥
देवकार्याणि कुर्वद्भिर्यानीमानि कृतानि वै । पुष्पैः कुवलयैः सार्धं म्लानत्वं नोपयान्ति वै ॥२७॥
कृत्स्नं वनमिदं दृष्टं श्रोतव्यं च श्रुतं त्वया । तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञाता त्यक्तुमेतत्कलेवरम् ॥२८॥
तेषामिच्छाम्यहं गन्तुं समीपं भावितात्मनाम् । मुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी ॥२९॥
धर्मिष्ठं तु वचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः । प्रहर्षमतुलं लेभे आश्चर्यमिति चाब्रवीत् ॥३०॥
तामुवाच ततो रामः शबरीं संशितव्रताम् । अर्चितोऽहं त्वया भक्त्या गच्छ कामं यथासुखम् ॥३१॥
इत्युक्ता जटिला वृद्धा चीरकृष्णाजिनाम्बरा । अनुज्ञाता तु रामेण हुत्वात्मानं हुताशने ॥३२॥

तुम्हारा तथा तथा तुम्हारे आचार्यों का प्रभाव हम ने सुन रखा है। यदि तुम उचित समझो तो मैं उन सुनी हुई बातों को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ ॥ १९ ॥ रामचन्द्र के मुख से निकले हुए इन वचनों को सुन कर तपस्विनी शबरी ने राम-लक्ष्मण दोनों भाईयों को वह विशाल वन दिखाया ॥ २० ॥ घने मेघ के समान, मृग पक्षियों से परिपूर्ण इस बन को आप लोग देखें। हे रामचन्द्र ! यह सम्पूर्ण रमणीय स्थल मतङ्गवन के नाम से प्रसिद्ध है ॥ २१ ॥ तत्त्वदर्शी मेरे गुरुजनों ने मन्त्र के जानने वाले वेदज्ञ विद्वानों के द्वारा मन्त्र पूर्वक यहाँ यज्ञ किया था ॥ २२ ॥ यह समक्ष प्रत्यक्स्थली नामक वेदि है, जहाँ श्रम के कारण अपने कांपते हुए हाथों से अपने आदरणीय व्यक्तियों को पुष्पाञ्जलि समर्पित की थी ॥ २३ ॥ हे रघुकुल-श्रेष्ठ रामचन्द्र ! आज उन तपस्वियों के तप प्रभाव से यह अतुल प्रभाव वाली वेदी सब दिशाओं को प्रकाशित कर रही है ॥ २४ ॥ उपवास आदि के कारण जाने में असमर्थ उन तपस्वियों के लिये सप्त सरोवर का लाया हुआ जल यह सामने उपस्थित है, इस को देखें ॥ २५ ॥ हे रामचन्द्र ! इस सप्तसरोवर के जल में स्नान करने के पश्चात् अपने भीगे वस्त्रों को जो इन वृक्षों पर फैलाया था, वे आज तक वहीं सूख रहें हैं ॥ २६ ॥ अतिथि आदि विद्वानों की पूजा करते समय मेरे गुरुजनों ने जो पुष्पाञ्जलि समर्पित की थी, वह आज भी उसी प्रकार पड़ी हुई है ॥ २७ ॥ अब आप ने यह सम्पूर्ण वन देख लिया और जो सुनना चाहिये वह सुन लिया। अब मेरी यही कामना है कि आप की आज्ञा से मैं अपने इस जीर्ण शीर्ण कलेवर को छोड़ दूँ ॥ २८ ॥ मैं भी पूजनीय उन्हीं गुरुजनों के मार्ग का अवलम्बन करना चाहती हूँ जिन का यह आश्रम है और जिनकी मैंने सेवा की थी ॥ २९ ॥ लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र श्रमणा के इस धार्मिक वचन को सुन कर अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए और यह कहा कि यहाँ की सारी घटना आश्चर्य वाली है ॥ ३० ॥ उस प्रशंसित व्रत वाली तपस्विनी शबरी से राम ने कहा—हे भद्रे ! तुम्हारे द्वारा मैं हरेक प्रकार से सम्मानित हुआ। अब तुम सुख पूर्वक जिस स्थान को जाना चाहती हो जाओ ॥ ३१ ॥ रामचन्द्र के ऐसा कहने पर जटा भार तथा काले मृग चर्म को धारण करने वाली वह तपस्विनी शबरी अपने आप अग्नि में प्रवेश करके ॥ ३२ ॥ देदीप्यमान अग्नि के समान वह स्वर्ग को चली गई। योग द्वारा प्राप्त विभूति-मय दिव्य आभरण,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ज्वलत्पावकसंकाशा स्वर्गमेव जगाम सा। दिव्याभरणसंयुक्ता दिव्यमाल्यानुलेपना ॥३३॥
दिव्याम्बरधरा तत्र बभूव प्रियदर्शना। विराजयन्ती तं देशं विद्युत्सौदामनी यथा ॥३४॥
यत्र ते सुकृतात्मानो विहरन्ति महर्षयः। तत्पुण्यं शबरी स्थानं जगामात्मसमाधिना ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अरण्यकाण्डे शबरीस्वर्गप्राप्तिर्नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः

पम्पादर्शनम्

दिवं तु तस्यां यातायां शबर्यां स्वेन तेजसा। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चिन्तयामास राघवः ॥ १ ॥
स चिन्तयित्वा धर्मात्मा प्रभावं तं महात्मनाम्। हितकारिणमेकाग्रं लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् ॥ २ ॥
दृष्टोऽयमाश्रमः सौम्य बह्वाश्चर्यः कृतात्मनाम्। विश्वस्तमृगशार्दूलो नानाविहगसेवितः ॥ ३ ॥
सप्तानां च समुद्राणामेष तीर्थेषु लक्ष्मण। उपस्पृष्टं च विधिवत्पितरश्चापि तर्पिताः ॥ ४ ॥
प्रनष्टमशुभं तत्तत्कल्याणं समुपस्थितम्। तेन तत्त्वेन हृष्टं मे मनो लक्ष्मण संप्रति ॥ ५ ॥
हृदये हि नरव्याघ्र शुभमाविर्भविष्यति। तदागच्छ गमिष्यावः पम्पां तां प्रियदर्शनाम् ॥ ६ ॥
ऋश्यमूको गिरिर्यत्र नातिदूरे प्रकाशते। यस्मिन् वसति धर्मात्मा सुग्रीवोऽशुमतः सुतः ॥ ७ ॥

माला, चन्दन, ॥ ३३ ॥ दिव्य वस्त्र आदि से विभूषित जैसे लोग प्रियदर्शी होते हैं, तद्वत् प्रियदर्शना तथा विद्युत्कान्ति के समान कान्तिमयी वह तपस्विनी उस स्थान पर जा कर विराजमान हो गई ॥ ३४ ॥ पुण्यात्मा महर्षि लोग योग आदि पुण्य कर्मों के द्वारा जिस स्थान पर विहरण करते हैं, उसी पुण्य पवित्र स्थान को अपनी समाधि के द्वारा शबरी ने भी प्राप्त कर लिया ॥ ३५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'शबरी की स्वर्ग-प्राप्ति' विषयक चौहत्तरवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवां सर्ग

पम्पा का दर्शन

अपने तप तथा तेज के प्रभाव से शबरी के स्वर्ग चले जाने पर रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण के साथ विचार करने लगे ॥ १ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्र ऋषियों के इस प्रकार प्रभावों का विचार कर निश्चल रूप से बैठे हुए हितकारी अपने भाई लक्ष्मण से बोले ॥ २ ॥ हे सौम्य लक्ष्मण ! तपोनिष्ठ उन ब्रह्मज्ञानियों के आश्चर्य-मय इस आश्रम को मैंने देखा, जहाँ मृग, सिंह तथा नाना प्रकार के पक्षिगण निर्भय निवास करते हैं ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! ऋषियों द्वारा निर्मित सप्त सरोवर के घाट पर मैंने विधि पूर्वक स्नान किया और वहाँ के आदरणीय लोगों का भी मैंने यथोचित सत्कार किया ॥ ४ ॥ हम लोगों के अशुभ तथा अमंगल वाले दिन समाप्त हो गये और हम लोगों का मंगलमय कल्याणकारी समय आ गया है। जिसके कारण हे लक्ष्मण ! मेरा मन प्रसन्न दिखाई दे रहा है ॥ ५ ॥ हे नरकेसरी लक्ष्मण ! मेरे हृदय में किसी अच्छी भावना का प्रादुर्भाव होने वाला है। इस लिये आओ, हम दोनों रमणीय उस पम्पा नामक सरोवर पर चलें ॥ ६ ॥ जिस के समीप ही शोभायमान ऋश्यमूक पर्वत है, जहाँ राजर्षिपुत्र धर्मात्मा सुग्रीव निवास कर रहे हैं ॥ ७ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नित्यं वालिभयत्रस्तश्चतुर्भिः सह वानरैः । अभित्वरे च तं द्रष्टुं सुग्रीवं वानरर्षभम् ॥ ८ ॥
तदधीनं हि मे सौम्य सीतायाः परिमार्गणम् । एवं ब्रुवाणं तं धीरं रामं सौमित्रिरब्रवीत् ॥ ९ ॥
गच्छावस्त्वरितं तत्र ममापि त्वरते मनः । आश्रमात्तु ततस्तस्मान्निष्क्रम्य स विशांपतिः ॥१०॥
आजगाम ततः पम्पां लक्ष्मणेन सह प्रभुः । स ददर्श ततः पुण्यामुदारजनसेविताम् ॥११॥
नानाद्रुमलताकीर्णां पम्पां पानीयवाहिनीम् । पद्मैः सौगन्धिकैस्ताम्रां शुक्लां कुमुदमण्डलैः ॥१२॥
नीलां कुवलयोद्घाटैर्वहुवर्णां कुथामिव । स तामासाद्य वै रामो दूरादुदकवाहिनीम् ॥१३॥
मतङ्गसरसं नाम ह्रदं समवगाहत । अरविन्दोत्पलवतीं पद्मसौगन्धिकायुताम् ॥१४॥
पुष्पिताम्रवणोपेतां बर्हिणोद्घुष्टनादिताम् । तिलकैर्बीजपूरैश्च धवैः शुक्लद्रुमैस्तथा ॥१५॥
पुष्पितैः करवीरैश्च पुंनागैश्च सुपुष्पितैः । मालतीकुन्दगुल्मैश्च भण्डीरैर्निचुलैस्तथा ॥१६॥
अशोकैः सप्तपर्णैश्च केतकैरतिमुक्तकैः । अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः प्रमदामिव भूषिताम् ॥१७॥
समीक्षमाणौ पुष्पाढ्यं सर्वतो विपुलद्रुमम् । कोयष्टिकैश्चार्जुनकैः शतपत्रैश्च कीरकैः ॥१८॥
एतैश्चान्यैश्च विहगैर्नादितं तु वनं महत् । ततो जग्मतुरव्यग्रौ राघवौ सुसमाहितौ ॥१९॥
तद्वनं चैव सरसः पश्यन्तौ शकुनैर्युतम् । स ददर्श ततः पम्पां शीतवारिनिधिं शुभाम् ॥२०॥
प्रहृष्टनानाशकुनां पादपैरुपशोभिताम् । स रामो विविधान् वृक्षान् सरांसि विविधानि च ॥२१॥

बाली के भय से त्रस्त अपने सहायक चार वनवासियों के साथ जहाँ सुग्रीव निवास कर रहे हैं, उसे देखने के लिये मैं शीघ्रता कर रहा हूँ ॥ ८ ॥ सीता की खोज का मेरा कार्य उन्हीं के अधीन है। इस प्रकार कहते हुए अपने वीर भाई रामचन्द्र के प्रति लक्ष्मण बोले ॥ ९ ॥ ठीक है, हम लोग शीघ्र ही चलें। मेरा मन भी इसके लिये शीघ्रता कर रहा है। प्रजापति रामचन्द्र उस आश्रम से निकल कर ॥ १० ॥ नाना प्रकार के फूलों से भरे हुए अनेक प्रकार के वृक्षों को देखते हुए अपने भाई लक्ष्मण के साथ समर्थ रामचन्द्र पम्पा सरोवर पर आये। पश्चात् उदार जनों से सेवित उस पुण्य सरोवर को देखा ॥ ११ ॥ जो नाना प्रकार के वृक्ष तथा लताओं से परिपूर्ण तथा शुभपवित्र जल से परिपूर्ण था। जिसमें सुगन्धित लाल कमल तथा श्वेत कमल सुशोभित हो रहे हैं ॥१२॥ नीलवर्ण के कमल से वहाँ के घाट इस प्रकार प्रतीत होते हैं जैसे अनेक वर्णों वाला हाथी का झूल। दूर-सुदूर से उदक बहने वाले उस पम्पा सरोवर को प्राप्त कर ॥ १३ ॥ रामचन्द्र ने पम्पा सरोवर के एक भाग मतङ्गसर नामक एक घाट पर स्नान किया। अरविन्द नामक कमल जिसमें खिले हैं, जो नाना प्रकार के कमल की सुगन्धि से युक्त है ॥ १४ ॥ पुष्पित आम्र के वनों से जो युक्त है और मोर जिसमें बोल रहे हैं। तिलक, बीजपूरक, धव तथा श्वेतवृक्षों से जो परिपूर्ण हो रहा है ॥ १५ ॥ पुष्पित करवीर वृक्षों से परिपूर्ण, फूले हुए पुन्नाग, मालती, कुन्द की लताओं से युक्त, भाण्डीर, निचुल ॥ १६ ॥ अशोक, सप्तपर्ण, अतिमुक्तक आदि पुष्पित वृक्षों से सुभूषित स्त्री के समान ॥ १७ ॥ फूले हुए नाना प्रकार के वृक्षों से सर्वतः अलंकृत पम्पासर की तटी को देखते हुए, कोयष्ट, अर्जुन, शतपर्ण, कीरक आदि ॥ १८ ॥ नाना प्रकार के पक्षियों से निनादित उस विशाल वन की ओर जितेन्द्रिय रामलक्ष्मण निर्भय हो कर गये ॥१९॥ उन्हों ने पक्षियों से युक्त उस वन तथा पवित्र शीतल जल वाले उस पम्पा नामक सरोवर को देखा ॥ २० ॥ नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव से युक्त उस पम्पा को, अनेक प्रकार के वृक्षों को तथा नाना प्रकार के अन्य सरोवरों को देखते हुए ॥ २१ ॥ काम से संतप्त होकर वे विशाल पम्पा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्यन् कामाभिसंतप्तो जगाम परमं ह्रदम् । पुष्पितोपवनोपेतां सालचम्पकशोभिताम् ॥२२॥
षट्पदौघसमाविष्टां श्रीमतीमतुलप्रभाम् । स्फटिकोपमतोयाढ्यां श्लक्ष्णवालुकसंयुताम् ॥२३॥
स तां दृष्ट्वा पुनः पम्पां पद्मसौगन्धिकैर्युताम् । इत्युवाच तदा वाक्यं लक्ष्मणं सत्यविक्रमः ॥२४॥
अस्यास्तीरे तु पूर्वोक्तः पर्वतो धातुमण्डितः । ऋश्यमूक इति ख्यातः पुण्यः पुष्पितपादपः ॥२५॥
हरेर्ऋक्षरजोनाम्नः पुत्रस्तस्य महात्मनः । अध्यास्ते तं महावीर्यः सुग्रीव इति विश्रुतः ॥२६॥
सुग्रीवमभिगच्छ त्वं वानरेन्द्रं नरर्षभ । इत्युवाच पुनर्वाक्यं लक्ष्मणं सत्यविक्रमम् ॥२७॥
राज्यभ्रष्टेन दीनेन तस्यामासक्तचेतसा । कथं मया विना शक्यं सीतां लक्ष्मण जीवितुम् ॥२८॥

इत्येवमुक्त्वा मदनाभिपीडितः स लक्ष्मणं वाक्यमनन्यचेतसम् ।
विवेश पम्पां नलिनीं मनोहरां रघूत्तमः शोकविषादयन्त्रितः ॥२९॥
ततो महद्वर्त्म सुदूरसंक्रमः क्रमेण गत्वा प्रतिकूलधन्वनम् ।
ददर्श पम्पां शुभदर्शकाननामनेकनानाविधपक्षिजालकाम् ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे पम्पादर्शनं नाम पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

अरण्यकाण्डः संपूर्णः

नामक सरोवर की ओर चल दिये। पुष्पित वनों से युक्त साल, चम्पक, अशोक वृक्षों से परिपूर्ण ॥ २२ ॥ भौंरे जिस पर गुञ्जार कर रहे हैं, जिसकी शोभा अत्यन्त बढ़ रही है, जिसमें स्फटिक मणि के समान स्वच्छ जल है, साल तथा चम्पक पुष्पों से शोभित ॥ २३ ॥ कमल पुष्पों से सुगन्धित उस पम्पा को रामचन्द्र पुनः देखकर सत्यपराक्रमी अपने भाई लक्ष्मण से ये वचन बोले ॥ २४ ॥ इसी पम्पा के तट पर पूर्वोक्त प्रकार नाना प्रकार के धातुओं से मण्डित और नाना प्रकार के उत्तम पुष्पित वृक्षों से परिपूर्ण प्रसिद्ध ऋश्यमूक नामक पर्वत है ॥ २५ ॥ वहां महात्मा ऋक्षराज का पुत्र प्रसिद्ध महापराक्रम युक्त सुग्रीव निवास करता है ॥ २६ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! तुम वनवासियों के सम्राट् सुग्रीव के समीप जाओ। रामचन्द्र सत्य पराक्रमी लक्ष्मण से पुनः इस प्रकार बोले ॥२७॥ राज्य पद से भ्रष्ट, सीता के प्रति आकर्षित चित्त वाला दुःखी मैं उस सीता के बिना हे लक्ष्मण ! कैसे जीवित रह सकता हूँ ॥ २८ ॥ सीता में आसक्त चित्त वाले, काम से पीड़ित रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण से यह कह कर, अत्यन्त विषाद युक्त हो कर मनोहारी कमलों से परिपूर्ण उस पम्पा सरोवर में प्रविष्ट हुए ॥ २९ ॥ इस प्रकार क्रम पूर्वक उस वनस्थली की रमणीयता को देखते हुए, अनेक प्रकार के पक्षियों के कलरव से युक्त तथा तट गत वनों से रमणीय उस पम्पा सरोवर में लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र ने प्रवेश किया ॥ ३० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का 'पम्पा का दर्शन' विषयक
पचहत्तरवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ७५ ॥

अरण्यकाण्ड सम्पूर्ण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाल्मीकिरामायण

॥ अथ किष्किन्धाकाण्डः ॥

प्रथमः सर्गः

रामविप्रलम्भावेशः

स तां पुष्करिणीं गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलाम् । रामः सौमित्रिसहितो विललापाकुलेन्द्रियः ॥ १ ॥
तस्य दृष्ट्वैव तां हर्षादिन्द्रियाणि चकम्पिरे । स कामवशमापन्नः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका । फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः ॥ ३ ॥
सौमित्रे पश्य पम्पायाः काननं शुभदर्शनम् । यत्र राजन्ति शैलाभा द्रुमाः सशिखरा इव ॥ ४ ॥
मां तु शोकाभिसंतप्तमाधयः पीडयन्ति वै । भरतस्य च दुःखेन वैदेह्या हरणेन च ॥ ५ ॥
शोकार्तस्यापि मे पम्पा शोभते चित्रकानना । व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा ॥ ६ ॥

वाल्मीकिरामायण

किष्किन्धा काण्ड

प्रथम सर्ग

राम की विरहवेदना

कमल दल तथा मीन आदि जल जन्तुओं से परिपूर्ण पम्पा नामक सरोवर में अवगाहन कर लक्ष्मण के समीप होने पर भी व्यथित इन्द्रिय रामचन्द्र विलाप करने लगे ॥१॥ कमल वन से सुशोभित उस पुष्करिणी की रमणीयता को देख कर हर्षातिरेक के द्वारा उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियां कम्पायमान हो गईं। काम के वशीभूत वह रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण से बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो, नाना प्रकार के वृक्षों से सुशोभित, खिले हुए कमलों से परिपूर्ण, वैदूर्य मणि के समान विमल जल वाली यह पुष्करिणी पम्पा अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रही है ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! पम्पा के दर्शनीय कानन को देखो, जहाँ के ऊँचे २ वृक्ष पर्वतीय चोटी के समान सुशोभित हो रहे हैं ॥ ४ ॥ भाई भरत के वियोग से तथा सीता के अपहरण से बढ़ी हुई आधियाँ शोक से संतप्त मेरे हृदय को पीड़ित कर रही हैं ॥ ५ ॥ ठण्डे जल वाली, नाना प्रकार के फूलों से परिपूर्ण, तट गत अनेक प्रकार के वनों से परिपूर्ण यह पुष्करिणी पम्पा शोकार्त होने पर भी मुझे रमणीय प्रतीत हो रही है ॥ ६ ॥ कमल पत्रों से ढंपी हुई, सर्प-मीन आदि जल जन्तुओं से परिपूर्ण, तटीय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नलिनैरपि संछन्ना ह्यत्यर्थं शुभदर्शना । सर्पव्यालानुचरिता मृगद्विजसमाकुला ॥ ७ ॥
अधिकं प्रतिभात्येतन्नीलपीतं तु शाद्वलम् । द्रुमाणां विविधैः पुष्पैः परिस्तोमैरिवार्पितम् ॥ ८ ॥
पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समन्ततः । लताभिः पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि सर्वतः ॥ ९ ॥
सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः । गन्धवान् सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमः ॥१०॥
पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम् । सृजतां पुष्पवर्षाणि तोयं तोयमुचामिव ॥११॥
प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः । वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति गाम् ॥१२॥
पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः । कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडन्निव समन्ततः ॥१३॥
विक्षिपन् विविधाः शाखा नगानां कुसुमोत्कचाः । मारुतश्चलितस्थानैः षट्पदैरनुगीयते ॥१४॥
मत्तकोकिलसंनादैर्नर्तयन्निव पादपान् । शैलकन्दरनिष्क्रान्तः प्रगीत इव चानिलः ॥१५॥
तेन विक्षिपतात्यर्थं पवनेन समन्ततः । अमी संसक्तशाखाग्रा ग्रथिता इव पादपाः ॥१६॥
स एष सुखसंस्पर्शो वाति चन्दनशीतलः । गन्धमभ्यावहन् पुण्यं श्रमापनयनोऽनिलः ॥१७॥
अमी पवनविक्षिप्ता विनदन्तीव पादपाः । षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषु मधुगन्धिषु ॥१८॥
गिरिप्रस्थेषु रम्येषु पुष्पवद्भिर्मनोरमैः । संसक्तशिखराः शैला विराजन्ते महाद्रुमैः ॥१९॥
पुष्पसंछन्नशिखरा मारुतोत्क्षेपचञ्चलाः । अमी मधुकरोत्तंसाः प्रगीता इव पादपाः ॥२०॥

मृग-पक्षियों से यह पुष्करिणी अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रही है ॥ ७ ॥ वृक्षों के नाना प्रकार के पुष्पों की राशि के समान नील-पीत वर्ण वाले पम्पा तट के शाद्वल (हरी २ घास) अत्यन्त शोभित हो रहे हैं ॥ ८ ॥ नाना प्रकार के फूलों से जिनकी चोटियाँ परिपूर्ण हैं तथा पुष्पित लताओं से जो वेष्टित हैं इस प्रकार के वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! काम को संदीप्त करनेवाला, फल-पुष्पित वृक्षों से परिपूर्ण, सुरभित, वसन्त ऋतु का प्रथम चैत्र मास अपने सुखप्रद वायु से आनन्दित कर रहा है ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण ! पुष्पित शोभायमान वनों के सौंदर्य को देखो, जो अपनी पुष्प-वर्षा से जल वर्षा करने वाले बादल के समान प्रतीत हो रहे हैं ॥ ११ ॥ वन में होने वाले नाना प्रकार के वृक्ष वायु वेग से कम्पित, अपनी पुष्पवर्षा से रमणीय पत्थर शिला वाली भूमि को ढाँप रहे हैं ॥ १२ ॥ जो गिर गये हैं या जो अभी गिरने वाले हैं, ऐसे फूलों से हे लक्ष्मण ! यह वायु मानो क्रीडा कर रहा है ॥ १३ ॥ पुष्पित शाखाओं को कम्पायमान करता हुआ जब वायु चलता है, तब भ्रमर गण गान करता हुआ उनका अनुगमन करता है ॥ १४ ॥ मत्त कोकिल के कलरव से युक्त वृक्षों को नृत्य की शिक्षा देते हुए पर्वत की कन्दराओं से निकला हुआ वायु मानो गान कर रहा है ॥ १५ ॥ उस पवन के द्वारा अत्यन्त कम्पायमान किये जाने पर भी समीप होने के कारण वे शाखा वाले वृक्ष आपस में गुथे हुए प्रतीत होते हैं ॥ १६ ॥ थकावट को दूर करने वाला, सुगन्धित शीतल चन्दन से परिपूर्ण, सुख-स्पर्श करने वाला, रमणीय सुगन्ध वायु बह रहा है ॥ १७ ॥ मधु से सुगन्धित वन में कम्पायमान वृक्ष मानो गा रहे हैं और भ्रमरगण उनका अनुकरण कर रहे हैं ॥ १८ ॥ रमणीय पर्वत के शिखरों पर पुष्पित, मनोरम तथा लम्बे २ वृक्षों की चोटियाँ मिल जाने के कारण पर्वत के शिखर शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥ १९ ॥ पुष्पों से जिसके शिखर आच्छादित हो रहे हैं, वायु द्वारा कम्पित होने से जो चञ्चल हो रहे हैं, भ्रमर ही जिसके कर्ण तथा सिर के आभूषण हो रहे हैं. ऐसे वृक्ष मानो गा रहे हैं ॥ २० ॥ चारों ओर फूले हुए इन कर्णिकार वृक्षों को देखो जो पीताम्बरधारी कनकालंकार से अलंकृत मनुष्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुपुष्पितांस्तु पश्येमान् कर्णिकारान् समन्ततः । हाटकप्रतिसंछन्नान्नरान् पीताम्बरानिव ॥२१॥
अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः । सीतया विप्रहीणस्य शोकसंदीपनो मम ॥२२॥
मां हि शोकसमाक्रान्तं संतापयति मन्मथः । हृष्टः प्रवदमानश्च मामाह्वयति कोकिलः ॥२३॥
एष दात्यूहको हृष्टो रम्ये मां वननिर्झरे । प्रणदन् मन्मथाविष्टं शोचयिष्यति लक्ष्मण ॥२४॥
श्रुत्वैतस्य पुरा शब्दमाश्रमस्था मम प्रिया । मामाहूय प्रमुदिता परमं प्रत्यनन्दत ॥२५॥
एवं विचित्रा पतगा नानारावविराविणः । वृक्षगुल्मलताः पश्य संपतन्ति समन्ततः ॥२६॥
विमिश्रा विहगाः पुंभिरात्मव्यूहाभिनन्दिताः । भृङ्गराजप्रमुदिताः सौमित्रे मधुरस्वराः ॥२७॥
अस्याः कूले प्रमुदिताः शकुनाः सङ्घशस्त्विह । दात्यूहरतिविक्रन्दैः पुंस्कोकिलरुतैरपि ॥२८॥
स्वनन्ति पादपाश्चेमे ममानङ्गप्रदीपनाः । अशोकस्तबकाङ्गारः षट्पदस्वननिःस्वनः ॥२९॥
मां हि पल्लवताम्राचिर्वसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति । न हि तां सूक्ष्मपक्ष्माक्षीं सुकेशीं मृदुभाषिणीम् ॥३०॥
अपश्यतो मे सौमित्रे जीवितेऽस्ति प्रयोजनम् । अयं हि दयितस्तस्याः कालो रुचिरकाननः ॥३१॥
कोकिलाकुलसीमान्तो दयिताया ममानघ । मन्मथायाससंभूतो वसन्तगुणवर्धितः ॥३२॥
अयं मां धक्ष्यति क्षिप्रं शोकाग्निर्नचिरादिव । अपश्यतस्तां दयितां पश्यतो रुचिरद्रुमान् ॥३३॥
ममायमात्मप्रभवो भूयस्त्वमुपयास्यति । अदृश्यमाना वैदेही शोकं वर्धयतीह मे ॥३४॥

के समान प्रतीत हो रहे हैं ॥ २१ ॥ नाना प्रकार के पक्षियों से निनादित यह वसन्त, हे लक्ष्मण ! सीता से वियुक्त मेरे शोक को और भी संदीप्त कर रहा है ॥ २२ ॥ शोक से संतप्त मुझ को अपने सखा वसन्त से प्रेरित यह कामदेव अत्यन्त संतप्त कर रहा है। अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक कलरव करने वाला यह कोकिल अपनी विजय की घोषणा करता हुआ मानो मुझे ललकार रहा है ॥ २३ ॥ हे लक्ष्मण ! वन के झरनों के पास शब्द करता हुआ यह प्रसन्न जल-कुक्कुट काम संतप्त मेरी आधि को और बढ़ा रहा है ॥ २४ ॥ आश्रम में रहने वाली मेरी प्राणप्रिया जानकी आश्रम में पहले जब इस जल-कुक्कुट के शब्द को सुनती थी, तो प्रसन्नता पूर्वक मुझ को बुला कर परम आनन्द का अनुभव करती थी ॥ २५ ॥ इस प्रकार मधुर शब्द करते हुए रंग बिरंग के पक्षिगण प्रत्येक दिशा से आकर जिन पर बैठ रहे हैं, ऐसे वृक्ष–लताओं के झुण्ड को देखो ॥ २६ ॥ हे लक्ष्मण ! अपने पुरुषों से युक्त ये पक्षी अत्यन्त आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। प्रसन्न भौंरों के मधुर स्वर के समान ये गान कर रहे हैं ॥ २७ ॥ पम्पासर के किनारे नाना प्रकार के जलकुक्कुट आदि पक्षिगण का शब्द तथा पुंस्कोकिल का कलरव ॥ २८ ॥ अग्नि के समान रक्तवर्ण वाले अशोक के पत्ते, भ्रमर से गुंजारित ये वृक्ष मानो स्वयं बोल रहे हैं और मेरी कामाग्नि को बढ़ा रहे हैं ॥ २९ ॥ लाल २ पत्ते जिसकी ज्वाला का काम कर रहे हैं, ऐसी बढ़ी हुई यह जो वसन्त अग्नि मुझे अवश्य ही दग्ध कर देगी। आँखों के सूक्ष्म पक्ष्म वाली, रमणीय केशों वाली, मृदु भाषिणी सीता को विना देखे, हे लक्ष्मण ! अब मेरे जीने का कोई प्रयोजन नहीं। यह वसन्त ऋतु सीता को अत्यन्त रुचिकर प्रतीत होती थी क्योंकि इस समय सम्पूर्ण वन पत्र-फल-पुष्पों से अत्यन्त कमनीय हो जाता है ॥ ३०, ३१ ॥ कोयलों से आकुष्ट यह वनस्थली, कामदेव को बढ़ाने वाली वसन्त ऋतु की यह सम्पूर्ण विभूति तथा उससे वर्द्धित शोकाग्नि मुझको शीघ्र ही जला देगी। इस समय मैं सीता को नहीं देख रहा हूँ, किन्तु वसन्त ऋतु की ऋद्धि से विकसित इन मनोहर वृक्षों को देख रहा हूँ ॥ ३२, ३३ ॥ मेरी कामाग्नि स्वयं बढ़ रही है। सीता का वियोग मेरी शोकाग्नि को और भी बढ़ा रहा है ॥ ३४ ॥ श्रमजनित स्वेद (पसीना) को दूर करने वाला दृश्यमान यह वसन्त और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दृश्यमानो वसन्तश्च स्वेदसंसर्गदूषकः । मां हि सा मृगशावाक्षी चिन्ताशोकबलात्कृतम् ॥३५॥
संतापयति सौमित्रे क्रूरश्चैत्रो वनानिलः । अमी मयूराः शोभन्ते प्रनृत्यन्तस्ततस्ततः ॥३६॥
स्वैः पक्षैः पवनोद्धूतैर्गवाक्षैः स्फाटिकैरिव । शिखिनीभिः परिवृतास्त एते मदमूर्छिताः ॥३७॥
मन्मथाभिपरीतस्य मम मन्मथवर्धनाः । पश्य लक्ष्मण नृत्यन्तं मयूरमुपनृत्यति ॥३८॥
शिखिनो मन्मथार्तैषा भर्तारं गिरिसानुषु । तामेव मनसा रामां मयूरोऽप्युपधावति ॥३९॥
वितत्य रुचिरौ पक्षौ रुतैरुपहसन्निव । मयूरस्य वने नूनं रक्षसा न हृता प्रिया ॥४०॥
तस्मान्नृत्यति रम्येषु वनेषु सह कान्तया । मम त्वयं विना वासः पुष्पमसि सुदुःसहः ॥४१॥
पश्य लक्ष्मण संरागं तिर्यग्योनिगतेष्वपि । यदेषा शिखिनी कामाद्भर्तारमभिवर्तते ॥४२॥
ममाप्येवं विशालाक्षी जानकी जातसंभ्रमा । मदनेनाभिवर्तेत यदि नापहृता भवेत् ॥४३॥
पश्य लक्ष्मण पुष्पाणि निष्फलानि भवन्ति मे । पुष्पभारसमृद्धानां वनानां शिशिरात्यये ॥४४॥
रुचिराण्यपि पुष्पाणि पादपानामतिश्रिया । निष्फलानि महीं यान्ति समं मधुकरोत्करैः ॥४५॥
नदन्ति कामं मुदिताः शकुनाः सङ्घशः कलम् । आह्वयन्त इवान्योन्यं कामोन्मादकरा मम ॥४६॥
वसन्तो यदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया । नूनं परवशा सीता सापि शोचत्यहं यथा ॥४७॥

मृगनयनी जानकी के वियोगजनित बढ़ा हुआ शोक संताप मुझे अत्यन्त दुःखी कर रहा है ॥ ३५ ॥ हे लक्ष्मण ! क्रूर चैत्र मास का वन में बहने वाला वायु मुझे अधिक संतप्त कर रहा है। मद से मूर्च्छित, मयूरियों से घिरे हुए ये मोर वायु के द्वारा इधर-उधर प्रक्षिप्त पंखों से, जो बिखर जाने पर स्फटिक मणि का खिड़की के समान प्रतीत हो रहे हैं, जहाँ-तहाँ नाचते हुए अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ३६,३७ ॥ हे लक्ष्मण ! सीता के वियोग से मैं पहले से ही काम पीड़ित था। इस घटना को देखकर मेरी काम पीड़ा और भी बढ़ रही है। हे लक्ष्मण ! नाचते हुए मोरों के पास यह मयूरी भी नृत्य कर रही है ॥ ३८ ॥ पर्वत की चोटियों पर नाचते हुए अपने पतियों के साथ कामासक्त यह मयूरी भी नाच रही है। मयूरी में आसक्त मन वाले ये मयूर भी उन्हीं के पीछे दौड़ रहे हैं ॥ ३९ ॥ अपने पंखों को फैलाकर नाचते हुए अपने मधुर स्वर में एक प्रकार से मेरा उपहास कर रहे हैं। क्योंकि इस वन में उनकी प्रियतमा का राक्षस ने हरण नहीं किया है ॥ ४० ॥ अपनी कान्ता मयूरियों के साथ ये मोर नाच रहे हैं। इस वसन्त ऋतु में प्राणप्रिया सीता के बिना मेरा रहना अब कठिन हो रहा है ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो, तिर्यग्योनि वाले इन पक्षियों में भी वह अनुराग देखा जाता है। कामासक्त यह मयूरी इस समय अपने पति मयूर का अनुवर्त्तन कर रही है ॥ ४२ ॥ आज सीता भी यदि राक्षस के द्वारा अपहृत न होती, तो वह मेरे प्रति इसी प्रकार आदरणीय भाव प्रकट करती तथा मेरा अनुगमन करती ॥ ४३ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो, वसन्त ऋतु में यह वन नाना प्रकार के पुष्पों से परिपूर्ण हो रहा है किन्तु यह सम्पूर्ण पुष्प समृद्धि हमारे लिये व्यर्थ है ॥ ४४ ॥ वृक्षों में अत्यन्त रमणीय ये फूलों के समूह निष्फल तथा निष्प्रयोजन होने के कारण भ्रमर पंक्ति के साथ पृथ्वी पर गिर रहे हैं ॥ ४५ ॥ झुण्ड के झुण्ड ये पक्षिगण परस्पर एक दूसरे का आह्वान करते हुए आनन्द पूर्वक मधुर कलरव कर रहे हैं। इनका इस प्रकार का आचरण भी मुझे काम-संतप्त कर रहा है ॥ ४६ ॥ जहाँ सीता इस समय निवास कर रही है, यदि इस प्रकार वसन्त वहाँ भी होगा, तो पराधीन सीता अवश्य ही इसी प्रकार शोकातुर हो रही होगी जैसे मैं यहाँ शोकातुर हो रहा हूँ ॥ ४७ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नूनं न तु वसन्तोऽयं देशं स्पृशति यत्र सा । कथं ह्यसितपद्माक्षी वर्तयेत्सा मया विना ॥४८॥
अथवा वर्तते तत्र वसन्तो यत्र मे प्रिया । किं करिष्यति सुश्रोणी सा तु निर्भर्त्सिता परैः ॥४९॥
श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुपूर्वाभिभाषिणी । नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥५०॥
दृढं हि हृदये बुद्धिर्मम संप्रति वर्तते । नालं वर्तयितुं सीता साध्वी मद्विरहं गता ॥५१॥
मयि भावो हि वैदेह्यास्तत्त्वतो विनिवेशितः । ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशितः ॥५२॥
एष पुष्पवहो वायुः सुखस्पर्शो हिमावहः । तां विचिन्तयतः कान्तां पावकप्रतिमो मम ॥५३॥
सदा सुखमहं मन्ये यं पुरा सह सीतया । मारुतः स विना सीतां शोकं वर्धयते मम ॥५४॥
तां विना स विहंगोऽसौ पक्षी प्रणदितस्तदा । वायसः पादपगतः प्रहृष्टमभिनर्दति ॥५५॥
एष वै तत्र वैदेह्या विहगः प्रतिहारकः । पक्षी मां तु विशालाक्ष्याः समीपमुपनेष्यति ॥५६॥
शृणु लक्ष्मण संनादं वने मदविवर्धनम् । पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु द्विजानामुपकूजताम् ॥५७॥
विक्षिप्तां पवनेनैतामसौ तिलकमञ्जरीम् । षट्पदः सहसाभ्येति मदोद्धूतामिव प्रियाम् ॥५८॥
कामिनामयमत्यन्तमशोकः शोकवर्धनः । स्तवकैः पवनोत्क्षिप्तैस्तर्जयन्निव मां स्थितः ॥५९॥
अमी लक्ष्मण दृश्यन्ते चूताः कुसुमशालिनः । विभ्रमोत्सिक्तमनसः साङ्गरागा नरा इव ॥६०॥
सौमित्रे पश्य पम्पायाश्चित्रासु वनराजिषु । किंनरा नरशार्दूल विचरन्ति ततस्ततः ॥६१॥

निश्चय ही, जहाँ इस समय सीता निवास कर रही है, वहाँ वसन्त ऋतु नहीं होगी क्यों कि कमलनयनी सीता मेरे बिना कैसे रह सकती है ॥ ४८ ॥ अथवा हो सकता है, जहाँ प्राणप्रिया सीता इस समय है, वहाँ भी वसन्त हो । किन्तु शत्रुओं के हाथ में पड़ी पराधीना सीता इस समय कर ही क्या सकती है ॥ ४९ ॥ मधुर बोलने वाली, कमलनयनी मेरी प्राणप्रिया युवती सीता निश्चय ही इस वसन्त ऋतु को प्राप्त कर अपने प्राणों को छोड़ देगी ॥ ५० ॥ निश्चय ही मेरी बुद्धि इस परिणाम पर पहुँच रही है कि मेरे वियोग में सीता अपने जीवन को सुखपूर्वक नहीं बिता सकती ॥ ५१ ॥ जानकी का वास्तविक शुद्ध प्रेम मुझ में है और उसी प्रकार मेरा भी शुद्ध हार्दिक प्रेम जानकी में है ॥ ५२ ॥ सीता का अन्वेषण करने के समय फूलों से सुगन्धित, शीतल तथा सुखकारी यह वसन्त का वायु मुझे आज अग्नि के समान प्रतीत हो रहा है ॥ ५३ ॥ जानकी के साथ जो वसन्त की वायु मुझे सुखकर प्रतीत होती थी, आज वही वायु जानकी के बिना मुझे दुःख संताप दे रही है ॥ ५४ ॥ जानकी के वियोग के समय यह काक पक्षी बोल रहा था । आज वृक्ष पर बैठा हुआ प्रसन्नता पूर्वक बोल रहा है ॥ ५५ ॥ उस समय बोल कर यह काक पक्षी सीता के अपहरण का कारण बना । आज यही काक पक्षी मेरे समक्ष बोलता हुआ विशाल नयनी जानकी को प्राप्त करायेगा ॥ ५६ ॥ हे लक्ष्मण ! वन में पुष्पित वृक्षों पर कामोन्माद को बढ़ाने वाले पक्षिगण बोल रहे हैं, उन्हें देखो और उनके शब्दों को सुनो ॥ ५७ ॥ वायु के द्वारा कम्पित इस तिलक मञ्जरी के समीप भ्रमर हठात् सहसा इस प्रकार आ रहे हैं, जैसे कोई मदविह्वल कामी कामासक्त प्रिया के पास जाता है ॥ ५८ ॥ कामासक्त कामियों के अत्यन्त शोक का बढ़ाने वाला यह अशोक वृक्ष वायु से कम्पित अपने गुच्छों के द्वारा मानो मुझे फटकार रहा है ॥ ५९ ॥ हे लक्ष्मण ! अपनी विकसित मञ्जरियों से युक्त ये आम्र वृक्ष अंगराग धारण करने वाले विलासी मनुष्यों के समान प्रतीत हो रहे हैं ॥ ६० ॥ हे लक्ष्मण ! पम्पा की चित्र-विचित्र वनपंक्तियों में यह किन्नर लोग इधर उधर घूम रहे हैं ॥६१॥ हे लक्ष्मण ! इस पम्पासर में सब ओर खिले हुए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इमानि शुभगन्धीनि पश्य लक्ष्मण सर्वशः । नलिनानि प्रकाशन्ते जले तरुणसूर्यवत् ॥६२॥
एषा प्रसन्नसलिला पद्मनीलोत्पलायुता । हंसकारण्डवाकीर्णा पम्पा सौगन्धिकान्विता ॥६३॥
जले तरुणसूर्याभैः षट्पदाहतकेसरैः । पङ्कजैः शोभते पम्पा समन्तादभिसंवृता ॥६४॥
चक्रवाकयुता नित्यं चित्रप्रस्थवनान्तरा । मातङ्गमृगयूथैश्च शोभते सलिलार्थिभिः ॥६५॥
पवनाहितवेगाभिरूर्मिभिर्विमलेऽम्भसि । पङ्कजानि विराजन्ते ताड्यमानानि लक्ष्मण ॥६६॥
पद्मपत्रविशालाक्षीं सततं प्रियपङ्कजाम् । अपश्यतो मे वैदेहीं जीवितं नाभिरोचते ॥६७॥
अहो कामस्य वामत्वं यो गतामपि दुर्लभाम् । स्मारयिष्यति कल्याणीं कल्याणतरवादिनीम् ॥६८॥
शक्यो धारयितुं कामो भवेदभ्यागतो मया । यदि भूयो वसन्तो मां न हन्यात्पुष्पितद्रुमः ॥६९॥
यानि स्म रमणीयानि तया सह भवन्ति मे । तान्येवारमणीयानि जायन्ते मे तया विना ॥७०॥
पद्मकोशपलाशानि द्रष्टुं दृष्टिर्हि मन्यते । सीताया नेत्रकोशाभ्यां सदृशानीति लक्ष्मण ॥७१॥
पद्मकेसरसंसृष्टो वृक्षान्तरविनिःसृतः । निःश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः ॥७२॥
सौमित्रे पश्य पम्पाया दक्षिणे गिरिसानुनि । पुष्पितां कर्णिकारस्य यष्टिं परमशोभनाम् ॥७३॥
अधिकं शैलराजोऽयं धातुभिः सुविभूषितः । विचित्रं सृजते रेणुं वायुवेगविघट्टितम् ॥७४॥
गिरिप्रस्थास्तु सौमित्रे सर्वतः संप्रपुष्पितैः । निष्पत्रैः सर्वतो रम्यैः प्रदीप्ता इव किंशुकैः ॥७५॥
पम्पातीररुहाश्चेमे संसक्ता मधुगन्धिनः । मालतीमल्लिकाषण्डाः करवीराश्च पुष्पिताः ॥७६॥

ये सुगन्धित कमल तरुण सूर्य के समान प्रकाशित हो रहे हैं ॥६२॥ हँस और कारण्डव पक्षी जिसमें किलोल कर रहे हैं, नील कमल जिसमें विकसित हो रहे हैं ऐसी स्वच्छ जल वाली तथा सुगन्धि से परिपूर्ण यह पम्पा पुष्करिणी शोभा को प्राप्त हो रही है ॥ ६३ ॥ भ्रमरों के द्वारा कम्पायमान कमलों से घिरे हुए, तरुण सूर्य कांति के समान केसर से परिपूर्ण यह पम्पा शोभा को प्राप्त हो रही है॥ ६४ ॥ चक्रवाक समूहों से युक्त,जिसके वन भाग चित्र-विचित्र रमणीय स्थानों से परिपूर्ण हैं, जल पीने के लिये आये हुए मतवाले हाथी तथा मृग झुण्डों से युक्त यह वनस्थली शोभा को प्राप्त हो रही है ॥ ६५ ॥ हे लक्ष्मण ! पवन के वेग से आहत पम्पा सरोवर की तरङ्गों से कम्पित यह कमल दल की पंक्ति शोभा को प्राप्त हो रही है ॥ ६६ ॥ कमलों से प्रेम करने वाली कमलनयनी सीता के न दिखाई देने के कारण आज यह मेरा जीवन मुझे अपने लिये भार भूत हो रहा है ॥ ६७ ॥ ओहो ! इस काम की कुटिलता को तो देखो, जो कल्याणमय भाषण करने वाली अनुपस्थित दुर्लभ जानकी का मुझे स्मरण करा रहा है ॥ ६८ ॥ आये हुए अपने अतिथि के समान इस काम देव का शान्ति पूर्वक स्वागत कर लेता, यदि पुष्पित वृक्षों से युक्त यह वसन्त मुझ पर आघात न करता ॥ ६९ ॥ जो वस्तुएँ जानकी के समीप रहने पर मुझे रमणीय प्रतीत होती थीं, आज वे ही वस्तुएँ जानकी के विना अरमणीय प्रतीत हो रही हैं ॥ ७० ॥ हे लक्ष्मण ! कमल कोश के पत्तों को देखने की मेरी दृष्टि लालायित हो रही है क्योंकि ये कमल दल सीता के दोनों नेत्रों की समानता प्रकट कर रहे हैं ॥ ७१ ॥ कमल केसर से संयुक्त अनेक वृक्षों से स्पर्श कर निकला हुआ यह मनोहर वायु जानकी के निःश्वास का अनुकरण कर रहा है ॥ ७२ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो, पम्पा सरोवर के दक्षिण पर्वत की चोटियों पर पुष्पित कर्णिकार के वृक्ष अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ७३ ॥ अनेक प्रकार की धातुओं से मण्डित यह ऋश्यमूक पर्वत वायुवेग के प्रचण्ड आघात से नाना प्रकार की विचित्र धूल का सृजन कर रहा है ॥ ७४ ॥ पत्रहीन, सब ओर से पुष्पित, रमणीय इन पलाश वृक्षों से इस पर्वत के शिखर अग्नि से जलते हुए प्रतीत हो रहे हैं ॥७५॥ पम्पा नीर से संसिक्त पम्पा सरोवर के किनारे मधु तथा सुगन्धि से परिपूर्ण पुष्पित मालती, मल्लिका,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केतक्यः सिन्धुवाराश्च वासन्त्यश्च सुपुष्पिताः । माधव्यो गन्धपूर्णाश्च कुन्दगुल्माश्च सर्वशः ॥७७॥
चिरिबिल्वा मधूकाश्च वञ्जुला वकुलास्तथा । चम्पकास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाः सुपुष्पिताः ॥७८॥
पद्मकाश्चोपशोभन्ते नीलाशोकाश्च पुष्पिताः । लोध्राश्च गिरिपृष्ठेषु सिंहकेसरपिञ्जराः ॥७९॥
अङ्कोलाश्च कुरण्टाश्च पूर्णकाः पारिभद्रकाः । चूताः पाटलयश्चैव कोविदाराश्च पुष्पिताः ॥८०॥
मुचुलिन्दार्जुनाश्चैव दृश्यन्ते गिरिसानुषु । केतकोद्दालकाश्चैव शिरीषाः शिंशपा धवाः ॥८१॥
शाल्मल्यः किंशुकाश्चैव रक्ताः कुरवकास्तथा । तिनिशा नक्तमालाश्च चन्दनाः स्पन्दनास्तथा ॥८२॥
हिन्तालास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः । पुष्पितान् पुष्पिताग्राभिर्लताभिः परिवेष्टितान् ॥८३॥
द्रुमान् पश्येह सौमित्रे पम्पाया रुचिरान् बहून् । वातविक्षिप्तविटपान् यथासन्नान् द्रुमानिमान् ॥८४॥
लताः समनुवेष्टन्ते मत्ता इव वरस्त्रियः । पादपात्पादपं गच्छञ्शैलाच्छैलं वनाद्वनम् ॥८५॥
वाति नैकरसास्वादसंमोदित इवानिलः । केचित्पर्याप्तकुसुमाः पादपा मधुगन्धिनः ॥८६॥
केचिन्मुकुलसंवीताः श्यामवर्णा इवाबभुः । इदं मृष्टमिदं स्वादु प्रफुल्लमिदमित्यपि ॥८७॥
रागमत्तो मधुकरः कुसुमेष्ववलीयते । निलीय पुनरुत्पत्य सहसान्यत्र गच्छति ॥८८॥
मधुलुब्धो मधुकरः पम्पातीरद्रुमेष्वसौ ।
इयं कुसुमसङ्घातैरुपस्तीर्णा सुखाकृता । स्वयं निपतितैर्भूमिः शयनप्रस्तरैरिव ॥८९॥
विविधा विविधैः पुष्पैस्तैरेव नगसानुषु । विशीर्णैः पीतरक्ता हि सौमित्रे प्रस्तराः कृताः ॥९०॥

कनेर ॥ ७६ ॥ केतकी, सिन्धुवार, वासन्ती, मातुलुङ्ग, गन्ध से परिपूर्ण कुन्द पुष्प के गुल्म पुष्पित हो रहे हैं ॥ ७७ ॥ चिल्बिल, महुआ, वंजुल, मौलसरी, चम्पा, तिलक, नागवृक्ष ॥ ७८ ॥ पद्माक, नील अशोक तथा पर्वत श्रृंगों पर सिंह की केसर के समान बादामी रंग वाले लोध्र वृक्ष भी पुष्पित हो रहे हैं ॥ ७९ ॥ अंकोल, कुरैया, चूर्णक, परिभद्रक, आम, गुलाब, कोविदार भी पुष्पित हो रहे हैं ॥ ८० ॥ पर्वत की चोटियों पर मुकुन्द, अर्जुन केवड़ा उद्दालक, सिरस, सीसों, धव ॥ ८१ ॥ सेमर, पलाश, लालकुरैया, तिनिश, नक्तमाल, चन्दन, स्पन्दन ॥ ८२ ॥ हिन्ताल, तिलक, पुष्पित नागवृक्ष तथा पुष्पित लताओं से परिवेष्टित अनेकों वृक्ष शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ८३ ॥ हे लक्ष्मण ! पम्पा तट पर वायु के झोंके से हिलने वाले कमनीय इन वृक्षों को देखो ॥८४॥ लतायें वृक्षों का इस प्रकार आलिंगन कर रही हैं जैसे श्रेष्ठ स्त्रियां कामासक्त होकर पति का आलिङ्गन करती हैं । एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर, एक पर्वत की चोटी से दूसरे पर्वत की चोटी पर तथा एक वन से दूसरे वन में ॥८५॥ अनेक प्रकार के सुगन्धि से परिपूर्ण वायु बह रहा है । कुछ वृक्ष पर्याप्त पुष्पों से पुष्पित हैं तथा सुगन्ध प्रदान कर रहे हैं ॥ ८६ ॥ कुछ वृक्ष अपनी अर्द्ध विकसित कलियों से परिपूर्ण श्याम वर्ण प्रतीत हो रहे हैं । ये विकसित पुष्पपुञ्ज बहुत मधुर तथा स्वादु हैं ॥ ८७ ॥ इसलिये रागयुक्त भ्रमर पंक्ति कभी पुष्पपुञ्जों में छिप जाती है और कभी सहसा प्रकट हो जाती है तथा उन वृक्षों से अन्यत्र चली जाती है । इस प्रकार मधु लुब्ध भ्रमर पंक्ति पम्पातीर पर रहने वाले वृक्षों के साथ क्रीड़ा कर रही है ॥ ८८ ॥ वृक्षों से स्वयं गिरे हुए इन पुष्पों से आच्छादित यह पृथ्वी एक सुखावह शय्या के समान प्रतीत हो रही है ॥८९॥ हे लक्ष्मण ! वृक्षों से स्वयं गिरे हुए इन लाल पुष्पों से पत्थर कहीं लाल प्रतीत हो रहे हैं और पीले पुष्पों से कहीं पीले प्रतीत हो रहे हैं ॥ ९० ॥ हे लक्ष्मण ! बसन्त ऋतु में पुष्पित इन वृक्षों की समृद्धि को देखो । इस पुष्पित बसन्त ऋतु में ये फूल मानो फूलने के लिये आपस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिमान्ते पश्य सौमित्रे वृक्षाणां पुष्पसंभवम् । पुष्पमासे हि तरवः सङ्घर्षादिव पुष्पिताः ॥९१॥
आह्वयन्त इवान्योन्यं नगाः षट्पदनादिताः । कुसुमोत्तंसविटपाः शोभन्ते बहु लक्ष्मण ॥९२॥
एष कारण्डवः पक्षी विगाह्य सलिलं शुभम् । रमते कान्तया सार्धं काममुद्दीपयन् मम ॥९३॥
मन्दाकिन्यास्तु यदिदं रूपमेव मनोहरम् । स्थाने जगति विख्याता गुणास्तस्या मनोरमाः ॥९४॥
यदि दृश्येत सा साध्वी यदि चेह वसेमहि । स्पृहयेयं न शक्राय नायोध्यायै रघूत्तम ॥९५॥
न ह्येव रमणीयेषु शाद्वलेषु तया सह । रमतो मे भवेच्चिन्ता न स्पृहान्येषु वा भवेत् ॥९६॥
अमी हि विविधैः पुष्पैस्तरवो रुचिरच्छदाः । काननेऽस्मिन् विना कान्तां चित्तमुन्मादयन्ति मे ॥९७॥
पश्य शीतजलां चेमां सौमित्रे पुष्करायुताम् । चक्रवाकानुचरितां कारण्डवनिषेविताम् ॥९८॥
प्लवैः क्रौञ्चैश्च संपूर्णां वराहमृगसेविताम् । अधिकं शोभते पम्पा विकूजद्भिर्विहंगमैः ॥९९॥
दीपयन्तीव मे कामं विविधा मुदिता द्विजाः । पश्य सानुषु चित्रेषु मृगीभिः सहितान् मृगान् ॥१००॥
श्यामां चन्द्रमुखीं स्मृत्वा प्रियां पद्मनिभेक्षणाम् । व्यथयन्तीव मे चित्तं संचरन्तस्ततस्ततः ॥१०१॥
अस्मिन् सानुनि रम्ये हि मत्तद्विजगणायुते । पश्येयं यदि तां कान्तां ततः स्वस्ति भवेन्मम ॥१०२॥
जीवेयं खलु सौमित्रे मया सह सुमध्यमा । सेवते यदि वैदेही पम्पायाः पवनं सुखम् ॥१०३॥
पद्मसौगन्धिकवहं शिवं शोकविनाशनम् । धन्या लक्ष्मण सेवन्ते पम्पोपवनमारुतम् ॥१०४॥
श्यामा पद्मपलाशाक्षी प्रिया विरहिता मया । कथं धारयति प्राणान् विवशा जनकात्मजा ॥१०५॥

में स्पर्धा कर रहे हैं ॥ ९१ ॥ हे लक्ष्मण ! पुष्पों के आभूषण से सुशोभित ये वृक्ष अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहे हैं । भ्रमरों से निनादित ये वृक्ष एक दूसरे को चुनौती दे रहे हैं ॥ ९२ ॥ यह कारण्डव पक्षी पम्पा के शुभ जल में स्नान कर के अपनी कान्ता के साथ आनन्द अनुभव कर रहा है तथा मेरे काम को बढ़ा रहा है ॥ ९३ ॥ गंगा के समान इस पम्पा सरोवर का जल अत्यन्त निर्मल प्रतीत हो रहा है । अनेक गुण से परिपूर्ण गंगा जल की जो जगत् में प्रसिद्धि है वह उचित ही है ॥ ९४ ॥ हे रघुकुल श्रेष्ठ लक्ष्मण ! यदि तपस्विनि सीता यहाँ दिखाई दे जाय तथा मैं उसके साथ यहाँ निवास करूँ तो मुझे इन्द्र पद की आकांक्षा नहीं और न अयोध्या के राज्य की आकांक्षा है । ॥ ९५ ॥ रमणीय हरी-हरी घासों वाले स्थान में यदि मेरा मन लग जाय, तो मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं और न किसी प्रकार की मेरी कामना ही रह जायेगी ॥ ९६ ॥ अनेक प्रकार के पुष्पों से पुष्पित तथा हरित पर्णों से आच्छादित ये वृक्ष गण सीता के बिना मेरी चिन्ता को बढ़ा रहे हैं । ॥ ९७ ॥ हे लक्ष्मण ! कमलों से विकसित शीतल जल वाली इस पम्पा को देखो इसके तट पर चक्रवाक दम्पति तथा कारण्ड पक्षीगण सदा शोभा को बढ़ाते रहते हैं ॥ ९८ ॥ उत्तम जाति के पशुओं से परिपूर्ण, प्लव, क्रौंच तथा अन्य नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव से यह पम्पा पुष्करिणी अधिक शोभा को प्राप्त हो रही है ॥ ९९ ॥ मुखरित ये नाना प्रकार के पक्षिगण मेरे काम को दीप्त कर रहे हैं । इन पर्वत की चोटियों पर अपनी प्रिया मृगियों से परिपूर्ण इन मृगों को देखो ॥ १०० ॥ कमलनयनी सीता से वियुक्त होने पर इधर-उधर घूमने वाले ये मृग मेरे अन्तःकरण को व्यथित कर रहे हैं ॥ १०१ ॥ कामोन्मत्त पक्षिगणों से परिपूर्ण रमणीय इस पर्वत शिखर पर यदि कमनीय कान्ति वाली सीता को देख लेता, तो मेरा अवश्यमेव कल्याण हो जाता ॥ १०२ ॥ हे लक्ष्मण ! यदि कमनीय कान्ति वाली सीता मेरे साथ इस पम्पा सरोवर के शुभ पवन का सेवन करती, तो मैं अवश्य जीवित रह जाता ॥ १०३ ॥ कमल गन्ध से परिपूर्ण, शोक विनाशक, कल्याणप्रद पम्पावन के इस पवित्र पवन का जो सेवन करते हैं वे धन्य हैं ॥ १०४ ॥ कमलनयनी प्राणप्रिया सीता मुझ से वियुक्त होकर विवश अवस्था में अपने प्राणों को किस प्रकार धारण करती होती ॥ १०५ ॥ जनसमुदाय से परिपूर्ण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किं नु वक्ष्यामि राजानं धर्मज्ञं सत्यवादिनम् । सीताया जनकं पृष्टः कुशलं जनसंसदि ॥१०६॥
या मामनुगता मन्दं पित्रा प्रस्थापितं वनम् । सीता सत्पथमास्थाय क्व नु सा वर्तते प्रिया ॥१०७॥
तया विहीनः कृपणः कथं लक्ष्मण धारये । या मामनुगता राज्याद्भ्रष्टं विगतचेतसम् ॥१०८॥
तच्चारुश्चितपक्ष्माक्षं सुगन्धि शुभमव्रणम् । अपश्यतो मुखं तस्याः सीदतीव मनो मम ॥१०९॥
स्मितहास्यान्तरयुतं गुणवन्मधुरं हितम् । वैदेह्या वाक्यमतुलं कदा श्रोष्यामि लक्ष्मण ॥११०॥
प्राप्य दुःखं वने श्यामा सा मां मन्मथकर्शितम् । नष्टदुःखेव हृष्टेव साध्वी साध्वभ्यभाषत ॥१११॥
किं नु वक्ष्यामि कौसल्यामयोध्यायां नृपात्मज । क्व सा स्नुषेति पृच्छन्तीं कथं चातिमनस्विनीम् ॥११२॥
गच्छ लक्ष्मण पश्य त्वं भरतं भ्रातृवत्सलम् । न ह्यहं जीवितुं शक्तस्तामृते जनकात्मजाम् ॥११३॥
इति रामं महात्मानं विलपन्तमनाथवत् । उवाच लक्ष्मणो भ्राता वचनं युक्तमव्ययम् ॥११४॥
संस्तम्भ राम भद्रं ते मा शुचः पुरुषोत्तम । नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम् ॥११५॥
स्मृत्वा वियोगजं दुःखं त्यज स्नेहं प्रिये जने । अतिस्नेहपरिष्वङ्गाद्वर्तिरार्द्रापि दह्यते ॥११६॥
यदि गच्छति पातालं ततो ह्यधिकमेव वा । सर्वथा रावणस्तावन्न भविष्यति राघव ॥११७॥
प्रवृत्तिर्लभ्यतां तावत्तस्य पापस्य रक्षसः । ततो हास्यति वा सीतां निधनं वा गमिष्यति ॥११८॥

राजसभा में यदि सीता का कुशल प्रश्न पूछा जायेगा, तो सत्यवादी, धर्मात्मा राजा जनक को मैं क्या उत्तर दूंगा ॥ १०६ ॥ जिस सीता ने पिता के द्वारा वनवास देने पर मुझ अभागे का साथ धर्म समझ कर नहीं छोड़ा, वह प्राणप्रिया आज कहां है ? ॥ १०७ ॥ जिस जानकी ने राज्यभ्रष्ट उद्भ्रान्त चित्त वाले मुझ अभागे का साथ दिया, हे लक्ष्मण ! उस सीता के विना मन्दभाग्य मैं अपने प्राणों को अब कैसे धारण करूं ॥ १०८ ॥ कमल के समान नेत्रों वाले व्रणरहित सीता के उस कमनीय मुख मण्डल को देखे विना मेरी बुद्धि विक्षिप्त हो रही है ॥ १०९ ॥ हे लक्ष्मण ! मधुर हास युक्त नाना गुणों से परिपूर्ण जानकी के वचनों को अब कब सुन सकूंगा ॥ ११० ॥ वन में नाना प्रकार के कष्ट को प्राप्त होने वाली तरुणी सीता यदि कामजन्य विकारों से कर्शित मुझ को देख लेती, तो उसके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो जाते और स्वयं प्रसन्न होकर मुझ से प्रसन्नता पूर्वक भाषण करती ॥ १११ ॥ हे राजकुमार लक्ष्मण ! अयोध्या में माता कौसल्या के यह पूछने पर कि मनस्विनी मेरी पुत्रवधू सीता कहां है तथा किस प्रकार है, मैं क्या उत्तर दूंगा ॥ ११२ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम अयोध्या चले जाओ और भ्रातृवत्सल भाई भरत को देखो। मैं जानकी के विना अब जीवित नहीं रह सकता ॥ ११३ ॥ इस प्रकार महात्मा रामचन्द्र के अनाथवत् विलाप करते हुए उन के भाई लक्ष्मण विकार रहित युक्ति पूर्वक वचन बोले ॥ ११४ ॥ हे आर्य रामचन्द्र ! शोक को छोड़ दीजिये, इस समय धैर्य्य धारण कीजिये। आप जैसे निष्कलंक व्यक्ति की बुद्धि पूर्वक कामना कभी निष्फल नहीं जा सकती ॥ ११५ ॥ संयोग वियोगपूर्वक होता है, इस अटल सिद्धान्त को समझते हुए सीता वियोग जनित दुःख तथा उसके प्रति अति स्नेह को छोड़ दीजिये। अत्यन्त स्नेह से परिपूर्ण गीली बत्ती भी जल जाती है। (यहां स्नेह से दूसरा अर्थ तैल लिया जाता है) ॥ ११६ ॥ हे रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ! यदि रावण पाताल में चला जाय अथवा उस से भी अधिक दूर स्थान में भी चला जाय, तो वह अब बच नहीं सकता ॥ ११७ ॥ सब से प्रथम उस पापी रावण का अब पता लगाना चाहिये। तत्पश्चात् वह या तो सीता को देगा अन्यथा अपने प्राणों को गवांयेगा ॥ ११८ ॥ सीता के सहित रावण सुरक्षा के लिए यदि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदि याति दितेर्गर्भं रावणः सह सीतया । तत्राप्येनं हनिष्यामि न चेद्दास्यति मैथिलीम् ॥११९॥
स्वास्थ्यं भद्रं भजस्वार्य त्यज्यतां कृपणा मतिः । अर्थो हि नष्टकार्यार्थैर्नायत्नेनाधिगम्यते ॥१२०॥
उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम् । सोत्साहस्यास्ति लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम् ॥१२१॥
उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु । उत्साहमात्रमाश्रित्य प्रतिलप्स्याम जानकीम् ॥१२२॥
त्यज्यतां कामवृत्तत्वं शोकं संन्यस्य पृष्ठतः । महात्मानं कृतात्मानमात्मानं नावबुध्यसे ॥१२३॥
एवं संबोधितस्तत्र शोकोपहतचेतनः । न्यस्य शोकं च मोहं च ततो धैर्यमुपागमत् ॥१२४॥
सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिन्त्यपराक्रमः । रामः पम्पां सुरुचिरां रम्यां पारिप्लवद्रुमाम् ॥१२५॥

निरीक्षमाणः सहसा महात्मा सर्वं वनं निर्झरकन्दरांश्च ।
उद्विग्नचेताः सह लक्ष्मणेन विचार्य दुःखोपहतः प्रतस्थे ॥१२६॥
तं मत्तमातङ्गविलासगामी गच्छन्तमव्यग्रमना महात्मा ।
स लक्ष्मणो राघवमिष्टचेष्टो ररक्ष धर्मेण बलेन चैव ॥१२७॥
तावृश्यमूकस्य समीपचारी चरन् ददर्शाद्भुतदर्शनीयौ ।
शाखामृगाणामधिपस्तरस्वी वितत्रसे नैव चिचेष्ट किंचित् ॥१२८॥
स तौ महात्मा गजमन्दगामी शाखामृगस्तत्र चिरं चरन्तौ ।
दृष्ट्वा विषादं परमं जगाम चिन्तापरीतो भयभारमग्नः ॥१२९॥

अपनी माता के गर्भ में भी चला जाय (यद्यपि यह असम्भव है) तो भी मैं इस पातकी को अवश्य मारूंगा, यदि इसने सीता को न दिया तो ॥ ११९ ॥ हे आर्य रामचन्द्र ! आप स्वस्थ हो जाइये, इस कायरता को छोड़ दीजिये, धैर्य्य धारण कीजिये, क्योंकि उद्योग के अभाव में अर्थ की सिद्धि कदापि नहीं होती ॥ १२० ॥ हे आर्य रामचन्द्र ! उत्साह में सबसे अधिक बल है। उद्योगी पुरुष के लिये उत्साह से बढ़ कर कोई बल नहीं। उत्साह वाले पुरुष के लिये इस संसार में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है ॥ १२१ ॥ उत्साह वाले पुरुष किसी भी शुभ कर्म में घबड़ाते नहीं। केवल उत्साह का आश्रय ले कर हम लोग जानकी को अवश्य ही प्राप्त करेंगे ॥ १२२ ॥ काम जन्य इस दुर्बलता को आप हटाइये। सीता के वियोग जनित शोक को दूर कीजिये। अपने बड़प्पन तथा सफलता प्राप्त कराने वाली भावनाओं को आप इस समय भूल गये हैं ॥ १२३ ॥ शोकाक्रान्त रामचन्द्र ने लक्ष्मण के इस प्रकार समझाने पर शोक तथा मोह को छोड़ कर धैर्य्य धारण किया ॥ १२४ ॥ लक्ष्मण के समझाने पर व्यग्रता को छोड़ कर अचिन्त्य पराक्रम वाले रामचन्द्र वृक्षों से परिपूर्ण रमणीय उस पम्पा तटी से आगे बढ़ गये ॥ १२५ ॥ दुःख से आक्रान्त चित्त की उद्विग्नता होते हुए भी रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण के साथ बन, पर्वत, कन्दरा तथा झरनों को देखते हुए आगे चल पड़े ॥ १२६ ॥ मदमत्त गजराज के समान गति करने वाले तथा सर्वथा अनुकूल चेष्टा करने वाले निर्भीक महात्मा लक्ष्मण ने अग्र गमन करने वाले अपने भ्राता रामचन्द्र की बल तथा धैर्य के द्वारा रक्षा की ॥ १२७ ॥ उस ऋष्यमूक पर्वत के समीप निवास करने वाले वनवासियों के अधिपति सुग्रीव ने अत्यन्त दर्शनीय अतुल पराक्रम वाले रामलक्ष्मण दोनों भाइयों को घूमते हुए देखा। इनके दर्शन से वह अत्यन्त भयभीत हो गया तथा किंकर्त्तव्य विमूढ़ होता हुआ अपने भावी कार्यक्रम को भूल गया ॥ १२८ ॥ मदमत्त गजराज के समान गति करने वाले इन दोनों भाई रामलक्ष्मण को देख कर वनवासियों के राजा महात्मा सुग्रीव चिन्ता तथा भय से आक्रान्त होते हुए अत्यन्त विषाद को प्राप्त हो गये ॥ १२९ ॥ दुःखियों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तमाश्रमं पुण्यसुखं शरण्यं सदैव शाखामृगसेवितान्तम् ।
त्रस्ताश्च दृष्ट्वा हरयोऽभिजग्मुर्महौजसौ राघवलक्ष्मणौ तौ ॥१३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे रामविप्रलम्भावेशो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

सुग्रीवमन्त्रः

तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शङ्कितोऽभवत् ॥ १ ॥
उद्विग्नहृदयः सर्वा दिशः समवलोकयन् । न व्यतिष्ठत कस्मिंश्चिद्देशे वानरपुंगवः ॥ २ ॥
नैव चक्रे मनः स्थाने वीक्षमाणो महाबलौ । कपेः परमभीतस्य चित्तं व्यवससाद ह ॥ ३ ॥
चिन्तयित्वा स धर्मात्मा विमृश्य गुरुलाघवम् । सुग्रीवः परमोद्विग्नः सर्वैरनुचरैः सह ॥ ४ ॥
ततः स सचिवेभ्यस्तु सुग्रीवः प्लवगाधिपः । शशंस परमोद्विग्नः पश्यंस्तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ५ ॥
एतौ वनमिदं दुर्गं वालिप्रणिहितौ ध्रुवम् । छद्मना चीरवसनौ प्रचरन्ताविहागतौ ॥ ६ ॥

को शरण देने वाले रमणीय पुण्य उस मतङ्ग के आश्रम के समीप भ्रमण करने वाले राम-लक्ष्मण को देख कर उस वन में रहने वाले जो भी वनवासी वर्ग थे, वे भी अपने अपने स्थानों को छोड़ कर जहां तहां चले गये ॥ १३० ॥

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड के 'राम का वियोगावेश' विषयक प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

सुग्रीव से मन्त्रणा

उत्तम शस्त्रास्त्र धारण करने वाले महात्मा उन दोनों वीर भाई राम-लक्ष्मण को देख कर सुग्रीव अतिशंकित हो गये ॥ १ ॥ राम-लक्ष्मण के दर्शन के पश्चात् सुग्रीव अत्यन्त उद्विग्न हो गये, तथा सम्पूर्ण दिशाओं को भयावह देखने लगे। वे वनवासियों के सम्राट् किसी भी स्थान पर स्थिरता से न बैठ सके ॥ २ ॥ महाबली राम-लक्ष्मण को देखते हुए अत्यन्त भयभीत सुग्रीव का मन स्थिर न रह सका और वे अत्यन्त दुःखी हो गये ॥ ३ ॥ अपने सहायक सम्पूर्ण वनवासियों के साथ भय की लघुता-गुरुता पर विचार करते हुए सुग्रीव किसी परिणाम पर न पहुँच कर अत्यन्त उद्विग्न हुए ॥ ४ ॥ अत्यन्त भय से आक्रान्त वनवासियों के राजा सुग्रीव ने राम-लक्ष्मण को देखते हुए अपने मन्त्रियों से यह कहा ॥ ५ ॥ निश्चय ही ये बाली के भेजे हुए दोनों व्यक्ति इस दुर्गम वन में अपने वेश को छलपूर्वक छिपा कर वल्कल वसन में घूमते हुए यहां आये हैं ॥ ६ ॥ महाधनुर्धारी रामलक्ष्मण को देख कर सुग्रीव के सम्पूर्ण सचिव ऋश्यमूक की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततः सुग्रीवसचिवा दृष्ट्वा परमधन्विनौ । जग्मुर्गिरितटात्तस्मादन्यच्छिखरमुत्तमम् ॥ ७ ॥
ते क्षिप्रमधिगम्याथ यूथपा यूथपर्षभम् । हरयो वानरश्रेष्ठं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ८ ॥
एकमेकायनगताः प्लवमाना गिरेर्गिरिम् । प्रकम्पयन्तो वेगेन गिरीणां शिखराण्यपि ॥ ९ ॥
ततः शाखामृगाः सर्वे प्लवमाना महाबलाः । बभञ्जुश्च नगांस्तत्र पुष्पितान् दुर्गसंश्रितान् ॥१०॥
आप्लवन्तो हरिवराः सर्वतस्तं महागिरिम् । मृगमार्जारशार्दूलांस्त्रासयन्तो ययुस्तदा ॥११॥
ततः सुग्रीवसचिवाः पर्वतेन्द्रं समाश्रिताः । संगम्य कपिमुख्येन सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः ॥१२॥
ततस्तं भयसंविग्नं वालिकिल्बिषशङ्कितम् । उवाच हनुमान् वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः ॥१३॥
संभ्रमस्त्यज्यतामेष सर्वैर्वालिकृते महान् । मलयोऽयं गिरिवरो भयं नेहास्ति वालिनः ॥१४॥
यस्मादुद्विग्नचेतास्त्वं प्रद्रुतो हरिपुंगव । तं क्रूरदर्शनं क्रूरं नेह पश्यामि वालिनम् ॥१५॥
यस्मात्तव भयं सौम्य पूर्वजात्पापकर्मणः । स नेह वाली दुष्टात्मा न ते पश्याम्यहं भयम् ॥१६॥
अहो शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवंगम । लघुचित्ततयात्मानं न स्थापयसि यो मतौ ॥१७॥
बुद्धिविज्ञानसंपन्न इङ्गितैः सर्वमाचर । न ह्यबुद्धिं गतो राजा सर्वभूतानि शास्ति हि ॥१८॥
सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं हनूमतः । ततः शुभतरं वाक्यं हनूमन्तमुवाच ह ॥१९॥

उस पर्वत चोटी से सुग्रीव के साथ किसी और सुरक्षित चोटी पर चले गये ॥ ७ ॥ वे सुग्रीव के सभी सचिव तथा अंगरक्षक अन्य चोटी पर जा कर वनवासियों में श्रेष्ठ अपने राजा सुग्रीव को घेर कर बैठ गये ॥ ८ ॥ भय से आक्रान्त सुग्रीव के अंगरक्षक वे सभी वनचारी एक पर्वत-शिखर से दूसरे पर्वत शिखर पर भागते हुए पर्वतीय वृक्षों को कम्पायमान करने लगे ॥ ९ ॥ सुग्रीव के रक्षक उन सभी वनचारियों ने इधर उधर भागते हुए दुर्गम स्थानों में पुष्पित वृक्षों को तोड़ डाला ॥ १० ॥ वे वनवासिगण उस पर्वत पर रहने वाले मृग, बिलाव, सिंह, वनजन्तुओं को डराते हुए अपने राजा सुग्रीव के पास पहुंचे ॥ ११ ॥ सुग्रीव के वे मन्त्रिगण उस महान् पर्वत पर बैठे हुए राजा सुग्रीव के चारों ओर हाथ जोड़ कर खड़े हो गये ॥ १२ ॥ पश्चात् वाली के षड्यन्त्र से आशंकित तथा डरे हुए राजा सुग्रीव से वाणी विशारद हनुमान् इस प्रकार बोले ॥ १३ ॥ आप सभी लोगों को बाली के द्वारा आक्रमण होने का जो भय हो गया है, उसे दूर कर दीजिये। यह पर्वतों में श्रेष्ठ मलय गिरि है। वाली के द्वारा होने वाला यहां किसी प्रकार का भय नहीं है ॥ १४ ॥ हे वनवासियों में श्रेष्ठ राजन्! जिसके कारण आप का मन इतना उद्विग्न हो रहा है तथा इधर उधर भाग रहे हैं, उस क्रूर दर्शन-क्रूरकर्मा बाली को मैं यहां नहीं देख रहा हूं ॥ १५ ॥ हे सौम्य! पापकर्मा जिस अपने बड़े भाई बाली से आप को भय हो रहा है, वह बाली यहां कदापि नहीं आ सकता। इस लिये आप को यहां पर किसी प्रकार का भय नहीं ॥ १६ ॥ हे वनवासियों के राजा! भय से चल चित्तता के कारण आप वस्तुतः अपने वनवासिपन का क्षुद्र परिचय दे रहे हैं, जब कि इस अवस्था में धैर्य-पूर्वक स्थिर बुद्धि से विचार करना चाहिये ॥ १७ ॥ बुद्धि, विज्ञान से सम्पन्न आप को शत्रुओं की चेष्टाओं का अध्ययन करते हुए अपनी रक्षा का प्रयत्न करना चाहिये। बुद्धिहीन राजा अपनी प्रजा पर कभी भी शासन नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ हनुमान् के इस सारगर्भित शुभ वचन को सुन कर राजा सुग्रीव अत्यन्त शोभायमान शब्दों में हनुमान् से इस प्रकार बोले ॥ १९ ॥ विशाल भुजा वाले, विशाल नेत्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दीर्घबाहू विशालाक्षौ शरचापासिधारिणौ । कस्य न स्याद्भयं दृष्ट्वा ह्येतौ सुरसुतोपमौ ॥२०॥
वालिप्रणिहितावेतौ शङ्केऽहं पुरुषोत्तमौ । राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्र हि क्षमः ॥२१॥
अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छन्नचारिणः । विश्वस्तानामविश्वस्ता रन्ध्रेषु प्रहरन्ति हि ॥२२॥
कृत्येषु वाली मेधावी राजानो बहुदर्शनाः । भवन्ति परहन्तारस्ते ज्ञेयाः प्राकृतैर्नरैः ॥२३॥
तौ त्वया प्राकृतेनैव गत्वा ज्ञेयौ प्लवंगम । इङ्गितानां प्रकारैश्च रूपव्याभाषणेन च ॥२४॥
लक्षयस्व तयोर्भावं प्रहृष्टमनसौ यदि । विश्वासयन् प्रशंसाभिरिङ्गितैश्च पुनः पुनः ॥२५॥
ममैवाभिमुखं स्थित्वा पृच्छ त्वं हरिपुंगव । प्रयोजनं प्रवेशस्य वनस्यास्य धनुर्धरौ ॥२६॥
शुद्धात्मानौ यदि त्वेतौ जानीहि त्वं प्लवंगम । व्याभाषितैर्वा विज्ञेया स्यादुष्टादुष्टता तयोः ॥२७॥
इत्येवं कपिराजेन संदिष्टो मारुतात्मजः । चकार गमने बुद्धिं यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥

तथेति संपूज्य वचस्तु तस्य तत्कपेः सुभीतस्य दुरासदस्य च ।
महानुभावो हनुमान् ययौ तदा स यत्र रामोऽतिबलश्च लक्ष्मणः ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सुग्रीवमन्त्रो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

वाले, धनुष-बाण-कृपाण धारी, देव पुत्र के समान इन दोनों वीरों को देख कर किस को भय नहीं हो सकता है ॥ २० ॥ ये दोनों वीर वाली के ही भेजे हुए हैं, ऐसी मेरे मन में शंका हो रही है। क्योंकि राजाओं के अनेक प्रकार के मित्र होते हैं, इस लिये इन पर सहसा विश्वास करना अच्छा नहीं ॥ २१ ॥ छद्मवेश में घूमने वाले शत्रुओं को अवश्यमेव जानना चाहिये, क्योंकि छिपे हुए छली शत्रु विश्वासी बन कर पश्चात् प्रहार करते हैं ॥ २२ ॥ नरपति अनेक उपायों को काम में लाते हैं। बाली अपने कार्यों में अत्यन्त पटु है। स्वार्थी लोग स्वभावतः दूसरों पर आक्रमण करते हैं। इस लिये इनकी गतिविधि को अवश्य ही हम सबको जानना चाहिये ॥ २३ ॥ इस लिये हे वनवासी वीर ! सामान्य वेश में जा कर इनके हावभाव चेष्टा, आकृति तथा भाषण के द्वारा इन दोनों व्यक्तियों का पता लगाओ ॥ २४ ॥ उनके हावभाव चेष्टा को जानो। यदि वे प्रसन्नचित्त हैं तो मेरी प्रशंसा के द्वारा मेरे प्रति उनमें विश्वास उत्पन्न करो। इनमें इशारे से भी काम लो ॥ २५ ॥ हे वनवासियों में श्रेष्ठ हनुमान् !' मेरी तरफ़ मुख करके उन धनुर्धारी दोनों व्यक्तियों से इस वन में प्रवेश करने का प्रयोजन पूछो ॥ २६ ॥ ये दोनों व्यक्ति शुद्धात्मा या विकृत भाव वाले हैं, हे हनुमान् ! इसको तुम जानो। इनकी आकृति तथा भाषण के द्वारा उनकी दुष्टता-अदुष्टता को जानने की चेष्टा करो ॥ २७ ॥ इस प्रकार कपिराज सुग्रीव के संदेश देने के पश्चात् हनुमान् ने वहां जाने का विचार किया जहां रामलक्ष्मण उपस्थित थे ॥ २९ ॥ जैसा आपने कहा है, वैसा ही करूंगा, ऐसा आदर पूर्वक उस डरे हुए तपस्वी सुग्रीव का सम्मान करके महानुभाव हनुमान् वहां पर चल पड़े, जहां पर लक्ष्मण के साथ महाबली रामचन्द्र उपस्थित थे ॥ २९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड का 'सुग्रीव से मन्त्रणा' विषयक दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥ २ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

तृतीयः सर्गः

हनूमत्प्रेषणम्

वचो विज्ञाय हनुमान् सुग्रीवस्य महात्मनः । पर्वतादृश्यमूकात्तु पुप्लुवे यत्र राघवौ ॥ १ ॥
कपिरूपं परित्यज्य हनुमान् मारुतात्मजः । भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः ॥ २ ॥
ततः स हनुमान् वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया । विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च ॥ ३ ॥
आबभाषेऽथ तौ वीरौ यथावत्प्रशशंस च । संपूज्य विधिवद्वीरौ हनुमान् मारुतात्मजः ॥ ४ ॥
उवाच कामतो वाक्यं मृदु सत्यपराक्रमौ । राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ ॥ ५ ॥
देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ । त्रासयन्तौ मृगगणानन्यांश्च वनचारिणः ॥ ६ ॥
पम्पातीररुहान् वृक्षान् वीक्षमाणौ समन्ततः । इमां नदीं शुभजलां शोभयन्तौ तरस्विनौ ॥ ७ ॥
धैर्यवन्तौ सुवर्णाभौ कौ युवां चीरवाससौ । निःश्वसन्तौ वरभुजौ पीडयन्ताविमाः प्रजाः ॥ ८ ॥
सिंहविप्रेक्षितौ वीरौ सिंहातिबलविक्रमौ । शक्रचापनिभे चापे गृहीत्वा शत्रुसूदनौ ॥ ९ ॥
श्रीमन्तौ रूपसंपन्नौ वृषभश्रेष्ठविक्रमौ । हस्तिहस्तोपमभुजौ द्युतिमन्तौ नरर्षभौ ॥१०॥
प्रभया पर्वतेन्द्रोऽयं युवयोरवभासितः । राज्यार्हावमरप्रख्यौ कथं देशमिहागतौ ॥११॥

तृतीय सर्ग

हनुमान् का प्रेषण

महात्मा सुग्रीव के वाक्यों का आशय जान कर हनुमान् ऋश्यमूक पर्वत से चल पड़े जहां राम-लक्ष्मण थे ॥ १ ॥ पवन सुत हनुमान् ने अविश्वसनीय अपने वनवासी रूप को परिवर्त्तन कर तपस्वी भिक्षु के रूप को धारण कर लिया ॥ २ ॥ तत्पश्चात् हनुमान् रामलक्ष्मण के समीप जा कर और दोनों भाईयों को प्रणाम करके मनोहारी स्पष्ट वाक्यों के द्वारा ॥ ३ ॥ उन दोनों ही वीरों से वार्तालाप किया और वनवासी श्रेष्ठ हनुमान् ने आदर पूर्वक उनकी यथावत् प्रशंसा की ॥ ४ ॥ प्रशंसित व्रत वाले, सत्यपराक्रमी, देवतुल्य, राजर्षिवंशोत्पन्न तपस्वी राम-लक्ष्मण से हनुमान् स्वेच्छापूर्वक मृदु शब्दों में बोले ॥ ५ ॥ वनचारी मनुष्य तथा पशु-पक्षियों को भयभीत करते हुए उत्तम वर्ण वाले आप दोनों महानुभाव इस देश में कैसे पधारे ॥ ६ ॥ चारों ओर पम्पातट के इन वृक्षों को देखने वाले तथा इस शुभ जल वाली नदी को अपने संचरण से शोभायमान करते हुए तीव्र गति वाले ॥ ७ ॥ स्वर्ण के समान कान्ति वाले, धैर्यशाली, वल्कलवसन-धारी, विशाल भुजा वाले तथा दीर्घ श्वास की गति वाले, अपने दुःख से यहां की प्रजा को भी दुःखित करने वाले आप दोनों वीर कौन हैं ॥ ८ ॥ सिंह के समान दृष्टिपात करने वाले, महाबल पराक्रमी, इन्द्रधनुष के समान धनुष धारण करने वाले, शत्रुओं के मान भञ्जन करने वाले ॥ ९ ॥ वृषभ समान पराक्रमी, रूपलावण्य परिपूर्ण, गजशुण्ड के समान भुजा वाले, कान्तिमान्, नरश्रेष्ठ ॥ १० ॥ अपनी प्रभा से इस पर्वत को प्रकाशित करने वाले, राजपद के योग्य, देवतुल्य आप दोनों व्यक्ति इस देश में कैसे पधारे ॥ ११ ॥ कमल पत्र के समान नेत्र वाले, जटा मण्डलधारी, परस्पर समान आकृति वाले आप

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डलधारिणौ । अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकादिवागतौ ॥१२॥
यदृच्छयेव संप्राप्तौ चन्द्रसूर्यौ वसुंधराम् । विशालवक्षसौ वीरौ मानुषौ देवरूपिणौ ॥१३॥
सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गोवृषौ । आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः ॥१४॥
सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थं न विभूषिताः । उभौ योग्यावहं मन्ये रक्षितुं पृथिवीमिमाम् ॥१५॥
ससागरवनां कृत्स्नां विन्ध्यमेरुविभूषिताम् । इमे च धनुषी चित्रे श्लक्ष्णे चित्रानुलेपने ॥१६॥
प्रकाशेते यथेन्द्रस्य वज्रे हेमविभूषिते । संपूर्णा निशितैर्बाणैस्तूणाश्च शुभदर्शनाः ॥१७॥
जीवितान्तकरैर्घोरैः श्वसद्भिरिव पन्नगैः । महाप्रमाणौ विस्तीर्णौ तप्तहाटकभूषितौ ॥१८॥
खड्गावेतौ विराजेते निर्मुक्ताविव पन्नगौ । एवं मां परिभाषन्तं कस्माद्वै नाभिभाषथः ॥१९॥
सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद्वानरयूथपः । वीरो विनिकृतो भ्रात्रा जगद्भ्रमति दुःखितः ॥२०॥
प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना । राज्ञा वानरमुख्यानां हनूमान्नाम वानरः ॥२१॥
युवाभ्यां सह धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति । तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम् ॥२२॥
भिक्षुरूपप्रतिच्छन्नं सुग्रीवप्रियकाम्यया । ऋश्यमूकादिह प्राप्तं कामगं कामरूपिणम् ॥२३॥
एवमुक्त्वा तु हनुमांस्तौ वीरौ रामलक्ष्मणौ । वाक्यज्ञौ वाक्यकुशलः पुनर्नोवाच किंचन ॥२४॥

दोनों वीर कौन हैं। क्या आप देवलोक त्रिविष्टप् से तो नहीं आये हैं ? ॥ १२ ॥ स्वेच्छा पूर्वक सूर्य चन्द्र ही तो इस पृथ्वी पर नहीं उतर आये ? (अर्थात् आप का सौन्दर्य चन्द्र की कान्ति को भी म्लान कर रहा है)। विशाल वक्षःस्थल वाले साधारण मनुष्य के रूप में आप दोनों कोई देव तो नहीं हैं ॥ १३ ॥ सिंह के समान स्कन्ध वाले, महान् उत्साही, मदमत्त वृषभ के सदृश परिघ के समान गोल तथा विशाल भुजा वाले आप दोनों ही व्यक्ति प्रतीत हो रहे हैं ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण आभूषणों से सुभूषित करने योग्य आप के सुन्दर शरीर आभूषण रहित क्यों हैं। आप दोनों ही व्यक्ति इस सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा करने में समर्थ हैं, ऐसा मैं मानता हूं ॥ १५ ॥ सागर, वन तथा विन्ध्य और मेरु पर्वत से भूषित इस पृथ्वी की आप रक्षा कर सकते हैं। आप लोगों के ये दोनों धनुष नाना प्रकार के चित्रों से चित्रित तथा सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं ॥ १६ ॥ आप दोनों के धनुष स्वर्ण भूषित इन्द्रवज्र के समान प्रतीत हो रहे हैं। तीक्ष्ण बाणों से परिपूर्ण आप लोगों की तूणी (तरकश) अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रही है ॥ १७ ॥ आप लोगों के बाण जीवन का अन्त करने वाले भयंकर सर्प के समान प्रतीत हो रहे हैं। तपे हुए स्वर्ण से विभूषित ये विशाल ॥ १८ ॥ आप लोगों के खड्ग कैंचुल छोड़े हुए सर्प के समान प्रतीत हो रहे हैं। इस प्रकार इतनी देर तक भाषण करने वाले मुझ से आप क्यों नहीं बातचीत कर रहे हैं ॥ २० ॥ वनवासियों में श्रेष्ठ सुग्रीव नाम के कोई धर्मात्मा अपने भाई से अपमानित हो कर दुःखी होते हुए इस जगत् का भ्रमण कर रहे हैं ॥ २० ॥ वनवासियों के मुख्य राजा धर्मात्मा सुग्रीव के द्वारा भेजा हुआ मैं आप के पास आया हूं। मैं भी हनुमान् नाम का एक बनवासी हूं ॥ २१ ॥ वह धर्मात्मा सुग्रीव आप लोगों के साथ मैत्री चाहते हैं। मैं पवन का पुत्र एक वनवासी तथा राजा सुग्रीव का सचिव हूं, ऐसा आप समझें ॥ २२ ॥ सुग्रीव के प्रिय कार्य की सिद्धि के लिये मैं अपने आप को छिपा कर भिक्षु रूप धारण करके ऋश्यमूक पर्वत से यहां आया हूं। स्वेच्छा से मैं अपने रूप को परिवर्त्तन कर सकता हूं तथा इच्छानुसार ही यत्र तत्र गमन कर सकता हूं ॥ २३ ॥ वाक्य के जानने वाले हनुमान् वीर शिरोमणि रामलक्ष्मण से ऐसा कह कर मौन हो गये और आगे कुछ नहीं बोले ॥ २४ ॥ हनुमान् की इन बातों को सुन कर प्रसन्न वदन रामचन्द्र अपने समीप

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । प्रहृष्टवदनः श्रीमान् भ्रातरं पार्श्वतः स्थितम् ॥२५॥
सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । तमेव काङ्क्षमाणस्य ममान्तिकमुपागतः ॥२६॥
अभिभाषस्व सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम् । वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिंदम ॥२७॥
नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः । नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम् ॥२८॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् । बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥२९॥
न मुखे नेत्रयोर्वापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा । अन्येष्वपि च गात्रेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥३०॥
अविस्तरमसन्दिग्धमविलम्बितमद्रुतम् । उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमे स्वरे ॥३१॥
संस्कारक्रमसंपन्नामद्रुतामविलम्बिताम् । उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहारिणीम् ॥३२॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया । कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि ॥३३॥
एवंविधो यस्य दूतो न भवेत्पार्थिवस्य तु । सिध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ ॥३४॥
एवंगुणगणैर्युक्ता यस्य स्युः कार्यसाधकाः । तस्य सिध्यन्ति सर्वार्था दूतवाक्यप्रचोदिताः ॥३५॥
एवमुक्तस्तु सौमित्रिः सुग्रीवसचिवं कपिम् । अभ्यभाषत वाक्यज्ञो वाक्यज्ञं पवनात्मजम् ॥३६॥
विदिता नौ गुणा विद्वन् सुग्रीवस्य महात्मनः । तमेव चावां मार्गावः सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ॥३७॥
यथा ब्रवीषि हनुमन् सुग्रीववचनादिह । तत्तथा हि करिष्यावो वचनात्तव सत्तम ॥३८॥

में स्थित भाई लक्ष्मण से बोले ॥ २५ ॥ कपिराज महात्मा सुग्रीव के ये सचिव हैं और उन्हीं की इच्छा से प्रेरित हो कर ये मेरे समीप आये हैं ॥ २६ ॥ हे लक्ष्मण ! शत्रुओं के मान भंजन करने वाले वाक्य कोविद स्नेह की मूर्त्ति सुग्रीव के सचिव हनुमान् से मधुर वचनों के द्वारा वार्त्तालाप करें ॥ २७ ॥ ऋग्वेद के अध्ययन से अनभिज्ञ और यजुर्वेद का बोध जिसको नहीं है तथा जिसने सामवेद का अध्ययन नहीं किया है, वह व्यक्ति इस प्रकार परिष्कृत बातों को नहीं कह सकता ॥ २८ ॥ निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण का अनेक बार अध्ययन किया है क्योंकि इतने समय तक बोलने में इन्होंने कोई भी त्रुटि नहीं की है ॥ २९ ॥ इनके मुख, नेत्र, ललाट, भ्रू पंक्ति तथा अन्य अंगों द्वारा भी आभ्यन्तरीय कोई दोष नहीं दिखाई दे रहा है ॥ ३० ॥ इन्होंने अपने विचारों को सन्देह रहित अति संक्षेप से कहा है, निस्संकोच तथा सरल भाव से व्यक्त किया है। न अति उच्च, न अति निम्न किन्तु बोलने में मध्यम स्वर का अवलम्बन किया है ॥ ३१ ॥ संस्कारसम्पन्न, शास्त्रीय पद्धति से उच्चारण की हुई इनकी कल्याणी वाणी हृदय को हर्षित कर रही है ॥ ३२ ॥ उर, कण्ठ तथा मूर्द्धा से सम्पृक्त इनकी इन विचित्र रमणीय बातों से किसका चित्त आकर्षित नहीं हो सकता। मारने के लिये खड्ग ले कर उद्यत शत्रु को भी इस वाणी के सामने नतमस्तक होना पड़ेगा ॥ ३३ ॥ हे निष्पाप लक्ष्मण ! जिस पृथ्वी पति राजा के पास इस प्रकार के दूत न हों, उसकी मनोरथ की सिद्धि भूत कार्य की सफलता कैसे सिद्ध हो सकती है ॥३४॥ इन दिव्य गुणों से परिपूर्ण कार्य के साधन करने वाले जिसके पास दूत हों, उसके सम्पूर्ण कार्य दूत के वाक्यों से ही सिद्ध हो जाया करते हैं ॥३५॥ रामचन्द्र के ऐसा कहने पर बोलने में श्रेष्ठ वाग्विशारद लक्ष्मण भाषणपटु सुग्रीव के सचिव पवनपुत्र हनुमान् से इस प्रकार बोले ॥ ३६ ॥ हे विद्वन् ! महात्मा सुग्रीव के गुणों से हम लोग भी परिचित हैं। वनवासियों के सम्राट् उसी सुग्रीव को हम लोग खोज रहे हैं ॥ ३७ ॥ हे हनुमान् ! सुग्रीव के कथनानुसार जिस प्रकार आप कह रहे हैं, (अर्थात् सुग्रीव हम लोगों की मैत्री चाहते हैं) हम लोग भी सुग्रीव से मैत्री करना चाहते हैं (अर्थात् आप के वचन का हम आदर करेंगे) ॥ ३८ ॥ हनुमान् लक्ष्मण की परिष्कृत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्तस्य वाक्यं निपुणं निशम्य प्रहृष्टरूपः पवनात्मजः कपिः ।
मनः समाधाय जयोपपत्तौ सख्यं तदा कर्तुमियेष ताभ्याम् ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे हनूमत्प्रेषणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

सुग्रीवसमीपगमनम्

ततः प्रहृष्टो हनुमान् कृत्यवानिति तद्वचः । श्रुत्वा मधुरभावं च सुग्रीवं मनसा गतः ॥ १ ॥
भव्यो राज्यागमस्तस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । यदयं कृत्यवान् प्राप्तः कृत्यं चैतदुपागतम् ॥ २ ॥
ततः परमसंहृष्टो हनुमान् प्लवगर्षभः । प्रत्युवाच ततो वाक्यं रामं वाक्यविशारदम् ॥ ३ ॥
किमर्थं त्वं वनं घोरं पम्पाकाननमण्डितम् । आगतः सानुजो दुर्गं नानाव्यालमृगायुतम् ॥ ४ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणो रामचोदितः । आचचक्षे महात्मानं रामं दशरथात्मजम् ॥ ५ ॥
राजा दशरथो नाम द्युतिमान् धर्मवत्सलः । चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मेण नित्यमेवाभ्यपालयत् ॥ ६ ॥

तथा हृदयग्राही बातों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। सुग्रीव की सफलता रूप जयसिद्धि पर पूर्ण विश्वास कर के राम लक्ष्मण के साथ मैत्री करने का उन्होंने निश्चय कर लिया ॥ ३९ ॥

इस प्रकार बाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड का 'हनुमान् को प्रेषण' विषयक तीसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

चौथा सर्ग

सुग्रीव के समीप जाना

अत्यन्त प्रसन्न चित्त हनुमान् ने लक्ष्मण की मधुरभावना पूर्ण इस बात को सुन कर (अर्थात् हम लोग भी सुग्रीव की खोज कर रहे हैं) सुग्रीव की सफलता में अब जिस को पूर्ण विश्वास हो गया है सुग्रीव के प्रति ध्यान किया ॥ १ ॥ महात्मा सुग्रीव की राज्यप्राप्ति अब ध्रुव निश्चित हो गई, क्यों कि कुछ कार्य से प्रेरित हो कर ही ये लोग यहाँ आये हैं और वह कार्य सुग्रीव द्वारा ही साध्य है ॥ २ ॥ अत्यन्त प्रसन्नचित्त वनवासियों में श्रेष्ठ हनुमान् जी वाणीविशारद रामचन्द्र से इस प्रकार बोले ॥ ३ ॥ पम्पा के रमणीय वृक्षों से सुभूषित नाना प्रकार के व्याघ्र सर्पों से युक्त अत्यन्त दुर्गमनीय इस घोर वन में अपने भाई के साथ आप किस प्रयोजन से आये ॥ ४ ॥ हनुमान् की इन बातों को सुन कर रामचन्द्र से प्रेरित लक्ष्मण ने दशरथसुत महात्मा रामचन्द्र का परिचय देना आरम्भ किया ॥ ५ ॥ ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र चारों वर्णों का धर्मानुकूल पालन करने वाले, धर्मप्रेमी, प्रतिभाशाली राजा दशरथ नाम के प्रसिद्ध व्यक्ति हैं ॥ ६ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न द्वेष्टा विद्यते तस्य न च स द्वेष्टि कंचन । स च सर्वेषु भूतेषु पितामह इवापरः ॥ ७ ॥
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः । तस्यायं पूर्वजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥ ८ ॥
शरण्यः सर्वभूतानां पितुर्निर्देशपारगः । वीरो दशरथस्यायं पुत्राणां गुणवत्तमः ॥ ९ ॥
राजलक्षणसंपन्नः संयुक्तो राजसंपदा । राज्याद्भ्रष्टो वने वस्तुं मया सार्धमिहागतः ॥ १० ॥
भार्यया च महातेजाः सीतयानुगतो वशी । दिनक्षये महातेजाः प्रभयेव दिवाकरः ॥ ११ ॥
अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः । कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः ॥ १२ ॥
सुखार्हस्य महार्हस्य सर्वभूतहितात्मनः । ऐश्वर्येण च हीनस्य वनवासाश्रितस्य च ॥ १३ ॥
रक्षसापहृता भार्या रहिते कामरूपिणा । तच्च न ज्ञायते रक्षः पत्नी येनास्य सा हृता ॥ १४ ॥
दनुनाम दितेः पुत्रः शापाद्राक्षसतां गतः । आख्यातस्तेन सुग्रीवः समर्थो वानरर्षभः ॥ १५ ॥
स ज्ञास्यति महावीर्यस्तव भार्यापहारिणम् । एवमुक्त्वा दनुः स्वर्गं भ्राजमानो गतः सुखम् ॥ १६ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः । अहं चैव हि रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ ॥ १७ ॥
एष दत्त्वा च वित्तानि प्राप्य चानुत्तमं यशः । लोकनाथः पुरा भूत्वा सुग्रीवं नाथमिच्छति ॥ १८ ॥
सीता यस्य स्नुषा ह्यासीच्छरण्यो धर्मवत्सलः । तस्य पुत्रः शरण्यश्च सुग्रीवं शरणं गतः ॥ १९ ॥
सर्वलोकस्य धर्मात्मा शरण्यः शरणं पुरा । गुरुर्मे राघवः सोऽयं सुग्रीवं शरणं गतः ॥ २० ॥

उनका न कोई द्वेषी है और न वे स्वयं किसी से द्वेष करते हैं। वे सम्पूर्ण प्राणियों में प्रजापति पितामह के समान श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥ ७ ॥ जिन्होंने अग्निष्टोम आदि विपुल दक्षिणा वाले यज्ञों का अनुष्ठान किया है, उसी महात्मा के ये प्रशंसनीय पुत्र हैं, जिनका प्रसिद्ध नाम रामचन्द्र है ॥ ८ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों को शरण देने वाले, पिता के आज्ञाकारी, ये रामचन्द्र राजा दशरथ के सब पुत्रों में गुणों से तथा आयु से ज्येष्ठ हैं ॥ ९ ॥ राजलक्षण से परिपूर्ण तथा राजकीय सम्पत्ति से युक्त ये राज्य को न प्राप्त कर वन में वास करने के लिये मेरे साथ यहाँ वन में आये ॥ १० ॥ पाणिगृहीत आर्या सीता ने भी जितेन्द्रिय महायशस्वी रामचन्द्र के साथ उसी प्रकार अनुगमन किया, जिस प्रकार सूर्यास्त के समय सूर्य की प्रभा सूर्य का अनुगमन करती है ॥११॥ मैं इनका छोटा भाई हूं। इन की कृतज्ञता तथा बहुमुखी जानकारी आदि गुण के कारण मैं इनका दास हूं। मेरा नाम लक्ष्मण है ॥१२॥ सम्पूर्ण सुख के अधिकारी, सर्वपूज्य, सर्व हितैषी, ऐश्वर्यहीन वनवासी रामचन्द्र की ॥ १३ धर्मपत्नी को इनकी अनुपस्थिति में कामरूपधारी राक्षस ने हरण कर लिया है, किन्तु जिसने इनकी धर्मपत्नी का हरण किया है उस राक्षस को हम लोग अब तक नहीं जान सके ॥ १४ ॥ दिति का पुत्र दनु शाप के कारण जो मनुष्य होता हुआ भी राक्षस हो गया था, उसी ने वनवासियों के राजा सुग्रीव का परिचय दिया कि वे ही इस कार्य के लिए समर्थ हैं ॥१५॥ महापराक्रमी सुग्रीव आपकी भार्या के हरण करने वाले को बता सकेंगे, ऐसा कहकर दनु शरीर को छोड़कर प्रकाशमान होता हुआ दिवंगत हो गया ॥ १६ ॥ आप के पूछने पर जो यथार्थ बातें थी, उन सबको मैंने सुना दिया । मैं तथा मेरे भ्राता रामचन्द्र दोनों इस सुग्रीव की शरण में आये हुए है ॥ १७ ॥ इन्हों ने बहुत प्रकार के धन का दान दिया। उत्तम यश को प्राप्त करके और पूर्व लोकपति पद को प्राप्त करके इस समय सुग्रीव की शरण में जाना चाहते हैं ॥ १९ ॥ सीता जिस की पुत्रवधू है तथा जो धर्म प्रेमी शरणार्थियों को शरण देते थे, उन्हीं शरण दाता राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र आज सुग्रीव की शरण में आये हुए हैं ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों के शरणदाता धर्मात्मा रामचन्द्र ने पहले शरणागत वत्सल ख्याति प्राप्त किया था, वे ही मेरे ज्येष्ठ भ्राता रामचन्द्र आज सुग्रीव की शरण में आये हैं ॥ २० ॥ जिसकी कृपा से यह सम्पूर्ण प्रजा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यस्य प्रसादे सततं प्रसीदेयुरिमाः प्रजाः । स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकाङ्क्षते ॥२१॥
येन सर्वगुणोपेताः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः । मानिताः सततं राज्ञा सदा दशरथेन वै ॥२२॥
तस्यायं पूर्वजः पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । सुग्रीवं वानरेन्द्रं तु रामः शरणमागतः ॥२३॥
शोकाभिभूते रामे तु शोकार्ते शरणं गते । कर्तुमर्हति सुग्रीवः प्रसादं हरियूथपः ॥२४॥
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं करुणं साश्रुलोचनम् । हनुमान् प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥२५॥
ईदृशा बुद्धिसंपन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः । द्रष्टव्या वानरेन्द्रेण दिष्ट्या दर्शनमागताः ॥२६॥
स हि राज्यात्परिभ्रष्टः कृतवैरश्च वालिना । हृतदारो वने त्यक्तो भ्रात्रा विनिकृतो भृशम् ॥२७॥
करिष्यति स साहाय्यं युवयोर्भास्करात्मजः । सुग्रीवः सह चास्माभिः सीतायाः परिमार्गणे ॥२८॥
इत्येवमुक्त्वा हनुमाञ्श्लक्ष्णं मधुरया गिरा । बभाषे साधु गच्छेम सुग्रीवमिति राघवम् ॥२९॥
एवं ब्रुवाणं धर्मात्मा हनुमन्तं स लक्ष्मणः । प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं प्रोवाच राघवम् ॥३०॥
कपिः कथयते हृष्टो यथायं मारुतात्मजः । कृत्यवान् सोऽपि संप्राप्तः कृतकृत्योऽसि राघव ॥३१॥
प्रसन्नमुखवर्णश्च व्यक्तं हृष्टश्च भाषते । नानृतं वक्ष्यते धीरो हनुमान् मारुतात्मजः ॥३२॥
ततः स तु महाप्राज्ञो हनुमान् मारुतात्मजः । जगामादाय तौ वीरौ हरिराजाय राघवौ ॥३३॥
भिक्षुरूपं परित्यज्य वानरं रूपमास्थितः । पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपिकुञ्जरः ॥३४॥

सदा प्रसन्न रहा करती थी, आज वही मर्यादा पुरुषत्तोम रामचन्द्र वनवासियों के राजा सुग्रीव की कृपा चाहते हैं ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण गुणों से युक्त राजाओं ने पृथ्वी पर जिस राजा दशरथ का सदा सम्मान किया था, उसके त्रिलोकी प्रसिद्ध ज्येष्ठ पुत्र ये रामचन्द्र वनवासी राजा सुग्रीव के शरण में आये हैं ॥ २२-२३ ॥ शोकाक्रान्त शोकार्त्त रामचन्द्र के शरणागत होने पर सचिव सहित सुग्रीव को उन पर कृपा करनी चाहिये ॥ २४ ॥ अश्रुपूर्ण करुणामय लक्ष्मण के इस प्रकार निवेदन करने पर वाणीविशारद हनुमान् उन से इस प्रकार बोले ॥ २५ ॥ इस प्रकार बुद्धिमान् क्रोधरहित जितेन्द्रिय व्यक्ति की आवश्यकता राजा सुग्रीव को थी, सौभाग्य से वे स्वयं ही उनके समीप उपस्थित हो गये ॥ २६ ॥ वे सुग्रीव भी इस समय राज्यच्युत हो रहे हैं। बाली के साथ उनकी शत्रुता हो गई है। उनकी भी स्त्री छीन ली गई है, इस लिये राजा सुग्रीव भी शत्रुरूप अपने भाई से त्रस्त हो कर इधर उधर भटक रहे हैं ॥ २७ ॥ सूर्यतनय राजा सुग्रीव हम लोगों को साथ ले कर सीता की खोज करने में आप लोगों की सहायता अवश्य करेंगे। ॥ २८ ॥ मनोहारी स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार हनुमान् बातें करके रामचन्द्र से बोले ठीक है, अब हम लोग सुग्रीव के पास चलें ॥ २९ ॥ हनुमान् के ऐसा कहने पर धर्मात्मा लक्ष्मण ने उन का यथायोग्य सत्कार किया और अपने भाई रामचन्द्र से इस प्रकार बोले ॥ ३० ॥ प्रसन्न हो कर वनवासी पवनसुत हनुमान् जिस प्रकार की बातें कर रहे हैं इस से मालूम पड़ता है कि इस समय सुग्रीव को भी हम लोगों की आवश्यकता है। इसलिये हे रामचन्द्र ! आप सफल मनोरथ हैं ॥ ३१ ॥ हनुमान् की मुखाकृति प्रसन्न हैं तथा प्रसन्नता पूर्वक ये स्पष्ट अपना विचार प्रकट कर रहे हैं, ऐसी अवस्था में वीर पवनसुत हनुमान् असत्य नहीं बोल सकते ॥ ३२ ॥ पश्चात् बुद्धिविशारद पवनसुत हनुमान् रघुकुल शिरोमणि दोनों वीर राम लक्ष्मण को ले कर राजा सुग्रीव के समीप गये ॥ ३३ ॥ बनावटी भिक्षु रूप को त्याग कर अपने सहज वनवासियों के रूप में वीर हनुमान् दोनों भाइयों को अपने कन्धे पर बैठा कर चल पड़े ॥ ३४ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स तु विपुलयशाः कपिप्रवीरः पवनसुतः कृतकृत्यवत्प्रहृष्टः ।
गिरिवरमुरुविक्रमः प्रयातः सुशुभमतिः सह रामलक्ष्मणाभ्याम् ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सुग्रीवसमीपगमनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

सुग्रीवसख्यम्

ऋश्यमूकात्तु हनुमान् गत्वा तं मलयं गिरिम् । आचचक्षे तदा वीरौ कपिराजाय राघवौ ॥ १ ॥
अयं रामो महाप्राज्ञः संप्राप्तो दृढविक्रमः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामोऽयं सत्यविक्रमः ॥ २ ॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातो रामो दशरथात्मजः । धर्मे च निरतश्चैव पितुर्निर्देशपालकः ॥ ३ ॥
राजसूयाश्वमेधैश्च वह्निर्येनाभितर्पितः । दक्षिणाश्च तथोत्सृष्टा गावः शतसहस्रशः ॥ ४ ॥
तपसा सत्यवाक्येन वसुधा येन पालिता । स्त्रीहेतोस्तस्य पुत्रोऽयं रामोऽरण्यं समागतः ॥ ५ ॥
तस्यास्य वसतोऽरण्ये नियतस्य महात्मनः । रावणेन हृता भार्या स त्वां शरणमागतः ॥ ६ ॥

महायशस्वी वनवासी वीर पवनसुत हनुमान् अपने प्रयत्न में सफल होने पर अत्यन्त प्रसन्न हो गये तथा विक्रमशाली सुविचार वाले वे वनवासी वीर रामलक्ष्मण के साथ ऋश्यमूक पर्वत को चल पड़े ॥ ३५ ॥

इस प्रकार वाल्माकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड का 'सुग्रीव के समीप जाना' विषयक चौथा सर्ग समाप्त हुआ ॥४ ॥

पांचवां सर्ग

सुग्रीव के साथ राम की मित्रता

रामलक्ष्मण को ऋश्यमूक पर्वत छोड़ कर हनुमान् ने ऋश्यमूक पर्वत से मलय गिरि पर जा कर राजा सुग्रीव को वीर शिरोमणि रामलक्ष्मण का परिचय दिया ॥ १ ॥ सत्यपराक्रमी, स्थिरकर्मकारी, महाबुद्धिमान् ये रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण के साथ वन में आये हुए हैं ॥ २ ॥ सम्राट् राजा दशरथ के पुत्र, इक्ष्वाकु कुल में रामचन्द्र का जन्म हुआ है । पितृभक्त रामचन्द्र पिता की आज्ञानुकूल धर्म पालनार्थ वन में आये हैं ॥३॥ राजसूय तथा अश्वमेध आदि महायज्ञों के द्वारा जिन्होंने अग्नि देव को तृप्त किया है और यज्ञिय दक्षिण के रूप में जिन्होंने हजारों-लाखों गौएं दान दी है ॥ ४ ॥ तप तथा सत्यव्रत के द्वारा जिन्हों ने सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन किया है, उन्हीं सम्राट् दशरथ के राजकुमार रामचन्द्र स्त्री के कारण वन में आये हैं ॥ ५ ॥ संयम पूर्वक वन में वास करने वाले महात्मा रामचन्द्र की पत्नी को रावण ने हरण कर लिया, अतः रामचन्द्र आप की शरण में आये हुए हैं ॥ ६ ॥ आप के साथ मैत्री की कामना से दोनों भाई रामलक्ष्मण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भवता सख्यकामौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । प्रतिगृह्यार्चयस्वैतौ पूजनीयतमावुभौ ॥ ७ ॥
श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं सुग्रीवो हृष्टमानसः । दर्शनीयतमो भूत्वा प्रीत्या प्रोवाच राघवम् ॥ ८ ॥
भवान् धर्मविनीतश्च विक्रान्तः सर्ववत्सलः । आख्याता वायुपुत्रेण तत्त्वतो मे भवद्गुणाः ॥ ९ ॥
तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमः प्रभो । यत्त्वमिच्छसि सौहार्दं वानरेण मया सह ॥१०॥
रोचते यदि वा सख्यं बाहुरेष प्रसारितः । गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा बध्यतां ध्रुवा ॥११॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवेण सुभाषितम् । स प्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना ॥१२॥
हृद्यं सौहृदमालम्ब्य पर्यष्वजत पीडितम् । ततो हनुमान् संत्यज्य भिक्षुरूपमरिंदमः ॥१३॥
काष्ठयोः स्वेन रूपेण जनयामास पावकम् । दीप्यमानं ततो वह्निं पुष्पैरभ्यर्च्य सत्कृतम् ॥१४॥
तयोर्मध्येऽथ सुप्रीतो निदधे सुसमाहितः । ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम् ॥१५॥
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ । ततः सुप्रीतमनसौ तावुभौ हरिराघवौ ॥१६॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमुपजग्मतुः । त्वं वयस्योऽसि मे हृद्यो ह्येकं दुःखं सुखं च नौ ॥१७॥
सुग्रीवो राघवं वाक्यमित्युवाच प्रहृष्टवत् । ततः सपर्णबहुलां छित्त्वा शाखां सुपुष्पिताम् ॥१८॥
सालस्यास्तीर्य सुग्रीवो निषसाद सराघवः । लक्ष्मणायाथ संहृष्टो हनुमान् प्लवगर्षभः ॥१९॥
शाखां चन्दनवृक्षस्य ददौ परमपुष्पिताम् । ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥२०॥

आये हुए हैं इन के समीप चल कर इन पूजनीयों की आप पूजा कीजिये ॥ ७ ॥ हनुमान् की बातों को सुन कर वनवासी सम्राट् राजा सुग्रीव अति दर्शनीय वेश भूषा में रामचन्द्र के समीप जा कर प्रेमपूर्वक बोले ॥ ८ ॥ आप धर्मात्मा, नम्रस्वभाव वाले वीर तथा सर्वप्रिय हैं। आप के इन अनुपम गुणों को हनुमान् ने मुझसे कहा है ॥ ९ ॥ जो आप मुझ जैसे साधारण वनवासी के साथ मैत्री करना चाहते हैं, उस से मेरा सत्कार होता है तथा हे प्रभो! उससे मेरा ही लाभ होता है ॥ १० ॥ यदि मेरी मैत्री आप चाहते हैं उस के लिये मेरा हाथ फैला हुआ है। अपने हाथों से मेरे इस बढ़े हुए हाथ को पकड़ कर ध्रुव मैत्री का परिचय दीजिये ॥ ११ ॥ राजा सुग्रीव की इन मनोहारी बातों को सुनकर रामचन्द्र ने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथों से उनके हाथों को पकड़ लिया ॥ १२ ॥ पश्चात् राजा सुग्रीव ने अपने इष्ट मित्र रामचन्द्र का हार्दिक आलिंगन किया। राम-सुग्रीव मैत्री हो जाने के पश्चात् शत्रुतापी हनुमान् ने कृत्रिम भिक्षु रूप को छोड़कर ॥ १३ ॥ अपने स्वाभाविक रूप में दो काष्ठों को रगड़ कर अग्नि उत्पन्न की। प्रज्वलित अग्नि को पुष्पादि से अलंकृत किया ॥ १४ ॥ उस प्रज्वलित अग्नि को प्रसन्नचित्त हनुमान् ने सावधानी से राम-सुग्रीव के बीच स्थापित किया। स्थापित की हुई अग्नि की राम और सुग्रीव ने प्रदक्षिणा की ॥ १५ ॥ इस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र तथा राजा सुग्रीव परस्पर दृढ मित्र हो गये। मैत्री होने के पश्चात् सुग्रीव तथा रामचन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ १६ ॥ परस्पर एक दूसरे को देखते हुए वे तृप्त नहीं होते थे। आप मेरे अभिन्नहृदय मित्र हैं, हम लोगों का सुख-दुःख समान है। ॥ १७ ॥ प्रसन्नता पूर्वक राजा सुग्रीव ने रामचन्द्र से इस प्रकार कहा। तत्पश्चात् फूल-पत्तों से परिपूर्ण एक साल वृक्ष की शाखा को तोड़कर ॥ १८ ॥ तथा उसको बिछा कर रामचन्द्र तथा सुग्रीव उस पर बैठ गये। प्रसन्नचित्त पवनसुत हनुमान् ने ॥ १९ ॥ पुष्पित चन्दन शाखा को तोड़कर लक्ष्मण के लिये दी। तत्पश्चात् प्रसन्न होते हुए सुग्रीव मधुर तथा स्पष्ट शब्दों में ॥ २० ॥ रामचन्द्र से यह कहा। उस समय हर्षातिरेक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्युवाच तदा रामं हर्षव्याकुललोचनः । अहं विनिकृतो राम चरामीह भयार्दितः ॥२१॥
हृतभार्यो वने त्रस्तो दुर्गमे तदुपाश्रितः । सोऽहं त्रस्तो वने भीतो वसाम्युद्भ्रान्तचेतनः ॥२२॥
वालिना निकृतो भ्रात्रा कृतवैरश्च राघव.। वालिनो मे महाभाग भयार्तस्याभयं कुरु ॥२३॥
कर्तुमर्हसि काकुत्स्थ भयं मे न भवेद्यथा । एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः ॥२४॥
प्रत्यभाषत काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव । उपकारफलं मित्रं विदितं मे महाकपे ॥२५॥
वालिनं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम् । अमोघाः सूर्यसंकाशा ममैते निशिताः शरा ॥२६॥
तस्मिन् वालिनि दुर्वृत्ते निपतिष्यन्ति वेगिताः । कङ्कपत्रप्रतिच्छन्ना महेन्द्राशनिसंनिभाः ॥२७॥
तीक्ष्णाग्रा ऋजुपर्वाणः सरोषा भुजगा इव । तमद्य वालिनं पश्य क्रूरैराशीविषोपमैः ॥२८॥
शरैर्विनिहतं भूमौ विकीर्णमिव पर्वतम् । स तु तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्यात्मनो हितम् ॥२९॥
सुग्रीवः परमप्रीतः सुमहद्वाक्यमब्रवीत् ॥

तव प्रसादेन नृसिंह राघव प्रियां च राज्यं च समाप्नुयामहम् ।
तथा कुरु त्वं नरदेव वैरिणं यथा न हिंस्यात्स पुनर्ममाग्रजम् ॥ ३० ॥
सीताकपीन्द्रक्षणदाचराणां राजीवहेमज्वलनोपमानि ।
सुग्रीवरामप्रणयप्रसङ्गे वामानि नेत्राणि समं स्फुरन्ति ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे 'सुग्रीवसख्यं' नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

से उनकी आँखें ढँपी हुई थीं। हे रामचन्द्र ! मैं इस समय निर्वासित रूप में भयभीत इधर उधर वन में घूम रहा हूँ ॥ २१ ॥ मेरी धर्मपत्नी छीन ली गई है। भयभीत मैंने इस दुर्गम वन का आश्रय लिया है। वन में आने पर भी भय के कारण मैं सदा उद्विग्न रहता हूँ ॥ २२ ॥ अपने भाई बाली के द्वारा मैं निर्वासित हुआ हूँ। हे रामचन्द्र ! वह मुझसे स्थिर शत्रुता रखता है। हे महाभाग्यशाली रामचन्द्र ! बाली के भय से आतंकित मेरी आप रक्षा करें ॥ २३ ॥ हे काकुत्स्थ रामचन्द्र ! आप वह उपाय कीजिये जिससे मैं भय तथा आतंक से मुक्त हो जाऊँ। सुग्रीव के ऐसा कहने पर तेजस्वी, धर्मवत्सल, धर्मात्मा ॥ २४ ॥ रामचन्द्र हँसते हुए सुग्रीव से बोले—हे मित्र ! उपकार का फल क्या होता है, इसको मैं अच्छी तरह जानता हूँ ॥ २५ ॥ तुम्हारी स्त्री का हरण करने वाले उस पतित बाली का मैं अवश्य ही वध करूँगा। सूर्य के समान देदीप्यमान ये मेरे तीक्ष्ण बाण अमोघ हैं अर्थात् ये कभी निष्फल नहीं जा सकते ॥ २६ ॥ इन्द्र के वज्र के समान ये कंकपत्र से बँधे हुए मेरे द्रुतगामी बाण उस सदाचार हीन बाली पर अवश्य ही गिरेंगे ॥ २७ ॥ तीक्ष्णाग्र भाग वाले मेरे ये सीधे बाण क्रोधाविष्ट सर्प की तरह हैं। सर्प के समान इन तीक्ष्ण बाणों से आज उस बाली को छिन्न-भिन्न पर्वत के समान भूमि पर मरे हुए तुम देखो। महात्मा रामचन्द्र की हित भरी इन बातों को सुनकर सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक इस प्रकार बोले ॥ २८-२९ ॥ हे वीर नरकेसरी रामचन्द्र ! आपकी कृपा से अपनी खोई हुई पत्नी तथा समृद्धराज्य को प्राप्त करूँगा। हे नरदेव ! शत्रु के समान मेरे भाई बाली को आप ऐसा कर देवें जिसमें वह मेरे प्रति हिंसा वृत्ति को छोड़ देवें ॥ ३० ॥ जानकी, सुग्रीव तथा राक्षसों के क्रमशः कमल, काञ्चन, अग्नि के समान उपमा वाले वाम नेत्र राम-सुग्रीव की मैत्री के समय फड़कने लगे ॥ ३१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'सुग्रीव के साथ मित्रता' विषयक पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

षष्ठः सर्गः

भूषणप्रत्यभिज्ञानम्

पुनरेवाब्रवीत्प्रीतः सुग्रीवो रघुनन्दनम् । अयमाख्याति मे राम सचिवो मन्त्रिसत्तमः ॥ १ ॥
हनुमान् यन्निमित्तं त्वं निर्जनं वनमागतः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वसतश्च वने तव ॥ २ ॥
रक्षसापहृता भार्या मैथिली जनकात्मजा । त्वया वियुक्ता रुदती लक्ष्मणेन च धीमता ॥ ३ ॥
अन्तरप्रेप्सुना तेन हत्वा गृध्रं जटायुषम् । भार्यावियोगजं दुःखमचिरात्त्वं विमोक्ष्यसे ॥ ४ ॥
अहं तामानयिष्यामि नष्टां वेदश्रुतिं यथा । रसातले वा वर्तन्तीं वर्तन्तीं वा नभःस्थले ॥ ५ ॥
अहमानीय दास्यामि तव भार्यामरिंदम । इदं तथ्यं मम वचस्त्वमवेहि च राघव ॥ ६ ॥
न शक्या सा जरयितुमपि सेन्द्रैः सुरासुरैः । तव भार्या महाबाहो भक्ष्यं विषकृतं यथा ॥ ७ ॥
त्यज शोकं महाबाहो तां क्रान्तामानयामि ते । अनुमानात्तु जानामि मैथिली सा न संशयः ॥ ८ ॥
ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा क्रूरकर्मणा । क्रोशन्ती राम रामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम् ॥ ९ ॥
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के पन्नगेन्द्रवधूर्यथा । आत्मनापञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतटे स्थितम् ॥१०॥

छठा सर्ग

आभूषणों की पहचान

प्रसन्न होते हुए सुग्रीव पुनः रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र से बोले मन्त्रियों में श्रेष्ठ आपके सेवक हनुमान् ने उन सब बातों को मुझसे कहा जिस कारण आप इस वन में आये। अपने भाई लक्ष्मण के साथ वन में निवास करते हुए ॥ १-२ ॥ आपकी धर्मपत्नी जनककुमारी मैथिली रोती हुई सीता का राक्षस ने उस समय अपहरण किया जिस समय आप और आपके भाई लक्ष्मण वहाँ उपस्थित नहीं थे ॥ ३ ॥ अवसरवादी उस राक्षस ने वैखानस गृध्रकूट के राजा जटायु को मार कर आपको स्त्रीवियोगजनित दुःख पहुँचाया है। स्त्रीवियोगजनित दुःख से आप शीघ्र ही मुक्त हो जायेंगे ॥ ५ ॥ मैं जानकी को उसी प्रकार लाकर आपको अर्पण करूँगा, जैसे राक्षसों के द्वारा आक्रान्त वेदवाणी का उद्धार हुआ। हे शत्रुतापी रामचन्द्र ! जानकी चाहे रसातल में हो या गगन मण्डल में कहीं भी हो ॥ ५ ॥ मैं आपकी स्त्री जानकी को लाकर आपके अर्पण करूँगा। हे रामचन्द्र ! मेरे इस वचन को आप सत्य ही समझें ॥ ६ ॥ सुर असुर तथा इन्द्र भी आपकी धर्मपत्नी को हस्तगत नहीं कर सकते। आपकी धर्मपत्नी विषसम्पृक्त अन्न के सदृश है जिसे कोई पचा नहीं सकता ॥ ७ ॥ विशाल भुजावाले रामचन्द्र ! आप शोक को त्याग दीजिये, मैं आपकी धर्मपत्नी को अवश्य ले आऊँगा। अनुमान से मैं यह समझ रहा हूँ कि वह मिथिला की राजकुमारी जानकी ही रही होगी अब इसमें कोई संशय नहीं ॥ ८ ॥ भयंकर कर्म करने वाले राक्षस के द्वारा हरी जाती हुई सीता को मैंने देखा। विकृत स्वर में रोती हुई 'हा राम, हा लक्ष्मण' इस प्रकार शब्द करती हुई ॥ ९ ॥ रावण के समीप पन्नगेन्द्र वधू के समान शोभा को प्राप्त हो रही थी। इस पर्वत की चोटी पर पाँच वनवासियों के साथ मुझको देखकर ॥ १० ॥ अपनी चादर तथा उसमें बँधे हुए शुभ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च । तान्यस्माभिर्गृहीतानि निहितानि च राघव ॥११॥
आनयिष्याम्यहं तानि प्रत्यभिज्ञातुमर्हसि । तमब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम् ॥१२॥
आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे । एवमुक्तस्तु सुग्रीवः शैलस्य गहनां गुहाम् ॥१३॥
प्रविवेश ततः शीघ्रं राघवप्रियकाम्यया ।
उत्तरीयं गृहीत्वा तु शुभान्याभरणानि च । इदं पश्येति रामाय दर्शयामास वानरः ॥१४॥
ततो गृहीत्वा तद्वासः शुभान्याभरणानि च । अभवद्बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः ॥१५॥
सीतास्नेहप्रवृत्तेन स तु बाष्पेण दूषितः । हा प्रियेति रुदन् धैर्यमुत्सृज्य न्यपतत्क्षितौ ॥१६॥
हृदि कृत्वा तु बहुशस्तमलंकारमुत्तमम् । निश्वास भृशं सर्पो बिलस्थ इव रोषितः ॥१७॥
अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तु सौमित्रिं वीक्ष्य पार्श्वतः । परिदेवयितुं दीनं रामः समुपचक्रमे ॥१८॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्या संत्यक्तं ह्रियमाणया । उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराद् भूषणानि च ॥१९॥
शाद्वलिन्यां ध्रुवं भूम्यां सीतया ह्रियमाणया । उत्सृष्टं भूषणमिदं तथारूपं हि दृश्यते ॥२०॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ॥२१॥
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् । ततः स राघवो दीनः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥२२॥
ब्रूहि सुग्रीव कं देशं ह्रियन्ती लक्षिता त्वया । रक्षसा रौद्ररूपेण मम प्राणैः प्रिया प्रिया ॥२३॥

आभूषणों को मेरे समीप गिराया था। हे रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ! वस्त्र समेत उन आभूषणों को मैंने ले लिया तथा उनको सुरक्षित रखा है ॥ ११ ॥ मैं उन सबको आपके सामने ला रहा हूँ, आप उन्हें पहचानिये। इस प्रकार उस प्रियवादी सुग्रीव से रामचन्द्र बोले ॥ १२ ॥ हे मित्र ! तुम उन्हें शीघ्र ही ले आओ, विलम्ब क्यों करते हो। रामचन्द्र के ऐसा कहने पर राजा सुग्रीव ने रामचन्द्र की प्रिय कामना को पूर्ण करने के लिये उस पर्वत की गहन गुफा में प्रवेश किया ॥ १३ ॥ उस उत्तरीय तथा उन आभूषणों को लाकर सुग्रीव ने 'इन्हें देखिये' ऐसा कहकर रामचन्द्र को दिखलाया ॥ १४ ॥ उन वस्त्र और आभूषणों को लेकर रामचन्द्र इस प्रकार सजल नेत्र हो गये जिस प्रकार कुहरे से आच्छादित चन्द्रमण्डल हो जाता है। ॥ १५ ॥ सीता के स्नेह से निकली हुई अश्रुपंक्तियों से रामचन्द्र आर्द्र हो गये। धैर्य को त्यागकर 'हा प्रिये' इस शब्द के द्वारा रोते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ १६ ॥ उन अलंकारों को बार २ हृदय से लगाते हुए बिल में रहने वाले क्रुद्ध सर्प के समान लम्बी श्वास लेने लगे ॥ १७ ॥ अविरल अश्रुपात जिनकी आँखों से हो रहा है, ऐसे रामचन्द्र अपने पास में खड़े हुए लक्ष्मण को देखकर दीनतापूर्ण विलाप करने लगे ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो, हरण की जाती हुई सीता ने अपनी चादर तथा आभूषणों को इस भूमि पर गिराया था ॥ १९ ॥ हरण की जाती हुई सीता ने इन आभूषणों को हरी २ घास से पूर्ण पृथ्वी पर गिराया था इन वस्त्र आभूषणों को देखकर ही यह प्रतीत हो रहा है ॥ २० ॥ रामचन्द्र के ऐसा कहने पर उस समय लक्ष्मण इस प्रकार बोले—मैं इन कंकणों को नहीं जानता तथा इन कान के कुण्डलों को भी नहीं पहचानता ॥ २१ ॥ नित्य ही सायं प्रातः चरणवन्दन करने से चरण-आभूषण इन नूपुरों को पहचानता हूँ। लक्ष्मण के इस प्रकार कथन के समय रामचन्द्र सुग्रीव से यह वचन बोले ॥ २२ ॥ हे सुग्रीव ! तुम बोलो, मेरी प्राणप्रिया सीता का अपहरण उस भयंकर राक्षस ने किस स्थान पर किया। हरण की जाती हुई सीता को क्या तुमने देखा ॥ २३ ॥ वह पापी राक्षस कहाँ वास करता है जिसने मुझे इस महती विपत्ति में डाल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्व वा वसति तद्रक्षो महद्व्यसनदं मम । यन्निमित्तमहं सर्वान्नाशयिष्यामि राक्षसान् ॥२४॥
हरता मैथिलीं येन मां च रोषयता भृशम् । आत्मजो जीवितान्ताय मृत्युद्वारमपावृतम् ॥२५॥
मम दयिततरा हृता वनान्ताद्रजनिचरेण विमथ्य येन सा ।
कथय मम रिपुं त्वमद्य वै प्लवगपते यमसंनिधिं नयामि ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे भूषणप्रत्यभिज्ञानं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

रामसमाश्वासनम्

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणार्तेन वानरः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं सबाष्पं बाष्पगद्गदः ॥ १ ॥
न जाने निलयं तस्य सर्वथा पापरक्षसः । सामर्थ्यं विक्रमं वापि दौष्कुलेयस्य वा कुलम् ॥ २ ॥
सत्यं ते प्रतिजानामि त्यज शोकमरिंदम । करिष्यामि तथा यत्नं यथा प्राप्स्यसि मैथिलीम् ॥ ३ ॥
रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्मपौरुषम् । तथास्मि कर्ता न चिराद्यथा प्रीतो भविष्यसि ॥ ४ ॥

दिया है। उसके कारण मैं सम्पूर्ण राक्षसों का विध्वंस करूँगा ॥ २४ ॥ सीता को हरण करते हुए जिसने मेरी क्रोधाग्नि को भड़काया है, उस ने अवश्य ही अपना जीवनान्त करने के लिये मृत्यु के द्वार का उद्घाटन किया है ॥ २५ ॥ हम दोनों भाईयों की वंचना करके इस वन में जिस निशाचर ने मेरी प्राण-प्रिया भार्या का अपहरण किया है, हे वनवासियों के राजा ! आज उस शत्रु को मुझे बताओ, जिस को मैं यमसदन का अतिथि बनाऊंगा ॥ २६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'आभूषणों की पहचान' विषयक छठा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

सातवां सर्ग

राम का आश्वासन

दुःखी रामचन्द्र के इस प्रकार कहने पर अश्रुपूर्ण नेत्र सुग्रीव हाथ जोड़कर करुणामय विलाप करनेवाले रामचन्द्र से बोले ॥ १ ॥ उस पापी राक्षस का निवास कहां है, मैं सर्वथा नहीं जानता । उस कुलाधम राक्षस के सामर्थ्य, वीरता तथा कुल को भी मैं नहीं जानता ॥ २ ॥ इन सब की जानकारी न होने पर भी, हे शत्रुतापी रामचन्द्र ! मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं उस प्रकार का प्रयत्न करूंगा जिस से मिथिला की राजकुमारी सीता अवश्य प्राप्त हो जायगी। इस लिये आप शोक को त्याग दीजिये ॥ ३ ॥ रक्षकों के सहित रावण को मारकर अपने आत्मीय लोगों के पुरुषार्थ का परिचय दे कर मैं शीघ्र ही सीता को प्राप्त कर लूंगा जिस से आप को प्रसन्नता होगी ॥ ४ ॥ आत्मघाती दीनता का त्याग कीजिये, अपने अन्तर्गत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अलं वैक्लव्यमालम्ब्य धैर्यमात्मगतं स्मर । त्वद्विधानामसदृशमीदृशं बुद्धिलाघवम् ॥ ५ ॥
मयापि व्यसनं प्राप्तं भार्याहरणजं महत् । न चाहमेवं शोचामि न च धैर्यं परित्यजे ॥ ६ ॥
नाहं तामनुशोचामि प्राकृतो वानरोऽपि सन् । महात्मा च विनीतश्च किं पुनर्धृतिमान् भवान् ॥ ७ ॥
बाष्पमापतितं धैर्यान्निग्रहीतुं त्वमर्हसि । मर्यादां सत्त्वयुक्तानां धृतिं नोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ ८ ॥
व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तके । विमृशन् वै स्वया बुद्ध्या धृतिमान्नावसीदति ॥ ९ ॥
बालिशस्तु नरो नित्यं वैक्लव्यं योऽनुवर्तते । स मज्जत्यवशः शोके भाराक्रान्तेव नौर्जले ॥१०॥
एषोऽञ्जलिर्मया बद्धः प्रणयाच्त्वां प्रसादये । पौरुषं श्रय शोकस्य नान्तरं दातुमर्हसि ॥११॥
ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम् । तेजश्च क्षीयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि ॥१२॥
शोकेनाभिप्रपन्नस्य जीविते चापि संशयः । स शोकं त्यज राजेन्द्र धैर्यमाश्रय केवलम् ॥१३॥
हितं वयस्यभावेन ब्रूमि नोपदिशामि ते । वयस्यतां पूजयन् मे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥१४॥
मधुरं सान्त्वितस्तेन सुग्रीवेण स राघवः । मुखमश्रुपरिक्लिन्नं वस्त्रान्तेन प्रमार्जयन् ॥१५॥
प्रकृतिस्थस्तु काकुत्स्थः सुग्रीववचनात्प्रभुः । संपरिष्वज्य सुग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ॥१६॥
कर्तव्यं यद्वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च । अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत्त्वया ॥१७॥
एष च प्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वया सखे । दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन् काले विशेषतः ॥१८॥

धैर्य का स्मरण करें। आप जैसे महान् व्यक्ति के लिए इस प्रकार बुद्धि लाघव अच्छा नहीं ॥ ५ ॥ मुझे भी स्त्री विरह जनित दुःख प्राप्त हुआ है, किन्तु मैं इस प्रकार शोक नहीं करता और न मैंने धैर्य ही छोड़ा है ॥ ६ ॥ स्त्री से वियुक्त होने पर भी मैं उस का स्मरण इस प्रकार नहीं करता, यद्यपि मैं एक सामान्य वनवासी हूं। किन्तु आप तो महात्मा, शिक्षित, धैर्यशाली, महान् हैं, अतः आप का तो कहना ही क्या ॥ ७ ॥ आंखों में आये हुए आंसुओं को आप धीरता पूर्वक रोकिये। धैर्यशालियों के द्वारा सदा रक्षित धीरता का त्याग आप मत कीजिये ॥ ८ ॥ दुःख, निर्धनता, भय वा प्राणसंकट में जो अपनी बुद्धि से विचार पूर्वक काम लेते हैं, ऐसे बुद्धिमान् कभी भी दुःखी नहीं होते ॥ ९ ॥ वे मनुष्य मतिमन्द कहलाते हैं जो विपत्ति में दीनता का परिचय देते हैं। भाराक्रान्त नौका के समान वे शोक समुद्र में डूब जाते हैं ॥ १० ॥ करबद्ध प्रेम पूर्वक मैं आप से प्रार्थना करता हूं। इस समय पुरुषार्थ का ही सहारा लीजिये, शोक को हृदय में स्थान न देवें ॥ ११ ॥ शोक करने वाले व्यक्तियों को कभी सुख शान्ति नहीं प्राप्त होती। शोकातुर व्यक्तियों का तेज भी नष्ट हो जाता है। इस लिये आप को शोक नहीं करना चाहिये ॥ १२ ॥ शोकाक्रान्त पुरुषों का जीवन भी संशय में पड़ जाता है। हे राजेन्द्र! उस शोक का आप त्याग कीजिये, इस समय केवल धैर्य का ही सहारा लीजिये ॥ १३ ॥ एक मित्र के नाते मैं ये बातें आप को बतला रहा हूं। मैं आप को उपदेश नहीं दे रहा हूं। मेरी मित्रता का आदर करते हुए आप को शोक नहीं करना चाहिये ॥ १४ ॥ नम्रता पूर्वक सुग्रीव के इस प्रकार समझाने पर रामचन्द्र ने अपने वस्त्र के प्रान्त से अश्रुपात से भीगे हुए मुख मण्डल का परिमार्जन किया ॥ १५ ॥ सुग्रीव के इस प्रकार समझाने पर समर्थ रामचन्द्र अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गये। पश्चात् प्रेमपूर्वक सुग्रीव का आलिङ्गन करते हुए ये वचन बोले ॥१६॥ आपत्ति के समय स्नेही तथा हितैषी मित्र को जो काम करना चाहिये, हे मित्र सुग्रीव! आप ने सब कुछ उस के अनुकूल ही किया है ॥ १७ ॥ हे मित्र! आप के समझाने से इस समय मैं स्वस्थ हो गया हूं, विशेषकर ऐसे समय संकट काल में आप जैसे बन्धु का मिलना अति दुर्लभ है ॥ १८ ॥ किन्तु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किं तु यत्नस्त्वया कार्यो मैथिल्याः परिमार्गणे । राक्षसस्य च रौद्रस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥१९॥
मया च यदनुष्ठेयं विस्रब्धेन तदुच्यताम् । वर्षास्विव च सुक्षेत्रे सर्वं संपद्यते त्वयि ॥२०॥
मया च यदिदं वाक्यमभिमानात्समीरितम् । तत्त्वया हरिशार्दूल तत्त्वमित्युपधार्यताम् ॥२१॥
अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन । एतत्ते प्रतिजानामि सत्येनैव शपामि ते ॥२२॥
ततः प्रहृष्टः सुग्रीवो वानरैः सचिवैः सह । राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रतिज्ञातं विशेषतः ॥२३॥
एवमेकान्तसंपृक्तौ ततस्तौ नरवानरौ । उभावन्योन्यसदृशं सुखं दुःखं प्रभाषताम् ॥२४॥
महानुभावस्य वचो निशम्य हरिर्नराणामृषभस्य तस्य ।
कृतं स मेने हरिवीरमुख्यस्तदा स्वकार्यं हृदयेन विद्वान् ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे रामसमाश्वासनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

वालिवधप्रतिज्ञा

परितुष्टस्तु सुग्रीवस्तेन वाक्येन वानरः । लक्ष्मणस्याग्रतो राममिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

जानकी के अन्वेषण करने तथा उस भयंकर दुरात्मा राक्षसराज रावण का पता लगाने का प्रयत्न आपको करना चाहिये ॥ १९ ॥ इस अवस्था में मुझे क्या करना चाहिये, आप निःसंकोच हो कर मुझे समझाइये। वर्षा के द्वारा अच्छे खेत में जैसे सभी प्रकार की वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार आप के अन्दर सभी अच्छे विचारों के होने की सम्भावना है ॥ २० ॥ अभिमान में आकर भी जो बातें मैंने आप के समक्ष कही हैं, हे वनवासियों में श्रेष्ठ राजन् ! उन्हें आप तथ्यपूर्ण ही समझिये ॥ २१ ॥ मैंने अपने जीवन में कभी मिथ्या भाषण नहीं किया है और न ही इस समय कोई मिथ्या भाषण कर रहा हूं। इस लिये मैं सत्य की साक्षी देकर आप के सामने शपथ करता हूं ॥ २२ ॥ रामचन्द्र की इन बातों को सुन कर विशेष कर उन की दृढ़ प्रतिज्ञा पर विचार कर के राजा सुग्रीव अपने वनवासी मन्त्रिमण्डल के साथ अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ २३ ॥ इस प्रकार एकान्त में बैठे हुए वे दोनों नर-वानर (नर = नगरवासी, वानर = वनवासी) रामचन्द्र तथा राजा सुग्रीव परस्पर अपने सुख दुःख की बातें करते रहे ॥ २४ ॥ महानुभाव रामचन्द्र की प्रतिज्ञापूर्वक कही हुई इन बातों को सुन कर विद्वान्, वनवासियों के मुख्य, राजा सुग्रीव ने अपने कार्य सिद्धि की सफलता को निश्चित समझ लिया ॥ २५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'राम का आश्वासन' विषयक सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

आठवां सर्ग

बाली के वध की प्रतिज्ञा

सारगर्भित प्रतिज्ञापूर्वक रामचन्द्र की इन बातों को सुनकर सुग्रीव अत्यन्त हर्षित हो गये। पश्चात् लक्ष्मण के ज्येष्ठ भ्राता वीर रामचन्द्र से ये वचन बोले ॥ १ ॥ हे मित्र ! मैं आज देवों के अनुग्रह का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वथाहमनुग्राह्यो देवतानामसंशयः । उपपन्नगुणोपेतः सखा यस्य भवान् मम ॥ २ ॥
शक्यं खलु भवेद्राम सहायेन त्वयानघ । सुरराज्यमपि प्राप्तुं स्वराज्यं किं पुनः प्रभो ॥ ३ ॥
सोऽहं सभाज्यो बन्धूनां सुहृदां चैव राघव । यस्याग्निसाक्षिकं मित्रं लब्धं राघववंशजम् ॥ ४ ॥
अहमप्यनुरूपस्ते वयस्यो ज्ञास्यसे शनैः । न तु वक्तुं समर्थोऽहं स्वयमात्मगतान् गुणान् ॥ ५ ॥
महात्मनां तु भूयिष्ठं त्वद्विधानां कृतात्मनाम् । निश्चला भवति प्रीतिर्धैर्यमात्मवतां वर ॥ ६ ॥
रजतं वा सुवर्णं वा वस्त्राण्याभरणानि च । अविभक्तानि साधूनामवगच्छन्ति साधवः ॥ ७ ॥
आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा । निर्दोषो वा सदोषो वा वयस्यः परमा गतिः ॥ ८ ॥
धनत्यागः सुखत्यागो देहत्यागोऽपि वा पुनः । वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहं दृष्ट्वा तथाविधम् ॥ ९ ॥
तत्तथेत्यब्रवीद्रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम् । लक्ष्मणस्याग्रतो लक्ष्म्या वासवस्येव धीमतः ॥१०॥
ततो रामं स्थितं दृष्ट्वा लक्ष्मणं च महाबलम् । सुग्रीवः सर्वतश्चक्षुर्वने लोलमपातयत् ॥११॥
स ददर्श ततः सालमविदूरे हरीश्वरः । सुपुष्पमीषत्पत्राढ्यं भ्रमरैरुपशोभितम् ॥१२॥
तस्यैकां पर्णबहुलां भङ्क्त्वा शाखां सुपुष्पिताम् । सालस्यास्तीर्य सुग्रीवो निषसाद सराघवः ॥१३॥
तावासीनौ ततो दृष्ट्वा हनुमानपि लक्ष्मणम् । सालशाखां समुत्पाट्य विनीतमुपवेशयत् ॥१४॥
सुखोपविष्टं रामं तु प्रसन्नमुदधिं यथा । फलपुष्पसमाकीर्णे तस्मिन् गिरिवरोत्तमे ॥१५॥

भाजन बन गया हूँ, इसलिये कि सम्पूर्ण गुणों से सब प्रकार सम्पन्न आपने मेरी मित्रता स्वीकार कर ली है ॥ २ ॥ हे निष्कलंक रामचन्द्र ! मैं आपकी सहायता से अमर राज्य को भी प्राप्त कर सकता हूँ, अपने राज्य की प्राप्ति की तो बात ही क्या है ॥ ३ ॥ बन्धु-बान्धवों के सहित मैं अपने आप को आज गौरवान्वित समझता हूँ, इसलिये कि रघुकुलभूषण आप की मित्रता अग्नि साक्षी देकर प्राप्त की है ॥ ४ ॥ मैं भी आपके अनुरूप ही मित्र हूँ। शनैः २ सम्पर्क में आने से यह बात आपको ज्ञात हो जायेगी। आपके समक्ष मैं अपने गुणों का स्वयं वर्णन नहीं कर सकता ॥ ५ ॥ धैर्यधारी, आत्मज्ञानी, सफल मनोरथ आप जैसे महात्माओं की प्रीति अवश्य ही निश्चल होती है ॥ ६ ॥ सोना हो, चांदी हो अथवा इनसे बने शुभ आभरण हों, अच्छे विचार वाले मित्रों में ये अविभक्त होते हैं (अर्थात् सच्चे मित्रों की वस्तु परस्पर एक दूसरे की होती हैं)। इसे महापुरुष जानते हैं ॥ ७ ॥ अर्थपति हो या दरिद्र हो, सुखी हो या दुःखी हो, निर्दोष हो या सदोष हो, मित्र की गति मित्र ही होता है ॥ ८ ॥ इसी कारण मित्र स्नेह के मूल्य में मित्र लोग मित्र के लिये धन का त्याग, सुख का त्याग तथा प्राण का त्याग भी करते हैं ॥ ९ ॥ इन्द्र की कमनीय कान्ति को अतिक्रान्त करने वाले लक्ष्मण के समक्ष प्रियवादी सुग्रीव से रामचन्द्र ने कहा—हे मित्र ! आपने जैसा कहा है, वह सर्वथा उचित ही है ॥ १० ॥ पश्चात् महाबली रामचन्द्र तथा लक्ष्मण को पास में ही बैठे देखकर सुग्रीव ने उस वन में चञ्चल दृष्टि से इधर-उधर देखा ॥ ११ ॥ वनवासियों के राजा सुग्रीव ने समीप ही में भ्रमरों से गुञ्जायमान पुष्पित, अल्प पत्तों वाले साल वृक्ष की एक शाखा को देखा ॥ १२ ॥ उस सालवृक्ष की अत्यन्त सुशोभित बहुत पत्तों वाली एक शाखा को तोड़कर सुग्रीव ने रामचन्द्र के लिये बिछा दिया तथा रामचन्द्र के सहित उस पर बैठ गये ॥ १३ ॥ रामचन्द्र तथा सुग्रीव दोनों मित्रों को बैठा हुआ देखकर हनुमान् ने भी एक शाखा को तोड़कर बिछा दिया तथा नम्रतापूर्वक लक्ष्मण को उस पर बिठा दिया ॥ १४ ॥ साल वृक्ष के पुष्पों से अलंकृत उस श्रेष्ठ पर्वत पर प्रसन्न सागर के समान प्रसन्नता तथा सुखपूर्वक बैठे हुए रामचन्द्र को सुग्रीव ने देखा ॥ १५ ॥ पश्चात् प्रसन्नचित्त राजा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णं मधुरया गिरा । उवाच प्रणयाद्रामं हर्षव्याकुलिताक्षरम् ॥१६॥
अहं विनिकृतो भ्रात्रा चराम्येष भयार्दितः । ऋश्यमूकं गिरिवरं हृतभार्यः सुदुःखितः ॥१७॥
सोऽहं त्रस्तो भये मग्नो वसाम्युद्भ्रान्तचेतनः । वालिना निकृतो भ्रात्रा कृतवैरश्च राघव ॥१८॥
वालिनो मे भयार्तस्य सर्वलोकाभयंकर । ममापि त्वमनाथस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥१९॥
एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः । प्रत्युवाच स काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥२०॥
उपकारफलं मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् । अद्यैव तं हनिष्यामि तव भार्यापहारिणम् ॥२१॥
इमे हि मे महावेगाः पत्रिणस्तिग्मतेजसः । कार्तिकेयवनोद्भूताः शरा हेमविभूषिताः ॥२२॥
कङ्कपत्रप्रतिच्छन्ना महेन्द्राशनिसंनिभाः । सुपर्वाणः सुतीक्ष्णाग्राः सरोषा इव पन्नगाः ॥२३॥
भ्रातृसंज्ञममित्रं ते वालिनं कृतकिल्बिषम् । शरैर्विनिहतं पश्य विकीर्णमिव पर्वतम् ॥२४॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः । प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥२५॥
राम शोकाभिभूतोऽहं शोकार्तानां भवान् गतिः । वयस्य इति कृत्वा हि त्वय्यहं परिदेवये ॥२६॥
त्वं हि पाणिप्रदानेन वयस्यो मेऽग्निसाक्षिकम् । कृतः प्राणैर्बहुमतः सत्येनापि शपामि ते ॥२७॥
वयस्य इति कृत्वा च विस्रब्धं प्रवदाम्यहम् । दुःखमन्तर्गतं यन्मे मनो हरति नित्यशः ॥२८॥
एतावदुक्त्वा वचनं बाष्पदूषितलोचनः । बाष्पोपहतया वाचा नोच्चैः शक्नोति भाषितुम् ॥२९॥

सुग्रीव अत्यन्त मंगलमय स्पष्ट शब्दों में प्रेमपूर्वक रामचन्द्र से बोले, हर्षातिरेक के कारण जिनके शब्द स्पष्ट नहीं निकल रहे थे ॥ १६ ॥ मैं इस ऋश्यमूक पर्वत पर अपने भाई से अपमानित होकर स्त्री से वियुक्त, अत्यन्त दुःखित तथा आतंकित अवस्था में इधर-उधर भ्रमण करके समय यापन करता हूँ ॥ १७ ॥ हे रामचन्द्र ! वैर बुद्धि वाले अपने भाई बाली से निर्वासित होता हुआ, उद्भ्रान्त चित्त, भयभीत अवस्था में मैं यहाँ निवास कर रहा हूँ ॥ १८ ॥ हे सम्पूर्ण लोगों को अभयदान करने वाले रामचन्द्र ! बाली से भयार्त्त मुझ अनाथ पर भी आप कृपा करें ॥ १९ ॥ राजा सुग्रीव के ऐसा कहने पर धर्मात्मा, धर्मवत्सल, तेजस्वी रामचन्द्र हँसते हुए उनसे यह बोले ॥ २० ॥ उपकार करना मित्र का लक्षण है, अपकार करना शत्रु का लक्षण है। इसलिये एक सच्चे मित्र के नाते आपकी भार्या का अपहरण करने वाले व्यक्ति का मैं आज ही वध करूँगा ॥ २१ ॥ सूर्य के समान प्रकाशमान, स्वर्ण विभूषित ये मेरे विशाल बाण कार्त्तिकेय वन के शरकाण्डों से निर्मित हैं ॥ २२ ॥ कंकपत्र (चील के पंख) से आवेष्टित, इन्द्रवज्र के समान तीक्ष्ण अग्र भाग वाले तथा पर्वयुक्त ये मेरे बाण क्रुद्ध सर्प के समान हैं ॥ २३ ॥ भ्राता के रूप में पापकारी वाली नामक जो तुम्हारा शत्रु है, उसे मेरे बाणों से मरा हुआ आज उसी प्रकार देखो जैसे इन्द्रवज्र से पर्वत की चोटियाँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं ॥ २४ ॥ सेनापति राजा सुग्रीव रामचन्द्र की इन बातों को सुनकर अत्यन्त हर्ष से गद्गद हो गये । 'बहुत ठीक, बहुत ठीक' ऐसा कहने लगे ॥ २५ ॥ हे रामचन्द्र ! मैं शोक भार से आक्रान्त हो रहा हूँ, आप शोकार्तों के शरणागतवत्सल हैं। आप मेरे मित्र हैं, इस नाते मैं आपके सामने अपना दुःख प्रकट करहा हूँ ॥ २६ ॥ अग्नि साक्षिपूर्वक आप ने ही मेरा हाथ पकड़कर मुझे मित्रता प्रदान की है। इसलिये आप मुझे प्राणों से प्यारे हैं। मैं सत्य की शपथ करता हूँ ॥ २७ ॥ अन्तःकरण में स्थित जो मेरा महान् दुःख है और जो मेरे मन को उद्विग्न कर रहा है, उसे मित्र के नाते ही मैं विश्वास पूर्वक आप के सामने रख रहा हूं ॥ २८ ॥ इतनी बातें रामचन्द्र से कह कर जिसकी आंखें आंसुओं से भर आई हैं और वाणी जिसकी अवरुद्ध हो रही है, वे ऊंचे शब्दों में कुछ न कह सके ॥ २९ ॥ नदी के वेग के समान आये हुए आंसुओं के वेग को राजा सुग्रीव ने रामचन्द्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाष्पवेगं तु सहसा नदीवेगमिवागतम् । धारयामास धैर्येण सुग्रीवो रामसंनिधौ ॥३०॥
स निगृह्य तु तं बाष्पं प्रमृज्य नयने शुभे । विनिःश्वस्य च तेजस्वी राघवं पुनरब्रवीत् ॥३१॥
पुराहं वालिना राम राज्यात्स्वादवरोपितः । परुषाणि च संश्राव्य निर्धूतोऽस्मि बलीयसा ॥३२॥
हृता भार्या च मे तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । सुहृदश्च मदीया ये संयता बन्धनेषु ते ॥३३॥
यत्नवांश्च सुदुष्टात्मा मद्विनाशाय राघव । बहुशस्तत्प्रयुक्ताश्च वानरा निहता मया ॥३४॥
शङ्कया त्वेतया चेह दृष्ट्वा त्वामपि राघव । नोपसर्पाम्यहं भीतो भये सर्वे हि बिभ्यति ॥३५॥
केवलं हि सहाया मे हनूमत्प्रमुखास्त्विमे । अतोऽहं धारयाम्यद्य प्राणान् कृच्छ्रगतोऽपि सन् ॥३६॥
एते हि कपयः स्निग्धा मां रक्षन्ति समन्ततः । सह गच्छन्ति गन्तव्ये नित्यं तिष्ठन्ति च स्थिते ॥३७॥
संक्षेपस्त्वेष ते राम किमुक्त्वा विस्तरं हि ते । स मे ज्येष्ठो रिपुर्भ्राता वाली विश्रुतपौरुषः ॥३८॥
तद्विनाशाद्धि मे दुःखं प्रनष्टं स्यादनन्तरम् । सुखं मे जीवितं चैव तद्विनाशानिबन्धनम् ॥३९॥
एष मे राम शोकान्तः शोकार्तेन निवेदितः । दुःखितः सुखितो वापि सख्युर्नित्यं सखा गतिः ॥४०॥
श्रुत्वैतद्वचनं रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् । किंनिमित्तमभूद्वैरं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥४१॥
सुखं हि कारणं श्रुत्वा वैरस्य तव वानर । आनन्तर्यं विधास्यामि संप्रधार्य बलाबलम् ॥४२॥
बलवान् हि ममामर्षः श्रुत्वा त्वामवमानितम् । वर्धते हृदयोत्कम्पी प्रावृड्वेग इवाम्भसः ॥४३॥

के समीप एकाएक धैर्यपूर्वक रोक लिया ॥ ३० ॥ आंसुओं को रोक कर तथा दोनों आंखों का परिमार्जन करके तेजस्वी राजा सुग्रीव लम्बी सांस लेते हुए पुनः रामचन्द्र से बोले ॥ ३१ ॥ हे रामचन्द्र ! पहले मैं बलवान् बाली के द्वारा अपने राज्य से हटाया गया। नाना प्रकार के कठोर शब्दों को सुना कर मेरा घोर अपमान किया गया ॥ ३२ ॥ प्राण से भी प्रिय मेरी भार्या को उसने छीन लिया और मेरे शुभ चिन्तक मित्रों को उसने बन्दी बना लिया ॥ ३३ ॥ हे रामचन्द्र ! वह दुष्टात्मा मुझे नष्ट करने के लिये निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। बहुत से वनवासी सैनिकों को उसने मेरे नाश के लिये भेजा, किन्तु मैंने उन सभी को मार दिया ॥ ३४ ॥ इसी शंका से आतंकित हो कर आप को देखते हुए भी भय के मारे मैं आपके पास न आ सका, क्योंकि भय के कारणों से सभी लोग डरते हैं ॥ ३५ ॥ केवल हनुमान् आदि प्रमुख कुछ मेरे सहायक हैं जिनके कारण इस प्राण संकट काल में भी मैंने अपने प्राणों की किसी प्रकार रक्षा की है ॥ ३६ ॥ ये स्नेही मेरे वनवासी रक्षक सदा सब ओर से मेरी रक्षा करते हैं। मेरे चलने के समय ये मेरे साथ चलते हैं और बैठने के समय बैठते हैं ॥ ३७ ॥ हे रामचन्द्र ! ये बातें मैंने संक्षेप में आप से कही हैं, विस्तार पूर्वक कहने से क्या लाभ ? विख्यात पौरुष वाला मेरा ज्येष्ठ भ्राता बाली ही मेरा घोर शत्रु है ॥ ३८ ॥ उसका नाश होने के पश्चात् ही मेरे दुःख का अन्त हो सकता है। मेरा जीवन तथा सुख उसके नाश से सम्बन्धित है ॥ ३९ ॥ हे रामचन्द्र ! शोक से आक्रान्त मैंने अपने शोकान्त का यह उपाय आप से बताया। सुख या दुःख अवस्था में मित्र ही मित्र के साथी होते हैं ॥ ४० ॥ सुग्रीव की इन सब बातों को सुन कर रामचन्द्र बोले—किन कारणों से आप के साथ बाली का वैर हुआ, यह मैं यथार्थ में सुनना चाहता हूं ॥ ४१ ॥ तुम्हारे सम्पूर्ण वैर के कारण को सुन कर तथा तुम्हारे और बाली के बलाबल को अच्छी तरह जान कर पश्चात् हे वनवासियों के राजा सुग्रीव ! तुम्हें सुखी बनाने का प्रयत्न करूंगा ॥ ४२ ॥ तुम्हारे घोर अपमान की इन बातों को सुन कर हृदय को कम्पायमान करने वाला मेरा बलवान् क्रोध उसी प्रकार बढ़ रहा है जिस प्रकार वर्षाकाल में नदी के जल का वेग बढ़ता है ॥ ४३ ॥ प्रसन्नता तथा विश्वास पूर्वक अपनी सम्पूर्ण गाथा को सुनाओ तब तक मैं अपने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हृष्टः कथय विस्रब्धो यावदारोप्यते धनुः। सृष्टश्च हि मया बाणो निरस्तश्च रिपुस्तव ॥४४॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवः काकुत्स्थेन महात्मना। प्रहर्षमतुलं लेभे चतुर्भिः सह वानरैः ॥४५॥
ततः प्रहृष्टवदनः सुग्रीवो लक्ष्मणाग्रजे। वैरस्य कारणं तत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे वालिवधप्रतिज्ञा नाम अष्टमः सर्गः ॥८॥

नवमः सर्गः

वैरवृत्तान्तानुक्रमः

वाली नाम मम भ्राता ज्येष्ठः शत्रुनिषूदन। पितुर्बहुमतो नित्यं ममापि च तथा पुरा ॥ १ ॥
पितर्युपरतेऽस्माकं ज्येष्ठोऽयमिति मन्त्रिभिः। कपीनामीश्वरो राज्ये कृतः परमसंमतः ॥ २ ॥
राज्यं प्रशासतस्तस्य पितृपैतामहं महत्। अहं सर्वेषु कालेषु प्रणतः प्रेष्यवत् स्थितः ॥ ३ ॥
मायावी नाम तेजस्वी पूर्वजो दुदुन्भेः सुतः। तेन तस्य महद्वैरं स्त्रीकृतं विश्रुतं पुरा ॥ ४ ॥
स तु सुप्तजने रात्रौ किष्किन्धाद्वारमागतः। नर्दति स्म सुसंरब्धो वालिनं चाह्वयद्रणे ॥ ५ ॥

धनुष पर प्रत्यञ्चा आरोपित करता हूं। मेरे बाणों के छूटने के साथ ही आप का शत्रु समाप्त हो जायेगा। ॥ ४४ ॥ महात्मा रामचन्द्र के ऐसा कहने पर अपने चार अंग रक्षक वनवासियों के साथ सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ ४५ ॥ तत्पश्चात् प्रसन्नता पूर्वक राजा सुग्रीव वैर के मूल कारणों को राम के समक्ष कहने लगे ॥ ४६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड का 'बाली के वध को प्रतिज्ञा' विषयक आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥८॥

नवां सर्ग

वैर के वृत्तान्त का कथन

हे रिपुसूदन रामचन्द्र! बाली नामक मेरा ज्येष्ठ भ्राता है जिसका पिता जो बहुत आदर करते थे तथा इसके पूर्व मैं भी उसका बहुत सम्मान करता था ॥ १ ॥ पिता के दिवंगत होने के पश्चात् यह ज्येष्ठ है, ऐसा समझ कर मन्त्रियों ने सर्व सम्मति से उसको वनवासी राज्य का अधिकारी बनाया ॥ २ ॥ पिता-पितामह के विशाल राज्य का शासन करते हुए प्रत्येक समय अनुयायी होते हुए मैंने सदा बाली का साथ दिया ॥ ३ ॥ दुन्दुभि असुर का बड़ा भाई बड़ा तेजस्वी मायावी नामक एक असुर था, जिसका स्त्री के कारण वाली के साथ महान् वैर हो गया ॥ ४ ॥ रात्रि में किष्किन्धा निवासियों के सो जाने पर वह नगरी के प्रधान द्वार पर आया तथा बड़े गर्जन तर्जन पूर्वक बाली को संग्राम के लिये ललकारा ॥ ५ ॥ मेरा भाई उस समय घोर निद्रा में सो रहा था। गर्जते हुए उसके भयंकर नाद को सुन कर सहन न कर सका तथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रसुप्तस्तु मम भ्राता नर्दितं भैरवस्वनम् । श्रुत्वा न ममृषे वाली निष्पपात जवात्तदा ॥ ६ ॥
स तु वै निःसृतः क्रोधात्तं हन्तुमसुरोत्तमम् । वार्यमाणस्ततः स्त्रीभिर्मया च प्रणतात्मना ॥ ७ ॥
स तु निर्धूय सर्वान्नो निर्जगाम महाबलः । ततोऽहमपि सौहार्दान्निःसृतो वालिना सह ॥ ८ ॥
स तु मे भ्रातरं दृष्ट्वा मां च दूरादवस्थितम् । असुरो जातसंत्रासः प्रदुद्राव ततो भृशम् ॥ ९ ॥
तस्मिन् द्रवति संत्रस्ते ह्यावां द्रुततरं गतौ । प्रकाशश्च कृतो मार्गश्चन्द्रेणोद्गच्छता तदा ॥१०॥
स तृणैरावृतं दुर्गं धरण्या विवरं महत् । प्रविवेशासुरो वेगादावामासाद्य विष्ठितौ ॥११॥
तं प्रविष्टं रिपुं दृष्ट्वा विलं रोषवशं गतः । मामुवाच तदा वाली वचनं क्षुभितेन्द्रियः ॥१२॥
इह त्वं तिष्ठ सुग्रीव विलद्वारि समाहितः । यावदत्र प्रविश्याहं निहन्मि सहसा रिपुम् ॥१३॥
मया त्वेतद्वचः श्रुत्वा याचितः स परंतपः । शापयित्वा च मां पद्भ्यां प्रविवेश विलं महत् ॥१४॥
तस्य बिलं प्रविष्टस्य साग्रः संवत्सरो गतः । स्थितस्य च मम द्वारि स कालो व्यत्यवर्तत ॥१५॥
अहं तु नष्टं तं ज्ञात्वा स्नेहादागतसंभ्रमः । भ्रातरं न स्म पश्यामि पापाशङ्कि च मे मनः ॥१६॥
अथ दीर्घस्य कालस्य बिलात्तस्माद्विनिःसृतम् । सफेनं रुधिरं रक्तमहं दृष्ट्वा सुदुःखितः ॥१७॥
नर्दतामसुराणां च ध्वनिर्मे श्रोत्रमागतः । न रतस्य च संग्रामे क्रोशतो निःस्वनो गुरोः ॥१८॥
अहं त्ववगतो बुद्ध्या चिह्नैस्तैर्भ्रातरं हतम् । पिधाय च बिलद्वारं शिलया गिरिमात्रया ॥१९॥

शीघ्रता पूर्वक महल से बाहर निकल आया ॥ ६ ॥ उस असुर को मारने के लिये महल से बाली को निकलते देख कर राजमहल की स्त्रियों ने रोका तथा विनय पूर्वक मैंने भी रोका ॥ ७ ॥ किन्तु महाबली बाली उन सब स्त्रियों का हटा कर बाहर निकल पड़ा। पश्चात् मैं भी भ्रातृ प्रेम में आ कर उसके पीछे हो लिया ॥ ८ ॥ मेरे भाई को आते देख कर तथा दूर से मुझे भी देख कर वह मायावी असुर भयभीत हो कर बड़े वेग से भाग खड़ा हुआ ॥ ९ ॥ डर कर उसके भागने पर तथा हम दोनों के पीछा करने पर उदय होते चन्द्रमा ने प्रकाश के द्वारा मार्ग में सहायता की ॥ १० ॥ तृणों से आच्छादित भूमि में एक दुर्गमनीय बिल था, वह मायावी असुर बड़े वेग से उसमें प्रवेश कर गया। हम दोनों उस बिल के द्वार पर खड़े रह गये ॥ ११ ॥ शत्रु को बिल में प्रविष्ट हुआ देखकर बाली अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। क्रोध से क्षुभित इन्द्रियों वाले बाली ने मुझसे कहा ॥ १२ ॥ हे सुग्रीव ! सावधान होकर तुम इस बिल के द्वार पर तब तक ठहरो, जब तक मैं प्रवेश कर संग्राम में इस शत्रु को मार न आऊं ॥ १३ ॥ बाली की इस बात को सुनकर मैंने साथ चलने की प्रार्थना की, किन्तु अपने चरणों की शपथ पूर्वक मुझको रोककर वह पैदल ही बिल में प्रवेश कर गया ॥ १४ ॥ बाली को बिल में प्रविष्ट हुए तथा मुझे द्वार पर खड़े हुए सम्पूर्ण एक दिन* बीत गया ॥ १५ ॥ मैं यह समझ कर कि बाली समाप्त हो गया स्नेह के कारण अत्यन्त विचलित हो गया। इतने लम्बे समय तक भाई को न देखकर मेरे मन में नाना प्रकार की अनिष्ट शंका होने लगी ॥ १६ ॥ दीर्घकाल के पश्चात् उस बिल से फेन मिश्रित रक्त की धार बहती हुई देखकर मैं अत्यन्त दुःखी हो गया ॥ १७ ॥ गर्जन करते हुए उस मायावी असुर का शब्द मुझे सुनाई पड़ा। मेरे बुलाने पर भी संग्राम रत मेरे भाई बाली का शब्द मुझे नहीं सुनाई दिया ॥ १८ ॥ रक्तादि चिह्नों को देखकर मैंने बुद्धिपूर्वक यह निश्चय किया कि भाई बाली मारा गया। भाई को मारकर यह कहीं मुझे भी न मार दे, ऐसी आशंका कर अपने जाने के पूर्व एक विशाल पाषाण की शिला से मैंने उस बिल के द्वार को ढक दिया ॥१९॥

* संवत्सरशब्दो दिनपर्यायः (संवत्सर शब्द दिन का पर्यायवाची भी होता है)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शोकार्तश्चोदकं कृत्वा किष्किन्धामागतः सखे । गूहमानस्य मे तत्त्वं यत्नतो मन्त्रिभिः श्रुतम् ॥२०॥
ततोऽहं तैः समागम्य संमतैरभिषेचितः । राज्यं प्रशासतस्तस्य न्यायतो मम राघव ॥२१॥
आजगाम रिपुं हत्वा दानवं स तु वानरः । अभिषिक्तं तु मां दृष्ट्वा क्रोधात् संरक्तलोचनः ॥२२॥
मदीयान् मन्त्रिणो बद्ध्वा परुषं वाक्यमब्रवीत् । निग्रहे च समर्थस्य तं पापं प्रति राघव ॥२३॥
न प्रावर्तत मे बुद्धिर्भ्रातुर्गौरवयन्त्रिता । हत्वा शत्रुं स मे भ्राता प्रविवेश पुरं तदा । २४॥
मानयंस्तं महात्मानं यथावच्चाभ्यवादयम् । उक्तश्च नाशिषस्तेन संतुष्टेनान्तरात्मना ॥२५॥
नत्वा पादावहं तस्य मुकुटेनापृस्शं प्रभो । अपि वाली मम क्रोधान्न प्रसादं चकार सः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे वैरवृत्तान्तानुक्रमो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

राज्यनिर्वासकथनम्

ततः क्रोधसमाविष्टं संरब्धं तमुपागतम् । अहं प्रसादयांचक्रे भ्रातरं हितकाम्यया ॥ १ ॥

हे मित्र रामचन्द्र ! शोकार्त्त मन से मरणानन्तर होने वाले स्नानादि से निवृत्त हो कर राजधानी किष्किन्धा में लौट आया। प्रयत्न पूर्वक इस बात को छिपाने पर भी जनश्रुति के द्वारा मन्त्रियों ने इसे जान लिया ॥ २० ॥ पश्चात् समस्त किष्किन्धावासी प्रजा ने मिल कर राजपद पर मेरा अभिषेचन किया। हे रामचन्द्र ! न्याय पूर्वक जब मैं सम्पूर्ण राज्य का शासन कर ही रहा था ॥ २१ ॥ इसी के मध्य में उस मायावी दानव को मार कर बाली किष्किन्धा को लौट आया। राजसिंहासन पर मुझे अभिषिक्त देख कर क्रोध से उसके नेत्र रक्तवर्ण वाले हो गये ॥ २२ ॥ मेरे शासन काल के मन्त्रियों को बन्दी बना कर बाली ने उनके प्रति बड़े कठोर शब्दों का प्रयोग किया। हे रामचन्द्र ! यद्यपि मैं उस समय उस पापी बाली को बन्दी बना कर स्वयं दण्ड दे सकता था ॥ २३ ॥ तथापि ज्येष्ठ भ्राता के बड़प्पन का ध्यान रखते हुए मैं ने वैसा नहीं किया। जिस समय शत्रु को मार कर भ्राता बाली ने नगर में प्रवेश किया ॥ २४ ॥ उस समय मैंने उस महात्मा का सम्मान किया तथा नम्रता पूर्वक अभिवादन किया, किन्तु प्रसन्नता पूर्वक उसने मुझे आशीर्वाद नहीं दिया ॥ २५ ॥ यहां तक कि मैंने किरीट युक्त अपने मस्तक को उसके चरणों पर रख दिया, तब भी क्रोधोन्माद में आया हुआ बाली मुझ पर प्रसन्न नहीं हुआ ॥ २६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'वैर वृत्तान्त कथन' विषयक नवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

दसवां वर्ग

राज्य से निर्वासन की कथा

क्रोध के आवेग से अत्यन्त क्षुब्ध उस आये हुए बाली को हितकामना की दृष्टि से मैं ने प्रसन्न करने का प्रयत्न किया ॥ १ ॥ यह बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि उस शत्रु को मार कर आप कुशल पूर्वक लौट

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिष्ट्यासि कुशली प्राप्तो दिष्ट्यापि निहतो रिपुः । अनाथस्य हि मे नाथस्त्वमेकोऽनाथनन्दनः ॥ २ ॥
इदं बहुशलाकं ते पूर्णचन्द्रमिवोदितम् । छत्रं सवालव्यजनं प्रतीच्छस्व मयोद्यतम् ॥ ३ ॥
आर्तश्चाथ बिलद्वारि स्थितः संवत्सरं नृप । दृष्ट्वाहं शोणितं द्वारि बिलाच्चापि समुत्थितम् ॥ ४ ॥
शोकसंविग्नहृदयो भृशं व्याकुलितेन्द्रियः । अपिधाय बिलद्वारं गिरिशृङ्गेण तत्तदा ॥ ५ ॥
तस्माद्देशादपाक्रम्य किष्किधां प्राविशं पुनः । विषादाच्चिह मां दृष्ट्वा पौरैर्मन्त्रिभिरेव च ॥ ६ ॥
अभिषिक्तो न कामेन तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि । त्वमेव राजा मानार्हः सदा चाहं यथापुरम् ॥ ७ ॥
राजभावनियोगोऽयं मया त्वद्विरहात्कृतः । सामात्यपौरनगरं स्थितं निहतकण्टकम् ॥ ८ ॥
न्यासभूतमिदं राज्यं तव निर्यातयाम्यहम् । मा च रोषं कृथाः सौम्य मयि शत्रुनिबर्हण ॥ ९ ॥
याचे त्वां शिरसा राजन् मया बद्धोऽयमञ्जलिः । बलादस्मि समागम्य मन्त्रिभिः पुरवासिभिः ॥१०॥
राजभावे नियुक्तोऽहं शून्यदेशजिगीषया । स्निग्धमेवं ब्रुवाणं मां स तु निर्भर्त्स्य वानरः ॥११॥
धिक् त्वामिति च मामुक्त्वा बहु तत्तदुवाच ह । प्रकृतीश्च समानीय मन्त्रिणश्चैव संमतान् ॥१२॥
मामाह सुहृदां मध्ये वाक्यं परमगर्हितम् । विदितं वो यथा रात्रौ मायावी स महासुरः ॥१३॥
मां समाह्वयत क्रूरो युद्धकाङ्क्षी सुदुर्मतिः । तस्य तद्गर्जितं श्रुत्वा निःसृतोऽहं नृपालयात् ॥१४॥
अनुयातश्च मां तूर्णमयं भ्राता सुदारुणः । स तु दृष्ट्वैव मां रात्रौ सद्वितीयं महाबलः ॥१५॥

आये । हे आनन्दवर्धक ! आश्रयहीन मेरे लिये आप ही आश्रय हैं ॥ २ ॥ अनेक कमानियों वाला नवोदित चन्द्रमा के समान यह छत्र तथा राजकीय वालव्यजन आप स्वीकार कीजिये, जिसको आप की अनुपस्थिति में मैंने धारण किया था ॥ ३ ॥ हे राजन् ! दुःख पूर्वक सम्पूर्ण दिवस उस बिल के द्वार पर आप की प्रतीक्षा की । बिल के द्वार से निकलती हुई रक्त की धार को देख कर ॥ ४ ॥ मेरा हृदय शोक से संतप्त हो गया । अत्यन्त दुःख से व्याकुल इन्द्रियों वाले मैंने एक पर्वतीय विशाल चट्टान से उस बिल के द्वार को बन्द कर दिया ॥ ५ ॥ इस आशंका से कि भाई को मार कर अब यह मुझे मारने आयेगा, उस स्थान से भाग कर किष्किन्धा नगरी में लौट आया । खिन्न चित्त मुझको देख कर पुरवासी तथा मन्त्रियों ने ॥ ६ ॥ न इच्छा रहते हुए मेरा राज्याभिषेक किया । इस लिये मैं इस अपराध के लिये क्षमा चाहता हूं । हे माननीय ! आप ही इस देश के सर्वसम्मत राजा हैं । मैं पूर्ववत् आप का सेवक हूं ॥ ७ ॥ आप के अभाव में ही राजहीन इस पद पर लोगों ने मुझे अभिषिक्त किया था । मन्त्रिमण्डल के सहित नगर तथा सम्पूर्ण निष्कण्टक राज्य ॥ ८ ॥ जो धरोहर के रूप में था, वह मैं आप को लौटा रहा हूं । हे शत्रुओं के मान गंजन करने वाले कृपालु ! मुझ पर क्रोध मत कीजिये ॥ ९ ॥ हे राजन् ! बद्धाञ्जलि सिर झुका कर मैं आप से प्रार्थना करता हूं । पुरवासी तथा मन्त्रियों ने न इच्छा रखते हुए हठ पूर्वक ॥ १० ॥ मेरा अभिषेक किया । राजा के अभाव में शून्य समझ कर कहीं शत्रु आक्रमण न कर दें, इस लिये मुझे नियुक्त किया गया । स्नेह पूर्वक ऐसा कहने पर बाली ने मुझे फटकार कर कहा— ॥ ११ ॥ धिक्कार है तुमको ! तथा अनुयायी, माननीय मन्त्रिमण्डल तथा प्रजा को भी अत्यन्त निन्दित शब्द कहे ॥ १२ ॥ सभागत मित्रों के मध्य में उस ने मुझको अनेक निन्दित शब्द कहे । सभा के जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए बाली ने कहा—आप लोगों को मालूम ही है कि उस रात्रि को मायावी नामक महासुर ने ॥ १३ ॥ युद्ध की आकांक्षा से क्रोध पूर्वक मुझ को ललकारा । उसकी ललकार को सुन कर मैं राज भवन से निकल पड़ा ॥ १४ ॥ यह भयंकर भाई भी मेरे पीछे चल पड़ा । रात्रि में वह बलवान् मायावी दूसरे व्यक्ति के साथ मुझ को देख कर ॥१५॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राद्रवद्भयसंत्रस्तो वीक्ष्यावां तमनुद्रुतौ । अनुद्रुतश्च वेगेन प्रविवेश महाबिलम् ॥१६॥
तं प्रविष्टं विदित्वा तु सुघोरं सुमहद्बिलम् । अयमुक्तोऽथ मे भ्राता मया तु क्रूरदर्शनः ॥१७॥
अहत्वा नास्ति मे शक्तिः प्रतिगन्तुमितः पुरीम् । बिलद्वारि प्रतीक्ष त्वं यावदेनं निहन्म्यहम् ॥१८॥
स्थितोऽयमिति मत्वा तु प्रविष्टोऽहं दुरासदम् । तं च मे मार्गमाणस्य गतः संवत्सरस्तदा ॥१९॥
स तु दृष्टो मया शत्रुरनिर्वेदाद्भयावहः । निहतश्च मया तत्र सोऽसुरो बन्धुभिः सह ॥२०॥
तस्यास्यात्तु प्रवृत्तेन रुधिरौघेण तद्बिलम् । पूर्णमासीदुराक्रामं स्तनतस्तस्य भूतले ॥२१॥
सूदयित्वा तु तं शत्रुं विक्रान्तं दुन्दुभेः सुतम् । निष्क्रामन्नैव पश्यामि बिलस्यापिहितं मुखम् ॥२२॥
विक्रोशमानस्य तु मे सुग्रीवेति पुनः पुनः । यदा प्रतिवचो नास्ति ततोऽहं भृशदुःखितः ॥२३॥
पादप्रहारैस्तु मया बहुभिस्तद्विदारितम् । ततोऽहं तेन निष्क्रम्य पथा पुरमुपागतः ॥२४॥
अत्रानेनास्मि संरुद्धो राज्यं प्रार्थयतात्मनः । सुग्रीवेण नृशंसेन विस्मृत्य भ्रातृसौहृदम् ॥२५॥
एवमुक्त्वा तु मां तत्र वस्त्रेणैकेन वानरः । तदा निर्वासयामास वाली विगतसाध्वसः ॥२६॥
तेनाहमपविद्धश्च हृतदारश्च राघव । तद्भयाच्च मही कृत्स्ना क्रान्तेयं सवनार्णवा ॥२७॥
ऋश्यमूकं गिरिवरं भार्याहरणदुःखितः । प्रविष्टोऽस्मि दुराधर्षं वालिनः कारणान्तरे ॥२८॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं वैरानुकथनं महत् । अनागसा मया प्राप्तं व्यसनं पश्य राघव ॥२९॥

हम दोनों को आते हुए देख कर भयभीत हो कर वह भाग पड़ा। अत्यन्त वेग पूर्वक भागता हुआ एक विशेष पर्वतीय गुफा में प्रवेश कर गया ॥ १६ ॥ उस भयंकर विशाल गुफा में उस असुर के प्रविष्ट हो जाने पर इस क्रूरदर्शी कुटिल भाई से मैंने यह कहा ॥ १७ ॥ शत्रु को बिना मारे मैं नगरी को नहीं लौट सकता। जब तक मैं इस असुर को मार कर न लौटूं तब तक तुम बिल के द्वार पर मेरी प्रतीक्षा करो ॥ १८ ॥ यह यहां पर बैठा है, ऐसा समझ कर मैं उस भयंकर गुफा में प्रविष्ट हुआ। उस राक्षस को खोजते हुए मुझे सम्पूर्ण दिन बीत गया ॥ १९ ॥ उस शत्रु को मैंने देखा तथा थोड़े ही परिश्रम से बन्धु बांधवों के सहित उस भयंकर असुर को शीघ्र ही मार दिया ॥ २० ॥ मरते समय उसके शब्द से तथा उसकी रुधिर धारा से वह बिल परिपूर्ण हो रहा था, जिससे चलना फिरना कठिन हो गया ॥ २१ ॥ साधारण प्रयत्न से ही उस पराक्रमी दुन्दुभि पुत्र शत्रु को मार कर बाहर निकलना चाहा, किन्तु बिल का मुख ढका होने के कारण मुझे निकलने का मार्ग नहीं मिला ॥ २२ ॥ 'हे सुग्रीव, हे सुग्रीव' कई बार पुकारने पर भी जब कोई प्रत्युत्तर न मिला, तब मैं अत्यंत दुःखी हो गया ॥ २३ ॥ अनेक बार पैर के प्रहार से मैंने उस चट्टान को गिराया। पश्चात् उस बिल से निकल कर मैं इस नगर में आया ॥ २४ ॥ स्वयं राजा होने की इच्छा से इस राज्य लोलुप निर्दयी सुग्रीव ने भ्रातृप्रेम को भुला कर उसी बिल में मुझे बन्द कर दिया ॥ २५ ॥ सबके समक्ष सभा के बीच में ऐसा कह कर केवल एक वस्त्र के द्वारा निर्भय तथा निर्द्वन्द्व होकर बाली ने मुझे निर्वासित कर दिया ॥ २६ ॥ उसने मुझे निकाल दिया तथा मेरी स्त्री को भी छीन लिया। हे रामचन्द्र उसके भय से वन-पर्वत-समुद्र से परिपूर्ण सम्पूर्ण पृथ्वी का पर्यटन किया ॥ २७ ॥ स्त्रीहरण से दुःखित होकर पर्वत श्रेष्ठ ऋश्यमूक पर आश्रय लिया है। किसी कारण से यह पर्वत बाली के आक्रमण से रक्षित है ॥ २८ ॥ हे रामचन्द्र! सम्पूर्ण वैर का कारण मैंने आपको सुना दिया। आप देखिये, बिना अपराध ही मैं इस विपत्ति में पड़ गया हूँ ॥ २९ ॥ हे अभय प्रदान करने वाले वीर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वालिनस्तु भयार्तस्य सर्वलोकाभयंकर। कर्तुमर्हसि मे वीर प्रसादं तस्य निग्रहात् ॥३०॥
एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मसंहितम्। वचनं वक्तुमारेभे सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥३१॥
अमोघाः सूर्यसंकाशा ममैते निशिताः शराः। तस्मिन् वालिनि दुर्वृत्ते निपतिष्यन्ति वेगिताः ॥३२॥
यावत्तं नाभिपश्यामि तव भार्यापहारिणम्। तावत्स जीवेत्पापात्मा वाली चारित्रदूषकः ॥३३॥
आत्मानुमानात्पश्यामि मग्नं त्वां शोकसागरे। त्वामहं तारयिष्यामि कामं प्राप्स्यसि पुष्कलम्॥३४॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्यात्मनो हितम्। सुग्रीवः परमप्रीतः सुमहद्वाक्यमब्रवीत् ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे राज्यनिर्वासकथनं नाम दशमः सर्गः ॥१०॥

एकादशः सर्गः

वालिबलाविष्करणम्

रामस्य वचनं श्रुत्वा हर्षपौरुषवर्धनम्। सुग्रीवः पूजयांचक्रे राघवं प्रशशंस च ॥ १ ॥

रामचन्द्र! बाली के इस महान् भय से मेरी रक्षा कीजिये तथा उसके अत्याचारों से कृपापूर्वक मुझे बचाइये ॥ ३० ॥ सुग्रीव के ऐसा निवेदन करने पर महातेजस्वी धर्मात्मा रामचन्द्र हँसते हुए सुग्रीव के प्रति धर्मयुक्त यह वचन बोले ॥ ३१ ॥ सूर्य के समान देदीप्यमान तीखे ये मेरे अमोघ (व्यर्थ न जाने वाले) बाण उस दुराचारी बाली के ऊपर क्रोधपूर्वक प्रहार करेंगे ॥ ३२ ॥ तुम्हारी स्त्री का अपहरण करने वाले उस पापी बाली को जब तक मैं नहीं देखता, तब तक वह चरित्रहीन पापी जी लेवे ॥ ३३ ॥ अपने समान ही मैं तुम्हें शोक सागर में डूबता हुआ देख रहा हूँ। मैं इस विपत्ति से तुम्हें बचाऊँगा। अपनी खोई हुई विभूति को तुम निश्चय ही प्राप्त करोगे ॥ ३४ ॥ हर्ष तथा पुरुषार्थ को बढ़ाने वाले रामचन्द्र के इन वचनों को सुन कर सुग्रीव अति प्रसन्न हो गये और पुनः रामचन्द्र से बोले ॥ ३५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'राज्य से निर्वासन' विषयक दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवां सर्ग

बाली के बल का वर्णन

प्रसन्नता तथा पुरुषार्थ को बढ़ाने वाले रामचन्द्र के वचनों को सुनकर राजा सुग्रीव ने उनका सत्कार किया तथा बार २ प्रशंसा की ॥ १ ॥ प्रलयकाल के सूर्य के समान, मर्मभेदी, जाज्वल्यमान, तीक्ष्ण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असंशयं प्रज्वलितैस्तीक्ष्णैर्मर्मातिगैः शरैः । त्वं दहेः कुपितो लोकान् युगान्त इव भास्करः ॥ २ ॥
वालिनः पौरुषं यत्तद्यच्च वीर्यं धृतिश्च या । तन्ममैकमनाः श्रुत्वा विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ ३ ॥
[समुद्रात्पश्चिमात्पूर्वं दक्षिणादपि चोत्तरम् । क्रामत्यनुदिते सूर्ये वाली व्यपगतक्लमः ॥ ४ ॥
अग्राण्यारुह्य शैलानां शिखराणि महान्त्यपि । ऊर्ध्वमुत्पात्य तरसा प्रतिगृह्णाति वीर्यवान् ॥ ५ ॥
बहवः सारवन्तश्च वनेषु विविधा द्रुमाः । वालिना तरसा भग्ना बलं प्रथयतात्मनः ॥ ६ ॥
महिषो दुन्दुभिर्नाम कैलासशिखरप्रभः । बलं नागसहस्रस्य धारयामास वीर्यवान् ॥ ७ ॥
वीर्योत्सेकेन दुष्टात्मा वरदानाच्च मोहितः । जगाम सुमहाकायः समुद्रं सरितां पतिम् ॥ ८ ॥
ऊर्मिमन्तमभिक्रम्य सागरं रत्नसंचयम् । मह्यं युद्धं प्रयच्छेति तमुवाच महार्णवम् ॥ ९ ॥
ततः समुद्रो धर्मात्मा समुत्थाय महाबलः । अब्रवीद्वचनं राजन्नसुरं कालचोदितम् ॥१०॥
समर्थो नास्मि ते दातुं युद्धं युद्धविशारद । श्रूयतामभिधास्यामि यस्ते युद्धं प्रदास्यति ॥११॥
शैलराजो महारण्ये तपस्विशरणं परम् । शंकरश्वशुरो नाम्ना हिमवानिति विश्रुतः ॥१२॥
महाप्रस्रवणोपेतो बहुकन्दरनिर्दरः । स समर्थस्तव प्रीतिमतुलां कर्तुमाहवे ॥१३॥
तं भीत इति विज्ञाय समुद्रमसुरोत्तमः । हिमवद्वनमागच्छच्छरश्चापादिव च्युतः ॥१४॥
ततस्तस्य गिरेः श्वेता गजेन्द्रविपुलाः शिलाः । चिक्षेप बहुधा भूमौ दुन्दुभिर्विननाद च ॥१५॥

इन बाणों से क्रोधपूर्वक आप इन सब लोकों को भस्म कर सकते हैं ॥ २ ॥ बाली के पुरुषार्थ, पराक्रम तथा धैर्य को सावधानतापूर्वक मुझसे सुनिये, पश्चात् जो कुछ करना हो कीजिये ॥ ३ ॥ पश्चिम समुद्र से पूर्व समुद्र तक और दक्षिण समुद्र से उत्तर समुद्र तक बाली सूर्य उदय होने के पहले बिना परिश्रम परिक्रमा कर लौट आता था ॥ ४ ॥ ❀पर्वत की विशाल चोटियों को उठाकर आकाश में फेंक देता था और वह बलवान् बाली उसे ऊपर ही ऊपर पकड़ लेता था ॥ ५ ॥ बन के बड़े २ विशाल अनेक वृक्षों को अपने पराक्रम की परीक्षा करने के लिए उसने उखाड़ कर फेंक दिया ॥ ६ ॥ हजार हाथी का बल धारण वाला, पराक्रमी, कैलास पर्वत की चोटी के समान, महिषाकार दुन्दुभि नामक एक असुर था ॥ ७ ॥ वरदान पाकर उन्मत्त, मदावलिप्त विशालकाय वह दुष्टात्मा दुन्दुभि नदीपति समुद्र के समीप गया ॥ ८ ॥ लहरों से तरङ्गित, रत्नाकर समुद्र के पास जाकर उससे बोला—मुझसे तुम युद्ध करो ॥ ९ ॥ हे राजन्! महाबली धर्मात्मा समुद्र उठकर कालप्रेरित उस राक्षस से यह वचन बोला ॥ १० ॥ हे युद्धविशारद! तुम्हारे साथ युद्ध करने की मेरी सामर्थ्य नहीं है। सुनिये, मैं उसका नाम बताता हूँ जो तुम्हारे साथ युद्ध कर सकता है ॥ ११ ॥ विशाल वन में तपस्वियों को शरण देने वाले शंकर जी के स्वसुर पर्वतों के राजा हिमालय नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ १२ ॥ अनेक स्रोत तथा झरनों से युक्त तथा जिसमें अनेक कन्दरा हैं, वे ही तुम्हारी युद्ध-कामना पूर्ण कर सकते हैं ॥ १३ ॥ समुद्र को भयभीत समझ कर वह दुन्दुभि असुर धनुष से छूटे हुए बाण के समान हिमालय के वन में पहुँचा ॥ १४ ॥ वहाँ उसने हाथी के समान विशालकाय, श्वेत हिमालय शिलाओं को फेंका और नाना प्रकार का गर्जन आरम्भ किया ॥ १५ ॥ पश्चात् धवल मेघ के समान मंजुल आकृति को धारणकरते हुए

❀ ४—२५, २७ श्लोकों में जिस विषय का वर्णन आया है, उसके सृष्टि नियम के विरुद्ध, अतिरंजित तथा असंभव होने के कारण ये श्लोक प्रक्षिप्त माने गये हैं। इस प्रकार के श्लोक पद्म पुराण आदि ग्रंथों में रामोपाख्यान के प्रकरण में लिखे गये हैं। रामायण में जहाँ तहाँ प्रक्षिप्त भाग पुराणों से ही लिया गया है। इस लिए ये श्लोक वाल्मीकि के नहीं हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततः श्वेताम्बुदाकारः सौम्यः प्रीतिकराकृतिः । हिमवानब्रवीद्वाक्यं स्व एव शिखरे स्थितः ॥१६॥
क्लेष्टुमर्हसि मां न त्वं दुन्दुभे धर्मवत्सल । रणकर्मस्वकुशलस्तपस्विशरणं ह्यहम् ॥१७॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा गिरिराजस्य धीमतः । उवाच दुन्दुभिर्वाक्यं रोषात्संरक्तलोचनः ॥१८॥
यदि युद्धेऽसमर्थस्त्वं मद्भयाद्वा निरुद्यमः । तमाचक्ष्व प्रदद्यान्मे योऽद्य युद्धं युयुत्सतः ॥१९॥
हिमवानब्रवीद्वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः । अनुक्तपूर्वं धर्मात्मा क्रोधात्तमसुरोत्तमम् ॥२०॥
वाली नाम महाप्राज्ञः शक्रतुल्यपराक्रमः । अध्यास्ते वानरः श्रीमान् किष्किन्धामतुलप्रभाम् ॥२१॥
स समर्थो महाप्राज्ञस्तव युद्धविशारदः । द्वन्द्वयुद्धं महद्दातुं नमुचेरिव वासवः ॥२२॥
तं शीघ्रमभिगच्छ त्वं यदि युद्धमिहेच्छसि । स हि दुर्धर्षणो नित्यं शूरः समरकर्मणि ॥२३॥
श्रुत्वा हिमवतो वाक्यं क्रोधाविष्टः स दुन्दुभिः । जगाम तां पुरीं तस्य किष्किन्धां वालिनस्तदा ॥२४॥
धारयन् माहिषं रूपं तीक्ष्णशृङ्गो भयावहः । प्रावृषीव महामेघस्तोयपूर्णो नभस्तले ॥२५॥]
एकदा तद्द्वारमागम्य किष्किन्धाया महाबलः । ननर्द कम्पयन् भूमिं दुन्दुभिर्दुन्दुभिर्यथा ॥२६॥
[समीपस्थान् द्रुमान् भञ्जन् वसुधां दारयन् खुरैः । विषाणेनोल्लिखन् दर्पात्तद्द्वारं द्विरदो यथा ॥२७॥]
अन्तःपुरगतो वाली श्रुत्वा शब्दममर्षणः । निष्पपात सह स्त्रीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः ॥२८॥
मितं व्यक्ताक्षरपदं तमुवाचाथ दुन्दुभिम् । हरीणामीश्वरो वाली सर्वेषां वनचारिणाम् ॥२९॥
किमर्थं नगरद्वारमिदं रुद्ध्वा विनर्दसि । दुन्दुभे विदितो मेऽसि रक्ष प्राणान् महाबलः ॥३०॥

हिमवान् अपने शिखर पर से ही इस प्रकार बोले ॥ १६ ॥ हे धर्मवत्सल दुन्दुभि ! तुम मुझे क्लेश मत दो। मैं संग्राम कर्म में कुशल नहीं हूँ, मैं तो केवल तपस्वियों को शरण देता हूँ ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् गिरिराज हिमालय की इस बात को सुनकर असुर दुन्दुभि क्रोध से आँखें लाल करके बोला ॥ १८ ॥ यदि तुम युद्ध मैं असमर्थ हो या मेरे भय से तुम संग्राम नहीं करना चाहते हो, तो उसका नाम बताओ जो मुझ युयुत्सु से युद्ध कर सके ॥ १९ ॥ वाणी विशारद, धर्मात्मा हिमालय क्रोधपूर्वक उस दुन्दुभि असुर की बात को सुनकर उससे इस प्रकार बोला, जैसा किसी ने उत्तर नहीं दिया था ॥ २० ॥ महाबुद्धिमान्, प्रतापी, इन्द्र के समान पराक्रमी बाली नामक वनवासी अतुल प्रभावाली किष्किन्धा नगरी में निवास करता है ॥ २१ ॥ युद्ध विशारद, महाबुद्धिमान् वही बाली तुम्हारे साथ युद्ध करने में समर्थ है। जैसे नमुचि के साथ इन्द्र का युद्ध हुआ उसी प्रकार बाली तुम्हारे साथ द्वन्द्व युद्ध करेगा ॥ २२ ॥ यदि तुम संग्राम करना चाहते हो तो शीघ्र ही उसके पास जाओ। संग्राम में सदा वीरता पूर्वक कर्म करने वाला वह बाली किसी की ललकार को सहन नहीं करता ॥ २३ ॥ हिमालय की बात को सुनकर क्रोधी वह दुन्दुभि उस बाली की नगरी किष्किन्धा में पहुँचा ॥ २४ ॥ भैंसे का रूप धारण करके भयंकर, तीक्ष्ण सींगों वाला, वर्षा काल के समय आकाश में जलपूर्ण महामेघ के समान ॥ २५ ॥ एक बार दुन्दुभि के समान शब्द करने वाला महाबली दुन्दुभि असुर किष्किन्धा के द्वार पर आकर भूमि को कम्पायमान करता हुआ गर्जन करने लगा ॥ २६ ॥ आस पास के वृक्षों को तोड़ दिया। अपने खुरों से पृथ्वी को खोदने लगा मदावलेप में मदोन्मत्त हाथी के समान अपने सींगों से किष्किन्धा नगरी के द्वार को तोड़ने लगा ॥ २७ ॥ राजमहल में रहने वाले बाली ने दुन्दुभि के इस शब्द को सुना। उसके गर्जन को न सहन करता हुआ नक्षत्र मण्डित चन्द्र के समान तारा प्रभृति स्त्रियों से घिरा हुआ वह बाहर निकल आया ॥ २८ ॥ सम्पूर्ण वनवासियों का राजा बाली थोड़े तथा स्पष्ट अक्षर वाले पदों में दुन्दुभि से इस प्रकार बोला ॥ २९ ॥ नगरी के द्वार को रोक कर तुम क्यों इस प्रकार गर्ज रहे हो। हे दुन्दुभि ! मैं तुमको जानता हूं, इस लिये हे महाबली ! तुम अपने प्राणों की रक्षा करो ॥ ३० ॥ बुद्धिमान्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वानरेन्द्रस्य धीमतः । उवाच दुन्दुभिर्वाक्यं रोषात्संरक्तलोचनः ॥३१॥
न त्वं स्त्रीसंनिधौ वीर वचनं वक्तुमर्हसि । मम युद्धं प्रयच्छाद्य ततो ज्ञास्यामि ते बलम् ॥३२॥
अथवा धारयिष्यामि क्रोधमद्य निशामिमाम् । गृह्यतामुदयः स्वैरं कामभोगेषु वानर ॥३३॥
दीयतां संप्रदानं च परिष्वज्य च वानरान् । सर्वशाखामृगेन्द्रस्त्वं संसादय सुहृज्जनम् ॥३४॥
सुदृष्टां कुरु किष्किन्धां कुरुष्वात्मसमं पुरे । क्रीडस्व च सह स्त्रीभिरहं ते दर्पनाशनः ॥३५॥
यो हि मत्तं प्रमत्तं वा सुप्तं वा रहितं भृशम् । हन्यात्स भ्रूणहा लोके त्वद्विधं मदमोहितम् ॥३६॥
स प्रहस्यात्रवीन्मन्दं क्रोधात्तमसुरोत्तमम् । विसृज्य ताः स्त्रियः सर्वास्ताराप्रभृतिकास्तदा ॥३७॥
मत्तोऽयमिति मा मंस्था यद्यभीतोऽसि संयुगे । मदोऽयं संप्रहारेऽस्मिन् वीरपानं समर्थ्यताम् ॥३८॥
तमेवमुक्त्वा संक्रुद्धो मालामुत्क्षिप्य काञ्चनीम् । पित्रा दत्तां महेन्द्रेण युद्धाय व्यवतिष्ठत ॥३९॥
[विषाणयोर्गृहीत्वा तं दुन्दुभिं गिरिसंनिभम् । आविध्यत तदा वाली विनदन् कपिकुञ्जरः ॥४०॥]
वाली व्यापातयांचक्रे ननर्द च महास्वनम् । श्रोत्राभ्यामथ रक्तं तु तस्य सुस्राव पात्यतः ॥४१॥
तयोस्तु क्रोधसंरम्भात्परस्परजयैषिणोः । युद्धं समभवद्घोरं दुन्दुभेर्वानरस्य च ॥४२॥
अयुध्यत तदा वाली शक्रतुल्यपराक्रमः । मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिः शिलाभिः पादपैस्तथा ॥४३॥
परस्परं घ्नतोस्तत्र वानरासुरयोस्तदा । आसीद्धीनोऽसुरो युद्धे शक्रसूनुर्व्यवर्धत ॥४४॥

वनवासियों के सम्राट् बाली की इस बात को सुन कर क्रोध से आंखें लाल कर दुन्दुभि इस प्रकार बोला। ॥ ३१ ॥ हे वीर ! स्त्रियों के समीप तुम्हें इस प्रकार बात नहीं करनी चाहिये। इस समय तुम मेरे साथ युद्ध करो, तब तुम्हें मेरे बल का पता लगेगा ॥ ३२ ॥ अथवा इस रात्रि भर मैं अपने क्रोध को रोक रखूंगा। इस लिये हे वनवासी ! अभीप्सित भोगादि के लिये तुम इस समय का उपयोग ले सकते हो ॥ ३३ ॥ आप सम्पूर्ण वनवासियों के सम्राट् हैं, इस लिये जिसको जो कुछ देना है, दे दो। जिससे मिलना है, मिल लो। अपने शुभ चिन्तकों से जो बातें करनी हैं, कर लो और उन्हें सन्तुष्ट कर लो ॥ ३४ ॥ किष्किन्धा नगरी की जो देख भाल करनी है, कर लो। अपने स्थान पर जिसको नियुक्त करना हैं, नियुक्त कर दो। स्त्रियों के साथ आमोद-प्रमोद जो करना है, कर लो। प्राणों के सहित तुम्हारे दर्प को तोड़ने के लिए मैं उपस्थित हूं ॥ ३५ ॥ जो व्यक्ति मादकता से उन्मत्त, असावधान, पलायमान, दुर्बल, अस्त्रहीन तथा तुम्हारे जैसे कामासक्त लोगों पर प्रहार करता है, संसार में उसको भ्रूण हत्या का पातक लगता है ॥ ३६ ॥ दुन्दुभि असुर के ऐसा कहने पर तारा प्रभृति राजकीय स्त्रियों को वहां से हटा कर हंसता हुआ बाली क्रोधपूर्वक उस मन्द बुद्धि वाले दैत्य से बोला ॥ ३७ ॥ यदि संग्राम में तुम निर्भीक हो तो मुझे उन्मादी समझ कर मेरा अपमान मत करो। संग्राम के समय स्त्रियों का सम्पर्क युद्ध को प्रदीप्त करने वाला एक प्रकार का पान ही समझो ॥ ३८ ॥ क्रुद्ध हुआ बाली दुन्दुभि असुर से ऐसा कह कर पिता इन्द्र की दी हुई काञ्चनमय माला को उतार कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया ॥ ३९ ॥ पर्वत के समान विशाल काय दुन्दुभि के दोनों सींगों को पकड़ कर वनवासी श्रेष्ठ बाली गर्जते हुए उसे घुमाने लगा ॥ ४० ॥ गर्जन करते हुए बाली ने उसको भूमि पर पटक दिया। गिरे हुए उस असुर के कानों से रक्त स्राव होने लगा ॥ ४१ ॥ परस्पर विजय की अभिलाषा रखने वाले उस बाली और दुन्दुभि का क्रोध पूर्वक युद्ध होने लगा ॥ ४२ ॥ इन्द्र के समान पराक्रमी बाली ने उस असुर के साथ मुष्टि, घुटना, पैर, शिला तथा वृक्षों के द्वारा युद्ध किया ॥ ४३ ॥ परस्पर युद्ध में दोनों के प्रहार करते हुए असुर का बल क्षीण होने लगा। इन्द्रपुत्र बाली का बल बढ़ने लगा ॥ ४४ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तं तु दुन्दुभिमुद्यम्य धरण्यामभ्यपातयत् । युद्धे प्राणहरे तस्मिन्निष्पिष्टो दुन्दुभिस्तदा ॥४५॥
पपात च महाकायः क्षितौ पञ्चत्वमागतः । तं तोलयित्वा बाहुभ्यां गतसत्त्वमचेतनम् ॥४६॥
चिक्षेप बलवान् वाली वेगेनैकेन राक्षसम् ।
तस्य वेगप्रविद्धस्य वक्त्रात्क्षतजबिन्दवः । प्रपेतुर्मारुतोत्क्षिप्ता मतङ्गस्याश्रमं प्रति ॥४७॥
तान् दृष्ट्वा पतितांस्तस्य मुनिः शोणितविप्रुषः । क्रुद्धस्तस्य महाभागश्चिन्तयामास को न्वयम् ॥४८॥
येनाहं सहसा स्पृष्टः शोणितेन दुरात्मना । कोऽयं दुरात्मा दुर्बुद्धिरकृतात्मा च बालिशः ॥४९॥
इत्युक्त्वाथ विनिष्क्रम्य ददर्श मुनिपुंगवः । महिषं पर्वताकारं गतासुं पतितं भुवि ॥५०॥
स तु विज्ञाय तपसा वानरेण कृतं हि तत् । उत्ससर्ज महाशापं क्षेप्तारं वालिनं प्रति ॥५१॥
इह तेनाप्रवेष्टव्यं प्रविष्टस्य वधो भवेत् । वनं मत्संश्रयं येन दूषितं रुधिरस्रवैः ॥५२॥
संभग्नाः पादपाश्चेमे क्षिपतेहासुरीं तनुम् । समन्ताद्योजनं पूर्णमाश्रमं मामकं यदि ॥५३॥
आगमिष्यति दुर्बुद्धिर्व्यक्तं स न भविष्यति । ये चापि सचिवास्तस्य संश्रिता मामकं वनम् ॥५४॥
न च तैरिह वस्तव्यं श्रुत्वा यान्तु यथासुखम् । यदि तेऽपीह तिष्ठन्ति शपिष्ये तानपि ध्रुवम् ॥५५॥
वनेऽस्मिन् मामकेऽत्यर्थं पुत्रवत्परिपालिते । पत्राङ्कुरविनाशाय फलमूलाभवाय च ॥५६॥
दिवसश्चास्य मर्यादा यं द्रष्टा श्वोऽस्मि वानरम् । बहुवर्षसहस्राणि स वै शैलो भविष्यति ॥५७॥

उस प्राणहारी युद्ध में बाली ने दुन्दुभि को उठा कर भूमि पर पटक दिया तथा उसे पीस डाला ॥ ४५ ॥ विशाल शरीर वाला वह असुर पृथ्वी पर गिर पड़ा और मृत्यु को प्राप्त हो गया। प्राणहीन उस राक्षस को वेगवान् बाली ने दोनों भुजाओं से उठा कर दूर फैंक दिया ॥ ४६ ॥ वेग के द्वारा फैंके हुए उस असुर के मुख से निकले हुए रक्त विन्दु वायु के द्वारा मतङ्ग ऋषि के आश्रम में जाकर गिरे ॥ ४७ ॥ मुनि मतङ्ग उन गिरे हुए शोणित विन्दुओं को देख कर बड़े क्रुद्ध हो गये। उस क्रोधावेग में यह चिन्ता करने लगे कि यह किसका काम है ॥ ४८ ॥ जिस दुरात्मा ने मुझे तथा मेरे आश्रम को शोणित विन्दुओं से अपवित्र किया है, वह मूर्ख, दुर्बुद्धि, दुरात्मा तथा चरित्रहीन कौन है ॥ ४९ ऐसा कह कर उस श्रेष्ठ मुनि मतङ्ग ने अपने आश्रम से बाहर निकल कर विशाल काय, काले वर्ण वाले निर्जीव एक असुर को भूमि पर पड़े देखा ॥ ५० ॥ तपश्चर्या के योगबल से, यह काम किसी वनवासी का है, ऐसा जान कर उस फेंकने वाले बाली को उन्होंने घोर शाप दे दिया ॥ ५१ ॥ जिसने रक्त विन्दुओं से मेरे स्थान को दूषित किया है, वह यहां प्रवेश न करे, यदि करे तो उसकी मृत्यु हो ॥ ५२ ॥ उस आसुरी शरीर को फैंकते हुए जिसने इस आश्रम के वृक्षों को तोड़ा है, वह मेरे आश्रम के चारों ओर एक योजन के बीच में नहीं आ सकता ॥ ५३ ॥ यदि वह दुर्बुद्धि मेरे आश्रम से एक योजन के बीच आयेगा, तो निश्चय ही उसका अस्तित्व न रहेगा। इसके मन्त्रिमण्डल के भी कोई सदस्य जो मेरे इस वन में रहते हैं ॥ ५४ ॥ वे भी हमारे इस वन में न रहें। मेरी इस घोषणा को सुन कर वे भी जहां जाना चाहते हैं सुखपूर्वक वहां चले जायें। मेरी घोषणा के विरुद्ध यदि वे यहां ठहरते हैं, तो मैं उनको भी निश्चय ही शाप दूंगा ॥ ५५ ॥ पुत्र के समान रक्षित इस मेरे वन में रहने वाले फल-फूल-पत्रांकुर का जो विनाश करेगा, वह भी मेरे द्वारा अभिशप्त होगा ॥ ५६ ॥ शाप वाली इस मर्यादा को मैं पुनः घोषित करता हूं कि आज के पश्चात् बाली का कोई व्यक्ति यदि यहां दिखाई देगा, तो वह भी दीर्घकाल के लिये जड़ के समान हो जायेगा ॥ ५७ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततस्ते वानराः श्रुत्वा गिरं मुनिसमीरिताम् । निश्चक्रमुर्वनात्तस्मात्तान् दृष्ट्वा वालिरब्रवीत् ॥५८॥
किं भवन्तः समस्ताश्च मतङ्गवनवासिनः । मत्समीपमनुप्राप्ता अपि स्वस्ति वनौकसाम् ॥५९॥
ततस्ते कारणं सर्वं तदा शापं च वालिनः । शशंसुर्वानराः सर्वे वालिने हेममालिने ॥६०॥
एतच्छ्रुत्वा तदा वाली वचनं वानरेरितम् । स महर्षिं तमासाद्य याचते स्म कृताञ्जलिः ॥६१॥
महर्षिस्तमनादृत्य प्रविवेशाश्रमं तदा । शापधारणभीतस्तु वाली विह्वलतां गतः ॥६२॥
ततः शापभयाद्भीत ऋश्यमूकं महागिरिम् । प्रवेष्टुं नेच्छति हरिर्द्रष्टुं वापि नरेश्वर ॥६३॥
तस्याप्रवेशं ज्ञात्वाहमिदं राम महावनम् । विचरामि सहामात्यो विषादेन विवर्जितः ॥६४॥
एषोऽस्थिनिचयस्तस्य दुन्दुभेः संप्रकाशते । वीर्योत्सेकान्निरस्तस्य गिरिकूटोपमो महान् ॥६५॥
इमे च विपुलाः सालाः सप्त शाखावलम्बिनः । यत्रैकं घटते वाली निष्पत्रयितुमोजसा ॥६६॥
एतदस्यासमं वीर्यं मया राम प्रकीर्तितम् । कथं तं वालिनं हन्तुं समरे शक्ष्यसे नृप ॥६७॥
तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं प्रहसल्लक्ष्मणोऽब्रवीत् । कस्मिन् कर्मणि निर्वृत्ते श्रद्दध्या वालिनो वधम् ॥६८॥
तमुवाचाथ सुग्रीवः सप्त सालानिमान् पुरा । एवमेकैकशो वाली विव्याधाथ स चासकृत् ॥६९॥
रामो विदारयेदेषां बाणेनैकेन चेद्द्रुमम् । वालिनं निहतं मन्ये दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥७०॥
हतस्य राक्षसस्यास्थि पादेनैकेन लक्ष्मण । उद्यम्याथ प्रक्षिपेच्चेत्तरसा द्वे धनुःशते ॥७१॥

मुनि मतङ्ग की इस घोषणा को सुन कर वे सभी वनवासी मतङ्ग के वन से बाहर निकल गये। वन से निकले हुए उनको देख कर बाली बोला ॥ ५८ ॥ मतङ्गवन में निवास करने वाले मेरे अनुयायियों ! आप लोग वन को छोड़ कर मेरे समीप क्यों आये। वनवासियों की कुशल तो है ॥ ५९ ॥ बाली के पूछने पर वे मतङ्गवन वासी अपने आने का कारण तथा मतङ्ग ऋषि के शाप को स्वर्णमयी माला धारण करने वाले बाली से निवेदन करने लगे ॥ ६० ॥ वनवासियों के द्वारा शाप की बात को सुन कर बाली मतङ्ग मुनि के समीप जा कर करबद्ध उनसे प्रार्थना करने लगा ॥ ६१ ॥ महर्षि उसकी बात को अनसुनी कर अपने आश्रम में प्रवेश कर गये। शाप की भयंकरता से बाली अत्यन्त विह्वल हो गया ॥ ६२ ॥ हे राजा रामचन्द्र ! ऋषि के शाप के भय से वह बाली इस विशाल ऋश्यमूक पर्वत पर न आता ही है और न इसे देखने की इच्छा करता है ॥ ६३ ॥ हे रामचन्द्र ! उस बाली का इस महावन में प्रवेश नहीं हो सकता, इसे जान कर ही अपने मन्त्रियों के साथ मैं इस वन में निर्द्वन्द्व घूमता हूं ॥ ६४ ॥ यह दुन्दुभि असुर का विशाल काय अस्थिपंजर है जिसको बलदर्प से दर्पित बाली ने उठा कर फैंका था ॥ ६५ ॥ यह सात शाखाओं वाले साल वृक्षों की पंक्ति है। इन में से किसी एक को बाली अपने ओज पराक्रम से कम्पित कर पत्रहीन कर देता है ॥ ६६ ॥ हे रामचन्द्र ! बाली का अतुल पराक्रम आप के सामने मैंने वर्णन किया। इस लिये, हे राजन् ! आप बाली को संग्राम में कैसे मार सकते हैं, आप ही जानें ॥ ६७ ॥ सुग्रीव के ऐसा कहने पर हंसते हुए लक्ष्मण उन से बोले—किस काम के करने से आप को रामचन्द्र के द्वारा बालि-वध का विश्वास होगा ॥ ६८ ॥ उस समय सुग्रीव लक्ष्मण से यह बोले—सामने जो ये सात साल के वृक्ष दिखाई देते हैं, इनमें से एक २ वृक्ष को बाली अनेक बार भेदन कर चुका है ॥ ६९ ॥ यदि रामचन्द्र अपने बाण से इन में से एक साल वृक्ष का भी भेदन कर देवें, तो रामचन्द्र की इस वीरता को देखकर मुझको बाली के मरने का पूर्ण विश्वास हो जायेगा ॥ ७० ॥ मरे हुए इस राक्षस के अस्थि पंजर को रामचन्द्र वेग से अपने पैर के द्वारा यदि २०० धनुष फेंक देवें, तो मुझे बालि-वध का विश्वास हो जायेगा ॥ ७१ ॥ आंखों का प्रान्त जिस का रक्तवर्ण हो रहा है ऐसे सुग्रीव ऐसा कह कर कुछ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवमुक्त्वा तु सुग्रीवो रामं रक्तान्तलोचनः । ध्यात्वा मुहूर्तं काकुत्स्थं पुनरेव वचोऽब्रवीत् ॥७२॥
शूरश्च शूरमानी च प्रख्यातबलपौरुषः । बलवान् वानरो वाली संयुगेष्वपराजितः ॥७३॥
दृश्यन्ते चास्य कर्माणि दुष्कराणि सुरैरपि । यानि संचिन्त्य भीतोऽहमृश्यमूकं समाश्रितः ॥७४॥
तमजय्यमधृष्यं च वानरेन्द्रममर्षणम् । विचिन्तयन्न मुञ्चामि ऋश्यमूकमहं त्विमम् ॥७५॥
उद्विग्नः शङ्कितश्चापि विचरामि महावने । अनुरक्तैः सहामात्यैर्हनुमत्प्रमुखैर्वरैः ॥७६॥
उपलब्धं च मे श्लाघ्यं सन्मित्रं मित्रवत्सल । त्वामहं पुरुषव्याघ्र हिमवन्तमिवाश्रितः ॥७७॥
किं तु तस्य बलज्ञोऽहं दुर्भ्रातुर्बलशालिनः । अप्रत्यक्षं तु मे वीर्यं समरे तव राघव ॥७८॥
न खल्वहं त्वां तुलये नावमन्ये न भीषये । कर्मभिस्तस्य भीमैस्तु कातर्यं जनितं मम ॥७९॥
कामं राघव ते वाणी प्रमाणं धैर्यमाकृतिः । सूचयन्ति परं तेजो भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥८०॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य महात्मनः । स्मितपूर्वमथो रामः प्रत्युवाच हरिं प्रभुः ॥८१॥
यदि न प्रत्ययोऽस्मासु विक्रमे तव वानर । प्रत्ययं समरे श्लाघ्यमहमुत्पादयामि ते ॥८२॥
एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं सान्त्वं लक्ष्मणपूर्वजः । राघवो दुन्दुभेः कायं पादाङ्गुष्ठेन लीलया ॥८३॥
तोलयित्वा महाबाहुश्चिक्षेप द्वे धनुःशते । असुरस्य तनुं शुष्कां पादाङ्गुष्ठेन वीर्यवान् ॥८४॥
क्षिप्तं दृष्ट्वा ततः कायं सुग्रीवः पुनरब्रवीत् । लक्ष्मणस्याग्रतो रामं तपन्तमिव भास्करम् ॥८५॥

विचारमग्न हो गये । पश्चात् उन्होंने रामचन्द्र से कहा ॥ ७२ ॥ बाली शौर्यसम्पन्न है तथा अपने को सदा शूर समझता है । उस का बल पराक्रम प्रसिद्ध है । बलवान् बाली संग्राम में अजेय माना जाता है ॥ ७३ ॥ देवता लोग भी इस के साहसिक कर्मों को बड़े ध्यान से देखते हैं, जिन को सोच कर ही भयभीत मैंने इस ऋश्यमूक पर्वत का आश्रय लिया है ॥ ७४ ॥ अमर्षी उस बाली के अजेय, अक्षुण्ण बल पराक्रम की चिन्ता करते हुए ही मैं इस ऋश्यमूक पर्वत को नहीं छोड़ता ॥ ७५ ॥ उद्विग्न तथा शोकित मन वाला मैं अपने भक्त हनुमान् प्रमुख अपने मन्त्रियों के साथ इस महावन में अपना समय व्यतीत कर रहा हूं ॥ ७६ ॥ हे मित्रवत्सल रामचन्द्र ! मैंने आप जैसे सज्जन मित्र को प्राप्त कर लिया है । हे नरकेसरी ! इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिमालय पर्वत के समान अचल मित्र का मैंने आश्रय लिया है ॥ ७७ ॥ बलशाली अपने दुष्ट भाई बाली के बल को मैं जानता हूँ, किन्तु हे रामचन्द्र ! आप के बल-पराक्रम से मैं अभी तक अनभिज्ञ हूँ ॥ ७८ ॥ मैं आपके बल की परीक्षा नहीं कर रहा हूँ, न आप को डरा रहा हूँ और न आप का अपमान ही कर रहा हूँ । बाली के उन भयंकर अमानुष कर्मों को देखकर दीन दुःखी मैं अपनी दीनता आपके समक्ष प्रकट कर रहा हूँ ॥ ७९ ॥ हे रामचन्द्र ! इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप की वाणी, आपकी लम्बाई, चौड़ाई, आप का धैर्य तथा आकृति भस्म से आच्छादित अग्नि के समान आप के तेज का परिचय दे रहे हैं ॥ ८० ॥ महात्मा सुग्रीव के इन वचनों को सुनकर रामचन्द्र हँसते हुए राजा सुग्रीव से बोले ॥ ८१ ॥ हे राजन् ! यदि आपको मेरे पराक्रम पर विश्वास नहीं है, तो मैं संग्राम में अपने श्लाघनीय पराक्रम का परिचय दे दूँगा ॥ ८२ ॥ इन बातों को कह कर सुग्रीव को सान्त्वना देते हुए दुन्दुभि असुर के अस्थिपंजर को बिना प्रयास ही अपने पैर के अँगूठे से ॥ ८३ ॥ उठाकर महाबाहु रामचन्द्र ने दो सौ धनुष दूर फेंक दिया ॥ ८४ ॥ रामचन्द्र के द्वारा अस्थिपंजर को फेंका हुआ देखकर लक्ष्मण तथा उन वनवासी वीरों के समक्ष ही देदीप्यमान सूर्य के समान कान्ति वाले रामचन्द्र से सुग्रीव अर्थयुक्त ये वचन बोले ॥ ८५ ॥ हे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हरीणामग्रतो वीरमिदं वचनमर्थवत् ।
आर्द्रः समांसः प्रत्यग्रः क्षिप्तः कायः पुरा सखे । परिश्रान्तेन मत्तेन भ्रात्रा मे वालिना तदा ॥८६॥
लघुः संप्रति निर्मांसस्तृणभूतश्च राघव । क्षिप्तमेवं प्रहर्षेण भवता रघुनन्दन ॥८७॥
नात्र शक्यं बलं ज्ञातुं तव वा तस्य वाधिकम् । आर्द्रं शुष्कमिति ह्येतत्सुमहद्राघवान्तरम् ॥८८॥
स एव संशयस्तात तव तस्य च यद्बले । सालमेकं तु निर्भिन्द्या भवेद्व्यक्तिर्बलाबले ॥८९॥
कृत्वेदं कार्मुकं सज्यं हस्तिहस्तमिवाततम् । आकर्णपूर्णमायम्य विसृजस्व महाशरम् ॥९०॥
इमं हि सालं प्रहितस्त्वया शरो न संशयोऽत्रास्ति विदारयिष्यति ।
अलं विमर्शेन मम प्रियं ध्रुवं कुरुष्व राजात्मज शापितो मया ॥ ९१ ॥
यथा हि तेजःसु वरः सदा रविर्यथा हि शैलो हिमवान् महाद्रिषु ।
यथा चतुष्पात्सु च केसरी वरस्तथा नराणामसि विक्रमे वरः ॥ ९२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे वालिबलाविष्करणं नाम एकादशः सर्गः ॥११॥

द्वादशः सर्गः

सुग्रीवप्रत्ययदानम्

एतच्च वचनं श्रुत्वा सुग्रीवेण सुभाषितम् । प्रत्ययार्थं महातेजा रामो जग्राह कार्मुकम् ॥ १ ॥

मित्र ! मेरे थके हुए भाई बाली ने जिस समय इस असुर के शरीर को पहले फेंका था, उस समय इसका शरीर तत्काल मृत्यु होने के कारण गीला तथा मांस से पूर्ण था (अर्थात् उस समय इसका भार बहुत अधिक था) ॥ ८६ ॥ हे रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र ! इस समय यह अस्थिपंजर माँस-मज्जा से रहित तिनके के समान है और फेंकने वाले आप हरेक प्रकार से स्वस्थ तथा प्रसन्न हैं ॥ ८७ ॥ इसलिये आपके इस कृत्य से यह नहीं जाना जा सकता कि आप में बल अधिक है या बाली में । हे रामचन्द्र ! गीले और सूखे में बहुत अन्तर होता है ॥ ८८ ॥ हे तात ! आप तथा बाली के बलाबल में अभी वही संशय रह गया । यदि आप इन साल वृक्षों में से एक का भी भेदन कर देवें, तो बलाबल का निर्णय हो जायेगा ॥ ८९ ॥ हाथी के सूँड के समान इस विशाल धनुष पर आप प्रत्यञ्चा को आरोपित कीजिये तथा कर्ण पर्यन्त खींच कर बाण को छोड़िये ॥ ९० ॥ आप के छोड़े हुए बाण से यह साल वृक्ष अवश्यमेव विदीर्ण हो जायेगा, इसमें सन्देह नहीं । इसलिये अब अधिक विचार मत कीजिये, मेरे इस ध्रुव प्रिय कार्य को आप कीजिये । हे राजकुमार ! मैं आपको अपनी शपथ देता हूँ ॥ ९१ ॥ जैसे तेजों में सूर्य सबसे श्रेष्ठ है, पर्वतों में हिमालय सबसे श्रेष्ठ है, चतुष्पदों में मृगराज सिंह सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार पराक्रमी सभी मनुष्यों में आप श्रेष्ठ हैं ॥ ९२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'बालि के बल का वर्णन' विषयक ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

बारहवां सर्ग

सुग्रीव को विश्वास दिलाना

सुग्रीव के मनोहारी वचनों को सुन कर उन्हें विश्वास दिलाने के लिये राम ने अपने धनुष को उठाया ॥ १ ॥ अपने विशाल धनुष को लेकर उस पर बाण का संधान किया । पश्चात् प्रत्यञ्चा के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स गृहीत्वा धनुर्घोरं शरमेकं च मानदः । सालमुद्दिश्य चिक्षेप ज्यास्वनैः पूरयन् दिशः ॥ २ ॥
स विसृष्टो बलवता बाणः स्वर्णपरिष्कृतः । भित्त्वा सालान् गिरिप्रस्थं सप्तभूमिं विवेश ह ॥ ३ ॥
प्रविष्टश्च मुहूर्तेन धरां भित्त्वा महाजवः । निष्पत्य च पुनस्तूर्णं स्वतूणीं पुनराविशत् ॥ ४ ॥
तान् दृष्ट्वा सप्त निर्भिन्नान् सालान् वानरपुंगवः । रामस्य शरवेगेन विस्मयं परमं गतः ॥ ५ ॥
स मूर्ध्ना न्यपतद्भूमौ प्रलम्बीकृतभूषणः । सुग्रीवः परमप्रीतो राघवाय कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥
इदं चोवाच धर्मज्ञं कर्मणा तेन हर्षितः । रामं सर्वास्त्रविदुषां श्रेष्ठं शूरमवस्थितम् ॥ ७ ॥
सेन्द्रानपि सुरान् सर्वांस्त्वं बाणैः पुरुषर्षभ । समर्थः समरे हन्तुं किं पुनर्वालिनं प्रभो ॥ ८ ॥
येन सप्त महासाला गिरिर्भूमिश्च दारिताः । बाणेनैकेन काकुत्स्थ स्थाता ते को रणाग्रतः ॥ ९ ॥
अद्य मे विगतः शोकः प्रीतिरद्य परा मम । सुहृदं त्वां समासाद्य महेन्द्रवरुणोपमम् ॥१०॥
तमद्यैव प्रियार्थं मे वैरिणं भ्रातृरूपिणम् । वालिनं जहि काकुत्स्थ मया बद्धोऽयमञ्जलिः ॥११॥
ततो रामः परिष्वज्य सुग्रीवं प्रियदर्शनम् । प्रत्युवाच महाप्राज्ञो लक्ष्मणानुमतं वचः ॥१२॥
अस्माद्गच्छेम किष्किन्धां क्षिप्रं गच्छ त्वमग्रतः । गत्वा चाह्वय सुग्रीव वालिनं भ्रातृगन्धिनम् ॥१३॥
सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम् । वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन् गहने वने ॥१४॥
सुग्रीवो व्यनदद्घोरं वालिनो ह्वानकारणात् । गाढं परिहितो वेगान्नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम् ॥१५॥

रव से सम्पूर्ण दिशाओं को गुञ्जायमान करते हुए साल वृक्ष को लक्ष्य कर के छोड़ दिया ॥ २ ॥ स्वर्ण भूषित वह बाण बलवान् रामचन्द्र के द्वारा फेंके जाने पर सात साल वृक्षों को काटता हुआ तथा भयंकर रव से पर्वत तथा उस वनस्थली को गुञ्जारित करता हुआ भूमि में प्रवेश कर गया ॥ ३ ॥ वह मण्डलाकार छोड़ा हुआ वेगवान् बाण शीघ्र सप्त साल वृक्षों को काट कर पुनः तूणी में प्रवेश कर गया । (अर्थात् राम ने तूणी में रख लिया) ॥४॥ रामचन्द्र के बाण वेग से सप्त साल वृक्षों को कटा हुआ देखकर वन वासियों में श्रेष्ठ राजा सुग्रीव अत्यन्त विस्मित हो गये ॥ ५ ॥ रामचन्द्र के इस विस्मयकारी कृत्य को देखकर सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न हो गये तथा कृताञ्जलि सिर झुकाते हुए रामचन्द्र के चरणों में प्रणाम किया ॥ ६ ॥ उस विस्मयकारी कर्म से प्रसन्न होते हुए राजा सुग्रीव शस्त्रास्त्र विशारद धार्मिक वीर रामचन्द्र से यह बोले ॥ ७ ॥ हे पुरुषोत्तम रामचन्द्र! इन बाणों से देवताओं के सहित देवेन्द्र को भी आप मार सकते हैं, फिर बाली का तो कहना ही क्या ॥ ८ ॥ हे रामचन्द्र ! जिस व्यक्ति ने अपने एक बाण से पर्वतीय भूमि के सात साल वृक्षों को काट दिया, ऐसे आप के समक्ष संग्राम में कौन ठहर सकता है ॥ ९ ॥ आप जैसे वरुण और इन्द्र के समान परम मित्र को प्राप्त कर आज मेरे सम्पूर्ण शोक नष्ट हो गये तथा मेरे हर्ष का कोई पारावार नहीं ॥ १० ॥ मेरी शान्ति के लिये भ्रातृ रूप उस वैरी बाली को आज ही मारिये । हे रामचन्द्र ! मैं आप को हाथ जोड़ता हूं ॥ ११ ॥ प्रियदर्शी सुग्रीव का आलिंगन करते हुए बुद्धि विशारद रामचन्द्र लक्ष्मण के विचारों से युक्त यह वचन बोले ॥ १२ ॥ यहां से हम लोग शीघ्र ही किष्किन्धा में चलते हैं, तुम आगे चलो । वहां जा कर हे सुग्रीव ! केवल नाम मात्र के अपने भाई को बुलाओ ॥ १३ ॥ वे सभी शीघ्र ही बाली की नगरी किष्किन्धा में जाकर पास के गहन वन में वृक्षों में छिप कर बैठ गये ॥ १४ ॥ बाली को बुलाने के लिये कमर कस कर सुग्रीव ने भयंकर घोर गर्जन करना आरम्भ कर दिया, जिस की ध्वनि से आकाश गुञ्जायमान हो गया ॥ १५ ॥ अपने भाई का घोर गर्जन सुन कर क्रुद्ध हुआ महाबली बाली रोष में आकर वहां से इस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तं श्रुत्वा निनदं भ्रातुः क्रुद्धो वाली महाबलः । निष्पपात सुसंरब्धो भास्करोऽस्ततटादिव ॥१६॥
ततः सुतुमुलं युद्धं वालिसुग्रीवयोरभूत् । गगने ग्रहयोर्घोरं बुधाङ्गारकयोरिव ॥१७॥
तलैरशनिकल्पैश्च वज्रकल्पैश्च मुष्टिभिः । जघ्नतुः समरेऽन्योन्यं भ्रातरौ क्रोधमूर्छितौ ॥१८॥
ततो रामो धनुष्पाणिस्तावुभौ समुदीक्ष्य तु । अन्योन्यसदृशौ वीरावुभौ देवाविवाश्विनौ ॥१९॥
यन्नावगच्छत्सुग्रीवं वालिनं वापि राघवः । ततो न कृतवान् बुद्धिं मोक्तुमन्तकरं शरम् ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे भग्नः सुग्रीवस्तेन वालिना । अपश्यन् राघवं नाथमृश्यमूकं प्रदुद्रुवे ॥२१॥
क्लान्तो रुधिरसिक्ताङ्गः प्रहारैर्जर्जरीकृतः । वालिनाभिद्रुतः क्रोधात्प्रविवेश महावनम् ॥२२॥
तं प्रविष्टं वनं दृष्ट्वा वाली शापभयार्दितः । मुक्तो ह्यसि त्वमित्युक्त्वा संनिवृत्तो महाद्युतिः ॥२३॥
राघवोऽपि सह भ्रात्रा सह चैव हनूमता । तदेव वनमागच्छत्सुग्रीवो यत्र वानरः ॥२४॥
तं समीक्ष्यागतं रामं सुग्रीवः सहलक्ष्मणम् । ह्रीमान् दीनमुवाचेदं वसुधामवलोकयन् ॥२५॥
आह्वयस्वेति मामुक्त्वा दर्शयित्वा च विक्रमम् । वैरिणा घातयित्वा च किमिदानीं त्वया कृतम् ॥२६॥
तामेव वेलां वक्तव्यं त्वया राघव तत्त्वतः । वालिनं न निहन्मीति ततो नाहमितो व्रजे ॥२७॥
तस्य चैवं ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । करुणं दीनया वाचा राघवः पुनरब्रवीत् ॥२८॥
सुग्रीव श्रूयतां तात क्रोधश्च व्यपनीयताम् । कारणं येन बाणोऽयं न मया स विसर्जितः ॥२९॥
अलंकारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च । त्वं च सुग्रीव वाली च सदृशौ स्थः परस्परम् ॥३०॥

प्रकार निकल पड़ा जैसे अस्ताचल को प्राप्त होने वाला सूर्य हो (अर्थात् क्रोध से जिस की आकृति रक्त वर्ण की हो गई थी) ॥ १६ ॥ पश्चात् बाली तथा सुग्रीव का परस्पर इस प्रकार युद्ध होने लगा जैसे गगन में बुद्ध और मंगल ग्रह का युद्ध होता है ॥ १७ ॥ वज्र के समान अपने तमांचे तथा घूंसे के द्वारा क्रोध से मूर्छित दोनों भाई एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥ १८ ॥ धनुर्धारी राम ने उन दोनों को ध्यान से देखा। वे दोनों वीर अश्विनीकुमारों के सदृश वेश भूषा में समान आकृति वाले दिखाई दिये ॥ १९ ॥ इन में कौन सुग्रीव है तथा कौन बाली है, यह राम न जान सके। ऐसी अवस्था में प्राण घातक बाण को उन्होंने नहीं छोड़ा ॥ २० ॥ इसी बीच में बाली के प्रहार से आहत सुग्रीव अपने रक्षक रामचन्द्र को न देखते हुए ऋश्यमूक पर्वत की ओर दौड़ पड़े ॥ २१ ॥ थका हुआ, बाली के प्रहार से जिसका शरीर शिथिल हो गया है, जो रुधिर से भीग गया है, ऐसा सुग्रीव क्रोधपूर्वक बाली के पीछा करने पर भी उस महावन में प्रवेश कर गया ॥ २२ ॥ सुग्रीव के मतंग वन में प्रवेश कर जाने पर 'जाओ तुम बच गये' ऐसा कह कर शाप के भय से बाली आगे न बढ़ कर पीछे लौट पड़ा ॥२३॥ रामचन्द्र भी अपने भाई लक्ष्मण तथा हनुमान् के साथ उसी वन में लौट आये, जहाँ सुग्रीव निवास करते थे ॥ २४ ॥ लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र को आया हुआ देख कर दुःखपूर्वक लज्जित होते हुए तथा भूमि की ओर देखते हुए सुग्रीव बोले ॥ २५ ॥ आपने बाली को बुलाइये, ऐसा कहकर तथा अपने पराक्रम को दिखलाकर पुनः शत्रु से मेरी यह दुर्गति कराई, आप ने यह क्या किया ॥ २६ ॥ हे रघुकुलशिरोमणि ! आप उसी समय निश्चयपूर्वक यह कह देते कि मैं बाली को नहीं मारूँगा, तो मैं यहाँ से जाता ही नहीं ॥ २७ ॥ करुणा तथा दीनतापूर्वक महात्मा सुग्रीव के ऐसा कहने पर मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र बोले ॥ २८ ॥ हे तात सुग्रीव ! क्रोध को छोड़ दो, मेरी उस बात को सुनो जिस कारण मैंने बाली पर बाण नहीं चलाया ॥ २९ ॥ अलंकार, वेश, लम्बाई-चौड़ाई तथा गति में हे सुग्रीव ! तुम और बाली दोनों समान ही हो ॥ ३० ॥ स्वर, कान्ति, दृष्टि, विक्रम, शब्द ध्वनि इन सब के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानर । विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये ॥३१॥
ततोऽहं रूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम । नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिबर्हणम् ॥३२॥
जीवितान्तकरं घोरं सादृश्यात्तु विशङ्कितः । मूलघातो न नौ स्याद्धि द्वयोरपि कृतो मया ॥३३॥
त्वयि वीरे विपन्ने हि अज्ञानाल्लाघवान्मया । मौढ्यं च मम बाल्यं च ख्यापितं स्याद्धरीश्वर ॥३४॥
दत्ताभयवधो नाम पातकं महदुच्यते । अहं च लक्ष्मणश्चैव सीता च वरवर्णिनी ॥३५॥
त्वदधीना वयं सर्वे वनेऽस्मिञ्शरणं भवान् । तस्माद्युध्यस्व भूयस्त्वं मा मा शङ्कीश्च वानर ॥३६॥
अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव पश्य वालिनमाहवे । निरस्तमिषुणैकेन वेष्टमानं महीतले ॥३७॥
अभिज्ञानं कुरुष्व त्वमात्मनो वानरेश्वर । येन त्वामभिजानीयां द्वन्द्वयुद्धमुपागतम् ॥३८॥
गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम् । कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥३९॥
ततो गिरितटे जातामुत्पाट्य कुसुमाकुलाम् । लक्ष्मणो गजपुष्पीं तां तस्य कण्ठे व्यसर्जयत् ॥४०॥
स तया शुशुभे श्रीमाञ्छुभया कण्ठसक्तया । मालयेव बलाकानां ससन्ध्य इव तोयदः ॥४१॥
विभ्राजमानो वपुषा रामवाक्यसमाहितः । जगाम सह रामेण किष्किन्धां वालिपालिताम् ॥४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सुग्रीवप्रत्ययदानं नाम द्वादशः सर्गः ॥१२॥

समान होने से मैं यह निश्चय न कर सका कि इनमें कौन बाली है, कौन सुग्रीव ॥ ३१ ॥ हे वनवासी श्रेष्ठ सुग्रीव ! इसी रूपसादृश्य के कारण मैंने अपने शत्रुसंहारी बाण को नहीं छोड़ा ॥ ३२ ॥ सादृश्य के कारण ही मन में शंका हो जाने से जीवन अन्त करनेवाला बाण मैंने नहीं छोड़ा। यह सोचा कि इस कृत्य से कहीं हम दोनों का आधार ही नष्ट न हो जाय (कहीं वैसा हो जाता तो उसका परिणाम क्या होता) ॥ ३३ ॥ हे वनवासी सम्राट् ! मेरे अज्ञान तथा शीघ्रता के कारण यदि कहीं तुम मार दिये जाते तो उस अवस्था में मेरा बालपन तथा मूर्खता ही प्रमाणित होती ॥ ३४ ॥ अभयदान देकर पश्चात् उसी का वध करना यह जघन्य पातक है। मैं, लक्ष्मण तथा सीता ॥ ३५ ॥ ये सभी आपके अधीन हैं तथा हम तीनों के आश्रय इस समय आप ही हैं। इस लिये आप पुनः युद्ध कीजिये, हे वनवासी वीर ! आप शंका मत कीजिये ॥ ३६ ॥ संग्राम में एक ही बाण से बाली को भूमि पर लोटते हुए इस समय तुम देखोगे ॥ ३७ ॥ हे वनवासी सम्राट् ! द्वन्द्व संग्राम में तुम को मैं जिस प्रकार पहचान सकूँ, ऐसा कोई चिह्न बना लो ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण ! इस पुष्पित गजपुष्पी को उखाड़कर तुम महात्मा सुग्रीव के गले में पहना दो ॥ ३९ ॥ पश्चात् उस पर्वत पर पुष्पित गजपुष्पी को उखाड़कर लक्ष्मण ने सुग्रीव के गले में पहना दिया ॥ ४० ॥ कण्ठ में पहनी हुई गजपुष्पी लता से सुग्रीव इस प्रकार की शोभा को प्राप्त हुए जैसे सायंकाल के समय बगुलों की पंक्ति से युक्त मेघ ॥ ४१ ॥ शोभनीय शरीरवाले सुग्रीव रामचन्द्र के कथनानुसार उनके साथ पुनः किष्किन्धा नगरी में पहुँचे ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'सुग्रीव को विश्वास दिलाना' विषयक बारहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रयोदशः सर्गः

सप्तजनाश्रमप्रणामः

ऋश्यमूकात्स धर्मात्मा किष्किन्धां लक्ष्मणाग्रजः । जगाम सहसुग्रीवो वालिविक्रमपालिताम् ॥ १ ॥
समुद्यम्य महच्चापं रामः काञ्चनभूषितम् । शरांश्चादित्यसंकाशान् गृहीत्वा रणसाधकान् ॥ २ ॥
अग्रतस्तु ययौ तस्य राघवस्य महात्मनः । सुग्रीवः संहतग्रीवो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥ ३ ॥
पृष्ठतो हनुमान् वीरो नलो नीलश्च वानरः । तारश्चैव महातेजा हरियूथपयूथपः ॥ ४ ॥
ते वीक्षमाणा वृक्षांश्च पुष्पभारावलम्बिनः । प्रसन्नाम्बुवहाश्चैव सरितः सागरंगमाः ॥ ५ ॥
कन्दराणि च शैलांश्च निर्दराणि गुहास्तथा । शिखराणि च मुख्यानि दरीश्च प्रियदर्शनाः ॥ ६ ॥
वैदूर्यविमलैस्तोयैः पद्मैश्चाकोशकुट्मलैः । शोभितान् सजलान् मार्गे तटाकांश्च व्यलोकयन् ॥ ७ ॥
कारण्डैः सारसैर्हंसैर्वञ्जुलैर्जलकुक्कुटैः । चक्रवाकैस्तथा चान्यैः शकुनैरुपनादितान् ॥ ८ ॥
मृदुशष्पाङ्कुराहारान्निर्भयान् वनगोचरान् । चरतः सर्वतोऽपश्यन् स्थलीषु हरिणान् स्थितान् ॥ ९ ॥
तटाकवैरिणश्चापि शुक्लदन्तविभूषितान् । घोरानेकचरान् धन्यान् द्विरदान् कूलघातिनः ॥१०॥
मत्तान् गिरितटोत्कृष्टाञ्जङ्गमानिव पर्वतान् । वारणान् वारिदप्रख्यान् महीरेणुसमुक्षितान् ॥११॥
वने वनचरांश्चान्यान् खेचरांश्च विहंगमान् । पश्यन्तस्त्वरिता जग्मुः सुग्रीववशवर्तिनः ॥१२॥

तेरहवां सर्ग

सप्तजन के आश्रम को प्रणाम

सुग्रीव के सहित धर्मात्मा रामचन्द्र ऋश्यमूक पर्वत से बाली के पराक्रम से रक्षित किष्किन्धा की ओर चल पड़े ॥ १ ॥ काञ्चनभूषित विशाल धनुष तथा सूर्य के समान देदीप्यमान, रण में काम आनेवाले बाणों को लेकर रामचन्द्र ॥ २ ॥ आगे चले। महात्मा रामचन्द्र के पीछे शोभन कण्ठवाले सुग्रीव, लक्ष्मण चले ॥ ३ ॥ उसके पश्चात् वीर हनुमान्, नल, नील, महातेजस्वी तार आदि छोटे बड़े सब सेनापति चल पड़े ॥४॥ वे सभी मार्ग में फूलों के भार से झुके हुए वृक्षों को तथा स्वच्छ जल से भरी हुई सागरगामिनी नदियों को देखते हुए ॥५॥ कन्दरा, पर्वत, दर्रे, विशाल गुफा, पर्वतों की रमणीय चोटियों तथा कृत्रिम रमणीय गुफा ॥ ६ ॥ वैदूर्य मणि के समान स्वच्छ जल, कमल की कलियों तथा विकसित कमल से परिपूर्ण सरोवरों को मार्ग में देखते हुए ॥ ७ ॥ क्रौंच, सारस, हँस, जलकुक्कुट, चक्रवाक आदि पक्षिगण जहाँ कलरव कर रहे थे ॥ ८ ॥ कोमल २ घास के खानेवाले, हरी घास पर निर्भय बैठे हुए तथा इधर उधर घूमते हुए हरिणों को देखते हुए ॥ ९ ॥ सरोवरों के लिये शत्रुभूत, श्वेत दन्तों से विभूषित, दन्त प्रहार से सरोवरों के तटों को तोड़ने वाले भयानक हाथियों को देखते हुए ॥ १० ॥ जंगम पर्वत की तरह विशाल काय, पर्वत के प्रान्त को तोड़ने वाले, जल भरे बादल के समान तथा धूल से धूसरित मत्त गजों के देखते हुए ॥ ११ ॥ उस वन में अन्य वनवासी जन्तुओं तथा गगनचारी पक्षियों को देखते हुए सुग्रीव के आज्ञाकारी वे सभी आगे गये ॥ १२ ॥ उन लोगों के साथ जाते हुए वृक्षों से मण्डित एक वनभाग को देख कर रघुनन्दन राम-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेषां तु गच्छतां तत्र त्वरितं रघुनन्दनः । द्रुमषण्डं वनं दृष्ट्वा रामः सुग्रीवमब्रवीत् ॥१३॥
एष मेघ इवाकाशे वृक्षषण्डः प्रकाशते । मेघसङ्घातविपुलः पर्यन्तकदलीवृतः ॥१४॥
किमेतज्ज्ञातुमिच्छामि सखे कौतूहलं हि मे । कौतूहलापनयनं कर्तुमिच्छाम्यहं त्वया ॥१५॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः । गच्छन्नेवाचचक्षेऽथ सुग्रीवस्तन्महद्वनम् ॥१६॥
एतद्राघव विस्तीर्णमाश्रमं श्रमनाशनम् । उद्यानवनसंपन्नं स्वादुमूलफलोदकम् ॥१७॥
अत्र सप्तजना नाम मुनयः संशितव्रताः । सप्तैवासन्नधःशीर्षा नियतं जलशायिनः ॥१८॥
सप्तरात्रकृताहारा वायुना वनवासिनः । दिवं वर्षशतैर्याताः सप्तभिः सकलेवराः ॥१९॥
तेषामेवंप्रभावेण द्रुमप्राकारसंवृतम् । आश्रमं सुदुराधर्षमपि सेन्द्रैः सुरासुरैः ॥२०॥
पक्षिणो वर्जयन्त्येतत्तथान्ये वनचारिणः । विशन्ति मोहाद्येऽप्यत्र निवर्तन्ते न ते पुनः ॥२१॥
विभूषणरवाश्चात्र श्रूयन्ते सकलाक्षराः । तूर्यगीतस्वनाश्चात्र गन्धो दिव्यश्च राघव ॥२२॥
त्रेताग्नयोऽपि दीप्यन्ते धूमो ह्येष प्रदृश्यते । वेष्टयन्निव वृक्षाग्रान् कपोताङ्गारुणो घनः ॥२३॥
एते वृक्षाः प्रकाशन्ते धूमसंसक्तमस्तकाः । मेघजालप्रतिच्छन्ना वैदूर्यगिरयो यथा ॥२४॥
कुरु प्रणामं धर्मात्मंस्तान् समुद्दिश्य राघव । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा प्रयतः संयताञ्जलिः ॥२५॥
प्रणमन्ति हि ये तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् । न तेषामशुभं किंचिच्छरीरे राम दृश्यते ॥२६॥

चन्द्र सुग्रीव से यह बोले ॥ १३ ॥ आकाश में मेघ के समान यह वृक्ष मण्डित स्थान जिसके आसपास मेघ घिरे हुए हैं तथा कदली वृक्षों से जो परिपूर्ण हो रहा है ॥ १४ ॥ यह क्या है ? हे मित्र ! मैं इसे जानना चाहता हूँ । इसमें मेरा मनोरंजन हो रहा है । मेरे इस विस्मय को आप दूर कीजिये ॥ १५ ॥ महात्मा रामचन्द्र की इन बातों को सुनकर मार्ग में चलते हुए सुग्रीव ने उस वन का वर्णन किया ॥ १६ ॥ हे रामचन्द्र ! उद्यान वृक्षों से परिपूर्ण स्वादु कन्द-फल-जल से युक्त श्रमजनित खेद को दूर करने वाला यह एक विशाल तपस्वी का आश्रम है ॥१७॥ यहाँ पर सप्त नामक प्रसिद्ध व्रत वाले मुनियों का एक सप्तक जल के मध्य में नतमस्तक बैठा हुआ था ॥१८॥ सप्त रात्रि केवल वायु का आहार करने वाले वे सात तपस्वी इस प्रकार अनेक वर्ष तपश्चर्या करते हुए शरीर सहित (अर्थात् सकुशल) स्वर्ग स्थान को चले गये (अर्थात् इस पृथ्वी के स्वर्ग स्थान त्रिविष्टप् = तिब्बत चले गये, जो उस समय सिद्ध, योगी, तपस्वी, ऋषि-मुनियों का आश्रय माना जाता था) ॥ १९ ॥ उन्हीं सिद्ध तपस्वियों के प्रभाव से वृक्षावली से घिरा हुआ यह सिद्ध आश्रम अति सुरक्षित है । देव तथा इन्द्र भी इसकी मर्यादा को नष्ट नहीं कर सकते ॥ २० ॥ वनचारी पशुगण तथा पक्षिगण इस स्थान में प्रवेश नहीं कर सकते । यदि अज्ञानवश चले भी जायें तो उनका निकलना अत्यन्त कठिन हो जाता है (अत्यन्त गहन लता तथा घने वृक्षों से घिरे हुए वन में सर्व-साधारण वन्य पशुओं का संचार कठिन होता है) ॥ २१ ॥ हे रामचन्द्र ! अष्टाङ्गयोग के सिद्धाश्रम होने के कारण दिव्याभूषणों के दिव्य शब्द, स्पष्टाक्षरों में गाने बजाने का दिव्य शब्द सुनाई देता है । यहाँ का वायुमण्डल दिव्य गन्ध से परिपूर्ण रहता है ॥ २२ ॥ तीन अग्नियों के कपोत वर्ण वाले उठे हुए धूम जो वृक्षों को घेरे हुए हैं, दिखाई दे रहे हैं ॥ २३ ॥ धूम पंक्ति से जिनकी चोटियाँ ढकी हुई हैं तथा बादलों से घिरे हुए हैं, ऐसे वृक्ष वैदूर्य पर्वत के समान दिखाई दे रहे हैं ॥ २४ ॥ हे रामचन्द्र ! हाथ जोड़कर अपने भाई लक्ष्मण के साथ श्रद्धापूर्वक उनको प्रणाम करो ॥ २५ ॥ हे रामचन्द्र ! ब्रह्मलीन इन ऋषि-मुनियों को जो श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता है, उसके बाह्य आभ्यन्तर में कोई अशुभ नहीं रह जाता ॥ २६ ॥ पश्चात्

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततो रामः सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन कृताञ्जलिः । समुद्दिश्य महात्मानस्तानृषीनभ्यवादयत् ॥२७॥
अभिवाद्य तु धर्मात्मा रामो भ्राता च लक्ष्मणः । सुग्रीवो वानराश्चैव जग्मुः संहृष्टमानसाः ॥२८॥
ते गत्वा दूरमध्वानं तस्मात्सप्तजनाश्रमात् । ददृशुस्तां दुराधर्षां किष्किन्धां वालिपालिताम् ॥२९॥
ततस्तु रामानुजरामवानराः प्रगृह्य शस्त्राण्युदितार्कतेजसः ।
पुरीं सुरेशात्मजवीर्यपालितां वधाय शत्रोः पुनरागताः सह ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तजनाश्रमप्रणामो नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

सुग्रीवगर्जनम्

सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिपालिताम् । वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन् गहने वने ॥ १ ॥
विस्तार्य सर्वतो दृष्टिं कानने काननप्रियः । सुग्रीवो विपुलग्रीवः क्रोधमाहारयद्भृशम् ॥ २ ॥
ततः स निनदं घोरं कृत्वा युद्धाय चाह्वयत् । परिवारैः परिवृतो नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम् ॥ ३ ॥

रामचन्द्र ने अपने भाई लक्ष्मण के साथ हाथ जोड़कर तपोधन उन ऋषियों के प्रति सम्मान प्रदर्शन करते हुए उनको प्रणाम किया ॥ २७ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्र तथा लक्ष्मण प्रणाम करने के पश्चात् सुग्रीव तथा अन्य वनवासियों के साथ प्रसन्नचित्त आगे चल पड़े ॥ २८ ॥ उस सप्तजन तपस्वियों के आश्रम से कुछ दूर जा कर शत्रुओं से अनाक्रमणीय बालि-पालित उस किष्किन्धा नगरी को देखा ॥ २९ ॥ राम, लक्ष्मण तथा वनवासी लोग तीक्ष्ण शस्त्रों को लेकर शत्रु का बध करने के लिये बालि-पालित किष्किन्धा नगरी में पुनः प्रविष्ट हुए ॥ ३० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'सप्तजन के आश्रम को प्रणाम' विषयक तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवां सर्ग

सुग्रीव का गर्जन

वे सब शीघ्र ही बाली से रक्षित किष्किन्धा पुरी में जाकर वृक्षों की ओट में छिप कर बैठ गये ॥ १ ॥ कानन प्रेमी सुग्रीव वन में चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो गये । पुष्ट तथा सुन्दर ग्रीवा वाले ॥ २ ॥ वनवासी रक्षकों से घिरे हुए सुग्रीव ने गगनभेदी भयंकर नाद करते हुए बाली का युद्ध के लिये आवाहन किया ॥ ३ ॥ वायुवेग से प्रेरित महामेघ के समान गर्जन करते हुए बाल रवि के सदृश

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गर्जन्निव महामेघो वायुवेगपुरःसरः । अथ बालार्कसदृशो दृप्तसिंहगतिस्तदा ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा रामं क्रियादक्षं सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् । हरिवागुरया व्याप्तां तप्तकाञ्चनतोरणाम् ॥ ५ ॥
प्राप्ताः स्म ध्वजयन्त्राढ्यां किष्किन्धां वालिनः पुरीम् । प्रतिज्ञा या त्वया वीर कृता वालिवधे पुरा ॥ ६ ॥
सफलां तां कुरु क्षिप्रं लतां काल इवागतः । एवमुक्तस्तु धर्मात्मा सुग्रीवेण स राघवः ॥ ७ ॥
तमथोवाच सुग्रीवं वचनं शत्रुसूदनः । कृताभिज्ञानचिह्नस्त्वमनया गजसाह्वया ॥ ८ ॥
लक्ष्मणेन समुत्पाट्य यैषा कण्ठे कृता तव । शोभसे ह्यधिकं वीर लतया कण्ठसक्तया ॥ ९ ॥
विपरीत इवाकाशे सूर्यो नक्षत्रमालया । अद्य वालिसमुत्थं ते भयं वैरं च वानर ॥१०॥
एकेनाहं प्रमोक्ष्यामि बाणमोक्षेण संयुगे । मम दर्शय सुग्रीव वैरिणं भ्रातृरूपिणम् ॥११॥
अद्य वाली विनिहतो वनपांसुषु वेष्टते । यदि दृष्टिपथं प्राप्तो जीवन् स विनिवर्तते ॥१२॥
ततो दोषेण मा गच्छेत्सद्यो गर्हेच्च मां भवान् । प्रत्यक्षं सप्त ते साला मया बाणेन दारिताः ॥१३॥
तेनावेहि बलेनाद्य वालिनं निहतं मया । अनृतं नोक्तपूर्वं मे वीर कृच्छ्रेऽपि तिष्ठता ॥१४॥
धर्मलोभपरीतेन न च वक्ष्ये कथंचन । सफलां च करिष्यामि प्रतिज्ञां जहि संभ्रमम् ॥१५॥
प्रसूतं कलमं क्षेत्रे वर्षेणेव शतक्रतुः । तदाह्वाननिमित्तं त्वं वालिनो हेममालिनः ॥१६॥
सुग्रीव कुरु तं शब्दं निष्पतेद्येन वानरः । जितकाशी बलश्लाघी त्वया चाधर्षितः पुरा ॥१७॥

मदमत्त वनराज की गति वाले सुग्रीव ॥ ४ ॥ क्रिया कुशल रामचन्द्र को देखकर बोले—सुवर्ण से आभूषित ध्वजा-पताका-यन्त्र से परिपूर्ण, वनवासी व्यक्तियों को फंसाने के लिये जाल के समान बाली से रक्षित किष्किन्धा पुरी में हम लोग आ गये हैं। हे वीर! आप ने बाली के वध की जो पूर्व प्रतिज्ञा की थी ॥ ५,६ ॥ ऋतु प्राप्त लता के समान उस को शीघ्र ही सफल कीजिये। सुग्रीव के ऐसा कहने पर धर्मात्मा रामचन्द्र ॥ ७ ॥ उन से इस प्रकार बोले—इस गजपुष्पी लता के द्वारा आप पहचानने योग्य हो गये हैं ॥ ८ ॥ लक्ष्मण के द्वारा उखाड़ी हुई यह गजपुष्पी तुम्हारे गले में पड़ी हुई है। हे वीर! कण्ठ में पड़ी इस गजपुष्पी लता से आप अत्यन्त शोभा को इस प्रकार प्राप्त हो रहे हैं ॥ ९ ॥ जिस प्रकार नभ में अपने सौर मण्डल से युक्त सूर्य शोभा को प्राप्त होता है। हे वनवासी सुग्रीव! आज बाली के द्वारा उत्पन्न हुआ भय तथा वैर ॥ १० ॥ संग्राम में एक ही बाण के छोड़ने से सब समाप्त कर दूंगा। हे सुग्रीव! इस समय केवल भ्राता के रूप में अपने वैरी बाली को मुझे दिखा दो ॥११॥ आज मरा हुआ बाली वन की धूलि में लोटता हुआ दिखाई देगा। दृष्टि पथ में आया हुआ बाली यदि जीवित मेरे सामने से लौट जाय ॥१२॥ तब मुझे दोषी समझना और मेरी निन्दा करना। आप के समक्ष ही मैंने अपने बाण से सात साल वृक्षों को बेधा है ॥ १३ ॥ उसी बल से आप बाली को रण में मरा हुआ समझ जायें। हे वीर! भयंकर विपत्ति में भी मैं ने कभी अनृत भाषण नहीं किया ॥ १४ ॥ धर्म के लोप के भय से मैं कभी अनृत भाषण नहीं करता। अपनी व्याकुलता को आप दूर कीजिये। मैं अपनी प्रतिज्ञा को अवश्य सफल बनाऊंगा ॥ १५ ॥ बोये हुए धान के खेत को जैसे इन्द्र पानी बरसा कर सफल करता है उसी प्रकार मैं भी इस प्रतिज्ञा को सफल करूंगा। काञ्चनमयी माला धारण करने वाले बाली को बुलाने के लिये ॥१६॥ हे सुग्रीव! तुम गर्जन करो जिसे सुन कर बाली यहां आजावे। वह विजय का इच्छुक है, संग्राम कोविद है और पहले कई बार तुम को उसने हराया है ॥ १७ ॥ संग्राम का प्रेमी वह बाली शब्द सुनते ही अवश्य निकल पड़ेगा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निष्पतिष्यत्यसङ्गेन वाली स प्रियसंयुगः । रिपूणां धर्षणं शूरा मर्षयन्ति न संयुगे ॥१८॥
जानन्तस्तु स्वकं वीर्यं स्त्रीसमक्षं विशेषतः । स तु रामवचः श्रुत्वा सुग्रीवो हेमपिङ्गलः ॥१९॥
ननर्द क्रूरनादेन विनिर्भिन्दन्निवाम्बरम् । तस्य शब्देन वित्रस्ता गावो यान्ति हतप्रभाः ॥२०॥
राजदोषपरामृष्टाः कुलस्त्रिय इवाकुलाः । द्रवन्ति च मृगाः शीघ्रं भग्ना इव रणे हयाः ॥२१॥
पतन्ति च खगा भूमौ क्षीणपुण्या इव ग्रहाः ॥

ततः स जीमूतगणप्रणादो नादं ह्यमुञ्चत्त्वरया प्रतीतः ।
सूर्यात्मजः शौर्यविवृद्धतेजाः सरित्पतिर्वानिलचञ्चलोर्मिः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सुग्रीवगर्जनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः

ताराहितोक्तिः

अथ तस्य निनादं तं सुग्रीवस्य महात्मनः । शुश्रावान्तःपुरगतो वाली भ्रातुरमर्षणः ॥ १ ॥

युद्ध प्रेमी वीर शत्रु के गर्जन तर्जन पूर्वक आवाहन को सुनकर सहन नहीं कर सकते ॥ १८ ॥ अपने पराक्रम को जानते हुए विशेष कर स्त्री के समक्ष ललकार सुन कर कोई मानी सहन नहीं कर सकता। स्वर्ण के समान गौराङ्ग पीतवर्ण सुग्रीव रामचन्द्र के वचन को सुन कर ॥ १९ ॥ आकाश को गुंजायमान करते हुए भयंकर शब्दों में गर्जने लगा। उस के भयंकर शब्द को सुन कर त्रस्त वृषभ समूह प्रभाहीन हो गया ॥ २० ॥ राजकीय रक्षण न होने के कारण जैसे सम्भ्रान्त कुल की स्त्रियां त्रस्त हो जाती हैं, उसी प्रकार गोवंश भी व्याकुल हो गया। युद्ध में भागे हुए अश्व के समान मृग भी इधर उधर भागने लगे। आकर्षण शक्ति के क्षीण होने पर जैसे गगनचारी ग्रहों का पात हो जाता है, उसी प्रकार गगनचारी पक्षी भी भूमि पर गिर पड़े ॥ २१ ॥ मेघ गर्जन का अनुकरण करने वाले सुग्रीव ने शीघ्रता पूर्वक गर्जन किया। गर्जन के समय सुग्रीव का शौर्य तथा तेज उसी प्रकार बढ़ा हुआ था जैसे चञ्चल तरंगों से समुद्र तरङ्गित होता है ॥ २२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'सुग्रीव का गर्जन' विषयक चौदहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

पन्द्रहवां सर्ग

तारा की हितोक्ति

अन्तःपुर (रनिवास) में निवास करने वाले क्रोधी बाली ने महात्मा सुग्रीव के उस गर्जन को सुना ॥ १ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों को कम्पायमान करने वाले सुग्रीव के उस गर्जन को सुनकर बाली का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रुत्वा तु तस्य निनदं सर्वभूतप्रकम्पनम् । मदश्चैकपदे नष्टः क्रोधश्चापतितो महान् ॥ २ ॥
स तु रोषपरीताङ्गो वाली सन्ध्यातपप्रभः । उपरक्त इवादित्यः सद्यो निष्प्रभतां गतः ॥ ३ ॥
वाली दंष्ट्राकरालस्तु क्रोधाद्दीप्ताग्निलोचनः । भात्युत्पतितपद्माभः समृणाल इव ह्रदः ॥ ४ ॥
शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः । वेगेन चरणन्यासैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥ ५ ॥
तं तु तारा परिष्वज्य स्नेहाद्दर्शितसौहृदा । त्रस्ता प्रोवाच संभ्रान्ता हितोदर्कमिदं वचः ॥ ६ ॥
साधु क्रोधमिमं वीर नदीवेगमिवागतम् । शयनादुत्थितः कल्यं त्यज भुक्तामिव स्रजम् ॥ ७ ॥
कल्यमेतेन संग्रामं करिष्यसि हरीश्वर । वीर ते शत्रुबाहुल्यं फल्गुता वा न विद्यते ॥ ८ ॥
सहसा तव निष्क्रामो मम तावन्न रोचते । श्रूयतां चाभिधास्यामि यन्निमित्तं निवार्यसे ॥ ९ ॥
पूर्वमापतितः क्रोधात्स त्वामाह्वयते युधि । निष्पत्य च निरस्तस्ते हन्यमानो दिशो गतः ॥१०॥
त्वया तस्य निरस्तस्य पीडितस्य विशेषतः । इहैत्य पुनराह्वानं शङ्कां जनयतीव मे ॥११॥
दर्पश्च व्यवसायश्च यादृशस्तस्य नर्दतः । निनादस्य च संरम्भो नैतदल्पं हि कारणम् ॥१२॥
नासहायमहं मन्ये सुग्रीवं तमिहागतम् । अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति ॥१३॥
प्रकृत्या निपुणश्चैव बुद्धिमांश्चैव वानरः । अपरीक्षितवीर्येण सुग्रीवः सह नैष्यति ॥१४॥
पूर्वमेव मया वीर श्रुतं कथयतो वचः । अङ्गदस्य कुमारस्य वक्ष्याम्यद्य हितं वचः ॥१५॥

पानजनित मद दूर हो गया तथा वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया ॥ २ ॥ रोष से परिपूर्ण सन्ध्या कालीन आतप के समान कान्ति वाला बाली तत्काल ग्रहग्रस्त सूर्य के समान प्रभाहीन हो गया ॥ ३ ॥ विकराल दांतों वाला, क्रोध स जिस के नेत्र अग्नि वर्ण हो गये है, ऐसा बाली मृणाल युक्त रक्तकमल के समान शोभा को प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥ असहनीय शब्द को सुनकर अपनी तीव्र गति से पृथ्वी को कम्पायमान करता हुआ राजमहल से निकल पड़ा ॥ ५ ॥ बाली के निकलते समय भय से अत्यन्त घबराई हुई स्नेहपूर्वक हित कामना प्रकट करन वाली तारा उसका आलिंगन कर यह हितकारी बचन बोली ॥ ६ ॥ निद्रा के पश्चात् उठने पर जैसे भोगी हुई म्लान माला को लोग छोड़ देते हैं, उसी प्रकार हे वीर ! नदी के वेग के समान आय हुए इस क्रोध क वेग को आप त्याग देवें ॥ ७ ॥ हे वनवासियों के वीर ! इसके साथ यह संग्राम आप कल काजयेगा, आप की वीरता में इस से कोई कमी न होगी ॥ ८ ॥ सहसा आप का यहां से जाना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है । जिस कारण मैं आप को रोक रही हूं, उसे सुनिये ॥ ९ ॥ क्रोध पूर्वक आय हुए सुग्रीव ने संग्राम में आप का आवाहन किया । उस समय जाकर आप ने उसे परास्त किया तथा आप क प्रहार से वह यहां से भाग गया ॥ १० ॥ आप के द्वारा भगाये हुए, विशेष कर पीडित हुए, उस का फिर इस प्रकार यहां आकर आवाहन करना मेरे हृदय को शंकित कर रहा है ॥ ११ ॥ यह अभिमान, यह व्यवहार, गर्जन का यह प्रकार तथा उस के गर्जन में जो इस प्रकार की भयंकरता है, इन सब लक्षणों का महान् कारण ही हो सकता है ॥ १२ ॥ अन्य की सहायता के विना सुग्रीव नहीं आ सकता । सहायता उसको अवश्य प्राप्त हो गई है जिस का आश्रय लेकर वह इस प्रकार गर्ज रहा है, ॥ १३ ॥ स्वभावतः वह बुद्धिमान् तथा चतुर है । पराक्रम-बल की बिना परीक्षा किये सुग्रीव किसी के साथ मैत्री नहीं कर सकता ॥ १४ ॥ राजकुमार अङ्गद से यह बातें मैंने पहले ही सुन रखी हैं । हे वीर ! आप के कल्याण के लिये आज मैं उन्हीं बातों को कहती हूं ॥ १५ ॥ राजकुमार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अङ्गदस्तु कुमारोऽयं वनान्तमुपनिर्गतः । प्रवृत्तिस्तेन कथिता चारैराप्तैर्निवेदिता ॥१६॥
अयोध्याधिपतेः पुत्रौ शूरौ समरदुर्जयौ । इक्ष्वाकूणां कुले जातौ प्रथितौ रामलक्ष्मणौ ॥१७॥
सुग्रीवप्रियकामार्थं प्राप्तौ तत्र दुरासदौ । तव भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रणकर्कशः ॥१८॥
रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः । निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा गतिः ॥१९॥
आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम् । ज्ञानविज्ञानसंपन्नो निदेशे निरतः पितुः ॥२०॥
धातूनामिव शैलेन्द्रो गुणानामाकरो महान् । तत्क्षमो न विरोधस्ते सह तेन महात्मना ॥२१॥
दुर्जयेनाप्रमेयेण रामेण रणकर्मसु । शूर वक्ष्यामि ते किंचिन्न चेच्छाम्यभ्यसूयितुम् ॥२२॥
श्रूयतां क्रियतां चैव तव वक्ष्यामि यद्धितम् । यौवराज्येन सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय ॥२३॥
विग्रहं मा कृथा वीर भ्रात्रा राजन् यवीयसा । अहं हि ते क्षमं मन्ये तेन रामेण सौहृदम् ॥२४॥
सुग्रीवेण च संप्रीतिं वैरमुत्सृज्य दूरतः । लालनीयो हि ते भ्राता यवीयानेष वानरः ॥२५॥
तत्र वा सन्निहस्थो वा सर्वथा बन्धुरेव ते । न हि तेन समं बन्धुं भुवि पश्यामि कंचन ॥२६॥
दानमानादिसत्कारैः कुरुष्व प्रत्यनन्तरम् । वैरमेतत्समुत्सृज्य तव पार्श्वे स तिष्ठतु ॥२७॥
सुग्रीवो विपुलग्रीवस्तव बन्धुः सदा मतः । भ्रातुः सौहृदमालम्ब्य नान्या गतिरिहास्ति ते ॥२८॥
यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि चावैषि मां हिताम् । याच्यमानः प्रयत्नेन साधु वाक्यं कुरुष्व मे ॥२९॥

अङ्गद घूमते हुए बन में गये थे। कुशल गुप्तचरों के द्वारा निवेदित दूतों ने उनसे यह बात कही ॥ १६ ॥ इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न होने वाले, समरदुर्जय, वीर, अयोध्या सम्राट् के दो पुत्र राम लक्ष्मण यहाँ आये हैं ॥ १७ ॥ वे दोनों दुर्धर्ष वीर सुग्रीव की प्रिय कामना से ही यहाँ आये हैं। रणकर्म में कुशल वे दोनों वीर संग्राम में तुम्हारे भाई के सहायक हैं ॥ १८ ॥ शत्रु सेना को नष्ट करने के लिए रामचन्द्र उठी हुई प्रलयाग्नि के समान हैं। वे साधु पुरुषों के आश्रय दाता हैं तथा दीन दुःखियों के परम गति है ॥ १९ ॥ आर्त्त लोगों के आश्रय दाता हैं, यश के भाजन हैं, ज्ञान विज्ञान से परिपूर्ण हैं, पिता के आज्ञाकारी हैं ॥ २० ॥ पर्वतराज हिमालय जैसे धातुओं का आकर है वैसे ही वे गुणों की प्रसवस्थली हैं। इसलिए उस महात्मा रामचन्द्र के साथ शत्रुता उचित नहीं ॥ २१ ॥ श्री रामचंद्र संग्राम कर्म में दुर्जेय तथा अप्रतिम योद्धा हैं। हे वीर! मेरा आप से कुछ निवेदन है, आप क्रोध न करें तो मैं कहूँ ॥ २२ ॥ जिसमें आपका हित है उस बात को मैं कह रही हूँ, उसको सुनिये तथा सुनकर उसे कीजिये। जितना शीघ्र हो सके आदर पूर्वक सुग्रीव को युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिये ॥ २३ ॥ हे वीर! छोटे भाई के साथ आपका विरोध उचित नहीं। हे राजन्! श्री रामचन्द्र के साथ आपकी मैत्री हो जाना मैं उचित समझती हूँ ॥२४॥ सुग्रीव के साथ वैर भाव दूर करके उसके साथ प्रीति कीजिये। वह आपका छोटा भाई है, अतः आपकी कृपा का पात्र है ॥ २५ ॥ वह चाहे आपके पास रहे या ऋश्यमूक पर्वत पर रहे, वह हर प्रकार से आपका बन्धु है। सुग्रीव के समान बन्धु इस पृथ्वी पर और कोई नहीं दिखाई देता ॥ २६ ॥ दान, सम्मान, प्रेम आदि के द्वारा उसे अपना लीजिये, जिससे कि आपके साथ वैर बुद्धि छोड़ कर यहीं पास में रहे ॥ २७ ॥ दृढ़ ग्रीवा वाला सुग्रीव आपका अत्यन्त स्नेही बन्धु है। सुग्रीव के साथ दृढ़ बन्धुत्व की भावनाओं को छोड़कर इस समय आपके कल्याण का और कोई मार्ग नहीं ॥ २८ ॥ यदि आप मेरा प्रिय कार्य करना चाहते हैं और मुझे अपनी हितैषिणी समझते हैं, तो करबद्ध प्रार्थना पूर्वक मेरी इस प्रिय तथा हितकारी प्रार्थना को अवश्य मानें ॥ २९ ॥ आप प्रसन्न हो जाइये, मेरी बातों को ध्यान से सुनिये। मेरी बातों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रसीद पथ्यं शृणु जल्पितं हि मे न रोषमेवानुविधातुमर्हसि ।
क्षमो हि ते कोसलराजसूनुना न विग्रहः शक्रसमानतेजसा ॥ ३० ॥
तदा हि तारा हितमेव वाक्यं तं वालिनं पथ्यमिदं बभाषे ।
न रोचते तद्वचनं हि तस्य कालाभिपन्नस्य विनाशकाले ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे ताराहितोक्तिर्नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

वालिसंहारः

तामेवं ब्रुवतीं तारां ताराधिपनिभाननाम् । वाली निर्भर्त्सयामास वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥
गर्जतोऽस्य ससंरम्भं भ्रातुः शत्रोर्विशेषतः । मर्षयिष्याम्यहं केन कारणेन वरानने ॥ २ ॥
अधर्षितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम् । धर्षणामर्षणं भीरु मरणादतिरिच्यते ॥ ३ ॥
सोढुं न च समर्थोऽहं युद्धकामस्य संयुगे । सुग्रीवस्य च संरम्भं हीनग्रीवस्य गर्जतः ॥ ४ ॥
न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति ॥ ५ ॥

को सुनकर आपको रोष नहीं करना चाहिये । इन्द्र तुल्य पराक्रमी कोसल राजकुमार रामचन्द्र से विरोध करना आपको उचित नहीं ॥ ३० ॥ तारा ने उस समय जो भी कल्याणकारिणी पथ्य बातें बाली से कहीं वह उसे न रुचीं क्योंकि विनाश काल के कारण वह काल का ग्रास बन चुका था ॥ ३१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'तारा की हितोक्ति' विषयक पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवाँ सर्ग

वाली का वध

चन्द्रानना तारा की इन बातों को सुनकर बाली उसकी भर्त्सना करते हुए इस प्रकार बोला ॥ १ ॥ हे शोभने ! गर्जते हुए इस भाई की, जब कि वह शत्रु बन चुका है, ललकार मैं किन कारणों से सह सकूँगा ॥ २ ॥ वह व्यक्ति जिसने संग्राम में कभी पीठ नहीं दिखलाई तथा जो कभी पराजित नहीं हुआ, जिसने सदा शौर्य का परिचय दिया है, उसके लिए शत्रु द्वारा अपमानित ललकार मृत्यु से भी अधिक भयावह है ॥ ३ ॥ दुर्बल ग्रीवा वाले सुग्रीव के रोषपूर्वक गर्जन को युद्ध की कामना करने वाला मैं संग्राम में सहन नहीं कर सकता ॥ ४ ॥ रामचन्द्र के द्वारा मेरी किसी प्रकार की हानि होगी, इस प्रकार की आशंका तुम्हें नहीं करनी चाहिये । वे धर्मात्मा तथा कृतज्ञ हैं, और मेरे प्रति पाप क्यों करेंगे ॥ ५ ॥ अब तुम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निवर्तस्व सह स्त्रीभिः कथं भूयोऽनुगच्छसि । सौहृदं दर्शितं तारे मयि भक्तिः कृता त्वया ॥ ६ ॥
प्रतियोत्स्याम्यहं गत्वा सुग्रीवं जहि संभ्रमम् । दर्पमस्य विनेष्यामि न च प्राणैर्वियोक्ष्यते ॥ ७ ॥
अहं ह्याजिस्थितस्यास्य करिष्यामि यथेप्सितम् । वृक्षैर्मुष्टिप्रहारैश्च पीडितः प्रतियास्यति ॥ ८ ॥
न मे गर्वितमायस्तं सहिष्यति दुरात्मवान् । कृतं तारे सहायत्वं सौहृदं दर्शितं मयि ॥ ९ ॥
शापितासि मम प्राणैर्निवर्तस्व जनेन च । अहं जित्वा निवर्तिष्ये तमहं भ्रातरं रणे ॥१०॥
तं तु तारा परिष्वज्य वालिनं प्रियवादिनी । चकार रुदती मन्दं दक्षिणा सा प्रदक्षिणम् ॥११॥
ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद्विजयैषिणी । अन्तःपुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता ॥१२॥
प्रविष्टायां तु तारायां सह स्त्रीभिः स्वमालयम् । नगरान्निर्ययौ क्रुद्धो महासर्प इव श्वसन् ॥१३॥
स निष्पत्य महातेजा वाली परमरोषणः । सर्वतश्चारयन् दृष्टिं शत्रुदर्शनकाङ्क्षया ॥१४॥
स ददर्श ततः श्रीमान् सुग्रीवं हेमपिङ्गलम् । सुसंवीतमवष्टब्धं दीप्यमानमिवानलम् ॥१५॥
स तं दृष्ट्वा महावीर्यं सुग्रीवं पर्यवस्थितम् । गाढं परिदधे वासो वाली परमरोषणः ॥१६॥
स वाली गाढसंवीतो मुष्टिमुद्यम्य वीर्यवान् । सुग्रीवमेवाभिमुखो ययौ योद्धुं कृतक्षणः ॥१७॥
श्लिष्टमुष्टिं समुद्यम्य संरब्धतरमागतः । सुग्रीवोऽपि तमुद्दिश्य वालिनं हेममालिनम् ॥१८॥
तं वाली क्रोधताम्राक्षः सुग्रीवं रणपण्डितम् । आपतन्तं महावेगमिदं वचनमब्रवीत् ॥१९॥

मेरे पीछे क्यों आ रही हो, स्त्रियों के साथ लौट जाओ। मेरे प्रति जो तुम्हारी भक्ति थी, उस सौहार्द का तुमने पर्याप्त परिचय दे दिया ॥ ६ ॥ तुम अपनी घबराहट को छोड़ दो। मैं जाकर सुग्रीव के साथ संग्राम करूँगा और उसके घमण्ड को तोड़ूंगा, किन्तु उसकी हत्या नहीं करूँगा ॥ ७ ॥ संग्राम में आये हुए उसकी जो इच्छा होगी, मैं वही करूँगा वृक्षों तथा मुष्टि प्रहार से पीड़ित होकर सदा की भाँति वह भाग जायेगा ॥ ८ ॥ संग्राम में गर्वित मेरे प्रहारों को वह दुरात्मा सह नहीं सकेगा। हे तारे! तुम्हें मेरी जो सहायता करनी थी करली, मेरे प्रति जो सौहार्द भाव दिखाना था उसे तुमने पर्याप्त दिखला दिया ॥ ९ ॥ अब तुम्हें मेरे प्राणों की शपथ है, अपने सहायकों के साथ अब तुम लौट जाओ। संग्राम में उस भाई को पराजित कर मैं निश्चय ही लौट आऊँगा ॥ १० ॥ मधुरभाषिणी तारा ने बाली का आलिंगन कर रोते हुए उसकी प्रदक्षिणा की ॥ ११ ॥ मन्त्र को जानने वाली, बालि-विजय की कामना करती हुई उस ने स्वस्त्ययन किया तथा शोक पूर्वक स्त्रियों के साथ अन्तःपुर में चली गई ॥ १२ ॥ स्त्रियों के साथ तारा के राजमहल में प्रवेश कर जाने के पश्चात् विशाल क्रुद्ध सर्प के समान सांस लेता हुआ वह बाली नगरी से निकल पड़ा ॥ १३ ॥ अत्यन्त क्रोध में वेगवान् बाली ने निकल कर शत्रु के दर्शन की आकांक्षा से चारों ओर दृष्टि दौड़ाई ॥१४॥ अग्नि के समान देदीप्यमान, स्वर्ण के समान पीत वर्ण वाले, कच्छ पहन कर दृढ़ता के साथ खड़े हुए सुग्रीव को श्रीमान् बाली ने देखा ॥ १५ ॥ विशाल भुजा वाले बाली ने सुग्रीव को सब प्रकार से सन्नद्ध देखकर अत्यन्त क्रोध करते हुए अपने वस्त्रों को दृढ़ता के साथ बांधा ॥ १६ ॥ वस्त्र संवेष्टित, घूंसे को ताने हुए पराक्रमी वह बाली उस समय युद्ध की कामना से सुग्रीव की ओर चल पड़ा ॥ १७ ॥ काञ्चन माला धारी, बद्धमुष्टि, क्रोधावेश में आये हुए बाली के समीप सुग्रीव भी उसका सामना करने के लिये आया ॥ १८ ॥ क्रोध से जिसकी आंखें लाल हो रही हैं, इस प्रकार का बाली अत्यन्त वेग से आते हुए, रणविशारद सुग्रीव से इस प्रकार बोला ॥ १९ ॥ संगठित अंगुलियों से बनी हुई मेरी यह मुष्टि वेग पूर्वक जिस समय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एष मुष्टिर्मया बद्धो गाढः संनिहिताङ्गुलिः । मया वेगविमुक्तस्ते प्राणानादाय यास्यति ॥२०॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवः क्रुद्धो वालिनमब्रवीत् । तव चैव हरन् प्राणान् मुष्टिः पततु मूर्धनि ॥२१॥
ताडितस्तेन संक्रुद्धस्तमभिक्रम्य वेगितः । अभवच्छोणितोद्गारी सोत्पीड इव पर्वतः ॥२२॥
सुग्रीवेण तु निःशङ्कं सालमुत्पाट्य तेजसा । गात्रेष्वभिहतो वाली वज्रेणेव महागिरिः ॥२३॥
स तु वाली प्रचलितः सालताडनविह्वलः । गुरुभारसमाक्रान्ता नौः ससार्थेव सागरे ॥२४॥
तौ भीमबलविक्रान्तौ सुपर्णसमवेगिनौ । प्रवृद्धौ घोरवपुषौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥२५॥
परस्परमभित्रघ्नौ छिद्रान्वेषणतत्परौ । ततोऽवर्धत वाली तु बलवीर्यसमन्वितः ॥२६॥
सूर्यपुत्रो महावीर्यः सुग्रीवः परिहीयते । वालिना भग्नदर्पस्तु सुग्रीवो मन्दविक्रमः ॥२७॥
वालिनं प्रति सामर्षो दर्शयामास राघवम् । वृक्षैः सशाखैः सशिखैर्वज्रकोटिनिभैर्नखैः ॥२८॥
मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिर्बाहुभिश्च पुनः पुनः । तयोर्युद्धमभूद्घोरं वृत्रवासवयोरिव ॥२९॥
तौ शोणिताक्तौ युध्येतां वानरौ वनचारिणौ । मेघाविव महाशब्दैस्तर्जयानौ परस्परम् ॥३०॥
हीयमानमथापश्यत्सुग्रीवं वानरेश्वरम् । प्रेक्षमाणं दिशश्चैव राघवं च मुहुर्मुहुः ॥३१॥
ततो रामो महातेजा आर्तं दृष्ट्वा हरीश्वरम् । शरं च वीक्षते वीरो वालिनो वधकारणात् ॥३२॥
ततो धनुषि संधाय शरमाशीविषोपमम् । पूरयामास तच्चापं कालचक्रमिवान्तकः ॥३३॥

तुम्हारे ऊपर छूटेगी, तो तुम्हारे प्राणों को समाप्त कर देगी ॥ २० ॥ ऐसे वचन कहते हुए बाली के प्रति सुग्रीव बोले—यह प्राणहारी मेरी मुष्टि तुम्हारे मस्तक पर गिरे और तुम्हारे प्राणों को हर लेवे ॥ २१ ॥ आक्रमण पूर्वक क्रुद्ध बाली के इस प्रकार प्रहार करने पर पर्वतीय झरनों की तरह सुग्रीव के शरीर से रक्त-धारा बहने लगी ॥ २२ ॥ उस समय तेजस्वी सुग्रीव ने एक साल वृक्ष को उखाड़, निशंक हो कर बाली के शरीर पर इस प्रकार प्रहार किया जैसे पर्वत पर वज्रपात होता है ॥ २३ ॥ सुग्रीव के साल वृक्ष के आघात से बाली इस प्रकार विचलित हो गया जैसे समुद्र में खेने वालों के सहित अत्यन्त भाराक्रान्त नौका हो ॥ २४ ॥ गरुड़ के समान वेगवाले, भयंकर बल पराक्रम वाले, विशाल शरीर वाले वे दोनों आकाश स्थित चन्द्र सूर्य के समान प्रतीत होने लगे ॥ २५ ॥ शत्रु के घात में वे दोनों ही प्रहार करते हुए एक दूसरे के दुर्बल पक्ष का अन्वेषण कर रहे थे। किन्तु बल पराक्रम सम्पन्न बाली पराक्रम में बढ़ने लगा। ॥ २६ ॥ महावीर सूर्यपुत्र सुग्रीव का बल उस समय क्षीण होने लगा। बाली के द्वारा जिसका दर्प दलित हो गया है, ऐसे सुग्रीव शिथिल हो गये ॥ २७ ॥ क्रोधावेग में आये हुए सुग्रीव ने भी वृक्षों, शाखाओं पाषाण शिलाओं, वज्र के समान तीव्र नखों, मुष्टिका, घुटनों, पैरों तथा भुजाओं के द्वारा बाली पर बार बार प्रहार करते हुए अपना पराक्रम रामचन्द्र को दिखाया। उस समय इन्द्र तथा वृत्र असुर की तरह उन दोनों का घोर युद्ध हुआ ॥ २८-२९ ॥ रक्त से सने हुए परस्पर लड़ते हुए वे दोनों वनवासी उस समय गर्जन करते हुए महामेघ के सदृश प्रतीत होने लगे ॥ ३० ॥ वनवासी राजा सुग्रीव की शक्ति क्षीण हो रही है तथा वह बारबार मुझे देख रहा है, इस दृश्य को रामचन्द्र ने देखा ॥ ३१ ॥ महातेजस्वी रामचन्द्र सुग्रीव की विपन्नावस्था को देखकर बालि-वध की आकांक्षा से बाण को खोजने लगे ॥ ३२ ॥ सर्प के समान बाण को धनुष पर सन्धान करके बाण प्रत्यञ्चा को कान तक इस प्रकार खींचा जैसे मृत्यु अपने कालचक्र को प्रेरित करती है ॥ ३३ ॥ प्रत्यञ्चा के भयंकर रव से पक्षिगण त्रस्त हो गये। प्रलयकाल के समान दृश्य को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्य ज्यातलघोषेण त्रस्ताः पत्ररथेश्वराः । प्रदुद्रुवुर्मृगाश्चैव युगान्त इव मोहिताः ॥३४॥
मुक्तस्तु वज्रनिर्घोषः प्रदीप्ताशनिसंनिभः । राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः ॥३५॥
ततस्तेन महातेजा वीर्योत्सिक्तः कपीश्वरः । वेगेनाभिहतो वाली निपपात महीतले ॥३६॥
इन्द्रध्वज इवोद्धूतः पौर्णमास्यां महीतले । आश्वयुक्समये मासि गतश्रीको विचेतनः ॥३७॥
नरोत्तमः कालयुगान्तकोपमं शरोत्तमं काञ्चनरूप्यभूषितम् ।
ससर्ज दीप्तं तममित्रमर्दनं सधूममग्निं मुखतो यथा गिरिः ॥३८॥
अथोक्षितः शोणिततोयविस्रवैः सुपुष्पिताशोक इवानिलोद्धतः ।
विचेतनो वासवसूनुराहवे विभ्रंशितेन्द्रध्वजवत्क्षितिं गतः ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे वालिसंहारो नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

रामाधिक्षेपः

ततः शरेणाभिहतो रामेण रणकर्कशः । पपात सहसा वाली निकृत्त इव पादपः ॥ १ ॥

देखकर वन के जन्तुओं में भगदड़ मच गई ॥ ३४ ॥ प्रदीप्त वज्र के समान भयंकर शब्द करनेवाला महाबाण रामचन्द्र ने बाली के हृदय को लक्ष्य कर मारा ॥ ३५ ॥ बल-वीर्य से समन्वित महातेजस्वी बाली मर्मान्तक अत्यन्त वेग वाले राम के बाण से आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ३६ ॥ शारदी पूर्णिमा को उठी हुई इन्द्रध्वजा के समान वह बाली अचेतन अवस्था में पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥३७॥ मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र ने स्वर्ण से भूषित शत्रु के मान मर्दन करने वाले प्रलय काल के समान देदीप्यमान उस बाण को इस प्रकार चलाया जैसे ज्वालामुखी पर्वत अपने मुख से धूम सहित अग्नि को वमन करते हैं ॥ ३८ ॥ शोणित तथा स्वेद से सम्पूर्ण शरीर जिसका आर्द्र हो गया है, ऐसे बाली का शरीर पुष्पित पर्वतीय अशोक वृक्ष के समान प्रतीत होने लगा। उस संग्राम क्षेत्र में मूर्छित अवस्था में वह बाली टूटी हुई इन्द्रध्वजा के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ३९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'बाली का वध' विषयक सोलहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ सर्ग

राम की निन्दा

रणदुर्मद बाली रामचन्द्र के बाण से आहत होता हुआ कटे हुए वृक्ष के समान सहसा भूमि पर गिर पड़ा ॥ १ ॥ तपे हुए काञ्चन के आभूषण धारण करने वाला बाली सर्वाङ्ग शिथिल हो कर देदीप्यमान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स भूमौ न्यस्तसर्वाङ्गस्तप्तकाञ्चनभूषणः । अपतद्देवराजस्य मुक्तरश्मिरिव ध्वजः ॥ २ ॥
तस्मिन्निपतिते भूमौ वानराणां गणेश्वरे । नष्टचन्द्रमिव व्योम न व्यराजत मेदिनी ॥ ३ ॥
भूमौ निपतितस्यापि तस्य देहं महात्मनः । न श्रीर्जहाति न प्राणा न तेजो न पराक्रमः ॥ ४ ॥
शक्रदत्ता वरा माला काञ्चनी वज्रभूषिता । दधार हरिमुख्यस्य प्राणांस्तेजः श्रियं च सा ॥ ५ ॥
स तया मालया वीरो हैमया हरियूथपः । सन्ध्यानुगतपर्यन्तः पयोधर इवाभवत् ॥ ६ ॥
तस्य माला च देहश्च मर्मघाती च यः शरः । त्रिधेव रचिता लक्ष्मीः पतितस्यापि शोभते ॥ ७ ॥
तदस्त्रं तस्य वीरस्य स्वर्गमार्गप्रभावनम् । रामबाणासनोत्क्षिप्तमावहत्परमां गतिम् ॥ ८ ॥
तं तथा पतितं संख्ये गतार्चिषमिवानलम् । ययातिमिव पुण्यान्ते देवलोकात्परिच्युतम् ॥ ९ ॥
आदित्यमिव कालेन युगान्ते भुवि पातितम् । महेन्द्रमिव दुर्धर्षं महेन्द्रमिव दुःसहम् ॥१०॥
महेन्द्रपुत्रं पतितं वालिनं हेममालिनम् । व्यूढोरस्कं महाबाहुं दीप्तास्यं हरिलोचनम् ॥११॥
लक्ष्मणानुगतो रामो ददर्शोपससर्प च ।
तं दृष्ट्वा राघवं वाली लक्ष्मणं च महाबलम् । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं परुषं धर्मसंहितम् ॥१२॥
त्वं नराधिपतेः पुत्रः प्रथितः प्रियदर्शनः । कुलीनः सत्त्वसंपन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः ॥१३॥
पराङ्मुखवधं कृत्वा को नु प्राप्तस्त्वया गुणः । यदहं युद्धसंरब्धः शरेणोरसि ताडितः ॥१४॥
रामः करुणवेदी च प्रजानां च हिते रतः । सानुक्रोशो महोत्साहः समयज्ञो दृढव्रतः ॥१५॥

इन्द्र ध्वजा के समान भूमि पर गिर पड़ा ॥ २ ॥ वनशैलान्त वासिओं के सम्राट् बाली के गिर जाने पर चन्द्रहीन नभ के समान पृथ्वी शोभा से हीन हो गई ॥ ३ ॥ महात्मा बाली के पृथ्वी पर गिर जाने पर भी उस के शरीर ने कान्ति, प्राण, तेज तथा पराक्रम को नहीं त्यागा ॥ ४ ॥ रत्न से अलंकृत इन्द्र की दी हुई वह श्रेष्ठ स्वर्णमयी माला बाली के प्राण, तेज तथा कान्ति की रक्षा कर रही थी ॥ ५ ॥ काञ्चनमयी माला के द्वारा वह वीर, वनवासियों का राजा सन्ध्या की लालिमा से युक्त मेघ के समान प्रतीत होने लगा ॥ ६ ॥ वह माला, बाली का शरीर तथा मर्मघाती वह बाण बाली के गिरने पर भी पृथक् पृथक् शोभा को प्राप्त हो रहे थे ॥ ७ ॥ राम के द्वारा संचालित वह अस्त्र बाली के स्वर्गगामी होने का हेतु बन गया। रामचन्द्र के धनुष से छूटे हुए बाण ने बाली को सद्गति प्राप्त करा दी (शूराश्चाभ्यमुखे हताः अर्थात् सीधे छाती संग्राम में मरे हुए वीर की सद्गति होती है) ॥ ८ ॥ संग्राम में गिरा हुआ वह बाली ज्वालाहीन अग्नि के समान प्रतीत होता था तथा देवलोक से गिरे हुए क्षीणपुण्य ययाति के समान प्रतीत हो रहा था ॥ ९ ॥ भूमि पर गिरा हुआ वह बाली युगान्त में प्रभाहीन सूर्य के समान प्रतीत हो रहा था। महेन्द्र के समान दुर्धर्ष, उपेन्द्र के समान दुःसह ॥ १० ॥ काञ्चन मालाधारी, उन्नत वक्षःस्थल, प्रदीप्त मुखमण्डल, विकसित नेत्र, गिरे हुए महेन्द्र-पुत्र बाली को लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र ने देखा तथा उसके समीप गये ॥ ११ ॥ महाबली राम तथा लक्ष्मण को देख कर धर्मयुक्त यह कठोर वचन नम्रता पूर्वक बाली ने कहा ॥ १२ ॥ व्रती, तेजस्वी, कुलीन, प्रियदर्शी, बुद्धि सम्पन्न प्रसिद्ध राजकुल में तुम उत्पन्न हुए हो ॥ १३ ॥ छिप कर धोखे से मुझे मार कर आप ने कौन सी ख्याति प्राप्त की है जिससे आप के कारण दूसरों के साथ युद्ध करता हुआ मैं असमय में मारा गया ॥ १४ ॥ रामचन्द्र दुःखियों के दुःख दूर करने वाले प्रजा के हितैषी, दयालु, उत्साही, समय के जानने वाले तथा दृढव्रती हैं ॥ १५ ॥ इन गुणों से युक्त तुम्हारी कीर्त्ति सभी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इति ते सर्वभूतानि कथयन्ति यशो भुवि । दमः शमः क्षमा धर्मो धृतिः सत्यं पराक्रमः ॥१६॥
पार्थिवानां गुणा राजन् दण्डश्चाप्यपराधिषु । तान् गुणान् संप्रधार्याहमग्र्यं चाभिजनं तव ॥१७॥
तारया प्रतिषिद्धोऽपि सुग्रीवेण समागतः । न मामन्येन संरब्धं प्रमत्तं योद्धुमर्हति ॥१८॥
इति मे बुद्धिरुत्पन्ना बभूवादर्शने तव ॥
न त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम् । जाने पापसमाचारं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥१९॥
सतां वेषधरं पापं प्रच्छन्नमिव पावकम् । नाहं त्वामभिजानामि धर्मच्छद्माभिसंवृतम् ॥२०॥
विषये वा पुरे वा ते यदा नापकरोम्यहम् । न च त्वामवजानेऽहं कस्मान्मां हंस्यकिल्बिषम् ॥२१॥
फलमूलाशनं नित्यं वानरं वनगोचरम् । मामिहाप्रतियुध्यन्तमन्येन च समागतम् ॥२२॥
त्वं नराधिपतेः पुत्रः प्रतीतः प्रियदर्शनः । लिङ्गमप्यस्ति ते राजन् दृश्यते धर्मसंहितम् ॥२३॥
कः क्षत्रियकुले जातः श्रुतवान्नष्टसंशयः । धर्मलिङ्गप्रतिच्छन्नः क्रूरं कर्म समाचरेत् ॥२४॥
राम राजकुले जातो धर्मवानिति विश्रुतः । अभव्यो भव्यरूपेण किमर्थं परिधावसि ॥२५॥
वयं वनचरा राम कन्दमूलफलाशनाः । एषा प्रकृतिरस्माकं पुरुषस्त्वं नरेश्वर ॥२६॥
भूमिर्हिरण्यं रूप्यं च विग्रहे कारणानि च । अत्र कस्ते वने लोभो मदीयेषु फलेषु वा ॥२७॥
नयश्च विनयश्चोभौ निग्रहानुग्रहावपि । राजवृत्तिरसंकीर्णा न नृपाः कामवृत्तयः ॥२८॥

मनुष्य इस संसार में कर रहे हैं। दम, शान्ति, क्षमा, नियम पालन, धैर्य, विमल बुद्धि, पराक्रम ॥ १६ ॥ तथा अपकारी अधर्मी को दण्ड देना, ये राजाओं के गुण होते हैं। आप की श्रेष्ठ कुलीनता तथा इन श्रेष्ठ गुणों को सुन कर ही ॥ १७ ॥ मैं तारा के निषेध करने पर भी सुग्रीव के साथ संग्राम करने आया। अन्य के साथ युद्ध करते हुए मुझे रामचन्द्र नहीं मारेंगे, आप के विना दर्शन किये ही मैंने यह निश्चय कर लिया था ॥ १८ ॥ धर्मध्वजी, अधार्मिक, पापाचरण करने वाले, तृणों से छिपे हुए कूप के समान, अपनी हत्या करने वाले तुम को मैं न जान सका ॥ १९ ॥ सज्जनों का वेष धारण करनेवाले तुम छिपी हुई अग्नि के समान, धर्म के वेष में छिपे हुए अधर्मी हो, ऐसा मैं तुम्हें नहीं जानता था ॥ २० ॥ मैं न तो तुम्हारे देश या अधिकार में हूं, मैंने कोई आप का अपकार भी नहीं किया और न मैं ने आप का अपमान ही किया, फिर मुझ निर्दोष व्यक्ति को आप ने क्यों मारा ॥ २१ ॥ फल मूल खाने वाले, वनवासियों के शासक एक वनवासी मुझ को जब कि मैं दूसरे से युद्ध कर रहा था, ऐसी अवस्था में क्यों मारा ॥ २२ ॥ आप राजवंश में उत्पन्न होने वाले, विश्वासी तथा प्रियदर्शी प्रतीत होते हैं। हे राजन्! आप धार्मिक चिह्नों से भी परिपूर्ण हैं ॥ २३ ॥ प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होने वाला, विद्वान्, संशय रहित, धार्मिक चिह्नों से परिपूर्ण कौन ऐसा व्यक्ति है जो इस प्रकार का निर्दय कर कर्म करेगा जैसा आप ने किया है ॥ २४ ॥ तुम प्रथित रघुवंशी कुल में उत्पन्न हुए हो। रघुवंशी धर्मात्मा होते हैं, यह प्रसिद्ध है। किन्तु इसके विपरीत तुम मर्यादाहीन तथा अत्यन्त क्रूर हो, केवल ऊपर से सौम्य रूप धारण कर इधर उधर क्यों पर्यटन कर रहे हो ॥ २५ ॥ हे रामचन्द्र! हम तो वनवासी कन्द-मूल-फल के खाने वाले हैं, यही हमारी स्वाभाविक वृत्ति तथा आहार है किन्तु हे नरेश्वर! आप तो नागरिक महान् पुरुष हैं ॥ २६ ॥ भूमि, स्वर्ण तथा अलौकिक सौन्दर्य, ये ही वस्तुएं किसी के निग्रह या वध का कारण होती हैं। मेरे अधीन इस वनवासि-राज्य में कौन सी ऐसी वस्तु है जो आप के लोभ का कारण बन गई है ॥ २७ ॥ नीति, नम्रता, दण्डानुकूल निग्रह, अनुग्रह—इसी को राजधर्म कहते हैं। इसी के अनुकूल आचरण को राजनीति कहते हैं। स्वेच्छाचारिता को राजधर्म नहीं कहते हैं ॥ २८ ॥ तुम तो स्वेच्छाचारी, लोलुप,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्वं तु कामप्रधानश्च कोपनश्चानवस्थितः । राजवृत्तैरसंकीर्णः शरासनपरायणः ॥२९॥
न तेऽस्त्यपचितिर्धर्मे नार्थे बुद्धिरवस्थिता । इन्द्रियैः कामवृत्तः सन् कृष्यसे मनुजेश्वर ॥३०॥
हत्वा बाणेन काकुत्स्थ मामिहानपराधिनम् । किं वक्ष्यसि सतां मध्ये कृत्वा कर्म जुगुप्सितम् ॥३१॥
राजहा ब्रह्महा गोघ्नश्चोरः प्राणिवधे रतः । नास्तिकः परिवेत्ता च सर्वे निरयगामिनः ॥३२॥
सूचकश्च कदर्यश्च मित्रघ्नो गुरुतल्पगः । लोकं पापात्मनामेते गच्छन्त्यत्र न संशयः ॥३३॥
अधार्यं चर्म मे सद्भी रोमाण्यस्थि च वर्जितम् । अभक्ष्याणि च मांसानि त्वद्विधैर्धर्मचारिभिः ॥३४॥
[पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या ब्रह्मक्षत्रेण राघव । शल्यकः श्वाविधो गोधा शशः कूर्मश्च पञ्चमः ॥३५॥
चर्म चास्थि च मे राजन्न स्पृशन्ति मनीषिणः । अभक्ष्याणि च मांसानि सोऽहं पञ्चनखो हतः ॥३६॥]
तारया वाक्यमुक्तोऽहं सत्यं सर्वज्ञया हितम् । तदतिक्रम्य मोहेन कालस्य वशमागतः ॥३७॥
त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुंधरा । प्रमदा शीलसंपन्ना धूर्तेन पतिना यथा ॥३८॥
शठो नैकृतिकः क्षुद्रो मिथ्याप्रश्रितमानसः । कथं दशरथेन त्वं जातः पापो महात्मना ॥३९॥
छिन्नचारित्रकक्ष्येण सतां धर्मातिवर्तिना । त्यक्तधर्माङ्कुशेनाहं निहतो रामहस्तिना ॥४०॥

क्रोध तथा चलचित्तता दोष से ग्रस्त हो। राजधर्म से शून्य हो। केवल धनुष के सहारे ही तुम्हारा सब काम होता है ॥ २९ ॥ हे नराधिप ! धर्म में तुम्हारी श्रद्धा नहीं, उसी प्रकार अर्थ में भी तुम्हारी बुद्धि स्थिर नहीं। स्वेच्छाचारी इन्द्रियों के वशीभूत होकर प्रत्येक कर्म में अजितेन्द्रियता का परिचय देते हो ॥ ३० ॥ हे रामचन्द्र ! मुझ निरपराध व्यक्ति की बाणों से हत्या कर के जो यह अत्यन्त निन्दित कर्म किया है, महापुरुषों के बीच में इसका परिमार्जन कैसे करोगे ॥ ३१ ॥ राजहत्यारा, ब्राह्मणहत्यारा, गोघाती, प्राणिमात्र की हिंसा में रत, नास्तिक तथा परिवेत्ता (ज्येष्ठभ्राता के पूर्व विवाह करने वाला) ये सभी अशास्त्रीय काम करने से नरकगामी होते हैं ॥ ३२ ॥ निन्दक, कृपण, मित्रघाती, गुरुस्त्रीगामी ये सभी पापमय लोकों को प्राप्त होते हैं, इस में संशय नहीं ॥ ३३ ॥ मेरे चर्म तथा रोम भी सज्जनों के लिये अधार्य हैं। ये अभक्ष्य मांस तुम्हारे जैसे धर्मात्मा के लिये त्याज्य ही हैं ॥ ३४ ॥ हे रामचन्द्र ! पञ्चनखी इन पांच जन्तुओं के खाने का विधान ब्राह्मण, क्षत्रिय को है—शश (खरगोश), साही, गोह, कछुआ, सियार ॥ ३५ ॥ हे रामचन्द्र ! मेरी हड्डी तथा चर्म को मनीषी लोग स्पर्श नहीं करते। मेरा मांस अभक्ष्य है। इस पर भी आप ने मुझ पञ्चनखी को मार दिया* ॥ ३६ ॥ सर्वज्ञा तारा ने जो मेरे हित की बात कही थी, वह सर्वथा सत्य थी। अज्ञानवश उस की अवज्ञा करने से ही मैं आज असमय में काल कवलित हो रहा हूं ॥ ३७ ॥ चरित्रहीन पति को प्राप्त कर जैसे शीलवती स्त्री अनाथ हो जाती है, उसी प्रकार हे रामचन्द्र ! तुम्हारे जैसे शासक पति को प्राप्त कर यह वसुन्धरा भी आज अनाथ ही है ॥ ३८ ॥ धूर्त, क्षुद्र, प्राणघातक, अपने अन्तःकरण पर अधिकार न रख कर अजितेन्द्रियता का परिचय देने वाला आप जैसा पापी पुत्र महात्मा राजा दशरथ के यहां कैसे उत्पन्न हुआ ॥ ३९ ॥ जिसने चरित्ररूपी मर्यादा की

* ये दोनों ही श्लोक धर्मशास्त्र विरुद्ध, वेदविरुद्ध तथा प्रकरण विरुद्ध होने के कारण प्रक्षिप्त हैं। जब वेद में प्राणिहिंसा तथा मांसाहार वर्जित है तो उसके विरुद्ध प्राणिवध तथा मांसाहार को प्रोत्साहन देना किसी प्राणघाती मांसाहारी का काम है। वाल्मीकिरामायण के शतशः स्थानों में वाली को वनशैलान्त वासी मनुष्यों का सम्राट् माना गया है। पंच कन्याओं में स्थान प्राप्त करने वाली प्रकाण्ड विदुषी तारा जिस की धर्मपत्नी है, उस बाली का यहाँ पञ्चनखों में वर्णन करना वाल्मीकिरामायण के प्रकरण से सर्वथा विरुद्ध है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अशुभं चाप्ययुक्तं च सतां चैव विगर्हितम् । वक्ष्यसे चेदृशं कृत्वा सद्भिः सह समागतः ॥४१॥
उदासीनेषु योऽस्मासु विक्रमस्ते प्रकाशितः । अपकारिषु तं राजन्न हि पश्यामि विक्रमम् ॥४२॥
दृश्यमानस्तु युध्येथा मया यदि नृपात्मज । अद्य वैवस्वतं देवं पश्येस्त्वं निहतो मया ॥४३॥
त्वयादृश्येन तु रणे निहतोऽहं दुरासदः । प्रसुप्तः पन्नगेनेव नरः पानवशं गतः ॥४४॥
सुग्रीवप्रियकामेन यत्कृतेऽस्मि हतस्त्वया । मामेव यदि पूर्वं त्वमेतदर्थमचोदयः ॥४५॥
मैथिलीमहमेकाह्ना तव चानीतवान् भवेः । राक्षसं च दुरात्मानं तव भार्यापहारिणम् ॥४६॥
कण्ठे बद्ध्वा प्रदद्यां तेऽनिहतं रावणं रणे । न्यस्तां सागरतोये वा पाताले वापि मैथिलीम् ॥४७॥
आनयेयं तवादेशाच्छ्वेतामश्वतरीमिव । युक्तं यत्प्राप्नुयाद्राज्यं सुग्रीवः स्वर्गते मयि ॥४८॥
अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाहं निहतो रणे । काममेवंविधो लोकः कालेन विनियुज्यते ॥४९॥
क्षमं चेद्भवता प्राप्तमुत्तरं साधु चिन्त्यताम् ।

इत्येवमुक्त्वा परिशुष्कवक्त्रः शराभिघाताद्व्यथितो महात्मा ।
समीक्ष्य रामं रविसंनिकाशं तूष्णीं बभूवामरराजसूनुः ॥५०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे रामाधिक्षेपो नाम सप्तदशः सर्गः ॥१७॥

शृंखला तोड़ दी है, जो सज्जनों—नियन्ता के नियम के विरुद्ध आचरण करने वाला तथा धर्म रूप अंकुश को जिसने तिरस्कृत कर दिया है, आज मैं ऐसे राम रूपी हाथी से मारा गया ॥ ४० ॥ अशुभ, अयुक्त, इस प्रकार सज्जनों से निन्दित कर्म को कर के सज्जनों की सभा में तुम क्या कह सकोगे ॥ ४१ ॥ हमारे जैसे उदासीन, निरपराध व्यक्तिपर जो यह पराक्रम दिखाया है, हे राजन्! अपकारी या अपराधी व्यक्तियों में आप का वह पराक्रम नहीं दिखाई देता ॥ ४२ ॥ हे राजकुमार! यदि संग्राम में मेरे समक्ष आकर युद्ध करते, तो मेरे द्वारा मारे जाने पर आज तुम्हें यमसदन का अतिथि होना पड़ता ॥ ४३ ॥ तुमने छिप कर युद्ध में मुझ जैसे अजेय व्यक्ति को उसी प्रकार मारा है जैसे मद्यपान वश घोर निद्रा में सोये व्यक्ति को सांप काट लेता है ॥ ४४ ॥ सुग्रीव की कामना सिद्धकर अपने कार्य की सिद्धि के लिये आप ने जो मुझे मारा है, यदि यह अपना मनोगत भाव आप पहले मुझ से कहते ॥ ४५ ॥ तो मैं एक ही दिन में मिथिलाकुमारी को लाकर आप को समर्पित कर देता आप की स्त्री का अपहरण करने वाले दुरात्मा उस राक्षस ॥ ४६ ॥ रावण को रण में जीते जी उस का गला बांध कर आप के समक्ष प्रस्तुत कर देता सागर के जल में या पाताल में जानकी कहीं भी होती ॥ ४७ ॥ मैं उस को ला कर आप के सामने उसी प्रकार प्रस्तुत कर देता जैसे लुप्त हुई श्वेताश्वतर की श्रुति लाई गई थी मेरे दिवंगत होने पर सुग्रीव राज्य पायें, यह उचित है ॥ ४८ ॥ किन्तु संग्राम में आप ने मुझे अधर्म से मारा है, यह कार्य अनुचित हुआ है समय आने पर प्रायः सभी उत्पन्न जीवधारी एक दिन मृत्युको प्राप्त होते हैं, किन्तु आप ने यह जो अनुचित कर्म किया है, इसका उचित समाधान क्या होगा, इसे आप विचारिये ॥ ४९ ॥ बाण के आघात से व्यथित जिस का मुख सूख रहा है, ऐसा महात्मा इन्द्रपुत्र बाली देदीप्यमान सूर्य के समान तेजस्वी रामचन्द्र को देख कर मौन हो गया ॥ ५० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'राम की निन्दा' विषयक सत्रहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टादशः सर्गः

वालिवधसमर्थनम्

इत्युक्तः प्रश्रितं वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् । परुषं वालिना रामो निहतेन विचेतसा ॥ १ ॥
तं निष्प्रभमिवादित्यं मुक्ततोयमिवाम्बुदम् । उक्तवाक्यं हरिश्रेष्ठमुपशान्तमिवानलम् ॥ २ ॥
धर्मार्थगुणसंपन्नं हरीश्वरमनुत्तमम् । अधिक्षिप्तस्तदा रामः पश्चाद्वालिनमब्रवीत् ॥ ३ ॥
धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम् । अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे ॥ ४ ॥
अस्पृष्ट्वा बुद्धिसंपन्नान् वृद्धानाचार्यसंमतान् । सौम्य वानरचापल्यात्त्वं मां वक्तुमिहेच्छसि ॥ ५ ॥
इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना । मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहप्रग्रहावपि ॥ ६ ॥
तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवानृजुः । धर्मकामार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहे रतः ॥ ७ ॥
नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन् सत्यं च सुस्थितम् । विक्रमश्च यथादृष्टः स राजा देशकालवित् ॥ ८ ॥
तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवाः । चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसंतानमिच्छवः ॥ ९ ॥
तस्मिन्नृपतिशार्दूले भरते धर्मवत्सले । पालयत्यखिलां भूमिं कश्चरेद्धर्मनिग्रहम् ॥ १० ॥

अट्ठारहवां सर्ग

बाली के वध का समर्थन

बाण के आघात से आहत संज्ञाहीन बाली धर्मार्थ युक्त, हितकारी तथा कुछ कठोर वचन नम्रता पूर्वक राम से बोला ॥ १ ॥ प्रभाहीन आदित्य के समान, जलहीन मेघ के सदृश, बुझी हुई अग्नि के समान तथा जिसने धर्मार्थ गुणसम्पन्न वाक्यों द्वारा राम पर कड़ा आक्षेप किया है, ऐसे वनवासी राजा बाली के प्रति रामचन्द्र बोले ॥ २, ३ ॥ धर्म-अर्थ-काम तथा लौकिक वैधानिक व्यवहार को विना जाने ही तुम लड़कपन के कारण मेरी इस प्रकार निन्दा क्यों करते हो ॥ ४ ॥ बुद्धिसम्पन्न वयोवृद्ध आचार्यों से विना जाने हुए, हे सौम्य ! वनवासी चपलता से प्रेरित हो कर ही तुम मुझे उपदेश दे रहे हो ॥ ५ ॥ वन पर्वत-वाटिका आदि से परिपूर्ण यह सारी भूमि इक्ष्वाकु वंशियों की है । मृग-पक्षि-मनुष्यों को दण्ड देने या पारितोषिक देने का अधिकार भी उन्हीं को है ॥ ६ ॥ धर्म-अर्थ-काम के तत्त्व को जानने वाले प्रजा पर यथावत् शासन करने वाले, सत्यवादी, कोमल वृत्तिवाले धर्मात्मा भरत इक्ष्वाकुओं के उत्तराधिकारी के रूप में आज इस पृथ्वी का शासन कर रहे हैं ॥ ७ ॥ नीति, नम्रता, स्थिरता, सत्य, विक्रम जिस के अन्दर उपस्थित हों तथा देश काल की परिस्थिति को देखकर शासन करने वाला व्यक्ति ही राजपद का अधिकारी होता है । ये सभी गुण भरत में विद्यमान हैं ॥ ८ ॥ हम दोनों बन्धु तथा अन्य राज्याधिकारी उस धार्मिक भरत के धर्मानुकूल आदेश से धार्मिक नियमादि की वृद्धि के लिये इस सम्पूर्ण पृथ्वी का भ्रमण कर रहे हैं ॥ ९ ॥ धर्मवत्सल, धर्मात्मा, राजसिंह उस भरत के सम्पूर्ण पृथ्वी का शासन करते हुए कौन व्यक्ति धर्म के विरुद्ध आचरण कर सकता है ॥ १० ॥ अपने धर्म पर स्थित रहने वाले हम लोग भरत की आज्ञा का पालन करते हुए, जो कोई भी पथभ्रष्ट धर्म विरुद्ध आचरण करता है, उस को यथावत् दण्ड देते

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ते वयं धर्मविभ्रष्टं स्वधर्मे परमे स्थिताः । भरताज्ञां पुरस्कृत्य निगृह्णीमो यथाविधि ॥११॥
त्वं तु संक्लिष्टधर्मा च कर्मणा च विगर्हितः । कामतन्त्रप्रधानश्च न स्थितो राजवर्त्मनि ॥१२॥
ज्येष्ठो भ्राता पिता चैव यश्च विद्यां प्रयच्छति । त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धर्मे वर्त्मनि वर्तिनः ॥१३॥
यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः । पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चेदत्र कारणम् ॥१४॥
सूक्ष्मः परमदुर्ज्ञेयः सतां धर्मः प्लवंगम । हृदिस्थः सर्वभूतानामात्मा वेद शुभाशुभम् ॥१५॥
चपलश्चपलैः सार्धं वानरैरकृतात्मभिः । जात्यन्ध इव जात्यन्धैर्मन्त्रयन् द्रक्ष्यसे नु किम् ॥१६॥
अहं तु व्यक्ततामस्य वचनस्य ब्रवीमि ते । न हि मां केवलं रोषात्त्वं विगर्हितुमर्हसि ॥१७॥
तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः । भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥१८॥
अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । रुमायां वर्तसे कामात्स्नुषायां पापकर्मकृत् ॥१९॥
तद्व्यतीतस्य ते धर्मात्कामवृत्तस्य वानर । भ्रातृभार्यावमर्शेऽस्मिन् दण्डोऽयं प्रतिपादितः ॥२०॥
न हि धर्मविरुद्धस्य लोकवृत्तादपेयुषः । दण्डादन्यत्र पश्यामि निग्रहं हरियूथप ॥२१॥
न हि ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्भवः । औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः ॥२२॥
प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः । भरतस्तु महीपालो वयं चादेशवर्तिनः ॥२३॥
त्वं तु धर्मादतिक्रान्तः कथं शक्यमुपेक्षितुम् । गुरुर्धर्मव्यतिक्रान्तं प्राज्ञो धर्मेण पालयन् ॥२४॥

हैं ॥ ११ ॥ अपने निन्दित कर्म के द्वारा तुमने धर्म का हनन किया है । अपनी स्वेच्छाचारिता को न्याय शासन में तुम प्रधानता देते हो, धार्मिक राजमार्ग से तुम विचलित हो ॥ १२ ॥ धर्मानुकूल अपने पथ पर चलने वाले ज्येष्ठ भ्राता, जन्मदाता पिता तथा विद्या का दान देनेवाले गुरु ये तीनों पिता के समान माने जाते हैं ॥ १३ ॥ छोटा भाई, पुत्र, गुणवान् शिष्य ये तीनों ही पुत्र के समान माने गये हैं । इस में भी धर्म ही हेतु है ॥ १४ ॥ हे वनवासी ! सज्जनाचरित धर्म अतिसूक्ष्म तथा दुर्ज्ञेय है । सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में अवस्थित यह आत्मा ही शुभाशुभ गति को जानता है ॥ १५ ॥ जैसे एक जन्मान्ध अन्य जन्मान्ध से पथ प्रदर्शन की सहायता नहीं ले सकता, उसी प्रकार अजितेन्द्रिय चपल वृत्ति वाले वनवासियों का साथ करके तुम धर्मादि की व्यवस्था क्या जान सकते हो ॥ १६ ॥ मैं इन बातों को स्पष्ट शब्दों में कहता हूं, केवल रोष में आकर तुम मेरी निन्दा नहीं कर सकते हो ॥ १७ ॥ मानवीय परम्परागत धर्म को छोड़ कर तुम अपने कनिष्ठ भ्राता सुग्रीव की धर्मपत्नी का पत्नीवत् उपयोग करते हो, यही कारण है जिस को लेकर मैंने तुम को प्राण दण्ड दिया है ॥ १८ ॥ इस महात्मा सुग्रीव के जीवित रहते हुए उस की स्त्री रुमा के प्रति जो तुम्हारी पुत्रवधू के समान है, पापमय आचरण करते हो ॥ १९ ॥ हे वनवासी ! तुमने शास्त्रानुमोदित धर्म का त्याग कर कामुकता का परिचय दिया है, इसलिये भ्राता की भार्या के उपभोग रूप इस जघन्य पाप के लिये ही तुम को यह प्राणान्तक दण्ड दिया गया है ॥ २० ॥ हे वनवासी राजा लोक मर्यादा के विरुद्ध सज्जनोचित पथ से हट कर कार्य करने वाले व्यक्ति को दण्ड के अतिरिक्त और कोई प्रतिकार का मार्ग नहीं दिखाई देता ॥ २१ ॥ क्षत्रिय वंश में उत्पन्न होने वाला मैं तुम्हारे इस पाप को कैसे सहन कर सकता हूं । पुत्री, भगिनी तथा छोटे भाई की स्त्री के साथ जो ॥ २२ ॥ व्यक्ति धर्मनिन्दित कामुकता का परिचय देता है, उसके लिये प्राणदण्ड की ही आज्ञा है । भाई भरत इस समय सम्पूर्ण पृथ्वी के सम्राट् हैं और हम लोग उनके आदेश के पालक हैं ॥ २३ ॥ तुमने धर्म मर्यादा का उल्लंघन किया है । इसलिये मैं इसकी उपेक्षा कैसे कर सकता हूं । धर्मानुकूल प्रजा का पालन करते हुए ज्ञानी भरत ॥ २४ ॥ श्रेष्ठ धार्मिक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भरतः कामवृत्तानां निग्रहे पर्यवस्थितः । वयं तु भरतादेशं विधिं कृत्वा हरीश्वर ॥२५॥
त्वद्विधान् भिन्नमर्यादान्नियन्तुं पर्यवस्थिताः । सुग्रीवेण च मे सख्यं लक्ष्मणेन यथा तथा ॥२६॥
दारराज्यनिमित्तं च निःश्रेयसि रतः स मे । प्रतिज्ञा च मया दत्ता तदा पावकसंनिधौ ॥२७॥
प्रतिज्ञाय कथं शक्यं मद्विधेनानवेक्षितुम् । तदेभिः कारणैः सर्वैर्महद्भिर्धर्मसंहितैः ॥२८॥
शासनं तव यद्युक्तं तद्भवाननुमन्यताम् । सर्वथा धर्म इत्येव द्रष्टव्यस्तव निग्रहः ॥२९॥
वयस्यस्योपकर्तव्यं धर्ममेवानुपश्यतः । गृहीतौ धर्मकुशलैस्तत्तथा चरितं मया ॥३०॥
शक्यं त्वयापि तत्कार्यं धर्ममेवानुवर्तता । श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ ॥३१॥
राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥३२॥
शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते । राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम् ॥३३॥
आर्येण मम मान्धात्रा व्यसनं घोरमीप्सितम् । श्रमणेन कृते पापे यथा पापं त्वया कृतम् ॥३४॥
अन्यैरपि कृतं पापं प्रमत्तैर्वसुधाधिपैः । प्रायश्चित्तं च कुर्वन्ति तेन तच्छाम्यते रजः ॥३५॥
तदलं परितापेन धर्मतः परिकल्पितः । वधो वानरशार्दूल न वयं स्ववशे स्थिताः ॥३६॥
शृणु चाप्यपरं भूयः कारणं हरिपुंगव । यच्छ्रुत्वा हेतुमद्वीर न मन्युं कर्तुमर्हसि ॥३७॥

मर्यादा का लोप करने वाले स्वेच्छाचारियों को दण्ड देने के लिये सदा सन्नद्ध हैं। हे वनवासियों के राजा! हम लोग राजा भरत के आदेशानुसार ॥ २५ ॥ तुम जैसे भिन्न मर्यादा वाले धर्म द्रोहियों को दण्ड देने के लिये उद्यत हैं। जैसा मेरा मित्रभाव लक्ष्मण के प्रति है, वैसा ही सुग्रीव के प्रति है ॥ २६ ॥ स्त्री तथा राज्य प्राप्ति के प्रतिकार में वे भी मेरे कल्याण के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हैं। वनवासी राजा सुग्रीव से मैंने इस बात की प्रतिज्ञा की है ॥ २७ ॥ प्रतिज्ञा का धनी मैं अपनी प्रतिज्ञा की उपेक्षा कैसे कर सकता हूं। धार्मिक इन्हीं सब कारणों से ॥ २८ ॥ जो तुम्हें दण्ड देना चाहिये था, मैंने धर्मानुकूल वही दण्ड दिया है ॥ २९ ॥ इसे आप भी स्वीकार करें। धर्म के जानने वाले मैंने मित्र का उपकार करना सर्वथा धर्म ही है, ऐसा समझ कर ही दण्ड दिया है ॥ ३० ॥ धार्मिक लोगों ने जिस मार्ग का अवलम्बन किया है। मैंने भी उसी पथ का अनुसरण किया है। धर्माचरण करने वाले तुम्हें भी वही काम करना चाहिये। सदाचार रक्षा के विषय में महर्षि मनुने दो श्लोकों में इसका विषद वर्णन किया है ॥ ३१ ॥ पाप कर के भी जो मनुष्य राजा के द्वारा दिये हुए दण्ड का भोग कर लेते हैं, वे निर्मल होकर उसी प्रकार स्वर्ग प्राप्त करते हैं जैसे पुण्यवान् महापुरुष स्वर्ग प्राप्त करते हैं ॥ ३२ ॥ पाप को स्वीकार कर लेने पर राज्याधिकारी द्वारा शारीर आदिक दण्ड दिया जाय या क्षमा दान के द्वारा उस को छोड़ दिया जाय, तो पापकारी चोर अपने पाप से मुक्त हो जाता है। यदि किसी हेतु को लेकर राजा उस अपराधी को दण्ड नहीं देता, तो वह स्वयं उस पाप का अपराधी हो जाता है ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार का पाप तुम ने किया है उसी प्रकार का पाप एक श्रमण (वनवासी तपस्वी) ने किया था। उस समय मेरे पूर्वज आर्य मान्धाता ने उसे कठोर दण्ड दिया था ॥ ३४ ॥ इस प्रकार अन्य राजाओं ने भी प्रमादी पापियों के द्वारा किये हुए पाप के प्रायश्चित्त में घोर दण्ड दिये हैं जिससे उनके पापों का शमन हुआ है ॥ ३५ ॥ हे वनवासी सम्राट्! अब आप पश्चात्ताप न करें। आप को प्राण-दण्ड केवल धर्म रक्षा के लिये दिया गया है। इस विषय में हम लोग स्वतन्त्र नहीं हैं ॥३६॥ हे वनवासी श्रेष्ठ! दण्ड के विषय में तुम्हारे दूसरे प्रश्न का उत्तर भी मैं दे रहा हूं, उसको सुनो। उस को सुनकर तुम्हें क्लेश तथा क्रोध को छोड़ देना चाहिये ॥३७॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न मे तत्र मनस्तापो न मन्युर्हरियूथप । [वागुराभिश्च पाशैश्च कूटैश्च विविधैर्नराः ॥३८॥
प्रतिच्छन्नाश्च दृश्याश्च गृह्णन्ति सुबहून्मृगान् । प्रधावितान्वा वित्रस्तान्विस्रब्धांश्चापि निष्ठितान् ॥३९॥
प्रमत्तानप्रमत्तान् वा नरा मांसार्थिनो भृशम् । विध्यन्ति विमुखांश्चापि न च दोषोऽत्र विद्यते ॥४०॥
यान्ति राजर्षयश्चात्र मृगयां धर्मकोविदाः । तस्मात्त्वं निहतो युद्धे मया बाणेन वानर ॥४१॥
अयुध्यन् प्रतियुध्यन् वा यस्माच्छाखामृगो ह्यसि] ॥
दुर्लभस्य च धर्मस्य जीवितस्य शुभस्य च । राजानो वानरश्रेष्ठ प्रदातारो न संशयः ॥४२॥
तान्न हिंस्यान्न चाक्रोशेन्नाक्षिपेन्नाप्रियं वदेत् । देवा मनुष्यरूपेण चरन्त्येते महीतले ॥४३॥
त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं रोषमास्थितः । प्रदूषयसि मां धर्मे पितृपैतामहे स्थितम् ॥४४॥
एवमुक्तस्तु रामेण वाली प्रव्यथितो भृशम् । न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥४५॥
प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः । यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तदेवं नात्र संशयः ॥४६॥
प्रतिवक्तुं प्रकृष्टे हि नापकृष्टस्तु शक्नुयाम् । यदयुक्तं मया पूर्वं प्रमादादुक्तमप्रियम् ॥४७॥

हे वनवासी श्रेष्ठ ! मैंने जो तुम को छिप कर छल पूर्वक मारा है, उसके लिये मेरे मन में किसी प्रकार का पश्चात्ताप नहीं। जाल, पाश, अनेक प्रकार के छल के द्वारा ॥ ३८ ॥ छिप कर या प्रत्यक्ष रूप में, भागते हुए, विश्वास पूर्वक बैठे हुए, अनेक मृगों को लोग मारते हैं ॥ ३९ ॥ मांसाहारी लोग सतर्क या असावधान पलायमान मृगों को मारते ही हैं। इस में उन्हें कोई दोष नहीं लगता ॥ ४० ॥ धर्म के जानने वाले राजर्षि लोग भी मृगया करने जाया ही करते हैं, इसलिये हे वनवासी राजा ! मैंने तुम को युद्धमें मारा है। चाहे तुमने युद्ध किया या नहीं किया, तब भी तुम्हें यह दण्ड दिया गया है क्योंकि तुम एक पशु हो* ॥ ४१ ॥ हे वनवासी श्रेष्ठ ! दुर्लभ धर्म तथा पवित्र जीवन के प्रदाता राजा लोग होते हैं, इस में कोई सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ इसलिये धर्मानुकूल शासन करने वाले राजाओं की हिंसा नहीं करनी चाहिये और उनकी निन्दा तथा तिरस्कार भी नहीं करना चाहिये क्यों कि वे इस पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में देवताओं का आचरण करते हैं ॥ ४३ ॥ तुम धर्म को न जान कर केवल रोष के वशीभूत होते हुए पिता-पितामह के मर्यादित पथ पर चलने वाले मेरी निन्दा कर रहे हो ॥ ४४ ॥ राम के ऐसा समझाने पर, मैं अपराधी हूं ऐसा समझ कर बाली अत्यन्त दुःखी हुआ। दण्ड का धार्मिक निर्णय हो जाने पर रामचन्द्र को निर्दोष मान लिया ॥ ४५ ॥ वनवासियों का सम्राट् बाली हाथ जोड़ कर रामचन्द्र से बोला—हे नरश्रेष्ठ ! आप ने जो कुछ कहा है, सर्वथा सत्य कहा है, इस में कोई सन्देह नहीं ॥ ४६ ॥ कोई सामान्य छोटा व्यक्ति एक महान् व्यक्ति को समझाने में समर्थ नहीं हो सकता। जो प्रमादवश मैंने आप को अप्रिय तथा अयुक्त वचन कहा है ॥ ४७ ॥ हे रामचन्द्र उस में भी मुझे सर्वथा दोषी मत समझिये (क्यों कि मैंने आर्त अवस्था में कहा है) आप सम्पूर्ण तत्त्व

* ये श्लोक प्रक्षिप्त हैं। इसी काण्ड के पूर्व श्लोकों में कतिपय स्थलों पर बाली को वनवासियों का सम्राट् कहा है, विदुषी तारा को उस की धर्मपत्नी कहा है। फिर उसी सम्राट् बाली को शाखामृग चतुष्पाद पशु कहना प्रकरण के विरुद्ध है तथा वदतो व्याघात दोष भी यहां आजाता है। दण्ड के विषय में पूर्व के श्लोकों में तीन हेतु दिये हैं—पुत्री, भगिनी तथा अनुजवधू के साथ जो कामीपन का परिचय देता है, उसको प्राण दण्ड ही दिया जाता है। अब इन श्लोकों में उसके विरुद्ध प्रलाप किया है। यहां कोई उचित हेतु न देकर केवल यह कहा है कि मैं हर प्रकार से तुम को मारने का अधिकारी हूं क्यों कि तुम शाखामृग, वानर या पशु हो। मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र के द्वारा इस प्रकार का अविवेकपूर्ण उत्तर उचित नहीं। इन्हीं हेतुओं से ये श्लोक प्रक्षिप्त माने गये हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्रापि खलु मे दोषं कर्तुं नार्हसि राघव । त्वं हि दृष्टार्थतत्त्वज्ञः प्रजानां च हिते रतः ॥४८॥
कार्यकारणसिद्धौ ते प्रसन्ना बुद्धिरव्यया ॥
मामप्यगतधर्माणं व्यतिक्रान्तपुरस्कृतम् । धर्मसंहितया वाचा धर्मज्ञ परिपालय ॥४९॥
बाष्पावरुद्धकण्ठस्तु वाली सार्त्तरवः शनैः । उवाच रामं संप्रेक्ष्य पङ्कलग्न इव द्विपः ॥५०॥
न त्वात्मानमहं शोचे न तारां न च बान्धवान् । यथा पुत्रं गुणश्रेष्ठमङ्गदं कनकाङ्गदम् ॥५१॥
स ममादर्शनाद्दीनो बाल्यात्प्रभृति लालितः । तटाक इव पीताम्बुरुपशोषं गमिष्यति ॥५२॥
बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः । तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः ॥५३॥
सुग्रीवे चाङ्गदे चैव विधत्स्व मतिमुत्तमाम् । त्वं हि शास्ता च गोप्ता च कार्याकार्यविधौ स्थितः ॥५४॥
या ते नरपते वृत्तिर्भरते लक्ष्मणे च या । सुग्रीवे चाङ्गदे राजंस्तां त्वमाधातुमर्हसि ॥५५॥
मद्दोषकृतदोषां तां यथा तारां तपस्विनीम् । सुग्रीवो नावमन्येत तथावस्थातुमर्हसि ॥५६॥
त्वया ह्यनुगृहीतेन राज्यं शक्यमुपासितुम् । त्वद्वशे वर्तमानेन तव चित्तानुवर्तिना ॥५७॥
शक्यं दिवं चार्जयितुं वसुधां चापि शासितुम् [त्वत्तोऽहं वधमाकाङ्क्षन् वार्यमाणोऽपि तारया ॥५८॥

के ज्ञाता तथा प्रत्यक्ष दर्शी हैं, प्रजा के पालन में सदा दत्तचित्त हैं। कार्य कारण के निर्णय करने में आप की बुद्धि स्थिर तथा निर्मल है ॥ ४८ ॥ धर्म से गिरे हुए पापियों के अग्रणी मुझे समझते हुए भी इस समय शान्तिमय अपने धार्मिक वचनों से हे धर्मज्ञ ! आप मेरी रक्षा करें तथा आश्वासन दें ॥ ४९ ॥ करुणा के कारण जिस का कण्ठ अवरुद्ध हो गया है, ऐसा बाली आर्त्त शब्दों में मन्द स्वर से रामचन्द्र को देखते हुए इस प्रकार बोला जैसे पङ्क में फंसा हुआ गजराज ॥ ५० ॥ मुझे अपने विषय में, तारा तथा अन्य बान्धवों के विषय में कोई चिन्ता या इस प्रकार का दुःख नहीं है जिस प्रकार कनक के आभूषण धारण करने वाले पुत्र गुणवान् अङ्गद के लिये हो रहा है ॥ ५१ ॥ बाल्य काल से ही मेरे द्वारा लालित पालित वह अंगद मेरे दिवंगत होने पर सूखे हुए सरोवर के समान दुःख पूर्वक सूख जायेगा ॥ ५२ ॥ वह अभी बालक होने से अपरिपक्व बुद्धि है। मेरा तथा तारा का वह एक ही प्रिय पुत्र है। इसलिये वह आप के द्वारा सर्वथा रक्षणीय है ॥ ५३ ॥ सुग्रीव तथा अङ्गद के प्रति आप समान भाव से स्नेहमयी बुद्धि रखें। इस समय आप ही इनके रक्षक हैं। कर्त्तव्याकर्त्तव्य के जानने वाले आप ही इनके शासक हैं ॥ ५४ ॥ हे नरनाथ ! जो स्नेहमयी वृत्ति भरत तथा लक्ष्मण के प्रति आप रखते हैं, वही स्नेहपूर्ण कारुणिक वृत्ति सुग्रीव तथा अंगद के प्रति भी रखें ॥ ५५ ॥ मेरे दोषों को लेकर प्रतिकार के रूप में सुग्रीव तपस्विनी तारा का किसी प्रकार का अपमान न करे, ऐसी व्यवस्था आप कीजियेगा ॥ ५६ ॥ आप के अनुकूल अपनी वृत्ति रखने से आप के आदेशानुसार वर्त्ताव करने तथा आप के अनुग्रह से सुग्रीव राज्य का शासन कर सकेंगे ॥ ५७ ॥ आप के अनुग्रह तथा आज्ञा से सुग्रीव पृथ्वी तथा स्वर्ग के राज्य का भी शासन कर सकता है। तारा के मना करने पर भी आप के द्वारा मेरा वध हो, इस आकांक्षा से ही ॥ ५८ ॥ द्वन्द्व युद्ध में सुग्रीव के साथ युद्ध करने के लिये मैं प्रवृत हुआ।* इस प्रकार की बातें मर्यादापुरुषोत्तम राम से कह कर वनवासियों के राजा बाली चुप हो गये ॥ ५९ ॥

* प्रकरण विरुद्ध होने के कारण उपर्युक्त श्लोक प्रक्षिप्त है। इसी सर्ग के पूर्वोक्त कई श्लोकों में बाली ने अपने वध के लिये दोषी बनाते हुए राम को करारी फटकार बतायी और उसी प्रसंग में यह कहना कि मैं आप के द्वारा मारा जाऊं, इस इच्छा से प्रेरित होकर ही सुग्रीव के साथ द्वन्द्वयुद्ध में प्रवृत्त हुआ, यह प्रकरण विरुद्ध असम्बद्ध प्रलाप मात्र है। इस लिये यह प्रक्षिप्त है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुग्रीवेण सह भ्रात्रा द्वन्द्वयुद्धमुपागतः]। इत्युक्त्वा संनतो रामं विरराम हरीश्वरः ॥५९॥
स तमाश्वासयद्रामो वालिनं व्यक्तदर्शनम्। सामसंपन्नया वाचा धर्मतत्त्वार्थयुक्तया ॥६०॥
न संतापस्त्वया कार्य एतदर्थं प्लवङ्गम। न वयं भवता चिन्त्या नाप्यात्मा हरिसत्तम ॥६१॥
वयं भवद्विशेषेण धर्मतः कृतनिश्चयाः। दण्ड्ये यः पातयेद्दण्डं दण्ड्यो यश्चापि दण्ड्यते ॥६२॥
कार्यकारणसिद्धार्थावुभौ तौ नावसीदतः। तद्भवान् दण्डसंयोगादस्माद्विगतकिल्बिषः ॥६३॥
गतः स्वां प्रकृतिं धर्म्यां धर्मदृष्टेन वर्त्मना। त्यज शोकं च मोहं च भयं च हृदये स्थितम् ॥६४॥
त्वया विधानं हर्यश्व न शक्यमतिवर्तितुम्। यथा त्वय्यङ्गदो नित्यं वर्तते वानरेश्वर ॥६५॥
तथा वर्तेत सुग्रीवे मयि चापि न संशयः ॥

स तस्य वाक्यं मधुरं महात्मनः समाहितं धर्मपथानुवर्तिनः।
निशम्य रामस्य रणावमर्दिनो वचः सुयुक्तं निजगाद वानरः ॥६६॥
शराभितप्तेन विचेतसा मया प्रदूषितस्त्वं यदजानता प्रभो।
इदं महेन्द्रोपम भीमविक्रम प्रसादितस्त्वं क्षम मे नरेश्वर ॥६७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे वालिवधसमर्थनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥१८॥

बाली के इस प्रकार निवेदन करने पर करुणा पूर्वक अत्यन्त सौम्य रूप होकर साधुसम्मत यथार्थ व्याख्या के द्वारा उसे आश्वासन दिया ॥ ६० ॥ हे वनवासी वीर ! आप मेरी चिन्ता न करें और न अपनी तथा अपने आत्मीय जनों की चिन्ता करें ॥ ६१ ॥ आप के कथन के पूर्व ही हम लोगों ने आप के इच्छित विचारों को व्यावहारिक रूप देने का निश्चय कर लिया है। जो दण्डनीयों को नियमानुकूल दण्ड देता है तथा जो दण्डार्ह अपने दण्ड का स्वागत करता है ॥ ६२ ॥ कार्य कारण रूपी वे दोनों सिद्धार्थ होते हुए कभी दुःखी नहीं होते इस कारण आप दण्ड प्राप्ति के पश्चात् पाप रहित निष्कलंक हो गये हैं ॥ ६३ ॥ दण्ड के द्वारा पुनीत मार्ग से आप ने अपनी धार्मिक गति को प्राप्त कर लिया है। हे वनवासियों के श्रेष्ठ वीर ! अपने हृदय में स्थित शोक, मोह तथा भय को दूर कर दीजिये ॥ ६४ ॥ हे वीर ! इस अटल दैवी विधान को आप परिवर्त्तित नहीं कर सकते। हे वनवासी सम्राट्। अंगद जैसे सदा आप के प्रति व्यवहार करता रहा, वैसे ही सुग्रीव के तथा मेरे प्रति भी करेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ६५ ॥ धर्म पथानुयायी रणदुर्मद महात्मा रामचन्द्र के धर्मानुमोदित मधुर वाक्यों को सुन कर बाली समयोचित वचन बोला ॥ ६६ ॥ बाण के आघात से आर्त्त अवस्था में चलचित्तता के कारण न जानते हुए जो अपशब्द मैंने आपको कहे हैं, महेन्द्र के समान, भीषण पराक्रम वाले हे नरनाथ ! मेरे प्रार्थना करने पर प्रसन्न होकर आप उन्हें क्षमा कर देवें ॥ ६७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'बाली के वध का समर्थन' विषयक अट्ठारहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥१८॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकोनविंशः सर्गः

तारागमनम्

स वानरमहाराजः शयानः शरविक्षतः । प्रत्युक्तो हेतुमद्वाक्यैर्नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥
अश्मभिः परिभिन्नाङ्गः पादपैराहतो भृशम् । रामबाणेन च क्लान्तो जीवितान्ते मुमोह सः ॥ २ ॥
तं भार्या बाणमोक्षेण रामदत्तेन संयुगे । हतं प्लवगशार्दूलं तारा शुश्राव वालिनम् ॥ ३ ॥
सा सपुत्राप्रियं श्रुत्वा वधं भर्तुः सुदारुणम् । निष्पपात भृशं त्रस्ता मृगीव गिरिगह्वरात् ॥ ४ ॥
ये त्वङ्गदपरीवारा वानरा भीमविक्रमाः । ते सकार्मुकमालोक्य रामं त्रस्ताः प्रदुद्रुवुः ॥ ५ ॥
सा ददर्श ततस्त्रस्तान् हरीनापततो द्रुतम् । यूथादिव परिभ्रष्टान् मृगान्निहतयूथपान् ॥ ६ ॥
तानुवाच समासाद्य दुःखितान् दुःखिता सती । रामवित्रासितान् सर्वाननुबद्धानिवेषुभिः ॥ ७ ॥
वानरा राजसिंहस्य यस्य यूयं पुरःसराः । तं विहाय सुसंत्रस्ताः कस्माद्द्रवथ दुर्गताः ॥ ८ ॥
राज्यहेतोः स चेद्भ्राता भ्रात्रा रौद्रेण पातितः । रामेण प्रहितै रौद्रैर्मार्गणैर्दूरपातिभिः ॥ ९ ॥
कपिपत्न्या वचः श्रुत्वा कपयः कामरूपिणः । प्राप्तकालमविक्लिष्टमूचुर्वचनमङ्गनाम् ॥१०॥
जीवपुत्रे निवर्तस्व पुत्रं रक्षस्व चाङ्गदम् । अन्तको रामरूपेण हत्वा नयति वालिनम् ॥११॥

उन्नीसवां सर्ग

तारा का आगमन

बाण के आघात से पीडित वनवासियों के राजा बाली ने भूमि पर पड़े हुए रामचन्द्र के द्वारा कथित यथार्थ वचनों को सुन कर उनका प्रत्युत्तर नहीं दिया ॥ १ ॥ सुग्रीव के साथ संघर्ष के समय जिस का शरीर पत्थरों से कट गया है, वृक्षों के प्रहार से जिस का शरीर कुचल गया है, राम के बाणों से जो मर्माहत हो गया है, ऐसा बाली प्राणान्त के समय संज्ञाहीन हो गया ॥ २ ॥ संग्राम में राम के बाणों से वनवासियों का सम्राट् वीर बाली मारा गया, इस समाचार को उस की स्त्री तारा ने सुना ॥ ३ ॥ हृदय विदारक पति की मृत्यु का समाचार सुन कर घबराई हुई भयभीत मृगी के समान वह तारा अपने पुत्र अंगद के साथ उस पर्वतीय कन्दरा से निकल पड़ी ॥ ४ ॥ जो महाबली वनवासी सपरिवार राजकुमार अंगद के रक्षक थे धनुर्धारी रामचन्द्र को देखकर वे सभी भयभीत होकर चारों ओर भाग गये ॥ ५ ॥ भय से संत्रस्त भागते हुए उन वनवासियों को तारा ने इस प्रकार देखा जैसे यूथपति के मारे जाने पर मृग समुदाय भाग रहा हो ॥ ६ ॥ मानो राम के बाणों से आहत, रामचन्द्र से डरे हुए दुःखित उन वनवासियों के समीप जाकर शोक सन्तप्त तारा बोली ॥ ७ ॥ हे वनवासी वीरों ! अंगरक्षक के रूप में जिस वनवासी सम्राट् के आगे तुम लोग चलते थे, आज उस को छोड़ कर भयसंत्रस्त तुम लोग क्यों भाग रहे हो ॥ ८ ॥ राज्य के लिये क्रूर भ्राता सुग्रीव ने दूरगामी बाणों से यदि अपने भाई बाली का वध राम द्वारा करा दिया है, तो ऐसी अवस्था में भयभीत आप लोग क्यों भाग रहे हैं ॥ ९ ॥ स्वेच्छा से अपनी वेष-भूषा-रूप में परिवर्त्तन करने वाले वे वनवासी बालि-पत्नी तारा की इन बातों को सुन कर स्पष्ट शब्दों में समयोचित वचन बोले ॥ १० ॥ हे जीवितपुत्रे देवि ! तुम शीघ्र ही यहां से लौट जाओ, राजकुमार अंगद की रक्षा करो। रामचन्द्र के रूप में यमराज बाली का वध कर उसे ले जा रहा है ॥ ११ ॥ बाली के द्वारा फेंके गये वृक्षों तथा विशाल पाषाण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षिप्तान् वृक्षान् समाविध्य विपुलाश्च शिलास्तथा। वाली वज्रसमैर्बाणै रामेण विनिपातितः ॥१२॥
अभिद्रुतमिदं सर्वं विद्रुतं प्रसृतं बलम्। तस्मिन् प्लवगशार्दूले हते शक्रसमप्रभे ॥१३॥
रक्ष्यतां नगरद्वारमङ्गदश्चाभिषिच्यताम्। पदस्थं वालिनः पुत्रं भजिष्यन्ति प्लवंगमाः ॥१४॥
अथवारुचितं स्थानमिह ते रुचिराननें। आविशन्ति हि दुर्गाणि क्षिप्रमन्यानि वानराः ॥१५॥
अभार्याश्च सभार्याश्च सन्त्यत्र वनचारिणः। लुब्धेभ्यो विप्रयुक्तेभ्यः स्वेभ्यो नस्तुमुलं भयम् ॥१६॥
अल्पान्तरगतानां तु श्रुत्वा वचनमङ्गना। आत्मनः प्रतिरूपं सा बभाषे चारुहासिनी ॥१७॥
पुत्रेण मम किं कार्यं किं राज्येन किमात्मना। कपिसिंहे महाभागे तस्मिन् भर्तरि नश्यति ॥१८॥
पादमूलं गमिष्यामि तस्यैवाहं महात्मनः। योऽसौ रामप्रयुक्तेन शरेण विनिपातितः ॥१९॥
एवमुक्त्वा प्रदुद्राव रुदन्ती शोककर्शिता। शिरश्चोरश्च बाहुभ्यां दुःखेन समभिघ्नती ॥२०॥
आव्रजन्ती ददर्शाथ पतिं निपतितं भुवि। हन्तारं दानवेन्द्राणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥२१॥
क्षेप्तारं पर्वतेन्द्राणां वज्राणामिव वासवम्। महावातसमाविष्टं महामेघौघनिःस्वनम् ॥२२॥
शक्रतुल्यपराक्रान्तं वृष्ट्वेवोपरतं घनम्। नर्दन्तं नर्दतां भीमं शूरं शूरेण पातितम् ॥२३॥
शार्दूलेनामिषस्यार्थे मृगराजं यथा हतम् ॥
[अर्चितं सर्वलोकस्य सपताकं सवेदिकम्। नागहेतोः सुपर्णेन चैत्यमुन्मथितं यथा ॥२४॥]

शिलाओं को छिन्न भिन्न कर के वज्र के समान बाणों से बाली को राम ने गिरा दिया है ॥ १२ ॥ इन्द्र के समान पराक्रम वाले इस वनवासी शार्दूल महाराज के मारे जाने पर हमारी पराजित सम्पूर्ण सेना इधर उधर भाग गई ॥ १३ ॥ इस समय नगरी की रक्षा सैनिकों के द्वारा वीर करें। राजकुमार अंगद के अधीन ये सब वनवासी रहेंगे ॥ १४ ॥ हे सुमुखी ! यह रमणीय स्थान यद्यपि आप को अधिक पसन्द है, तो भी अब यहां से हटना ही पड़ेगा। विजेता सुग्रीव पक्ष के वनवासी शीघ्र ही अब इस दुर्ग में प्रवेश करेंगे ॥ १५ ॥ विवाहित तथा अविवाहित जो भी सुग्रीव के वनवासी सैनिक हों, जिन के मनोरथों को हम लोगों ने सदा भंग किया है, उन के द्वारा अब महान् संकट आ गया है ॥ १६ ॥ अपने समीप में आये हुए उन वनवासी वीरों की बातों को सुनकर विदुषी महारानी तारा अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल वचन बोली ॥ १७ ॥ अब मुझे अपने पुत्र, राज्य तथा अपने जीवन से ही क्या प्रयोजन ? जब कि जीवन के धन कपि-केसरी मेरे पति ही इस संसार से चल बसे ॥ १८ ॥ रामचन्द्र के बाणों से जो मार दिये गये हैं, अब मैं उन्हीं महात्मा के चरण कमलों में जाऊँगी ॥ १९ ॥ ऐसा कह कर दुःख से सिर और वक्षःस्थल अपने हाथों से पीटती हुई तथा रोती हुई शोक विह्वल तारा अपने पति की ओर दौड़ी ॥२०॥ दौड़ती हुई तारा ने भूमि पर गिरे हुए अपने उस वीर पति को देखा जो संग्राम में कभी पीछे न हटने वाले बड़े बड़े दानवेन्द्रों को मारने वाला ॥ २१ ॥ इन्द्र वज्र के तुल्य पर्वत की चोटियों को तोड़ने वाला, वायु के समान वेगवाला तथा जिस का गर्जन मेघ के समान होता था ॥ २२ ॥ इन्द्र के समान पराक्रम वाले, जल बरसा कर गर्जन करने वाले मेघ की तरह गर्जन करने वाले वे वीर मेरे पति अद्वितीय वीर के द्वारा उसी प्रकार मारे गये जैसे मांस के लिये मांसाहारी सिंह के द्वारा मृग मारा जाता है ॥ २३ ॥ नाग के लिये जैसे गरुड़ ने पताका तथा वेदियुक्त पूजित 'देवालय' को नष्ट किया था* ॥ २४ ॥ विशाल धनुष को लेकर समीप में बैठे हुए रामचन्द्र, लक्ष्मण तथा

* यह श्लोक पुराणों के आख्यान के आधार पर है जो सृष्टि क्रम तथा वेद के विरुद्ध है। इस लिये इसे प्रक्षिप्त माना है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवष्टभ्य च तिष्ठन्तं ददर्श धनुरुत्तमम् । रामं रामानुजं चैव भर्तुश्चैवानुजं शुभम् ॥२५॥
तानतीत्य समासाद्य भर्तारं निहतं रणे । समीक्ष्य व्यथिता भूमौ संभ्रान्ता निपपात ह ॥२६॥
सुप्त्वेव पुनरुत्थाय आर्यपुत्रेति शोचती । रुरोद सा पतिं दृष्ट्वा संदितं मृत्युदामभिः ॥२७॥
तामवेक्ष्य तु सुग्रीवः क्रोशन्तीं कुररीमिव । विषादमगमत्कष्टं दृष्ट्वा चाङ्गदमागतम् ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे तारागमनं नाम एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः

ताराविलापः

रामचापविसृष्टेन शरेणान्तकरेण तम् । दृष्ट्वा विनिहतं भूमौ तारा ताराधिपानना ॥ १ ॥
सा समासाद्य भर्तारं पर्यष्वजत भामिनी । इषुणाभिहतं दृष्ट्वा वालिनं कुञ्जरोपमम् ॥ २ ॥
वानरेन्द्रं महेन्द्राभं शोकसंतप्तमानसा । तारा तरुमिवोन्मूलं पर्यदेवयदातुरा ॥ ३ ॥
रणे दारुण विक्रान्त प्रवीर प्लवतां वर । किं दीनां मां पुरोभागामद्य त्वं नाभिभाषसे ॥ ४ ॥
उत्तिष्ठ हरिशार्दूल भजस्व शयनोत्तमम् । नैवंविधाः शेरते हि भूमौ नृपतिसत्तमाः ॥ ५ ॥

अपने देवर सुग्रीव को तारा ने देखा ॥ २५ ॥ उन तीनों व्यक्तियों से आगे बढ़ कर वह मरे हुए अपने पति बाली के समीप पहुँची । विपन्न अवस्था में अपने पति को देखकर उद्भ्रान्त तथा दुःखी तारा पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥ २६ ॥ सोने के पश्चात् जागे हुए के समान उठ कर हे आर्यपुत्र ! ऐसा कहती हुई मृत्यु के पाश में बंधे हुए अपने पति को देख कर रोदन करने लगी ॥ २७ ॥ क्रौंच पक्षी के समान रोती हुई तारा को देख कर तथा रोते हुए राजकुमार अंगद को देख कर सुग्रीव अत्यन्त दुःखी हो गये ॥ २८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'तारा का आगमन' विषयक उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १९ ॥

बीसवां सर्ग

तारा का विलाप

राम के प्राणान्तक धनुष से छूटे हुए बाणों के द्वारा आहत अपने पति को भूमि पर पड़े हुए देख कर चन्द्रमुखी तारा ने ॥ १ ॥ अपने पति के समीप जा कर उसका आलिंगन किया । हाथी तथा पर्वत के समान विशाल काय, बाण से आहत, मूल कटे हुए वृक्ष के समान गिरे हुए अपने पति को देख कर शोकसे संतप्त तारा विलाप करने लगी ॥ २, ३ ॥ संग्राम में भीषण आक्रमण करने वाले हे वनवासियों के महावीर ! दीन दुःखी अपने समक्ष खड़ी हुई मुझ से आप क्यों नहीं बोलते हैं ॥ ४ ॥ हे वनवासियों में श्रेष्ठ वीर ! उठिये, उत्तम शय्या पर शयन कीजिये । आप के समान श्रेष्ठ नरनाथ भूमि पर शयन नहीं करते ॥ ५ ॥ हे पृथ्वीपति ! यह पृथ्वी आप को अत्यन्त रमणीय प्रतीत हो रही है,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतीव खलु ते कान्ता वसुधा वसुधाधिप । गतासुरपि यां गात्रैर्मां विहाय निषेवसे ॥ ६ ॥
व्यक्तमन्या त्वया वीर धर्मतः संप्रवर्तता । किष्किन्धेव पुरी रम्या स्वर्गमार्गे विनिर्मिता ॥ ७ ॥
यान्यस्माभिस्त्वया सार्धं वनेषु मधुगन्धिषु । विहृतानि त्वया काले तेषामुपरमः कृतः ॥ ८ ॥
निरानन्दा निराशाहं निमग्ना शोकसागरे । त्वयि पञ्चत्वमापन्ने महायूथपयूथपे ॥ ९ ॥
हृदयं सुस्थिरं मह्यं दृष्ट्वा विनिहतं पतिम् । यन्न शोकाभिसंतप्तं स्फुटतेऽद्य सहस्रधा ॥१०॥
सुग्रीवस्य त्वया भार्या हृता स च विवासितः । यत्तु तस्य त्वया व्युष्टिः प्राप्तेयं प्लवगाधिप ॥११॥
निःश्रेयसपरा मोहात्त्वया चाहं विगर्हिता । यैषाब्रवं हितं वाक्यं वानरेन्द्र हितैषिणी ॥१२॥
रूपयौवनदृप्तानां दक्षिणानां च मानद । नूनमप्सरसामार्य चित्तानि प्रमथिष्यसि ॥१३॥
कालो निःसंशयो नूनं जीवितान्तकरस्तव । बलाद्येनावपन्नोऽसि सुग्रीवस्यावशो वशम् ॥१४॥
अस्थाने वालिनं हत्वा युद्ध्यमानं परेण च । न संतप्यति काकुत्स्थः कृत्वाकर्म सुगर्हितम् ॥१५॥
वैधव्यं शोकसंतापं कृपणं कृपणा सती । अदुःखोपचिता पूर्वं वर्तयिष्याम्यनाथवत् ॥१६॥
लालितश्चाङ्गदो वीरः सुकुमारः सुखोचितः । वत्स्यते कामवस्थां मे पितृव्ये क्रोधमूर्छिते ॥१७॥
कुरुष्व पितरं पुत्र सुदृष्टं धर्मवत्सलम् । दुर्लभं दर्शनं वत्स तव तस्य भविष्यति ॥१८॥
समाश्वासय पुत्रं त्वं संदेशं संदिशस्व च । मूर्ध्नि चैनं सामाघ्राय प्रवासं प्रस्थितो ह्यसि ॥१९॥

क्योंकि मरणोपरान्त भी आप मुझे छोड़ कर शरीर से भूमि का आलिंगन कर रहे हैं ॥ ६ ॥ हे वीर ! आपने धर्म युद्ध के द्वारा रमणीय किष्किन्धा पुरी के समान स्वर्ग में भी रमणीय नगर का निर्माण कर लिया है ॥ ७ ॥ हम लोगों के साथ मधु गन्ध युक्त वन में विहार किया था, आज आप ने उन सब को समाप्त कर दिया ॥ ८ ॥ विशाल राज्य के संस्थापक आपके दिवंगत हो जाने पर आशा तथा आनन्दहीन मैं शोक समुद्र में डूब रही हूँ ॥ ९ ॥ मेरा हृदय कठोर वज्र के समान है जो भूमि पर पड़े हुए आपको देखकर भी शोक संतप्त उसके सहस्रों खण्ड नहीं हो जाते ॥ १० ॥ सुग्रीव की स्त्री का अपहरण करके आपने जो उसे विवासित कर दिया, हे वनवासियों के राजा ! उसी का आपने यह कष्टप्रद फल पाया है ॥ ११ ॥ हे वनवासियों के सम्राट् ! सदा आपकी हितैषिणी मैंने आपके कल्याण की अनेकों बातें आपको समझाईं, किन्तु मोहवश उन हितवाली बातों का आपने तिरस्कार कर दिया ॥ १२ ॥ हे मानप्रदाता आर्य ! रूप-यौवन से दर्पित कुशल अप्सराओं का मन आप अवश्यमेव आकर्षित करेंगे ॥ १३ ॥ जीवन का अन्त करने वाला यह काल ही आपका निश्चय से उपस्थित हो गया था जो हठात् आपको खींचकर सुग्रीव के समीप ले गया ॥ १४ ॥ अन्य के साथ संग्राम करते हुए संग्राम में अनुचित रूप से बाली का वध कर अत्यन्त घृणित पाप करने वाले रामचन्द्र को पश्चात्ताप क्यों नहीं हो रहा है ॥ १५ ॥ पहले मैंने इस प्रकार का दुःख कभी नहीं अनुभव किया था, किन्तु अब शोकसन्तप्त मैं वैधव्य का असह्य दुःख अनाथावस्था में अनुभव करूँगी ॥ १६ ॥ सुखपूर्वक पाला हुआ वीर बालक यह अंगद क्रोधी अपने चाचा सुग्रीव के शासन में अब किस प्रकार रहेगा ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! धर्मवत्सल अपने पिता को स्नेहमय दृष्टि से अच्छे प्रकार देख लो, क्योंकि हे वत्स ! अब इनका दर्शन तुम्हारे लिये दुर्लभ हो जायेगा ॥ १८ ॥ हे आर्य पुत्र ! अपने पुत्र अंगद को आप आश्वासन दीजिये । मेरे लिये जो आदेश देना है, उसे दीजिये । अपने पुत्र अंगद के सिर को सूँघकर प्रेम कीजिये क्योंकि आप अब चिर प्रवास में जा रहे हैं ॥ १९ ॥ आपको मार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रामेण हि महत्कर्म कृतं त्वामभिनिघ्नता। आनृण्यं च गतं तस्य सुग्रीवस्य प्रतिश्रवे ॥२०॥
सकामो भव सुग्रीव रुमां त्वं प्रतिपत्स्यसे। भुङ्क्ष्व राज्यमनुद्विग्नः शस्तो भ्राता रिपुस्तव ॥२१॥
किं मामेवं विलपन्तीं प्रेम्णा त्वं नाभिभाषसे। इमाः पश्यः वरा बह्वीर्भार्यास्ते वानरेश्वर ॥२२॥
तस्या विलपितं श्रुत्वा वानर्यः सर्वतश्च ताः। परिगृह्याङ्गदं दीनं दुःखार्ताः परिचुक्रुशुः ॥२३॥

किमङ्गदं साङ्गदवीरबाहो विहाय यास्यद्य चिरप्रवासम्।
न युक्तमेवं गुणसंनिकृष्टं विहाय पुत्रं प्रियपुत्र गन्तुम् ॥ २४ ॥
किमप्रियं ते प्रियचारुवेष मया कृतं नाथ सुतेन वा ते।
सहाङ्गदां मामपहाय वीर यत्प्रस्थितो दीर्घमितः प्रवासम् ॥ २५ ॥
यद्यप्रियं किंचिदसंप्रधार्य कृतं मया स्यात्तव दीर्घबाहो।
क्षमस्व मे तद्धरिवंशनाथ व्रजामि मूर्ध्ना तव वीर पादौ ॥ २६ ॥
तथा तु तारा करुणं रुदन्ती भर्तुः समीपे सह वानरीभिः।
व्यवस्यत प्रायमुपोपवेष्टुमनिन्द्यवर्णा भुवि यत्र वाली ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे ताराविलापो नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

कर रामचन्द्र ने सुग्रीव के लिये एक महान् काम किया है। सुग्रीव के साथ जो राम की प्रतिज्ञा थी, आपको मारकर उन्होंने अपने को सुग्रीव के ऋण से मुक्त किया है ॥ २० ॥ हे सुग्रीव! तुम्हारी कामना पूर्ण हो, तुम्हारी धर्मपत्नी रुमा तुम्हें प्राप्त हो गई। अब निर्द्वन्द इस अकण्टक राज्य को भोगो, क्योंकि जिससे तुम्हें भय था, वह तुम्हारा शत्रुभूत भ्राता मारा गया ॥ २१ ॥ हे वनवासियों के सम्राट्! इस प्रकार विलाप करती हुई अपनी प्राणप्रिया मुझसे आप क्यों नहीं बोलते हैं। इन आई हुई अपनी अनेकों स्त्रियों को देखो ॥ २२ ॥ तारा के करुणामय विलाप को सुनकर राजकीय शेष वनवासी स्त्रियाँ राजकुमार अंगद को घेरकर दुःखपूर्वक विलाप करने लगीं ॥ २३ ॥ हे वीरों के मान गंजन करने वाले वीर! अलंकार धारण करने वाले अपने पुत्र अंगद को छोड़कर आपने इतना लम्बा चिरप्रवास क्यों किया। अत्यन्त कमनीय कान्ति वाले तथा गुणों से परिपूर्ण अपने प्रिय पुत्र अंगद को छोड़कर आपका यह प्रस्थान उचित नहीं ॥ २४ ॥ हे रमणीय वेष को धारण करने वाले प्राणनाथ! मुझ से अथवा प्रिय पुत्र अंगद से कौन ऐसा अपराध हो गया है, जो अंगद सहित मुझ को छोड़कर इतने लम्बे प्रवास में प्रस्थान किया है ॥ २५ ॥ हे विशाल भुजा वाले मेरे वीर! यदि मेरे द्वारा इस प्रकार का कोई अपराध हो गया है, जिसके कारण आपने प्रवास किया है, तो हे वनवासियों के सम्राट्! आप उसको क्षमा कर देवें। मैं मस्तक झुकाकर आपके चरणों को प्रणाम करती हूँ ॥ २६ ॥ इस प्रकार अपने पति के समीप करुणामय विलाप करती हुई तारा ने सम्पूर्ण राजपरिवार की स्त्रियों के साथ भूमि पर पड़े हुए बाली के समीप प्रायोपवेश (आमरण अनशन) करने का निश्चय कर लिया ॥ २७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'तारा का विलाप' विषयक बीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ २० ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकविंशः सर्गः

हनुमदाश्वासनम्

ततो निपतितां तारां च्युतां तारामिवाम्बरात् । शनैराश्वासयामास हनुमान् हरियूथपः ॥ १ ॥
गुणदोषकृतं जन्तुः स्वकर्म फलहेतुकम् । अव्यग्रस्तदवाप्नोति सर्वं प्रेत्य शुभाशुभम् ॥ २ ॥
शोच्या शोचसि कं शोच्यं दीनं दीनानुकम्पसे । कस्य को वानुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन्बुद्बुदोपमे ॥ ३ ॥
अङ्गदस्तु कुमारोऽयं द्रष्टव्यो जीवपुत्रया । आयत्यां च विधेयानि समर्थान्यस्य चिन्तय ॥ ४ ॥
जानास्यनियतामेवं भूतानामागतिं गतिम् । तस्माच्छुभं हि कर्तव्यं पण्डितेनैहलौकिकम् ॥ ५ ॥
यस्मिन् हरिसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च । वर्तयन्ति कृताज्ञानि सोऽयं दिष्टान्तमागतः ॥ ६ ॥
यदयं न्यायदृष्टार्थः सामदानक्षमापरः । गतो धर्मजितां भूमिं नैनं शोचितुमर्हसि ॥ ७ ॥
सर्वे हि हरिशार्दूलाः पुत्रश्चायं तवाङ्गदः । इदं हर्यृक्षराज्यं च त्वत्सनाथमनिन्दिते ॥ ८ ॥
ताविमौ शोकसंतप्तौ शनैः प्रेरय भामिनि । त्वया परिगृहीतोऽयमङ्गदः शास्तु मेदिनीम् ॥ ९ ॥
संततिश्च यथा दृष्टा कृत्यं यच्चापि सांप्रतम् । राज्ञस्तत्क्रियतां तावदेष कालस्य निश्चयः ॥१०॥

इक्कीसवां सर्ग

हनुमान् का आश्वासन

नभ से गिरी हुई तारा के समान पृथ्वी पर गिरी हुई तारा को देखकर वनवासियों के प्रमुख हनुमान् शनैः २ उसको समझाने लगे ॥ १ ॥ प्राणी अपने अच्छे बुरे कर्मों का सुख दुःख रूपी फल इस जन्म तथा जन्मान्तर में भोगते हैं ॥ २ ॥ शोकाक्रान्त तुम अन्य के लिये क्या शोक कर रही हो, स्वयं दीन दुःखी अंगद आदि प्रिय जनों के लिये तुम क्या अनुकम्पा कर सकती हो। जल के बुद्बुद के समान यह जीवन क्षण भंगुर है, पुनः कौन किसके लिये शोक करेगा ॥ ३ ॥ जीवित पुत्र अङ्गद के प्रति तुम्हें देख-भाल रखनी चाहिये। उसके भविष्य के कल्याण की तुम्हें चिन्ता करनी चाहिये। इस समय तुम्हारा यही कर्त्तव्य है ॥ ४ ॥ प्राणियों का जीवन-मरण आदि सम्पूर्ण कर्म क्षणभंगुर हैं। हे विदुषी ! तुम इस बात को जानती हो। इस लिये तुम्हारे जैसी विदुषी को इस लोक में शुभ काम ही करना चाहिये ॥ ५ ॥ जिसके अधीन हजारों लाखों वनवासी आशापूर्वक अपना जीवन निर्वाह करते थे, आज वह स्वयं ही अपनी कर्मगति के अनुकूल इस अवस्था को प्राप्त हुआ है ॥ ६ ॥ साम-दान-क्षमा का धनी, न्यायपूर्वक शासन करने वाला तुम्हारा पति बाली धर्मात्माओं के लोक को प्राप्त हो गया है। उसके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥ ये सब वनवासी वीर तथा यह तुम्हारा पुत्र राजकुमार अंगद सब तुम्हारे अधीन हैं। हे देवि ! यह सम्पूर्ण वनवासिराज्य भी तुम्हारे ही अधीन है। तुम अनाथ नहीं हो (अर्थात् तुम अब भी पूर्ववत् इस विस्तृत वनवासि-राज्य की महारानी हो) ॥ ८ ॥ हे देवि ! इस शोक और संताप को शनैः २ कम कर दो। आप के अनुशासन में रहकर यह आपका आज्ञाकारी पुत्र अंगद सम्पूर्ण राज्य का शासन करे ॥९॥ इस अवस्था में सन्तान के लिये शास्त्रों में जो कर्त्तव्य कर्म बताया गया है तथा महाराज बाली के लिये जो कृत्य करना है, आप को वह सब काम करना चाहिये, क्योंकि इस समय काल की यही माँग है ॥ १० ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कार्यो हरिराजश्च अङ्गदश्चाभिषिच्यताम् । सिंहासनगतं पुत्रं पश्यन्ती शान्तिमेष्यसि ॥११॥
सा तस्य वचनं श्रुत्वा भर्तृव्यसनपीडिता । अब्रवीदुत्तरं तारा हनुमन्तमवस्थितम् ॥१२॥
अङ्गदप्रतिरूपाणां पुत्राणामेकतः शतम् । हतस्याप्यस्य वीरस्य गात्रसंश्लेषणं वरम् ॥१३॥
न चाहं हरिराजस्य प्रभवाम्यङ्गदस्य वा । पितृव्यस्तस्य सुग्रीवः सर्वकार्येष्वनन्तरः ॥१४॥
न ह्येषा बुद्धिरास्थेया हनुमन्नङ्गदं प्रति । पिता हि बन्धुः पुत्रस्य न माता हरिसत्तम ॥१५॥
न हि मम हरिराजसंश्रयात्क्षमतरमस्ति परत्र चेह वा ।
अभिमुखहतवीरसेवितं शयनमिदं मम सेवितुं क्षमम् ॥ १६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे हनुमदाश्वासनं नाम एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः

वाल्यनुशासनम्

वीक्षमाणस्तु मन्दासुः सर्वतो मन्दमुच्छ्वसन् । आदावेव तु सुग्रीवं ददर्श त्वात्मजाग्रतः ॥ १ ॥

वनवासि-राजा बाली का इस समय अन्त्येष्टि संस्कार कराइये, राजकुमार अंगद का राज्याभिषेक कीजिये। अभिषेक के पश्चात् सिंहासनारूढ़ अपने पुत्र को देखकर तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी ॥ ११ ॥ पति के निधन से दुःखी वह तारा इन बातों को सुनकर समीप बैठे हनुमान् से बोली ॥ १२ ॥ अंगद जैसे सौ पुत्र एक ओर तथा दिवंगत इस वीर के शरीर का आलिंगन एक ओर, इन दोनों में इस मरे हुए वीर का आलिंगन ही मेरे लिये सर्वश्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ इस हरिराज्य की मैं अधिष्ठात्री नहीं और न मेरा पुत्र अंगद ही इसका स्वामी हो सकता है। इसके चाचा सुग्रीव ही समीपी तथा समर्थ होने के कारण सम्पूर्ण कार्य के अधिकारी हैं ॥ १४ ॥ हे वनवासियों के महान् वीर हनुमान् ! अंगद के प्रति आपको यह धारणा नहीं बनानी चाहिये कि पुत्र का सर्वस्व पिता ही होता है, माता का उससे कोई सम्बन्ध नहीं (अर्थात् पुत्र के लिये माता-पिता दोनों ही समान गौरवास्पद हैं) ॥ १५ ॥ लोक परलोक में हरिराज के सम्पर्क को छोड़कर मेरे लिये अन्य कोई सुखकर स्थान नहीं। सामने मृत अवस्था में मेरे पति जिस स्थान पर सो रहे हैं, वही मेरे योग्य स्थान है ॥ १६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'हनुमान् का आश्वासन' विषयक इक्कीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

बाईसवाँ सर्ग

बाली का अनुशासन

क्षीण प्राणों वाले बाली ने शनैः २ साँस लेते हुए तथा चारों ओर देखते हुए सबसे पूर्व अपने कनिष्ठ भ्राता सुग्रीव को देखा ॥ १ ॥ वनवासियों के भावी राजा विजयी सुग्रीव को देख कर उन्हें

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तं प्राप्तविजयं वाली सुग्रीवं प्लवगेश्वरः । आभाष्य व्यक्तया वाचा सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
सुग्रीव दोषेण न मां गन्तुमर्हसि किल्बिषात् । कृष्यमाणं भविष्येण बुद्धिमोहेन मां बलात् ॥ ३ ॥
युगपद्विहितं तात न मन्ये सुखमावयोः । सौहार्दं भ्रातृयुक्तं हि तदिदं जातमन्यथा ॥ ४ ॥
प्रतिपद्य त्वमद्यैव राज्यमेषां वनौकसाम् । मामप्यद्यैव गच्छन्तं विद्धि वैवस्वतक्षयम् ॥ ५ ॥
जीवितं च हि राज्यं च श्रियं च विपुलामिमाम् । प्रजहाम्येष वै तूर्णं महच्चागर्हितं यशः ॥ ६ ॥
अस्यां त्वहमवस्थायां वीर वक्ष्यामि यद्वचः । यद्यप्यसुकरं राजन् कर्तुमेव तदर्हसि ॥ ७ ॥
सुखार्हं सुखसंवृद्धं बालमेनमबालिशम् । बाष्पपूर्णमुखं पश्य भूमौ पतितमङ्गदम् ॥ ८ ॥
मम प्राणैः प्रियतरं पुत्रं पुत्रमिवौरसम् । मया हीनमहीनार्थं सर्वतः परिपालय ॥ ९ ॥
त्वमेवास्य हि दाता च परित्राता च सर्वतः । भयेष्वभयदश्चैव यथाहं प्लवगेश्वर ॥१०॥
एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्यपराक्रमः । रक्षसां तु वधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति ॥११॥
अनुरूपाणि कर्माणि विक्रम्य बलवान् रणे । करिष्यत्येष तारेयस्तरस्वी तरुणोऽङ्गदः ॥१२॥
सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये । औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता ॥१३॥
यदेषा साध्विति ब्रूयात्कार्यं तन्मुक्तसंशयम् । न हि तारामतं किंचिदन्यथा परिवर्तते ॥१४॥

सम्बोधित करते हुए बाली स्नेह पूर्वक ये वचन बोले ॥ २ ॥ पूर्व जन्म के कुसंस्कारों के कारण तथा बुद्धि के विपरीत होने से जो दुर्व्यवहार मैंने तुम्हारे साथ किया उसके लिये तुम मुझे दोषी मत समझना ॥ ३ ॥ हे तात ! हम लोगों के भाग्य में हम दोनों भाईयों का एक साथ सुख शान्तिमय राज्यभोग तथा भ्रातृप्रेम नहीं था । इसी हेतु से यह सारी विपरीत अघटित घटना घटी । होना चाहिये था कुछ और, हो गया कुछ और ॥ ४ ॥ इस वनवासियों के समृद्ध राज्य को तुम आज ही प्राप्त कर लो, क्योंकि मैं आज ही यमपुरी को प्रस्थान कर रहा हूं, ऐसा तुम समझो ॥ ५ ॥ अपने जीवन, राज्य तथा अतुल समृद्धि और निष्कलंक यश, इन सब का एक साथ ही मैं आज परित्याग कर रहा हूं ॥ ६ ॥ हे वीर ! इस अवस्था में कुछ बातें मैं तुम से कहता हूं । यद्यपि उनका आचरण कठिन है, तथापि तुम्हें उसे अवश्य करना चाहिये ॥ ७ ॥ सुख समृद्धि में पले हुए, सुख पाने के अधिकारी, अपरिपक्व बुद्धि वाले, अश्रुपूर्ण मुख वाले, भूमि पर पड़े हुए इस मेरे प्रिय पुत्र अंगद को देखो ॥ ८ ॥ मेरे प्राणों से भी प्रिय पुत्र अंगद को तुम अपने औरस पुत्र के समान समझना । मेरी अनुपस्थिति से यह सर्वथा अनाथ हो गया है । हरेक अवस्था में इसका पालन करो, क्योंकि अब तुम्हीं उसके सर्वस्व नाथ हो ॥ ९ ॥ हे वनवासियों के राजा ! मेरे ही समान तुम भी इस अंगद के पिता, दाता, सब ओर से रक्षक और भय में भी अभय प्रदान करने वाले अब तुम्हीं हो ॥ १० ॥ यह श्रीमान्, तारा का पुत्र अंगद तुम्हारे ही समान शूर तथा पराक्रमी है । हे तात ! राक्षसों के वध करने में यह राजकुमार अंगद सदा तुम्हारे आगे रहेगा ॥ ११ ॥ यह तेजस्वी, युवा अंगद संग्राम में मेरे समान ही शौर्य आदि का परिचय देगा ॥ १२ ॥ सुषेण की पुत्री यह तारा सूक्ष्म विषयों के निर्णय करने में विविध प्रकार के आने वाले भावी उत्पात के जानने में यह अत्यन्त निपुण है ॥ १३ ॥ यह जिस बात को, यह ठीक है ऐसा कहकर समर्थन कर देवे, उसको निस्सन्देह तुम करना । देवी तारा का जो कोई भी ध्रुव निर्णय होता है, उसमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं होता ॥ १४ ॥ प्रतिज्ञाबद्ध रामचन्द्र का काम जो तुमने स्वीकार किया है, उसको निःशंक होकर अवश्य करना । उसके न करने से अधर्म होगा तथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राघवस्य च ते कार्यं कर्तव्यमविशङ्कया । स्यादधर्मो ह्यकरणे त्वां च हिंस्याद्विमानितः ॥१५॥
इमां च मालामाधत्स्व दिव्यां सुग्रीव काञ्चनीम् । उदारा श्रीः स्थिता ह्यस्यां संप्रजह्यान्मृते मयि ॥१६॥
इत्येवमुक्तः सुग्रीवो वालिना भ्रातृसौहृदात् । हर्षं त्यक्त्वा पुनर्दीनो ग्रहग्रस्त इवोडुराट् ॥१७॥
तद्वालिवचनाच्छान्तः कुर्वन् युक्तमतन्द्रितः । जग्राह सोऽभ्यनुज्ञातो मालां तां चैव काञ्चनीम् ॥१८॥
तां मालां काञ्चनीं दत्त्वा वाली दृष्ट्वात्मजं स्थितम् । संसिद्धः प्रेत्यभावाय स्नेहादङ्गदमब्रवीत् ॥१९॥
देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये । सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव ॥२०॥
यथा हि त्वं महाबाहो लालितः सततं मया । न तथा वर्तमानं त्वां सुग्रीवो बहु मंस्यते ॥२१॥
मास्यामित्रैर्गतं गच्छेर्मा शत्रुभिररिंदम । भर्तुरर्थपरो दान्तः सुग्रीववशगो भव ॥२२॥
न चातिप्रणयः कार्यः कर्तव्योऽप्रणयश्च ते । उभयं हि महान् दोषस्तस्मादन्तरदृग् भव ॥२३॥
इत्युक्त्वाथ विवृत्ताक्षः शरसंपिडितो भृशम् । विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रान्तजीवितः ॥२४॥
ततो विचुक्रुशुस्तत्र वानरा हतयूथपाः । परिदेवयमानास्ते सर्वे प्लवगपुंगवाः ॥२५॥
किष्किन्धा ह्यद्य शून्यासीत्स्वर्गते वानराधिपे । उद्यानानि च शून्यानि पर्वताः काननानि च ॥२६॥
हते प्लवगशार्दूले निष्प्रभा वानराः कृताः । येन दत्तं महद्युद्धं गन्धर्वस्य महात्मनः ॥२७॥

तिरस्कृत होने पर रामचन्द्र तुम्हारा भी वध कर डालेंगे ॥ १५ ॥ हे तात सुग्रीव ! यह दिव्य स्वर्णमयी माला तुम धारण करो । इसमें हरेक प्रकार की सुख समृद्धि तथा विजयलक्ष्मी वर्त्तमान है । मेरे मर जाने पर इसकी वह शक्ति क्षीण हो जायेगी, इस लिये मेरे जीवित रहते ही इसको धारण करलो ॥ १६ ॥ भ्रातृप्रेम में आकर वाली ने सुग्रीव से यह सब बातें कहीं । पश्चात् ग्रहग्रस्त चन्द्रमा के समान उसका मुखमण्डल प्रसन्नतारहित हो गया ॥ १७ ॥ बाली के इन वचनों को सुन कर सुग्रीव का सम्पूर्ण वैर शान्त हो गया तथा आलस्य रहित वह वाली के कहे हुए सम्पूर्ण कार्य को करने लगा तथा बाली की दी हुई उस स्वर्ण माला को धारण कर लिया ।-१८ ॥ उस स्वर्णमयी माला को देकर अपने समक्ष खड़े हुए अंगद के प्रति परलोक को प्रस्थान करने वाला वह वाली स्नेह पूर्वक यह वचन बोला ॥ १९ ॥ आने वाली प्रिय अप्रिय परिस्थिति का सामना करते हुए देश काल की स्थिति को समझो । आये हुए सुख-दुःख को सहो । सुग्रीव के आज्ञाकारी होते हुए उन्हीं के अधीन रहो ॥ २० ॥ हे वीर पुत्र ! जिस प्रकार मैंने तुम्हारा निरन्तर लालन-पालन किया, तुम्हारी वर्त्तमान गति रहते हुए सुग्रीव तुम्हारा उस प्रकार आदर नहीं कर सकेंगे ॥ २१ ॥ सुग्रीव के जो शत्रु हैं, उनके मित्रों से तुम मैत्री मत करना तथा सुग्रीव के शत्रुओं से भी मैत्री मत करना । सदाचार पूर्वक अपने रक्षक स्वामी की सेवा करना तथा सदा सुग्रीव की आज्ञा में रहना ॥ २२ ॥ अत्यन्त प्रेम करना तथा प्रेम से रहित हो जाना, ये दोनों ही दोषयुक्त हैं । इस लिये इन दोनों के मध्य में रहना ही उचित है ॥ २३ ॥ इतनी बातें कह कर बाण के आघात से अत्यन्त पीड़ित वाली की आँखें खुली रह गईं । मुख के खुल जाने से जिसकी दन्तपक्ति दिखाई दे रही है, ऐसे बाली के प्राण निकल गये ॥ २४ ॥ बाली के दिवंगत हो जाने पर वे सभी वनवासी वीर अत्यन्त दुःखी होते हुए जोर से रोने लगे ॥ २५ ॥ आज वनवासियों के सम्राट् बाली के स्वर्गगामी हो जाने पर किष्किन्धा नगरी जनशून्य प्रतीत होती है । सम्पूर्ण वन, पर्वत, वाटिकाएं शून्य प्रतीत हो रही हैं ॥ २६ ॥ जिस महात्मा बाली ने वीर गन्धर्वों से महायुद्ध किया था, उस पराक्रमी वीर के मारे जाने पर सारे वनवासी आज प्रभाहीन हो गये हैं ॥ २७ ॥ विशाल भुजा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गोलभस्य महाबाहोर्दश वर्षाणि पञ्च च। नैव रात्रौ न दिवसे तद्युद्धमुपशाम्यति ॥२८॥
ततस्तु षोडशे वर्षे गोलभो विनिपातितः। तं हत्वा दुर्विनीतं तु वाली दंष्ट्राकरालवान् ॥२९॥
सर्वाभयकरोऽस्माकं कथमेष निपातितः ॥

हते तु वीरे प्लवगाधिपे तदा प्लवङ्गमास्तत्र न शर्म लेभिरे।
वनेचराः सिंहयुते महावने यथा हि गावो निहते गवां पतौ ॥ ३० ॥
ततस्तु तारा व्यसनार्णवाप्लुता मृतस्य भर्तुर्वदनं समीक्ष्य सा।
जगाम भूमिं परिरभ्य वालिनं महाद्रुमं छिन्नमिवाश्रिता लता ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे वाल्यनुशासनं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः

अङ्गदाभिवादनम्

ततः समुपजिघ्रन्ती कपिराजस्य तन्मुखम्। पतिं लोकश्रुता तारा मृतं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वाले गोलभ गन्धर्व के साथ चलने वाले पन्द्रह वर्षीय युद्ध में रातदिन संग्राम चलता रहा। मध्य में युद्ध की कभी समाप्ति नहीं हुई ॥ २८ ॥ सोलहवें वर्ष के आरम्भ में भयंकर दाढ़ वाले उस दुर्दान्त गोलभ को मारकर जिस बाली ने हम सभी लोगों को अभय प्रदान किया था, वह वीर आज संग्राम में कैसे मारा गया ॥ २९ ॥ जैसे सिंह से आक्रान्त वन में गौओं के पति वृषभराज के मारे जाने पर गौओं को शान्ति नहीं प्राप्त होती, उसी प्रकार वनवासियों के सम्राट् वीर बाली के मारे जाने पर किष्किन्धा के वनवासियों को शान्ति नहीं प्राप्त हुई ॥ ३० ॥ शोक समुद्र में डूबी हुई वह तारा मरे हुए अपने पति के मुखमण्डल को देखकर बाली का आलिंगन करते हुए उसी प्रकार भूमि पर गिर पड़ी जिस प्रकार विशाल वृक्ष के कट जाने पर उसके आश्रित लता भी उसके साथ ही गिर जाती है ॥ ३१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'बाली का अनुशासन' विषयक बाईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवाँ सर्ग

अंगद का अभिवादन

मृत पति बाली के मुख को सूंघती हुई विश्व-प्रसिद्ध तारा मरे हुए पति को सम्बोधित कर बोली ॥१॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शेषे त्वं विषमे दुःखमनुक्त्वा वचनं मम। उपलोपचिते वीर सुदुःखे वसुधातले ॥ २ ॥
मत्तः प्रियतरा नूनं वानरेन्द्र मही तव। शेषे हि तां परिष्वज्य मां च न प्रतिभाषसे ॥ ३ ॥
सुग्रीवस्य वशं प्राप्तो विधिरेष भवत्यहो। सुग्रीव एव विक्रान्तो वीर साहसिकप्रिय ॥ ४ ॥
ऋक्षवानरमुख्यास्त्वां बलिनः पर्युपासते। एषां विलपितं कृच्छ्रमङ्गदस्य च शोचतः ॥ ५ ॥
मम चेमां गिरं श्रुत्वा किं त्वं न प्रतिबुध्यसे। इदं तद्वीरशयनं यत्र शेषे हतो युधि ॥ ६ ॥
शायिता निहता यत्र त्वयैव रिपवः पुरा। विशुद्धसत्त्वाभिजन प्रिययुद्ध मम प्रिय ॥ ७ ॥
मामनाथां विहायैकां गतस्त्वमसि मानद। शूराय न प्रदातव्या कन्या खलु विपश्चिता ॥ ८ ॥
शूरभार्यां हतां पश्य सद्यो मां विधवां कृताम्। अवभग्नश्च मे मानो भग्ना मे शाश्वती गतिः ॥ ९ ॥
अगाधे च निमग्नास्मि विपुले शोकसागरे। अश्मसारमयं नूनमिदं मे हृदयं दृढम् ॥१०॥
भर्तारं निहतं दृष्ट्वा यन्नाद्य शतधा गतम्। सुहृच्चैव हि भर्ता च प्रकृत्या मम च प्रियः ॥११॥
आहवे च पराक्रान्तः शूरः पञ्चत्वमागतः। पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी ॥१२॥
धनधान्यैः सुपूर्णापि विधवेत्युच्यते जनैः। स्वगात्रप्रभवे वीर शेषे रुधिरकर्दमे ॥१३॥
कृमिरागपरिस्तोमे त्वमात्मशयने यथा। रेणुशोणितसंवीतं गात्रं तव समन्ततः ॥१४॥
परिरब्धुं न शक्नोमि भुजाभ्यां प्लवगर्षभ। कृतकृत्योऽद्य सुग्रीवो वैरेऽस्मिन्नतिदारुणे ॥१५॥

हे वीर! हमारी प्रार्थना को न मानकर ही दुःख देने वाली ऊँची-नीची इस पथरीली भूमि में आप सो रहे हैं ॥ २ ॥ हे वनवासियों के राजा! निश्चय ही यह भूमि आप को मुझसे अधिक प्रिय प्रतीत हो रही है, क्योंकि मुझको छोड़ कर आप इस भूमि का आलिंगन कर सो रहे हैं और मुझ से बोल भी नहीं रहे हैं ॥ ३ ॥ हे साहसिक कार्यों से प्रेम रखने वाले वीर! आज भाग्य सुग्रीव का ही साथ दे रहा है। सफल मनोरथ सुग्रीव ही आज संसार में महाविक्रमशाली है ॥ ४ ॥ वृक्षशैलान्तवासी जो सदा आप की शुश्रूषा करते थे, उनका दुःखमय विलाप तथा शोकातुर राजकुमार अंगद का दुःखमय विलाप ॥ ५ ॥ और मेरे इन करुणामय शब्दों को सुनकर आप क्यों नहीं जागते। हे वीर! यह वीरों की शय्या है जहाँ पर आप संग्राम में मर कर सो रहे हैं ॥ ६ ॥ जिस स्थान पर आपने पहले अनेक शत्रुओं को मारकर सुलाया था, प्राणियों से सदा सहज प्रेम रखने वाले, हे युद्ध प्रेमी, मेरे प्राणनाथ! आज आप स्वयं वहाँ पर सो रहे हैं ॥ ७ ॥ हे मेरे सम्मानदाता! मुझ अकेली असहाय को छोड़ कर आप प्रस्थान कर गये हैं, इस लिये कोई दूरदर्शी विद्वान् वैधव्य भय से वीरों को अपनी कन्या न दे ॥ ८ ॥ वीर की पत्नी तत्काल विधवा हुई मृतक के समान मुझको ही देख लो। मेरा मान-सम्मान आज सब नष्ट हो गया तथा मेरे जीवन की सम्पूर्ण गति आज अवरुद्ध हो गई ॥ ९ ॥ विशाल अगाध शोक समुद्र में मैं आज डूब रही हूँ। निश्चय ही वज्र के समान मेरा यह हृदय दृढ़ है ॥ १० ॥ जो अपने पति को इस अवस्था में देखकर सौ टुकड़े नहीं हो जाता। जो मेरे परम शुभ चिन्तक, पति तथा निसर्गतः मेरे प्रेमी थे ॥ ११ ॥ शत्रुओं पर प्रहार करने में जो अत्यन्त पराक्रमी थे, वे वीर आज इस संसार से चल बसे। जो स्त्री पति से हीन हो गई हो, चाहे वह अनेक पुत्रों की माता हो ॥ १२ ॥ तथा अनेक प्रकार के धन-धान्य से परिपूर्ण हो, तो भी विद्वान् लोग उसको विधवा ही कहते हैं। हे वीर! अपने शरीर के रुधिर से सिंचित भूमण्डल पर सो रहे हो ॥ १३ ॥ लाक्षा-राग से रंजित अपनी शय्या के समान रक्तरंजित संग्राम धूलि से सने हुए सम्पूर्ण शरीर का ॥ १४ ॥ हे वनवासी वीर! मैं अपनी भुजाओं से आलिंगन नहीं कर सकती हूँ। वैर पूर्वक इस दारुण संघर्ष में सुग्रीव ही सफल मनोरथ हैं ॥ १५ ॥ राम के छोड़े हुए जिस एक बाण ने सुग्रीव का सम्पूर्ण भय दूर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यस्य रामविमुक्तेन हृतमेकेषुणा भयम् । शरेण हृदि लग्नेन गात्रसंस्पर्शने तव ॥१६॥
वार्यामि त्वां निरीक्षन्ती त्वयि पञ्चत्वमागते । उद्वबर्ह शरं नीलस्तस्य गात्रगतं तदा ॥१७॥
गिरिगह्वरसंलीनं दीप्तमाशीविषं यथा । तस्य निष्कृष्यमाणस्य बाणस्य च बभौ द्युतिः ॥१८॥
अस्तमस्तकसंरुद्धो रश्मिर्दिनकरादिव । पेतुः क्षतजधारास्तु व्रणेभ्यस्तस्य सर्वशः ॥१९॥
ताम्रगैरिकसंपृक्ता धारा इव धराधरात् । अवकीर्णं विमार्जन्ती भर्तारं रणरेणुना ॥२०॥
अस्त्रैर्नयनजैः शूरं सिषेचास्त्रसमाहतम् । रुधिरोक्षितसर्वाङ्गं दृष्ट्वा विनिहतं पतिम् ॥२१॥
उवाच तारा पिङ्गाक्षं पुत्रमङ्गदमङ्गना । अवस्थां पश्चिमां पश्य पितुः पुत्र सुदारुणाम् ॥२२॥
संप्रसक्तस्य वैरस्य गतोऽन्तः पापकर्मणा । बालसूर्योज्ज्वलतनुं प्रयान्तं यमसादनम् ॥२३॥
अभिवादय राजानं पितरं पुत्र मानदम् । एवमुक्तः समुत्थाय जग्राह चरणौ पितुः ॥२४॥
भुजाभ्यां पीनवृत्ताभ्यामङ्गदोऽहमिति ब्रुवन् । अभिवादयमानं त्वामङ्गदं त्वं यथा पुरा ॥२५॥
दीर्घायुर्भव पुत्रेति किमर्थं नाभिभाषसे । अहं पुत्रसहाया त्वामुपासे गतचेतनम् ॥२६॥
सिंहेन निहतं सद्यो गौः सवत्सेव गोवृषम् ।
दृष्ट्वा संग्रामयज्ञेन रामप्रहरणाम्भसि । अस्मिन्नवभृथे स्नातः कथं पत्न्या मया विना ॥२७॥
या दत्ता देवराजेन तव तुष्टेन संयुगे । शातकुम्भमयीं मालां तां ते पश्यामि नेह किम् ॥२८॥

कर दिया, वही हृदय में लगा हुआ बाण तुम्हारे शरीर के आलिंगन में ॥ १६ ॥ बाधा पहुँचा रहा है। मृत्यु हो जाने पर आप को देख रही हूँ। किन्तु तुम्हारा आलिंगन नहीं कर सकती । तारा के इन बातों के कहते ही नील नाम के सेनापति ने बाली के शरीर से उस बाण को निकाल दिया ॥ १७॥ पर्वत की गुफा से निकलते हुए जैसे भयंकर सर्प की शोभा होती है, उसी प्रकार बाली के शरीर से निकलते हुए बाण की शोभा हुई ॥ १८ ॥ अस्ताचल चूड़ावलम्बी सूर्य की किरणों के समान बाली के हृदयस्थ व्रण से रक्त की धारा चारों ओर बहने लगी ॥ १९ ॥ वह रक्त की धार पर्वत से निकली हुई गेरू की धारा के समान प्रतीत हो रही थी। रण की धूलि तथा रक्त से सने हुए अपने पति के शरीर को पोछँती हुई ॥ २० ॥ अस्त्र से मरे हुए अपने वीर पति को अपनी आँखों के आँसुओं से सिंचित करने लगी। रुधिर से जिसके सर्वांग सने हुए हैं, ऐसे मरे हुए पति को देख कर ॥ २१ ॥ भूरे नेत्र वाले अंगद से देवी तारा बोली—हे पुत्र ! पिता की भयानक इस अन्तिम अवस्था को देखो ॥ २२ ॥ पूर्व जन्म के पाप के कारण पारस्परिक उत्पन्न हुए वैर का आज अन्त हो गया। बाल रवि के समान जाज्वल्यमान शरीर को त्याग कर तुम्हारे पिता यमसदन के अतिथि हो गये हैं ॥ २३ ॥ हे पुत्र ! मानप्रदाता अपने पूज्य पिता महाराज को प्रणाम करो। माता के ऐसा कहने पर राजकुमार अंगद ने उठ कर पिता के चरणों का स्पर्श करते हुए प्रणाम किया ॥ २४ ॥ पिता को प्रणाम करते समय मोटी गोलाकार भुजाओं से चरणों को स्पर्श करते हुए 'मैं अंगद हूं' यह शब्द अंगद ने कहा। प्रणाम करते हुए पहले आप अंगद को जिस प्रकार ॥ २५ ॥ हे पुत्र ! चिरंजीवी हो, ऐसा कहा करते थे, आज आप उस प्रकार आशीर्वाद क्यों नहीं दे रहे हैं। सिंह के द्वारा साँड के मारे जाने पर जिस प्रकार बछड़े के साथ गौ उसके समीप रहती है, आज मैं उसी प्रकार अपने पुत्र अंगद के साथ आपके प्राणरहित शरीर के समीप हूं ॥ २६ ॥ आपने जो संग्राम यज्ञ किया था, उस समय राम के प्रहार रूपी जल में मुझ पत्नी के विना अकेले ही अवभृथ स्नान क्यों किया ॥ २७ ॥ संग्राम में प्रसन्न होकर देवराज इन्द्र ने जो आपको स्वर्णमयी रमणीय माला दी थी, उसे मैं आपके पास नहीं देख रही हूँ ॥ २८ ॥ हे मानदाता !

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजश्रीर्न जहाति त्वां गतासुमपि मानद। सूर्यस्यावर्तमानस्य शैलराजमिव प्रभा ॥२९॥
न मे वचः पथ्यमिदं त्वया कृतं न चास्मि शक्ता विनिवारणे तव।
हता सपुत्रास्मि हतेन संयुगे सह त्वया श्रीर्विजहाति मामिह ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे अङ्गदाभिवादनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः

सुग्रीवताराश्वासनम्

तां त्वश्रुवेगेन दुरासदेन त्वभिप्लुतां शोकमहार्णवेन।
पश्यंस्तदा वाल्यनुजस्तरस्वी भ्रातुर्वधेनाप्रतिमेन तेपे ॥ १ ॥
स बाष्पपूर्णेन मुखेन वीक्ष्य क्षणेन निर्विण्णमना मनस्वी।
जगाम रामस्य शनैः समीपं भृत्यैर्वृतः संपरिदूयमानः ॥ २ ॥
स तं समासाद्य गृहीतचापमुदात्तमाशीविषतुल्यबाणम्।
यशस्विनं लक्षणलक्षिताङ्गमवस्थितं राघवमित्युवाच ॥ ३ ॥

मृत्यु के पश्चात् भी राजकीय लावण्यमयी कान्ति आपका त्याग उसी प्रकार नहीं कर रही है, जैसे अस्त होने पर भी सूर्य की प्रभा चिर काल तक मेरु पर्वत के शिखर को नहीं त्यागती ॥ २९ ॥ मेरे हित पूर्ण वचनों का आपने पालन नहीं किया। समझाने के अतिरिक्त आपको मैं रोक भी नहीं सकती थी। संग्राम में आप के मारे जाने पर पुत्र के साथ मैं भी मर चुकी हूं। आप के मरणानन्तर ही ऐश्वर्य, कान्ति तथा राजलक्ष्मी ने मेरा भी त्याग कर दिया ॥ ३० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'अंगद का अभिवादन' विषयक तेईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ सर्ग

सुग्रीव तथा तारा को आश्वासन

शोक सागर में डूबती हुई उस तारा को देखकर अद्वितीय भ्राता बाली के जघन्य बल को देख कर बाली के छोटे बन्धु अति वेगवान् सुग्रीव अत्यन्त दुःखी हो गये ॥ १ ॥ तारा की विपन्नावस्था को देख कर जिस मनस्वी के हृदय में एक प्रकार का वैराग्य उत्पन्न हो गया है, ऐसे दुःखी राजा सुग्रीव अपने भृत्यों से घिरे हुए शनैः २ रामचन्द्र के समीप पहुँचे ॥ २ ॥ विशाल धनुष तथा भयंकर सर्प के समान बाण धारण करने वाले, प्रत्येक राजकीय लक्षणों से परिपूर्ण, बैठे हुए यशस्वी रामचन्द्र से सुग्रीव बोले ॥ ३ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथाप्रतिज्ञातमिदं नरेन्द्र कृतं त्वया दृष्टफलं च कर्म ।
ममाद्य भोगेषु नरेन्द्रपुत्र मनो निवृत्तं सह जीवितेन ॥ ४ ॥
अस्यां महिष्यां तु भृशं रुदत्यां पुरे च विक्रोशति दुःखतप्ते ।
हतेऽग्रजे संशयितेऽङ्गदे च न राम राज्ये रमते मनो मे ॥ ५ ॥
क्रोधादमर्षादतिविग्रहर्षाद्भ्रातुर्वधो मेऽनुमतः पुरस्तात् ।
हते त्विदानीं हरियूथपेऽस्मिन् सुतीव्रमिक्ष्वाकुकुमार तप्ये ॥ ६ ॥
श्रेयोऽद्य मन्ये मम शैलमुख्ये तस्मिन्निवासश्चिरमृश्यमूके ।
यथा तथा वर्तयतः स्ववृत्त्या नेमं निहत्य त्रिदिवस्य लाभः ॥ ७ ॥
न त्वां जिघांसामि चरेति यन्मामयं महात्मा मतिमानुवाच ।
तस्यैव तद्राम वचोऽनुरूपमिदं पुनः कर्म च मेऽनुरूपम् ॥ ८ ॥
भ्राता कथं नाम महागुणस्य भ्रातुर्वधं राघव रोचयेत ।
राज्यस्य दुःखस्य च वीर सारं न चिन्तयन् कामपुरस्कृतः सन् ॥ ९ ॥
वधो हि मे मतो नासीत्स्वमाहात्म्याव्यतिक्रमात् । ममासीद्बुद्धिदौरात्म्यात्प्राणहारी व्यतिक्रमः ॥ १० ॥
द्रुमशाखावभग्नोऽहं मुहूर्तं परिनिष्टनन् । सान्त्वयित्वा त्वनेनोक्तो न पुनः कर्तुमर्हसि ॥ ११ ॥
भ्रातृत्वमार्यभावश्च धर्मश्चानेन रक्षितः । मया क्रोधश्च कामश्च कपित्वं च प्रदर्शितम् ॥ १२ ॥

हे नरनाथ ! आपने मेरे साथ जैसी प्रतिज्ञा की थी, उसको पूरा किया और उसके परिणाम भूत फलरूप बाली का वध तथा एक प्रकार से राज्य की प्राप्ति हो चुकी, किन्तु हे राजकुमार ! इस अधम जीवन तथा उसके द्वारा दुष्कृत्य से मेरा मन सांसारिक भोगों से दूर हट गया है ॥ ४ ॥ इस महारानी के अत्यन्त करुणामय रोदन को देखकर, पुरवासियों के दारुण विलाप से तथा पितृवियोग के कारण संशयापन्न राजकुमार अंगद के जीवन को देखकर हे रामचन्द्र ! अब मेरा मन राजभोगों की ओर नहीं लग रहा है ॥ ५ ॥ हे इक्ष्वाकुवंशकुमार ! क्रोध, ईर्ष्या तथा अत्यन्त दुःखी होने के कारण मैंने भ्राता बाली के वध की इच्छा तथा आप से प्रार्थना की थी, किन्तु इस वनवासी सम्राट् भ्राता बाली के मारे जाने पर मुझे अत्यन्त पश्चात्ताप हो रहा है ॥६॥ अब मैं उस ऋश्यमूक को ही अपने लिये श्रेय समझता हूँ। वहीं पर जिस तिस प्रकार से अपना निर्वाह कर लूंगा, किन्तु इस भाई की हत्या करके मैंने अपने आपको स्वर्गीय सुख से वंचित कर दिया है ॥ ७ ॥ हे सुग्रीव ! मैं तुमको मारना नहीं चाहता, तुम शीघ्र यहाँ से चले जाओ, इस प्रकार की बातें उस महात्मा ने मुझसे कहीं। यह उन्हीं की सदाशयता तथा बड़प्पन की बातें थीं। किन्तु हे रामचन्द्र ! मेरे पापपूर्ण वचन तथा मेरा भ्रातृवध रूपी जघन्य कर्म मेरे जैसे क्षुद्र व्यक्ति की क्षुद्रता का परिचायक है ॥ ८ ॥ पतित से पतित स्वार्थी भ्राता भी राज्यसुख तथा भ्रातृवध के पश्चात् होने वाले दारुण दुःख, इन दोनों के परिणाम को विचार कर भ्रातृवध का कभी समर्थन न करेगा ॥ ९ ॥ मेरा वध भाई बाली को कभी अभीष्ट नहीं था, क्योंकि इस कृत्य से उनके गौरव तथा यश की हानि होती थी, किन्तु मैं इस महती क्षति का ध्यान न रखते हुए नीचता के कारण भाई के वध की चेष्टा सदा किया करता था ॥ १० ॥ बाली के द्वारा वृक्ष शाखाओं से आहत होने पर रक्षार्थ दीनता पूर्वक जब मैंने आपको पुकारा, तो उस समय भ्राता बाली ने मुझे समझाते हुए यही कहा—जाओ फिर ऐसा मत करना ॥ ११ ॥ भ्राता बाली ने भ्रातृत्व, अपनी श्रेष्ठता तथा अपने धर्म की रक्षा करते हुए अपने बड़प्पन का परिचय दिया तथा मैंने क्रोध तथा स्वार्थ को प्रश्रय देते हुए अपनी जघन्य चलचित्तता का परिचय दिया है ॥ १२ ॥ अचिन्तनीय, त्याज्य,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अचिन्तनीयं परिवर्जनीयमनीप्सनीयं स्वनवेक्षणीयम् ।
प्राप्तोऽस्मि पाप्मानमिमं वयस्य भ्रातुर्वधात्त्वाष्ट्रवधादिवेन्द्रः ॥१३॥
[पाप्मानमिन्द्रस्य मही जलं च वृक्षाश्च कामं जगृहुः स्त्रियश्च ।
को नाम पाप्मानमिमं क्षमेत शाखामृगस्य प्रतिपत्तुमिच्छन् ॥१४॥]
नार्हामि संमानमिमं प्रजानां न यौवराज्यं कुत एव राज्यम् ।
अधर्मयुक्तं कुलनाशयुक्तमेवंविधं राघव कर्म कृत्वा ॥१५॥
पापस्य कर्तास्मि विगर्हितस्य क्षुद्रस्य लोकापकृतस्य चैव ।
शोको महान् माममिवर्ततेऽयं वृष्टेर्यथा निम्नमिवाम्बुवेगः ॥१६॥
सोदर्यघातापरगात्रवालः संतापहस्ताक्षिशिरोविषाणः ।
एनोमयो माममिहन्ति हस्ती दृप्तो नदीकूलमिव प्रवृद्धः ॥१७॥
अंहो बतेदं नृवराविषह्यं निवर्तते मे हृदि साधु वृत्तम् ।
विवर्णमग्नौ परितप्यमानं किट्टं यथा राघव जातरूपम् ॥१८॥
महाबलानां हरियूथपानामिदं कुलं राघव मन्निमित्तम् ।
अस्याङ्गदस्यापि च शोकतापादर्धस्थितप्राणमितीव मन्ये ॥१९॥

अवांछनीय तथा न देखने योग्य भ्रातृवध का जघन्य पाप मैंने उसी प्रकार किया है, जिस प्रकार त्वाष्ट्र-वध से इन्द्र को महान् पातक लगा था ॥ १३ ॥ त्वाष्ट्र के वध से इन्द्र के पाप को भूमि, जल, वृक्ष तथा स्त्रियों ने स्वेच्छा से परस्पर बाँट लिया था, किन्तु सामान्य मुझ वनवासी का पाप कौन लेना चाहेगा* ॥ १४ ॥ हे रामचन्द्र ! अधर्म-युक्त इस प्रकार का कुलघाती काम करके वनवासी प्रजा का सम्मान मैं नहीं चाहता। युवराज पद तथा अपना राज्य भी मैं लेना नहीं चाहता ॥ १५ ॥ लोक में अतिनिन्दित, अनार्यों के सेवन करने योग्य, सम्पूर्ण समाज का आघात करने वाला यह जघन्य पाप मैंने किया है, जिसका शोक मुझे इस प्रकार आक्रान्त कर रहा है जैसे वर्षा हुए मेघ की धारा निम्न स्थान को जाती है ॥ १६ ॥ भ्रातृवध जनित पाप का मदोन्मत्त हस्ती नदी तट के समान मेरे हृदय को आघात पहुँचा रहा है। भ्रातृवध ही इसका शरीर तथा बाल हैं, अनेक प्रकार का सन्ताप ही इस हस्ती के सूण्ड, आँख, मस्तक तथा दाँत हैं ॥ १७ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! मेरे ये जघन्य तथा असह्य पाप मेरे अन्तःकरण की सज्जनता तथा शालीनता को उसी प्रकार नष्ट कर रहे हैं, जिस प्रकार अग्नि में तपाये जाने पर कुत्सित स्वर्ण का मल स्वर्ण का साथ छोड़ देता है ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्र ! महाबलवान् वनवासी राजाओं का यह कुल तथा पिता की मृत्यु से संशयापन्न अंगद का प्राण ये दोनों ही संकट ग्रस्त हो रहे हैं। इन सबका निमित्त भी मैं ही हूं ॥ १९ ॥ सज्जन तथा वश में रहने वाला पुत्र

* त्वाष्ट्र वध जनित इन्द्र के पापों का जलादि के द्वारा बँटवारा होना सृष्टि नियम तथा वैदिकशास्त्र पद्धति के विरुद्ध है। जब कि शास्त्रों में पदे २ यह वर्णन है—"यथा यच्च कृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति" ॥ "कर्त्ता दोषेण लिप्यते" ॥ "कर्मानुगो गच्छति जीव एकः" ॥ "नाभुक्तं क्षीयते कर्म" (मनु०) ॥ अर्थात् जो कर्म जिसका किया होता है, वह उसी के साथ जाता है तथा कर्मानुकूल फल भोगना पड़ता है। ऐसी अवस्था में श्रुति स्मृति विरुद्ध भूमि, जल, वृक्षों के द्वारा किसी के कर्म को बाँट कर ले लेना तथा उसे फल भोग से मुक्त कर देना, यह विचार अशास्त्रीय होने के कारण इस श्लोक को प्रक्षिप्त माना गया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुतः सुलभ्यः सुजनः सुवश्यः कृतः सुपुत्रः सदृशोऽङ्गदेन ।
न चापि विद्येत स वीर देशो यस्मिन् भवेत्सोदरसंनिकर्षः ॥२०॥
यद्यङ्गदो वीरवरोऽद्य जीवेज्जीवेच्च माता परिपालनार्थम् ।
विना तु पुत्रं परितापदीना तारा न जीवेदिति निश्चितं मे ॥२१॥
सोऽहं प्रवेक्ष्याम्यतिदीप्तमग्निं भ्रात्रा च पुत्रेण च सख्यमिच्छन् ।
इमे विचेष्यन्ति हरिप्रवीराः सीतां निदेशे तव वर्तमानाः ॥२२॥
कृत्स्नं तु ते सेत्स्यति कार्यमेतन्मय्यप्रतीते मनुजेन्द्रपुत्र ।
कुलस्य हन्तारमजीवनार्हं रामानुजानीहि कृतागसं माम् ॥२३॥
इत्येवमार्तस्य रघुप्रवीरः श्रुत्वा वचो वाल्यनुजस्य तस्य ।
संजातबाष्पः परवीरहन्ता रामो मुहूर्तं विमना बभूव ॥ २४ ॥
तस्मिन् क्षणेऽभीक्ष्णमवेक्ष्यमाणः क्षितिक्षमावान् भुवनस्य गोप्ता ।
रामो रुदन्तीं व्यसने निमग्नां समुत्सुकः सोऽथ ददर्श ताराम् ॥ २५ ॥
तां चारुनेत्रां कपिसिंहनाथं पतिं समाश्लिष्य तदा शयानाम् ।
उत्थापयामासुरदीनसत्त्वां मन्त्रिप्रधानाः कपिवीरपत्नीम् ॥ २६ ॥
सा विस्फुरन्ती परिरभ्यमाणा भर्तुः सकाशादपनीयमाना ।
ददर्श रामं शरचापपाणिं स्वतेजसा सूर्यमिव ज्वलन्तम् ॥ २७ ॥
सुसंवृतं पार्थिवलक्षणैश्च तं चारुनेत्रं मृगशावनेत्रा ।
अदृष्टपूर्वं पुरुषप्रधानमयं स काकुत्स्थ इति प्रजज्ञे ॥ २८ ॥

मिलना सुलभ है, किन्तु अंगद के समान पुत्र मिलना कठिन है। हे वीर रामचन्द्र! संसार में कोई ऐसा देश नहीं दिखाई देता, जहाँ सहोदर बन्धु की प्राप्ति होती हो ॥ २० ॥ हे वीरवर रामचन्द्र! इस दारुण आघात से अंगद जीवित रह सकेगा, इसमें सन्देह है। यदि इस आघात को सह कर अंगद जीवित रह जावे, तो उसका पालन पोषण करने के लिये उसकी माता तारा भी जीवित रह जावे, किन्तु विना पुत्र के पतिघात से पीड़ित क्षीण हुई तारा जीवित नहीं रह सकती, यह मेरा निश्चय है ॥ २१ ॥ इस लिये, हे रामचन्द्र! अब मैं भाई तथा पुत्र के पथ का अनुसरण करता हुआ संदीप्त अग्नि में प्रवेश कर प्राणान्त कर दूँगा। ये वनवासी वीर मेरी आज्ञा का पालन करते हुए सीता का अन्वेषण करेंगे ॥ २२ ॥ हे राजकुमार रामचन्द्र! मेरे दिवंगत होने पर भी आप के सब कार्य सिद्ध होंगे। कुलघ्न, जघन्य पाप करने वाले तथा जीवन के अयोग्य मुझ पापी को मरने की आज्ञा दे दीजिये ॥ २३ ॥ भ्रातृवध से दुःखी बाली के छोटे भाई सुग्रीव की इन बातों को सुन कर शत्रुघाती राम के दोनों नेत्र सजल हो गये तथा कुछ समय के लिये वे चिन्ता-ग्रस्त हो गये ॥ २४ ॥ उसी समय पृथ्वी के समान क्षमाशील, सम्पूर्ण विश्व के रक्षक, बार २ इधर-उधर देखने से अत्यन्त उत्सुक रामचन्द्र ने दारुण दुःख में निमग्न रोती हुई तारा को देखा ॥ २५ ॥ सुन्दर नेत्र-वाली, वनवासी राजा बाली की धर्मपत्नी जो पति का आलिंगन कर लेटी हुई है, ऐसी तपस्विनी तारा को प्रधान मन्त्री आदि पुरुषों ने उठाया ॥ २६ ॥ पति के समीप से दूर हटायी हुई तथा कम्पायमानगात्रा तारा ने अपने तेज से देदीप्यमान सूर्य के समान, धनुष-बाण धारी रामचन्द्र को देखा ॥ २७ ॥ मृगनयनी तारा ने राजकीय लक्षणों से परिपूर्ण, सुन्दर नेत्र वाले, पुरुषों में प्रधान, जिसको उसने पहले कभी नहीं देखा था, यही रामचन्द्र हैं, ऐसा समझा ॥ २८ ॥ देवेन्द्र के समान संग्राम में कभी पराजित न होने वाले मर्यादा पुरुषो-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्येन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य महानुभावस्य समीपमार्या ।
आर्तातितूर्णं व्यसनाभिपन्ना जगाम तारा परिविह्वलन्ती ॥ २९ ॥

सा तं समासाद्य विशुद्धसत्त्वा शोकेन संभ्रान्तशरीरभावा ।
मनस्विनी वाक्यमुवाच तारा रामं रणोत्कर्षणलब्धलक्षणम् ॥ ३० ॥

त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधार्मिकश्च ।
अक्षय्यकीर्त्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान् क्षतजोपमाक्षः ॥ ३१ ॥

त्वमात्तबाणासनबाणपाणिर्महाबलः संहननोपपन्नः ।
मनुष्यदेहाभ्युदयं विहाय दिव्येन देहाभ्युदयेन युक्तः ॥ ३२ ॥

येनैकबाणेन हतः प्रियो मे तेनैव मां त्वं जहि सायकेन ।
हता गमिष्यामि समीपमस्य न मामृते राम रमेत बाली ॥ ३३ ॥

स्वर्गेऽपि पद्मामलपत्रनेत्रः समेत्य संप्रेक्ष्य च मामपश्यन् ।
न ह्येष उच्चावचताम्रचूडा विचित्रवेषाप्सरसोऽभजिष्यत् ॥ ३४ ॥

स्वर्गेऽपि शोकं च विवर्णतां च मया विना प्राप्स्यति वीर वाली ।
रम्ये नगेन्द्रस्य तटावकाशे विदेहकन्यारहितो यथा त्वम् ॥ ३५ ॥

त्वं वेत्थ यावद्वनिताविहीनः प्राप्नोति दुःखं पुरुषः कुमारः ।
तत्त्वं प्रजानञ्जहि मां न वाली दुःखं ममादर्शनजं भजेत ॥ ३६ ॥

त्तम रामचन्द्र के समीप अत्यन्त दुःख से परिपूर्ण, चलने में असमर्थ, विपत्तिपंक में फँसी हुई तारा पहुँची ॥ २९ ॥ अत्यन्त शोक होने के कारण जिसे अपने शरीर का ध्यान जाता रहा है, ऐसी मनस्विनी तारा विमल बुद्धि वाले, रणविशारद, लक्ष्यवेधी राम के समीप जाकर बोली ॥ ३० ॥ हे रामचन्द्र ! आप संग्राम में कभी न पराजित होने वाले, उपमा रहित, जितेन्द्रिय, उदात्तधर्म के पालक, अक्षुण्णकीर्त्ति, धरा के समान क्षमावान् तथा अरुण नेत्र वाले हैं ॥ ३१ ॥ आप अत्यन्त बली, हाथ में धनुष-बाण धारण करने वाले, सुगठित शरीर वाले, मानवीय शरीर से भोगने वाले क्षणिक सुख वाले भोगों को त्याग कर दिव्य देहधारी दिव्य भोग वाले सुखों से युक्त हैं ॥ ३२ ॥ आप ने जिस बाण से मेरे प्राणाधिक पति को मारा है, उसी बाण से मुझे भी मार दीजिये । मर कर मैं उनके समीप जाऊंगी । दिवंगत वीर वाली मेरे विना प्रसन्न नहीं होंगे ॥ ३३ ॥ स्वर्ग में जाने पर कमल के समान नेत्र वाले मेरे पति बाली मुझे अनुपस्थित देख कर नाना प्रकार के पुष्पादि से अलंकृत चूड़ा वाली तथा नाना प्रकार की वेष भूषा धारण करने वाली अप्सराओं से भी प्रसन्न न हो सकेंगे ॥ ३४ ॥ हे वीर रामचन्द्र ! स्वर्ग में जाने पर भी अपनी प्राणप्रिया मुझ भार्या को न देख कर बाली खिन्न तथा उसी प्रकार उदासीन हो जायेंगे जिस प्रकार रमणीय ऋश्यमूक पर्वत शिखर पर जानकी के विना आप दुःखी हो रहे हैं ॥ ३५ ॥ एक युवा पुरुष को स्त्री के वियोग में क्या कष्ट होता है, उस के आप भुक्तभोगी अनुभवी हैं । इस रहस्य को जान कर आप मेरा वध कर दीजिये, जिससे मेरी अनुपस्थिति का दुःख वाली को न हो ॥ ३६ ॥ यदि उदारचेता आप इस बात को समझते हो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यच्चापि मन्येत भवान् महात्मा स्त्रीघातदोषो न भवेत्तु मह्यम् ।
आत्मेयमस्येति च मां जहि त्वं न स्त्रीवधः स्यान्मनुजेन्द्रपुत्र ॥ ३७ ॥
शास्त्रप्रयोगाद्विविधाच्च वेदादात्मा ह्यनन्यः पुरुषस्य दाराः ।
दारप्रदानान्न हि दानमन्यत्प्रदृश्यते ज्ञानवतां हि लोके ॥ ३८ ॥
त्वं चापि मां तस्य मम प्रियस्य प्रदास्यसे धर्ममवेक्ष्य वीर ।
अनेन दानेन न लप्स्यसे त्वमधर्मयोगं मम वीर घातात् ॥ ३९ ॥
आर्तामनाथामपनीयमानामेवंविधामर्हसि मां निहन्तुम् ।
अहं हि मातङ्गविलासगामिना प्लवङ्गमानामृषभेण धीमता ॥ ४० ॥
विना वरार्होत्तमहेममालिना चिरं न शक्ष्यामि नरेन्द्र जीवितुम् ।
इत्येवमुक्तस्तु विभुर्महात्मा तारां समाश्वास्य हितं बभाषे ॥ ४१ ॥
मा वीरभार्ये विमतिं कुरुष्व लोको हि सर्वो विहितो विधात्रा ।
तं चैव सर्वं सुखदुःखयोगं लोकोऽब्रवीत्तेन कृतं विधात्रा ॥ ४२ ॥
त्रयो हि लोका विहितं विधानं नातिक्रमन्ते वशगा हि तस्य ।
प्रीतिं परां प्राप्स्यसि तां तथैव पुत्रस्तु ते प्राप्स्यति यौवराज्यम् ॥ ४३ ॥

कि तारा के वध से स्त्रीवध का दोष मुझ को लगेगा, तो [शास्त्र विधि से पत्नी पति की आत्मा होती है इस नाते से] यह तारा वाली की आत्मा है, ऐसा समझ कर मुझे मारिये। इस प्रकार हे राजकुमार ! स्त्रीवध का दोष आप को नहीं लगेगा ॥ ३७ ॥ शास्त्रानुकूल, स्मार्त्त कार्यों में, श्रौत कर्मकाण्डों में तथा वेदों में स्त्रियां पुरुषों से अभिन्न मानी गई हैं। व्यावहारिक लोक में ज्ञानियों की दृष्टि में स्त्रीदान से बढ़ कर और कोई दान नहीं माना गया है ॥ ३८ ॥ हे वीर रामचन्द्र ! आप यदि मुझे मेरे प्राणाधिक पति को दान कर देंगे तो इस दान के करने से मेरे वध का पातक आप को नहीं लगेगा ॥ ३९ ॥ दुःखी, अनाथ, पति से वियुक्त की गई, ऐसी मुझ को आप अवश्य ही मारिये। मत्त मातङ्ग कमनीय गति वाले, उत्तम स्वर्णमयी माला के धारण करने वाले, वनवासियों में श्रेष्ठ बुद्धिमान् बाली के ॥ ४० ॥ विना हे राजन् ! मैं चिर काल तक जीवित नहीं रह सकती। प्राणी मात्र के हितैषी रामचन्द्र ने तारा के ऐसा कहने पर उसे आश्वासन देते हुए हित का उपदेश दिया ॥ ४१ ॥ ॥ हे वीरपत्नी ! बुद्धि विपरीत तुम मृत्यु की कामना मत करो। इस सम्पूर्ण विश्व का विधान और उस का निर्माण विधाता का किया हुआ है। कर्मानुकूल सुख दुःख का योग भी उसी विधाता ने किया है। यही वैदिक उपदेश है ॥ ४२ ॥ इस त्रिलोकी का निर्माण तथा उसके संचालन का विधान विधाता द्वारा निर्मित है। उसके वशवर्त्ती होने के नाते इसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता। अधिकारी होने के नाते तुम्हारा पुत्र युवराज पद प्राप्त करेगा, पश्चात् तुम्हें पूर्व के समान ही शान्ति प्राप्त होगी ॥ ४३ ॥ विधाता का अनतिक्रमणीय यही विधान है। वीरों की वीर नारियाँ रोदन नहीं करतीं। शत्रुतापी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धात्रा विधानं विहितं तथैव न शूरपत्न्यः परिदेवयन्ति ।
आश्वासिता तेन तु राघवेण प्रभावयुक्तेन परंतपेन ॥
सा वीरपत्नी ध्वनता मुखेन सुवेषरूपा विरराम तारा ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सुग्रीवताराश्वासनं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः सर्गः

वालिसंस्कारः

सुग्रीवं चैव तारां च साङ्गदां सहलक्ष्मणः । समानशोकः काकुत्स्थः सान्त्वयन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥
न शोकपरितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः । यदत्रानन्तरं कार्यं तत्समाधातुमर्हथ ॥ २ ॥
लोकवृत्तमनुष्ठेयं कृतं वो बाष्पमोक्षणम् । न कालादुत्तरं किंचित्कर्म शक्यमुपासितुम् ॥ ३ ॥
नियतिः कारणं लोके नियतिः कर्मसाधनम् । नियतिः सर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम् ॥ ४ ॥

प्रभावशाली मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र के ऐसा समझाने पर वीरपत्नी वीरांगना तारा ने स्वरपूर्ण विलाप करना त्याग दिया तथा शान्त हृदय उस का मुख मण्डल प्रसन्न हो गया ॥ ४४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धा काण्ड का 'सुग्रीव तथा तारा को आश्वासन' विषयक चौबीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २४ ॥

पचीसवां सर्ग

वाली का संस्कार

लक्ष्मण के साथ तारा-सुग्रीव आदि के समान दुःख वाले रामचन्द्र सुग्रीव, तारा तथा अंगद को सान्त्वना पूर्वक समझाते हुए यह वचन बोले ॥ १ ॥ अधिक शोक संताप करने से दिवंगत आत्मा का कल्याण नहीं होता, इस लिए अब आगे का जो काम करना है, उसे आप लोगों को करना चाहिये ॥ २ ॥ मरणानन्तर लोक का जैसा व्यवहार है, आप लोगों को वैसा ही करना चाहिये । अब रोना बन्द करो । मृत्यु के पश्चात् उसमें परिवर्त्तन का अब कोई उपाय नहीं रह जाता ॥ ३ ॥ कर्म जनित व्यवस्था ही संसार में सुख दुःख का कारण मानी गई है । कर्म विपाक या प्रारब्ध ही कार्य सिद्धि या असिद्धि का हेतु माना गया है । नियति (प्रारब्ध) ही सम्पूर्ण प्राणियों की कार्य प्रवृत्ति में सहायक होती है ॥ ४ ॥ कोई मनुष्य किसी काम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न कर्ता कस्यचित्कश्चिन्नियोगे चापि नेश्वरः । स्वभावे वर्तते लोकस्तस्य कालः परायणम् ॥ ५ ॥
न कालः कालमत्येति न कालः परिहीयते । स्वभावं च समासाद्य न कश्चिदतिवर्तते ॥ ६ ॥
न कालस्यास्ति बन्धुत्वं न हेतुर्न पराक्रमः । न मित्रज्ञातिसंबन्धः कारणं नात्मनो वशः ॥ ७ ॥
किं तु कालपरीणामो द्रष्टव्यः साधु पश्यता । धर्मश्चार्थश्च कामश्च कालक्रमसमाहिताः ॥ ८ ॥
इतः स्वां प्रकृतिं वाली गतः प्राप्तः क्रियाफलम् । सामदानार्थसंयोगैः पवित्रं प्लवगेश्वरः ॥ ९ ॥
स्वधर्मस्य च संयोगाज्जितस्तेन महात्मना । स्वर्गः परिगृहीतश्च प्राणानपरिरक्षता ॥१०॥
एषा वै नियतिः श्रेष्ठा यां गतो हरियूथपः । तदलं परितापेन प्राप्तकालमुपास्यताम् ॥११॥
वचनान्ते तु रामस्य लक्ष्मणः परवीरहा । अवदत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं गतचेतसम् ॥१२॥
कुरु त्वमस्य सुग्रीव प्रेतकार्यमनन्तरम् । ताराङ्गदाभ्यां सहितो वालिनो दहनं प्रति ॥१३॥
समाज्ञापय काष्ठानि शुष्काणि च बहूनि च । चन्दनादीनि दिव्यानि वालिसंस्कारकारणात् ॥१४॥
समाश्वासय चैनं त्वमङ्गदं दीनचेतसम् । मा भूर्बालिशबुद्धिस्त्वं त्वदधीनमिदं पुरम् ॥१५॥
अङ्गदस्त्वानयेन्माल्यं वस्त्राणि विविधानि च । घृतं तैलमथो गन्धान् यच्चात्र समनन्तरम् ॥१६॥
त्वं तार शिबिकां शीघ्रमादायागच्छ संभ्रमात् । त्वरा गुणवती युक्ता ह्यस्मिन् काले विशेषतः ॥१७॥
सज्जीभवन्तु प्लवगाः शिबिकावाहनोचिताः । समर्था बलिनश्चैव निर्हरिष्यन्ति वालिनम् ॥१८॥

मैं सर्वथा स्वाधीन नहीं है और न किसी को काम कराने में ही समर्थ है। सभी प्राणी अपने स्वभाव या वासना से प्रेरित हो कर ही आचरण करते हैं। स्वभाव भी कालयुक्त परिस्थितियों से ही प्रेरित होता है ॥ ५ ॥ विधाता भी अपने विधान का अतिक्रमण नहीं कर सकता। विधाता का विधान अनुल्लंघनीय है। स्वभाव से बंधा हुआ मनुष्य उस का अतिक्रमण नहीं कर सकता ॥ ६ ॥ काल या नियति का कोई बन्धु नहीं, उस का कोई प्रेरक नहीं और न उसके समक्ष किसी प्रकार का पराक्रम ही काम देता है। मित्र, ज्ञाति या किसी प्रकार का सम्बन्ध भी उसमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं ला सकता। विधान या विधाता आत्मा के वश में नही होता ॥ ७ ॥ किन्तु परिणामदर्शी तत्त्वज्ञानियों को काल के परिणाम को देखना चाहिये। धर्म, अर्थ तथा भोग काल के आश्रित होते हैं ॥ ८ ॥ साम-दान-अर्थ के संयोग से वानरराज बाली ने अपनी प्रकृति को प्राप्त होता हुआ पवित्र कर्म जनित फल स्वर्ग प्राप्त किया है ॥ ९ ॥ अपने धार्मिक प्रयत्नों से उस महात्मा बाली ने प्राणों की ममता त्यागते हुए स्वर्ग को प्राप्त किया है ॥ १० ॥ यह नियति (पद्धति) अत्यन्त श्रेष्ठ है जिसको वनवासिराज बाली ने प्राप्त किया। अतः अब उसके लिये पश्चात्ताप नहीं करना चाहिये, अब जो आगे का कार्य है, उसे करना चाहिये ॥ ११ ॥ रामचन्द्र के इस प्रकार समझाने पर शत्रंजयी लक्ष्मण नम्रता पूर्वक खिन्नचित्त वाले सुग्रीव से बोले ॥ १२ ॥ हे तात सुग्रीव ! अब आप तारा अंगद आदि के साथ इसके पश्चात् जो कार्य करना है, बाली के अन्तिम दाह संस्कार का प्रयत्न करो ॥ १३ ॥ बाली के संस्कार के लिये दिव्य चन्दन तथा अन्य सूखे काष्ठ को लाने की आज्ञा दीजिये ॥ १४ ॥ दुःखी अंगद को इस समय तुम आश्वासन दो। इस समय तुम अस्थिर बुद्धि का परिचय मत दो। क्योंकि इस समय यह नगर तथा सम्पूर्ण जनपद तुम्हारे अधीन है ॥ १५ ॥ माला, विविध प्रकार के वस्त्र, तैल, सुगन्ध, अन्य आवश्यक वस्तुओं को जाकर अंगद ले आये ॥ १६ ॥ हे तार (सुग्रीव सचिव) ! तुम शीघ्र ही पालकी को ले कर आजाओ। इस समय शीघ्रता की परम आवश्यकता है। ऐसे कार्यों में शीघ्रता गुणवती मानी जाती है ॥ १७ ॥ पालकी के उठाने वाले वनवासी वीर तैयार हो जायें। बाली की अर्थी उठाने वाले वन-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं सुमित्रानन्दवर्धनः । तस्थौ भ्रातृसमीपस्थो लक्ष्मणः परवीरहा ॥१९॥
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा तारः संभ्रान्तमानसः । प्रविवेश गुहां शीघ्रं शिबिकासक्तमानसः ॥२०॥
आदाय शिबिकां तारः स तु पर्यापतत्पुनः । वानरैरुह्यमानां तां शूरैरुद्वहनोचितैः ॥२१॥
दिव्यां भद्रासनयुतां शिबिकां स्यन्दनोपमाम् । पक्षिकर्मभिराचित्रां द्रुमकर्मविभूषिताम् ॥२२॥
आचितां चित्रपत्तीभिः सुनिविष्टां समन्ततः । विमानमिव सिद्धानां जालवातायनान्विताम् ॥२३॥
सुनियुक्तां विशालां च सुकृतां विश्वकर्मणा । दारुपर्वतकोपेतां चारुकर्मपरिष्कृताम् ॥२४॥
वराभरणहारैश्च चित्रमाल्योपशोभिताम् । गुहागहनसंछन्नां रक्तचन्दनरूषिताम् ॥२५॥
पुष्पौघैः समभिच्छन्नां पद्ममालाभिरेव च । तरुणादित्यवर्णाभिर्भ्राजमानाभिरावृताम् ॥२६॥
ईदृशीं शिबिकां दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । क्षिप्रं विनीयतां वाली प्रेतकार्यं विधीयताम् ॥२७॥
ततो वालिनमुद्यम्य सुग्रीवः शिबिकां तदा । आरोपयत विक्रोशन्नङ्गदेन सहैव तु ॥२८॥
आरोप्य शिबिकां चैव वालिनं गतजीवितम् । अलंकारैश्च विविधैर्माल्यैर्वस्त्रैश्च भूषितम् ॥२९॥
आज्ञापयत्तदा राजा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः । और्ध्वदैहिकमार्यस्य क्रियतामनुरूपतः ॥३०॥
विश्राणयन्तो रत्नानि विविधानि बहून्यपि । अग्रतः प्लवगा यान्तु शिबिकासमनन्तरम् ॥३१॥
राज्ञामृद्धिविशेषा हि दृश्यन्ते भुवि यादृशाः । तादृशैरिह कुर्वन्तु वानरा भर्तृसत्क्रियाम् ॥३२॥

वासी बलवान् होने चाहियें ॥१८॥ शत्रुघाती सुमित्रानन्दन लक्ष्मण राजा सुग्रीव से ये बातें कह कर अपने भाई रामचन्द्र के समीप बैठ गये ॥ १९ ॥ लक्ष्मण की इन बातों को सुन कर शीघ्रगामी तार शिविका लाने की इच्छा से किष्किन्धा में प्रविष्ट हुआ ॥ २० ॥ पालकी उठाने वाले वीर वनवासियों के साथ पालकी ले कर शीघ्र ही तार उपस्थित हो गया ॥ २१ ॥ उस पालकी में राजाओं के बैठने योग्य अच्छे आसन बने हुए थे, पक्षी तथा नाना प्रकार के वृक्षों के जिस में चित्र बने हुए थे, जो रथ के समान प्रतीत हो रही थी ॥२२॥ पैदल चलने वाले सैनिकों के चित्र जिस पर बने हुए थे, सिद्धों के विमान के समान जो अति रमणीय थी, जिस में जाली की बनी हुई खिड़कियाँ थी ॥ २३ ॥ जो अत्यन्त दृढ, पर्याप्त लम्बी-चौड़ी कुशल कारीगरों के द्वारा बनाई गई थी। चित्र के रूप में छोटे छोटे लकड़ियों के पर्वत जिस पर बने हुए थे, जिस में अन्य अनेक प्रकार की रमणीयता थी ॥ २४ ॥ उत्तम आभूषण, हार जिस में रखे हुए थे। नाना प्रकार की चित्र-विचित्र मालाओं से जो सुशोभित हो रही थी। लता प्रतानयुक्त बन तथा गुफाओं के चित्रों से युक्त, लालचन्दन से रंगी हुई ॥ २५ ॥ नाना प्रकार के फूलों से ढकी हुई, तरुणादित्य के समान प्रकाशमान कमल की मालाएँ जिस पर लटकायी गयी थीं ॥ २६ ॥ इस प्रकार की पालकी को देख कर मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र अपने अनुज लक्ष्मण से बोले—बाली के शव को शीघ्र यहाँ से ले जाओ तथा इनका अन्त्येष्टि संस्कार करो ॥ २७ ॥ राम के कथनानन्तर अंगद के साथ रोते हुए सुग्रीव ने बाली के शव को उठा कर पालकी पर रखा ॥ २८ ॥ प्राणरहित बाली के शव को पालकी में रखकर नाना प्रकार के अलंकार, माला, वस्त्र से अलंकृत कर दिया ॥ २९ ॥ पश्चात् वनवासियों के राजा सुग्रीव ने आज्ञा दी कि ज्येष्ठ बन्धु आर्य का अन्त्येष्टि संस्कार राजकीय नियम से किया जाय ॥ ३० ॥ नाना प्रकार के रत्नों की राशि लुटाते हुए बनवासी वीर आगे आगे चलें। उनके पीछे अर्थी की पालकी जावे ॥३१॥ जिस प्रकार समृद्धिशाली राजाओं का धूम-धाम से अन्त्येष्टि संस्कार किया जाता है, हे वनवासियो ! उसी प्रकार सम्राट् आर्य बाली का संस्कार होना चाहिये ॥ ३२ ॥ तार प्रभृति बनवासियों ने अंगद को साथ लेकर सुग्रीव के कथनानुसार शीघ्र ही बाली

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तादृशं बालिनः क्षिप्रं प्राकुर्वन्तौर्ध्वदैहिकम् । अङ्गदं परिगृह्याशु तारप्रभृतयस्तदा ॥३३॥
क्रोशन्तः प्रययुः सर्वे वानरा हतबान्धवाः । ततः प्रणिहिताः सर्वा वानर्योऽस्य वशानुगाः ॥३४॥
चुक्रुशुर्वीर वीरेति भूयः क्रोशन्ति ताः स्त्रियः । ताराप्रभृतयः सर्वा वानर्यो हतयूथपाः ॥३५॥
अनुजग्मुर्हि भर्तारं क्रोशन्त्यः करुणस्वनाः । तासां रुदितशब्देन वानरीणां वनान्तरे ॥३६॥
वनानि गिरयः सर्वे विक्रोशन्तीव सर्वतः । पुलिने गिरिनद्यास्तु विविक्ते जलसंवृते ॥३७॥
चितां चक्रुः सुबहवो वानराः शोककर्शिताः । अवरोप्य ततः स्कन्धाच्छिबिकां वहनोचिताः ॥३८॥
तस्थुरेकान्तमाश्रित्य सर्वे शोकसमन्विताः । ततस्तारा पतिं दृष्ट्वा शिबिकातलशायिनम् ॥३९॥
आरोप्याङ्के शिरस्तस्य विललाप सुदुःखिता । हा वानरमहाराज हा नाथ मम वत्सल ॥४०॥
हा महार्ह महाबाहो हा मम प्रिय पश्य माम् । जनं न पश्यसीमं त्वं कस्माच्छोकाभिपीडितम् ॥४१॥
प्रहृष्टमिव ते वक्त्रं गतासोरपि मानद । अस्तार्कसमवर्णं च लक्ष्यते जीवतो यथा ॥४२॥
एष त्वां रामरूपेण कालः कर्षति वानर । येन स्म विधवाः सर्वाः कृता एकेषुणा रणे ॥४३॥
इमास्तास्तव राजेन्द्र वानर्योऽप्लवगास्तव । पादैर्विकृष्टमध्वानमागताः किं न बुध्यसे ॥४४॥
तवेष्टा ननु नामैता भार्याश्चन्द्रनिभाननाः । इदानीं नेक्षसे कस्मात्सुग्रीवं प्लवगेश्वर ॥४५॥
एते हि सचिवा राजंस्तारप्रभृतयस्तव । पुरवासी जनश्चायं परिवार्यासतेऽनघ ॥४६॥
विसर्जयैतान् प्लवगान् यथोचितमरिंदम । ततः क्रीडामहे सर्वा वनेषु मदनोत्कटाः ॥४७॥

का अन्तिम संस्कार किया ॥ ३३ ॥ हतबन्धु सभी वनवासी वीर रोते हुए पीछे पीछे चल पड़े। उनके पीछे बाली की वशवर्त्तिनी स्त्रियां हाथ जोड़ कर चल पड़ीं ॥ ३४ ॥ हतनाथा तारा प्रभृति वनवासी स्त्रियाँ अपने प्रिय पति बाली के प्रति 'हा वीर ! हा वीर !!' इस प्रकार विलाप करने लगीं ॥ ३५ ॥ इस प्रकार करुण स्वर से रोती हुई तारा प्रभृति वे राजकुल की स्त्रियाँ अपने पति के शव के पीछे चल रही थीं। उस वन में उन वनवासी स्त्रियों के रोदन से ॥ ३६ ॥ वहाँ की वनस्थली, पर्वत आदि भी मानो रो रहे थे। जलवाली पर्वतीय नदी के एकान्त तट पर ॥ ३७ ॥ शोक से कृश अनेक वनवासी वीरों ने चिता बनाई। तथा उत्तम वनवासी वीरों ने अपने कन्धों से पालकी को नीचे उतारा ॥ ३८ ॥ पश्चात् शोकपरायण वे सभी वनवास एकान्त में जाकर बैठ गये। उतारी हुई पालकी में अपने पति के शव को देखकर तारा ॥ ३९ ॥ अपनी गोद में पति के सिर को रखकर दुःखपूर्वक विलाप करने लगी। हा वनवासियों के सम्राट् ! हा नाथ ! हा मेरे प्राणवत्सल ॥ ४० ॥ हा उत्तम भोगों के अधिकारी ! हा विशाल भुजा वाले मेरे प्राणप्रिय ! मुझे देखो। शोक पीड़ित इस अपनी अन्यतम प्राणप्रिया को क्यों नहीं देख रहे हो ॥ ४१ ॥ हे मानदाता ! दिवंगत होने पर भी आपका मुखमण्डल प्रसन्न दिखाई दे रहा है तथा अस्त होते हुए सूर्य के वर्ण के समान आप उसी प्रकार दिखाई दे रहे हैं जैसे जीवित अवस्था में दिखाई देते थे ॥ ४२ ॥ हे वनवासी वीर ! यह राम के रूप में काल ही तुमको यहां से उठा ले गया ॥ संग्राम में जिस राम के एक बाण से ही हम सभी विधवा हो गई हैं ॥ ४३ ॥ हे राजेन्द्र ! चलने में अनभ्यासी ये सम्पूर्ण आपकी स्त्रियां इतनी दूर पैदल चल कर आई हैं, क्या आप नहीं जानते ॥ ४४ ॥ हे वनवासी सम्राट् ! चन्द्रानना ये सभी स्त्रियां आपको प्रिय हैं, हे राजन् ! इस समय आप सुग्रीव को क्यों नहीं देखते ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! तार प्रभृति ये आपके मन्त्री गण तथा शोकाकुल पुरवासी लोग आपके चारों ओर खड़े हैं ॥ ४६ ॥ जैसे पहले मन्त्रिमण्डल को विसर्जित करते थे, उसी प्रकार आज भी विसर्जित कीजिये। पश्चात् हम सभी इस बन में विहार करेंगे ॥ ४७ ॥ इस प्रकार पति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं विलपतीं तारां पतिशोकपरिप्लुताम् । उत्थापयन्ति स्म तदा वानर्यः शोककर्शिताः ॥४८॥
सुग्रीवेण ततः सार्धमङ्गदः पितरं रुदन् । चितामारोपयामास शोकेनाभिहतेन्द्रियः ॥४९॥
ततऽग्निं विधिवद्दत्त्वा सोऽपसव्यं चकार ह । पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः ॥५०॥
संस्कृत्य वालिनं ते तु विधिपूर्वं प्लवङ्गमाः । आजग्मुरुदकं कर्तुं नदीं शीतजलां शिवाम् ॥५१॥
ततस्ते सहितास्तत्र ह्यङ्गदं स्थाप्य चाग्रतः । सुग्रीवतारासहिताः सिषिचुर्वानरा जलम् ॥५२॥
सुग्रीवेणैव दीनेन दीनो भूत्वा महाबलः । समानशोकः काकुत्स्थः प्रेतकार्याण्यकारयत् ॥५३॥
ततस्तु तं वालिनमप्रतिपौरुषं प्रकाशमिक्ष्वाकुवरेषुणा हतम् ।
प्रदीप्य दीप्ताग्निसमौजसं तदा सलक्ष्मणं राममुपेयिवान् हरिः ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे वालिसंस्कारो नाम पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः

सुग्रीवाभिषेकः

ततः शोकाभिसंतप्तं सुग्रीवं क्लिन्नवाससम् । शाखामृगमहामात्राः परिवार्योपतस्थिरे ॥ १ ॥
अभिगम्य महाबाहुं राममक्लिष्टकारिणम् । स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पितामहमिवर्षयः ॥ २ ॥

के समीप पतिशोक परायणा विलाप करती हुई तारा को शोकाकुल वनवासी स्त्रियों ने वहाँ से उठाया ॥४८॥ शोक से शिथिल इन्द्रियों वाले, रोते हुए अंगद ने सुग्रीव के साथ अपने पिता बाली को उठा कर चिता पर रखा ॥ ४९ ॥ पिता को निरवधि काल के लिये दीर्घ यात्रा में प्रस्थान करते हुए देखकर अंगद व्याकुल हो गये, पश्चात् विधिपूर्वक चिता में अग्नि लगायी तथा बायीं ओर से चिता की प्रदक्षिणा की ॥ ५० ॥ वे वनवासी विधिपूर्वक बाली का अन्तिम संस्कार कर के अन्त्येष्टि संस्कार के पश्चात् स्नान आदि करने के लिये शीतल जल वाली नदी के तट पर आये ॥ ५१ ॥ पश्चात् मन्त्रिमण्डल के लोग अंगद को आगे करके सुग्रीव-तारा सहित तथा उन वनवासी लोगों ने विविधपूर्वक स्नान किया ॥ ५२ ॥ सुग्रीव के समान ही दुःखी होते हुए महाबली रामचन्द्र ने बाली का सम्पूर्ण अन्त्येष्टि संस्कार कराया ॥ ५३ ॥ पश्चात् रामचन्द्र के बाणों से मारे गये विख्यात पौरुष बाली का अग्नि संस्कार करके अग्नि के समान देदीप्यमान तेजस्वी लक्ष्मण के पास बैठे हुए रामचन्द्र के पास सुग्रीव आये ॥ ५४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'बाली का संस्कार' विषयक पच्चीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥२५॥

छब्बीसवां सर्ग

सुग्रीव का अभिषेक

आर्द्र वस्त्र पहने हुए शोक संतप्त सुग्रीव को चारों ओर से घेर कर वनवासी तथा मन्त्री वर्ग साथ २ चले ॥१॥ वे सभी धर्मात्मा रामचन्द्र के समीप जाकर हाथ जोड़े हुए इस प्रकार खड़े हो गये जैसे ऋषि वर्ग ब्रह्मा को घेरकर खड़े हो जाते हैं ॥ २ ॥ स्वर्ण शैल के समान विशाल काय, सूर्य के समान देदीप्यमान मुखमण्डल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततः काञ्चनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान् मारुतात्मजः ॥ ३ ॥
भवत्प्रसादात्सुग्रीवः पितृपैतामहं महत् । वानराणां सुदंष्ट्राणां सम्पन्नबलशालिनाम् ॥ ४ ॥
महात्मनां सुदुष्प्रापं प्राप्तो राज्यमिदं प्रभो । भवता समनुज्ञातः प्रविश्य नगरं शुभम् ॥ ५ ॥
संविधास्यति कार्याणि सर्वाणि ससुहृद्गणः । स्नातोऽयं विविधैर्गन्धै रौषधैश्च यथाविधि ॥ ६ ॥
अर्चयिष्यति रत्नैश्च माल्यैश्च त्वां विशेषतः । इमां गिरिगुहां रम्यामभिगन्तुमितोऽर्हसि ॥ ७ ॥
कुरुष्व स्वामिसंबन्धं वानरान् संप्रहर्षयन् । एवमुक्तो हनुमता राघवः परवीरहा ॥ ८ ॥
प्रत्युवाच हनूमन्तं बुद्धिमान् वाक्यकोविदः । चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम् ॥ ९ ॥
न प्रवेक्ष्यामि हनुमन् पितुर्निर्देशपालकः । सुसमृद्धां गुहां रम्यां सुग्रीवो वानरर्षभः ॥१०॥
प्रविष्टो विधिवद्वीर क्षिप्रं राज्येऽभिषिच्यताम् । एवमुक्त्वा हनूमन्तं रामः सुग्रीवमब्रवीत् ॥११॥
वृत्तज्ञो वृत्तसंपन्नमुदारबलविक्रमम् । इममप्यङ्गदं वीर यौवराज्येऽभिषेचय ॥१२॥
ज्येष्ठस्य स सुतो ज्येष्ठः सदृशो विक्रमेण ते । अङ्गदोऽयमदीनात्मा यौवराज्यस्य भाजनम् ॥१३॥
पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः । प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञकाः ॥१४॥
नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम् । अस्मिन् वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सहलक्ष्मणः ॥१५॥
इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता । प्रभूतसलिला सौम्य प्रभूतकमलोत्पला ॥१६॥
कार्त्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यत । एष नः समयः सौम्य प्रविश त्वं स्वमालयम् ॥१७॥

वाले हनुमान् हाथ जोड़ कर बोले ॥ ३ ॥ हे रामचन्द्र ! पिता-पितामह के द्वारा शासित, तीक्ष्ण दांतों वाले वनवासियों का यह साम्राज्य आपकी कृपा से ॥ ४ ॥ दुष्प्राप्य यह साम्राज्य प्राप्त हुआ। आपकी आज्ञा से उस शुभ नगर में प्रवेश करके ॥ ५ ॥ मित्र मण्डल के साथ सम्पूर्ण कृत्य का सम्पादन करेंगे। अनेक प्रकार की सुगन्धित ओषधियों से युक्त जल से विधिपूर्वक स्नान करेंगे ॥ ६ ॥ पश्चात् नाना प्रकार के रत्न तथा मालाओं से आपका सत्कार करेंगे। इसलिये कृपा कर आप इस रमणीय गुफा में पधारें ॥ ७ ॥ सुग्रीव को इस देश का सम्राट् बना कर सम्पूर्ण वनवासियों को प्रसन्न कीजिये। शत्रुंजयी, नीतिविशारद, प्रगल्भ वक्ता, बुद्धिमान् रामचन्द्र हनुमान् की इन बातों को सुनकर उनसे यह बोले—हे सौम्य हनुमन् ! चौदह वर्ष तक ग्राम वा नगर में ॥ ८,९ ॥ पिता का आज्ञाकारी होता हुआ मैं प्रवेश न करूँगा। अलंकृत इस किष्किन्धा नगरी में वनवासी श्रेष्ठ सुग्रीव ॥ १० ॥ प्रवेश करें। हे वीर ! इनका विधिवत् शीघ्र ही राज्याभिषेक करो। इस प्रकार हनुमान् से कहकर रामचन्द्र सुग्रीव से बोले ॥ ११ ॥ हे राजन् ! धर्म को जानने वाले, सदाचारी, उदारवृत्ति, बली तथा पराक्रमी इस वीर अंगद को युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिये ॥ १२ ॥ यह आपके ज्येष्ठ भ्राता का पुत्र है, वीरता में अपने पिता के समान है। इसलिये यह निर्भीक अंगद युवराज पद का अधिकारी है ॥१३॥ हे सौम्य, यह वर्षा काल का चौमासा उपस्थित हो गया है, जिस चौमासे का वर्षा करने वाला यह श्रावण प्रथम मास है ॥ १४ ॥ इसलिये यह किसी प्रकार के उद्योग का समय नहीं है। अतः आप अपनी राजधानी किष्किन्धा में प्रवेश करें। हे सौम्य ! इस वर्षाकाल में तब तक लक्ष्मण के साथ मैं इस पर्वत पर निवास करूंगा ॥ १५॥ इस पर्वत पर यह वायुयुक्त विशाल तथा रमणीय गुफा है। यह अनेक प्रकार के कमलों तथा जल से परिपूर्ण है ॥ १६ ॥ कार्त्तिक मास के आरम्भ पर आप रावण के वध का प्रयत्न करें। यही हम लोगों का निश्चय है। हे सौम्य ! अब तुम अपने निवास स्थान को जाओ ॥१७॥ राजपद पर अपना अभिषेक करा कर शुभचिन्तकों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभिषिञ्चस्व राज्ये च सुहृदः संप्रहर्षय । इति रामाभ्यनुज्ञातः सुग्रीवो वानराधिपः ॥१८॥
प्रविवेश पुरीं रम्यां किष्किधां वालिपालिताम् । तं वानरसहस्राणि प्रविष्टं वानरेश्वरम् ॥१९॥
अभिवाद्य प्रविष्टानि सर्वतः पर्यवारयन् । ततः प्रकृतयः सर्वा दृष्ट्वा हरिगणेश्वरम् ॥२०॥
प्रणम्य मूर्ध्ना पतिता वसुधायां समाहिताः । सुग्रीवः प्रकृतीः सर्वाः संभाष्योत्थाप्य वीर्यवान् ॥२१॥
भ्रातुरन्तःपुरं सौम्यं प्रविवेश महाबलः । प्रविश्य त्वभिनिष्क्रान्तं सुग्रीवं वानरर्षभम् ॥२२॥
अभ्यषिञ्चन्त सुहृदः सहस्राक्षमिवामराः । तस्य पाण्डरमाजह्रुश्छत्रं हेमपरिष्कृतम् ॥२३॥
शुक्ले च वालव्यजने हेमदण्डे यशस्करे । तथा सर्वाणि रत्नानि सर्वबीजौषधानि च ॥२४॥
सक्षीराणां च वृक्षाणां प्ररोहान् कुसुमानि च । शुक्लानि चैव वस्त्राणि श्वेतं चैवानुलेपनम् ॥२५॥
सुगन्धीनि च माल्यानि स्थलजान्यम्बुजानि च । चन्दनानि च दिव्यानि गन्धांश्च विविधान् बहून् ॥२६॥
अक्षताञ्जातरूपं च प्रियङ्गुमधुसर्पिषी । दधि चर्म च वैयाघ्रं वाराही चाप्युपानहौ ॥२७॥
समालम्भनमादाय रोचनां समनःशिलाम् । आजग्मुस्तत्र मुदिता वराः कन्यास्तु षोडश ॥२८॥
ततस्ते वानरश्रेष्ठं यथाकालं यथाविधि । रत्नैर्वस्त्रैश्च भक्ष्यैश्च तोषयित्वा द्विजर्षभान् ॥२९॥
ततः कुशपरिस्तीर्णे समिद्धं जातवेदसम् । मन्त्रपूतेन हविषा हुत्वा मन्त्रविदो जनाः ॥३०॥
ततो हैमप्रतिष्ठाने वरास्तरणसंवृते । प्रासादशिखरे रम्ये चित्रमाल्योपशोभिते ॥३१॥
प्राङ्मुखं विविधैर्मन्त्रैः स्थापयित्वा वरासने । नदीनदेभ्यः संहृत्य तीर्थेभ्यश्च समन्ततः ॥३२॥

को प्रसन्न करो । रामचन्द्र की ऐसी आज्ञा पाने पर वनवासि-राजा सुग्रीव ने ॥ १८ ॥ वालिपालित रमणीय किष्किन्धापुरी में प्रवेश किया। वनवासी राजा सुग्रीव के नगर में प्रवेश करते समय हज़ारों वनवासियों ने ॥१९॥ उनको प्रणाम कर के उनको घेरे हुए नगरी में प्रवेश किया । पश्चात् वनवासियों के राजा सुग्रीव को नगर में आये हुए देख कर किष्किन्धा की सम्पूर्ण प्रजा ने ॥ २० ॥ एक साथ पृथ्वी पर लेटते हुए सिर झुका कर राजा को प्रणाम किया । पराक्रमी सुग्रीव ने झुकी हुई सम्पूर्ण प्रजा को उठा कर उनसे कुशल समाचार पूछा ॥ २१ ॥ महाबली सुग्रीव अपने भाई के रमणाय राजमहल में प्रविष्ट हुए । विशाल काय वाले वनवासियों के राजा सुग्रीव के राजमहल में प्रविष्ट होने पर ॥ २२ ॥ उनके शुभचिन्तकों ने उनका उसी प्रकार अभिषेक किया जैसे देवों ने इन्द्र का अभिषेक किया था । स्वर्णमयी कारीगरी से युक्त पीत वर्ग का छत्र उनके ऊपर लगाया गया ॥ २३ ॥ स्वर्ण दण्ड से युक्त दो श्वेत वाल व्यजन, नाना प्रकार के रत्न, सब बीज, ओषधियां ॥ २४ ॥ सम्पूर्ण क्षीरी वृक्षों के अंकुर तथा पुष्प, श्वेत वस्त्र, घिसा हुआ श्वेत चन्दन ॥ २५ ॥ सुगन्धित पुष्पों की माला, स्थल कमल, सुगन्धित चन्दन तथा नाना प्रकार के अन्य सुगन्धित द्रव्य ॥ २६ ॥ चावल, कञ्चन, चिरौंजी, मधु, घृत, दधि, बाघाम्बर, मूल्यवान् जूते ॥ २७ ॥ उबटन, गोरोचन, मैनसिल आदि द्रव्यों तथा उत्तम अविवाहित सोलह कन्याओं को लेकर प्रसन्नचित्त वे वनवासी वहां आये ॥ २८ ॥ पश्चात् वनवासिश्रेष्ठ सुग्रीव का यथाविधि अभिषेक करने के समय नाना प्रकार के भोज्य पदार्थों तथा रत्नों से उत्तम ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर ॥ २९ ॥ पश्चात् कुश से परिपूर्ण वेदि पर प्रज्वलित अग्नि में मन्त्रोच्चारण पूर्वक हविष्य के द्वारा मन्त्रविद् विद्वानों ने हवन किया ॥ ३० ॥ पश्चात् स्वर्ण अलंकार से अलंकृत अच्छे बिछोने से सजे हुए, जिसमें नाना प्रकार की मालाएं शोभित हो रही हैं, ऐसे रमणीय महल के ऊपरी भाग में ॥ ३१ ॥ तथा आसन पर पूर्वाभिमुख सुग्रीव को बैठा कर, विविध मन्त्रों के द्वारा छोटी बड़ी नदियों से लाये गए, सम्पूर्ण तीर्थों ॥ ३२ ॥ तथा समुद्रों से लाये हुए निर्मल जल को समर्पण वनवासी लोग स्वर्ण घटों में भरे हुए

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आहृत्य च समुद्रेभ्यः सर्वेभ्यो वानरर्षभाः । अपः कनककुम्भेषु निधाय विमलाः शुभाः ॥३३॥
शुभैर्वृषभशृङ्गैश्च कलशैश्चापि काञ्चनैः । शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च ॥३४॥
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः । मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनुमाञ्जाम्बवान्नलः ॥३५॥
अभ्यषिञ्चन्त सुग्रीवं प्रसन्नेन सुगन्धिना । सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥३६॥
अभिषिक्ते तु सुग्रीवे सर्वे वानरपुंगवाः । प्रचुक्रुशुर्महात्मानो हृष्टास्तत्र सहस्रशः ॥३७॥
रामस्य तु वचः कुर्वन् सुग्रीवो हरिपुंगवः । अङ्गदं संपरिष्वज्य यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥३८॥
अङ्गदे चाभिषिक्ते तु सानुक्रोशाः प्लवङ्गमाः । साधु साध्विति सुग्रीवं महात्मानोऽभ्यपूजयन् ॥३९॥
रामं चैव महात्मानं लक्ष्मणं च पुनः पुनः । प्रीताश्च तुष्टुवुः सर्वे तादृशे तत्र वर्तिनि ॥४०॥
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता । बभूव नगरी रम्या किष्किन्धा गिरिगह्वरे ॥४१॥

निवेद्य रामाय तदा महात्मने महाभिषेकं कपिवाहिनीपतिः ।
रुमां च भार्यां प्रतिलभ्य वीर्यवानवाप राज्यं त्रिदशाधिपो यथा ॥४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सुग्रीवाभिषेको नाम षड्विंशः सर्गः ॥२६॥

॥ ३३ ॥ वृषभ शृंगों तथा काञ्चन कलशों के द्वारा, महर्षियों के आदेश से शास्त्र विधि के द्वारा ॥ ३४ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान्, जाम्बवान् तथा नल आदि वनवासी वीरों ने ॥ ३५ ॥ प्रसन्नचित्त उस सुगन्धित जल से सम्राट् सुग्रीव का उसी प्रकार अभिषेक किया, जिस प्रकार सहस्राक्ष इन्द्र का देवताओं ने अभिषेक किया था ॥ ३६ ॥ महाराज सुग्रीव का अभिषेक हो जाने पर प्रसन्न लाखों श्रेष्ठ वनवासी वीरों ने उच्च शब्दों में जयघोष द्वारा अपनी प्रसन्नता प्रकट की ॥ ३७ ॥ रामचन्द्र की आज्ञानुसार वनवासियों के राजा सुग्रीव ने अंगद का आलिंगन करते हुए उनको युवराज पद पर अभिषक्ति किया ॥ ३८ ॥ इस प्रकार अंगद के अभिषिक्त हो जाने पर दयार्द्रचित्त महात्मा वनवासियों ने 'साधु साधु' (बहुत ठीक बहुत ठीक) शब्द कहते हुए महाराज सुग्रीव का सम्मान किया ॥ ३९ ॥ अंगद के आदर पूर्वक युवराज पद पर अभिषिक्त हो जाने के पश्चात् इस कृत्य के प्रेरक तथा समर्थक रामचन्द्र तथा लक्ष्मण दोनों भाईयों की बार २ प्रसन्न वनवासियों ने प्रशंसा की ॥ ४० ॥ हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से परिपूर्ण ध्वजा-पताकाओं से अलंकृत पर्वतों से घिरी हुई वह किष्किन्धा उस समय अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥ ४१ ॥ वनवासियों के सम्राट् ने, महात्मा, पुरुषोत्तम रामचन्द्र के समीप अपने अभिषेक के सम्पूर्ण कृत्य को निवेदन करके सम्पूर्ण वनवासी राज्य तथा अपनी धर्मपत्नी देवी रुमा को उसी प्रकार प्राप्त किया जिस प्रकार इन्द्र ने नष्ट विभूति तथा अपनी धर्मपत्नी को प्राप्त किया था ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'सुग्रीव का अभिषेक' विषक छब्बीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥२६॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सप्तविंशः सर्गः

माल्यवन्निवासः

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम् । आजगाम सह भ्रात्रा रामः प्रस्रवणं गिरिम् ॥ १ ॥
शार्दूलमृगसंघुष्टं सिंहैर्भीमरवैर्वृतम् । नानागुल्मलतागूढं बहुपादपसंकुलम् ॥ २ ॥
ऋक्षवानरगोपुच्छैर्मार्जारैश्च निषेवितम् । मेघराशिनिभं शैलं नित्यं शुचिजलाश्रयम् ॥ ३ ॥
तस्य शैलस्य शिखरे महतीमायतां गुहाम् । प्रत्यगृह्णत वासार्थं रामः सौमित्रिणा सह ॥ ४ ॥
कृत्वा च समयं सौम्यः सुग्रीवेण सहानघः । कालयुक्तं महद्वाक्यमुवाच रघुनन्दनः ॥ ५ ॥
विनीतं भ्रातरं भ्राता लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् । इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता ॥ ६ ॥
अस्यां वसाव सौमित्रे वर्षरात्रमरिंदम । गिरिशृङ्गमिदं रम्यमुन्नतं पार्थिवात्मज ॥ ७ ॥
श्वेताभिः कृष्णताम्राभिः शिलाभिरुपशोभितम् । नानाधातुसमाकीर्णं दरीनिर्झरशोभितम् ॥ ८ ॥
विविधैर्वृक्षषण्डैश्च चारु चित्रलतावृतम् । नानाविहगसंघुष्टं मयूररवनादितम् ॥ ९ ॥
मालतीकुन्दगुल्मैश्च सिन्धुवारकुरण्टकैः । कदम्बार्जुनसर्जैश्च पुष्पितैरुपशोभितम् ॥१०॥
इयं च नलिनी रम्या फुल्लपङ्कजमण्डिता । नातिदूरे गुहाया नौ भविष्यति नृपात्मज ॥११॥

सत्ताईसवां सर्ग

माल्यवान् पर निवास

राजा सुग्रीव का अभिषेक हो जाने पर तथा उनके राजधानी किष्किन्धा में प्रवेश कर जाने पर अपने भाई लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र प्रस्रवणाचल पर निवासार्थ लौट आये ॥ १ ॥ वह पर्वत व्याघ्र, मृग, सिंहों से परिपूर्ण था। भीषण गर्जन करने वाले सिंहों से भरा हुआ था। नाना प्रकार के गुल्म-लताओं से वेष्टित था। अधिक घने वृक्षों से सुशोभित हो रहा था ॥ २ ॥ भालू, वानर, लंगूर तथा वनबिलावों से युक्त था। मेघ के समान प्रतीत हो रहा था। प्रत्येक ऋतु में पवित्र तथा सुख देने वाला था ॥ ३ ॥ उसी पर्वत के शिखर पर एक विशाल लम्बी-चौड़ी गुफा को अपने निवास के लिये लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र ने चुन लिया ॥ ४ ॥ निष्कलंक रामचन्द्र राजा सुग्रीव के साथ अवधि का निश्चय करके शुभलक्षण वाले विनीत अपने भाई लक्ष्मण से देशकाल युक्त सारगर्भित यह वचन बोले। यह विशाल रमणीय पर्वतीय गुफा सुखावह वायु से परिपूर्ण है ॥ ५, ६ ॥ हे शत्रुनाशन लक्ष्मण ! वर्षा काल की रात्रियों में हम लोग यहीं निवास करेंगे। हे तात ! यह पर्वतीय शिखर अत्यन्त रमणीय तथा सुखप्रद है ॥ ७ ॥ श्वेत, कृष्ण तथा लाल वर्ण के पत्थरों से जो सुशोभित हो रहा है। नाना प्रकार के धातुओं से तथा पर्वतीय नदी और मैंढकों से परिपूर्ण हो रहा है ॥ ८ ॥ विविध प्रकार के वृक्ष तथा रमणीय चित्रविचित्र लताओंसे घिरा हुआ है। अनेक प्रकार के पक्षियों के कलरव से तथा उत्तम मयूरों के शब्दों से निनादित हो रहा है ॥ ९ ॥ मालती, कुन्द, गुल्म, सेहुंड़, शिरीष, कदम्ब, अर्जुन आदि पुष्पित वृक्षों से जो सुशोभित हो रहा है ॥ १० ॥ हे राजकुमार लक्ष्मण ! विकसित कमलों से मण्डित यह पुष्करिणी हम लोगों की गुफा से दूर भी नहीं है ॥ ११ ॥ उत्तर-पूर्व ईशान कोण में होने के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रागुदक्प्रवणे देशे गुहा साधु भविष्यति । पश्चाच्चैवोन्नता सौम्य निवातेयं भविष्यति ॥१२॥
गुहाद्वारे च सौमित्रे शिला समतला शुभा । श्लक्ष्णा चैवायता चैव भिन्नाञ्जनचयोपमा ॥१३॥
गिरिशृङ्गमिदं तात पश्य चोत्तरतः शुभम् । भिन्नाञ्जनचयाकारमम्भोधरमिवोत्थितम् ॥१४॥
दक्षिणस्यामपि दिशि स्थितं श्वेतमिवाम्बरम् । कैलासशिखरप्रख्यं नानाधातुविभूषितम् ॥१५॥
प्राचीनवाहिनीं चैव नदीं भृशमकर्दमाम् । गुहायाः पूर्वतः पश्य त्रिकूटे जाह्नवीमिव ॥१६॥
चम्पकैस्तिलकैश्चैव वकुलैः केतकैर्धवैः । पद्मकैः सरलैश्चैव अशोकैश्चैव शोभिताम् ॥१७॥
वानीरैस्तिनिशैश्चैव वकुलैः केतकैर्धवैः । हिन्तालैस्तिरिटैर्नीपैवत्रकैः कृतमालकैः ॥१८॥
तीरजैः शोभिता भाति नानारूपैस्ततस्ततः । वसनाभरणोपेता प्रमदेवाभ्यलंकृता ॥१९॥
शतशः पक्षिसङ्घैश्च नानानादैर्विनादिता । अन्योन्यमतिरक्तैश्च चक्रवाकैरलंकृता ॥२०॥
पुलिनैरतिरम्यैश्च हंससारससेवितैः । प्रहसन्तीव भात्येषा नारी सर्वविभूषिता ॥२१॥
क्वचिन्नीलोत्पलैश्छन्ना भाति रक्तोत्पलैः क्वचित् । क्वचिदाभाति शुक्लैश्च दिव्यैः कुमुदकुड्मलैः ॥२२॥
पारिप्लवशतैर्जुष्टा बर्हिणक्रौञ्चनादिता । रमणीया नदी सौम्या मुनिसङ्घैर्निषेविता ॥२३॥
पश्य चन्दनवृक्षाणां पङ्क्तीः सुरचिता इव । ककुभानां च दृश्यन्ते मनसेवोदिताः समम् ॥२४॥
अहो सुरमणीयोऽयं देशः शत्रुनिषूदन । दृढं रंस्याव सौमित्रे साध्वत्र निवसावहै ॥२५॥

कारण यह गुफा सब ऋतुओं में सुख देने वाली होगी। हे सौम्य ! पृष्ठ भाग उन्नत होने के कारण आंधी तूफ़ान से सुरक्षित रहेगी। ॥१२॥ हे लक्ष्मण ! गुफा के द्वार पर काले पाषाण की यह समतल विशाल चट्टान है जो एकत्रित अंजन समूह के समान प्रतीत हो रही है ॥१३॥ हे तात ! यह पर्वत की चोटी उत्तर की ओर से कितनी रमणीय प्रतीत हो रही है, इसे देखो। यह वर्षा काल के मेघ के समान समुन्नत दिखाई दे रही है ॥ १४ ॥ दक्षिण दिशा में भी यह पर्वत नाना धातुओं से परिपूर्ण श्वेत वस्त्र से वेष्टित तथा कैलास पर्वत के समान प्रतीत हो रहा है ॥ १५ ॥ इस गुफा के सामने पश्चिमवाहिनी, कीचड़ से रहित, रमणीय नदी को देखो जो त्रिकूट पर्वत पर बहने वाली गंगा के समान प्रतीत हो रही है ॥ १६ ॥ नदी के उभय तट पर चन्दन, तिलक, साल, तमाल, अतिमुक्तक, पद्मक, सरल, अशोक वृक्षों से नदी अत्यन्त शोभित हो रही है ॥ १७ ॥ वानीर, तिन्दुक, वकुल, केतकी, हिन्ताल, तिनिश, कदम्ब, बेंत—इन वृक्षों की पंक्ति माला के रूप में अलंकृत हो रही है ॥ १८ ॥ नाना प्रकार के अपने तट पर होने वाले इन वृक्षों से वस्त्र और आभूषण से अलंकृत स्त्री के समान सुशोभित हो रही है ॥ १९ ॥ हजारों पक्षियों के झुण्ड द्वारा नाना प्रकार के रव से निनादित, परस्पर अनुरक्त चक्रवाक दम्पती से अलंकृत ॥ २० ॥ अत्यन्त रमणीय पुलिनवाली, हंस तथा क्रौंच पक्षियों से परिपूर्ण यह रमणीय नदी नाना रत्न से अलंकृत हंसती हुई नारी के समान प्रतीत हो रही है ॥ २१ ॥ कहीं नील कमल, कहीं लाल कमल, कहीं श्वेत कमल तथा कमल की कलियों से अलंकृत शोभा को प्राप्त हो रही है ॥ २२ ॥ हजारों परिप्लव (बत्तख) से सेवित, मोर तथा क्रौंच पक्षियों से निनादित मुनियों के समूह से घिरी हुई, अत्यन्त सुखसेव्य तथा रमणीय है ॥ २३ ॥ कमनीय चन्दन वृक्ष की पंक्तियों, को देखो, साथ ही संकल्प निर्मित मनोहारी ककुभ (अर्जुन) वृक्ष को पंक्तियाँ भी दिखाई दे रही हैं ॥ २४ ॥ हे शत्रुंजय लक्ष्मण ! यह देश कितना रमणीय है। यहाँ हम लोगों का मन लग जायेगा। हम लोग यहाँ अच्छी तरह निवास कर सकेंगे ॥ २५ ॥ हे राजकुमार ! चित्रविचित्र वन पंक्ति से अलंकृता सुग्रीव की रम-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतश्च नातिदूरे सा किष्किन्धा चित्रकानना । सुग्रीवस्य पुरी रम्या भविष्यति नृपात्मज ॥२६॥
गीतवादित्रनिर्घोषः श्रूयते जयतां वर । नर्दतां वानराणां च मृदङ्गाडम्बरैः सह ॥२७॥
लब्ध्वा भार्यां कपिवरः प्राप्य राज्यं सुहृद्वृतः । ध्रुवं नन्दति सुग्रीवः संप्राप्य महतीं श्रियम्॥२८॥
इत्युक्त्वा न्यवसत्तत्र राघवः सहलक्ष्मणः । बहुदृश्यदरीकुञ्जे तस्मिन् प्रस्रवणे गिरौ ॥२९॥
सुसुखेऽपि बहुद्रव्ये तस्मिन् हि धरणीधरे । वसतस्तस्य रामस्य रतिरल्पापि नाभवत् ॥३०॥
हृतां हि भार्यां स्मरतः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् । उदयाभ्युदितं दृष्ट्वा शशाङ्कं च विशेषतः ॥३१॥
आविवेश न तं निद्रा निशासु शयनं गतम् । तत्समुत्थेन शोकेन बाष्पोपहतचेतसम् ॥३२॥
तं शोचमानं काकुत्स्थं नित्यं शोकपरायणम् । तुल्यदुःखोऽब्रवीद्भ्राता लक्ष्मणोऽनुनयन् वचः ॥३३ ॥
अलं वीर व्यथां गत्वा न त्वं शोचितुमर्हसि । शोचतो व्यवसीदन्ति सर्वार्था विदितं हि ते ॥३४॥
भवान् क्रियापरो लोके भवान् दैवपरायणः । आस्तिको धर्मशीलश्च व्यवसायी च राघव ॥३५॥
न ह्यव्यवसितः शत्रुं राक्षसं तं विशेषतः । समर्थस्त्वं रणे हन्तुं विक्रमैर्जिह्मकारिणम्॥३६॥
समुन्मूलय शोकं त्वं व्यवसायं स्थिरं कुरु । ततः सपरिवारं तं निर्मूलं कुरु राक्षसम् ॥३७॥
पृथिवीमपि काकुत्स्थ ससागरवनाचलाम् । परिवर्तयितुं शक्तः किं पुनस्तं हि रावणम्॥३८॥
शरत्कालं प्रतीक्षस्व प्रावृट्कालोऽयमागतः । ततः सराष्ट्रं सगणं रावणं त्वं वधिष्यसि ॥३९॥

णीया नगरी किष्किन्धा यहाँ से दूर नहीं है ॥ २६ ॥ हे विजेताओं में श्रेष्ठ ! मृदङ्ग ध्वनि के साथ नाद करने वाले वनवासियों के गाने बजाने के शब्द सुनाई दे रहे हैं ॥ २७ ॥ अपनी धर्मपत्नी, विशाल राज्य तथा विपुल राज्यलक्ष्मी को प्राप्त कर शुभचिन्तक मित्रों के सहित राजा सुग्रीव अवश्य ही आनन्द का अनुभव कर रहे होंगे ॥ २८ ॥ इतनी बातें कहकर अनेक गुफाओं लता-वृक्ष से वेष्टित उस प्रस्रवण पर्वत पर लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥ २९ ॥ नाना प्रकार के आवश्यक सुखावह द्रव्यों से परिपूर्ण उस पर्वत पर निवास करते हुए रामचन्द्र को थोड़ी भी शान्ति नहीं प्राप्त हुई ॥ ३० ॥ प्राणों से प्रिय, हरी हुई सीता का स्मरण करते हुए तथा विशेष कर गगन मण्डल में उदित चन्द्रमा को देखकर ॥ ३१ ॥ रात्रि में शय्या पर सोते हुए रामचन्द्र को निद्रा नहीं आई क्योंकि सीता वियोग जनित शोक के कारण तथा निरन्तर अश्रुपात के कारण उनका अन्तःकरण अशांत हो रहा था ॥ ३२ ॥ शोकाक्रान्त इस प्रकार शोक करते हुए रामचन्द्र से उनके समान ही दुःखी होने वाले उनके भाई लक्ष्मण नम्रतापूर्वक बोले ॥ ३३ ॥ हे वीर ! आप इतने दुःखी न हों, आपको इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये । अधिक शोक करने से धर्म-अर्थ-काम सभी नष्ट हो जाते हैं, इसे आप अच्छी तरह जानते हैं ॥ ३४ ॥ हे रघुकुलशिरोमणि आर्य ! आप कर्म पर विश्वास करने वाले हैं, उद्योग तथा दैव (भाग्य) पर समान भाव से विश्वास करने वाले हैं, ईश्वर भक्त, आस्तिक, धर्मात्मा हैं तथा निरन्तर अध्यवसाय का सहारा लेने वाले हैं ॥ ३५ ॥ विना उद्योग के उन राक्षस शत्रुओं को आप संग्राम में नहीं मार सकते विशेषकर जब कि पराक्रम के समय वे राक्षस कुटिलता का परिचय देते हैं ॥ ३६ ॥ इस शोक को मूलतः नष्ट कीजिये और उद्योग करने का दृढ निश्चय कीजिये । तभी सपरिवार उस दुर्दान्त राक्षस का नाश कर सकेंगे ॥ ३७ ॥ समुद्र, पर्वत, वन के सहित इस पृथ्वी की गति को भी, हे रामचन्द्र ! आप परिवर्त्तित कर सकते हैं, इस अभागे रावण का तो कहना ही क्या ॥ ३८ ॥ हे आर्य ! इस समय यह वर्षा का समय है। शरद् ऋतु के आगमन की प्रतीक्षा कीजिये । पश्चात् सम्पूर्ण राष्ट्र, तथा अनुयायियों के साथ उस रावण का वध करेंगे ॥ ३९ ॥ मैं तो केवल सोये हुए पराक्रम को ही उद्बुद्ध कर रहा हूँ, जैसे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अहं तु खलु ते वीर्यं प्रसुप्तं प्रतिबोधये । दीप्तैराहुतिभिः काले भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥४०॥
लक्ष्मणस्य तु तद्वाक्यं प्रतिपूज्य हितं शुभम् । राघवः सुहृदं स्निग्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥४१॥
वाच्यं यदनुरक्तेन स्निग्धेन च हितेन च । सत्यविक्रमयुक्तेन तदुक्तं लक्ष्मण त्वया ॥४२॥
एष शोकः परित्यक्तः सर्वकार्यावसादकः । विक्रमेष्वप्रतिहतं तेजः प्रोत्साहयाम्यहम् ॥४३॥
शरत्कालं प्रतीक्षिष्ये स्थितोऽस्मि वचने तव । सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमनुपालयन् ॥४४॥
उपकारेण वीरस्तु प्रतिकारेण युज्यते । अकृतज्ञोऽप्रतिकृतो हन्ति सत्त्ववतां मनः ॥४५॥

अथैवमुक्तः प्रणिधाय लक्ष्मणः कृताञ्जलिस्तत्प्रतिपूज्य भाषितम् ।
उवाच रामं स्वभिरामदर्शनं प्रदर्शयन् दर्शनमात्मनः शुभम् ॥ ४६ ॥
यथोक्तमेतत्तव सर्वमीप्सितं नरेन्द्र कर्ता न चिराद्धरीश्वरः ।
शरत्प्रतीक्षः क्षमतामिमं भवाञ्जलप्रपातं रिपुनिग्रहे धृतः ॥ ४७ ॥
नियम्य कोपं प्रतिपाल्यतां शरत्क्षमस्व मासांश्चतुरो मया सह ।
वसाचलेऽस्मिन् मृगराजसेविते संवर्धयञ्शत्रुवधे समुद्यमम् ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे माल्यवन्निवासो नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

भस्म से आच्छादित अग्नि को घृताक्त आहुति से प्रदीप्त किया जाता है ॥ ४० ॥ लक्ष्मण के हितकारी मंगलमय इन विचारों का आदर करते हुए रामचन्द्र अपने परमस्नेही अनुरक्त लक्ष्मण से यह वचन बोले ॥४१॥ हे लक्ष्मण ! भक्त, हितैषी, स्नेह करने वाले एक सत्यपराक्रमी व्यक्ति के द्वारा जो बातें कही जानी चाहियें, आपने वही बातें कही हैं ॥ ४२ ॥ लो, मैंने सम्पूर्ण कार्य को नष्ट करने वाले इस शोक को छोड़ दिया और अब पराक्रम तथा उद्योग को प्रोत्साहित करने वाले अपने तेज को स्मरण कर लिया है ॥ ४३ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हारी बातों को मान कर मैं शरत्काल की प्रतीक्षा करूँगा । मैं नदियों की गमनीयता तथा सुग्रीव की प्रसन्नता का अभिकाक्षी हूँ ॥ ४४ ॥ जो उपकार करता है उसके ऋण को चुकाने के लिये प्रत्युपकार करना ही चाहिये । इस नियम के विरुद्ध जो प्रत्युपकार नहीं करता, वह शास्त्रों तथा महात्माओं की आज्ञा की अवहेलना करता है ॥ ४५ ॥ युक्तियुक्त रामचन्द्र के कथन को सुनकर अपने आत्मा की शुभ कामना प्रकट करते हुए लक्ष्मण सौन्दर्य मूर्त्ति रामचन्द्र से बोले ॥४६॥ हे नरेन्द्र ! जैसा आपने कहा है आपके मनोरथ को वनवासी राजा सुग्रीव शीघ्र ही पूर्ण करेंगे । शत्रु का निग्रह करने के लिये यह वर्षा काल शरद् ऋतु की प्रतीक्षा में बिताना ही पड़ेगा ॥ ४७ ॥ क्रोध को वश में करके आप शरद् काल की प्रतीक्षा करें । यह वर्षा का चतुर्मास मेरे साथ यहाँ बितायें । यद्यपि आप शत्रु का वध करने में समर्थ हैं, तथापि नियम तथा अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए इस सिंह शार्दूल सेवित पर्वत पर निवास कीजिये ॥ ४८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'माल्यवान् पर निवास' विषयक सत्ताईसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥२७॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टाविंशः सर्गः

प्रावृड्वर्णनम्

स तथा वालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च । वसन् माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १ ॥
अयं स कालः संप्राप्तः समयोऽद्य जलागमः । संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसंनिभैः ॥ २ ॥
नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः । पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥ ३ ॥
शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपङ्क्तिभिः । कुटजार्जुनमालाभिरलंकर्तुं दिवाकरम् ॥ ४ ॥
सन्ध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरन्तेष्वधिकपाण्डरैः । स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवाम्बरम् ॥ ५ ॥
मन्दमारुतनिःश्वासं सन्ध्याचन्दनरञ्जितम् । आपाण्डुजलदं भाति कामातुरमिवाम्बरम् ॥ ६ ॥
एषा घर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता । सीतेव शोकसंतप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ॥ ७ ॥
मेघोदरविनिर्मुक्ताः कल्हारसुखशीतलाः । शक्यमञ्जलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिनः ॥ ८ ॥
एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरधिवासितः । सुग्रीव इव शान्तारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥ ९ ॥
मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः । मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ॥१०॥
कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम् । अन्तः स्तनितनिर्घोषं सवेदनमिवाम्बरम् ॥११॥

अट्ठाईसवां सर्ग

वर्षा-वर्णन

बाली का वध करके तथा सुग्रीव को राज्य देकर रामचन्द्र माल्यवान् पर्वत पर निवास करते हुए लक्ष्मण से इस प्रकार बोले ॥ १ ॥ वर्षा काल का यह समय उपस्थित हो गया है। पर्वताकार मेघों से सम्पूर्ण नभ आच्छादित हो रहा है, इसको देखो ॥ २॥ सूर्य की किरणों के द्वारा समुद्र का जल पीता हुआ नभ नौ मास का गर्भ धारण करता है। पश्चात् प्रावृट् (वर्षा) काल में रसायन रूपी जल को वही नभ बरसाता है ॥३॥ मेघ पंक्तियों की बनी सीढ़ी द्वारा आकाश पर चढ़ कर कुटज-अर्जुन आदि पुष्पों की माला से सूर्य को अलंकृत किया जा सकता है ॥४॥ आकाश सन्ध्या काल के लाल २ तथा मध्य में श्वेत भाग वाले मेघों से व्रण पर पट्टी बांधे हुए के समान प्रतीत हो रहा है ॥ ५ ॥ मन्द २ पवन जिसका निःश्वास है, सन्ध्या रूपी अरुणिमा का जिस ने चन्दन धारण किया है तथा किञ्चित् पीत वर्ण वाले मेघों से युक्त आकाश कामासक्त पुरुष के समान प्रतीत हो रहा है ॥ ६ ॥ धूप से अत्यन्त सन्तप्त तथा वर्षा के नूतन जल से सिंचित यह पृथ्वी शोक संतप्त सीता के समान बाष्प त्याग कर रही है ॥७॥ मेघ के उदर से निकली हुई, कपूर के खण्ड के समान शीतल, केतकी की गन्ध से परिपूर्ण वायु अंजलि द्वारा पान करने योग्य है ॥ ८ ॥ यह पर्वत विकसित अर्जुन पुष्प तथा केतकी पुष्प से सुगन्धित हो रहा है। अजात शत्रु सुग्रीव के समान जलधारा से अवसिक्त हो रहा है ॥ ९ ॥ काले २ मेघ ही जिसके मृगाजिन वस्त्र हैं, गिरती हुई जल धारा ही जहाँ पर यज्ञोपवीत है, तथा वायुपूर्ण गुफाओं से युक्त यह पर्वत अध्ययन करने वाले ब्रह्मचारी के समान प्रतीत हो रहे हैं ॥ १० ॥ चमकती हुई स्वर्णमयी विद्युत्कशा (चाबुक) से ताड़ित तथा मेघ के शब्दों से प्रतिध्वनित यह आकाश अन्तःपीड़ा से पीड़ित प्रतीत हो रहा है ॥ ११ ॥ नील मेघ माला में चमकती हुई यह विद्युत् रावण के अंक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरन्ती प्रतिभाति मे । स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी ॥१२॥
इमास्ता मन्मथवतां हिताः प्रतिहता दिशः । अनुलिप्ता इव घनैर्नष्टग्रहनिशाकराः ॥१३॥
क्वचिद्बाष्पाभिसंरुद्धान् वर्षागमसमुत्सुकान् । कुटजान् पश्य सौमित्रे पुष्पितान् गिरिसानुषु ॥१४॥
मम शोकाभिभूतस्य कामसंदीपनान् स्थितान् ॥

रजः प्रशान्तं सहिमोऽद्य वायुर्निदाघदोषप्रसराः प्रशान्ताः ।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान् ॥१५॥

संप्रस्थिता मानसवासलुब्धाः प्रियान्विताः संप्रति चक्रवाकाः ।
अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषु यानानि मार्गेषु न संपतन्ति ॥१६॥

क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति ।
क्वचित्क्वचित्पर्वतसंनिरुद्धं रूपं यथा शान्तमहार्णवस्य ॥१७॥

व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्नवं जलं पर्वतधातुताम्रम् ।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति ॥१८॥

रसाकुलं षट्पदसंनिकाशं प्रभुज्यते जम्बुफलं प्रकामम् ।
अनेकवर्णं पवनावधूतं भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम् ॥१९॥

विद्युत्पताकाः सबलाकमालाः शैलेन्द्रकूटाकृतिसंनिकाशाः ।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादा मत्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्थाः ॥२०॥

में बैठी हुई तपस्विनी जानकी के समान प्रतीत हो रही है ॥ १२ ॥ मेघों से आच्छादित, चन्द्र तथा नक्षत्र मण्डल जिसमें लुप्तप्राय हो रहे हैं तथा पूर्व आदि दिशाओं की जानकारी भी जहाँ कठिन हो रही है, इस प्रकार ये दिशाएँ कामियों के लिये हितकर प्रतीत हो रही हैं ॥ १३ ॥ हे लक्ष्मण वर्षा के आगमन के लिये उत्सुक, बाष्पयुक्त पर्वत की चोटियों पर विकसित इन कुटज पुष्पों को देखो जो इस समय शोकातुर मेरे काम को बढ़ा रहे हैं ॥ १४ ॥ धूलि का उड़ना शान्त हो गया, शीतल वायु चलने लगी है, ग्रीष्म काल की उष्णता शान्त हो गई, राजाओं की विजय यात्रा रुक गई है, प्रवासी मनुष्य अपने अपने जनपद को लौट रहे हैं ॥१५॥ मानसरोवर में रहने वाले मानसर निवास के लोभी राजहंस अपनी प्रियाओं के साथ प्रस्थान कर चुके हैं । निरन्तर वर्षा के कारण जल के द्वारा क्षत विक्षत मार्ग रथों के गमनागमन के लिये अवरुद्ध हो गया है ॥ १६ ॥ बादलों के द्वारा आकाश घिर जाने के कारण भूमि पर कहीं प्रकाश तथा कहीं अप्रकाश प्रतीत हो रहा है, जैसे प्रशान्त महासागर जहाँ तहाँ पर्वतों से अवरुद्ध दिखाई देता है ॥ १७॥ सर्ज, कदम्ब पुष्पों से युक्त पर्वत की रक्तमयी धातुओं से लाल जल को तट पर रहने वाले मयूर-शब्द से प्रतिध्वनित पर्वतीय नदियाँ शीघ्र बहा ले जाती हैं ॥ १८ ॥ रस से भरे हुए काले भ्रमर के समान पके हुए जामुन के फल यथेष्ट खाये जाते हैं । अनेक वर्ण वाले पके हुए आम के फल पृथ्वी पर गिरते हैं ॥ १९ ॥ विद्युत् ही जिसकी ध्वजा है, उड़ने वाले बगुलों की पंक्ति हो जिसकी माला है, ऐसे पर्वत के समान विशाल ये मेघ इस प्रकार घोर गर्जन कर रहे हैं जैसे मतवाले हाथी संग्राम में गर्जते हों ॥ २० ॥ वर्षा के पानी से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानि प्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हिणानि ।
वनानि निर्वृष्टबलाहकानि पश्यापराह्णेष्वधिकं विभान्ति ॥२१॥

समुद्वहन्तः सलिलातिभारं बलाकिनो वारिधरा नदन्तः ।
महत्सु शृङ्गेषु महीधराणां विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति ॥२२॥

मेघाभिकामा परिसंपतन्ति संमोदिता भाति बलाकपङ्क्तिः ।
वातावधूता वरपौण्डरीकी लम्बेव माला रचिताम्बरस्य ॥२३॥

बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन ।
गात्रानुवृत्तेन शुकप्रभेण नारीव लाक्षोक्षितकम्बलेन ॥२४॥

निद्रा शनैः केशवमभ्युपैति द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति ।
हृष्टा बलाका घनमभ्युपैति कान्ता सकामा प्रियमभ्युपैति ॥२५॥

जाता वनान्ताः शिखिसंप्रनृत्ता जाताः कदम्बाः सकदम्बशाखाः ।
जाता वृषा गोषु समानकामा जाता मही सस्यवनाभिरामा ॥२६॥

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति ।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गाः ॥२७॥

प्रहर्षिताः केतकपुष्पगन्धमाघ्राय हृष्टा वननिर्झरेषु ।
प्रपातशब्दाकुलिता गजेन्द्राः सार्धं मयूरैः समदा नदन्ति ॥२८॥

जहाँ की घास बढ़ी हुई तथा धुली हुई है, चारों ओर जहाँ मयूरों का नृत्य-उत्सव हो रहा है तथा जहाँ मेघों ने अच्छी वर्षा कर दी है, मध्याह्नोत्तर उनकी शोभा कितनी रमणीय हो रही है, उसको देखो ॥ २१ ॥ अत्यन्त जल के भार को ढोने वाले, बक पंक्तियों से अलंकृत, गर्जतो हुई मेघ माला पर्वतों की विशाल चोटियों पर विश्राम करके आगे जाती है ॥ २२ ॥ मेघों से अनुराग रखने वाली, प्रसन्न हुई, आकाश में उड़ने वाली बक पंक्ति शोभायमान हो रही है । वायु वेग से इतस्ततः उड़ाई हुई वह बकपंक्ति उत्तम श्वेत कमल की कमनीय माला के सदृश प्रतीत हो रही है ॥ २३ ॥ वर्षा काल में होने वाले इन्द्रगोप कीट से बीच २ में चित्रित नूतन घास से परिपूर्ण पृथ्वी वस्त्र ओढ़े हुए उस नायिका के समान प्रतीत हो रही है, जिसके शुक के समान हरित कम्बल पर लाक्षा रंग से चित्र अंकित किये गये हों ॥ २४ ॥ निद्रा शनैः २ जलशायी जलजन्तुओं के पास जाती है, नदी द्रुत वेग से समुद्र को प्राप्त होती है, प्रसन्न बकपंक्ति मेघ को प्राप्त होती है तथा अभिसरण करने वाली कान्ता अपने प्रिय के पास जाती है ॥ २५ ॥ वन की भूमि मयूरों के नृत्य से परिपूर्ण हो गई है । कदम्ब वृक्ष पुष्प गुच्छों से परिपूर्ण हो गये हैं । बैल गौओं के समान मदन पीडित हो गये हैं । सारी पृथ्वी घास से अत्यन्त रमणीय हो गयी है ॥ २६ ॥ नदियाँ जल से परिपूर्ण वह रही हैं । बादल वर्षा कर रहे हैं । मदोन्मत्त गजराज गर्ज रहे हैं । वनभाग अत्यन्त शोभा को प्राप्त कर रहे हैं । स्त्री से वियुक्त लोग स्त्री का ध्यान करते हैं । मोर नाच रहे हैं । बन्दर प्रसन्न हो कर कूद रहे हैं ॥ २७ ॥ जल प्रपात के शब्द से चञ्चल केतकी पुष्प की गन्ध को सूँघ कर अत्यन्त प्रहर्षित मदमत्त गजेन्द्र झरनों के समीप मोरों के साथ गर्ज रहे हैं ॥ २८ ॥ कदम्ब की शाखा पर लटकते हुए भ्रमरगण धारा के प्रपात से आहत होने पर तत्काल पिये हुए पुष्प

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धारानिपातैरभिहन्यमानाः कदम्बशाखासु विलम्बमानाः ।
क्षणार्जितं पुष्परसावगाढं शनैर्मदं षट्चरणास्त्यजन्ति ॥२९॥

अङ्गारचूर्णोत्करसंनिकाशैः फलैः सुपर्याप्तरसैः समृद्धैः ।
जम्बूद्रुमाणां प्रविभान्ति शाखा निलीयमाना इव षट्पदौघैः ॥३०॥

तडित्पताकाभिरलंकृतानामुदीर्णगम्भीरमहास्वराणाम् ।
विभान्ति रूपाणि वलाहकानां रणोद्यतानामिव वारणानाम् ॥३१॥

मार्गानुगः शैलवनानुसारी संप्रस्थितो मेघरवं निशम्य ।
युद्धाभिकामः प्रतिनागशङ्की मत्तो गजेन्द्रः प्रतिसंनिवृत्तः ॥३२॥

क्वचित्प्रगीता इव षट्पदौघैः क्वचित्प्रनृत्ता इव नीलकण्ठैः ।
क्वचित्प्रमत्ता इव वारणेन्द्रैर्विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः ॥३३॥

कदम्बसर्जार्जुनकन्दलाढ्या वनान्तभूमिर्नववारिपूर्णा ।
मयूरमत्ताभिरुतप्रनृत्तैरापानभूमिप्रतिमा विभाति ॥ ३४ ।

मुक्तासकाशं सलिलं पतद्वै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम् ।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहङ्गाः सुरेन्द्रदत्तं तृषिताः पिबन्ति ॥ ३५ ॥

षट्पादतन्त्रीमधुराभिधानं प्लवङ्गमोदीरितकण्ठतालम् ।
आविष्कृतं मेघमृदङ्गनादैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥ ३६ ॥

क्वचित्प्रनृत्तैः क्वचिदुन्नदद्भि क्वचिच्च वृक्षाग्रनिषण्णकायैः ।
व्यालम्बबर्हाभरणैर्मयूरैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥ ३७ ॥

रस के मद को त्याग रहे हैं ॥ २९ ॥ काले कोयले के चूर्ण के समान, पर्याप्त रस वाले, जामुन फलसे युक्तजम्बू-वृक्ष की शाखा इस प्रकार प्रतीत हो रही है मानो भ्रमर पंक्ति शाखा से लिपट कर रस पान कर रही है ॥ ३० ॥ विद्युत् रूपी पताका से अलंकृत, दूर २ तक फैलने वाले, गम्भीर शब्द वाले, मेघों का रूप गर्जते हुए, संग्राम प्रेमी हाथियों के समान प्रतीत हो रहा है ॥ ३१ ॥ पर्वतीय वन में घूमने वाला तथा युद्ध की इच्छा से आगे जाता हुआ मत्त गजराज मेघ के गर्जन को सुन कर अन्य हाथियों के गर्जन को समझ कर लौट पड़ा ॥ ३२ ॥ कहीं भ्रमर पंक्ति का गान हो रहा है, कहीं मोरों का नृत्य हो रहा है, कहीं मतवाले हाथियों का गर्जन हो रहा है। इस प्रकार वन की भूमि अनेक प्रकार शोभायमान हो रही है ॥ ३३ ॥ कदम्ब, सर्ज, अर्जुन, स्थल पद्म, मधुर जल की धारा तथा मदमत्त मयूर के नृत्य से यह वनभूमि मद्यपान भूमि के समान प्रतीत हो रही है ॥ ३४ ॥ मोती के समान, पत्तों पर गिरे हुए, वर्षा के निर्मल जल को पंख फैलाये, प्रसन्न, पिपासु पक्षिगण पी रहे हैं ॥ ३५ ॥ वीणा के समान भ्रमरों का शब्द, गान करने वाले कण्ठताल के समान तथा गर्जन करनेवाले मृदंग के समान मेघों का शब्द—इन सब शब्दों से मानो उस वन में संगीत हो रहा है ॥ ३६ ॥ कहीं मयूरों के नृत्य से, कहीं उनकी ध्वनि से, लम्बे २ अपने पंखों के आभूषण से वृक्ष की डालियों पर बैठे हुए मयूरों के द्वारा मानो एक प्रकार का संगीत आरम्भ हो गया है ॥ ३७ ॥ निद्रावश

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वनैर्घनानां प्लवगाः प्रबुद्धा विहाय निद्रां चिरसंनिरुद्धाम् ।
अनेकरूपाकृतिवर्णनादा नवाम्बुधाराभिहता नदन्ति ॥ ३८ ॥
नद्यः समुद्वाहितचक्रवाकास्तटानि शीर्णान्यपवाहयित्वा ।
दृप्ता नवप्राभृतपूर्णभोगा द्रुतं स्वभर्तारमुपोपयान्ति ॥ ३९ ॥
नीलेषु नीलाः प्रविभान्ति सक्ता मेघेषु मेघा नववारिपूर्णाः ।
दवाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धा शैलेषुः शैला इव बद्धमूलाः ॥ ४० ॥
प्रहृष्टसंनादितबर्हिणानि सशक्रगोपाकुलशाद्वलानि ।
चरन्ति नीपार्जुनवासितानि गजाः सुरम्याणि वनान्तराणि ॥ ४१ ॥
नवाम्बुधाराहतकेसराणि द्रुतं परित्यज्य सरोरुहाणि ।
कदम्बपुष्पाणि सकेसराणि नवानि हृष्टा भ्रमराः पतन्ति ॥ ४२ ॥
मत्ता गजेन्द्रा मुदिता गवेन्द्रा वनेषु विक्रान्ततरा मृगेन्द्राः ।
रम्या नगेन्द्रा निभृता नरेन्द्राः प्रीक्रिडतो वारिधरैः सुरेन्द्रः ॥ ४३ ॥
मेघाः समुद्धूतसमुद्रनादा महाजलौघैर्गगनावलम्बाः ।
नदीस्तटाकानि सरांसि वापीर्महीं च कृत्स्नामपवाहयन्ति ॥ ४४ ॥
वर्षप्रवेगा विपुलाः पतन्ति प्रवान्ति वाताः समुदीर्णघोषाः ।
प्रनष्टकूलाः प्रवहन्ति शीघ्रं नद्यो जलैर्विप्रतिपन्नमार्गाः ॥ ४५ ॥

चिरकाल तक एक स्थान पर बैठे हुए नाना वर्ण वाले वानर समूह बादलों के गर्जन को सुन कर निद्रा से उठ गये तथा जल की धारा से आहत वे जोर २ से बोल रहे हैं ॥ ३८ ॥ चक्रवाक दम्पती जिस के तट को अलंकृत कर रहे हैं, जीर्ण शीर्ण अपने तटों को जिसने बहा दिया है, नूतन पुष्पादिकों के द्वारा जिनका भोग पूर्ण हो गया है, ऐसी तरंगों से तरंगित नदियाँ शीघ्रतापूर्वक अपने पति समुद्र के पास जा रही हैं ॥ ३९ ॥ काले २ मेघों में नये जल से परिपूर्ण काले मेघ मिलकर अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। दावाग्नि से जले हुए पर्वतों में दावाग्नि से जले हुए बद्धमूल पर्वत शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ४० ॥ मद मत्त मयूर जिस में बोल रहे हैं, इन्द्रगोप (लालवर्ण वाले कीटों) से अलंकृत जहाँ हरी हरी घास हैं, नीप, अर्जुन वृक्षों की गन्ध से सुवासित जो रमणीय भूमि है, ऐसे वनों में मदोन्मत्त गजराज विचर रहे हैं ॥ ४१ ॥ नूतन जल धारा से जिन के किञ्जल्क केसर आहत हो गये हैं, ऐसे विकसित कमलों को त्याग कर प्रसन्न भ्रमर केसर युक्त कदम्ब पुष्पों पर गिर रहे हैं ॥ ४२ ॥ इस प्रावृट् काल के समय गजेन्द्र मदमत्त हैं, बैल अतिप्रसन्न हैं, वन में सिंह अपने पराक्रम में उद्यत हैं, हरियाली से पर्वत अत्यन्त रमणीय हो गये हैं, अत्यन्त वर्षा के कारण राजा लोग विजय यात्रा से निवृत्त हैं, इन्द्र मेघों के द्वारा क्रीडा कर रहे हैं ॥ ४३ ॥ अगाध राशि जल से परिपूर्ण, नभ में लटकने वाले मेघों ने अपने घोर गर्जन से समुद्र के गर्जन को तिरस्कृत कर दिया है तथा अपनी वारिधार से नदी, ताल, सरोवर, बावड़ी तथा सम्पूर्ण पृथ्वी को भर दिया है ॥ ४४ ॥ निरन्तर अत्यन्त वेग से वर्षा हो रही है, अत्यन्त वेग से वायु चल रही है, अपने तटों को तोड़ कर अमर्यादित रूप में नदियां शीघ्रता पूर्वक बह रही हैं ॥ ४५ ॥ मनुष्यों के द्वारा अभिषिक्त नरेन्द्रों के समान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नरैर्नरेन्द्रा इव पर्वतेन्द्राः सुरेन्द्रदत्तैः पवनोपनीतैः ।
घनाम्बुकुम्भैरभिषिच्यमाना रूपं श्रियं स्वामिव दर्शयन्ति ॥ ४६ ॥
घनोपगूढं गगनं सतारं न भास्करो दर्शनमभ्युपैति ।
नवैर्जलौघैर्धरणी वितृप्ता तमोविलिप्ता न दिशः प्रकाशाः ॥ ४७ ॥
महान्ति कूटानि महीधराणां धाराभिघौतान्यधिकं विभान्ति ।
महाप्रमाणैर्विपुलैः प्रपातैर्मुक्ताकलापैरिव लम्बमानैः ॥ ४८ ॥
शैलोपलप्रस्खलमानवेगाः शैलोत्तमानां विपुलाः प्रपाताः ।
गुहासु संनादितबर्हिणासु हारा विशीर्यन्त इवाभिभान्ति ॥ ४९ ॥
शीघ्रप्रवेगा विपुलाः प्रपाता निर्धौतशृङ्गोपतला गिरीणाम् ।
मुक्ताकलापप्रतिमाः पतन्तो महागुहोत्सङ्गतलैर्ध्रियन्ते ॥ ५० ॥
सुरतामर्दविच्छिन्नाः स्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः । पतन्तीवाकुला दिक्षु तोयधाराः समन्ततः ॥५१॥
निलीयमानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्च पङ्कजैः । विकसन्त्या च मालत्या गतोऽस्तं ज्ञायते रविः ५२॥
वृत्ता यात्रा नरेन्द्राणां सेना प्रतिनिवर्तते । वैराणि चैव मार्गाश्च सलिलेन समीकृताः ॥५३॥
मासि प्रोष्ठपदे ब्रह्म ब्राह्मणानामधीयताम् । अयमध्यायसमयः सामगानामुपस्थितः ॥५४॥
निवृत्तकर्मायतनो नूनं संचितसंचयः । आषाढीमभ्युपगतो भरतः कोसलाधिपः ॥५५॥
नूनमापूर्यमाणायाः सरय्वा वर्धते रयः । मां समीक्ष्य समायान्तमयोध्याया इव स्वनः ५६॥

वायु के द्वारा लाये हुए, इन्द्र प्रदत्त नूतन मेघरूपी घड़ों से अभिषिक्त पर्वत समूह अपनी शोभा को प्रदर्शित कर रहा है ॥ ४६ ॥ घन मेघों से आकाश आच्छादित हो गया है, दिन में सूर्य तथा रात्रि में तारा गण का दर्शन भी नहीं होता। नूतन जलधारा से भूमि भाग तृप्त हो गया है। अन्धकार युक्त दिशाओं को जानना अत्यन्त कठिन हो रहा है ॥४७॥ विशाल मुक्तासमूह के समान, निम्नगामी गिरने वाले प्रपात की धारा से प्रक्षालित पर्वतों की चोटियां अधिक शोभा को प्राप्त हो रही हैं ॥ ४८ ॥ विशाल पर्वतीय चट्टानों से टकरा कर जिन का वेग कम हो गया है, ऐसे अनेक पर्वतों के प्रपात मयूरों से निनादित गुफाओं में टूटे हुए हारों के समान बिखर रहे हैं ॥ ४९ ॥ पहाड़ की चोटियों को प्रक्षालन करने वाले, मुक्तासमूह के सदृश गिरते हुए, अत्यन्त वेगवाले अनेक जलप्रपात गुफाओं की गोद में स्थान पा रहे हैं ॥ ५० ॥ स्वर्ग की स्त्रियों की विहारकेलि के समय टूटे हुए हार के मोतियों के समान प्रत्येक दिशाओं में जल की धारा गिर रही है ॥ ५१ ॥ चिड़ियों के घोंसलों में छिप जाने से, कमलों के मुकुलित हो जाने से, मालती पुष्पों के विकसित हो जाने से—सूर्य के अस्त होने का लोगों को ज्ञान होता है ॥ ५२ ॥ राजाओं की यात्रा समाप्त हो गई है, सेना लौट पड़ी है। उभय पक्ष के राजाओं के लिये जल ने वैर और मार्ग को बराबर कर दिया है ॥ ५३ ॥ भादों के महीने में सामवेद पढ़ने वाले वेदपाठियों का वेदारम्भ हो जाता है। प्रायः सामवेदियों के पाठ का यही समय है ॥ ५४ ॥ गृह आदि आच्छादन कर्म को जिसने समाप्त कर दिया है, वर्षा काल के समय आवश्यक वस्तुओं का जिसने संचय कर लिया है, ऐसे कोसलाधीश भाई भरतने आषाढ़ की पूर्णमासी को किसी व्रत का अनुष्ठान किया होगा ॥ ५५ ॥ निश्चय ही भरी हुई सरयू नदी का वेग बढ़ रहा होगा जिस प्रकार अयोध्या में लौटे हुए मुझ को देख कर प्रजा के द्वारा स्वागतार्थ जयध्वनि का वेग बढ़ेगा ॥ ५६ ॥ यह वर्षा ऋतु अनेक गुणों से परिपूर्ण है। शत्रु पर विजय प्राप्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इमाः स्फीतगुणा वर्षाः सुग्रीवः सुखमश्नुते । विजितारिः सदारश्च राज्ये महति च स्थितः ॥५७॥
अहं तु हृतदारश्च राज्याच्च महतश्च्युतः । नदीकूलमिव क्लिन्नमवसीदामि लक्ष्मण ॥५८॥
शोकश्च मम विस्तीर्णो वर्षाश्च भृशदुर्गमाः । रावणश्च महाञ्शत्रुरपारं प्रतिभाति मे ॥५९॥
अयात्रां चैव दृष्ट्वेमां मार्गांश्च भृशदुर्गमान् । प्रणते चैव सुग्रीवे न मया किंचिदीरितम् ॥६०॥
अपि चातिपरिक्लिष्टं चिराद्दारैः समागतम् । आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्वक्तुं नेच्छामि वानरम् ॥६१॥
स्वयमेव हि विश्रम्य ज्ञात्वा कालमुपागतम् । उपकारं च सुग्रीवो वेत्स्यते नात्र संशयः ॥६२॥
तस्मात्कालप्रतीक्षोऽहं स्थितोऽस्मि शुभलक्षण । सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमनुपालयन् ॥६३॥
उपकारेण वीरो हि प्रतिकारेण युज्यते । अकृतज्ञोऽप्रतिकृतो हन्ति सत्त्ववतां मनः ॥६४॥

तेनैवमुक्तः प्रणिधाय लक्ष्मणः कृताञ्जलिस्तत्प्रतिपूज्य भाषितम् ।
उवाच रामं स्वभिरामदर्शनं प्रदर्शयन् दर्शनमात्मनः शुभम् ॥ ६५ ॥
यथोक्तमेतत्तव सर्वमीप्सितं नरेन्द्र कर्ता न चिराद्धरीश्वरः ।
शरत्प्रतीक्षः क्षमतामिमं भवाञ्जलप्रपातं रिपुनिग्रहे धृतः ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे प्रावृड्वर्णनं नाम अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

करने वाले, महान् राज्य तथा स्त्री को प्राप्त करने वाले राजा सुग्रीव सुख का अनुभव कर रहे हैं ॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण ! मेरी तो स्त्री हर ली गई है, विशाल राज्य से मैं वंचित हो गया हूं, भग्न नदी तट के समान मैं इस समय दुःखी हो रहा हूं ॥ ५८ ॥ मेरा शोक अत्यन्त बढ़ा हुआ है, वर्षा ऋतु को हटा नहीं सकते, महान् शत्रु रावण से पाला पड़ गया है। इस लिये मेरे दुःख तथा शोक का समुद्र अगाध प्रतीत हो रहा है ॥ ५९ ॥ वर्षा के कारण मार्ग दुर्गम हो गया है, अतः यात्रा का समय नहीं है, इस बात को दृष्टि में रख कर अपने प्रति सहानुभूति रखने वाले सुग्रीव को मैं ने कुछ भी नहीं कहा ॥६०॥ चिर काल से अनेकों कष्टों के पश्चात् सुग्रीव को स्त्री तथा राज्य का सुख प्राप्त हुआ है। मेरा कार्य कठिन देर में होने वाला है, अतः वनवासी सुग्रीव से मैं कुछ कहना नहीं चाहता ॥ ६१ ॥ विश्राम करने के पश्चात् सीता की खोज करने का समय आने पर सुग्रीव स्वयं आजायेंगे, इस में कोई सन्देह नहीं। उपकार को सुग्रीव जानते हैं ॥ ६२ ॥ हे सौम्य लक्ष्मण ! इस लिये उस समय की प्रतीक्षा करता हुआ मैं ठहरा हूं। सुग्रीव की कृपा तथा नदियों की गमनीयता की मैं आकांक्षा करता हूं ॥ ६३ ॥ धीर वीर लोग उपकार के बदले में उपकारी का प्रत्युपकार करते हैं और जो अकृतज्ञ प्रत्युपकार करना नहीं जानते हैं, वे बुद्धिमानों के नियमों को तोड़ते हैं ॥ ६४ ॥ रामचन्द्र के ऐसा कहने पर करबद्ध उन के विचारों का स्वागत करते हुए लक्ष्मण अपने शुभ विचारों को प्रकट करते हुए रामचन्द्र से बोले ॥ ६५ ॥ हे नरनाथ ! आपने जो कुछ भी अपना विचार रखा है, वनवासियों के सम्राट् सुग्रीव उस को शीघ्र ही सम्पन्न करेंगे। आप शरद् काल की प्रतीक्षा करें। शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाले आप को यह वर्षा का समय तो बिताना ही होगा ॥ ६६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'वर्षा-वर्णन' विषयक अट्ठाईसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २८ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकोनत्रिंशः सर्गः

हनुमत्प्रतिबोधनम्

समीक्ष्य विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम् । सारसारवसंघुष्टं रम्यज्योत्स्नानुलेपनम् ॥ १ ॥
समृद्धार्थं च सुग्रीवं मन्दधर्मार्थसंग्रहम् । अत्यर्थमसतां मार्गमेकान्तगतमानसम् ॥ २ ॥
निवृत्तकार्यं सिद्धार्थं प्रमदाभिरतं सदा । प्राप्तवन्तमभिप्रेतान् सर्वानपि मनोरथान् ॥ ३ ॥
स्वां च पत्नीमभिप्रेतां तारां चापि समीप्सिताम् । विरहन्तमहोरात्रं कृतार्थं विगतज्वरम् ॥ ४ ॥
क्रीडन्तमिव देवेन्द्रं नन्दनेऽप्सरसां गणैः । मन्त्रिषु न्यस्तकार्यं च मन्त्रिणामनवेक्षकम् ॥ ५ ॥
उत्सन्नराज्यसंदेशं कामवृत्तमवस्थितम् । निश्चितार्थोऽर्थतत्त्वज्ञः कालधर्मविशेषवित् ॥ ६ ॥
प्रसाद्य वाक्यैर्मधुरैर्हेतुमद्भिर्मनोरमैः । वाक्यविद्वाक्यतत्त्वज्ञं हरीशं मारुतात्मजः ॥ ७ ॥
हितं तथ्यं च पथ्यं च सामधर्मार्थनीतिमत् । प्रणयप्रीतिसंयुक्तं विश्वासकृतनिश्चयम् ॥ ८ ॥
हरीश्वरमुपागम्य हनुमान् वाक्यमब्रवीत् । राज्यं प्राप्तं यशश्चैव कौली श्रीरपि वर्धिता ॥ ९ ॥
मित्राणां संग्रहः शेषस्तं भवान् कर्तुमर्हति । यो हि मित्रेषु कालज्ञः सततं साधु वर्तते ॥१०॥

उनतीसवां सर्ग

हनुमान् का प्रतिबोधन

मेघ तथा बकपंक्ति से रहित विमल आकाश को देखकर क्रौंच पक्षी आकाश में घूमने तथा बोलने लगे। रमणीय प्रकाश सब ओर फैल गया ॥ १ ॥ सुग्रीव के सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। सुख भोग में लिप्त होने के कारण जो धर्म-अर्थ के संग्रह में शिथिलता दिखा रहा है, विलासी, असज्जनों के मार्ग का जो अनुसरण कर रहा है, विषय भोग के हेतु जो एकान्त स्थान का प्रेमी हो गया है ॥ २ ॥ शत्रु समाप्ति रूपी जिस का कार्य समाप्त हो गया है, जिस को राज्यप्राप्ति हो गई है, हर समय जो स्त्रियों में रमण कर रहा है, जिस के सभी अभीष्ट मनोरथ सिद्ध हो चुके हैं ॥ ३ ॥ जिसने अपनी पत्नी रुमा तथा आकांक्षित तारा को भी प्राप्त कर लिया है, रात दिन जो आहार विहार आदि भोगों में लगा हुआ है, सफल मनोरथ होने के कारण जिस की सारी चिन्ताएं दूर हो गई हैं ॥ ४ ॥ इन्द्र के समान गन्धर्व और अप्सराओं के साथ जो क्रीडा कर रहा है, जिस ने अपना सारा राज्यभार मन्त्रियों पर छोड़ दिया है, मन्त्रियों की देखभाल का काम जिसने छोड़ दिया है ॥ ५ ॥ राजकीय नियम तथा आदेश आदि जिसके शिथिल हो गये हैं, जो पदे-पदे स्वेच्छाचारिता का परिचय दे रहा है, वाक्य तत्त्व के वेत्ता, इस प्रकार के वनवासियों के सम्राट् सुग्रीव के पास जाकर वाणी कोविद्, निश्चित अर्थों के तत्त्व को जानने वाले, कालधर्म के विशेष वेत्ता पवनपुत्र हनुमान् साम-धर्म-नीति से युक्त, हित, पथ्य तथा उपयोगी, नम्रता-प्रेम से युक्त वचन बोले—आपने राज्य तथा यश को प्राप्त कर लिया तथा परम्परा से आई हुई समृद्धि को आप ने बढ़ाया ॥ ६-९ ॥ किन्तु मित्र का कार्य करना शेष है, उसको आप अवश्य कीजिये। समय का जानने वाला जो मित्र के कार्य को करना अपना कर्त्तव्य समझता है ॥ १० ॥ हे राजन्! जिसका कोश, विधान, सेना सम्पूर्ण मित्रों की वस्तु आत्मीय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्य राज्यं च कीर्तिश्च प्रतापश्चाभिवर्धते । यस्य कोशश्च दण्डश्च मित्राण्यात्मा च भूमिप ॥११॥
समवेतानि सर्वाणि स राज्यं महदश्नुते ।
तद्भवान् वृत्तसंपन्नः स्थितः पथि निरत्यये । मित्रार्थमभिनीतार्थं यथावत्कर्तुमर्हति ॥१२॥
संत्यज्य सर्वकर्माणि मित्रार्थे यो न वर्तते । संभ्रमाद्विकृतोत्साहः सोऽनर्थेनावरुध्यते ॥१३॥
यस्तु कालव्यतीतेषु मित्रकार्येषु वर्तते । स कृत्वा महतोऽप्यर्थान्न मित्रार्थेन युज्यते॥ १४॥
यदिदं वीर कार्यं नो मित्रकार्यमरिंदम । क्रियतां राघवस्यैतद्वैदेह्याः परिमार्गणम् ॥१५॥
न च कालमतीतं ते निवेदयति कालवित् । त्वरमाणोऽपि सन् प्राज्ञस्तव राजन् वशानुगः ॥१६॥
कुलस्य हेतुः स्फीतस्य दीर्घबन्धुश्च राघवः । अप्रमेयप्रभावश्च स्वयं चाप्रतिमो गुणैः ॥१७॥
तस्य त्वं कुरु वै कार्यं पूर्वं तेन कृतं तव । हरीश्वर हरिश्रेष्ठानाज्ञापयितुमर्हसि ॥१८॥
न हि तावद्भवेत्कालो व्यतीतश्चोदनादृते । चोदितस्य हि कार्यस्य भवेत्कालव्यतिक्रमः ॥१९॥
अकर्तुरपि कार्यस्य भवान् कर्ता हरीश्वर । किं पुनः प्रतिकर्तुस्ते राज्येन च वधेन च ॥२०॥
शक्तिमानपि विक्रान्तो वानरर्क्षगणेश्वर । कर्तुं दाशरथेः प्रीतिमाज्ञायां किं न सज्जसे ॥२१॥
कामं खलु शरैः शक्तः सुरासुरमहोरगान् । वशे दाशरथिः कर्तुं त्वत्प्रतिज्ञां तु काङ्क्षते ॥२२॥
प्राणत्यागाविशङ्केन कृतं तेन तव प्रियम् । तस्य मार्गाम वैदेहीं पृथिव्यामपि चाम्बरे ॥२३॥

समान समझी जाती है, उसका राज्य, कीर्त्ति तथा प्रताप बढ़ता है ॥ ११ ॥ आप सदाचार सम्पन्न हैं तथा सन्मार्ग में स्थित हैं, अतः मित्र के कार्य को यथावत् रूप से आप को करना चाहिये ॥ १२ ॥ जो व्यक्ति अपने सम्पूर्ण काम को छोड़कर मित्र के कार्यों का सम्पादन नहीं करता, किंकर्त्तव्यविमूढ़ता के कारण वह उत्साहहीन हो जाता है तथा निरर्थक कार्यों में फंस जाता है ॥ १३ ॥ जो अवसर बीत जाने पर मित्रों का कार्य करता है, वह महान् से महान् कार्य करने पर भी मित्र के प्रत्युपकार से वंचित माना जाता है ॥ १४॥ हे शत्रुंजय ! मित्र कार्य के लिये जो हमने समय दिया था, वह बीत गया है। सीता के अन्वेषण रूपी राम के कार्य को कीजिये ॥ १५ ॥ राम को अपने काम की शीघ्रता होने पर भी, वे बुद्धिमान्, समय के जानने वाले मित्रता के नाते आप के अधीन होते हुए समय के बीत जाने पर भी आप से कुछ नहीं कह रहे हैं ॥ १६ ॥ तुम्हारे इस विशाल कुल की वृद्धि के लिये रामचन्द्र प्रधान हेतु हैं, वे तुम्हारे चिर मित्र हैं, अप्रमेय-प्रभाव वाले तथा स्वयं अप्रमेय गुणों से परिपूर्ण हैं ॥ १७ ॥ पूर्व उपकारी होने के नाते अब उनका काम आप को करना चाहिये। हे हरीश्वर ! अपने आज्ञाकारी श्रेष्ठ वनवासियों को उनके कार्य के लिये आज्ञा दीजिये ॥ १८ ॥ रामचन्द्र के आदेश के पूर्व ही यदि हम लोग उस काम को आरम्भ कर दें तो वह कार्य कालातीत नहीं समझा जायेगा। यदि उनके कहने पर काम किया गया, तो वह कालातीत समझा जायेगा ॥ १९ ॥ हे हरीश्वर ! यदि उन्होंने तुम्हारा कोई काम न भी किया हो तब भी उनका काम करना चाहिये और जिसने तुम्हारे शत्रु का वध कर तुम्हें विशाल राज्य दिया है, ऐसे पूर्व उपकारी के लिये तो कहना ही क्या ॥ २० ॥ हे वन शैलान्तवासियों के सम्राट् ! आप पराक्रमी तथा शक्ति सम्पन्न हैं, तो भी रामचन्द्र के प्रीतिजनक कार्य के लिये अपने वनवासी सैनिकों को आज्ञा क्यों नहीं दे रहे हैं ॥ २१ ॥ यद्यपि शक्ति सम्पन्न बाणों से रामचन्द्र देवदनुज तथा वीर नागों को भी वश में करने में समर्थ हैं, किन्तु वे आप की प्रतिज्ञा को देख रहे हैं (अर्थात् सुग्रीव अपनी प्रतिज्ञा का धनी है या नहीं) ॥ २२ ॥ अपने प्राण को भी संकट में डालकर बाली का वध करके उन्होंने हम लोगों का महान् उपकार किया है, इसलिये उनकी प्राण-प्रिया सीता पृथ्वी या आकाश में कहीं भी हो हम लोग उसकी खोज करें ॥ २३ ॥ देव, दानव, गन्धर्व, असुर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न देवा न च गन्धर्वा नासुरा न मरुद्गणाः । न च यक्षा भयं तस्य कुर्युः किमुत राक्षसाः ॥२४॥
तदेवं शक्तियुक्तस्य पूर्वं प्रियकृतस्तव । रामस्यार्हसि पिङ्गेश कर्तुं सर्वात्मना प्रियम् ॥२५॥
नाधस्तादवनौ नाप्सु गतिर्नोपरि चाम्बरे । कस्यचित्सज्जतेऽस्माकं कपीश्वर तवाज्ञया ॥२६॥
तदाज्ञापय कः किं ते कृते कुत्र व्यवस्यतु । हरयो ह्यप्रधृष्यास्ते सन्ति कोट्यग्रतोऽनघाः ॥२७॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा काले साधु निवेदितम् । सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥२८॥
संदिदेशातिमतिमान् नीलं नित्यकृतोद्यमम् । दिक्षु सर्वासु सर्वेषां सैन्यानामुपसंग्रहे ॥२९॥
यथा सेना समग्रा मे यूथपालाश्च सर्वशः । समागच्छन्त्यसङ्गेन सेनाग्राणि तथा कुरु ॥३०॥
ये त्वन्तपालाः प्लवगाः शीघ्रगा व्यवसायिनः । समानयन्तु ते सैन्यं त्वरिताः शासनान्मम ॥३१॥
स्वयं चानन्तरं सैन्यं भवानेवानुपश्यतु । त्रिपञ्चरात्रादूर्ध्वं यः प्राप्नुयान्नेह वानरः ॥३२॥
तस्य प्राणान्तिको दण्डो नात्र कार्या विचारणा ॥

हरींश्च वृद्धानुपयातु साङ्गदो भवान् ममाज्ञामधिकृत्य निश्चिताम् ।
इति व्यवस्थां हरिपुंगवेश्वरो विधाय वेश्म प्रविवेश वीर्यवान् ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे हनुमत्प्रतिबोधनं नाम एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

यक्ष तथा मरुद्गण कोई भी रामचन्द्र को आतंकित नहीं कर सकते, फिर साधारण राक्षसों का तो कहना ही क्या ॥ २४ ॥ इसलिये ऐसे शक्तिशाली तथा पहले ही जिसने आपका उपकार किया है, हे राजन् ! ऐसे दयालु रामचन्द्र का प्रिय कार्य आपको हर प्रकार से करना चाहिये ॥२५॥ हे वनवासी सम्राट् ! यदि आपकी आज्ञा हो जाय तो हम लोगों में कितने ही ऐसे हैं जिनकी गति पाताल, पृथ्वी, जल, आकाश में भी कहीं नहीं रुक सकती (अर्थात् ये सभी अप्रतिहत गतिवाले हैं) ॥२६॥ हे निष्पाप राजन् ! आप आज्ञा दीजिये कि आपकी किस आज्ञा का पालन कौन व्यक्ति कहाँ से किस प्रकार आरम्भ करे । कहीं भी किसी से न पराजित होने वाले आपके एक करोड़ से अधिक वनवासी वीर हैं ॥२७॥ समय से तथा हितकारी सुन्दर हनुमान् की इन बातों को सुनकर बुद्धि बल सम्पन्न सुग्रीव ने उस कार्य को करने का निश्चय कर लिया ॥२८॥ सम्पूर्ण दिशाओं में वर्त्तमान सभी सैनिकों का संग्रह करने के लिये महाबुद्धिमान् राजा सुग्रीव ने निरन्तर उद्योग में संलग्न रहने वाले नील नामक सेनापति को आज्ञा दी ॥२९॥ जिस प्रकार हमारी समग्र सेना सेनापति तथा सहायक सेनापतियों के साथ शीघ्रातिशीघ्र यहाँ आ जाय, आप वैसा करें ॥३०॥ जो भी सीमारक्षक, शीघ्रगामी तथा उद्योगी हमारे वनवासी सैनिक हैं, मेरी आज्ञा से शीघ्र ही तुम उनको लिवा लाओ ॥ ३१ ॥ इसके अतिरिक्त आगे और क्या काम करना है, आप स्वयं देखें । पन्द्रह दिन के भीतर जो सैनिक यहाँ उपस्थित नहीं होगा, उसको अवश्य प्राणदण्ड दिया जायेगा, इसमें और किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं हो सकेगा ॥ ३२ ॥ अंगद के सहित आप स्वयं मेरी आज्ञा से उन माननीय व्यक्तियों के पास बुलाने के लिये जावें । पराक्रमी वनवासी सम्राट-सुग्रीव इस प्रकार का आदेश देकर अपने राजमहल में चले गये ॥ ३३ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'हनुमान् का प्रतिबोधन' विषयक उनत्तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥२९॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रिंशः सर्गः

शरद्वर्णनम्

गुहां प्रविष्टे सुग्रीवे विमुक्ते गगने घनैः । वर्षरात्रोषितो रामः कामशोकाभिपीडितः ॥ १ ॥
पाण्डरं गगनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्रमण्डलम् । शारदीं रजनीं चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम् ॥ २ ॥
कामवृत्तं च सुग्रीवं नष्टां च जनकात्मजाम् । बुद्ध्वा कालमतीतं च मुमोह परमातुरः ॥ ३ ॥
स तु संज्ञामुपागम्य मुहूर्तान्मतिमान् पुनः । मनःस्थामपि वैदेहीं चिन्तयामास राघवः ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा च विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम् । सारसारावसंघुष्टं विललापार्तया गिरा ॥ ५ ॥
आसीनः पर्वतस्याग्रे हेमधातुविभूषिते । शारदं गगनं दृष्ट्वा जगाम मनसा प्रियाम् ॥ ६ ॥
सारसारावसंनादैः सारसारावनादिनी । याश्रमे रमते बाला साद्य मे रमते कथम् ॥ ७ ॥
पुष्पितांश्चासनान् दृष्ट्वा काञ्चनानिव निर्मलान् । कथं सा रमते बाला पश्यन्ती मामपश्यती ॥ ८ ॥
या पुरा कलहंसानां स्वरेण कलभाषिणी । बुध्यते चारुसर्वाङ्गी साद्य मे बुध्यते कथम् ॥ ९ ॥
निःस्वनं चक्रवाकाणां निशम्य सहचारिणाम् । पुण्डरीकविशालाक्षी कथमेषा भविष्यति ॥१०॥
सरांसि सरितो वापीः काननानि वनानि च । तां विना मृगशावाक्षीं चरन्नाद्य सुखं लभे ॥११॥

तीसवां सर्ग

शरद्-वर्णन

इस प्रकार आज्ञा देकर सुग्रीव के राजमहल में चले जाने पर तथा मेघों से आकाश स्वच्छ हो जाने पर पर्वत पर चतुर्मास बिताने वाले रामचन्द्र सीता के वियोग तथा स्मरण से अत्यन्त दुःखी हो गये ॥ १ ॥ स्वच्छ आकाश तथा विमल चन्द्रमण्डल को देखकर जहाँ शारदचन्द्र की ज्योत्स्ना से सम्पूर्ण पृथ्वी तथा आकाश अनुलिप्त हो रहा है ॥२॥ सुग्रीव अत्यन्त कामासक्त हो गया है, जानकी का कुछ पता नहीं लग रहा है, प्रतिज्ञापूर्वक सुग्रीव का दिया हुआ समय भी समाप्त हो गया है। इन सब बातों पर विचार कर दुःखी रामचन्द्र किंकर्त्तव्य विमूढ हो गये ॥३॥ कुछ समय पश्चात् बुद्धिमान् रामचन्द्र अपनी स्वस्थावस्था में आकर अन्तःकरण में बैठी हुई सीता का स्मरण तथा चिन्तन करने लगे ॥४॥ आकाश बिल्कुल स्वच्छ हो गया है, विद्युत् के साथ मेघ मण्डल समाप्त हो गया है, क्रौंच पक्षियों के शब्द आरम्भ हो गये हैं, यह देखकर रामचन्द्र अत्यन्त आर्त्त होकर विलाप करने लगे ॥५॥ स्वर्णमय धातुओं से भूषित पर्वत के शिखर पर बैठे हुए शरत्कालीन गगन को देख कर रामचन्द्र मन से सीता का स्मरण करने लगे ॥६॥ सारस पक्षी के समान बोलने वाली प्राणप्रिया सीता सारस पक्षियों के शब्द को सुनकर मेरे साथ आश्रम में जो विनोद करती थी, वह आज कैसे क्रीड़ा करती होगी ॥७॥ निर्मल काञ्चन के समान पुष्पित आश्रम वृक्षों को देख कर तथा मुझ को अनुपस्थित देख कर वह जानकी कैसे प्रसन्न होती होगी ॥८॥ जो मधुरभाषिणी सीता पहले कलहंसों के शब्दों को सुनकर उनके आगमन को समझ जाती थी, सर्वांगसुन्दरी वह इस समय किस प्रकार सुख शान्ति पाती होगी ॥९,१०॥ सरोवर, नदियां, बावड़ी, वाटिका तथा वन इन सब स्थानों में भ्रमण करते हुए भी मृग-नयनी सीता के बिना आज मुझे सुख शान्ति नहीं प्राप्त हो रही है ॥११॥ मुझ से वियुक्त होने के कारण तथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपि तां मद्वियोगाच्च सौकुमार्याच्च भामिनीम् । सुदूरं पीडयेत्कामः शरदुणनिरन्तरः ॥१२॥
एवमादि नरश्रेष्ठो विललाप नृपात्मजः । विहङ्ग इव सारङ्गः सलिलं त्रिदशेश्वरात् ॥१३॥
ततश्चञ्चूर्य रम्येषु फलार्थी गिरिसानुषु । ददर्श पर्युपावृत्तो लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणोऽग्रजम् ॥१४॥

तं चिन्तया दुःसहया परीतं विसंज्ञमेकं विजने मनस्वी ।
भ्रातुर्विषादात्परितापदीनः समीक्ष्य सौमित्रिरुवाच रामम् ॥ १५ ॥
किमार्य कामस्य वशंगतेन किमात्मपौरुष्यपराभवेन ।
अयं ह्रिया संह्रियते समाधिः किमत्र योगेन निवर्तते न ॥ १६ ॥
क्रियाभियोगं मनसः प्रसादं समाधियोगानुगतं च कालम् ।
सहायसामर्थ्यमदीनसत्त्वं स्वकर्महेतुं च कुरुष्व तात ॥ १७ ॥
न जानकी मानववंशनाथ त्वया सनाथा सुलभा परेण ।
न चाग्निचूडां ज्वलितामुपेत्य न दह्यते वीर वराहं कश्चित् ॥ १८ ॥
सलक्षणं लक्ष्मणमप्रधृष्यं स्वभावजं वाक्यमुवाच रामः ।
हितं च पथ्यं च नयप्रसक्तं ससाम धर्मार्थसमाहितं च ॥ १९ ॥
निःसंशयं कार्यमवेक्षितव्यं क्रियाविशेषो ह्यनुवर्तितव्यः ।
ननु प्रवृत्तस्य दुरासदस्य कुमार कार्यस्य फलं न चिन्त्यम् ॥ २० ॥

अथ पद्मपलाशाक्षीं मैथिलीमनुचिन्तयन् । उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता ॥२१॥

अत्यन्त सुकुमारी होने से कामोद्दीपक शरद् काल के द्वारा बढ़ा हुआ सीता का मनोज उसे अधिक पीड़ित करता होगा ॥१२॥ जैसे चातक मेघ के जल के लिये करुण क्रन्दन करता है, उसी प्रकार रामचन्द्र जानकी के लिये करुणामय शब्दों में विलाप करने लगे ॥१३॥ रमणीय पर्वत शिखर पर कन्द-मूल-फल आदि के लिये कष्टपूर्वक भ्रमण कर आये हुए सौम्य लक्ष्मण ने अपने भाई रामचन्द्र को देखा ॥१४॥ असहनीय चिन्ता से आक्रान्त, अत्यन्त दुःखी, संज्ञाहीन रामचन्द्र को देखकर अपने भ्राता के दुःखसे अत्यन्त दुःखी, मनस्वी लक्ष्मण उनसे बोले ॥१५॥ हे आर्य रामचन्द्र ! इस प्रकार मानसिक दुर्बलता से आपको क्या लाभ होगा तथा चारित्रिक एवं आत्मिक बल त्यागने से क्या लाभ होगा । इस शोक या दुर्बलता से चित्त की शान्ति तथा एकाग्रता नष्ट हो जाती है । क्या इस समय संयम तथा योग के द्वारा चित्त की एकाग्रता तथा शान्ति को लौटाया नहीं जा सकता ॥१६॥ हे आर्य रामचन्द्र ! चित्त को प्रसन्न करते हुए अपने दैनिक क्रियाकलापों को कीजिये, समाधि योग के द्वारा बनाये हुए अनुकूल काल, सहायता, सामर्थ्य तथा अदीनसत्त्व इन सभी को अपने कार्य की सिद्धि में हेतु बनाइये ॥१७॥ हे मानव कुलभूषण श्रेष्ठ वीर रामचन्द्र ! आपकी वशवर्त्तिनी जानकी दूसरे के अधीन कभी भी नहीं हो सकती, जैसे जाज्वल्यमान धधकती हुई अग्नि के समीप कोई तैजस पदार्थ ही रह सकता है अन्यथा जलकर क्षार हो जाते हैं ॥१८॥ उत्तम लक्षणों से युक्त, कभी भी पराजित न होने वाले लक्ष्मण से सामान्य वाक्यों के द्वारा रामचन्द्र बोले—हे वीर ! आपने जो भी कुछ कहा है, नीतियुक्त, पथ्य, हित से परिपूर्ण है, शान्ति, धर्म तथा अर्थ से युक्त है ॥१९॥ निस्सन्देह कार्य को पूर्ण विचार करके ही करना चाहिये, विशेष क्रियाओं को करते हुए उसके परिणाम को भी देखना चाहिये । हे कुमार लक्ष्मण ! प्रारब्ध अवस्था को प्राप्त हुए अपरिहार्य शुभाशुभ कर्म के फल पर भी विचार करना चाहिये ॥२०॥ शोकाक्रान्त होने के कारण जिनका मुख सूख रहा है, ऐसे रामचन्द्र कमलनयनी जानकी का चिन्तन करते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तर्पयित्वा सहस्राक्षः सलिलेन वसुंधराम् । निर्वर्तयित्वा सस्यानि कृतकर्मा व्यवस्थितः ॥२२॥
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषाः शैलद्रुमपुरोगमाः । विसृज्य सलिलं मेघाः परिश्रान्ता नृपात्मज ॥२३॥
नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामीकृत्वा दिशो दश । विमदा इव मातङ्गाः शान्तवेगाः पयोधराः ॥२४॥
जलगर्भाः महावेगाः कुटजार्जुनगन्धिनः । चरित्वा विरताः सौम्य वृष्टिवाताः समुद्यताः ॥२५॥
घनानां वारणानां च मयूराणां च लक्ष्मण । नादः प्रस्रवणानां च प्रशान्तः सहसानघ ॥२६॥
अभिवृष्टा महामेघैर्निर्मलाश्चित्रसानवः । अनुलिप्ता इवाभान्ति गिरयश्चन्द्ररश्मिभिः ॥२७॥

शाखासु सप्तच्छदपादपानां प्रभासु तारार्कनिशाकराणाम् ।
लीलासु चैवोत्तमवारणानां श्रियं विभज्याद्य शरत्प्रवृत्ता ॥ २८ ॥

संप्रत्यनेकाश्रयचित्तशोभाः लक्ष्मीः शरत्कालगुणोपनीता ।
सूर्याग्रहस्तप्रतिबोधितेषु पद्माकरेष्वभ्यधिकं विभाति ॥ २९ ॥

सप्तच्छदानां कुसुमोपगन्धी षट्पादवृन्दैरनुगीयमानः ।
मत्तद्विपानां पवनोऽनुसारी दर्पं वनेष्वभ्यधिकं करोति ॥ ३० ॥

अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः स्मरप्रियैः पद्मरजोऽवकीर्णैः ।
महानदीनां पुलिनोपयातैः क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः ॥ ३१ ॥

मदप्रगल्भेषु च वारणेषु गवां समूहेषु च दर्पितेषु ।
प्रसन्नतोयासु च निम्नगासु विभाति लक्ष्मीर्बहुधा विभक्ता ॥ ३२ ॥

हुए समीपस्थ लक्ष्मण से बोले ॥२१॥ इन्द्र ने अपने जल से सम्पूर्ण वसुधा को तृप्त करके तथा सस्यों का परिपाक करके मानो अपना सब कार्य समाप्त कर दिया है ॥२२॥ हे राजकुमार लक्ष्मण ! पहाड़ की चोटियों तथा वृक्षों पर घूमने वाले, दूर २ तक गम्भीर गर्जन करने वाले मेघ जल को बरसा कर अब शान्त हो गये हैं ॥२३॥ नील कमल के सदृश मेघ दसों दिशाओं को हरियाली से पूर्ण करके मदहीन मातङ्ग के समान अब शान्त हो गये हैं ॥२४॥ जल के कणों से भरी हुई, कुटज तथा अर्जुन की गन्ध से परिपूर्ण, वर्षा करने वाली, महावेग वाली वायु चारों ओर घूम कर शान्त हो गई ॥ २५ ॥ हे निष्कलंक लक्ष्मण ! बादलों, हाथियों, मयूरों तथा जलप्रपातों के शब्द सहसा शान्त हो गये हैं ॥२६॥ महामेघों के वर्षण जल से चित्रविचित्र पर्वत की चोटियाँ धोयी हुई तथा चन्द्रमा की किरणों से अनुलिप्त प्रतीत हो रही हैं ॥२७॥ सप्तच्छद वृक्षों की शाखाओं में तारा, सूर्य, चन्द्रमा की किरणों में तथा उत्तम हाथियों की क्रीड़ा में अपनी कमनीय कान्ति का विभाजन करके शरद् ऋतु आ गयी है ॥२८॥ शरत्काल से उत्पन्न अत्यन्त कमनीय शोभा यद्यपि प्रकृति की सम्पूर्ण रचना को सुशोभित कर रही है, किन्तु सूर्य की किरणों से विकसित कमल कानन में अत्यन्त सुशोभित हो रही है ॥२९॥ सप्तच्छद के पुष्पों की गन्ध से परिपूर्ण, भ्रमर मण्डल जिस पर गुंजार कर रहे हैं तथा पवन का अनुसरण करनेवाला यह शरत्काल मदोन्मत्त गजराज के दर्प को भी तोड़ता हुआ अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥३०॥ रमणीय विशाल पंख वाले, कामासक्त, कमल किंजल्क से अनुलिप्त विशाल नदियों के तट पर आये हुए चक्रवाक दम्पति के साथ राजहंस क्रीड़ा कर रहे हैं ॥३१॥ मतवाली गज पंक्ति में, गर्वित बैलों के झुण्ड में, निर्मल जल वाली नदियों में विभक्त यह शरद् श्री अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रही है ॥३२॥ जल वाले मेघों से हीन आकाश को देखकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नभः समीक्ष्याम्बुधरैर्विमुक्तं विमुक्तबर्हाभरणा वनेषु ।
प्रियास्वसक्ता विनिवृत्तशोभा गतोत्सवा ध्यानपरा मयूराः ॥ ३३ ॥
मनोज्ञगन्धैः प्रियकैरनल्पैः पुष्पातिभारावनताग्रशाखैः ।
सुवर्णगौरैर्नयनाभिरामैरुद्द्योतितानीव वनान्तराणि ॥ ३४ ॥
प्रियान्वितानां नलिनीप्रियाणां वने रतानां कुसुमोद्धतानाम् ।
मदोत्कटानां मदलालसानां गजोत्तमानां गतयोऽद्य मन्दाः ॥ ३५ ॥
व्यभ्रं नभः शस्त्रविधौतवर्णं कृशप्रवाहाणि नदीजलानि ।
कल्हारशीताः पवनाः प्रवान्ति तमोविमुक्ताश्च दिशः प्रकाशाः ॥ ३६ ॥
सूर्यातपक्रामणनष्टपङ्का भूमिश्चिरोद्घाटितसान्द्ररेणुः ।
अन्योन्यवैरेण समायुतानामुद्योगकालोऽद्य नराधिपानाम् ॥ ३७ ॥
शरद्गुणाप्यायितरूपशोभाः प्रहर्षिताः पांसुसमुक्षिताङ्गाः ।
मदोत्कटाः संप्रति युद्धलुब्धा वृषा गवां मध्यगता नदन्ति ॥ ३८ ॥
समन्मथास्तीव्रतरानुरागाः कुलान्विता मन्दगतिं करिण्यः ।
मदान्वितं संपरिवार्य यान्तं वनेषु भर्तारमनुप्रयान्ति ॥ ३९ ॥
त्यक्त्वा वराण्यात्मविभूषणानि बर्हाणि तीरोपगता नदीनाम् ।
निर्भर्त्स्यमाना इव सारसौघैः प्रयान्ति दीना विमदा मयूराः ॥४०॥
वित्रास्य कारण्डवचक्रवाकान् महारवैर्भिन्नकटा गजेन्द्राः ।
सरःसु बद्धाम्बुजभूषणेषु विक्षोभ्य विक्षोभ्य जलं पिबन्ति ॥४१॥

पंख रूपी आभरणों से हीन, अपनी प्रियाओं से विरक्त, नृत्य आदि उत्सव की शोभा से रहित, मयूरगण वन में ध्यान मग्न हो गये हैं ॥ ३३॥ रमणीय सुगन्ध वाले पुष्प भार से जिन की शाखाएँ झुक गई हैं, स्वर्ण के समान गौर वर्ण वाले, नेत्राभिराम अनेक असन वृक्षों से यह वन भूमि प्रकाशित हो रही है ॥ ३४ ॥ अपनी प्रियाओं के साथ गमन करने वाले, वन और कमल कानन से प्रेम करने वाले, कमल पुष्पों की गन्ध से प्रेम करने वाले, मदोन्मत्त, उच्छृंखल वृत्तिवाले, मद की लालसा करनेवाले गजराजों का गमन इस समय सर्वथा मन्द हो गया है ॥ ३५ ॥ शस्त्र के वर्ण के समान आकाश स्वच्छ हो गया है। नदियों के जल अल्प तथा मन्थर गति वाले हो गये हैं। कमल के सम्पर्क से पवन शीतल होकर बह रहा है। दिशाओं का अन्धकार दूर हो जाने से दिशाएं प्रकाशित हो गयी हैं ॥ ३६ ॥ सूर्य की तपनीय किरणों से पंक समाप्त हो गया है। चिरकाल के पश्चात् भूमि ने पुनः घनी धूल को उत्पन्न कर दिया है। परस्पर वैर करने वाले राजाओं के उद्योग करने का यही समय है ॥ ३७ ॥ शरद्-ऋतु के आगमन से जिन के रूप सौन्दर्य की वृद्धि हो गई, अत्यन्त हर्ष के कारण जिन के शरीर धूल धूसरित हो रहे हैं, ऐसे मदोन्मत्त युद्ध-प्रेमी बैल गौओं के बीच में गर्जन कर रहे हैं ॥ ३८ ॥ कामासक्त, पतियों में तीव्र अनुराग रखनेवाली, अच्छे वंश में उत्पन्न होनेवाली हथनियां मन्दगति वाले, वन में अपने दल से युक्त जाते हुए, मतवाले अपने पतियों के साथ जा रही हैं ॥ ३९ ॥ अपने पंख रूपी आभूषणों को त्याग कर नदी के तट पर गये हुए मयूर सारस समूहों से प्रताड़ित होने पर मानहीन दुःखी होते हुए लौट रहे हैं ॥ ४० ॥ मदस्रवित मतवाले हाथियों का समूह अपने भयंकर गर्जन से कारण्डव चक्रवाक आदि जलचर पक्षियों को आतंकित

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यपेतपङ्कासु सुवालुकासु प्रसन्नतोयासु सगोकुलासु ।
ससारसारावविनादितासु नदीषु हृष्टा निपतन्ति हंसाः ॥४२॥

नदीवनप्रस्रवणोदकानामतिप्रवृद्धानिलबर्हिणानाम् ।
प्लवङ्गमानां च गतोत्सवानां द्रुतं रवाः संप्रति संप्रनष्टाः ॥४३॥

अनेकवर्णाः सुविनष्टकाया नवोदितेष्वम्बुधरेषु नष्टाः ।
क्षुधार्दिता घोरविषा बिलेभ्यश्चिरोषिता विप्रसरन्ति सर्पाः ॥४४॥

चञ्चच्चन्द्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलिततारका । अहो रागवती सन्ध्या जहाति स्वयमम्बरम् ॥४५॥
दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः । नवसङ्गमसंव्रीडा जघनानीव योषितः ॥४६॥

रात्रिः शशाङ्कोदितसौम्यवक्त्रा तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा ।
ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति नारीह शुक्लांशुकसंवृताङ्गी ॥४७॥

विपक्वशालिप्रसवानि भुक्त्वा प्रहर्षिता सारसचारुपङ्क्तिः ।
नभः समाक्रामति शीघ्रवेगा वातावधूता ग्रथितेव माला ॥४८॥

सुप्तैकहंसं कुमुदैरुपेतं महाह्रदस्थं सलिलं विभाति ।
घनैर्विमुक्तं निशि पूर्णचन्द्रं तारागणाकीर्णमिवान्तरिक्षम् ॥४९॥

प्रकीर्णहंसाकुलमेखलानां प्रबुद्धपद्मोत्पलमालिनीनाम् ।
वाप्युत्तमानामधिकाद्य लक्ष्मीर्वराङ्गनानामिव भूषितानाम् ॥५०॥

कर विकसित कमल रूपी अलंकारों से अलंकृत सरोवरों में हिलोर-हिलोर कर जल पीते हैं ॥ ४१ ॥ पंक-रहित, बालुयुक्त, निर्मल जल वाली, जिनका किनारा गौओं से युक्त हो रहा है तथा जिनका तट सारस पक्षियों से निनादित हो रहा है, ऐसी नदियों के किनारे प्रसन्न हंसों का झुण्ड आ रहा है ॥ ४२ ॥ नदी, मेघ, झरनों का जल, अत्यन्त वेग वाले वायु, हर्ष रहित मयूर, आमोदहीन पक्षियों के शब्द शीघ्र ही समाप्त हो गये हैं ॥ ४३ ॥ अनेक वर्ण वाले, मेघोदय के कारण कृशकाय, क्षुधा से पीड़ित, घोर विष वाले सर्प चिरकाल के पश्चात् बिलों से निकल रहे हैं ॥ ४४ ॥ चन्द्र की किरणों के स्पर्श से अत्यन्त हर्षित शोभायमान तथा अल्प प्रकाशवाले नक्षत्र मण्डल युक्त अनेक रंग वाली यह सन्ध्या गगन-मण्डल का त्याग कर रही है ॥ ४५ ॥ शरत्कालीन नदियाँ अपने पुलिन (तीर) को शनैः-शनैः प्रकाशित कर रही हैं, जैसे नवसंगम के समय लिज्जावती स्त्री अपने जघन को प्रकाशित करती हैं ॥ ४६ ॥ उदित चन्द्रमण्डल ही जिसका रमणीय मुख है, विकसित चन्द्रमण्डल जिसके उन्मीलित नेत्र हैं तथा प्रकाशित चन्द्र की ज्योत्स्ना रूपी वसन को जिसने धारण किया है, ऐसी यह रात्रि शुक्ल अम्बर धारण करने वाली नारी के समान प्रतीत हो रही है ॥ ४७ ॥ परिपक्व धान की मंजरियों को खा कर प्रहर्षित सारसों की कमनीय पंक्ति शीघ्रता से वेगपूर्वक आकाश में उड़ती हुई वायुवेग से प्रक्षिप्त गुम्फित माला के समान प्रतीत हो रही है ॥ ४८ ॥ जिसमें हँस सोया हुआ है, कमल जिसमें खिले हुए हैं, ऐसे विशाल सरोवर का जल इस प्रकार शोभा को प्राप्त हो रहा है जैसे रात्रि में घनहीन पूर्ण चन्द्र तथा नक्षत्र मण्डल से मण्डित आकाश शोभा को प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ जिसमें इधर-उधर बिखरी हुई हंस पंक्ति मेखला के समान प्रतीत हो रही है, विकसित कमल पंक्ति जहाँ माला के समान है, ऐसी बावड़ी की उत्तम शोभा अलंकृत सुन्दर स्त्री के समान प्रतीत हो रही है ॥ ५० ॥ वेणुवाद्य से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेणुस्वनव्यञ्जिततूर्यमिश्रः प्रत्यूषकालानिलसंप्रवृद्धः ।
संमूर्छितो गह्वरगोवृषाणामन्योन्यमापूरयतीव शब्दः ॥५१॥
नवैर्नदीनां कुसुमप्रहासैर्व्याधूयमानैर्मृदुमारुतेन ।
धौतामलक्षौमपटप्रकाशैः कूलानि काशैरुपशोभितानि ॥५२॥
वनप्रचण्डा मधुपानशौण्डाः प्रियान्विताः षट्चरणाः प्रहृष्टाः ।
वनेषु मत्ताः पवनानुयात्रां कुर्वन्ति पद्मासनरेणुगौराः ॥५३॥
जलं प्रसन्नं कुमुदं प्रहासं क्रौञ्चस्वनः शालिवनं विपक्वम् ।
मृदुश्च वायुर्विकलश्च चन्द्रः शंसन्ति वर्षव्यपनीतकालम् ॥५४॥
मीनोपसंदर्शितमेखलानां नदीवधूनां गतयोऽद्य मन्दाः ।
कान्तोपभुक्तालसगामिनीनां प्रभातकालेष्विव कामिनीनाम् ॥५५॥
सचक्रवाकानि सशैवलानि काशैर्दुकूलैरिव संवृतानि ।
सपत्रलेखानि सरोचनानि वधूमुखानीव नदीमुखानि ॥५६॥
प्रफुल्लबाणासनचित्रितेषु प्रहृष्टषट्पादनिकूजितेषु ।
गृहीतचापोद्यतचण्डदण्डः प्रचण्डचारोऽद्य वनेषु कामः ॥५७॥
लोकं सुवृष्ट्या परितोषयित्वा नदीस्तटाकानि च पूरयित्वा ।
निष्पन्नसस्यां वसुधां च कृत्वा त्यक्त्वा नभस्तोयधराः प्रनष्टाः ॥५८॥
प्रसन्नसलिलाः सौम्य कुररीभिर्विनादिताः । चक्रवाकगणाकीर्णा विभान्ति सलिलाशयाः ॥५९॥

मिश्रित प्रातःकाल के समय वायु द्वारा फैलाया हुआ गिरि गुफाओं तथा बैलों का परस्पर शब्द एक दूसरे को बढ़ा रहा है ॥ ५१ ॥ मन्द-मन्द मारुत से कम्पाये हुऐ, धुले हुए स्वच्छ श्वेत वस्त्र के समान, जो पुष्प के व्याज से मानो हंस रहे हैं, ऐसे कांस के पुष्पों से नदियों के तट अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं ॥ ५२ ॥ वन में घूमने वाले, पुष्पगत मधुपान से प्रमत्त, पद्म तथा असन पुष्पों की रेणु से गौरवर्ण, अपनी प्रियाओं के साथ घूमने वाले, प्रसन्न तथा मदमत्त भ्रमरगण वन में पवन का अनुगमन कर रहे हैं ॥५३॥ जल निर्मल हो गया है, पुष्पकुड्मल खिल गये, क्रौंच पक्षी का शब्द होने लगा है, खेतों में धान पक गये हैं, सेवन करने योग्य मनोरम वायु वह रहा है, घन रहित चन्द्रमण्डल विमल हो गया है, इन सभी लक्षणों से वर्षा काल की समाप्ति सूचित हो रही है ॥ ५४ ॥ स्वच्छ जल के कारण मीन रूपी मेखला को जिसने दिखला दिया है, ऐसी नदी वधुओं की गति इस समय मन्द हो गयी है, जिस प्रकार पति-उपभुक्ता नारी की गति प्रातः काल में मन्द हो जाती है ॥ ५५ ॥ चक्रवाक दम्पति से युक्त, शैवाल तथा वस्त्र के समान कांसों से आच्छादित नदियों का संगम पत्ररेखांकित रोचनायुक्त स्त्री के मुख के समान प्रतीत हो रहा है ॥ ५६ ॥ विकसित बाग तथा असन पुष्पों से जो चित्रित हो रहा है, प्रसन्न भ्रमर, जहाँ गूंज रहे हैं, इस प्रकार के वन में कामिनियों को दण्ड देने में क्रुद्ध, विशाल धनुष धारण करने वाला काम अपने प्रचण्ड क्रोध का परिचय दे रहा है ॥ ५७ ॥ अपनी रमणीय वर्षा से सम्पूर्ण वसुधा को सन्तुष्ट कर के, नदी सरोवरों को जल से परिपूर्ण करके, पृथ्वी को हरेक प्रकार के शाक फल फूल आदि खाद्य अन्नों से संयुक्त कर के मेघ आकाश को त्याग कर नष्ट हो गये ॥ ५८ ॥ हे सौम्य लक्ष्मण ! जल के निर्मल होने से कुररी पक्षी के शब्द से तथा चक्र गणों से परिपूर्ण सरोवर शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ५९ ॥ असन, सप्तपर्ण, कोविदार,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असनाः सप्तपर्णाश्च कोविदाराश्च पुष्पिताः । दृश्यन्ते बन्धुजीवाश्च श्यामाश्च गिरिसानुषु ॥६०॥
हंससारसचक्राह्वैः कुररैश्च समन्ततः । पुलिनान्यवकीर्णानि नदीनां पश्य लक्ष्मण ॥६१॥
अन्योन्यं बद्धवैराणां जिगीषूणां नृपात्मज । उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः ॥६२॥
इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज । न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं वा तथाविधम् ॥६३॥
चत्वारो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः । मम शोकाभिभूतस्य सौम्य सीतामपश्यतः ॥६४॥
चक्रवाकीव भर्तारं पृष्ठतोऽनुगता वनम् । विषमं दण्डकारण्यमुद्यानमिव याङ्गना ॥६५॥
प्रियाविहीने दुःखार्ते हृतराज्ये विवासिते । कृपां न कुरुते राजा सुग्रीवो मयि लक्ष्मण ॥६६॥
अनाथो हृतराज्योऽयं रावणेन च धर्षितः । दीनो दूरगृहः कामी मां चैव शरणं गतः ॥६७॥
इत्येतैः कारणैः सौम्य सुग्रीवस्य दुरात्मनः । अहं वानरराजस्य परिभूतः परंतप ॥६८॥
स कालं परिसंख्याय सीतायाः परिमार्गणे । कृतार्थः समयं कृत्वा दुर्मतिर्नावबुध्यते ॥६९॥
स किष्किन्धां प्रविश्य त्वं ब्रूहि वानरपुंगवम् । मूर्खं ग्राम्यसुखे सक्तं सुग्रीवं वचनान्मम ॥७०॥
अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम् । आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः ॥७१॥
शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम् । सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥७२॥
कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये । तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥७३॥

बन्धुजीव तथा तमाल ये सभी वृक्ष पर्वत शिखर पर प्रफुल्लित दिखाई दे रहे हैं ॥६०॥ हे लक्ष्मण ! हंस, सारस, चक्रवाक, क़रर इन सभी जलपक्षियों से नदी के तट भरे हुए हैं. उन को तुम देखो ॥६१॥ हे राजकुमार ! एक दूसरे से वैर रखने वाले विजयाकांक्षी राजाओं के उद्योग करने का समय उपस्थित हो गया है ॥ ६२ ॥ हे राजकुमार लक्ष्मण ! विजयी राजाओं के लिये यात्रा का यह प्रधान समय आ गया है, किन्तु सुग्रीव को नहीं देख रहा हूं और न किसी प्रकार का उद्योग ही दिखाई देता है ॥६३॥ हे लक्ष्मण ! सीता को न देखते हुए तथा शोक सन्तप्त मेरे लिये वर्षा के ये चार मास सौ वर्ष के समान हो रहे हैं ॥ ६४ ॥ इस भीषण दण्डकारण्य को उद्यान के समान समझ कर जानकी चक्रवाकी के समान मेरे साथ वन में आयी थी ॥ ६५ ॥ हे राजकुमार लक्ष्मण ! प्राणप्रिया जानकी से वियुक्त, दुःखार्त्त, जिस का राज्य छीन लिया गया है और जो राज्य से निर्वासित कर दिया गया है, ऐसे मुझ दीन पर राजा सुग्रीव दया नहीं कर रहे हैं ॥ ६६ ॥ राज्य के हाथ से निकल जाने पर मैं इस समय अनाथ हो गया हूं। सीता हरण के द्वारा मैं रावण से बहुत अपमानित हो चुका हूं। अयोध्या यहाँ से दूर है। मनोविकार से आक्रान्त, अत्यन्त दुःखी मैं सुग्रीव की शरण में आया हूं ॥ ६७ ॥ हे शत्रुंजयी सौम्य लक्ष्मण ! पूर्वोक्त इन्हीं सब कारणों से दुरात्मा वनवासी राजा सुग्रीव से मैं अपमानित हो रहा हूं ॥ ६८ ॥ उसने सीता के अन्वेषण के लिये समय की अवधि दी थी। अपने मनोरथ को प्राप्त कर वह दुर्मति समय नियत करने पर भी इसे वह समझ नहीं रहा है ॥ ६९ ॥ इस लिये हे लक्ष्मण ! तुम किष्किन्धा नगरी में जा कर कामासक्त मूर्ख वनवासियों के राजा सुग्रीव से मेरा यह वचन कहो ॥ ७० ॥ किसी आशा को ले कर आये हुए तथा जिसने पहले उपकार किया हो, ऐसे उपकारी आशान्वित व्यक्ति को प्रतिज्ञापूर्वक आश्वासन दे कर जो आशा तथा अपनी प्रतिज्ञा को भंग करता है, वह संसार में अधम पुरुष कहलाता है ॥ ७१ ॥ शुभ या अशुभ बात को सुन कर जो प्रतिज्ञा कर ली, उसका जो यथावत् पालन करता है, वह पुरुषों में वीर तथा श्रेष्ठ है ॥७२॥ अपने मनोरथ के सिद्ध हो जाने पर अवशिष्ट मित्रों के मनोरथ को जो सिद्ध नहीं करता, मृत्यु के पश्चात् उस कृतघ्न पुरुष का मांस मांसाहारी पशु पक्षी भी नहीं खाते ॥ ७३ ॥ सुग्रीव से यह भी कहना कि निश्चय रूप से क्या संग्राम में काञ्चनमूठ

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नूनं काञ्चनपृष्ठस्य विकृष्टस्य मया रणे। द्रष्टुमिच्छति चापस्य रूपं विद्युद्गणोपमम् ॥७४॥
घोरं ज्यातलनिर्घोषं क्रुद्धस्य मम संयुगे। निर्घोषमिव वज्रस्य पुनः संश्रोतुमिच्छति ॥७५॥
काममेवंगतेऽप्यस्य परिज्ञाते पराक्रमे। त्वत्सहायस्य मे वीर न चिन्ता स्यान्नृपात्मज ॥७६॥
यदर्थमयमारम्भः कृतः परपुरंजय। समयं नाभिजानाति कृतार्थः प्लवगेश्वरः ॥७७॥
वर्षाः समयकालं तु प्रतिज्ञाय हरीश्वरः। व्यतीतांश्चतुरो मासान् विहरन्नावबुध्यते ॥७८॥
सामात्यपरिषत्क्रीडन् पानमेवोपसेवते। शोकदीनेषु नास्मासु सुग्रीवः कुरुते दयाम् ॥७९॥
उच्यतां गच्छ सुग्रीवस्त्वया वत्स महाबल। मम रोषस्य यद्रूपं ब्रूयाश्चैनमिदं वचः ॥८०॥
न च संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः। समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः ॥८१॥
एक एव रणे वाली शरेण निहतो मया। त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम् ॥८२॥
तदेवं विहिते कार्ये यद्धितं पुरुषर्षभ। तत्तद्ब्रूहि नरश्रेष्ठ त्वर कालव्यतिक्रमः ॥८३॥

कुरुष्व सत्यं मयि वानरेश्वर प्रतिश्रुतं धर्ममवेक्ष्य शाश्वतम्।
मा वालिनं प्रेत्य गतो यमक्षयं त्वमद्य पश्येर्मम चोदितैः शरैः ॥८४॥

वाले, विद्युत् के समान देदीप्यमान, खींचे हुए मेरे उग्र धनुष को देखना चाहते हो ॥ ७४ ॥ संग्राम में क्रोध में आये हुए वज्र के समान भयंकर घोष वाले मेरे घोर ज्यातल निर्घोष को क्या तुम पुनः सुनना चाहते हो ॥७५॥ वीर राजकुमार ! तुम जैसा अद्वितीय वीर मेरा सहायक है तथा मेरे निजी पराक्रम को जानते हुए सुग्रीव मेरी चिन्ता क्यों नहीं कर रहा है ॥ ७६ ॥ हे शत्रुंजयी लक्ष्मण ! जिस सीतान्वेषण कार्य सिद्धि के लिये वालिवध आदि काम आरम्भ किया था, वह सफल मनोरथ होने पर वनवासियों का राजा सुग्रीव भूल गया ॥७७॥ वनवासी राजा सुग्रीव ने वर्षा के चतुर्मास के पश्चात् सीतान्वेषण की प्रतिज्ञा की थी, किन्तु वे चार मास समाप्त हो गये। विषयवासना में लिप्त सुग्रीव इसको नहीं जान रहे हैं ॥ ७८ ॥ मन्त्रिमण्डल के सहित तथा सभा सदस्यों के साथ वह क्रीडापूर्वक मद्य सेवन कर रहा है। शोक से दीन-दुःखी हम लोगों पर अब सुग्रीव दया नहीं करता ॥ ७९ ॥ हे वीर ! तुम जाकर सुग्रीव से यह कहो और मेरे क्रोध का कितना भयंकर परिणाम होता है, यह बात भी उसे बताओ ॥ ८० ॥ सुग्रीव से यह भी कहो कि वह मार्ग अभी बन्द नहीं हुआ है जिस रास्ते से मर कर बाली गया है। हे सुग्रीव ! अपनी प्रतिज्ञा का दृढ़तापूर्वक पालन करो, बाली के मार्ग के पथिक मत बनो ॥ ८१ ॥ संग्राम में मैंने अपने बाण से अकेले बाली को मारा था, किन्तु प्रतिज्ञाभ्रष्ट तुम जैसे अनृतवादी को बन्धु-बान्धवों के सहित मारूँगा ॥ ८२ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इन बातों के अतिरिक्त इस कार्यसिद्धि के लिये हित वाली जो बात भी उचित समझते हो, सुग्रीव से कहो। इसके लिये तुम शीघ्रता करो, समय न बीतने पाये ॥ ८३ ॥ हे वनवासी सम्राट ! मेरे द्वारा बतायें हुए इस परम्परागत शाश्वत धर्म को देखते हुए तुम इसका पालन करो। बाली के पथ के अनुयायी होते हुए यमराज पुरी में मेरे बाणों से मर कर तुम आज बाली का दर्शन मत करो ॥ ८४ ॥ जिसका क्रोध बढ़ा हुआ है, जो करुणामय विलाप कर रहा है, ऐसे दीन अपने ज्येष्ठ भ्राता रामचन्द्र को देख कर मानववंशावतंस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स पूर्वजं तीव्रविवृद्धकोपं लालप्यमानं प्रसमीक्ष्य दीनम् ।
चकार तीव्रां मतिमुग्रतेजा हरीश्वरे मानववंशनाथः ॥८५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे शरद्वर्णनं नाम त्रिंशः सर्गः ॥३०॥

एकत्रिंशः सर्गः

लक्ष्मणक्रोधः

स राघवं दीनमदीनसत्त्वं शोकाभिपन्नं समुदीर्णकोपम् ।
नरेन्द्रसूनुर्नरदेवपुत्रं रामानुजः पूर्वजमित्युवाच ॥ १ ॥
न वानरः स्थास्यति साधुवृत्ते न मंस्यते कर्मफलानुषङ्गान् ।
न भोक्ष्यते वानरराज्यलक्ष्मीं तथा हि नाभिक्रमतेऽस्य बुद्धिः ॥ २ ॥
मतिक्षयाद्ग्राम्यसुखेषु सक्तस्तव प्रसादप्रतिकारबुद्धिः ।
हतोऽग्रजं पश्यतु वीर तस्य न राज्यमेवं विगुणस्य देयम् ॥ ३ ॥

उग्र विचार वाले लक्ष्मण ने सुग्रीव के प्रति रोषमय क्रियात्मक निर्णय किया (अर्थात् राम के कथन को व्यावहारिक रूप देने का निश्चय किया) ॥ ८५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'शरद्-वर्णन' विषयक तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३० ॥

एकत्तीसवां सर्ग

लक्ष्मण का क्रोध

महापराक्रमी, अत्यन्त शोक से आक्रान्त, जिस का क्रोध बढ़ा हुआ है, ऐसे दीन दुःखी राजकुमार अपने बड़े भ्राता रामचन्द्र से उनके छोटे भाई राजकुमार लक्ष्मण ने इस प्रकार कहा ॥ १ ॥ यह वनवासी राजा अब सज्जनों के पथ का अनुवर्त्तन नहीं कर सकता, क्योंकि हम लोगों के उपकार के ऋण को यह नहीं समझता। यह वनवासियों की राजलक्ष्मी का अब उपभोग नहीं कर सकता। इसकी बुद्धि पूर्व में जैसी थी अब प्रतिज्ञा पालन में वैसी नहीं रही ॥ २ ॥ मदावलेप के कारण बुद्धि भ्रष्ट हो जाने से विषय भोगों में आमूल लिप्त हो रहा है। आप के कृपामय उपकार का प्रतिकार करना इसकी बुद्धि में नहीं आ रहा है। अब यह मर कर अपने ज्येष्ठ भाई का दर्शन करे। चरित्र गुण हीन व्यक्ति को राज्य नहीं देना चाहिये ॥ ३ ॥ अब मैं अपने क्रोध के वेग को रोक नहीं सकता। मिथ्यावादी सुग्रीव का मैं आज वध करूंगा।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न धारये कोपमुदीर्णवेगं निहन्मि सुग्रीवमसत्यमद्य ।
हरिप्रवीरैः सह वालिपुत्रो नरेन्द्रपुत्र्या विचयं करोतु ॥ ४ ॥
तमात्तबाणासनमुत्पतन्तं निवेदितार्थं रणचण्डकोपम् ।
उवाच रामः परवीरहन्ता स्ववेक्षितं सानुनयं च वाक्यम् ॥ ५ ॥
न हि वै त्वद्विधो लोके पापमेवं समाचरेत् । कोपमार्येण यो हन्ति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥
नेदमद्य त्वया ग्राह्यं साधुवृत्तेन लक्ष्मण । तां प्रीतिमनुवर्तस्व पूर्ववृत्तं च संगतम् ॥ ७ ॥
सामोपहितया वाचा रूक्षाणि परिवर्जयन् । वक्तुमर्हसि सुग्रीवं व्यतीतं कालपर्यये ॥ ८ ॥
सोऽग्रजेनानुशिष्टार्थो यथावत्पुरुषर्षभः । प्रविवेश पुरीं वीरो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ ९ ॥
ततः शुभमतिः प्राज्ञो भ्रातुः प्रियहिते रतः । लक्ष्मणः प्रतिसंरब्धो जगाम भवनं कपेः ॥१०॥
शक्रबाणासनप्रख्यं धनुः कालान्तकोपमम् । प्रगृह्य गिरिशृङ्गाभं मन्दरः सानुमानिव ॥११॥
यथोक्तकारी वचनमुत्तरं चैव सोत्तरम् । बृहस्पतिसमो बुद्ध्या मत्त्वा रामानुजस्तदा ॥१२॥
कामक्रोधसमुत्थेन भ्रातुः कोपाग्निना वृतः । प्रभञ्जन इवाप्रीतः प्रययौ लक्ष्मणस्तदा ॥१३॥
सालतालाश्वकर्णांश्च तरसा पातयन् बहून् । पर्यस्यन् गिरिकूटानि द्रुमानन्यांश्च वेगितः ॥१४॥
शिलाश्च शकलीकुर्वन् पद्भ्यां गज इवाशुगः । दूरमेकपदं त्यक्त्वा ययौ कार्यवशाद्द्रुतम् ॥१५॥
तामपश्यद्बलाकीर्णां हरिराजमहापुरीम् । दुर्गामिक्ष्वाकुशार्दूलः किष्किन्धां गिरिसंकटे ॥१६॥
रोषात्प्रस्फुरमाणोष्ठः सुग्रीवं प्रति लक्ष्मणः । ददर्श वानरान् भीमान् किष्किन्धाया बहिश्चरान् ॥ १७॥

बालिपुत्र अंगद वनवासी वीरों के साथ राजकुमारी जानकी का अन्वेषण करे ॥ ४ ॥ धनुष बाण को लेकर राम के कहे हुए सन्देश को सुनाने के लिये जाते हुए अत्यन्त क्रोध में आये हुए लक्ष्मण से शत्रुसैन्यसंहारी रामचन्द्र नम्रता पूर्वक बोले ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण ! इस मानव समाज में तुम जैसे वीर को ऐसा पाप नहीं करना चाहिये । जो आये क्रोध को विवेक से शान्त कर देता है, वह वीर पुरुषोत्तम कहलाता है ॥६॥ हे राजकुमार लक्ष्मण ! तुम्हें सज्जन चरित्र वाले सुग्रीव का वध करने की इच्छा नहीं करनी चाहिये । उस प्रेम तथा प्रीति का पालन करो जो हम दोनों के बीच में हुई है ॥ ७ ॥ कठोर वचनों को छोड़ कर शान्ति पूर्वक समय के अतिक्रमण के सम्बन्ध में सुग्रीव से बातें करना ॥ ८ ॥ यथावत् अपने बड़े भाई रामचन्द्र का सन्देश लेकर शत्रुंजयी वीर लक्ष्मण ने किष्किन्धा नगरी में प्रवेश किया ॥ ९ ॥ पवित्र बुद्धि वाले, अपने बड़ भाई रामचन्द्र के हित में संलग्न लक्ष्मण ने क्रोध पूर्वक सुग्रीव के भवन को प्रस्थान किया ॥१०॥ काल के समान प्राण घातक, इन्द्र धनुष को ले कर लक्ष्मण शिखायुक्त मन्दराचल के समान प्रतीत होने लगे (अर्थात् साक्षात् मूर्त्तिमान् वीर रस के रूप में दिखाई देने लगे) ॥ ११ ॥ स्पष्ट वक्ता, राम की आज्ञानुसार वहां जा कर क्या उत्तर-प्रत्युत्तर होगा, ऐसे सोचते हुए बृहस्पति के समान बुद्धि वाले, रामचन्द्र के छोटे भाई उस समय ॥१२॥ काम जन्य अपने भाई के क्रोध से उत्पन्न हुए क्रोध की अग्नि से परिपूर्ण, अप्रसन्न लक्ष्मण वायु के समान वेग से चल पड़े ॥ १३ ॥ अपने वेग से साल, तमाल, अश्वकर्ण को बलपूर्वक गिराते हुए, वृक्षों का, पर्वतीय चट्टानों को इधर-उधर फेंकते हुए ॥ १४ ॥ पर्वत की पाषाण शिलाओं को अपने पैरों से टुकड़-टुकड़ करते हुए कार्यवश मन्थर गति को छोड़कर लम्बे-लम्बे पग डालते हुए लक्ष्मण चलने लगे ॥ १५ ॥ पर्वतों के बीच में सेनाओं से घिरी हुई राजा सुग्रीव की महापुरी दुर्गमनीय किष्किन्धा को वीर लक्ष्मण ने देखा ॥ १६ ॥ सुग्रीव के प्रति क्रुद्ध होने के कारण जिनका अधर कम्पित हो रहा है, ऐसे लक्ष्मण ने किष्किन्धा से बाहर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तं दृष्ट्वा वानराः सर्वे लक्ष्मणं पुरुषर्षभम् । शैलशृङ्गाणि शतशः प्रवृद्धांश्च महीरुहान् ॥१८॥
जगृहुः कुञ्जरप्रख्या वानराः पर्वतान्तरे ।

तान् गृहीतप्रहरणान् हरीन् दृष्ट्वा तु लक्ष्मणः । बभूव द्विगुणं क्रुद्धो वह्निन्धन इवानलः ॥१९॥
तं ते भयपरीताङ्गाः क्रुद्धं दृष्ट्वा प्लवंगमाः । कालमृत्युयुगान्ताभं शतशो विद्रुता दिशः ॥२०॥
ततः सुग्रीवभवनं प्रविश्य हरिपुंगवाः । क्रोधमागमनं चैव लक्ष्मणस्य न्यवेदयन् ॥२१॥
तारया सहितः कामी सक्तः कपिवृषो रहः । न तेषां कपिवीराणां शुश्राव वचनं तदा ॥२२॥
ततः सचिवसंदिष्टा हरयो रोमहर्षणाः । गिरिकुञ्जरमेघाभा नगर्या निर्ययुस्तदा ॥२३॥
नखदंष्ट्रायुधा घोराः सर्वे विकृतदर्शनाः । सर्वे शार्दूलदर्पाश्च सर्वे च विकृताननाः ॥२४॥
दशनागबलाः केचित्केचिद्दशगुणोत्तराः । केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥२५॥
कृत्स्नां हि कपिभिर्व्याप्तां द्रुमहस्तैर्महाबलैः । अपश्यल्लक्ष्मणः क्रुद्धः किष्किन्धां तां दुरासदाम् ॥२६॥
ततस्ते हरयः सर्वे प्राकारपरिघान्तरात् । निष्क्रम्योदग्रसत्त्वास्तु तस्थुराविष्कृतं तदा ॥२७॥
सुग्रीवस्य प्रमादं च पूर्वजस्यार्थमात्मवान् । बुद्ध्वा कोपवशं वीरः पुनरेव जगाम सः ॥२८॥
स दीर्घोष्णमहोच्छ्वासः कोपसंरक्तलोचनः । बभूव नरशार्दूलः सधूम इव पावकः ॥२९॥
बाणशल्यस्फुरज्जिह्वः सायकासनभोगवान् । स्वतेजोविषसङ्घातः पञ्चास्य इव पन्नगः ॥३०॥
तं दीप्तमिव कालाग्निं नागेन्द्रमिव कोपितम् । समासाद्याङ्गदस्त्रासाद्विषादमगमद्भृशम् ॥३१॥

घूमते हुए भयंकर वनवासियों को देखा ॥१७॥ नरश्रेष्ठ लक्ष्मण को देखकर विशालकाय वे वनवासी भय से पर्वत की चोटियों पर, पर्वतीय अनेक वृक्षों पर तथा गुफाओं में छिप गये ॥ १८ ॥ शस्त्रधारी वनवासी सैनिकों को देखकर लक्ष्मण का क्रोध द्विगुणित हो गया, जैसे बहुत इन्धन को प्राप्तकर अग्नि प्रदीप्त हो उठती है ॥ १९ ॥ प्रलयकालीन मृत्यु के समान क्षुब्ध लक्ष्मण को देखकर हजारों भयभीत वनवासी सैनिक दिशाओं में भाग गये ॥ २० ॥ वहाँ से भागकर सुग्रीव के राजभवन में पहुँचे। कुछ वनवासी सैनिकों ने क्रोधावेश में आये हुए लक्ष्मण का समाचार सुनाया ॥ २१ ॥ कामासक्त, वनवासी श्रेष्ठ सुग्रीव ने तारा प्रभृति स्त्रियों के साथ होने के कारण आये हुए वनवासी वीरों की बात पर ध्यान नहीं दिया ॥ २२ ॥ पश्चात् मन्त्रियों के आदेश से हाथी तथा मेघ के समान विशालकाय भयंकर वनवासी नगरी से बाहर आये ॥ २३ ॥ नख तथा दन्त ही जिनके शस्त्र हैं, ऐसे वे वनवासी भयंकर शरीरवाले, सिंह के समान दाढ़ वाले तथा विकराल मुख वाले थे ॥ २४ ॥ कितने ही दस हाथियों के साथ युद्ध करने की क्षमता रखने वाले, कितने ही सौ हाथियों के साथ युद्ध की क्षमता वाले तथा कई हजारों हाथियों के साथ युद्ध करने की क्षमता वाले उस समूह में थे ॥ २५ ॥ वृक्ष की शाखाओं को हाथ में लिये हुए वीर सैनिकों से व्याप्त क्रुद्ध लक्ष्मण ने दुर्गमनीय किष्किन्धा नगरी को देखा ॥ २६ ॥ तदनन्तर नगर का चारदीवारी तथा खाईयों से बाहर निकलकर वे बलशाली वनवासी लोग लक्ष्मण के समक्ष खड़े हो गये ॥ २७ ॥ सुग्रीव की असावधानी तथा रामचन्द्र के गुरुतर कार्य को देखकर विचारशील वीर लक्ष्मण को पुनः क्रोध आ गया ॥ २८ ॥ वे गरम तथा लम्बी सांस ले रहे थे। क्रोध से उनकी आंखें लाल हो रही थीं। उस समय नरसिंह लक्ष्मण धूम युक्त अग्नि के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ २९ ॥ जिसके बाण ही लेलिह्यमान जिह्वा के समान थे, धनुष सर्प के शरीर के समान था, लक्ष्मण का अविसह्य तेज ही जहाँ विष के समान था, इस प्रकार उस समय लक्ष्मण विशाल मुखवाले सर्प के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ३० ॥ प्रदीप्त कालाग्नि के समान,

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सोऽङ्गदं रोषताम्राक्षः संदिदेश महायशाः । सुग्रीवः कथ्यतां वत्स ममागमनमित्युत ॥३२॥
एष रामानुजः प्राप्तस्त्वत्सकाशमरिंदमः । भ्रातुर्व्यसनसंतप्तो द्वारि तिष्ठति लक्ष्मणः ॥३३॥
तस्य वाक्ये यदि रुचिः क्रियतां साधु वानर । इत्युक्त्वा शीघ्रमागच्छ वत्स वाक्यमिदं मम ॥३४॥
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा शोकाविष्टोऽङ्गदोऽब्रवीत् । पितुः समीपमागम्य सौमित्रिरयमागतः ॥३५॥

अथाङ्गदस्तस्य वचो निशम्य संभ्रान्तभावः परिदीनवक्त्रः ।
निपत्य तूर्णं नृपतेस्तरस्वी ततः कुमारश्चरणौ ववन्दे ॥३६॥
संगृह्य पादौ पितुरुग्रतेजा जग्राह मातुः पुनरेव पादौ ।
पादौ रुमायाश्च निपीडयित्वा निवेदयामास ततस्तमर्थम् ॥३७॥

स निद्रामदसंवीतो वानरो न विबुद्धवान् । बभूव मदमत्तश्च मदनेन च मोहितः ॥३८॥
ततः किलकिलां चक्रुर्लक्ष्मणं प्रेक्ष्य वानराः । प्रसादयन्तस्तं क्रुद्धं भयमोहितचेतसः ॥३९॥
ते महौघनिभं दृष्ट्वा वज्राशनिसमस्वनम् । सिंहनादं समं चक्रुर्लक्ष्मणस्य समीपतः ॥४०॥
तेन शब्देन महता प्रत्यबुध्यत वानरः । मदविह्वलताम्राक्षो व्याकुलस्रग्विभूषणः ॥४१॥
अथाङ्गदवचः श्रुत्वा तेनैव च समागतौ । मन्त्रिणौ वानरेन्द्रस्य संमतोदारदर्शिनौ ॥४२॥
प्लक्षश्चैव प्रभावश्च मन्त्रिणावर्थधर्मयोः । वक्तुमुच्चावचं प्राप्तं लक्ष्मणं तौ शशंसतुः ॥४३॥

कुपित गजराज के समान लक्ष्मण के समीप भयभीत अंगद जाकर अत्यन्त दुःखी हो गये ॥ ३१ ॥ क्रोध से जिनकी आंखें रक्तवर्ण हो रही हैं, ऐसे महायश वीर लक्ष्मण ने अंगद से कहा—हे तात ! मेरे आने का समाचार सुग्रीव को सुना दो ॥ ३२ ॥ अपने भाई के दुःख से दुःखी अरिमर्दन, रामचन्द्र का छोटा भाई लक्ष्मण तुम्हारे द्वार पर खड़ा है ॥३३॥ यदि उनकी बात में रुचि हो, तो वनवासी वीर उस वचन का सत्कार करे। हे वत्स अंगद ! मेरे इन वचनों को कहकर तुम शीघ्र यहाँ आ जाओ ॥ ३४ ॥ लक्ष्मण की इन बातों को सुनकर शोकाक्रान्त अंगद ने अपने पिता सुग्रीव के समीप जाकर सुमित्रानन्दन लक्ष्मण आये हैं, ऐसा कहा ॥ ३५ ॥ लक्ष्मण की रोषपूर्ण बातों को सुनकर घबराए हुए म्लानमुख अंगद ने राजमहल में जाकर राजा सुग्रीव के चरणों को छू कर प्रणाम किया ॥ ३६ ॥ उग्र तेजवाले अंगद ने पिता को प्रणाम करने के पश्चात् अपनी माता तारा के चरणों को छूकर प्रणाम किया। तदनन्तर कनिष्ठ माता रुमा के चरणों को प्रणाम कर लक्ष्मण के सन्देश को सुनाया ॥ ३७ ॥ किन्तु उस समय कामासक्त, मदमत्त तथा निद्रातुर वनवासिराज सुग्रीव ने इस पर ध्यान नहीं दिया ॥ ३८ ॥ उसी समय भय से उद्विग्न चित्त वाले वीर वनवासियों ने क्रुद्ध लक्ष्मण को प्रसन्न करने के लिये उन्हें देखकर किलकारियाँ मारना आरम्भ कर दिया ॥३९॥ वे वनवासी देखते ही धारापात शब्द के समान, कड़कते हुए इन्द्र वज्र के समान लक्ष्मण के समीप सिंह नाद करने लगे ॥ ४० ॥ मद से विह्वल, आंखें जिसकी लाल हो रही हैं, माला विभूषित, घबराया हुआ वनवासी राजा सुग्रीव उनके महान् तीव्र शब्दों को सुनकर निद्रा से उठ पड़ा ॥४१॥ अंगद की बात को सुनकर तथा अंगद के साथ ही आये हुए राजा सुग्रीव के प्रिय पात्र उदार तथा प्रतिभाशाली दो मन्त्री ॥ ४२ ॥ जिनका नाम प्लक्ष और प्रभाव था, जो धर्म तथा अर्थ विभाग के अध्यक्ष थे तथा राजा सुग्रीव को समुचित सम्मति दिया करते थे, उन दोनों ने भी लक्ष्मण के आने का समाचार सुग्रीव को सुनाया ॥ ४३ ॥ देवेन्द्र के समान बैठे हुए सुग्रीव के समीप उन दोनों मन्त्रियों ने बैठते हुये निश्चयार्थक वाक्यों के द्वारा सुग्रीव को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रसादयित्वा सुग्रीवं वचनैः सामनिश्चितैः । आसीनं पर्युपासीनौ यथा शक्रं मरुत्पतिम् ॥४४॥
सत्यसन्धौ महाभागौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । वयस्यभावं संप्राप्तौ राज्यार्हौ राज्यदायिनौ ॥४५॥
तयोरेको धनुष्पाणिर्द्वारि तिष्ठति लक्ष्मणः । यस्य भीताः प्रवेपन्तो नादान् मुञ्चन्ति वानराः ॥४६॥
स एष राघवभ्राता लक्ष्मणो वाक्यसारथिः । व्यवसायरथः प्राप्तस्तस्य रामस्य शासनात् ॥४७॥
अयं च दयितो राजंस्तारायास्तनयोऽङ्गदः । लक्ष्मणेन सकाशं ते प्रेषितस्त्वरयानघ ॥४८॥
सोऽयं रोषपरीताक्षो द्वारि तिष्ठति वीर्यवान् । वानरान् वानरपते चक्षुषा निर्दहन्निव ॥४९॥
तस्य मूर्ध्ना प्रणम्य त्वं सपुत्रः सह बन्धुभिः । गच्छ शीघ्रं महाराज रोषो ह्यस्य निवर्त्यताम् ॥५०॥
यदाह रामो धर्मात्मा तत्कुरुष्व समाहितः । राजंस्तिष्ठ स्वसमये भव सत्यप्रतिश्रवः ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे लक्ष्मणक्रोधो नाम एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः

हनूमन्मन्त्रः

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवः सचिवैः सह । लक्ष्मणं कुपितं श्रुत्वा मुमोचासनमात्मवान् ॥ १ ॥

प्रसन्न करते हुए लक्ष्मण के आने का सन्देश दिया ॥ ४४ ॥ सत्यप्रतिज्ञ, भाग्यशाली, राजपद प्राप्त करने योग्य दोनों भाई राम-लक्ष्मण जिन्होंने आपको राज्य प्रदान किया है, इस सामान्य मनुष्य की वेषभूषा में यहाँ आये हुए हैं ॥ ४५ ॥ उन दोनों में से एक लक्ष्मण हाथ में धनुष लिये द्वार पर खड़े हैं, जिनको देखकर भय के मारे कांपते हुए वनवासी गण चीत्कार शब्द कर रहे हैं ॥ ४६ ॥ ये उनके छोटे भाई, रामचन्द्र का वचन ही जिनका सारथि है और उनका उद्योग ही जिनका रथ है, रामचन्द्र की आज्ञा से वे लक्ष्मण आये हुए हैं ॥ ४७ ॥ हे पवित्रान्तःकरण राजन्! तारा का प्रिय पुत्र यह अंगद जिसको कि लक्ष्मण ने तुम्हारे पास भेजा है, वह आपके समीप उपस्थित है ॥ ४८ ॥ हे वनवासियों के सम्राट्! क्रोध से जिनकी आंखें रक्तवर्ण हो रही हैं तथा जो क्रोधपूर्ण नेत्रों से वनवासी वीरों को जला रहे हैं, ऐसे पराक्रमी लक्ष्मण द्वार पर खड़े हैं ॥ ४९ ॥ हे महाराज! पुत्र बन्धु बान्धव सहित आप उनके समीप शीघ्र जाकर उन्हें सिर झुका कर प्रणाम करें और उनके उठे हुए क्रोध को शान्त करें ॥ ५० ॥ धर्मात्मा रामचन्द्र ने जो बातें कही हैं, उन्हें सावधानी पूर्वक कीजिये तथा उन्हें प्रसन्न कीजिये। हे महाराज! आप अपनी प्रतिज्ञा का पालन कीजिये तथा अपने को सत्य प्रमाणित कीजिये ॥ ५१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'लक्ष्मण का क्रोध' विषयक इकत्तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३१ ॥

बत्तीसवां सर्ग

हनुमान् की सम्मति

दोनों मन्त्रियों के साथ राजकुमार अंगद की बातों को सुन कर तथा लक्ष्मण के क्रोध का समाचार सुन कर बुद्धिमान् सुग्रीव ने आसन को छोड़ दिया ॥ १ ॥ कार्य के गुरुत्व तथा लघुत्व पर विचार करने

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सचिवानब्रवीद्वाक्यं निश्चित्य गुरुलाघवम् । मन्त्रज्ञान् मन्त्रकुशलो मन्त्रेषु परिनिष्ठितान् ॥ २ ॥
न मे दुर्व्याहृतं किंचिन्नापि मे दुरनुष्ठितम् । लक्ष्मणो राघवभ्राता क्रुद्धः किमिति चिन्तये ॥ ३ ॥
असुहृद्भिर्ममामित्रैर्नित्यमन्तरदर्शिभिः । मम दोषानसंभूताञ्श्रावितो राघवानुजः ॥ ४ ॥
अत्र तावद्यथाबुद्धि सर्वैरेव यथाविधि । भावस्य निश्चयस्तावद्विज्ञेयो निपुणं शनैः ॥ ५ ॥
न खल्वस्ति मम त्रासो लक्ष्मणान्नापि राघवात् । मित्रं त्वस्थानकुपितं जनयत्येव संभ्रमम् ॥ ६ ॥
सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं परिपालनम् । अनित्यत्वात्तु चित्तानां प्रीतिरल्पेऽपि भिद्यते ॥ ७ ॥
अतो निमित्तं त्रस्तोऽहं रामेण तु महात्मना । यन्ममोपकृतं शक्यं प्रतिकर्तुं न तन्मया ॥ ८ ॥
सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु हनुमान् मारुतात्मजः । उवाच स्वेन तर्केण मध्ये वानरमन्त्रिणाम् ॥ ९ ॥
सर्वथा नैतदाश्चर्यं यस्त्वं हरिगणेश्वर । न विस्मरसि सुस्निग्धमुपकारकृतं शुभम् ॥ १० ॥
राघवेण तु वीरेण भयमुत्सृज्य दूरतः । त्वत्प्रियार्थं हतो वाली शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ११ ॥
सर्वथा प्रणयात्क्रुद्धो राघवो नात्र संशयः । भ्रातरं संग्रहितवाँल्लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥ १२ ॥
त्वं प्रमत्तो न जानीषे कालं कालविदां वर । फुल्लसप्तच्छदश्यामा प्रवृत्ता तु शरच्छिवा ॥ १३ ॥
निर्मलग्रहनक्षत्रा द्यौः प्रनष्टबलाहका । प्रसन्नाश्च दिशः सर्वाः सरितश्च सरांसि च ॥ १४ ॥

वाले, मन्त्र के ज्ञाता, मन्त्र-प्रयोग विशारद सुग्रीव मन्त्रज्ञान में अत्यन्त कुशल उन अपने मन्त्रियों से इस प्रकार बोले ॥ २ ॥ मैंने कोई ऐसी अनुचित या बुरी बात नहीं कही और न किसी प्रकार का कोई दुर्व्यवहार ही किया है, फिर रामचन्द्र के लघुभ्राता लक्ष्मण मुझ पर क्यों क्रुद्ध हो रहे हैं, मैं इस पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर रहा हूं ॥ ३ ॥ हमारे अशुभ चिन्तक शत्रुओं ने जो मेरे दोषान्वेषण में तत्पर रहते हैं, मेरे उन दोषों को जिनको मैंने किया भी नहीं है, राम के भ्राता लक्ष्मण को जाकर सुनाया है ॥ ४ ॥ इस विषय में मेरे जाने के पूर्व अपनी बुद्धि के अनुसार लक्ष्मण के भाव भंग को जानने का प्रयत्न करें और अच्छे प्रकार उनके क्रोध का कारण जानें ॥ ५ ॥ एक सच्चे मित्र के नाते मुझे मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र तथा उनके लघुभ्राता लक्ष्मण से कोई भय नहीं है, किन्तु अकारण असमय में मित्र का कुपित हो जाना घबराहट को पैदा कर रहा है ॥६॥ मैत्री का बनाना बहुत सरल है, किन्तु उसका यथावत् पालन करना अत्यन्त कठिन है। चित्त की चंचलता के कारण अल्प हेतु से भी मैत्री टूट जाती है ॥७॥ इन कारणों से मैं भयभीत हो रहा हूं। महात्मा रामचन्द्र ने जो मेरा उपकार किया है, उसके प्रतिकार की शक्ति मुझमें नहीं है ॥ ८ ॥ महाराजा सुग्रीव के ऐसा कहने पर वनवासियों में सर्वश्रेष्ठ हनुमान् ने अपने तर्क तथा प्रतिभा से पूर्ण वाक्य मन्त्रियों के बीच में बोले ॥ ९ ॥ हे वनवासियों के सम्राट् ! आप विश्वस्त होकर अपने उपकारी के उपकार को नहीं भूलते, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है (अर्थात् महापुरुषों का यह स्वभाव ही है) ॥ १० ॥ निर्भय वीर रामचन्द्र ने भय-शंकाओं को दूर करके तुम्हारे प्रिय तथा हित के लिये इन्द्र तुल्य पराक्रमी बाली को मारा है ॥ ११ ॥ आप पर रामचन्द्र का यह स्नेह पूर्ण क्रोध है। इसी कारण रामचन्द्र ने सर्व-गुण सम्पन्न अपने भाई लक्ष्मण को आप के पास भेजा है ॥ १२ ॥ हे समय का ज्ञान रखने वालों में श्रेष्ठ राजन् ! असावधानी के कारण रामचन्द्र को दिये हुए समय का ध्यान आपको नहीं रहा है। सप्तच्छद तथा तमालपत्र को विकसित करती हुई शरद् ऋतु का आगमन हो गया है ॥ १३ ॥ आकाश में ग्रह-नक्षत्रों का निर्मल दर्शन हो रहा है, मेघों की समाप्ति हो गई है, सम्पूर्ण दिशाएँ, नदियाँ तथा सरोवर निर्मल हो गये हैं ॥ १४ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्तमुद्योगकालं तु नावैषि हरिपुंगव। त्वं प्रमत्त इति व्यक्तं लक्ष्मणोऽयमिहागतः ॥१५॥
आर्तस्य हृतदारस्य परुषं पुरुषान्तरात्। वचनं मर्षणीयं ते राघवस्य महात्मनः ॥१६॥
कृतापराधस्य हि ते नान्यत्पश्याम्यहं क्षमम्। अन्तरेणाञ्जलिं बद्ध्वा लक्ष्मणस्य प्रसादनात् ॥१७॥
नियुक्तैर्मन्त्रिभिर्वाच्यो ह्यवश्यं पार्थिवो हितम्। अत एव भयं त्यक्त्वा ब्रवीम्यवधृतं वचः ॥१८॥
अभिक्रुद्धः समर्थो हि चापमुद्यम्य राघवः। सदेवासुरगन्धर्वं वशे स्थापयितुं जगत् ॥१९॥
न स क्षमः कोपयितुं यः प्रसाद्यः पुनर्भवेत्। पूर्वोपकारं स्मरता कृतज्ञेन विशेषतः ॥२०॥
तस्य मूर्ध्ना प्रणम्य त्वं सपुत्रः ससुहृज्जनः। राजंस्तिष्ठ स्वसमये भर्तुर्भार्येव तद्वशे ॥२१॥
न रामरामानुजशासनं त्वया कपीन्द्र युक्तं मनसाप्यपोहितुम्।
मनो हि ते ज्ञास्यति मानुषं बलं सराघवस्यास्य सुरेन्द्रवर्चसः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे हनूमन्मन्त्रो नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

हे वनवासी सम्राट्! उद्योग करने का समय आ गया है, जिसका ज्ञान आप को इस समय नहीं है। आप इस समय असावधान हैं, यह स्पष्ट है। इसी कारण लक्ष्मण यहाँ आये हैं ॥ १५ ॥ स्त्री हरण से दुःखी महात्मा रामचन्द्र के जो भी कठोर वचन किसी पुरुष के द्वारा आप के कान में आये, उन्हें आपको सहना चाहिये ॥ १६ ॥ आप से अपराध हो गया है, इसलिये हाथ जोड़कर लक्ष्मण को प्रसन्न करने के अतिरिक्त और दूसरा उपाय दृष्टि में नहीं आता ॥ १७ ॥ सम्मति पूछी जाने पर मन्त्रियों को राजा के हित की बात अवश्य कहनी चाहिये, इसलिये निर्भय होकर मैं आपके सामने यह निश्चित बात कहता हूं ॥ १८ ॥ क्रुद्ध होकर यदि समर्थ रामचन्द्र धनुष को उठा लें, तो देव-असुर-गन्धर्व सहित इस समस्त विश्व को अपने वश में कर सकते हैं ॥ १९ ॥ उस को क्रोधित कभी नहीं करना चाहिये, जिसको क्रुद्ध कर पुनः क्षमा याचना पूर्वक प्रसन्न करने की आवश्यकता हो। विशेषकर एक कृतज्ञ के नाते उनके पूर्व उपकार को समझते हुए आपको उन्हें प्रसन्न करना ही पड़ेगा ॥ २० ॥ अपने पुत्र और शुभ चिन्तकों के सहित आप उन्हें सिर झुका कर प्रणाम करें। हे राजन्! अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए आप उसी प्रकार उनके वशवर्त्ती रहें जैसे स्त्री अपने स्वामी के वश में रहती है ॥ २१ ॥ हे किष्किन्धा के सम्राट्! आप रामचन्द्र तथा लक्ष्मण की आज्ञा की मन से भी अवज्ञा न करें। इन्द्र के समान पराक्रमी राम-लक्ष्मण के बल को आप का अन्तःकरण जानता ही है ॥ २२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'हनुमान् की सम्मति' विषयक बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रयस्त्रिंशः सर्गः

तारासान्त्ववचनम्

अथ प्रतिसमादिष्टो लक्ष्मणः परवीरहा । प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धां रामशासनात् ॥ १ ॥
द्वारस्था हरयस्तत्र महाकाया महाबलाः । बभूवुर्लक्ष्मणं दृष्ट्वा सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः ॥ २ ॥
निःश्वसन्तं तु तं दृष्ट्वा क्रुद्धं दशरथात्मजम् । बभूवुर्हरयस्त्रस्ता न चैनं पर्यवारयन् ॥ ३ ॥
स तां रत्नमयीं श्रीमान् दिव्यां पुष्पितकाननाम् । रम्यां रत्नसमाकीर्णां ददर्श महतीं गुहाम् ॥ ४ ॥
हर्म्यप्रासादसंबाधां नानापण्योपशोभिताम् । सर्वकालफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभिताम् ॥ ५ ॥
देवगन्धर्वपुत्रैश्च वानरैः कामरूपिभिः । दिव्यमाल्याम्बरधरैः शोभितां प्रियदर्शनैः ॥ ६ ॥
चन्दनागरुपद्मानां गन्धैः सुरभिगन्धिनाम् । मैरेयाणां मधूनां च संमोदितमहापथाम् ॥ ७ ॥
विन्ध्यमेरुगिरिप्रख्यैः प्रासादैरुपशोभिताम् । ददर्श गिरिनद्यश्च विमलास्तत्र राघवः ॥ ८ ॥
अङ्गदस्य गृहं रम्यं मैन्दस्य द्विविदस्य च । गवयस्य गवाक्षस्य गजस्य शरभस्य च ॥ ९ ॥
विद्युन्मालेश्च संपातेः सूर्याक्षस्य हनूमतः । वीरबाहोः सुबाहोश्च नलस्य च महात्मनः ॥१०॥
कुमुदस्य सुषेणस्य तारजाम्बवतोस्तथा । दधिवक्त्रस्य नीलस्य सुपाटलसुनेत्रयोः ॥११॥

तेंतीसवां सर्ग

तारा को सान्त्वना वचन

सुग्रीव के लिये राम के संदेश देने पर शत्रुहन्ता लक्ष्मण ने राम की आज्ञा से रमणीय किष्किन्धा नगरी में प्रवेश किया ॥ १ ॥ विशाल काय महाबली जो भी वनवासी द्वारपाल उपस्थित थे, वे सभी लक्ष्मण को देखकर करबद्ध खड़े हो गये ॥ २ ॥ अत्यन्त क्रुद्ध, लम्बी सांस लेते हुए राजकुमार लक्ष्मण को देखकर किष्किन्धा के वनवासी भयभीत हो गये और उनके समीप कोई नहीं आया ॥ ३ ॥ दिव्य फूल जहाँ खिले हुए हैं, रत्नों से सुशोभित, इस प्रकार विशाल, रमणीय उस किष्किन्धा को लक्ष्मण ने देखा ॥ ४ ॥ वह नगरी विशाल राजमहलों से परिपूर्ण, नाना रत्नों से अलंकृत, सब ऋतु में फूलने फलने वाले वृक्षों से युक्त तथा अत्यन्त शोभायमान थी ॥ ५ ॥ दिव्य माला-अम्बर धारण करने वाले देव गन्धर्व-पुत्रों से युक्त, स्वेच्छया रूप धारण करने वाले वनवासी वीरों से पूर्ण, तथा अत्यन्त शोभायमान थी ॥ ६ ॥ चन्दन-अगर-पद्म की गन्ध से वह नगरी सुगन्धित हो रही थी। मैरेय तथा पद्म मधु से वहाँ के विशाल मार्ग सुगन्धित हो रहे थे ॥ ७ ॥ विन्ध्य तथा मेरु पर्वत के समान जिसमें अनेक राजमहल सुशोभित हो रहे थे। लक्ष्मण ने वहाँ विमल जलवाली नदियों को भी देखा ॥ ८ ॥ अंगद के रमणीय घर को, मैन्द तथा द्विविद के घर को, गवय, गवाक्ष, गज तथा शरभ के घर को ॥ ९ ॥ विद्युन्मालि, सम्पाति, सूर्याक्ष तथा हनुमान् के गृह को, वीरबाहु, सुबाहु तथा महात्मा नल के गृह को ॥ १० ॥ कुमुद, सुषेण, तार तथा जाम्बवान् के गृह को, दधिवक्त्र, नील, सुपाटल, सुनेत्र ॥ ११ ॥ इन मुख्य वनवासी वीरों के मुख्य रमणीय गृहों को प्रधान सड़कों के किनारे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतेषां कपिमुख्यानां राजमार्गे महात्मनाम् । ददर्श गृहमुख्यानि महासाराणि लक्ष्मणः ॥१२॥
पाण्डराभ्रप्रकाशानि दिव्यमाल्ययुतानि च । प्रभूतधनधान्यानि स्त्रीरत्नैः शोभितानि च ॥१३॥
पाण्डरेण तु सालेन परिक्षिप्तं दुरासदम् । वानरेन्द्रगृहं रम्यं महेन्द्रसदनोपमम् ॥१४॥
शुक्लैः प्रासादशिखरैः कैलासशिखरोपमैः । सर्वकालफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभितम् ॥१५॥
महेन्द्रदत्तैः श्रीमद्भिर्नीलजीमूतसंनिभैः । दिव्यपुष्पफलैर्वृक्षैः शीतच्छायैर्मनोहरैः ॥१६॥
हरिभिः संवृतद्वारं बलिभिः शस्त्रपाणिभिः । दिव्यमाल्यावृतं शुभ्रं तप्तकाञ्चनतोरणम् ॥१७॥
सुग्रीवस्य गृहं रम्यं प्रविवेश महाबलः । अवार्यमाणः सौमित्रिर्महाभ्रमिव भास्करः ॥१८॥
स सप्त कक्ष्या धर्मात्मा नानाजनसमाकुलाः । प्रविश्य सुमहद्गुप्तं ददर्शान्तःपुरं महत् ॥१९॥
हैमराजतपर्यङ्कैर्बहुभिश्च वरासनैः । महार्हास्तरणोपेतैस्तत्र तत्रोपशोभितम् ॥२०॥
प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वरम् । तन्त्रीगीतसमाकीर्णं समगीतपदाक्षरम् ॥२१॥
बह्वीश्च विविधाकारा रूपयौवनगर्विताः । स्त्रियः सुग्रीवभवने ददर्श स महाबलः ॥२२॥
दृष्टाभिजनसंपन्नाश्चित्रमाल्यकृतस्रजः । वरमाल्यकृतव्यग्रा भूषणोत्तमभूषिताः ॥२३॥
नातृप्तान्नापि च व्यग्रान्नानुदात्तपरिच्छदान् । सुग्रीवानुचरांश्चापि लक्षयामास लक्ष्मणः ॥२४॥
कूजितं नूपुराणां च काञ्चीनां निनदं तथा । स निशम्य ततः श्रीमान् सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् ॥२५॥
रोषवेगप्रकुपितः श्रुत्वा चाभरणस्वनम् । चकार ज्यास्वनं वीरो दिशः शब्देन पूरयन् ॥२६॥

लक्ष्मण ने देखा ॥ १२ ॥ श्वेत मेघ के समान प्रकाशित, सुगन्धित तथा मालाओं से युक्त, पर्याप्त धन-धान्य से पूर्ण तथा रमणीय स्त्रियों से परिपूर्ण गृहों को लक्ष्मण ने देखा ॥ १३ ॥ श्वेत पर्वतों से घिरे हुए, दुर्गमनीय, इन्द्र के महल के समान, वनवासी राजा सुग्रीव के रमणीय गृह को ॥ १४ ॥ कैलास पर्वत के शिखर के समान धवल, सम्पूर्ण ऋतु में फूलने फलने वाले वृक्षों से सुशोभित सुग्रीव के राजमहल को लक्ष्मण ने देखा ॥ १५ ॥ वह राजमहल देवेन्द्र के दिये हुए, शोभायमान नील मेघ के समान, मनोरम, शीतल छाया वाले तथा सवथा फूलने फलने वाले वृक्षों से पूर्ण था ॥ १६ ॥ शस्त्रधारी बलवान् वनवासी सैनिक जहाँ पहरा दे रहे थे, दिव्य मालाओं से जो अलंकृत हो रहा था, तपे हुए स्वर्ण से बने तोरण जहाँ लटक रहे थे ॥१७॥ बिना रुकावट के रमणीय सुग्रीव के महल में महाबली लक्ष्मण ने ऐसे प्रवेश किया, जिस प्रकार महामेघमाला में सूर्य प्रवेश करता है ॥ १८ ॥ इस प्रकार सात कक्षाओं को पार कर धर्मात्मा लक्ष्मण ने सवारी, आसन आदि उपयोगी वस्तुओं से पूर्ण, अत्यन्त गुप्त विशाल अन्तःपुर को देखा ॥ १९ ॥ सोने-चाँदी के पलंग, अनेक मूल्यवान् आसन तथा बहुमूल्यवान् बिछौनों को भी लक्ष्मण ने देखा ॥ २० ॥ राजमहल में प्रवेश करते ही वाणा गान से युक्त ताल आदि के सहित मधुर ध्वनि को लक्ष्मण ने सुना ॥ २१ ॥ नाना प्रकार के रूप-यौवन से गर्वित अनेक स्त्रियों को महाबली लक्ष्मण ने सुग्रीव के भवन में देखा ॥ २२ ॥ अच्छे कुल में उत्पन्न होने वाली, अच्छे फूलों की माला धारण करने वाली, उत्तम भूषणों से अलंकृत, उत्तम पुष्पमालाओं को पाने के लिये व्यग्र स्त्रियों को लक्ष्मण ने देखा ॥ २३ ॥ पश्चात् न अत्यन्त तृप्त थे, न घबराये हुए थे और न साधारण वस्त्र ही धारण किये थे, ऐसे सुग्रीव के अनुचरों को लक्ष्मण ने देखा ॥२४॥ राजमहल की स्त्रियों के नूपुर तथा कांची (तगड़ी) के मनोभिराम शब्दों को सुनकर श्रीमान् लक्ष्मण लज्जित हो गये ॥ २५ ॥ अन्तःकरण की आधि से अत्यन्त क्रुद्ध लक्ष्मण ने आभरणों के शब्द को सुनकर अपनी प्रत्यञ्चा का रव (टंकार) किया जिसके शब्द से सारी दिशाएँ गुञ्जायमान हो गयीं ॥ २६ ॥ चरित्र भूषण

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चारित्रेण महाबाहुरपकृष्टः स लक्ष्मणः । तस्थावेकान्तमाश्रित्य रामशोकसमन्वितः ॥२७॥
तेन चापस्वनेनाथ सुग्रीवः प्लवगाधिपः । विज्ञायागमनं त्रस्तः संचचाल वरासनात् ॥२८॥
अङ्गदेन यथा मह्यं पुरस्तात्प्रतिवेदितम् । सुव्यक्तमेष संप्राप्तः सौमित्रिर्भ्रातृवत्सलः ॥२९॥
अङ्गदेन समाख्यातं ज्यास्वनेन च वानरः । बुबुधे लक्ष्मणं प्राप्तं मुखं चास्य व्यशुष्यत ॥३०॥
ततस्तारां हरिश्रेष्ठः सुग्रीवः प्रियदर्शनाम् । उवाच हितमव्यग्रस्त्रासंभ्रान्तमानसः ॥३१॥
किं नु तत्कारणं सुभ्रु प्रकृत्या मृदुमानसः । सरोष इव संप्राप्तो येनायं राघवानुजः ॥३२॥
किं पश्यसि कुमारस्य रोषस्थानमनिन्दिते । न खल्वकारणे कोपमाहरेन्नरसत्तमः ॥३३॥
यदस्य कृतमस्माभिर्बुध्यसे किंचिदप्रियम् । तद्बुद्ध्या संप्रधार्याशु क्षिप्रमर्हसि भाषितुम् ॥३४॥
अथवा स्वयमेवैनं द्रष्टुमर्हसि भामिनि । वचनैः सान्त्वयुक्तैश्च प्रसादयितुमर्हसि ॥३५॥
त्वद्दर्शनविशुद्धात्मा न स कोपं करिष्यति । न हि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम् ॥३६॥
त्वया सान्त्वैरुपक्रान्तं प्रसन्नेन्द्रियमानसम् । ततः कमलपत्राक्षं द्रक्ष्याम्यहमरिंदमम् ॥३७॥

सा प्रस्खलन्ती मदविह्वलाक्षी प्रलम्बकाञ्चीगुणहेमसूत्रा ।
सुलक्षणा लक्ष्मणसंनिधानं जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः ॥३८॥
स तां समीक्ष्यैव हरीशपत्नीं तस्थावुदासीनतया महात्मा ।
अवाङ्मुखोऽभून्मनुजेन्द्रपुत्रः स्त्रीसंनिकर्षाद्विनिवृत्तकोपः ॥३९॥

से अलंकृत विशाल भुजा वाले लक्ष्मण, जो रामचन्द्र के शोक को देख कर स्वयं दुःखी हो रहे थे, किसी एकान्त स्थान का आश्रय लेकर बैठ गये ॥ २७ ॥ लक्ष्मण के ज्या शब्द को सुन कर, लक्ष्मण का आगमन हो गया है, ऐसा वनवासियों के राजा सुग्रीव ने समझा तथा भयभीत होकर अपने राजसिंहासन से नीचे उतर गये ॥ २८ ॥ राजकुमार अंगद ने पहले जैसा मुझ से निवेदन किया था, निश्चय ही भ्रातृवत्सल लक्ष्मण आ गये हैं, ऐसा मुझे प्रतीत हो रहा है ॥२९॥ अंगद के कथनानुसार तथा प्रत्यञ्चा के घोर शब्द से लक्ष्मण के आगमन को निश्चित जान कर भय से सुग्रीव का मुख सूख गया ॥३०॥ भय से जिसका मन उद्भ्रान्त हो रहा है, ऐसे वनवासियों के श्रेष्ठ राजा सुग्रीव प्रियदर्शना तारा से धैर्य के साथ हित वाले वचन बोले ॥ ३१ ॥ हे शुभानने ! राजकुमार लक्ष्मण के क्रुद्ध होने का क्या कारण है । ये तो स्वभाव से मृदु अन्तःकरण वाले हैं । रामचन्द्र के छोटे भाई लक्ष्मण जिस कारण क्रुद्ध अवस्था में यहाँ आये हैं, इसका निश्चय नहीं कर सका हूँ ॥ ३२ ॥ हे अनिन्दिते ! राजकुमार लक्ष्मण के कोप का क्या कारण है, इसका जानना आवश्यक है । यह नरश्रेष्ठ अकारण क्रोध नहीं कर सकते हैं ॥ ३३ ॥ यदि तुम्हारी समझ में हम लोगों से राम या लक्ष्मण का कोई अप्रिय आचरण हो गया है, तो बुद्धि से उसे शीघ्र ही निश्चित कर मुझे सूचित करो ॥३४॥ अथवा हे देवि ! तुम स्वयं लक्ष्मण के समीप जाओ और प्रिय शान्तिमय वाक्यों से उन्हें प्रसन्न करो ॥३५॥ तुम्हें देखकर वे विशुद्धात्मा कोप नहीं करेंगे, क्योंकि सज्जन महात्मा लोग स्त्रियों पर घातक क्रोध नहीं करते हैं ॥ ३६ ॥ तुम्हारे द्वारा क्षमा आदि मांग लेने पर तथा अत्यन्त प्रसन्न चित्त हो जाने पर पश्चात् शत्रुंजयी पुण्डरीकाक्ष लक्ष्मण को मैं देखूँगा ॥ ३७ ॥ मद की मादकता से जिसके नेत्र घूर्णित हो रहे हैं तथा गमन में भी स्खलन हो रहा है, कांची के स्वर्णमय सूत्र जिसके लटक रहे हैं, ऐसी उत्तम लक्षणों से परिपूर्ण, अत्यन्त नम्रावस्था में तारा लक्ष्मण के समीप पहुँची ॥ ३८ ॥ वनवासी सम्राट् की धर्मपत्नी तारा को देखकर उदासीन भाव को प्रकट करते हुए महात्मा व्रती राजकुमार ने मुख नीचे कर लिया । समीप में आई हुई स्त्री को देख कर उनका क्रोध शान्त हो गया ॥ ३९ ॥ पान की मादकता के कारण तथा राजकुमार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सा पानयोगाद्विनिवृत्तलज्जा दृष्टिप्रसादाच्च नरेन्द्रसूनोः ।
उवाच तारा प्रणयप्रगल्भं वाक्यं महार्थं परिसान्त्वपूर्वम् ॥४०॥
किं कोपमूलं मनुजेन्द्रपुत्र कस्ते न संतिष्ठति वाङ्निदेशे ।
कः शुष्कवृक्षं वनमापतन्तं दावाग्निमासीदति निर्विशङ्कः ॥४१॥

स तस्या वचनं श्रुत्वा सान्त्वपूर्वमशङ्कितम् । भूयः प्रणयदृष्टार्थं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥४२॥
किमयं कामवृत्तस्ते लुप्तधर्मार्थसंग्रहः । भर्ता भर्तृहिते युक्ते न चैनमवबुध्यसे ॥४३॥
न चिन्तयति राज्यार्थं नास्माञ्शोकपरायणान् । सामात्यपरिषत्तारे पानमेवोपसेवते ॥४४॥
स मासांश्चतुरः कृत्वा प्रमाणं प्लवगेश्वरः । व्यतीतांस्तान् मदव्यग्रो विहरन्नावबुध्यते ॥४५॥
न हि धर्मार्थसिद्ध्यर्थं पानमेवं प्रशस्यते । पानादर्थश्च धर्मश्च कामश्च परिहीयते ॥४६॥
धर्मलोपो महांस्तावत्कृते ह्यप्रतिकुर्वतः । अर्थलोपश्च मित्रस्य नाशे गुणवतो महान् ॥४७॥
मित्रं ह्यर्थगुणश्रेष्ठं सत्यधर्मपरायणम् । तद्द्वयं तु परित्यक्तं न तु धर्मे व्यवस्थितम् ॥४८॥
तदेवं प्रस्तुते कार्ये कार्यमस्माभिरुत्तरम् । यत्कार्यं कार्यतत्त्वज्ञे तदुदाहर्तुमर्हसि ॥ ४९ ॥

सा तस्य धर्मार्थसमाधियुक्तं निशम्य वाक्यं मधुरस्वभावम् ।
तारा गतार्थं मनुजेन्द्रकार्ये विश्वासयुक्तं तमुवाच भूयः ॥ ५० ॥

लक्ष्मण के प्रसन्न हो जाने के कारण जिसका भय तथा लज्जा दूर हो गई है, ऐसी तारा प्रेम तथा गर्व मिश्रित, सान्त्वनापूर्वक लक्ष्मण से यह बोली ॥ ४० ॥ हे राजकुमार ! आप के क्रोध का क्या कारण है, आप की आज्ञा को अवज्ञा कौन कर रहा है, सूखे वृक्षों वाले वन में दावाग्नि को दीप्त कर कौन अभागा निर्विशंक हो कर रहना चाहता है ॥ ४१ ॥ सांत्वनापूर्वक शंका रहित तारा की बात को सुनकर लक्ष्मण स्नेह पूर्वक यह वचन बोले ॥ ४२ ॥ धर्म-अर्थ को लुप्त करने वाला, तुम्हारा यह पति इस प्रकार का कामासक्त क्यों हो गया है। अपने पति का हित चाहने वाली तुम उन्हें क्यों नहीं समझाती हो ॥ ४३ ॥ राज्य लोलुप सुग्रीव हम शोकाक्रान्त लोगों पर कुछ ध्यान नहीं देते। हे तारे ! सम्पूर्ण सभा सहित मन्त्रिमण्डल भी हम लोगों पर कोई ध्यान नहीं देता, क्योंकि वे अत्यन्त कामासक्त हो गये हैं ॥ ४४ ॥ वनवासी राजा सुग्रीव ने चतुर्मास की अवधि दी थी, वह अवधि भी समाप्त हो गई, भोगावलिप्त तथा मदमत्त वनवासी राजा सुग्रीव इस बात को समझ नहीं रहे हैं ॥ ४५ ॥ धर्म-अर्थ की सिद्धि के लिये मद्यपान हितकारी नहीं माना जाता। मादक वस्तु के सेवन से मनुष्य अर्थ-भोग-धर्म से वंचित हो जाता है ॥ ४६ ॥ किये हुए उपकारी के उपकार का यदि प्रत्युपकार न किया जाय, तो महान् अधर्म होता है, क्योंकि कृतघ्नता से मैत्री का नाश और मैत्री के नाश से अर्थ की भी महती क्षति होती है ॥ ४७ ॥ छलकपट रहित होकर मित्र का काम करना और अपने सद्व्यवहारों से मित्र को सन्मार्ग का पथिक बनाना, ये मित्र के दो प्रशंसित गुण होते हैं। राजा सुग्रीव ने इन दोनों को त्याग दिया है और वे अपनी मर्यादा में भी स्थिर नहीं हैं ॥ ४८ ॥ यह समस्या क्यों आयी है, इसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया। अब इसके पश्चात् कार्य हम लोगों को करना है। हे कार्याकार्य के तत्त्व को जानने वाली बुद्धिमति ! अब तुम्हीं बताओ भविष्य में किस मार्ग का अनुसरण किया जाय ॥ ४९ ॥ धर्मार्थ के निर्णय से युक्त, विश्वास से परिपूर्ण, माधुर्य रस से सरस लक्ष्मण के वाक्यों को सुनकर रामचन्द्र के ज्ञातव्य कार्य विषय में तारा लक्ष्मण से बोली ॥ ५० ॥ हे राजकुमार !

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न कोपकालः क्षितिपालपुत्र न चातिकोपः स्वजने विधेयः ।
त्वदर्थकामस्य जनस्य तस्य प्रमादमप्यर्हसि वीर सोढुम् ॥ ५१ ॥
कोपं कथं नाम गुणप्रकृष्टः कुमार कुर्यादपकृष्टसत्त्वे ।
कस्त्वद्विधः कोपवशं हि गच्छेत्सत्त्वावरुद्धस्तपसः प्रसूतिः ॥ ५२ ॥
जानामि रोषं हरिवीरबन्धोर्जानामि कार्यस्य च कालसङ्गम् ।
जानामि कार्यं त्वयि यत्कृतं नस्तच्चापि जानामि यदत्र कार्यम् ॥ ५३ ॥
तच्चापि जानामि यथाविषह्यं बलं नरश्रेष्ठ शरीरजस्य ।
जानामि यस्मिंश्च जनेऽवबद्धं कामेन सुग्रीवमसक्तमद्य ॥ ५४ ॥
न कामतन्त्रे तव बुद्धिरस्ति त्वं वै यथा मन्युवशं प्रपन्नः ।
न देशकालौ हि न चार्थधर्मावपेक्षते कामरतिर्मनुष्यः ॥ ५५ ॥
तं कामवृत्तं मम संनिकृष्टं कामाभियोगाच्च निवृत्तलज्जम् ।
क्षमस्व तावत्परवीरहन्तस्त्वद्भ्रातरं वानरवंशनाथम् ॥ ५६ ॥
महर्षयो धर्मतपोऽभिकामाः कामानुकामाः प्रतिबद्धमोहाः ।
अयं प्रकृत्या चपलः कपिस्तु कथं न सज्जेत सुखेषु राजा ॥ ५७ ॥

यह क्रोध करने का समय नहीं है। अपने आत्मीय व्यक्तियों पर क्रोध नहीं करना चाहिये। हे वीर आप के कार्य करने वाले अपने व्यक्तियों से यदि कोई अपराध या प्रमाद भी हो जाय तो उसे क्षमा करना चाहिये ॥ ५१ ॥ हे राजकुमार ! उत्कृष्ट गुणवाले महापुरुष एक छोटे बल विचार वाले व्यक्ति पर क्यों क्रोध करें। तपस्वी राजर्षि वंश में उत्पन्न होने वाले तथा सतोगुण विचारों से परिपूर्ण आप जैसे व्यक्ति क्रोध कर ही कैसे सकते हैं ॥ ५२ ॥ हे सौम्य ! रामचन्द्र तथा आप के क्रोध का हेतु मैं समझ रही हूँ, रामचन्द्र के कार्य में जो विलम्ब हुआ है, उसे भी मैं जानती हूँ और हम लोगों के लिये रामचन्द्र तथा आप ने जो कार्य किया है उसको भी मैं जानती हूँ और उसे भी जानती हूँ जो हमें आगे कार्य करना है ॥ ५३ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! शरीरज काम के अविषह्य बल को भी मैं जानती हूँ, जिन कारणों से सुग्रीव आज इतने कामासक्त हो गये हैं, उसको भी मैं जानती हूँ और इस समय कामासक्ति से रहित सुग्रीव को भी मैं जानती हूँ ॥५४॥ हे सौम्य ! जिस प्रकार इस समय आप क्रोध में आ गये हैं, इससे यही प्रतीत होता है कि आप को काम-शास्त्र का बोध नहीं है। कामासक्त मनुष्य जिस प्रकार देशकाल का परिज्ञान नहीं रखता उसी प्रकार धर्म अर्थ को भी नहीं देखता ॥ ५५ ॥ कामासक्त, स्त्रियों के सम्पर्क में रहने से जिसने लज्जा को छोड़ दिया है, ऐसे अपने भाई वनवासियों के सम्राट् को हे शत्रुजय लक्ष्मण ! क्षमा करें ॥ ५६ ॥ धर्म-तपश्चर्या से अलंकृत, मोहादिविकारों से निर्धूत महर्षि लोग भी कामासक्त देखे गये हैं तो यह स्वभाव से युवावस्था के कारण चपल वनवासी राजा सुग्रीव काम सुखों में क्यों न आसक्त हो ॥ ५७ ॥ अप्रमेय शक्तिवाले लक्ष्मण से महान् अर्थ वाले वचनों को कहकर वह मादकता से विघूर्णित नेत्रों वाली वनवासिनी वीराङ्गना तारा पुनः अपने पति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्येवमुक्त्वा वचनं महार्थं सा वानरी लक्ष्मणमप्रमेयम् ।
पुनः सखेदं मदविह्वलाक्षी भर्तुर्हितं वाक्यमिदं बभाषे ॥ ५८ ॥

उद्योगस्तु चिराज्ञप्तः सुग्रीवेण नरोत्तम । कामस्यापि विधेयेन तवार्थप्रतिसाधने ॥५९॥
आगता हि महावीर्या हरयः कामरूपिणः । कोटीशतसहस्राणि नानानगनिवासिनः ॥६०॥
तदागच्छ महाबाहो चारित्रं रक्षितं त्वया । अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम् ॥६१॥
तारया चाभ्यनुज्ञातस्त्वरया चापि चोदितः । प्रविवेश महाबाहुरभ्यन्तरमरिंदमः ॥६२॥
ततः सुग्रीवमासीनं काञ्चने परमासने । महार्हास्तरणोपेते ददर्शादित्यसंनिभम् ॥६३॥
दिव्याभरणचित्राङ्गं दिव्यरूपं यशस्विनम् । दिव्यमाल्याम्बरधरं महेन्द्रमिव दुर्जयम् ॥६४॥
दिव्याभरणमाल्याभिः प्रमदाभिः समावृतम् । संरब्धतररक्ताक्षो बभूवान्तकसंनिभः ॥६५॥
रुमां तु वीरः परिरभ्य गाढं वरासनस्थो वरहेमवर्णः ।
ददर्श सौमित्रिरदीनसत्त्वं विशालनेत्रः सुविशालनेत्रम् ॥६६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे तारासान्त्ववचनं नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥३३॥

राजा सुग्रीव के लिये दुःख पूर्वक यह वचन बोली ॥ ५८ ॥ हे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण ! कामासक्त होने पर भी सुग्रीव ने आप की कार्यसिद्धि के लिये बहुत पूर्व ही उद्योग करने की आज्ञा दे दी है ॥ ५९ ॥ स्वेच्छा से नाना रूप धारण करने वाले, भिन्न भिन्न नाना पर्वतों पर रहने वाले, पराक्रमी लाखों की संख्या में वनवासी वीर आ गये हैं ॥ ६० ॥ हे विशाल भुजावाले वीर ! आप राजमहल में पधारिये । मित्र भाव से या महापुरुषों के द्वारा परायी स्त्रियों का अवलोकन करना जो महान् पातक माना गया है, उससे बचकर निर्व्याज सदाचार की रक्षा आप ने की है ॥ ६१ ॥ देवी तारा की आज्ञा पाने पर तथा शीघ्रता से चलने के लिये प्रेरित करने पर शत्रुंजयी विशाल भुजा वाले लक्ष्मण ने राजमहल में प्रवेश किया ॥ ६२ ॥ प्रवेश करने पर मूल्यवान् बिछौने वाले काञ्चन के परमसिंहासन पर सूर्य के समान देदीप्यमान कान्तिवाले राजा सुग्रीव को बैठे देखा ॥ ६३ ॥ दिव्य आभरणों से जिनका प्रत्येक अंग सुभूषित हो रहा है, दिव्य माला तथा वस्त्रों से जो अलंकृत हो रहे हैं, महेन्द्र के समान दुर्जय दिव्य आकृति वाले यशस्वी वे सुग्रीव थे ॥ ६४ ॥ दिव्य मालाओं तथा आभूषणों को धारण करने वाली स्त्रियों से चारों ओर से घिरे हुए सुग्रीव को यमराज के समान क्रुद्ध रक्तनेत्र वाले लक्ष्मण ने देखा ॥ ६५ ॥ रुमा के अत्यन्त समीप 'उत्तम आसन पर बैठे हुए, स्वर्ण के समान कान्तिवाले तथा विशाल नेत्र वाले सुग्रीव ने धैर्यवान् विशाल नेत्रवाले लक्ष्मण को देखा ॥ ६६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'तारा को सान्त्वना वचन' विषयक तेंतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुस्त्रिंशः सर्गः

सुग्रीवतर्जनम्

तमप्रतिहतं क्रुद्धं प्रविष्टं पुरुषर्षभम् । सुग्रीवो लक्ष्मणं दृष्ट्वा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥ १ ॥
क्रुद्धं निःश्वसमानं तं प्रदीप्तमिव तेजसा । भ्रातुर्व्यसनसंतप्तं दृष्ट्वा दशरथात्मजम् ॥ २ ॥
उत्पपात हरिश्रेष्ठो हित्वा सौवर्णमासनम् । महान् महेन्द्रस्य यथा स्वलंकृत इव ध्वजः ॥ ३ ॥
उत्पतन्तमनूत्पेतू रुमाप्रभृतयः स्त्रियः । सुग्रीवं गगने पूर्णं चन्द्रं तारागणा इव ॥ ४ ॥
सरक्तनयनः श्रीमान् विचचाल कृताञ्जलिः । बभूवावस्थितस्तत्र कल्पवृक्षो महानिव ॥ ५ ॥
रुमाद्वितीयं सुग्रीवं नारीमध्यगतं स्थितम् । अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धः सतारं शशिनं यथा ॥ ६ ॥
सत्त्वाभिजनसंपन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः । कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीयते ॥ ७ ॥
यस्तु राजा स्थितो धर्मे मित्राणामुपकारिणाम् । मिथ्या प्रतिज्ञां कुरुते को नृशंसतरस्ततः ॥ ८ ॥
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं तु गवानृते । आत्मानं स्वजनं हन्ति पुरुषः पुरुषानृते ॥ ९ ॥
पूर्वं कृतार्थो मित्राणां न तत्प्रतिकरोति यः । कृतघ्नः सर्वभूतानां स वध्यः प्लवगेश्वर ॥१०॥
गीतोऽयं ब्रह्मणा श्लोकः सर्वलोकनमस्कृतः । दृष्ट्वा कृतघ्नं क्रुद्धेन तं निबोध प्लवङ्गम ॥११॥

चौंतीसवां सर्ग

सुग्रीव की भर्त्सना

विना प्रतिबन्ध के सहसा क्रुद्ध नरश्रेष्ठ लक्ष्मण को आये हुए देख कर सुग्रीव मर्माहत हो गये ॥ १ ॥ लम्बी-लम्बी सांस लेते हुए, भाई रामचन्द्र के दुःख से अत्यन्त दुःखी तथा अपने तेज से स्वयं देदीप्यमान राजकुमार लक्ष्मण को देख कर ॥ २ ॥ वनवासियों के सम्राट् अलंकृत इन्द्र की ध्वजा के समान काञ्चन आसन को छोड़ कर सहसा खड़े हो गये ॥ ३ ॥ सुग्रीव के खड़े होते ही रुमा प्रभृति राजमहल की जितनी स्त्रियाँ थीं सभी इस प्रकार खड़ी हो गयीं जैसे गगन में चन्द्र मण्डल को देख कर तारा गण ॥ ४ ॥ रक्तनयन लक्ष्मण महल में ही इधर उधर घूमने लगे। एक विशाल वृक्ष के समान करबद्ध राजा सुग्रीव उनके समक्ष खड़े हो गये ॥ ५ ॥ ताराओं से घिरे हुए चन्द्रमा के समान स्त्री मण्डल के मध्य में रुमा के सहित खड़े हुए सुग्रीव से क्रुद्ध लक्ष्मण बोले ॥ ६ ॥ धैर्यवान्, कुलीन, दयालु, जितेन्द्रिय, उपकारी के उपकार का सम्मान करने वाला तथा सत्यवादी राजा संसार में पूजनीय होता है ॥ ७ ॥ जो राजा कुमार्ग गामी है, उपकारी मित्रों से मिथ्या प्रतिज्ञा करता है, उस से बढ़ कर निर्दयी क्रूर व्यक्ति संसार में कौन होगा ॥ ८ ॥ घोड़े के लिए जो मिथ्या बोलता है उसे सौ अश्वघात का पाप लगता है, गौ के लिये जो झूठ बोलता है उसे शत गोहत्या का पाप लगता है, पुरुष के सम्बन्ध में जो असत्य बोलता है वह अपना तथा अपने बन्धु बान्धवों का भी नाश करता है ॥ ९ ॥ जो पहले मित्रों से प्रयोजन सिद्ध करा ले तथा उपकारी मित्र का प्रत्युपकार न करे, वह महापातकी कृतघ्न है। हे वनवासी राजन्! वह प्राणदण्ड के योग्य है ॥ १० ॥ सब के नमस्करणीय ब्रह्मा जी ने यह बात कही है। तुम्हारी इस घृणित कृतघ्नता को देख कर क्रुद्ध रामचन्द्र ने तुम्हें जो चेतावनी दी है, हे राजन्! उस को सुनिये ॥ ११ ॥ ब्रह्मघाती, गोघाती, मद्यप, व्रत को भंग करने वाले पापियों के पाप

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च गोघ्ने भग्नव्रते तथा । निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥१२॥
अनार्यस्त्वं कृतघ्नश्च मिथ्यावादी च वानर । पूर्वं कृतार्थो रामस्य न तत्प्रतिकरोषि यत् ॥१३॥
ननु नाम कृतार्थेन त्वया रामस्य वानर । सीताया मार्गणे यत्नः कर्तव्यः कृतमिच्छता ॥१४॥
स त्वं ग्राम्येषु भोगेषु सक्तो मिथ्याप्रतिश्रवः । न त्वां रामो विजानीते सर्पं मण्डूकराविणम् ॥१५॥
महाभागेन रामेण पापः करुणवेदिना । हरीणां प्रापितो राज्यं त्वं दुरात्मा महात्मना ॥१६॥
कृतं चेन्नाभिजानीषे रामस्याक्लिष्टकर्मणः । सद्यस्त्वं निशितैर्बाणैर्हतो द्रक्ष्यसि वालिनम् ॥१७॥
न च संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः । समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः ॥१८॥
न नूनमिक्ष्वाकुवरस्य कार्मुकच्युताञ्शरान् पश्यसि वज्रसंनिभान् ।
ततः सुखं नाम निषेवसे सुखी न रामकार्यं मनसाप्यवेक्षसे ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सुग्रीवतर्जनं नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः

तारासमाधानम्

तथा ब्रुवाणं सौमित्रिं प्रदीप्तमिव तेजसा । अब्रवील्लक्ष्मणं तारा ताराधिपनिभानना ॥ १ ॥

का प्रायश्चित्त शास्त्र में बताया गया है, किन्तु कृतघ्नों का प्रायश्चित्त नहीं कहा है ॥ १२ ॥ हे वनवासी ! तुम अनार्य हो, कृतघ्न हो तथा मिथ्यावादी हो, इस लिये कि तुम अपने पूर्व उपकारी का प्रत्युपकार नहीं करते हो ॥ १३॥ हे वनवासी राजन्! मित्र के द्वारा सफल मनोरथ तुम्हें उपकार की भावना रख कर जानकी के अन्वेषण का प्रयत्न करना चाहिये ॥ १४ ॥ मिथ्या प्रतिज्ञा करने वाले तुम तो स्त्रियों में अमर्यादित आसक्ति दिखला रहे हो, मेंढक की बोली बोलने वाले सर्प की तरह तुम छली हो, ऐसा रामचन्द्र नहीं जानते थे ॥ १५ ॥ गौरवशाली, दयालु, महात्मा रामचन्द्र के द्वारा चरित्रहीन, पापकारी तुम जैसे व्यक्ति ने वनवासियों का परम्परागत राज्य प्राप्त किया ॥ १६ ॥ यदि महात्मा रामचन्द्र के पूर्व उपकारों को नहीं स्मरण करोगे, तो रामचन्द्र के तीक्ष्ण बाणों से शीघ्र ही मर कर बाली का दर्शन करोगे ॥ १७ ॥ वह मार्ग अभी बन्द नहीं हुआ है जिस मार्ग से मृत बाली गया है । इस लिये हे राजा सुग्रीव ! अपनी प्रतिज्ञा का पालन करो, कुमार्गी बाली के पथ के पथिक मत बनो ॥ १८ ॥ इक्ष्वाकुश्रेष्ठ रामचन्द्र के धनुष से छूटे हुए वज्र के समान बाणों का तुम्हें पता नहीं है । तुम सुख कभी भी नहीं पा सकते हो क्योंकि रामचन्द्र के कार्य को तुम मन से भी नहीं सोच रहे हो ॥ १९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'सुग्रीव का तर्जन' विषयक चौंतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥

पैंतीसवां सर्ग

तारा का समाधान

अपने तेज से देदीप्यमान लक्ष्मण के ऐसा कहने पर चन्द्रमुखी तारा लक्ष्मण से बोली ॥ १ ॥ हे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नैवं लक्ष्मण वक्तव्यो नायं परुषमर्हति । हरीणामीश्वरः श्रोतुं तव वक्त्राद्विशेषतः ॥ २ ॥
नैवाकृतज्ञः सुग्रीवो न शठो नापि दारुणः । नैवानृतकथो वीर न जिह्मश्च कपीश्वरः ॥ ३ ॥
उपकारं कृतं वीरो नाप्ययं विस्मृतः कपिः । रामेण वीर सुग्रीवो यदन्यैर्दुष्करं रणे ॥ ४ ॥
रामप्रसादात्कीर्तिं च कपिराज्यं च शाश्वतम् । प्राप्तवानिह सुग्रीवो रुमां मां च परंतप ॥ ५ ॥
सुदुःखं शयितः पूर्वं प्राप्येदं सुखमुत्तमम् । प्राप्तकालं न जानीते विश्वामित्रो यथा मुनिः ॥ ६ ॥
घृताच्यां किल संसक्तो दश वर्षाणि लक्ष्मण । अहोऽमन्यत धर्मात्मा विश्वामित्रो महामुनिः ॥ ७ ॥
स हि प्राप्तं न जानीते कालं कालविदां वरः । विश्वामित्रो महातेजाः किं पुनर्यः पृथग्जनः ॥ ८ ॥
देहधर्मं गतस्यास्य परिश्रान्तस्य लक्ष्मण । अवितृप्तस्य कामेषु कामं क्षन्तुमिहार्हसि ॥ ९ ॥
न च रोषवशं तात गन्तुमर्हसि लक्ष्मण । निश्चयार्थमविज्ञाय सहसा प्राकृतो यथा ॥१०॥
सत्त्वयुक्ता हि पुरुषास्त्वद्विधाः पुरुषर्षभ । अविमृश्य न रोषस्य सहसा यान्ति वश्यताम् ॥११॥
प्रसादये त्वां धर्मज्ञ सुग्रीवार्थे समाहिता । महान् रोषसमुत्पन्नः संरम्भस्त्यज्यतामयम् ॥१२॥
रुमां मां कपिराज्यं च धनधान्यवसूनि च । रामप्रियार्थं सुग्रीवस्त्यजेदिति मतिर्मम ॥१३॥
समानेष्यति सुग्रीवः सीतया सह राघवम् । शशाङ्कमिव रोहिण्या निहत्वा रावणं रणे ॥१४॥
कोटिशतसहस्राणि लङ्कायां किल राक्षसाः । अयुतानि च षट्त्रिंशत्सहस्राणि शतानि च ॥१५॥

लक्ष्मण ! आप को इस प्रकार कठोर वचन नहीं कहना चाहिये। ये वनवासियों के सम्राट् हैं, विशेषकर आप के मुख से ऐसी बातें नहीं सुनना चाहते ॥ २ ॥ ये सुग्रीव कृतघ्न नहीं हैं, न शठ हैं, न क्रूर हैं, न मिथ्यावादी हैं। हे वीर ! न ये कुटिल ही हैं ॥ ३ ॥ हे वीर लक्ष्मण ! रामचन्द्र ने संग्राम में जो काम किया है, वह दूसरों के द्वारा अत्यन्त दुष्कर है। हे सौम्य ! राम के किये हुए उपकार को राजा सुग्रीव भूले नहीं हैं ॥ ४ ॥ रामचन्द्र की ही कृपा से सुग्रीव ने परम्परागत वनवासियों का विस्तृत राज्य, रुमा तथा मुझ को प्राप्त किया है ॥ ५ ॥ पहले दुःख पूर्वक सो कर रात्रियां इन्हों ने बितायी हैं, अब उत्तम सुख को प्राप्त कर भोगावलिप्त सुग्रीव को समय का ज्ञान नहीं रहा, जिस प्रकार कामासक्त विश्वामित्र को समय का ज्ञान नहीं रहा ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण ! अप्सरा घृताची में आसक्त महामुनि विश्वामित्र ने दस वर्ष को एक दिन के समान समझा ॥ ७ ॥ जब कि महातेजस्वी विश्वामित्र आये हुए काल का ज्ञान नहीं रख सके, तो साधारण मनुष्य काल का ज्ञान कैसे रख सकता है ॥ ८ ॥ हे तात लक्ष्मण ! पूर्व समय में कामादि भोगों से अवितृप्त सुग्रीव ने वर्तमान समय में यदि कामासक्तता दिखायी है, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस लिये सुग्रीव को रामचन्द्र इस समय क्षमा करें ॥९॥ हे तात लक्ष्मण ! निश्चय ही यथार्थ बात को न जान कर अनुत्तरदायी सामान्य मनुष्य के समान आप को क्रोध के वशीभूत नहीं होना चाहिये ॥ १० ॥ हे नरश्रेष्ठ ! धैर्यशाली आप जैसे पुरुष विना विचारे ही सहसा इस प्रकार क्रोध के वशीभूत नहीं होते ॥ ११ ॥ हे धर्मात्मन् ! सावधानी पूर्वक मैं राजा सुग्रीव के लिये क्षमा पूर्वक आप को प्रसन्न होने की प्रार्थना कर रही हूं। क्रोध से उत्पन्न इस महान् क्षोभ को आप त्याग देवें ॥ १२॥ रुमा को, मुझ को, अंगद को तथा राज्य धन धान्य पशुओं को रामचन्द्र के प्रिय काम की सिद्धि के लिये सुग्रीव छोड़ सकते हैं, ऐसा मेरा विचार है ॥ १३ ॥ राजा सुग्रीव उस राक्षसाधम रावण को मार कर रामचन्द्र के साथ सीता को उसी प्रकार लौटा लायेंगे जैसे रोहिणी के साथ चन्द्रमा ॥ १४ ॥ लंका में एक करोड़ एक लाख उन्तालीस हजार छ सौ राक्षसों की संख्या है ॥१५॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अहत्वा तांश्च दुर्धर्षान् राक्षसान् कामरूपिणः । अशक्यं रावणं हन्तुं येन सा मैथिली हृता ॥१६॥
ते न शक्या रणे हन्तुमसहायेन लक्ष्मण । रावणः क्रूरकर्मा च सुग्रीवेण विशेषतः ॥१७॥
एवमाख्यातवान् वाली स ह्यभिज्ञो हरीश्वरः । आगमस्तु न मे व्यक्तः श्रवणात्तद्ब्रवीम्यहम् ॥१८॥
त्वत्सहायनिमित्तं वै प्रेषिता हरिपुंगवाः । आनेतुं वानरान् युद्धे सुबहून् हरियूथपान् ॥१९॥
तांश्च प्रतीक्षमाणोऽयं विक्रान्तान् सुमहाबलान् । राघवस्यार्थसिद्ध्यर्थं न निर्याति हरीश्वरः ॥२०॥
कृतात्र संस्था सौमित्रे सुग्रीवेण यथा पुरा । अद्य तैर्वानरैः सर्वैरागन्तव्यं महाबलैः ॥२१॥
ऋक्षकोटिसहस्राणि गोलाङ्गूलशतानि च । अद्य त्वामुपयास्यन्ति जहि कोपमरिंदम ॥२२॥
कोट्योऽनेकास्तु काकुत्स्थ कपीनां दीप्ततेजसाम् ॥

तव हि मुखमिदं निरीक्ष्य कोपात्क्षतजनिभे नयने निरीक्षमाणाः ।
हरिवरवनिता न यान्ति शान्तिं प्रथमभयस्य हि शङ्किताः स्म सर्वाः ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे तारासमाधानं नाम पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

स्वेच्छा से रूप परिवर्त्तन करने वाले अजेय उन राक्षसों के मारे विना उस रावण का मारा जाना जिसने कि जानकी का हरण किया है, असम्भव है ॥ १६ ॥ हे लक्ष्मण ! विना सहायता के संग्राम में वे राक्षस मारे नहीं जा सकते । रावण अत्यन्त पराक्रमी तथा क्रूर है । ऐसी अवस्था में सुग्रीव की सहायता विशेष रूप से आवश्यक है ॥ १७ ॥ वनवासियों के सम्राट् बाली ने ही यह बात मुझे बतायी थी, वे ही इस को जानते थे । यह संख्या राक्षसों की कैसे हुई या कैसे जानी गई यह मैं नहीं जानती, सुनी हुई बात को मैं कह रही हूं ॥ १८ ॥ संग्राम में आप की सहायता के लिए लड़ने वाले वनवासी वीरों को बुलाने के लिये बहुत से अपने अंगरक्षक वीर सैनिकों को सुग्रीव ने भेजा है ॥ १९ ॥ रामचन्द्र के कार्य की सिद्धि के लिये पराक्रमी, बलवान् उन वीरों की प्रतीक्षा सुग्रीव कर रहे हैं, इसी लिये अब तक वे रामचन्द्र के समीप नहीं गये ॥ २० ॥ हे तात लक्ष्मण ! सुग्रीव ने जैसी व्यवस्था पहले कर रखी है, उसके अनुसार वे महाबली वनवासी आज आ जायेंगे ॥ २१ ॥ हजारों झुण्ड ऋक्ष जाति के वनवासी तथा सैकड़ों झुण्ड गोलांगूल जाति के वनवासी आज आप के पीछे राम के पास जायेंगे । इस के अतिरिक्त हे लक्ष्मण ! तेजस्वी वनवासियों के अनेक समूह भी आपके साथ जायेंगे । इसलिये हे अरिमर्दन लक्ष्मण ! कोप को छोड़ दीजिये ॥ २२ ॥ क्रोध के कारण विकराल मुख मण्डल तथा रक्तवर्ण नेत्रों को देखते हुए वनवासी राजमहल की स्त्रियों को शान्ति नहीं मिलती। बाली के वध के भय से इस समय हम सभी शंकित हैं ॥ २३ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'तारा का समाधान' विषयक
पैंतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

षट्त्रिंशः सर्गः

सुग्रीवलक्ष्मणानुरोधः

इत्युक्तस्तारया वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् । मृदुस्वभावः सौमित्रिः प्रतिजग्राह तद्वचः ॥ १ ॥
तस्मिन् प्रतिगृहीते तु वाक्ये हरिगणेश्वरः । लक्ष्मणात्सुमहत्त्रासं वस्त्रं क्लिन्नमिवात्यजत् ॥ २ ॥
ततः कण्ठगतं माल्यं चित्रं बहुगुणं महत् । चिच्छेद विमदश्चासीत्सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ ३ ॥
स लक्ष्मणं भीमबलं सर्ववानरसत्तमः । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवः संप्रहर्षयन् ॥ ४ ॥
प्रनष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम् । रामप्रसादात्सौमित्रे पुनः प्राप्तमिदं मया ॥ ५ ॥
कः शक्तस्तस्य देवस्य विख्यातस्य स्वकर्मणा । तादृशं विक्रमं वीर प्रतिकर्तुमरिंदम ॥ ६ ॥
सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम् । सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा ॥ ७ ॥
सहायकृत्यं किं तस्य येन सप्त महाद्रुमाः । शैलाश्च वसुधा चैव बाणेनैकेन दारिताः ॥ ८ ॥
धनुर्विस्फारयानस्य यस्य शब्देन लक्ष्मण । सशैला कम्पिता भूमिः सहायैस्तस्य किं नु वै ॥ ९ ॥
अनुयात्रां नरेन्द्रस्य करिष्येऽहं नरर्षभ । गच्छतो रावणं हन्तुं वैरिणं सपुरःसरम् ॥१०॥
यदि किंचिदतिक्रान्तं विश्वासात्प्रणयेन वा । प्रेष्यस्य क्षमितव्यं मे न कश्चिन्नापराध्यति ॥११॥

छत्तीसवां सर्ग

सुग्रीव का लक्ष्मण से अनुरोध

विनीत भाव से धर्म युक्त तारा के इस प्रकार कहने पर कोमल स्वभाव वाले लक्ष्मण ने उसे स्वीकार किया तथा क्रोध को शान्त किया ॥ १ ॥ तारा की बात स्वीकार कर लक्ष्मण के शान्त हो जाने पर वनवासी सम्राट् सुग्रीव ने लक्ष्मण द्वारा उत्पन्न होने वाले भय को आर्द्र वस्त्र के समान त्याग दिया ॥ २ ॥ आतंक रहित होने पर अपने गले में पड़ी हुई मूल्यवती अनेक प्रकार के पुष्पों से बनी हुई माला को तोड़ दिया तथा सर्वथा सावधान हो गये ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण वनवासियों के मुकुटमणि राजा सुग्रीव अत्यन्त बली लक्ष्मण को हर्षित करते हुए नम्रता पूर्वक उन से बोले ॥४॥ हे लक्ष्मण ! नष्ट हुई अपनी कीर्त्ति तथा परम्परागत विस्तृत वनवासी राज्य को रामचन्द्र की कृपा से मैंने पुनः प्राप्त किया ॥ ५ ॥ हे राजकुमार लक्ष्मण ! अपने कर्मों से ख्याति प्राप्त करने वाले, देवतुल्य, समर्थ रामचन्द्र के उपकार का लेश मात्र भी प्रत्युपकार कौन कर सकता है ॥ ६ ॥ अपने तेज तथा पराक्रम से धर्मात्मा रामचन्द्र रावण का वध करेंगे तथा जानकी को प्राप्त करेंगे । मैं इन प्रत्येक कार्यों में उनकी सहायता करूंगा ॥ ७ ॥ जिस नरपुंगव ने अपने एक बाण से पर्वत तथा पर्वतीय भूमि को प्रतिध्वनित करते हुए सात महावृक्षों को काट दिया, उसको सहायता की क्या आवश्यकता है ॥ ८ ॥ मौरवी युक्त जिस के धनुष के टंकार से पर्वत के साथ यह वनस्थली कांप जाती है, हे लक्ष्मण ! क्या उसको सहायकों की आवश्यकता है ॥ ९ ॥ जिस समय अनुगामियों के साथ नरसिंह रामचन्द्र वैरी रावण का वध करने के लिये संग्राम यात्रा करेंगे, उस समय मैं उन का अनुगमन करते हुए उनका पृष्ठ रक्षक रहूंगा ॥ १० ॥ स्नेह अथवा विश्वास के कारण यदि इस सेवक से कोई अपराध हो भी गया है तो उसे आप क्षमा कर दें, क्यों कि सामान्य प्राणियों से त्रुटि होना स्वाभाविक है ॥ ११ ॥ महात्मा सुग्रीव के इस प्रकार मनोहारी वचनों को सुन कर लक्ष्मण अत्यन्त प्रसन्न हो गये तथा प्रेम पूर्वक सुग्रीव

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

इति तस्य ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । अभवल्लक्ष्मणः प्रीतः प्रेम्णा चैनमुवाच ह ॥१२॥
सर्वथा हि मम भ्राता सनाथो वानरेश्वर । त्वया नाथेन सुग्रीव प्रश्रितेन विशेषतः ॥१३॥
यस्ते प्रभावः सुग्रीव यच्च ते शौचमीदृशम् । अर्हस्त्वं कपिराजस्य श्रियं भोक्तुमनुत्तमाम् ॥१४॥
सहायेन च सुग्रीव त्वया रामः प्रतापवान् । वधिष्यति रणे शत्रूनचिरान्नात्र संशयः ॥१५॥
धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः । उपपन्नं च युक्तं च सुग्रीव तव भाषितम् ॥१६॥
दोषज्ञः सति सामर्थ्ये कोऽन्यो भाषितुमर्हति । वर्जयित्वा मम ज्येष्ठं त्वां च वानरसत्तम ॥१७॥
सदृशश्चासि रामस्य विक्रमेण बलेन च । सहायो दैवतैर्दत्तश्चिराय हरिपुंगव ॥१८॥
किं तु शीघ्रमितो वीर निष्काम त्वं मया सह । सान्त्वयस्व वयस्यं त्वं भार्याहरणकर्शितम् ॥१९॥
यच्च शोकाभिभूतस्य श्रुत्वा रामस्य भाषितम् । मया त्वं परुषाण्युक्तस्तच्च त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सुग्रीवलक्ष्मणानुरोधो नाम षट्त्रिंशः सर्गः ॥३६॥

सप्तत्रिंशः सर्गः

कपिसेनासमानयनम्

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना । हनुमन्तं स्थितं पार्श्वे सचिवं त्विदमब्रवीत् ॥ १ ॥

से ये वचन बोले ॥ १२ ॥ हे वनवासी राजा ! आप जैसे विनीत आश्रय दाता को प्राप्त कर मेरे ज्येष्ठ भ्राता रामचन्द्र सर्वथा आश्रययुक्त तथा सनाथ हैं ॥ १३ ॥ हे सम्राट् सुग्रीव ! जिस प्रकार आप का अक्षुण्ण प्रताप तथा शुद्ध अन्तःकरण है, उस से आप सर्वोत्तम वनवासी राज्य का भोग करने में समर्थ हैं ॥ १४ ॥ हे सम्राट् सुग्रीव ! आप की अनुपम सहायता से प्रतापी रामचन्द्र संग्राम में शीघ्र ही सपरिवार रावण का वध करेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ किये हुए उपकार को मानने वाले, धर्म के जानकार, संग्राम में कभी भी पीछे पैर न रखने वाले आप के इस प्रकार जो भाषण हैं, वे सर्वथा उचित तथा युक्ति युक्त हैं ॥ १६ ॥ गुण दोष को जानने वाले, अपने सामर्थ्य का सहारा लेने वाले मेरे ज्येष्ठ भ्राता रामचन्द्र तथा आप को छोड़ कर कौन इस प्रकार की बातें कर सकता है ॥ १७ ॥ बल तथा पराक्रम में आप भ्राता रामचन्द्र के समान हैं । हे राजन् ! देवताओं ने ही यह मित्र रूप सहायता रामचन्द्र को चिरकाल के लिये दी है ॥१८॥ हे वीर ! आप शीघ्र ही मेरे साथ यहां से चलने का प्रयत्न करें तथा अपनी पत्नी के हरण से दुःखी अपने मित्र रामचन्द्र को आश्वासन दें ॥ १९ ॥ शोकाकुल रामचन्द्र के वचनों को सुन कर मैंने जो कुछ शब्द कहे हैं, हे मित्र ! उन के लिये आप मुझ को क्षमा करें ॥ २० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'सुग्रीव का लक्ष्मण से अनुरोध' विषयक छत्तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

सैंतीसवां सर्ग

वनवासी सेना का आगमन

लक्ष्मण के ऐसा कहने पर महात्मा सुग्रीव समीप में खड़े हुए हनुमान् से यह वचन बोले ॥ १ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महेन्द्रहिमवद्विन्ध्यकैलासशिखरेषु च । मन्दरे पाण्डुशिखरे पञ्चशैलेषु ये स्थिताः ॥ २ ॥
तरुणादित्यवर्णेषु भ्राजमानेषु सर्वतः । पर्वतेषु समुद्रान्ते पश्चिमायां तु ये दिशि ॥ ३ ॥
आदित्यभवने चैव गिरौ सन्ध्याभ्रसंनिभे । पद्माचलवनं भीमाः संश्रिता हरिपुंगवाः ॥ ४ ॥
अञ्जनाम्बुदसंकाशाः कुञ्जरप्रतिमौजसः । अञ्जने पर्वते चैव ये वसन्ति प्लवङ्गमाः ॥ ५ ॥
महाशैलगुहावासा वानराः कनकप्रभाः । मेरुपार्श्वगताश्चैव ये धूम्रगिरिसंश्रिताः ॥ ६ ॥
तरुणादित्यवर्णाश्च पर्वते ये महारुणे । पिबन्तो मधु मैरेयं भीमवेगाः प्लवङ्गमाः ॥ ७ ॥
वनेषु च सुरम्येषु सुगन्धिषु महत्सु च । तापसानां च रम्येषु वनान्तेषु समन्ततः ॥ ८ ॥
तांस्तान् समानय क्षिप्रं पृथिव्यां सर्ववानरान् । सामदानादिभिः सर्वैराशु प्रेषय वानरान् ॥ ९ ॥
प्रेषिताः प्रथमं ये च मया दूता महाजवाः । त्वरणार्थं तु भूयस्त्वं हरीन् संप्रेषयापरान् ॥ १० ॥
ये प्रसक्ताश्च कामेषु दीर्घसूत्राश्च वानराः । इहानयस्व तान् सर्वांश्शीघ्रं तु मम शासनात् ॥ ११ ॥
अहोभिर्दशभिर्ये हि नागच्छन्ति ममाज्ञया । हन्तव्यास्ते दुरात्मानो राजशासनदूषकाः ॥ १२ ॥
शतान्यथ सहस्राणां कोट्यश्च मम शासनात् । प्रयान्तु कपिसिंहानां दिशो मम मते स्थिताः ॥ १३ ॥
मेघपर्वतसंकाशाश्छादयन्त इवाम्बरम् । घोररूपाः कपिश्रेष्ठा यान्तु मच्छासनादितः ॥ १४ ॥
ते गतिज्ञा गतिं गत्वा पृथिव्यां सर्ववानराः । आनयन्तु हरीन् सर्वांस्त्वरिताः शासनान्मम ॥ १५ ॥
तस्य वानरराजस्य श्रुत्वा वायुसुतो वचः । दिक्षु सर्वासु विक्रान्तान् प्रेषयामास वानरान् ॥ १६ ॥

महेन्द्र, हिमवान्, विन्ध्याचल, कैलास तथा मन्दराचल इन पांच पर्वतों की धवल चोटियों पर जो मेरे वनवासी सैनिक रहते हैं ॥ २ ॥ समुद्र के मध्य में सूर्य के समान सदा देदीप्यमान पर्वतों पर रहने वाले तथा पश्चिम दिशा के पर्वतों पर रहने वाले ॥ ३ ॥ उदयाचल तथा अस्ताचल पर्वत पर रहने वाले संध्या कालिक मेघ के समान वनवासियों को, पद्माचल पर्वत पर जो भयंकर वनवासी वीर रहते हैं ॥ ४ ॥ नील मेघ के समान, विशाल काय, महा पराक्रमी जो वनवासी अंजन पर्वत पर निवास करते हैं ॥ ५ ॥ कनक के समान गौर वर्ण वाले जो वनवासी विशाल पर्वतों की गुफाओं में रहते हैं तथा मेरु पर्वत की अधित्यकाओं में धूम्रगिरि पर आश्रय लेने वाले ॥ ६ ॥ सूर्य के समान महारुण पर्वत पर रहने वाले जो मधु तथा मैरेय नामक आसव को पान करने वाले, महा वेग युक्त वनवासी हैं ॥ ७ ॥ विशाल रमणीय सुगन्धित वन में रहने वाले, रमणीय तपस्वियों के आश्रम में रहने वाले तथा वन प्रान्त में पृथक् २ निवास करने वाले ॥ ८ ॥ साम-दान आदि सम्पूर्ण प्रयत्नों से पृथ्वी के उन सभी वनवासियों को तुम शीघ्र यहां ले आओ ॥ ९ ॥ महावेग वाले जिन सैनिकों को मैंने पहले भेजा है, उनकी जानकारी तो मुझ को है, किन्तु शीघ्रता के लिये तुम अन्य वनवासी वीरों को भेजो ॥ १० ॥ जो भोगविलास में लिप्त हैं तथा जो दीर्घसूत्री (अल्प समय के काम में अधिक समय लगाने वाले) वनवासी सैनिक हैं, उन सभी को तुम शीघ्र यहां लिवा लाओ ॥ ११ ॥ जो वनवासी मेरी आज्ञा से दस दिन के अन्दर न आ जायें, ऐसे राजाज्ञा भंग करने वाले दुरात्मा वनवासियों को तुम प्राण-दण्ड दे सकते हो ॥ १२ ॥ सैकड़ों-हजारों झुण्ड के झुण्ड वनवासी वीर जो मेरे आज्ञाकारी हैं, मेरी आज्ञा से वे शीघ्र ही यहाँ आ जायें ॥ १३ ॥ मेघ तथा पर्वत के समान सारे आकाश को घेर लेने वाले, भयंकर वेषभूषा वाले वनवासी वीर मेरी आज्ञा के द्वारा यहां से प्रस्थान करें ॥ १४ ॥ जो वनवासी वीर तत्तत्स्थानों को जानते हैं, वे वनवासी संपूर्ण पृथ्वी के उन उन स्थानों में जा कर मेरी आज्ञा से शीघ्र ही उन सभी वनवासियों को यहां पर ले आवें ॥ १५ ॥ वनवासी राजा सुग्रीव की इन बातों को सुन कर हनुमान् ने पराक्रमी वनवासी वीरों को सब दिशाओं में भेज दिया ॥ १६ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ते पदं विष्णुविक्रान्तं पतत्रिज्योतिरध्वगाः । प्रयाताः प्रहिता राज्ञा हरयस्तत्क्षणेन वै ॥१७॥
ते समुद्रेषु गिरिषु वनेषु च सरःसु च । वानरा वानरान् सर्वान् रामहेतोरचोदयन् ॥१८॥
मृत्युकालोपमस्याज्ञां कपिराजस्य वानराः । सुग्रीवस्याययुः श्रुत्वा सुग्रीवभयदर्शिनः ॥१९॥
ततस्तेऽञ्जनसंकाशा गिरेस्तस्मान्महाजवाः । तिस्रः कोट्यः प्लवङ्गानां निर्ययुर्यत्र राघवः ॥२०॥
अस्तं गच्छति यत्रार्कस्तस्मिन् गिरिवरे स्थिताः । तप्तहेममहाभासस्तस्मात्कोट्यो दश च्युताः ॥२१॥
कैलासशिखरेभ्यश्च सिंहकेसरवर्चसाम् । ततः कोटिसहस्राणि वानराणामुपागमन् ॥२२॥
फलमूलेन जीवन्तो हिमवन्तमुपाश्रिताः । तेषां कोटिसहस्राणां सहस्रं समवर्तत ॥२३॥
अङ्गारकसमानानां भीमानां भीमकर्मणाम् । विन्ध्याद्वानरकोटीनां सहस्राण्यपतन् द्रुतम् ॥२४॥
क्षीरोदवेलानिलयास्तमालवनवासिनः । नारिकेलाशनाश्चैव तेषां संख्या न विद्यते ॥२५॥
वनेभ्यो गह्वरेभ्यश्च सरिद्भ्यश्च महौजसः । आगच्छद्वानरी सेना पिबन्तीव दिवाकरम् ॥२६॥
ये तु त्वरयितुं याता वानराः सर्ववानरान् । ते वीरा हिमवच्छैले ददृशुस्तं महाद्रुमम् ॥२७॥
तस्मिन् गिरिवरे रम्ये यज्ञो माहेश्वरः पुरा । सर्वदेवमनस्तोषो बभौ दिव्यो मनोहरः ॥२८॥
अन्ननिष्यन्दजातानि मूलानि च फलानि च । अमृतास्वादकल्पानि ददृशुस्तत्र वानराः ॥२९॥
तदन्नसंभवं दिव्यं फलं मूलं मनोहरम् । यः कश्चित्सकृदश्नाति मासं भवति तर्पितः ॥३०॥
तानि मूलानि दिव्यानि फलानि च फलाशनाः । औषधानि च दिव्यानि जगृहुर्हरियूथपाः ॥३१॥

राजा की आज्ञा से भेजे हुए वे सभी वनवासी वीर गगनपथचारी पक्षियों के समान तत्तत् दिशाओं में चले गये ॥ १७ ॥ पहाड़ों में, समुद्र के द्वीपों में, वनों में, सरोवरों के समीप रहने वाले सम्पूर्ण वनवासियों को रामचन्द्र के कार्य के लिये वनवासी दूतों ने प्रेरित किया ॥ १८ ॥ मृत्यु के समान कठोर दण्ड देनेवाले सम्राट् सुग्रीव की आज्ञा को सुन कर उन के भय से आतंकित सभी वनवासी सैनिक किष्किन्धा में आये ॥ १९ ॥ अंजन के समान नीलगिरि नामक पर्वत पर रहने वाले वनवासियों के तीन दल रामचन्द्र के समीप चल पड़े ॥ २० ॥ अस्ताचल पर्वत पर रहने वाले, तपे हुए सोने के समान गौर शरीर वाले वनवासी वीरों के दस दल ऋश्यमूक पर्वत पर पहुंचे ॥ २१ ॥ सिंह केसर के समान कान्ति वाले कैलास शिखरवासी सैनिकों के एक सहस्र दल ने राम के समीप प्रस्थान किया ॥ २२ ॥ कन्द-मूल-फल खाने वाले, हिमालय-निवासी उन असंख्य वनवासियों में से एक सहस्र वनवासी वहां आये ॥ २३ ॥ अग्नि के समान लाल वर्ण वाले, भीषण कर्म करने वाले विन्ध्य पर्वत निवासियों का एक सहस्र दल आया ॥ २४ ॥ श्वेत जल समुद्र के तट वासी, तमाल वन में रहने वाले, नारियल के खाने वाले वनवासियों की संख्या कही नहीं जा सकती अर्थात् अपार संख्या थी ॥ २५ ॥ वनों से, गुफाओं से तथा नदी तट से महाबली वनवासियों की जो टोली आयीं, उन के चरणों से उठी हुई धूलि से सूर्य आच्छादित हो गया ॥ २६ ॥ जो वनवासी सैनिक अन्य वनवासी सैनिकों को शीघ्रता पूर्वक बुलाने के लिये भेजे गये थे, उन वीरों ने हिमाच्छादित पर्वत पर एक विशाल वृक्ष देखा ॥ २७ ॥ उस श्रेष्ठ पर्वत पर महादेव ने एक विशाल पुण्य यज्ञ किया था। उस मनोरम यज्ञ से सभी देव मण्डल अति प्रसन्न हो गया ॥ २८ ॥ अन्न रस से उत्पन्न हुए तथा मूल और फल से निर्मित अमृत के समान स्वाद वाले अनेक प्रकार की खाद्य वस्तुओं को वनवासियों ने देखा ॥ २९ ॥ अन्न से उत्पन्न तथा मनोहर दिव्य फल मूल भक्ष्य पदार्थ जो कोई भी खाता है वह एक मास के लिये अन्न जल से तृप्त हो जाता है ॥ ३० ॥ दिव्य मूल फल भक्षण करने वाले वनवासियों ने उन कन्द-मूल-फल तथा दिव्य ओषधियों को ग्रहण किया ॥ ३१ ॥ उस यज्ञ भूमि से सुगन्धित अनेक प्रकार के पुष्पों को वनवासियों ने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्माच्च यज्ञायतनात्पुष्पाणि सुरभीणि च । आनिन्युर्वानरा गत्वा सुग्रीवप्रियकारणात् ॥३२॥
ते तु सर्वे हरिवराः पृथिव्यां सर्ववानरान् । संचोदयित्वा त्वरिता यूथानां जग्मुरग्रतः ॥३३॥
ते तु तेन मुहूर्तेन यूथपाः शीघ्रगामिनः । किष्किन्धां त्वरया प्राप्ताः सुग्रीवो यत्र वानरः ॥३४॥
ते गृहीत्वौषधीः सर्वाः फलं मूलं च वानराः । तं प्रतिग्राहयामासुर्वचनं चेदमब्रुवन् ॥३५॥
सर्वे परिगताः शैलाः समुद्राश्च वनानि च । पृथिव्यां वानराः सर्वे शासनादुपयान्ति ते ॥३६॥
एवं श्रुत्वा ततो हृष्टः सुग्रीवः प्लवगाधिपः । प्रतिजग्राह तत्प्रीतस्तेषां सर्वमुपायनम् ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे कपिसेनासमानयनं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥३७॥

अष्टात्रिंशः सर्गः

रामसमीपगमनम्

प्रतिगृह्य च तत्सर्वमुपायनमुपाहृतम् । वानरान् सान्त्वयित्वा च सर्वानेव व्यसर्जयत् ॥ १ ॥

सुग्रीव को प्रसन्न करने के लिए ला कर दिया ॥ ३२ ॥ वे बुलाने के लिये गये हुए वनवासी वीर पृथ्वी के सम्पूर्ण वनवासी वीरों को किष्किन्धा आने के लिये राजा का सन्देश सुना कर उनके आने के पहले ही किष्किन्धा लौट आये ॥ ३३ ॥ वे संदेश वाहक शीघ्रगामी वनवासी वीर थोड़े ही समय में किष्किन्धा राजधानी को लौट आये जहाँ राजा सुग्रीव थे ॥३४॥ लौटे हुए वनवासियों ने अपने साथ लाये हुए सम्पूर्ण प्रकार के फलमूल आदि अमृतमय पदार्थों को सुग्रीव को भेंट किया तथा उन से इस प्रकार बोले ॥ ३५ ॥ सम्पूर्ण पर्वत, वन तथा नदीय निवासी सैनिकों के पास गये । आप के शासित राज्य के सभी सैनिक वीर आप की आज्ञा से आ रहे है ॥ ३६ ॥ आये हुए अपने सैनिकों से इस प्रकार की बातें सुन कर वन शैलान्त वासी सम्राट् सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उनके दिये हुए पदार्थों को प्रसन्नता से स्वीकार किया ॥ ३७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'वनवासी सेना का आगमन' विषयक सैंतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३७ ॥

अड़तीसवां सर्ग

राम के पास जाना

वनवासी सैनिकों की दी हुई भेंट को स्वीकार कर तथा अनेक प्रकार से उन्हें सान्त्वना दे कर उन सभी को विदा किया ॥ १ ॥ अनेकों बार जिन से काम लिया है, ऐसे वनवासी वीरों को विदा कर राजा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विसर्जयित्वा स हरीञ्शूरांस्तान् कृतकर्मणः । मेने कृतार्थमात्मानं राघवं च महाबलम् ॥ २ ॥
स लक्ष्मणो भीमबलं सर्ववानरसत्तमम् । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं संप्रहर्षयन् ॥ ३ ॥
किष्किन्धाया विनिष्क्राम यदि ते सौम्य रोचते । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य सुभाषितम् ॥ ४ ॥
सुग्रीवः परमप्रीतो वाक्यमेतदुवाच ह । एवं भवतु गच्छावः स्थेयं त्वच्छासने मया ॥ ५ ॥
तमेवमुक्त्वा सुग्रीवो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् । विसर्जयामास तदा तारामन्याश्च योषितः ॥ ६ ॥
एतेत्युच्चैर्हरिवरान् सुग्रीवः समुदाहरत् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरयः शीघ्रमाययुः ॥ ७ ॥
बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे ये स्युः स्त्रीदर्शनक्षमाः । तानुवाच ततः प्राप्तान् राजार्कसदृशप्रभः ॥ ८ ॥
उपस्थापयत क्षिप्रं शिबिकां मम वानराः । श्रुत्वा तु वचनं तस्य हरयः शीघ्रविक्रमाः ॥ ९ ॥
समुपस्थापयामासुः शिबिकां प्रियदर्शनाम् । तामुपस्थापितां दृष्ट्वा शिबिकां वानराधिपः ॥ १० ॥
लक्ष्मणारुह्यतां शीघ्रमिति सौमित्रिमब्रवीत् । इत्युक्त्वा काञ्चनं यानं सुग्रीवः सूर्यसंनिभम् ॥ ११ ॥
बृहद्भिर्हरिभिर्युक्तामारुरोह सलक्ष्मणः । पाण्डरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ॥ १२ ॥
शुक्लैश्च वालव्यजनैर्धूयमानैः समन्ततः । शङ्खभेरीनिनादैश्च बन्दिभिश्चाभिनन्दितः ॥ १३ ॥
निर्ययौ प्राप्य सुग्रीवो राज्यश्रियमनुत्तमाम् । स वानरशतैस्तीक्ष्णैर्बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ॥ १४ ॥
परिकीर्णो ययौ तत्र यत्र रामो व्यवस्थितः । स तं देशमनुप्राप्य श्रेष्ठं रामनिषेवितम् ॥ १५ ॥
अवातरन्महातेजाः शिबिकायाः सलक्ष्मणः । आसाद्य च ततो रामं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् ॥ १६ ॥

सुग्रीव ने भगवान् रामचन्द्र तथा अपने को कृतार्थ समझा ॥ २ ॥ उस समय लक्ष्मण बलवान् वनवासी राजा सुग्रीव को प्रसन्न करते हुए नम्रता पूर्वक बोले ॥ ३ ॥ हे सौम्य ! यदि आप इसे उचित समझते हों, तो अब हम लोग किष्किन्धा से प्रस्थान करें। लक्ष्मण के इस मनोहारी वचन को सुन कर ॥ ४ ॥ राजा सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न होते हुए ये वचन बोले—ठीक है, अब हम लोग चलें। मुझे तो आप की आज्ञा का पालन करना है ॥ ५ ॥ इस प्रकार शुभलक्षण वाले लक्ष्मण से कह कर राजा सुग्रीव ने तारा प्रभृति स्त्रियों को विदा किया ॥ ६ ॥ उच्च स्वर में राजा सुग्रीव ने—तुम सभी लोग आजाओ—इन शब्दों में आह्वान किया। साम्राट् के इस आह्वान को सुन कर वनवासी सैनिक शीघ्र उपस्थित हो गये ॥ ७ ॥ जो सैनिक स्त्रियों के राजमहल में प्रवेश कर सकते हैं, वे सभी हाथ जोड़ कर राजा सुग्रीव के समझ खड़े हो गये। सूर्य के समान देदीप्यमान कान्तिवाले राजा सुग्रीव ने आये हुए वनवासी सैनिकों को यह आदेश दिया ॥ ८ ॥ हे वनवासी वीरो ! मेरी पालकी को तुम शीघ्र यहां ले आओ। उन शीघ्रगामी तथा पराक्रमी वनवासी वीरों ने राजा सुग्रीव की बातों को सुन कर ॥ ९ ॥ मनोहारी पालकी को ला कर उपस्थित कर दिया। वनवासियों के राजा सुग्रीव उस आयी हुई पालकी को देख कर ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण ! आप शीघ्रता पूर्वक इस पालकी पर आरोहण कीजिये। ऐसा कह कर राजा सुग्रीव सूर्य के समान काञ्चनमयी पालकी पर ॥ ११ ॥ अनेक अङ्गरक्षकों से युक्त वीर लक्ष्मण के साथ बैठ गये। उन के मस्तक पर राजकीय श्वेत छत्र लगाया गया ॥ १२ ॥ श्वेत वालव्यजन (चंवर) उन पर चलाये जा रहे थे। शंख भेरी आदि बाजों के साथ तथा वन्दिजन जिन का गुण गान कर रहे थे ॥ १३ ॥ उत्तम राज्यलक्ष्मी के अधिकारी राजा सुग्रीव तीक्ष्ण स्वभाव वाले शस्त्रधारी अनेक वनवासी अंग रक्षकों के साथ रामचन्द्र के समीप चल पड़े ॥ १४ ॥ अपने वनवासी अंगरक्षक सैनिकों से घिरे हुए राजा सुग्रीव रामचन्द्र के उस स्थान पर जो रामचन्द्र के निवास से श्रेष्ठ तथा अलंकृत हो रहा था, पहुँच कर ॥ १५ ॥ महातेजस्वी सुग्रीव लक्ष्मण के साथ पालकी से नीचे उतर पड़े। पश्चात् रामचन्द्र के समीप जा कर उन को करबद्ध प्रणाम किया ॥ १६ ॥ राजा सुग्रीव को हाथ जोड़े खड़े हुए देख

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृताञ्जलौ स्थिते तस्मिन् वानराश्चाभवंस्तथा । तटाकमिव तद्दृष्ट्वा रामः कुड्मलपङ्कजम् ॥१७॥
वानराणां महत्सैन्यं सुग्रीवे प्रीतिमानभूत् । पादयोः पतितं मूर्ध्ना तमुत्थाप्य हरीश्वरम् ॥१८॥
प्रेम्णा च बहुमानाच्च राघवः परिषस्वजे । परिष्वज्य च धर्मात्मा निषीदेति ततोऽब्रवीत् ॥१९॥
तं निषण्णं ततो दृष्ट्वा क्षितौ रामोऽब्रवीद्वचः । धर्ममर्थं च कामं च काले यस्तु निषेवते ॥२०॥
विभज्य सततं वीर स राजा हरिसत्तम । हित्वा धर्मं तथार्थं च कामं यस्तु निषेवते ॥२१॥
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते । अमित्राणां वधे युक्तो मित्राणां संग्रहे रतः ॥२२॥
त्रिवर्गफलभोक्ता तु राजा धर्मेण युज्यते । उद्योगसमयस्त्वेष प्राप्तः शत्रुविनाशन ॥२३॥
संचिन्त्यतां हि पिङ्गेश हरिभिः सह मन्त्रिभिः । एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामं वचनमब्रवीत् ॥२४॥
प्रनष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम् । त्वत्प्रसादान्महाबाहो पुनः प्राप्तमिदं मया ॥२५॥
तव देव प्रसादाच्च भ्रातुश्च जयतां वर । कृतं न प्रतिकुर्याद्यः पुरुषाणां स दूषकः ॥२६॥
एते वानरमुख्याश्च शतशः शत्रुसूदन । प्राप्ताश्चादाय बलिनः पृथिव्यां सर्ववानरान् ॥२७॥
ऋक्षाश्चावहिताः शूरा गोलाङ्गूलाश्च राघव । कान्तारवनदुर्गाणामभिज्ञा घोरदर्शनाः ॥२८॥
देवगन्धर्वपुत्राश्च वानराः कामरूपिणः । स्वैः स्वैः परिवृताः सैन्यैर्वर्तन्ते पथि राघव ॥२९॥

कर सभी वनवासी सैनिक हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। उस समय मुकुलित कमल युक्त सरोवर के समान उस वनवासी विशाल सेना को देख कर ॥ १७ ॥ वनवासी राजा सुग्रीव पर रामचन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो गये। अपने चरणों पर सिर झुकाये हुए राजा सुग्रीव को अपने हाथों से उठा कर ॥ १८ ॥ प्रेमपूर्वक, अत्यन्त आदरभाव से रामचन्द्र ने उनका आलिङ्गन किया। हृदय से लगाने के पश्चात् धर्मात्मा रामचन्द्र ने—बैठ जाओ—ऐसा कहा ॥ १९ ॥ पृथ्वी पर बैठे हुए राजा सुग्रीव को देख कर रामचन्द्र बोले—हे सौम्य! जो राजा धर्म-अर्थ-काम को समयानुसार सेवन करता है ॥ २० ॥ तथा हे वीर! इन के लिये समय विभाग को निश्चित करता है, वही राज्य का सच्चा अधिकारी होता है। जो धर्म तथा अर्थ का त्याग कर केवल काम का ही सेवन करता है ॥ २१ ॥ वह वृक्ष की टहनियों पर सोने वालों के सदृश अपने पतन के पश्चात् ही उसके कटु परिणाम को समझता है। जो शत्रुओं के निर्मूल में सदा युक्त रहता है तथा मित्रों के संग्रह में सदा तत्पर रहता है ॥ २२ ॥ वही त्रिवर्ग (धर्म-अर्थ-काम) का यथावत् फल भोक्ता है तथा वही धर्माधिकारी कहलाता है। हे शत्रुञ्जयी राजन्! अब उद्योग करने का यही समय है ॥ २३ ॥ हे राजन्! अपने मन्त्रियों के साथ आप इस पर विचार करें। रामचन्द्र के इस प्रकार कहने पर राजा सुग्रीव उन से बोले ॥ २४ ॥ हे विशाल भुजा वाले दयालु रामचन्द्र! लक्ष्मी, कीर्त्ति तथा परम्परागत शासित विशाल वनवासियों का राज्य जो मेरे हाथ से सर्वथा निकल गया था, उस राज्य को आप की महती कृपा से मैंने पुनः प्राप्त किया ॥ २५ ॥ हे विजेताओं में श्रेष्ठ! आप की तथा आप के लघु भ्राता लक्ष्मण की महती कृपा से ही यह राज्य मुझे प्राप्त हुआ है। ऐसी अवस्था में जो व्यक्ति अपने उपकारक के प्रति प्रत्युपकार नहीं करता, वह मनुष्यों में धर्मध्वंसक माना जाता है ॥ २६ ॥ हे शत्रुंजय रामचन्द्र! ये सैकड़ों मुख्य वनवासी वीर पृथ्वी के समरदुर्जय वीर सैनिकों को साथ ले कर आये हैं ॥ २७ ॥ हे रामचन्द्र! ऋक्ष, वानर, गोलांगूल आदि जाति के पर्वत कान्तार वासी भीषण आकृति वाले वीर सैनिक शुष्कवनस्थली तथा अनूप देश की वनस्थली के दुर्ग स्थानों से परिचित हैं ॥ २८ ॥ हे रामचन्द्र देव-गन्धर्व आदि पर्वतीय स्थान के वनवासी वीर जो स्वेच्छा से वेष भूषा आदि के द्वारा अनेक रूप धारण करते हैं, वे अपने अपने सैनिकों से घिरे हुए अभी मार्ग में ही हैं ॥ २९ ॥ किसी के साथ सौ वनवासी वीर हैं, किसी के साथ सौ हजार, किसी के साथ करोड़,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[शतैः शतसहस्रैश्च कोटिभिश्चि प्लवङ्गमाः । अयुतैश्चावृता वीराः शङ्कुभिश्च परंतप ॥३०॥
अर्बुदैरर्बुदशतैर्मध्यैश्चान्तैश्च वानराः । समुद्रैश्च परार्धैश्च हरयो हरियूथपाः ॥३१॥]
आगमिष्यन्ति ते राजन् महेन्द्रसमविक्रमाः । मेरुमन्दरसंकाशा विन्ध्यमेरुकृतालयाः ॥३२॥
ते त्वामभिगमिष्यन्ति राक्षसं ये सबान्धवम् । निहत्य रावणं संख्ये ह्यानयिष्यन्ति मैथिलीम् ॥३३॥
ततस्तमुद्योगमवेक्ष्य बुद्धिमान् हरिप्रवीरस्य निदेशवर्तिनः ।
बभूव हर्षाद्वसुधाधिपात्मजः प्रबुद्धनीलोत्पलतुल्यदर्शनः ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे रामसमीपगमनं नाम अष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः

सेनानिवेशः

इति ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो धर्मभृतां वरः । बाहुभ्यां संपरिष्वज्य प्रत्युवाच कृताञ्जलिम् ॥ १ ॥

किसी के साथ दस करोड़ तथा किसी के साथ एक लाख करोड़ ॥ ३० ॥ किसी के साथ हज़ार शंकु, किसी के साथ सौ अर्बुद, किसी के साथ दस अर्बुद, किसी के साथ दस मध्य, किसी के साथ दस अन्त्य, किसी के साथ तीस समुद्र वनवासी सैनिक मार्ग में आ रहे हैं ॥३१॥* हे रामचन्द्र ! महेन्द्र के समान पराक्रमी विशाल काय विन्ध्य और मेरु पर्वत पर रहने वाले वनवासी वीर आवेंगे ॥ ३२ ॥ वे सभी आप के साथ जायेंगे । संग्राम में सपरिवार रावण को मार कर मिथिलेशकुमारी जानकी को ले आवेंगे ॥ ३३ ॥ आज्ञाकारी बुद्धिमान् वनवासी, वीर सुग्रीव के अप्रतिम उद्योग को देख कर चक्रवर्त्तिसम्राट् के पुत्र रामचन्द्र अत्यन्त हर्ष से विकसित कमल के समान प्रतीत होने लगे ॥ ३४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'राम के समीप जाना' विषयक अड़तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥३८॥

उन्तालीसवां सर्ग

सेना का शिविर

हाथ जोड़ कर इस प्रकार निवेदन करते हुए राजा सुग्रीव का धर्मात्माओं में श्रेष्ठ रामचन्द्र आलिंगन करते हुए उन से यह बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य ! इन्द्र (मेघ) जो यह जल वृष्टि करता है, इस में कुछ भी

* यहाँ वनवासी सैनिकों की इतनी संख्या गिनायी गयी है जितनी इस सम्पूर्ण पृथ्वी की बात ही क्या हमारे जैसी पृथ्वी के समान अनेक भूमण्डल हों तो सम्भव है कि इतने सैनिक वहाँ रह सकें। इन सैनिकों की संख्या असंख्य अवस्था में जा रही है। इतने सैनिकों का उस ऋश्यमूक पर्वत की उपत्यका अधित्यका में आना असम्भव है। इस लिये असम्भव दोष से ग्रस्त ये दोनों श्लोक प्रक्षिप्त हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदिन्द्रो वर्षते वर्षं न तच्चित्रं भवेद्भुवि । आदित्यो वा सहस्रांशुः कुर्याद्वितिमिरं नभः ॥ २ ॥
चन्द्रमा रश्मिभिः कुर्यात्पृथिवीं सौम्य निर्मलाम् । त्वद्विधो वापि मित्राणां प्रतिकुर्यात्परंतप ॥ ३ ॥
एवं त्वयि न तच्चित्रं भवेद्यत्सौम्य शोभनम् । जानाम्यहं त्वां सुग्रीव सततं प्रियवादिनम् ॥ ४ ॥
त्वत्सनाथः सखे संख्ये जेतास्मि सकलानरीन् । त्वमेव मे सुहृन्मित्रं साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥
जहारात्मविनाशाय वैदेहीं राक्षसाधमः । वञ्चयित्वा तु पौलोमीमनुह्लादो यथा शचीम् ॥ ६ ॥
नचिराच्चं हनिष्यामि रावणं निशितैः शरैः । पौलोम्याः पितरं दृप्तं शतक्रतुरिवाहवे ॥ ७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे चैव रजः समभिवर्तत । उष्णां तीव्रां सहस्रांशोश्छादयद्गगने प्रभाम् ॥ ८ ॥
दिशः पर्याकुलाश्चासन् रजसा तेन मूर्छता । चचाल च मही सर्वा सशैलवनकानना ॥ ९ ॥
ततो नगेन्द्रसंकाशैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाबलैः । कृत्स्ना संछादिता भूमिरसंख्येयैः प्लवङ्गमैः ॥१०॥
निमेषान्तरमात्रेण ततस्तैर्हरियूथपैः । कोटीशतपरीवारैः कामरूपिभिरावृता ॥११॥
नादेयैः पार्वतेयैश्च सामुद्रैश्च महाबलैः । हरिभिर्मेघनिर्ह्रादैरन्यैश्च वनचारिभिः ॥१२॥
तरुणादित्यवर्णैश्च शशिगौरैश्च वानरैः । पद्मकेसरवर्णैश्च श्वेतैर्मेरुकृतालयैः ॥१३॥
बहुभिर्वीरमुख्यैश्च श्रीमान् परिवृतस्तदा । वीरः शतबलिर्नाम वानरः प्रत्यदृश्यत ॥१४॥
ततः काञ्चनशैलाभस्तारायाः वीर्यवान् पिता । अनेकैर्दशसाहस्रैः वानरैः प्रत्यदृश्यत ॥१५॥

आश्चर्य नहीं। अनन्त किरणों वाला यह सूर्य यदि सारे नभमण्डल को अन्धकार हीन कर देता है, इस में भी कोई आश्चर्य नहीं ॥ २ ॥ हे सौम्य ! चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से सम्पूर्ण पृथ्वी को धवलित कर दे तो इस में कोई आश्चर्य नहीं। इसी प्रकार तुम्हारे जैसा अनुपम पुरुष अपने मित्रों का प्रत्युपकार करे तो इस में भी कोई आश्चर्य नहीं ॥ ३ ॥ हे सौम्य ! इसी प्रकार आप के द्वारा हितकारी शोभा युक्त जो कार्य होते हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। हे सखे सुग्रीव ! आप निरन्तर प्रियवादी हैं, इस को मैं जानता हूं ॥ ४ ॥ हे मित्र ! आप की अनुपम सहायता से मैं सम्पूर्ण शत्रुओं पर विजय प्राप्त करूंगा। इस लिये एक सहृदय मित्र के नाते आप मेरी सहायता अवश्य करें ॥ ५ ॥ राक्षसाधम रावण ने सकुटुम्ब अपने नाश के लिये ही जानकी का अपहरण किया है, जिस प्रकार वंचना कर अनुह्लाद ने पौलोमी शची का अपहरण किया था ॥ ६ ॥ अपने तीक्ष्ण वाणों से रावण का शीघ्र ही वध करूंगा, जिस प्रकार पौलोमी का अहंकारी-पिता इन्द्र के द्वारा मारा गया ॥ ७ ॥ राम-सुग्रीव का जिस समय वार्तालाप हो रहा था, उस समय धूल से सम्पूर्ण आकाश आच्छादित हो गया जिस के द्वारा गगन में सूर्य का सम्पूर्ण प्रकाश भी ढक गया ॥ ८ ॥ उस उठी हुई धूलि के अन्धकार से सम्पूर्ण दिशाएँ अन्धकारमय हो गईं। पर्वत वन वाली आस पास की भूमि में एक प्रकार का भूकम्प आ गया ॥ ९ ॥ तत्पश्चात् देखते ही देखते विशालकाय, विकराल दांतों वाले, महाबली, असंख्य वनवासी वीरों के द्वारा वहां की सम्पूर्ण पृथ्वी आच्छादित हो गयी ॥ १० ॥ थोड़े ही समय में आमन्त्रित उन वीरों के साथ जो भिन्न भिन्न प्रान्त तथा जनपद से आये हुए थे ॥ ११ ॥ नदी के किनारे रहने वाले, पर्वत पर रहने वाले, समुद्र तट वासी, महाबलवान्, मेघ के समान गर्जन करने वाले तथा अन्य प्रकार के वनवासी वीरों के साथ ॥ १२ ॥ उदीयमान सूर्य के समान कान्ति वाले, चन्द्रमा के समान गौर वर्ण, पंकजरेणु के समान पीत वर्ण वाले, श्वेत वर्ण के हिमालय निवासी ॥ १३ ॥ बहुत मुख्य मुख्य सेनापतियों तथा वीरों के साथ वीर शतवलि दिखायी दिये ॥१४॥ तत्पश्चात् गौर वर्ण वाले विशालकाय तारा के पराक्रमी पिता (सुषेण) अनेक वनवासियों के साथ दिखाई दिये ॥ १५ ॥ उसके पश्चात् हजारों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथापरेण वीराणां सहस्रेण समन्वितः । पिता रुमायाः संप्राप्तः सुग्रीवश्वशुरो विभुः ॥१६॥
पद्मकेसरसंकाशस्तरुणार्कनिभाननः । बुद्धिमान् वानरश्रेष्ठः सर्ववानरसत्तमः ॥१७॥
अनीकैर्बहुसाहस्रैर्वानराणां समन्वितः । पिता हनुमतः श्रीमान् केसरी प्रत्यदृश्यत ॥१८॥
गोलाङ्गूलमहाराजो गवाक्षो भीमविक्रमः । वृतस्तत्र सहस्रेण वानराणामदृश्यत ॥१९॥
ऋक्षाणां भीमवेगानां धूम्रः शत्रुनिबर्हणः । वृतः कोटिसहस्राभ्यां द्वाभ्यां समभिवर्तत ॥२०॥
महाचलनिभैर्घोरैः पनसो नाम यूथपः । आजगाम महावीर्यो बहुभिर्वानरैर्वृतः ॥२१॥
नीलाञ्जनचयाकारो नीलो नामाथ यूथपः । अदृश्यत महाकायः कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥२२॥
ततः काञ्चनशैलाभो गवयो नाम यूथपः । आजगाम महावीर्यः कोटिभिः पञ्चभिर्वृतः ॥२३॥
दरीमुखश्च बलवान् यूथपोऽभ्याययौ तदा । वृतः कोटिसहस्रेण सुग्रीवं समुपस्थितः ॥२४॥
मैन्दश्च द्विविदश्चोभावश्विपुत्रौ महाबलौ । कोटिकोटिसहस्रेण वानराणामदृश्यत ॥२५॥
गजश्च बलवान् वीरः कोटिभिस्तिसृभिर्वृतः । ऋक्षराजो महातेजा जाम्बवान्नाम नामतः ॥२६॥
कोटिभिर्दशभिः प्राप्तः सुग्रीवस्य वशे स्थितः । रुमण्वान्नाम विक्रान्तो वानरो वानरेश्वरम् ॥२७॥
आययौ बलवांस्तूर्णं कोटीशतसमावृतः । ततः कोटिसहस्राणां सहस्रेण शतेन च ॥२८॥
पृष्ठतोऽनुगतः प्राप्तो हरिभिर्गन्धमादनः । ततः पद्मसहस्रेण वृतः शङ्कुशतेन च ॥२९॥
युवराजोऽङ्गदः प्राप्तः पितृतुल्यपराक्रमः । ततस्ताराद्युतिस्तारो हरिर्भीमपराक्रमः ॥३०॥

वीर सैनिकों से घिरे हुए सम्राट् सुग्रीव के प्रसिद्ध ससुर तथा रानी रुमा के पिता दिखाई दिये ॥ १६ ॥ कमल केसर के समान वर्ण वाले, उदीयमान सूर्य के समान मुखमण्डल वाले, वनवासियों के माननीय, बुद्धिमान्, श्रेष्ठ ॥ १७ ॥ अनेकों सहस्र वनवासियों के साथ हनुमान् के पिता श्रीमान् केसरी दिखायी दिये । ॥ १८ ॥ गोलांगूल जाति के महाराज, भीषण पराक्रम वाले, हजारों वनवासियों के साथ गवाक्ष नाम के सेनापति दिखायी दिये ॥ १९ ॥ अत्यन्त वेग वाले ऋक्ष जाति के वनवासी दो हजार वीरों से घिरे हुए शत्रु-जयी धूम्र नामक सेनापति दिखायी दिये ॥ २० ॥ विकराल तथा विशाल काय अनेक वनवासी सैनिकों से घिरे हुए महापराक्रमी सेनापति पनस आये ॥ २१ ॥ नीलपर्वत के समान आकार वाले विशालकाय नीलनामक सेनापति अपने दस समूहों में वनवासियों के साथ दिखायी दिये ॥ २२ ॥ तत्पश्चात् काञ्चन पर्वत के समान गौर वर्ण वाले महापराक्रमी गवय नाम के सेनापति पांच जत्थों के साथ आये ॥ २३ ॥ बलवान् दरीमुख नामक सेनापति हजारों जत्थों के साथ वहां आये तथा सुग्रीव के समीप बैठे ॥ २४ ॥ बलवान् अश्विपुत्र मैन्द तथा द्विविद वनवासी वीरों के अनेकों जत्थों के साथ दिखायी दिये ॥ २५ ॥ बलवान् गज वनवासी वीरों के तीन जत्थों के साथ तथा महातेजस्वी ऋक्ष जाति के क्षत्रियों के राजा जाम्बवान् ॥ २६ ॥ वनवासी वीरों के दस जत्थों के साथ सुग्रीव के समीप आये । रुमण्वान् नामक सेनापति पराक्रमी वनवासी सैनिकों से घिरे हुए आये ॥ २७ ॥ अत्यन्त वेग वाले बलवान् अनेक जत्थों से घिरे हुए सैकड़ों हजारों सेनापति ॥ २८ ॥ तथा अन्य अनुगामी सैनिकों के साथ गन्धमादन आये । पश्चात् पद्मकेसर के समान गौर वर्ण वाले एक बड़ी विशाल सेना के साथ ॥ २९ ॥ अपने पिता के तुल्य पराक्रम वाले युवराज अंगद आये । तारा मण्डल के समान कान्ति वाले तार नामक सेनापति अनेकों भीषण पराक्रम वाले ॥३०॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्चभिर्हरिकोटीभिर्दूरतः प्रत्यदृश्यत । इन्द्रजानुः कपिर्वीरो यूथपः प्रत्यदृश्यत ॥३१॥
एकादशानां कोटीनामीश्वरस्तैश्च संवृतः । ततो रम्भस्त्वनुप्राप्तस्तरुणादित्यसंनिभः ॥३२॥
अयुतेनावृतश्चैव सहस्रेण शतेन च । ततो यूथपतिर्वीरो दुर्मुखो नाम वानरः ॥३३॥
प्रत्यदृश्यत कोटिभ्यां द्वाभ्यां परिवृतो बली । कैलासशिखराकारैर्वानरैर्भीमविक्रमैः ॥३४॥
वृतः कोटिसहस्रेण हनुमान् प्रत्यदृश्यत । नलश्चापि महावीर्यः संवृतो द्रुमवासिभिः ॥३५॥
कोटीशतेन संप्राप्तः सहस्रेण शतेन च । ततो दधिमुखः श्रीमान् कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥३६॥
संप्राप्तोऽभिमतस्तस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । शरभः कुमुदो वह्निर्वानरो रंह एव च ॥३७॥
एते चान्ये च बहवो वानराः कामरूपिणः । आवृत्य पृथिवीं सर्वां पर्वतांश्च वनानि च ॥३८॥
यूथपाः समनुप्राप्तास्तेषां संख्या न विद्यते । आगताश्च निविष्टाश्च पृथिव्यां सर्ववानराः ॥३९॥
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः । अभ्यवर्तन्त सुग्रीवं सूर्यमभ्रगणा इव ॥४०॥
कुर्वाणा बहुशब्दांश्च प्रहृष्टा बाहुशालिनः । शिरोभिर्वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयन् ॥४१॥
अपरे वानरश्रेष्ठाः संगम्य च यथोचितम् । सुग्रीवेण समागम्य स्थिताः प्राञ्जलयस्तदा ॥४२॥
सुग्रीवस्त्वरितो रामे सर्वांस्तान् वानरर्षभान् । निवेदयित्वा धर्मज्ञः स्थितः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥४३॥

यथासुखं पर्वतनिर्झरेषु वनेषु सर्वेषु च वानरेन्द्राः ।
निवेशयित्वा विधिवद्बलानि बलं बलज्ञः प्रतिपत्तुमीष्टे ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सेनानिवेशो नाम एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥

अपने पांच जत्थों के साथ दूर से ही दिखाई दिये। तत्पश्चात् वनवासियों का वीर सेनापति इन्द्रजानु दिखायी दिया ॥ ३१ ॥ उदीयमान सूर्य के समान कान्ति वाला रम्भ नामक सेनापति ग्यारह वीर सैनिकों के जत्थों के साथ आया ॥ ३२ ॥ तत्पश्चात् भीषण पराक्रम वाले, विशाल काय वनवासी सैनिकों के सैकड़ों हज़ारों जत्थों के साथ दुर्मुख नामक भीषण सेनापति दिखायी दिया ॥ ३३,३४ ॥ विशालकाय वनवासी वीरों के अनेक जत्थों के साथ हनुमान् दिखायी दिये। वन के वृक्षों में रहने वाले अनेक पराक्रमी वीरों के साथ नल नामक सेनापति आये ॥ ३५ ॥ पश्चात् दधिमुख नामक वीर सेनापति गर्जन करते हुए दस जत्थों के साथ ॥ ३६ ॥ महात्मा सुग्रीव के पास आये। शरभ, कुमुद, वह्नि, रंह ॥ ३७ ॥ ये सभी तथा इन के अतिरिक्त नाना प्रकार की आकृति वाले वनवासी पर्वत वन की सम्पूर्ण भूमि को ढांप कर ॥ ३८ ॥ सेनापतियों के दल आ गये जिन की कोई गणना नहीं। आ कर सभी वनवासी सैनिक जहां तहां भूमि पर बैठ गये ॥३९॥ कूदते, फांदते तथा गर्जन करते हुए वे वनवासी सैनिक राजा सुग्रीव के समीप इस प्रकार आये जैसे मेघ सूर्य के समीप आते हैं ॥ ४० ॥ बड़े बड़े बलशाली, रणदुर्मद वनवासी सैनिकों ने अनेक प्रकार के शब्दों के द्वारा अपने आने की सूचना देते हुए राजा सुग्रीव को सिर झुका कर प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ इस के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के वनवासी वीर सुग्रीव के समीप आ कर हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुए बैठ गये ॥ ४२ ॥ सम्राट् सुग्रीव ने उन सब लोगों से घिरे हुए रामचन्द्र के समीप जा कर सब के आगमन की सूचना देते हुए आदेश दिया ॥ ४३ ॥ हे वनवासी वीरो तथा सेनापतियो ! अपनी सुविधा के अनुसार पर्वत के समीप, झरनों के पास, वनस्थली में अपनी नाना प्रकार की सेना को विश्राम के लिये ठहरा देवें। सेना के जानने वाले सेनापति अपनी अपनी सेना की देख भाल करते रहें ॥ ४४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'सेना का शिविर' विषयक उन्तालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३९ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Syama Prosha

चत्वारिंशः सर्गः

प्राचीप्रेषणम्

अथ राजा समृद्धार्थः सुग्रीवः प्लवगाधिपः । उवाच नरशार्दूलं रामं परबलार्दनम् ॥ १ ॥
आगता विनिविष्टाश्च बलिनः कामरूपिणः । वानरेन्द्रा महेन्द्राभा ये मद्विषयवासिनः ॥ २ ॥
त इमे बहुविक्रान्तैर्हरिभिर्भीमविक्रमैः । आगता वानरा घोरा दैत्यदानवसंनिभाः ॥ ३ ॥
ख्यातकर्मापदानाश्च बलवन्तो जितक्लमाः । पराक्रमेषु विख्याता व्यवसायेषु चोत्तमाः ॥ ४ ॥
पृथिव्यम्बुचरा राम नानानगनिवासिनः । कोट्यग्रश इमे प्राप्ता वानरास्तव किंकराः ॥ ५ ॥
निदेशवर्तिनः सर्वे सर्वे गुरुहिते रताः । अभिप्रेतमनुष्ठातुं तव शक्ष्यन्त्यरिंदम ॥ ६ ॥
त इमे बहुसाहस्रैरनीकैर्भीमविक्रमैः । आगता वानरा घोरा दैत्यदानवसंनिभाः ॥ ७ ॥
यन्मन्यसे नरव्याघ्र प्राप्तकालं तदुच्यताम् । त्वत्सैन्यं त्वद्वशे युक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ८ ॥
काममेषामिदं कार्यं विदितं मम तत्त्वतः । तथापि तु यथातत्त्वमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ९ ॥
तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः । बाहुभ्यां संपरिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥
ज्ञायतां मम वैदेही यदि जीवति वा न वा । स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन् वसति रावणः ॥११॥

चालीसवां सर्गः

पूर्व दिशा में भेजना

समग्र सैन्य सामग्रियों से परिपूर्ण वनवासियों के सम्राट् सुग्रीव नर केसरी, शत्रुंजयी रामचन्द्र से इस प्रकार बोले ॥ १ ॥ हे रामचन्द्र ! मेरे राज्य में रहने वाले, इन्द्र के समान पराक्रमी, अव्याहत गति वाले वनवासी बली सैनिक आपकी सेवा में आ गये है तथा उन्हें सुविधा वाले स्थान पर ठहरा दिया गया है ॥ २ ॥ नाना प्रकार के देशों में घूमने वाले, भीषण पराक्रम करने वाले, दैत्य दानव के समान रण दुर्मद वनवासी सैनिक आप की सेवा में आ गये हैं ॥ ३ ॥ अनेक संग्रामों में जिनकी अनुपम वीरता का परिचय प्राप्त हो चुका है, भीषण संग्राम में भी ये कभी क्लान्त नहीं होते, अपने पराक्रम में प्रसिद्ध हैं तथा उद्योग करने में सर्वोपरि हैं ॥ ४ ॥ हे रामचन्द्र ! भूमि तथा जल में भी अपना काम करने वाले, अनेक पर्वतों पर निवास करने वाले, अनेक जत्थों में विभक्त ये आपके सेवक वनवासी वीर आपकी सेवा में आ गये हैं ॥ ५ ॥ हे शत्रुञ्जय रामचन्द्र ! ये सभी सैनिक आपके वशवर्ती हैं, अपने स्वामी के हित कार्य में दत्तचित्त हैं, आपके अभीष्ट कार्य की सिद्धि में ये सभी समर्थ हैं ॥ ६ ॥ अतुल पराक्रम वाले, दैत्य दानव के समान रणावमर्दी ये वनवासी सैनिक अनेक सहस्र की संख्या में आ गये हैं ॥ ७ ॥ हे नर केसरी ! ये आपके आज्ञाकारी सैनिक आपके समक्ष उपस्थित हैं, आप समय के अनुसार इनको जो आज्ञा देना चाहते हैं दीजिये ॥ ८ ॥ सीतान्वेषण रूपी महान् कार्य का यद्यपि मुझे भी परिज्ञान है, तथापि आप इन्हें जो उचित आज्ञा देना चाहें देवें ॥ ९ ॥ राजा सुग्रीव के इस प्रकार कहने पर दशरथ राजकुमार रामचन्द्र अपनी दोनों भुजाओं से सुग्रीव का आलिंगन करते हुए उनसे इस प्रकार बोले ॥ १० ॥ हे सौम्य ! सब से पूर्व इस बात का पता लगाना चाहिये कि सीता जीवित हैं या नहीं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च । प्राप्तकालं विधास्यामि तस्मिन् काले सह त्वया ॥१२॥
नाहमस्मिन् प्रभुः कार्ये वानरेश न लक्ष्मणः । त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वर ॥१३॥
त्वमेवाज्ञापय विभो मम कार्यविनिश्चयम् । त्वं हि जानासि यत्कार्यं मम वीर न संशयः ॥१४॥
सुहृद्द्वितीयो विक्रान्तः प्राज्ञः कालविशेषवित् । भवानस्मद्धिते युक्तः सुकृतार्थोऽर्थवित्तमः ॥१५॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवो विनतं नाम यूथपम् । अब्रवीद्रामसांनिध्ये लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥१६॥
शैलाभं मेघनिर्घोषमूर्जितं प्लवगेश्वरम् । सोमसूर्यात्मजैः सार्धं वानरैर्वानरोत्तम ॥१७॥
देशकालनयैर्युक्तः कार्याकार्यविनिश्चये । वृतः शतसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ॥१८॥
अधिगच्छ दिशं पूर्वां सशैलवनकाननाम् । तत्र सीतां च वैदेहीं निलयं रावणस्य च ॥१९॥
मार्गध्वं गिरिशृङ्गेषु वनेषु च नदीषु च । नदीं भागीरथीं रम्यां सरयूं कौशिकीं तथा ॥२०॥
कालिन्दीं यमुनां रम्यां यामुनं च महागिरिम् । सरस्वतीं च सिन्धुं च शोणं मणिनिभोदकम् ॥२१॥
महीं कालमहीं चैव शैलकाननशोभिताम् । ब्रह्ममालाम् विदेहांश्च मालवान् काशिकोसलान् ॥२२॥
मागधांश्च महाग्रामान् पुण्ड्रान् वङ्गांस्तथैव च । पत्तनं कोशकाराणां भूमिं च रजताकराम् ॥२३॥
सर्वमेतद्विचेतव्यं मार्गयद्भिस्ततस्ततः । रामस्य दयितां भार्यां सीतां दशरथस्नुषाम् ॥२४॥
समुद्रमवगाढांश्च पर्वतान् पत्तनानि च । मन्दरस्य च ये कोटिं संश्रिताः केचिदायताम् ॥२५॥

हे महामति ! उस देश का भी पता लगाना चाहिये जहां रावण निवास करता है ॥ ११ ॥ सीता तथा रावण का पता लग जाने पर उस समय—अब भविष्य में क्या करना है, उस भावी कार्य के लिये तुम्हारे साथ परामर्श करूंगा ॥ १२ ॥ हे वनवासी सम्राट् ! मैं तथा लक्ष्मण इस कार्य में इतने कुशल नहीं । यह कार्य तुम्हीं को करना है और इस कार्य में तुम्हारी ही क्षमता है ॥ १३ ॥ कार्य का निश्चय कर के हे तात ! तुम ही इसके लिये आज्ञा दो । हे वीर ! तुम मेरे इस कार्य को सम्यक्तया जानते हो, इस में कोई सन्देह नहीं ॥ १४ ॥ आप मेरे अद्वितीय मित्र हैं, पराक्रमी, महाबुद्धिमान् तथा देश-काल को जानने वाले हैं । मित्र तथा अर्थज्ञाता, अर्थनीति सम्पन्न आप सदा हमारे हितचिन्तक हैं ॥ १५ ॥ रामचन्द्र के ऐसा कहने पर सुग्रीव रामचन्द्र तथा लक्ष्मण के समीप विनत नामक सेनापति से बोले ॥ १६ ॥ विशालकाय, मेघ के समान गर्जन करने वाले, वनवासी सैनिकों के सेनापति ने उस विनत से यह कहा—चन्द्र सूर्य के समान कान्ति वाले वीर वनवासी सैनिकों के साथ ॥ १७ ॥ तथा देश काल नीति से युक्त, कार्य में दक्ष, वेगगति वाले हजार सैनिकों के साथ ॥ १८ ॥ अनेकों पर्वत तथा वन वाली पूर्व दिशा में जाओ । वहां विदेह की राजकुमारी सीता तथा रावण के निवास का पता लगाओ ॥ १९ ॥ पर्वत की घाटियों में, वनों में, नदी तट वाली भूमि में विशेषतः रमणीय गंगा, सरयू तथा कौशिकी नदियों के तटवर्त्ती देशों में खोजना ॥ २० ॥ यमुनोत्तरी से निकलने वाली रमणीय कालिन्दी और विशाल यामुन नामक पर्वत, सरस्वती, सिन्धु तथा मणि के समान जल वाली सोन के तट का भी अन्वेषण करना ॥ २१ ॥ पर्वत तथा वन से अलंकृत मही और कालमही स्थानों में खोजना । ब्रह्ममाला, विदेह, मालवा, काशी, कोसल देशों में भी सीता का पता लगाना ॥ २२ ॥ अनेक विशाल ग्राम वाले मगध, पुण्ड्र तथा अंग देश को खोजना । रेशम के उत्पन्न करने वाले नगर तथा जिस भूमि में चांदी पैदा होती है, उन्हें खोजना ॥ २३ ॥ इस के अतिरिक्त और भी इधर उधर राजा दशरथ की पुत्रवधू तथा रामचन्द्र की प्रिय पत्नी सीता का अन्वेषण करो ॥ २४ ॥ जो पर्वत समुद्र के तटवर्त्ती हैं या जो समुद्र के मध्य में हैं, उन स्थानों को, मन्दर पर्वत के ऊपरी भाग तथा निम्न भाग में स्थित नगर-ग्रामों को खोजना ॥ २५ ॥ ओष्ठ तक लटकने वाले विशाल कर्ण, विकराल, लोह के समान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्णप्रावरणाश्चैव तथा चात्योष्ठकर्णकाः । घोरा लोहमुखाश्चैव जवनाश्चैकपादकाः ॥२६॥
अक्षया बलवन्तश्च पुरुषाः पुरुषादकाः । किरातास्तीक्ष्णचूडाश्च हेमाङ्गाः प्रियदर्शनाः ॥२७॥
आममीनाशनास्तत्र किराता द्वीपवासिनः । अन्तर्जलचरा घोरा नरव्याघ्रा इति श्रुताः ॥२८॥
एतेषामालयाः सर्वे विचेयाः काननौकसः । गिरिभिर्ये च गम्यन्ते प्लवनेन प्लवेन च ॥२९॥
यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम् । सुवर्णरूप्यकं चैव सुवर्णाकरमण्डितम् ॥३०॥
यवद्वीपमतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः । दिवं स्पृशति शृङ्गेण देवदानवसेवितः ॥३१॥
एतेषां गिरिदुर्गेषु प्रपातेषु वनेषु च । मार्गध्वं सहिताः सर्वे रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥३२॥
ततो रक्तजलं शोणमगाधं शीघ्रगामिनम् । गत्वा पारं समुद्रस्य सिद्धचारणसेवितम् ॥३३॥
तस्य तीर्थेषु रम्येषु विचित्रेषु वनेषु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततः ॥३४॥
पर्वतप्रभवा नद्यः सुरम्या बहुनिष्कुटाः । मार्गितव्या दरीमन्तः पर्वताश्च वनानि च ॥३५॥
ततः समुद्रद्वीपांश्च सुभीमान् द्रष्टुमर्हथ । ऊर्मिमन्तं महारौद्रं क्रोशन्तमनिलोद्धतम् ॥३६॥
[तत्रासुरा महाकायाश्छायां गृह्णन्ति नित्यशः । ब्रह्मणा समनुज्ञाता दीर्घकालं बुभुक्षिताः ॥३७॥
तं कालमेघप्रतिमं महोरगनिषेवितम् । अभिगम्य महानादं तीर्थेनैव महोदधिम् ॥३८॥
ततो रक्तजलं भीमं लोहितं नाम सागरम् । गता द्रक्ष्यथ तां चैव बृहतीं कूटशाल्मलीम् ॥३९॥

दृढमुख वाले, एक पैर से भी अत्यन्त वेग से चलने वाले लोगों के निवास स्थान को देखना ॥ २६ ॥ गृहहीन (सदा पर्यटन करने वाले) बलवान् तथा नरभक्षी, विकराल केश वाले, किरात, गौर वर्ण वाले, प्रियदर्शी लोगों के स्थानों का भी गवेषण करना ॥ २७ ॥ कच्ची मछली खाने वाले, अनूप देश में रहने वाले किरात, जल के बीच में स्थान बना कर रहने वाले विकराल, नरव्याघ्र नाम से पुकारे जाने वाले ॥ २८ ॥ हे वनवासियो ! इनके निवास स्थानों का नियम पूर्वक अन्वेषण करना । पहाड़ी मार्ग से पर्वत माला लांघ कर नौका के द्वारा उन द्वीप वाले स्थानों को भी खोजना ॥ २९ ॥ सप्त राज्यों से सुशोभित यवद्वीप को, सुवर्ण तथा रूप्यक द्वीप को जहाँ सोने की अनेक खानें हैं, उन स्थानों को यत्न पूर्वक खोजना ॥ ३० ॥ यवद्वीप को लांघ कर शिशिर नाम का पर्वत मिलेगा जिसकी चोटियां आकाश को स्पर्श करती हैं । ऋषि-महर्षि तथा नरभक्षी दानवों से जो पूर्ण है ॥ ३१ ॥ यहां की पर्वतीय घाटियों में, गुफाओं में, प्रपात वाली भूमि में, वनों में तुम सभी लोग एक साथ रामचन्द्र की धर्मपत्नी यशस्विनी सीता का अन्वेषण करो ॥ ३२ ॥ पश्चात् रक्त जल वाले, शीघ्रता पूर्वक बहने वाले, शोण भद्र नामक विशाल नद के पार जा कर सिद्ध-चारण लोगों से सेवित समुद्र के तट पर जाना ॥ ३३ ॥ रमणीय समुद्र के तटवर्त्ती देशों में, विचित्र वनों में इधर उधर जानकी तथा रावण का अन्वेषण करना ॥ ३४ ॥ पर्वतीय नदियों, रमणीय वाटिकाओं से युक्त ग्राम, पर्वतीय गुफाओं तथा पास वाले वनों को भी तुम लोग खोजना ॥ ३५ ॥ उस से आगे समुद्र के अन्तर्गत विशाल द्वीपों को देखना जहां पर समुद्र विकराल लहरों से तरङ्गित तथा वायु के वेग से निरन्तर गर्जन कर रहा होगा ॥ ३६ ॥ उस समुद्र के मध्य में विशाल काय, छाया ग्राही अर्थात् छाया के द्वारा छाया वाले को पकड़ने वाले असुर रहते है । इन छायाग्राही असुरों को ब्रह्मा की आज्ञा प्राप्त है तथा ये दीर्घ काल से भूखे हैं ॥ ३७ ॥ काल मेघ के समान उस में बड़े बड़े सर्प निवास करते हैं, जिस में अहर्निश भयंकर गर्जन होता है, उस महोदधि को बचा कर आगे जाना ॥ ३८ ॥ पश्चात् भयंकर लोहित नामक सागर के पास जिसका जल रक्त वर्ण है जा कर विशाल काय एक सेमल के वृक्ष को देखना ॥ ३९ ॥ विश्वकर्मा के द्वारा बनाया हुआ, कैलास पर्वत के समान, नाना रत्नों से विभूषित

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गृहं च वैनतेयस्य नानारत्नविभूषितम् । तत्र कैलाससंकाशं विहितं विश्वकर्मणा ॥४०॥
तत्र शैलनिभा भीमा मन्देहा नाम राक्षसाः । शैलशृङ्गेषु लम्बन्ते नानारूपा भयावहाः ॥४१॥
ते पतन्ति जले नित्यं सूर्यस्योदयनं प्रति । अभितप्ताश्च सूर्येण लम्बन्ते स्म पुनः पुनः ॥४२॥
निहता ब्रह्मतेजोभिरहन्यहनि राक्षसाः । ततः पाण्डरमेघाभं क्षीरोदं नाम सागरम् ॥४३॥
गता द्रक्ष्यथ दुर्धर्षा मुक्ताहारमिव क्षितेः । तस्य मध्ये महाञ्श्वेत ऋषभो नाम पर्वतः ॥४४॥
दिव्यगन्धैः कुसुमितै राजतैश्च नगैर्वृतः । सरश्च राजतैः पद्मैर्ज्वलितैर्हेमकेसरैः ॥४५॥
नाम्ना सुदर्शनं नाम राजहंसैः समाकुलम् । विबुधाश्चारणा यक्षाः किंनराः साप्सरोगणाः ॥४६॥
हृष्टाः समभिगच्छन्ति नलिनीं तां रिरंसवः । क्षीरोदं समतिक्रम्य ततो द्रक्ष्यथ वानराः ॥४७॥
जलोदं सागरश्रेष्ठं सर्वभूतभयावहम् । तत्र तत्कोपजं तेजः कृतं हयमुखं महत् ॥४८॥
अस्याहुस्तन्महावेगमोदनं सचराचरम् । तत्र विक्रोशतां नादो भूतानां सागरौकसाम् ॥४९॥
श्रूयते च समर्थानां दृष्ट्वा तद्वडवामुखम् ।
स्वादूदस्योत्तरे देशे योजनानि त्रयोदश । जातरूपशिलो नाम महान् कनकपर्वतः ॥५०॥
तत्र चन्द्रप्रतीकाशं पन्नगं धरणीधरम् । पद्मपत्रविशालाक्षं ततो द्रक्ष्यथ वानराः ॥५१॥
आसीनं पर्वतस्याग्रे सर्वभूतनमस्कृतम् । सहस्रशिरसं देवमनन्तं नीलवाससम् ॥५२॥
त्रिशिराः काञ्चनः केतुस्तालस्तस्य महात्मनः । स्थापितः पर्वतस्याग्रे विराजति सवेदिकः ॥५३॥
पूर्वस्यां दिशि निर्माणं कृतं तत्त्रिदशेश्वरैः । ततः परं हेममयः श्रीमानुदयपर्वतः ॥५४॥

गरुड़ का गृह है ॥ ४० ॥ वहां विशाल पर्वत के समान भयंकर भीषणकाय मन्देह नामक राक्षस निवास करते हैं। वे नाना प्रकार के आकार वाले भयंकर राक्षस पहाड़ की चोटियों पर लटकते रहते हैं ॥ ४१ ॥ वे राक्षस सूर्योदय काल में प्रतिदिन समुद्र के जल में गिर पड़ते हैं। पुनः दिन में सूर्य की किरणों से संतप्त हो कर पर्वत के शिखर पर लटक जाते हैं ॥ ४२ ॥ वे राक्षस ब्रह्म तेज के द्वारा मारे जाते हैं। फिर वहां से आगे धवल मेघ के समान क्षीरोद नामक समुद्र तट पर जाना ॥ ४३ ॥ वहां जा कर मुक्ताहार के समान लहरियों से युक्त उस दुर्धर्ष समुद्र को देखना। उस समुद्र के मध्य में ऋषभ नामक एक महान् श्वेत पर्वत है ॥ ४४ ॥ उस पर्वत पर दिव्य फूलों से पुष्पित अनेक वृक्ष हैं। चांदी के जिस में कमल हैं जिनके किंजल्क सोने के हैं, ऐसा वहां एक सरोवर है ॥ ४५ ॥ उस सरोवर का नाम सुदर्शन है जो राजहंसों से व्याप्त है। वहां पर देवता चारण, यक्ष, किन्नर तथा अप्सराओं का समूह ॥ ४६ ॥ प्रसन्नता पूर्वक क्रीडा करने की इच्छा से उस सरोवर में आया करता है। क्षीरोद नामक समुद्र को लांघ कर हे वनवासियो! ॥ ४७ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों को भय देने वाले जलोद नामक समुद्र को देखोगे। वहाँ समुद्र के अन्तर्गत होने वाली तैजस शक्ति या वाडवाग्नि को देखोगे ॥ ४८ ॥ इस वाडवाग्नि का अत्यन्त अद्भुत वेग चराचर जगत् को अपना भोजन बना लेता है। उस समुद्र के अन्दर रहने वाले प्राणियों का करुण क्रन्दन आज भी सुनायी दे रहा है ॥ ४९ ॥ स्वादु जल वाले इस समुद्र के उत्तरी तट से तेरह योजन की दूरी पर जातरूप शिला नामक एक काञ्चन पर्वत है ॥ ५० ॥ हे वनवासी सैनिको! वहां पर चन्द्रमा के समान धवल वर्ण वाले, कमल पत्र के समान रमणीय नेत्र वाले तथा इस सम्पूर्ण भूमण्डल के भार को वहन करने वाले सर्पराज को देखोगे ॥ ५१ ॥ हज़ार सिर वाले, सम्पूर्ण देवताओं के नमस्करणीय, नील वस्त्र धारण कर पर्वत के ऊपर बैठने वाले उस अनन्त देव को देखोगे ॥ ५२ ॥ उस पर्वत पर अनन्त देव की तीन सिर वाली स्वर्णमयी ध्वजा विराजमान है। वह ध्वजा वेदि के साथ पर्वत के ऊपर स्थित है। ध्वजा के रूप में काञ्चमय ताल वृक्ष ही है ॥ ५३ ॥ देवताओं ने पूर्व दिशा का—यह अन्तिम स्थान है—इस प्रकार उस का निर्माण किया। वहां से कुछ दूर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

तस्य कोटिर्दिवं स्पृष्ट्वा शतयोजनमायता । जातरूपमयी दिव्या विराजति सवेदिका ॥५५॥
सालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः । जातरूपमयैर्दिव्यैः शोभते सूर्यसंनिभैः ॥५६॥
तत्र योजनविस्तारमुच्छ्रितं दशयोजनम् । शृङ्गं सौमनसं नाम जातरूपमयं ध्रुवम् ॥५७॥
तत्र पूर्वं पदं कृत्वा पुरा विष्णुस्त्रिविक्रमे । द्वितीयं शिखरे मेरोश्चकार पुरुषोत्तमः ॥५८॥
उत्तरेण परिक्रम्य जम्बूद्वीपं दिवाकरः । दृश्यो भवति भूयिष्ठं शिखरं तन्महोच्छ्रयम् ॥५९॥
तत्र वैखानसा नाम वालखिल्या महर्षयः । प्रकाशमाना दृश्यन्ते सूर्यवर्णास्तपस्विनः ॥६०॥
अयं सुदर्शनो द्वीपः पुरो यस्य प्रकाशते । यस्मिंस्तेजश्च चक्षुश्च सर्वप्राणभृतामपि ॥६१॥
शैलस्य तस्य शृङ्गेषु कन्दरेषु वनेषु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥६२॥
काञ्चनस्य च शैलस्य सूर्यस्य च महात्मनः । आविष्टा तेजसा सन्ध्या पूर्वा रक्ता प्रकाशते ॥६३॥
पूर्वमेतत्कृतं द्वारं पृथिव्या भुवनस्य च । सूर्यस्योदयनं चैव पूर्वा ह्येषा दिगुच्यते ॥६४॥
तस्य शैलस्य पृष्ठेषु निर्झरेषु गुहासु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥६५॥
ततः परमगम्या स्याद्दिक्पूर्वा त्रिदशावृता । रहिता चन्द्रसूर्याभ्यामदृश्या तिमिरावृता ॥६६॥]
शैलेषु तेषु सर्वेषु कन्दरेषु वनेषु च । ये च नोक्ता मया देशा विचेया तेषु जानकी ॥६७॥

पर स्वर्णमय उदयाचल पर्वत है ॥ ५४ ॥ उसकी सौ योजनवाली स्वर्णमयी ऊंची चोटी आकाश का स्पर्श करती है तथा उस के समीप स्वर्णमयी दिव्य वेदि विराजमान है ॥ ५५ ॥ साल, ताल, तमाल, तथा पुष्पित कर्णिकार के फूल स्वर्णमय हैं तथा सूर्य के समान शोभायमान हो रहे हैं ॥ ५६ ॥ वहां एक योजन लम्बा चौड़ा, दस योजन ऊंचा सौमनस नामक एक काञ्चनमय शिखर है ॥ ५७ ॥ वहां पर वामन भगवान् ने अपना पहला चरण रखा था और द्वितीय पैर मेरु पर्वत के शिखर पर रखा था ॥ ५८ ॥ सूर्य सम्पूर्ण जम्बू द्वीप की परिक्रमा कर उत्तर की ओर से समुन्नत मेरु शिखर पर आता है तभी दिखाई देता है ॥ ५९ ॥ उस पर्वत के समीप वालखिल्य नामक वानप्रस्थ सूर्य के समान देदीप्यमान कान्ति वाले दिखाई पड़ते हैं ॥ ६० ॥ उदयाचल के समीप सुदर्शन नामक द्वीप प्रकाशित हो रहा है, उसी द्वीप में चक्षु तथा आलोक को तेज मिलता है ॥ ६१ ॥ उस पर्वत के शिखर, कन्दरा तथा समीप की वनस्थली में इधर उधर जानकी के साथ रावण का अन्वेषण करना ॥ ६२ ॥ वहां के स्वर्णमय पर्वत तथा भगवान् सूर्य की प्रखर ज्योति मिल कर पूर्वकाल की सन्धि वाली अरुणिमा प्रकाशित होती है ॥ ६३ ॥ पृथ्वी तथा सम्पूर्ण भुवनों का प्रथम द्वार इसी को कहा गया है, क्योंकि इसी दिशा में सूर्य उदय होता है, इस लिये इस को पूर्व दिशा कहते हैं ॥ ६४ ॥ उस पर्वत के ऊपरी भाग, प्रपात तथा गहन गुफाओं में तुम सभी लोग जानकी के साथ रावण का पता लगाना ॥ ६५ ॥ उस के पश्चात् आगे की जो पूर्व दिशा है, वह देवताओं से परिपूर्ण तथा अत्यन्त अगमनीय है, सूर्य चन्द्र के प्रकाश से सर्वथा रहित है। इस लिये सर्वथा अन्धकार से आच्छादित रहती है * ॥ ६६ ॥ उन सम्पूर्ण पर्वतों पर, कन्दराओं में, नदियों के तट पर जिन का वर्णन मैंने किया है तथा जिन स्थानों का वर्णन मैं ने नहीं किया है, उन दोनों प्रकार के स्थानों में जानकी की खोज करना ॥ ६७ ॥ हे वनवासी वीरो ! यहीं तक तुम वनवासियों का गमन हो सकता है,

* ३७–६६ श्लोकों में जो वर्णन आया है, वह प्रकृति नियम के विरुद्ध, सृष्टि क्रम के विरुद्ध तथा असंभव आदि कई दोषों से युक्त होने के कारण प्रक्षिप्त है। आदि कवि वाल्मीकि की लेखनी से इस प्रकार का असम्बद्ध प्रलाप हो नहीं सकता। पद्म पुराण आदि अनेक पुराणों में रामायण तथा महाभारत के आख्यान को विकृत रूप में दिया है। सृष्टि क्रम के विरुद्ध इस प्रकार की अनेक असम्भव बातें पुराणों में पद पद पर आती हैं। रामायण के कुछ अन्ध भक्तों ने वाल्मीकि तथा व्यास की कृति में इस की न्यूनता पायी जिस की पूर्त्ति के लिये पुराणों के उन स्थलों का रामायण में जहां तहां अनेक स्थलों पर प्रक्षेप किया है। उन में से एक यह भी है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतावद्वानरैः शक्यं गन्तुं वानरपुंगवाः । अभास्करममर्यादं न जानीमस्ततः परम् ॥६८॥
अधिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च । मासे पूर्णे निवर्तध्वमुदयं प्राप्य पर्वतम् ॥६९॥
ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन् वध्यो भवेन्मम । सिद्धार्थाः संनिवर्तध्वमधिगम्य च मैथिलीम् ॥७०॥

महेन्द्रकान्तां वनषण्डमण्डितां दिशं चरित्वा निपुणेन वानराः ।
अवाप्य सीतां रघुवंशजप्रियां ततो निवृत्ताः सुखिनो भविष्यथ ॥७१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे प्राचीप्रेषणं नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥४०॥

एकचत्वारिंशः सर्गः

दक्षिणाप्रेषणम्

ततः प्रस्थाप्य सुग्रीवस्तन्महद्वानरं बलम् । दक्षिणां प्रेषयामास वानरानभिलक्षितान् ॥ १ ॥
नीलमग्निसुतं चैव हनुमन्तं च वानरम् । पितामहसुतं चैव जाम्बवन्तं महाबलम् ॥ २ ॥
सुहोत्रं च शरारिं च शरगुल्मं तथैव च । गजं गवाक्षं गवयं सुषेणमृषभं तथा ॥ ३ ॥

आगे का मार्ग गमनागमन के अनुपयुक्त है तथा सूर्य के प्रकाश से रहित है। आगे की भूमि में मेरी जानकारी भी नहीं है ॥ ६८ ॥ उदयाचल पर्वत पर जा कर महारानी जानकी का तथा रावण के निवास का एक मास के भीतर पता लगा कर लौट आओ ॥ ६९ ॥ एक मास से अधिक तुम लोग वहां मत ठहरना। मेरी इस आज्ञा का उल्लंघन कर जो रहेगा, वह प्राणदण्ड का भागी होगा। जानकी का पता लगा कर तथा सफल मनोरथ होकर तुम लोग लौट आओ ॥ ७० ॥ हे वनवासियो ! वन भाग से विभूषित इन्द्र की रमणीय पूर्व दिशा में अच्छी तरह भ्रमण कर रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र की प्राण प्रिया सीता को प्राप्त कर यदि तुम लोग लौट आओगे तो तुम लोगों का जीवन सुखमय होगा ॥ ७१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'पूर्वदिशा में भेजना' विषयक चालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४० ॥

इकतालीसवां सर्ग

दक्षिण दिशा में भेजना

वनवासी राजा सुग्रीव ने उस विशाल सेना को पूर्व दिशा में भेज कर पश्चात् पूर्व से ही निर्धारित वनवासी वीरों को दक्षिण दिशा में भेजा ॥ १ ॥ उस दल में अग्निपुत्र नील, वनवासी महावीर हनुमान्, अत्यन्त पराक्रमी पितामहपुत्र जाम्बवान् ॥ २ ॥ सुहोत्र, शरारि तथा शर गुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण तथा वृषभ ॥ ३ ॥ मैन्द, द्विविद, विजय तथा गन्धमादन, उल्कामुख, असङ्ग तथा हुताशन के दोनों कुमार

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैन्दं च द्विविदं चैव विजयं गन्धमादनम् । उल्कामुखमसङ्गं च हुताशनसुतावुभौ ॥ ४ ॥
अङ्गदप्रमुखान् वीरान् वीरः कपिगणेश्वरः । वेगविक्रमसंपन्नान् संदिदेश विशेषवित् ॥ ५ ॥
तेषामग्रेसरं चैव महाबलमथाङ्गदम् । विधाय हरिवीराणामादिशद्दक्षिणां दिशम् ॥ ६ ॥
ये केचन समुद्देशास्तस्यां दिशि सुदुर्गमाः । कपीशः कपिमुख्यानां स तेषां तानुदाहरत् ॥ ७ ॥
सहस्रशिरसं विन्ध्यं नानाद्रुमलतायुतम् । नर्मदां च नदीं दुर्गां महोरगनिषेविताम् ॥ ८ ॥
ततो गोदावरीं रम्यां कृष्णवेणीं महानदीम् । मेखलानुत्कलांश्चैव दशार्णनगराण्यपि ॥ ९ ॥
अश्ववन्तीमवन्तीं च सर्वमेवानुपश्यत । विदर्भानृष्टिकांश्चैव रम्यान् माहिषकानपि ॥१०॥
तथा मत्स्यकलिङ्गांश्च कौशिकांश्च समन्ततः । अन्वीक्ष्य दण्डकारण्यं सपर्वतनदीगुहम् ॥११॥
नदीं गोदावरीं चैव सर्वमेवानुपश्यत । तथैवान्ध्रांश्च पुण्ड्रांश्च चोलान्पाण्ड्यान् सकेरलान् ॥१२॥
अयोमुखश्च गन्तव्यः पर्वतो धातुमण्डितः । विचित्रशिखरः श्रीमांश्चित्रपुष्पितकाननः ॥१३॥
सचन्दनवनोद्देशो मार्गितव्यो महागिरिः । ततस्तामापगां दिव्यां प्रसन्नसलिलां शिवाम् ॥१४॥
तत्र द्रक्ष्यथ कावेरीं विहृतामप्सरोगणैः । तस्यासीनं नगस्याग्रे मलयस्य महौजसम् ॥१५॥
द्रक्ष्यथादित्यसंकाशमगस्त्यमृषिसत्तमम् । ततस्तेनाभ्यनुज्ञाताः प्रसन्नेन महात्मना ॥१६॥
ताम्रपर्णीं ग्राहजुष्टां तरिष्यथ महात्मना । सा चन्दनवनैर्दिव्यैः प्रच्छन्ना द्वीपशालिनी ॥१७॥
कान्तेव युवतिः कान्तं समुद्रमवगाहते । ततो हेममयं दिव्यं मुक्तामणिविभूषितम् ॥१८॥

॥ ४ ॥ अंगद आदि प्रमुख वीरों को जो वेग गति तथा पराक्रम सम्पन्न थे, विशेषज्ञ वनवासियों के राजा सुग्रीव ने यह संदेश दिया ॥ ५ ॥ महाबली अंगद को उस दल का नेता बना कर इस विशाल वनवासी वाहिनी को दक्षिण दिशा में भेजा ॥ ६ ॥ उस दक्षिण दिशा में जो भी अन्वेषणीय दुर्गम स्थान थे, राजा सुग्रीव ने उन वनवासी वीरों को उन सब का परिचय दिया ॥ ७ ॥ हजारों चोटियों वाला, नाना प्रकार के वृक्ष तथा लताओं से परिपूर्ण विन्ध्य पर्वत को तथा सर्प आदि जलजन्तुओं से परिपूर्ण रमणीय नर्मदा के तट को ॥ ८ ॥ पश्चात् रमणीय गोदावरी, कृष्णा, महानदी आदि नदियों के तटवर्ती देशों को, मेखल, उत्कल, दशार्ण आदि नगरों को ॥ ९ ॥ अश्ववन्ती, अवन्ती, विदर्भ, ऋष्टिक, रमणीय माहिष्क इन सब स्थानों में सीता का उन्वेषण करना ॥ १० ॥ मत्स्य, कलिंग तथा सम्पूर्ण कौशिक प्रान्त को देख भाल कर पर्वत, गुफा, तथा अनेक नदियों से पूर्ण दण्डकारण्य का अन्वेषण करना ॥ ११ ॥ रमणीय गोदावरी नदी के तट भाग को तथा आन्ध्र, पुण्ड्र, चोल, पाण्ड्य, केरल आदि स्थानों को खोजना ॥ १२ ॥ नाना प्रकार के पुष्पों से जिन के वन भरे पड़े हैं, अनेक धातुओं से जो परिपूर्ण हैं, ऐसे चित्र विचित्र शिखर वाले अयोमुख पर्वत पर जाना ॥ १३ ॥ रमणीय चन्दन वृक्षों से जिस की चोटी परिपूर्ण है, उस विशाल मलय पर्वत पर भी खोजना। पश्चात् पवित्र जल वाली ॥ १४ ॥ उस अप्सराओं से परिपूर्ण कावेरी नदी को तुम देखोगे। उस मलय पर्वत के शिखर पर बैठे हुए महान् ओजस्वी ॥ १५ ॥ सूर्य के समान कान्ति वाले महर्षि अगस्त्य को देखोगे। पश्चात् प्रसन्नता पूर्वक उस महात्मा से आज्ञा पा कर ॥ १६ ॥ ग्राह आदि जल जन्तुओं से पूर्ण महानदी ताम्रपर्णी को पार करना। वह नदी चित्र-विचित्र चन्दन वन के वृक्षों से जिसका जल छिप रहा है ॥ १७ ॥ जैसे युवति कान्ता अपने पति के समीप अनुगमन करती है, उसी प्रकार वह ताम्रपर्णी नदी समुद्र के समीप जाती है। उस के आगे स्वर्णमय तथा मुक्ता मणियों से विभूषित दिव्य ॥ १८ ॥ पाण्ड्य राजाओं के रमणीय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुक्ताकवाटं पाण्ड्यानां गता द्रक्ष्यथ वानराः । ततः समुद्रमासाद्य संप्रधार्यार्थनिश्चयम् ॥१९॥
अगस्त्येनान्तरे तत्र सागरे विनिवेशितः । चित्रसानुनगः श्रीमान् महेन्द्रः पर्वतोत्तमः ॥२०॥
जातरूपमयः श्रीमानवगाढो महार्णवम् । नानाविधैर्नगैः फुल्लैर्लताभिश्चोपशोभितम् ॥२१॥
देवर्षियक्षप्रवरैरप्सरोभिश्च सेवितम् । सिद्धचारणसङ्घैश्च प्रकीर्णं सुमनोहरम् ॥२२॥
तमुपैति सहस्राक्षः सदा पर्वसु पर्वसु । द्वीपस्तस्यापरे पारे शतयोजनविस्तृतः ॥२३॥
अगम्यो मानुषैर्दीप्तस्तं मार्गध्वं समन्ततः । तत्र सर्वात्मना सीता मार्गितव्या विशेषतः ॥२४॥
स हि देशस्तु वध्यस्य रावणस्य दुरात्मनः । राक्षसाधिपतेर्वासः सहस्राक्षसमद्युतेः ॥२५॥
दक्षिणस्य समुद्रस्य मध्ये तस्य तु राक्षसी । अङ्गारकेति विख्याता छायामाक्षिप्य भोजनी ॥२६॥
एवं निःसंशयान् कृत्वा संशयान्नष्टसंशयाः । मृगयध्वं नरेन्द्रस्य पत्नीममिततेजसः ॥२७॥
तमतिक्रम्य लक्ष्मीवान् समुद्रे शतयोजने । गिरिः पुष्पितको नाम सिद्धचारणसेवितः ॥२८॥
चन्द्रसूर्यांशुसंकाशः सागराम्बुसमावृतः । भ्राजते विपुलैः शृङ्गैरम्बरं विलिखन्निव ॥२९॥
तस्यैकं काञ्चनं शृङ्गं सेवते यं दिवाकरः । न तं कृतघ्नाः पश्यन्ति न नृशंसा न नास्तिकाः ॥
प्रणम्य शिरसा शैलं तं विमार्गत वानराः । तमतिक्रम्य दुर्धर्षाः सूर्यवान्नाम पर्वतः ॥३१॥
अध्वना दुर्विगाहेन योजनानि चतुर्दश । ततस्तमप्यतिक्रम्य वैद्युतो नाम पर्वतः ॥३२॥

गोपुर (नगर का फाटक) को देखोगे। तत्पश्चात् समुद्र के तट पर जा कर कर्त्तव्याकर्त्तव्या के विषय में निश्चय करना ॥ १९ ॥ उस समुद्र के भीतर महेन्द्र नामक पर्वत पर महर्षि अगस्त्य ने चित्र विचित्र चोटियों को सजाया है ॥ २० ॥ उस समुद्र के मध्य में महेन्द्र पर्वतावलि में कांचनमय पर्वत है जो नाना प्रकार के फूल वाले वृक्षों से सुशोभित हो रहा है ॥ २० ॥ जहां पर देवर्षि, श्रेष्ठ यक्ष तथा अप्सराएँ निवास करती हैं, सिद्ध तथा चारणों का समूह जहां निवास करता है। इन कारणों से वह अत्यन्त मनोरम है ॥ २२ ॥ उस जान रूप महेन्द्र पर्वत पर पूर्णमांसी तथा अमावस्या पर्व को इन्द्र सदा आया करते हैं। समुद्र के दूसरे भाग में शतयोजन का लम्बा चौड़ा एक अन्य द्वीप है ॥ २३ ॥ वह देदीप्यमान स्थान सामान्य मनुष्यों से अगमनीय है। वहां पर तुम लोग चारों ओर खोज करना, विशेषकर जानकी की खोज प्रयत्न पूर्वक करना ॥ २४ ॥ वध के योग्य दुरात्मा रावण का वही स्थान है। इन्द्र के समान तेजस्वी राक्षसाधिपति रावण का वहीं निवास है ॥ २५ ॥ दक्षिण समुद्र के मध्य में अंगारका नाम की एक छायाग्राहिणी राक्षसी रहती है। वह छाया के द्वारा जन्तुओं को पकड़ कर अपना भोजन करती है ॥ २६ ॥ सन्देह रहित तुम लोग हे वनवासियो ! हरेक प्रकार की शंकाओं को छोड़ कर अमित तेजस्वी रामचन्द्र की धर्मपत्नी का अन्वेषण करो ॥ २७ ॥ उस स्थान से आगे जाने पर विशाल समुद्र के अन्दर सिद्ध चारणों से सेवित पुष्पितक नामक एक रमणीय पर्वत है ॥ २८ ॥ सागर में स्थित यह पर्वत अपनी रमणीयता में सूर्य और चन्द्रमा के समान रमणीय प्रतीत हो रहा है। यह पर्वत अपने उन्नत शिखरों से मानो आकाश का स्पर्श कर रहा है ॥ २९ ॥ उस पर्वत की एक समुन्नत काञ्चनमयी चोटी इतनी ऊंची है कि उदय के पूर्व तथा सूर्यास्त के पश्चात् भी सूर्य की किरणों से कई घण्टे तक वह चोटी प्रकाशित होती रहती है। कृतघ्न, निर्दयी तथा नास्तिकों के लिये वहां की भूमि वास करने योग्य नहीं है। अर्थात् नियम पालन करने वाले व्रती धर्मात्माओं की ही वह निवास भूमि है ॥ ३० ॥ हे वनवासी सैनिको ! उस पर्वत के निवासी ऋषि मुनियों को यथायोग्य प्रणाम कर के पुनः अन्वेषण का काम करना। हे दुर्धर्ष सैनिको ! उस पर्वत को लांघ कर पुनः तुम लोगों को सूर्यवान् नामक पर्वत मिलेगा ॥ ३१ ॥ चौदह योजन दुर्गमनीय मार्ग से जा कर आगे तुम लोगों को वैद्युत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वकामफलैर्वृक्षैः सर्वकालमनोहरैः । तत्र भुक्त्वा वराहार्णि मूलानि च फलानि च ॥३३॥
मधूनि पीत्वा मुख्यानि परं गच्छत वानराः । तत्र नेत्रमनः कान्तः कुञ्जरो नाम पर्वतः ॥३४॥
अगस्त्यभवनं यत्र निर्मितं विश्वकर्मणा । तत्र योजनविस्तारमुच्छ्रितं दशयोजनम् ॥३५॥
शरणं काञ्चनं दिव्यं नानारत्नविभूषितम् । तत्र भोगवती नाम सर्पाणामालयः पुरी ॥३६॥
विशालकक्ष्या दुर्धर्षा सर्वतः परिरक्षिता । रक्षिता पन्नगैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाविषैः ॥३७॥
सर्पराजो महाप्राज्ञो यस्यां वसति वासुकिः । निर्याय मार्गितव्या च सा च भोगवती पुरी ॥३८॥
तत्र चानन्तरा देशा ये केचन सुसंवृताः । तं च देशमतिक्रम्य महानृषभसंस्थितः ॥३९॥
सर्वरत्नमयः श्रीमानृषभो नाम पर्वतः । गोशीर्षकं पद्मकं च हरिं श्यामं च चन्दनम् ॥४०॥
दिव्यमुत्पद्यते यत्र तच्चैवाग्निसमप्रभम् । न तु तच्चन्दनं दृष्ट्वा स्प्रष्टव्यं च कदाचन ॥४१॥
रोहिता नाम गन्धर्वा घोरा रक्षन्ति तद्वनम् । तत्र गन्धर्वपतयः पञ्च सूर्यसमप्रभाः ॥४२॥
शैलूषो ग्रामणीः शिग्रुः शुभ्रो बभ्रुस्तथैव च । रविसोमाग्निवपुषां निवासः पुण्यकर्मणाम् ॥४३॥
[अन्ते पृथिव्या दुर्धर्षास्तत्र स्वर्गजितः स्थिताः । ततः परं न वः सेव्यः पितृलोकः सुदारुणः ॥४४॥
राजधानी यमस्यैषा कष्टेन तमसा वृता । एतावदेव युष्माभिर्वीरा वानरपुंगवाः ॥४५॥

नामक पर्वत मिलेगा ॥ ३२ ॥ वह पर्वत हरेक समय में फलने फूलने वाले वृक्षों से परिपूर्ण है तथा प्रत्येक समय के लिये वह रमणीय है। वहां पर उत्तम से उत्तम मूल, फल आदि को खा कर ॥ ३३ ॥ तथा प्रेम पूर्वक मधु का पान कर हे वनवासी सैनिको ! पुनः आगे जाना। वहां पर नेत्र तथा मन को आह्लादित करने वाला रमणीय कुञ्जर नामक पर्वत तुम लोगों को मिलेगा ॥ ३४ ॥ उस पर्वत की एक दस योजन विस्तृत चोटी पर विश्वकर्मा ने अगस्त्य ऋषि के लिये एक योजन लम्बे चौड़े गृह का निर्माण किया ॥ ३५ ॥ उसी के समीप नाना रत्नों से विभूषित. स्वर्णमय. दिव्य गृहों वाली सर्पों की निवास भूमि भोगवती नगरी है ॥ ३६ ॥ वह दुर्धर्ष नगरी लम्बी चौड़ी सड़कों से परिपूर्ण तथा हरेक प्रकार से रक्षित है। तीक्ष्ण दंष्ट्रा वाले, भयंकर, पन्नग जाति के वीर अपने महान् विष भरे वाणों से उसकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ३७ ॥ दुर्धर्ष नाग जाति का राजा वासुकि जहां निवास करता है। उस भोगवती पुरी में सावधानी से जा कर सीता का अन्वेषण करना ॥ ३८ ॥ वहां जो कोई भी आस पास के स्थान दिखायी देते हों या लता-वेलियों से छिपे हों, उन सभी स्थानों को खोजना। उस देश से कुछ आगे बढ़ कर ऋषभ नामक पर्वत तुम लोगों को मिलेगा ॥३९॥ वह ऋषभ नामक पर्वत सर्व रत्नों की खान है। उस पर्वत पर गोशीर्षक, पद्मक तथा हरि श्यामक जाति के दिव्य चन्दन उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥ अग्नि के समान कान्ति वाले चन्दन उस पर्वत पर उत्पन्न होते हैं। उस पर्वत की रमणीयता को देखते हुए तुम लोग उसको कभी मत छूना ॥ ४१ ॥ क्योंकि भयंकर रोहित जाति के गन्धर्व उस वन की सदा रक्षा करते हैं। सूर्य के समान कान्ति वाले उन गन्धर्वों में मुख्य पांच नेता हैं ॥ ४२ ॥ शैलूष, ग्रामणी, शिग्रु शुभ्र तथा बभ्रु। सूर्य चन्द्र के समान कान्तिमान् शरीर वाले पुण्य आत्मा वहां निवास करते हैं ॥ ४३ ॥ वहीं पृथ्वी का अन्त है। दुर्धर्ष देवताओं का ही वह निवास है। उसके आगे आप लोग नहीं जा सकते, क्योंकि वह भयानक यमराज का पितृलोक है ॥ ४४ ॥ वही यमराज की राजधानी है तथा नाना प्रकार के कष्ट प्रद अन्धकार से परिपूर्ण है। हे वनवासी वीरो ! तुम लोग यहीं तक जा सकते हो तथा सीता के अन्वेषण का कार्य तुम लोग यहीं तक कर सकते हो, इसके आगे हम लोगों की गति नहीं ॥ ४५ ॥ ❀ इन सब स्थानों तथा अन्य द्रष्टव्य स्थानों को देख कर तथा

❀ दक्षिण दिशा के वर्णन में इस प्रकार से लिखना कि यहीं तक पृथ्वी है, इस के आगे पृथ्वी का अन्त हो जाता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शक्यं विचेतुं गन्तुं वा नातो गतिमतां गतिः ॥
सर्वमेतत्समालोक्य यच्चान्यदपि दृश्यते । गतिं विदित्वा वैदेह्याः संनिवर्तितुमर्हथ ॥४६॥
यस्तु मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्टा सीतेति वक्ष्यति । मत्तुल्यविभवो भोगैः सुखं स विहरिष्यति ॥४७॥
ततः प्रियतरो नास्ति मम प्राणाद्विशेषतः । कृतापराधो बहुशो मम बन्धुर्भविष्यति ॥४८॥
अमितबलपराक्रमा भवन्तो विपुलगुणेषु कुलेषु च प्रसूताः ।
मनुजपतिसुतां यथा लभध्वं तदधिगुणं पुरुषार्थमारभध्वम् ॥४९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे दक्षिणाप्रेषणं नाम एकचत्वारिंशः सर्गः ॥४१॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः

प्रतीचीप्रेषणम्

अथ प्रस्थाप्य सुग्रीवस्तान् हरीन् दक्षिणां दिशम् । अब्रवीन्मेघसंकाशं सुषेणं नाम यूथपम् ॥ १ ॥

विदेह कुमारी जानकी का पता लगा कर आप लोग लौट आयें ॥ ४६ ॥ जो कोई व्यक्ति एक मास में लौट कर—मैंने सीता को देखा है--सब से प्रथम कहेगा, वह मेरे समान वैभव भोग का अधिकारी होगा तथा सुख पूर्वक विहार करेगा ॥ ४७ ॥ उस सीता के सन्देश वाहक से बढ़ कर मेरा और कोई प्रिय न होगा । वह मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय होगा । अनेकों अपराधों का अभियुक्त होता हुआ भी वह मेरा अभिन्न मित्र होगा ॥ ४८ ॥ हे मेरे वीर सैनिको ! आप लोग अप्रमेय बल पराक्रम वाले हैं, विपुल गुणों से परिपूर्ण हैं, उच्च कुलावतंस हैं । जनक की राजकुमारी सीता जिस प्रकार से प्राप्त हो आप लोग उसके लिये अधिक से अधिक खोज का प्रयत्न करें ॥४९॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'दक्षिण दिशा में भेजना' विषयक इकतालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥

बयालीसवां सर्ग

पश्चिम दिशा में भेजना

राजा सुग्रीव दक्षिण दिशा में वनवासी सैनिकों को भेजकर मेघ के समान सुषेण नामक वनवासी वीर से बोले ॥ १ ॥ उस तारा के पिता तथा अत्यन्त पराक्रमी अपने स्वसुर के पास जाकर और उनको प्रणाम

है—आदि प्रत्यक्ष के विरुद्ध होने से अपलाप मात्र है । दक्षिण दिशा में यमलोक और यम की राजधानी का वर्णन करना पुराणों का काम है । गरुड़ पुराण के अन्तर्गत दक्षिण दिशा के वर्णन में प्रायः इस प्रकार के गपोड़े आये हैं । यहां पर भी प्रक्षेप अंश पुराणों से लिया गया है । इस लिये ये श्लोक वाल्मीकि की कृति न होने से प्रक्षिप्त हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

तारायाः पितरं राजा श्वशुरं भीमविक्रमम् । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यमभिगम्य प्रणम्य च ॥ २ ॥
महर्षिपुत्रं मारीचमर्चिष्मन्तं महाकपिम् । वृतं कपिवरैः शूरैर्महेन्द्रसदृशद्युतिम् ॥ ३ ॥
बुद्धिविक्रमसंपन्नं वैनतेयसमद्युतिम् । मरीचिपुत्रान् मारीचानर्चिर्मालान् महाबलान् ॥ ४ ॥
ऋषिपुत्रांश्च तान् सर्वान् प्रतीचीमादिशद्दिशम् । द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां कपीनां कपिसत्तमाः ॥ ५ ॥
सुषेणप्रमुखा यूयं वैदेहीं परिमार्गत । सुराष्ट्रान् सहबाह्लीकाञ्शूरान् भीमांस्तथैव च ॥ ६ ॥
स्फीताञ्जनपदान् रम्यान् विपुलानि पुराणि च । पुंनागगहनं कुक्षिं बकुलोद्दालकाकुलम् ॥ ७ ॥
तथा केतकषण्ढांश्च मार्गध्वं हरियूथपाः । प्रत्यक्स्रोतोगमाश्चैव नद्यः शीतजलाः शिवाः ॥ ८ ॥
तापसानामरण्यानि कान्तारा गिरयश्च ये । ततः स्थलीं मरुप्रायामत्युच्चशिरसः शिलाः ॥ ९ ॥
गिरिजालावृतां दुर्गां मार्गध्वं पश्चिमां दिशम् । ततः पश्चिममासाद्य समुद्रं द्रष्टुमर्हथ ॥१०॥
तिमिनक्रायुतजलमक्षोभ्यमथ वानराः । ततः केतकषण्डेषु तमालगहनेषु च ॥११॥
कपयो विहरिष्यन्ति नारिकेलवनेषु च । तत्र सीतां च मार्गध्वं निलयं रावणस्य च ॥१२॥
वेलातटनिविष्टेषु पर्वतेषु वनेषु च । मुरचीपत्तनं चैव रम्यं चैव जटापुरम् ॥१३॥
अवन्तीमङ्गलेपां च तथा चालक्षितं वनम् । राष्ट्राणि च विशालानि पत्तनानि ततस्ततः ॥१४॥
सिन्धुसागरयोश्चैव संगमे तत्र पर्वतः । महान् हेमगिरिर्नाम शतशृङ्गो महाद्रुमः ॥१५॥
[तस्य प्रस्थेषु रम्येषु सिंहाः पक्षगमाः स्थिताः । तिमिमत्स्यगजांश्चैव नीडान्यारोपयन्ति ते ॥१६॥
तानि नीडानि सिंहानां गिरिशृङ्गगताश्च ये । दृप्तास्तृप्ताश्च मातङ्गास्तोयदस्वननिःस्वनाः ॥१७॥

करके करबद्ध बोले ॥ २ ॥ महर्षि मरीचि के पुत्र, इन्द्र के समान कान्तिवाले, विद्या बुद्धि सम्पन्न, गरुड़ के समान तीव्र गतिवाले, मुख्य वनवासी वीरों से घिरे हुए अर्चिष्मान् वनवासी वीर से सुग्रीव बोले। अन्य मरीचि पुत्रों को, जो पुष्पों से अर्चित तथा अत्यन्त बली थे ॥ ३,४ ॥ राजा सुग्रीव ने इन सभी लोगों को पश्चिम दिशा में जाने का आदेश दिया। दो हज़ार वीर सैनिकों को लेकर ॥ ५ ॥ हे वीर सैनिको ! अपने नेता सुषेण आदि के साथ सीता का अन्वेषण करो। सौराष्ट्र, बाल्हीक, शूर और भीम देश में ॥ ६ ॥ विशाल जनपदों, बड़े २ नगरों को जो गहन पुन्नाग, बकुल, उद्दालक से परिपूर्ण हैं ॥ ७ ॥ तथा केतकी पुष्पों से अलंकृत इन देशों को हे वनवासी वीरो ! तुम लोग खोजना। पश्चिम वाहिनी शीत जल वाली पवित्र नदियों के तटवर्त्ती देशों को भी खोजना ॥ ८ ॥ तपोवन नामक विशाल वनों, पर्वतों, मरुभूमि, ऊँची शीतल शिलाओं पर भी सीता की खोज करना ॥ ९ ॥ पर्वत मालाओं से आवृत दुर्गमनीय पश्चिम दिशा में खोज करते हुए तुम लगो आगे पश्चिम समुद्र को देखोगे ॥ १० ॥ हे वनवासी सैनिको ! मीन-मगर आदि जल जन्तुओं से भरे हुए उस समुद्र के समीप जाकर केतकी और तमाल वृक्षों से परिपूर्ण ॥ ११ ॥ नारियल के वन में तुम सब वनवासी वीर विहार करो। पश्चात् जानकी की खोज करो तथा रावण के निवास स्थान का पता लगाओ ॥ १२ ॥ समुद्र के तटवर्त्ती पर्वतों में, वनों में, मुरची पत्तन तथा रमणीय जटीपुर में सीता का अन्वेषण करो ॥ १३ ॥ अवन्ती, अंगलेपा तथा भीषण वनों, विशाल राष्ट्रों और नगरों में सीता को ढूँढो ॥ १४ ॥ सिन्धु नद तथा सागर के संगम पर सौ शिखरों वाला, नाना प्रकार के वृक्षों से परिपूर्ण विशाल सोमगिरि नाम का एक पर्वत है ॥ १५ ॥ उस रमणीय पर्वत पर सिंह नामक पक्षी निवास करते हैं। वे तिमि मछली (ह्वेल) तथा हाथियों को उठाकर अपने घोंसलों में रख देते हैं ॥ १६ ॥ उस पर्वत पर रहने वाले उन सिंह नामक पक्षियों के घोंसलों में तृप्त, दर्पयुक्त मतवाले गज मेघ के समान गर्जन करते हैं ॥ १७ ॥ तथा जलपूर्ण विशाल इन पर्वत की चोटियों पर चारों ओर विचरण करते हैं। उस पर्वत की काँचनमयी चोटी आकाश को स्पर्श कर रही है तथा उस पर अनेक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विचरन्ति विशालेऽस्मिंस्तोयपूर्णे समन्ततः । तस्य शृङ्गं दिवस्पर्शं काञ्चनं चित्रपादपम् ॥१८॥]
सर्वमाशु विचेतव्यं कपिभिः कामरूपिभिः । कोटिं तत्र समुद्रे तु काञ्चनीं शतयोजनाम् ॥१९॥
दुर्दर्शां पारियात्रस्य गता द्रक्ष्यथ वानराः । कोट्यस्तत्र चतुर्विंशद्गन्धर्वाणां तरस्विनाम् ॥२०॥
वसन्त्यग्निनिकाशानां महतां कामरूपिणाम् । पावकार्चिःप्रतीकाशाः समवेताः सहस्रशः ॥२१॥
नात्यासादयितव्यास्ते वानरा भीमविक्रमाः । नादेयं च फलं तस्माद्देशात्किंचित्प्लवङ्गमाः ॥२२॥
दुरासदा हि ते वीराः सत्त्ववन्तो महाबलाः । फलमूलानि ते तत्र रक्षन्ते भीमविक्रमाः ॥२३॥
तत्र यत्नश्च कर्तव्यो मार्गितव्या च जानकी । न हि तेभ्यो भयं किंचित्कपित्वमनुवर्तताम् ॥२४॥
तत्र वैदूर्यवर्णाभो वज्रसंस्थानसंस्थितः । नानाद्रुमलताकीर्णो वज्रो नाम महागिरिः ॥२५॥
श्रीमान् समुदितस्तत्र योजनानां शतं समम् । गुहास्तत्र विचेतव्याः प्रयत्नेन प्लवङ्गमाः ॥२६॥
चतुर्भागे समुद्रस्य चक्रवान्नाम पर्वतः । तत्र चक्रं सहस्रारं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥२७॥
[तत्र पञ्चजनं हत्वा हयग्रीवं च दानवम् । आजहार ततश्चक्रं शङ्खं च पुरुषोत्तमः ॥२८॥]
तस्य सानुषु चित्रेषु विशालासु गुहासु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥२९॥
योजनानि चतुःषष्टिर्वराहो नाम पर्वतः । सुवर्णशृङ्गः सुश्रीमानगाधे वरुणालये ॥३०॥
तत्र प्राग्ज्योतिषं नाम जातरूपमयं पुरम् । यस्मिन् वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ॥३१॥

प्रकार की वृक्षावलि है ॥ १८ ॥* स्वेच्छा से रूप धारण करने वाले आप सभी वनवासी सैनिक इन स्थानों में शीघ्रतापूर्वक खोजें। उस समुद्र के बीच में सौ योजन लम्बे चौड़े काञ्चनमय शिखर वाले दुर्दर्शनीय पारियात्र की पर्वत माला को तुम लोग देखोगे। वहाँ पर अत्यन्त वेग वाले गन्धर्वों के चौबीस जत्थे तुम देखोगे ॥१९,२०॥ वे गन्धर्व अग्नि के समान कान्ति वाले, लोकविरुद्ध घोर कर्म करने वाले तथा सब ओर से अग्नि ज्वाला के सदृश संगठित हैं ॥ २१ ॥ तुम जैसे भीषण पराक्रम करने वाले वनवासियों को उनके समीप नहीं जाना चाहिये। उन गन्धर्वों के स्थान से किसी प्रकार का फल फूल आदि तुम लोगों को नहीं लेना चाहिये ॥ २२ ॥ अजेय, महाबली, भीषण पराक्रम वाले वीर सावधानी के साथ वहाँ के फल फूलों की रक्षा करते हैं ॥ २३ ॥ वहाँ पर प्रयत्नपूर्वक जानकी का अन्वेषण करना। वनवासी वेशभूषा तथा वनवासी परम्परा का पालन करने वाले तुम लोगों को कोई भय नहीं है ॥ २४ ॥ वहाँ समीप ही वैदूर्य मणि के समान कान्ति वाला, वज्र के समान दृढ़, नाना वृक्ष लताओं से परिपूर्ण वज्र नामक एक महान् पर्वत है ॥ २५ ॥ वह रमणीय पर्वत सौ योजन विस्तार वाला है। तुम वनवासी लोग वहाँ की गुफाओं को प्रयत्नपूर्वक खोजना ॥ २६ ॥ उस समुद्र के चतुर्थ भाग में चक्रवान् नाम का एक पर्वत है। उस पर विश्वकर्मा ने आकाशीय नक्षत्र ग्रह ज्ञान के लिये सहस्रार नामक चक्र बनाया ॥ २७ ॥ वहाँ पर पञ्चजन तथा हयग्रीव दानव को मारकर पुरुषोत्तम ने शंख और चक्र को प्राप्त किया ॥ २८ ॥ उस पर्वत की विशाल तथा रमणीय चोटियों पर तथा विस्तृत गुफाओं में जानकी के साथ रावण का तुम लोग जहाँ तहाँ पता लगाना ॥ २९ ॥ वहाँ अगाध समुद्र के एक द्वीप में स्वर्णमयी चोटियों वाला चौंसठ योजन लम्बा चौड़ा वराह नामक एक पर्वत है ॥ ३० ॥ उस पर्वत के समीप स्वर्ण के समान कान्तिमान् प्राग्ज्योतिष नामक एक नगर है। उसमें नरकासुर नाम का एक दुष्टात्मा दानव निवास करता है ॥ ३१ ॥ उस वराह नामक पर्वत की रमणीय चोटी पर और विशाल गुफाओं में

* १६–१८ श्लोकों में सृष्टि नियम के विरुद्ध असम्भव बातों का वर्णन है। इसलिये आप्त कवि वाल्मीकि ऋषि की कृति न होने से प्रक्षिप्त हैं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्र सानुषु चित्रेषु विशालासु गुहासु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥३२॥
तमतिक्रम्य शैलेन्द्रं काञ्चनान्तरनिर्दरः । पर्वतः सर्वसौवर्णो धाराप्रस्रवणायुतः ॥३३॥
तं गजाश्च वराहाश्च सिंहा व्याघ्राश्च सर्वतः । अभिगर्जन्ति सततं तेन शब्देन दर्पिताः ॥३४॥
यस्मिन् हरिहयः श्रीमान् महेन्द्रः पाकशासनः । अभिषिक्तः सुरै राजा मेघवान्नाम पर्वतः ॥३५॥
तमतिक्रम्य शैलेन्द्रं महेन्द्रपरिपालितम् । षष्टिं गिरिसहस्राणि काञ्चनानि गमिष्यथ ॥३६॥
तरुणादित्यवर्णानि भ्राजमानानि सर्वतः । जातरूपमयैर्वृक्षैः शोभितानि सुपुष्पितैः ॥३७॥
तेषां मध्ये स्थितो राजा मेरुरुत्तरपर्वतः । आदित्येन प्रसन्नेन शैलो दत्तवरः पुरा ॥३८॥
[तेनैवमुक्तः शैलेन्द्रः सर्व एव त्वदाश्रयाः । मत्प्रसादाद्भविष्यन्ति दिवा रात्रौ च काञ्चनाः ॥३९॥
त्वयि ये चापि वत्स्यन्ति देवगन्धर्वदानवाः । ते भविष्यन्ति रक्ताश्च प्रभया काञ्चनप्रभाः ॥४०॥
विश्वे देवाश्च मरुतो वसवश्च दिवौकसः । आगम्य पश्चिमां सन्ध्यां मेरुमुत्तरपर्वतम् ॥४१॥
आदित्यमुपतिष्ठन्ति तैश्च सूर्योऽभिपूजितः । अदृश्यः सर्वभूतानामस्तं गच्छति पर्वतम् ॥४२॥
योजनानां सहस्राणि दश तानि दिवाकरः । मुहूर्तार्धेन तं शीघ्रमभियाति शिलोच्चयम् ॥४३॥
शृङ्गे तस्य महद्दिव्यं भवनं सूर्यसंनिभम् । प्रासादगणसंबाधं विहितं विश्वकर्मणा ॥४४॥
शोभितं तरुभिश्चित्रैर्नानापक्षिसमाकुलैः । निकेतं पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः ॥४५॥
अन्तरा मेरुमस्तं च तालो दशशिरा महान् । जातरूपमयः श्रीमान् भ्राजते चित्रवेदिकः ॥४६॥]

जानकी के साथ रावण को इधर उधर खोजना ॥ ३२ ॥ वराह नामक पर्वत से आगे जाकर स्वर्णमण्डित अनेक झरनों से युक्त एक दूसरा पर्वत मिलेगा ॥ ३३ ॥ उस पर्वत पर गज, सूकर, व्याघ्र, सिंह निरन्तर गर्जते रहते हैं। उनके शब्द से वह पर्वत सदा निनादित रहता है ॥ ३४ ॥ जिस पर्वत पर इन्द्र का देवताओं ने अभिषेक किया था, वह मेघ नामक पर्वत है ॥ ३५ ॥ महेन्द्र से रक्षित मेघ पर्वत से आगे जाकर काञ्चनमयी अनेक शिखर वाले पर्वतों के समीप तुम लोग जाओगे ॥ ३६ ॥ वह पर्वत माला सूर्य के समान सब ओर से प्रकाशित हो रही है तथा स्वर्ण के समान पीले पुष्प वाले वृक्षों से सुशोभित हो रही है ॥ ३७ ॥ उस पर्वत माला के मध्य में पर्वतराज मेरु भी है। उस समुन्नत मेरु पर्वत के शिखर पर सूर्य की प्रखर निर्मल ज्योति वरदान स्वरूप अधिक काल तक रहती है ॥ ३८ ॥ निवेदन करने पर सूर्य ने कहा कि तुम्हारे शिखर पर दिन रात जो कोई निवास करेगा, वह मेरी कृपा से स्वर्णमय हो जायेगा ॥ ३९ ॥ तुम्हारे शिखर पर जो कोई भी देव-गन्धर्व-दानव निवास करेंगे, वे सभी स्वर्णमय तथा मेरे भक्त बन जायेंगे ॥ ४० ॥ विश्वे देव, वसु, मरुत् आदि देव-सिद्ध गण मेरु पर्वत पर आकर पश्चिमकाल की सन्ध्या में ॥ ४१ ॥ सूर्य का उपस्थान करते हैं तथा उन सिद्ध गणों से पूजित होने पर सूर्य सब प्राणियों से अदृश्य होकर अस्ताचल को चला जाता है ॥ ४२ ॥ सूर्य दस हज़ार योजन की दूरी को आधे मुहूर्त्त में समाप्त कर अस्ताचल पर्वत को चला जाता है ॥ ४३ ॥ उस पर्वत के शिखर पर सूर्य के समान देदीप्यमान, अनेक अटारियों वाला विश्वकर्मा से निर्मित एक दिव्य भवन है ॥४४॥ नाना प्रकार के पक्षियों से परिपूर्ण अनेक वृक्षों से युक्त वह गृह सुशोभित हो रहा है। पाशधारी महात्मा वरुण का वह निवास स्थान है ॥४५॥ मेरु तथा अस्ताचल के मध्य में दस सिर वाला, काञ्चनमय एक ताल वृक्ष है। उसके नीचे एक विचित्र वेदि है ॥४६॥* उन सम्पूर्ण दुर्गम स्थानों में सरोवरों, नदियों के तट पर तुम सभी लोग जानकी के साथ रावण की

* श्लोक, २८, २९ तथा ४१–४६ तक सृष्टि नियम के विरुद्ध तथा प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के विरुद्ध होने के कारण प्रक्षिप्त हैं। आदि कवि वाल्मीकि की कृति यह हो नहीं सकती।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेषु सर्वेषु दुर्गेषु सरःसु च सरित्सु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥४७॥
यत्र तिष्ठति धर्मात्मा तपसा स्वेन भावितः । मेरुसावर्णिरित्येव ख्यातो वै ब्रह्मणा समः ॥४८॥
प्रष्टव्यो मेरुसावर्णिर्महर्षिः सूर्यसंनिभः । प्रणम्य शिरसा भूमौ प्रवृत्तिं मैथिलीं प्रति ॥४९॥
एतावज्जीवलोकस्य भास्करो रजनीक्षये । कृत्वा वितिमिरं सर्वमस्तं गच्छति पर्वतम् ॥५०॥
एतावद्वानरैः शक्यं गन्तुं वानरपुंगवाः । अभास्करममर्यादं न जानीमस्ततः परम् ॥५१॥
अधिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च । अस्तं पर्वतमासाद्य पूर्णे मासे निवर्तत ॥५२॥
ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन् वध्यो भवेन्मम । सहैव शूरो युष्माभिः श्वशुरो मे गमिष्यति ॥५३॥
श्रोतव्यं सर्वमेतस्य भवद्भिर्दिष्टकारिभिः । गुरुरेष महाबाहुः श्वशुरो मे महाबलः ॥५४॥
भवन्तश्चापि विक्रान्ताः प्रमाणं सर्वकर्मसु । प्रमाणमेनं संस्थाप्य पश्यध्वं पश्चिमां दिशम् ॥५५॥
दृष्टायां तु नरेन्द्रस्य पत्न्याममिततेजसः । कृतकृत्या भविष्यामः कृतस्य प्रतिकर्मणा ॥५६॥
अतोऽन्यदपि यत्किंचित्कार्यस्यास्य हितं भवेत् । संप्रधार्य भवद्भिश्च देशकालार्थसंहितम् ॥५७॥

ततः सुषेणप्रमुखाः प्लवङ्गमाः सुग्रीववाक्यं निपुणं निशम्य ।
आमन्त्र्य सर्वे प्लवगाधिपं ते जग्मुर्दिशं तां वरुणाभिगुप्ताम् ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे प्रतीचीप्रेषणं नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

खोज करना ॥४७॥ जहाँ पर अपनी तपश्चर्या से प्रभावित धर्मात्मा मेरु सावर्णि ब्रह्मा के समान निवास करते हैं ॥ ४८ ॥ सूर्य के समान कान्तिवाले महर्षि मेरु सावर्णि को भूमि पर सिर झुका कर प्रणाम करना, पश्चात् जनक नन्दिनी जानकी का पता पूछना ॥ ४९ ॥ रात्रि के अवसान में उदयाचल तथा अस्ताचल के अन्तर्गत अन्धकार को दूर करते हुए सूर्य अस्ताचल पर्वत को जाता है ॥ ५० ॥ हे वनवासी वीरो ! तुम वनवासियों के लिये गन्तव्य स्थान यहीं तक है । उस के पश्चात् प्रकाश तथा मार्ग के अमर्यादित तथा अज्ञात होने के कारण मुझे उसकी जानकारी नहीं है ॥ ५१ ॥ अस्ताचल पर्वत पर जाकर विदेह राजकुमारी सीता का तथा रावण के निवास स्थान का पता लगा कर महीना पूर्ण होने तक तुम सभी लौट आओ ॥ ५२ ॥ एक मास से आगे तुम लोग वहां कदापि न ठहरना । मेरी अवज्ञा कर एक मास से अधिक जो रहेगा वह मेरे द्वारा प्राणदण्ड का अधिकारी होगा । तुम लोगों के साथ ही मेरे स्वसुर वीर सुषेण भी जा रहे हैं ॥ ५३ ॥ आज्ञा पालक आप लोग इनके आदेश को आदरपूर्वक सुनें तथा उसका पालन करें । यह महाबली मेरे स्वसुर आप सभी लोगों में बड़े तथा आदरणीय हैं ॥ ५४ ॥ आप लोग अत्यन्त पराक्रमी तथा वीर हैं, हरेक काम में आप लोग पूर्ण प्रमाणित हैं । अपनी इस योग्यता को प्रमाणित करते हुए आप पश्चिम दिशा का अन्वेषण अच्छे प्रकार करें ॥ ५५ ॥ अमित पराक्रम वाले रामचन्द्र की धर्मपत्नी का पता लग जाने पर किये हुए उपकार का प्रत्युपकार करके हम सभी लोग कृतकृत्य हो जायेंगे ॥ ५६ ॥ इसके अतिरिक्त इस कार्य साधन में जो कोई भी हित साधक हेतु हों, देश काल आदि का विचार करके आप लोग स्वबुद्धिपूर्वक काम करें । ॥ ५७ ॥ महाराज सुग्रीव के आदेश पूर्वक इन सब वचनों को सम्यक् प्रकार से सुन कर सुषेण आदि सभी श्रेष्ठ वनवासी लोग वनवासी सम्राट् सुग्रीव से आज्ञा ले कर वरुण से पालित पश्चिम दिशा को चल पड़े ॥५८॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'पश्चिम में भेजना' विषयक बयालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४२ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रिचत्वारिंशः सर्गः

उदीचीप्रेषणम्

ततः संदिश्य सुग्रीवः श्वशुरं पश्चिमां दिशम् । वीरं शतवलिं नाम वानरं वानरर्षभः ॥ १ ॥
उवाच राजा धर्मज्ञः सर्ववानरसत्तमम् । वाक्यमात्महितं चैव रामस्य च हितं तथा ॥ २ ॥
वृतः शतसहस्रेण त्वद्विधानां वनौकसाम् । वैवस्वतसुतैः सार्धं प्रतिष्ठस्व स्वमन्त्रिभिः ॥ ३ ॥
दिशं ह्युदीचीं विक्रान्तां हिमशैलावतंसकाम् । सर्वतः परिमार्गध्वं रामपत्नीमनिन्दिताम् ॥ ४ ॥
अस्मिन् कार्ये विनिर्वृत्ते कृते दाशरथेः प्रिये । ऋणान्मुक्ता भविष्यामः कृतार्थार्थविदां वराः ॥ ५ ॥
कृतं हि प्रियमस्माकं राघवेण महात्मना । तस्य चेत्प्रतिकारोऽस्ति सफलं जीवितं भवेत् ॥ ६ ॥
अर्थिनः कार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपि यश्चरेत् । तस्य स्यात्सफलं जन्म किं पुनः पूर्वकारिणः ॥ ७ ॥
एतां बुद्धिं समास्थाय दृश्यते जानकी यथा । तथा भवद्भिः कर्तव्यमस्मत्प्रियहितैषिभिः ॥ ८ ॥
अयं हि सर्वभूतानां मान्यस्तु नरसत्तमः । अस्मासु चागतप्रीती रामः परपुरंजयः ॥ ९ ॥
इमानि वनदुर्गाणि नद्यः शैलान्तराणि च । भवन्तः परिमार्गन्तु बुद्धिविक्रमसंपदा ॥१०॥
तत्र म्लेच्छान् पुलिन्दांश्च शूरसेनांस्तथैव च । प्रस्थलान् भरतांश्चैव कुरूंश्च सह मद्रकैः ॥११॥
काम्बोजान् यवनांश्चैव शकानारट्टकानपि । वाह्लीकानृषिकांश्चैव पौरवानथ टङ्कणान् ॥१२॥

तैंतालीसवां सर्ग

उत्तर दिशा में भेजना

वनवासी राजा सुग्रीव अपने स्वसुर को पश्चिम दिशा का आदेश देकर शतवलि नामक वनवासी वीर से ॥ १ ॥ यह बात बोले—जिस में अपना तथा रामचन्द्र का हित भरा हुआ है ॥ २ ॥ अनेकों सहस्र अपने समान वनवासी वीरों को लेकर सूर्यपुत्र तथा अन्य सब मन्त्रियों को भी साथ ले कर ॥ ३ ॥ हिम पर्वतों से अलंकृत रमणीय उत्तर दिशा को जाओ और वहाँ पर रामचन्द्र की धर्मपत्नी यशस्विनी सीता का अन्वेषण करो ॥ ४ ॥ रामचन्द्र के इस प्रिय कार्य के सिद्ध हो जाने पर हम लोग उन के ऋण से मुक्त हो जायेंगे तथा कृतकृत्य हो जायेंगे ॥ ५ ॥ रामचन्द्र ने हम लोगों का अत्यन्त प्रिय कार्य किया है। यदि उनके उपकार का हम लोग प्रत्युपकार कर सकें तो हम लोगों का जीवन सफल है ॥ ६ ॥ अनुपकारी व्यक्ति का भी यदि कोई कार्य आ जाय तो उसकी भी सहायता करनी चाहिये, ऐसे व्यक्ति का जीवन सफल माना जाता है। और यदि वह पूर्व का उपकारी हो, तो उसकी सहायता का तो कहना ही क्या ॥ ७ ॥ इस प्रकार का विचार कर के जिस प्रकार से भी जानकी का पता लगे, मेरे हितैषी आप लोगों को वैसा ही काम करना चाहिये ॥ ८ ॥ यह नरश्रेष्ठ रामचन्द्र सम्पूर्ण प्राणियों के आदरणीय हैं तथा शत्रुंजयी रामचन्द्र की हम लोगों के साथ मैत्री हो गयी है ॥ ९ ॥ बहुत से दुर्गम पर्वतों, नदियों तथा आस पास की वनस्थली में बुद्धि, पराक्रम सम्पन्न आप लोग जानकी की खोज करें ॥ १० ॥ वहां पर म्लेच्छ, पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल, कुरु-भरत तथा मद्र देश ॥ ११ ॥ कम्बोज, शक, यवन, इन के स्थानों को, वाह्लीक, ऋषिक, पौरव, टंकण इन स्थानों को भी खोजना ॥ १२ ॥ चीन, महाचीन, तीहार आदि स्थानों को अच्छी तरह से खोज कर हिमालय

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चीनान् परमचीनांश्च नीहारांश्च पुनः पुनः । अन्विष्य दरदांश्चैव हिमवन्तं विचिन्वथ ॥१३॥
लोध्रपद्मकषण्डेषु देवदारुवनेषु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥१४॥
ततः सोमाश्रमं गत्वा देवगन्धर्वसेवितम् । कालं नाम महासानुं पर्वतं तं गमिष्यथ ॥१५॥
महत्सु तस्य शृङ्गेषु निर्दरेषु गुहासु च । विचिनुध्वं महाभागां रामपत्नीमनिन्दिताम् ॥१६॥
तमतिक्रम्य शैलेन्द्रं हेमगर्भं महागिरिम् । ततः सुदर्शनं नाम गन्तुमर्हथ पर्वतम् ॥१७॥
ततो देवसखो नाम पर्वतः पतगालयः । नानापक्षिगणाकीर्णो विविधद्रुमभूषितः ॥१८॥
तस्य काननषण्डेषु निर्झरेषु गुहासु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥१९॥
तमतिक्रम्य चाकाशं सर्वतः शतयोजनम् । अपर्वतनदीवृक्षं सर्वसत्त्वविवर्जितम् ॥२०॥
तं तु शीघ्रमतिक्रम्य कान्तारं रोमहर्षणम् । कैलासं पाण्डरं शैलं प्राप्य हृष्टा भविष्यथ ॥२१॥
तत्र पाण्डरमेघाभं जाम्बूनदपरिष्कृतम् । कुबेरभवनं रम्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥२२॥
विशाला नलिनी यत्र प्रभूतकमलोत्पला । हंसकारण्डवाकीर्णा ह्यप्सरोगणसेविता ॥२३॥
तत्र वैश्रवणो राजा सर्वभूतनमस्कृतः । धनदो रमते श्रीमान् गुह्यकैः सह यक्षराट् ॥२४॥
तस्य चन्द्रनिकाशेषु पर्वतेषु गुहासु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥२५॥
क्रौञ्चं तु गिरिमासाद्य बिलं तस्य सुदुर्गमम् । अप्रमत्तैः प्रवेष्टव्यं दुष्प्रवेशं हि तत्स्मृतम् ॥२६॥
वसन्ति हि महात्मानस्तत्र सूर्यसमप्रभाः । देवैरप्यर्चिताः सम्यग्दिव्यरूपा महर्षयः ॥२७॥
क्रौञ्चस्य तु गुहाश्चान्याः सानूनि शिखराणि च । निर्दराश्च नितम्बाश्च विचेतव्यास्ततस्ततः ॥२८॥

तथा दरद देशों को भी खोजना ॥ १३ ॥ लोध्र तथा चन्दन वन में, देवदार वृक्षों के वन में जानकी के साथ रावण का आप लोग पता लगायें ॥ १४ ॥ देव-गन्धर्वों से पूर्ण उस सोमाश्रम में जाकर पश्चात् विशाल शिखर वाले काल पर्वत पर भी आप लोग जायें ॥ १५ ॥ उस पर्वत के छोटे शिखरों पर तथा पर्वतीय गुफाओं में सर्व पूजित रामकी पत्नी सीता का अन्वेषण करना ॥ १६ ॥ उस महान् स्वर्णगर्भ पर्वत का लांघ कर पश्चात् सुदर्शन नामक पर्वत पर आप लोग पहुँचेंगे ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् सम्पूर्ण पक्षियों का निवास स्थल देवसखा नामक पर्वत आप लोगों को मिलेगा जो नाना प्रकार के पक्षियों तथा वृक्षों से अलंकृत है ॥ १८ ॥ उसके काञ्चनमय शिखरों पर, झरनों तथा गुफाओं में जानकी के साथ रावण का जहां तहां पता लगाना ॥ १९ ॥ उस से थोड़ा आगे बढ़ कर सौ योजन का विस्तृत एक भूभाग आप लोगों को दिखायी देगा जिसमें पर्वत, नदी, वृक्ष आदि कुछ भी नहीं है तथा वहां कोई प्राणधारी भी नहीं है ॥ २० ॥ उस भयंकर भूमि भाग से थोड़ा और आगे जा कर श्वेत वर्ण का कैलास पर्वत आप लोगों को दिखायी देगा, उसको देख कर आप लोग प्रसन्न हो जायेंगे ॥ २१ ॥ उस पर्वत के कुछ आगे धवल मेघ के समान स्वर्ण मण्डित विश्वकर्मा के द्वारा बनाया हुआ कुबेर का रमणीय भवन है ॥ २२ ॥ वहां पर अनेक प्रकार के कमलों से विकसित तथा राजहंसों से परिपूर्ण एक सरोवर है, उस के समीप अप्सराओं का निवास है ॥ २३ ॥ वहां यक्षराज सर्वजन-पूजित धनकुबेर वैश्रवण अपने यक्षों के साथ निवास करते हैं ॥ २४ ॥ चन्द्रमा के समान उस पर्वत की धवल चोटियों पर तथा वहां की रमणीक गुफाओं में जानकी के साथ रावण का पता लगाना ॥ २५ ॥ क्रौंच पर्वत पर जा कर उस की दुर्गम गुफाओं में बड़ी सावधानी से तुम लोग प्रवेश करना क्यों कि वहां का प्रवेश अत्यन्त कष्टप्रद माना गया है ॥ २६ ॥ वहां पर सूर्य के समान कान्ति वाले, देवताओं से पूजित, देव रूप महात्मा महर्षि लोग निवास करते हैं ॥ २७ ॥ उस क्रौंच पर्वत की अन्य छोटी बड़ी चोटियों को, गुफाओं, दो पर्वत के मध्य की भूमियों को जहां तहां खोजना ॥ २८ ॥ इस के आगे पक्षियों का निवास

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवृक्षं कामशैलं च मानसं विहगालयम् । न गतिस्तत्र भूतानां देवदानवरक्षसाम् ॥२९॥
स च सर्वैर्विचेतव्यः ससानुप्रस्थभूधरः । क्रौञ्चं गिरिमतिक्रम्य मैनाको नाम पर्वतः ॥३०॥
मयस्य भवनं यत्र दानवस्य स्वयं कृतम् । मैनाकस्तु विचेतव्यः ससानुप्रस्थकन्दरः ॥३१॥
स्त्रीणामिन्दुमुखीनां च निकेतास्तत्र तत्र तु । तं देशं समतिक्रम्य आश्रमं सिद्धसेवितम् ॥३२॥
सिद्धा वैखानसास्तत्र वालखिल्याश्च तापसाः । वन्द्यास्ते तु तपःसिद्धास्तापसा वीतकल्मषाः ॥३३॥
प्रष्टव्या चापि सीतायाः प्रवृत्तिर्विनयान्वितैः । हेमपुष्करसंछन्नं तस्मिन् वैखानसं सरः ॥३४॥
तरुणादित्यसंकाशैर्हंसैर्विचरितं शुभैः । औपवाह्यः कुबेरस्य सार्वभौम इति स्मृतः ॥३५॥
गजः पर्येति तं देशं सदा सह करेणुभिः । तत्सरः समतिक्रम्य नष्टचन्द्रदिवाकरम् ॥३६॥
अनक्षत्रगणं व्योम निष्पयोदमनादितम् ॥
गभस्तिभिरिवार्कस्य स तु देशः प्रकाशते । विश्राम्यद्भिस्तपःसिद्धैर्देवकल्पैः स्वयंप्रभैः ॥३७॥
तं तु देशमतिक्रम्य शैलोदा नाम निम्नगा । उभयोस्तीरयोस्तस्याः कीचका नाम वेणवः ॥३८॥
ते नयन्ति परं तीरं सिद्धान् प्रत्यानयन्ति च । उत्तराः कुरवस्तत्र कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥३९॥
ततः काञ्चनपद्माभिः पद्मिनीभिः कृतोदकाः ॥
नीलवैदूर्यपत्राढ्या नद्यस्तत्र सहस्रशः । रक्तोत्पलवनैश्चात्र मण्डिताश्च हिरण्मयैः ॥४०॥
तरुणादित्यसदृशैर्भान्ति तत्र जलाशयाः । महार्हमणिपत्रैश्च काञ्चनप्रभकेसरैः ॥४१॥

स्थल अत्यन्त मनोरम मानस नामक पर्वत है। वहां पर किसी प्राणी की, देवता तथा राक्षस की गति नहीं है ॥ २९ ॥ तुम लोग उस पर्वत के शिखरों पर जहां तहां सीता की खोज करना। उस क्रौंच पर्वत को लांघ कर आगे मैनाक नाम का पर्वत मिलेगा ॥ ३० ॥ वहां पर मय दानव का बनाया हुआ निजी भवन है। उस मैनाक पर्वत की चोटियों तथा कन्दराओं को भी खोजना ॥ ३१ ॥ वहां पर किन्नर जाति के स्त्री पुरुषों का निवास स्थान है। उस स्थान को लांघ कर आगे सिद्ध पुरुषों का आश्रम है ॥ ३२ ॥ वहां पर सिद्ध वैखानस बालखिल्य नामक तपस्वी रहते हैं। उन निष्कलंक सिद्ध तपस्वियों को तुम लोग जा कर प्रणाम करना ॥ ३३ ॥ आप लोग नम्रता पूर्वक जानकी के विषय में उन लोगों से पूछना। कमलों से परिपूर्ण हिमाच्छादित वैखानस नाम का वहाँ एक सरोवर है ॥ ३४ ॥ सूर्य के समान कान्ति वाले राजहंस वहां विचरा करते हैं। यक्षराज कुबेर की सवारी का सार्वभौम नामक गजराज ॥ ३५ ॥ अपनी प्रेयसी हथनियों के साथ आया करता है। उस सरोवर को लांघ कर आगे आकाश के मेघाच्छन्न होने के कारण सूर्य चन्द्र तथा तारा गण आकाश में नहीं दिखायी देते। मेघ होने पर भी मेघ के गर्जन तथा वर्षा का अभाव ही वहाँ रहता है ॥ ३६ ॥ मेघाच्छन्न होने के कारण सूर्य के अच्छादित हो जाने पर वहाँ पर विश्राम करने वाले सिद्ध तपस्वी महर्षि लोगों की तपश्चर्या के प्रभाव से उत्पन्न अपने स्वयं प्रकाश से वह देश प्रकाशित होता है ॥ ३७ ॥ इस स्थान से थोड़ा और आगे जाने पर शैलोदा नाम की नदी तुम लोगों को मिलेगी। उसके दोनों तटों पर कीचक नाम के बांसों की पंक्ति दिखायी देगी ॥ ३८ ॥ वे बांस परस्पर एक दूसरे से मिल जाने के कारण नदी के आर पार जाने के लिये सिद्धों को सेतु का काम देते हैं। वहीं पर पुण्यशाली उत्तर कुरुओं की निवास भूमि है। वहाँ पर काञ्चनमय कमल वाले सरोवरों से लोग जल प्राप्त करते हैं ॥ ३९ ॥ वहाँ नील वैदूर्य मणि के समान हजारों नदियाँ हैं जो सुवर्णमय तथा लाल कमलों से अलंकृत हैं ॥ ४० ॥ मूल्यवान् मणि तथा रत्नों से, काञ्चनमय केसरों से वे जलाशय तरुण आदित्य के समान प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ४१ ॥ नील कमल से वह स्थान सब ओर से ढका हुआ है। वर्त्तुलाकार मोतियों तथा बहुमूल्य मणियां

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नीलोत्पलत्रनैश्चित्रैः स देशः सर्वतो वृतः । निस्तुलाभिश्च मुक्ताभिर्मणिभिश्च महाधनैः ॥४२॥
उद्भूतपुलिनास्तत्र जातरूपैश्च निम्नगाः । सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढा नगोत्तमैः ॥४३॥
जातरूपमयैश्चापि हुताशनसमप्रभैः । नित्यपुष्पफलास्तत्र नगाः पत्ररथाकुलाः ॥४४॥
दिव्यगन्धरसस्पर्शाः सर्वकामान् स्रवन्ति च । नानाकाराणि वासांसि फलन्त्यन्ये नगोत्तमाः ॥४५॥
मुक्तावैदूर्यचित्राणि भूषणानि तथैव च । स्त्रीणां चाप्यनुरूपाणि पुरुषाणां तथैव च ॥४६॥
सर्वर्तुसुखसेव्यानि फलन्त्यन्ये नगोत्तमाः । महार्हाणि च चित्राणि हैमान्यन्ये नगोत्तमाः ॥४७॥
शयनानि प्रसूयन्ते चित्रास्तरणवन्ति च । मनःकान्तानि माल्यानि फलन्त्यत्रापरे द्रुमाः ॥४८॥
पानानि च महार्हाणि भक्ष्याणि विविधानि च । स्त्रियश्च गुणसंपन्ना रूपयौवनलक्षिताः ॥४९॥
गन्धर्वाः किंनराः सिद्धा नागा विद्याधरास्तथा । रमन्ते सहितास्तत्र नारीभिर्भास्वरप्रभाः ॥५०॥
सर्वे सुकृतकर्माणः सर्वे रतिपरायणाः । सर्वे कामार्थसहिता वसन्ति सहयोषितः ॥५१॥
गीतवादित्रनिर्घोषः सोत्कृष्टहसितस्वनः । श्रूयते सततं तत्र सर्वभूतमनोहरः ॥५२॥
तत्र नामुदितः कश्चिन्नास्ति कश्चिदसत्प्रियः । अहन्यहनि वर्धन्ते गुणास्तत्र मनोरमाः ॥५३॥
समतिक्रम्य तं देशमुत्तरः पयसां निधिः । तत्र सोमगिरिर्नाम मध्ये हेममयो महान् ॥५४॥
स तु देशो विसूर्योऽपि तस्य भासा प्रकाशते । सूर्यलक्ष्म्याभिविज्ञेयस्तपतेव विवस्वता ॥५५॥

से ॥ ४२ ॥ स्वर्णमय कणों से इन नदियों के तट सुशोभित हो रहे हैं। अनेक रत्नों से अलंकृत वहाँ की पर्वत माला सुशोभित हो रही है ॥ ४३ ॥ सदा फल-फूल से परिपूर्ण तथा पक्षियों से व्याप्त, स्वर्ण तथा अग्नि के समान कान्ति वाले पर्वतों से वह स्थान अलंकृत हो रहा है ॥ ४४ ॥ उस पर्वत माला में दिव्य रस, दिव्य गन्ध तथा अन्य सुखकारक वस्तुएँ सुलभ हैं। उस पर्वत के निवासियों के द्वारा नाना प्रकार के वस्त्रों का निर्माण होता है ॥ ४५ ॥ मुक्ता, वैदूर्य मणि से युक्त वे पर्वत निवासी भूषण तैयार करते हैं जो स्त्री और पुरुष दोनों के लिये उपयुक्त होते हैं ॥ ४६ ॥ उस पर्वत की चोटियाँ सब ऋतुओं में सुख पूर्वक निवास करने योग्य होती हैं। इन पर्वतों के उत्तम नागरिक मूल्यवान् मणियों से कलापूर्ण आभूषणों का निर्माण करते हैं ॥ ४७ ॥ वहाँ के अच्छे प्रकार के वृक्षों से शयनीय उत्तम प्रकार के पलंग आदि तथा अन्य रमणीय वस्तु माला आदि उत्पन्न होती हैं ॥ ४८ ॥ उन स्थानों में मूल्यवान् सेवन करने योग्य पेय तथा भक्ष्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अनेक उत्तम गुणों से युक्त, रूप-यौवन संपन्न वहाँ की स्त्रियाँ होती हैं ॥ ४९ ॥ वहाँ के निवासी गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, नाग जाति के लोग तथा विद्याधर कमनीय कान्ति पूर्ण अपनी स्त्रियों से सदा आमोद प्रमोद किया करते हैं ॥ ५० ॥ वहाँ के सभी स्त्री पुरुष पुण्य कर्म करने वाले, उत्तम भोग आदि से परिपूर्ण, सभी सफल मनोरथ होते हैं ॥ ५१ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों के लिये मनोऽभिराम, प्रसन्नता पूर्वक गाने बजाने का शब्द निरन्तर सुनायी देता है ॥ ५२ ॥ वहाँ पर कोई अप्रसन्न नहीं दिखायी देता और न कोई असत् अप्रिय आचरण कर सकता है। वहाँ के दैवी गुणों में दिन पर दिन वृद्धि होती रहती है ॥ ५३ ॥ उस पर्वतराज को पार करके एक विशाल जल का सरोवर प्राप्त होगा। उस के समीप ही स्वर्णमय सोमगिरि नामक पर्वत मिलेगा ॥ ५४ ॥ निरन्तर आकाश मेघाच्छन्न होने के कारण सूर्य का प्रकाश वहाँ काम नहीं करता। चमकते हुए पर्वत की चोटियों से उसी प्रकार प्रकाश होता है जैसे उदीयमान सूर्य की किरणों से प्रकाश होता है ॥ ५५ ॥ वहीं पर एकादश गणतन्त्र के शासक विश्वजनीन महादेव निवास करते हैं। ब्रह्मर्षियों से युक्त चारों वेदों के अखण्ड विद्वान ब्रह्मा भी वहीं रहते हैं ॥ ५६ ॥ उस उत्तर कुरु के आगे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगवानपि विश्वात्मा शम्भुरेकादशात्मकः । ब्रह्मा वसति देवेशो ब्रह्मर्षिपरिवारितः ॥५६॥
न कथंचन गन्तव्यं कुरूणामुत्तरेण वः । अन्येषामपि भूतानां नातिक्रामति वै गतिः ॥५७॥
स हि सोमगिरिर्नाम देवानामपि दुर्गमः । तमालोक्य ततः क्षिप्रमुपावर्तितुमर्हथ ॥५८॥
एतावद्वानरैः शक्यं गन्तुं वानरपुंगवाः । अभास्करममर्यादं न जानीमस्ततः परम् ॥५९॥
सर्वमेतद्विचेतव्यं यन्मया परिकीर्तितम् । यदन्यदपि नोक्तं च तत्रापि क्रियतां मतिः ॥६०॥
ततः कृतं दाशरथेर्महत्प्रियं महत्तरं चापि ततो मम प्रियम् ।
कृतं भविष्यत्यनिलानलोपमा विदेहजादर्शनजेन कर्मणा ॥६१॥
ततः कृतार्थाः सहिताः सबान्धवा मयार्चिताः सर्वगुणैर्मनोरमैः ।
चरिष्यथोर्वीं प्रतिशान्तशत्रवः सहप्रिया भूतधराः प्लवङ्गमाः ॥६२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे उदीचीप्रेषणं नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

हनूमत्संदेशः

विशेषेण तु सुग्रीवो हनुमत्यर्थमुक्तवान् । स हि तस्मिन् हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥ १ ॥

आप किसी अवस्था में भी न जायें और अन्य प्राणियों की भी वहाँ गति नहीं है ॥ ५७ ॥ वह सोमगिरि देवताओं के लिये भी दुर्गमनीय है। तुम सभी लोग उस पर्वत के आस पास की भूमि को देखकर शीघ्र लौट आना ॥ ५८ ॥ हे वनवासी श्रेष्ठ वीरो ! तुम लोगों का यहीं तक जाना हो सकेगा। इसके आगे प्रकाश तथा गमनीय मार्ग से रहित भूमि है। अतएव उन स्थानों को मुझे जानकारी नहीं है ॥ ५९ ॥ जिन स्थानों को मैंने तुम लोगों को बताया है, उनको तो खोजना ही, किन्तु जिन स्थानों का वर्णन नहीं किया है, उन स्थानों को भी अपनी बुद्धि के अनुसार खोजना ॥ ६० ॥ हे अग्नि तथा वायु के समान वनवासी वीरो ! तुम लोगों के अन्वेषण से जानकी के मिल जाने पर महात्मा रामचन्द्र का तथा मेरा महान् प्रिय कार्य हो जायेगा ॥ ६१ ॥ हे वनवासी वीरो ! यदि तुम लोगों के द्वारा रामचन्द्र का प्रिय कार्य हो गया तो अनेक प्रकार के रमणीय पदार्थों से मैं तुम्हारे बन्धु बान्धवों सहित तुम सभी लोगों का यथावत् सत्कार करूंगा तथा मेरी कृपा से शत्रुरहित शान्त वातावरण में अपनी पत्नियों के साथ सुखपूर्वक पृथ्वी पर भ्रमण करोगे ॥६२॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'उत्तर दिशा में भेजना' विषयक तैंतालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥४३॥

चवालीसवां सर्ग

हनुमान् को संदेश

सीतान्वेषणार्थ सब दिशाओं में वनवासियों की नियुक्ति करके वनवासी राजा सुग्रीव हनुमान् से विशेष बातों को समझाते हुए बोले क्योंकि उन्हें हनुमान् के ऊपर ही कार्य सिद्धि का पूर्ण विश्वास था ॥१॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अब्रवीच्च हनूमन्तं विक्रान्तमनिलात्मजम् । सुग्रीवः परमप्रीतः प्रभुः सर्ववनौकसाम् ॥ २ ॥
न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये । नाप्सु वा गतिसङ्गं ते पश्यामि हरिपुंगव ॥ ३ ॥
सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः । विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः ॥ ४ ॥
गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे । पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महात्मनः ॥ ५ ॥
तेजसा वापि ते भूतं समं भुवि न विद्यते । तद्यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवोपपादय ॥ ६ ॥
त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः । देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित ॥ ७ ॥
ततः कार्यसमासङ्गमवगम्य हनूमति । विदित्वा हनुमन्तं च चिन्तयामास राघवः ॥ ८ ॥
सर्वथा निश्चितार्थोऽयं हनूमति हरीश्वरः । निश्चितार्थकरश्चापि हनुमान् कार्यसाधने ॥ ९ ॥
तदेवं प्रस्थितस्यास्य परिज्ञातस्य कर्मभिः । भर्त्रा परिगृहीतस्य ध्रुवः कार्यफलोदयः ॥ १० ॥
तं समीक्ष्य महातेजा व्यवसायोत्तरं हरिम् । कृतार्थ इव संवृत्तः प्रहृष्टेन्द्रियमानसः ॥ ११ ॥
ददौ तस्मै ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम् । अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परंतपः ॥ १२ ॥
अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा । मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति ॥ १३ ॥
व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः । सुग्रीवस्य च संदेशः सिद्धिं कथयतीव मे ॥ १४ ॥
स तद्गृह्य हरिश्रेष्ठः स्थाप्य मूर्ध्नि कृताञ्जलिः । वन्दित्वा चरणौ चैव प्रस्थितः प्लवगोत्तमः ॥ १५ ॥

सम्पूर्ण वनवासियों के सम्राट् राजा सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न होकर अति पराक्रमशाली पवनपुत्र हनुमान् से बोले ॥२॥ हे वनवासियों के महावीर ! भूमि, अन्तरिक्ष, अमरालय (त्रिविष्टप = तिब्बत), जल सभी जगह आपकी अव्याहत गति है ॥३॥ असुर, गन्धर्व, नाग जाति, नगर निवासी लोग, देवता इन सभी वन-पर्वत-समुद्र तट आदि स्थानों में रहने वाले लोगों को आप जानते हैं ॥४॥ हे महावीर ! गति, वेग, तेज, लघुता ये सभी गुण महान् ओज वाले तुम्हारे पिता के समान ही तुम्हें प्राप्त हैं ॥५॥ तुम्हारे समान तेजस्वी पुरुष इस पृथ्वी पर कोई विद्यमान नहीं है । इसलिये जिस प्रकार सीता की प्राप्ति हो, इसका निश्चय अपनी बुद्धि से तुम्हीं करो ॥६॥ हे नीतिविशारद हनुमान् ! बल, बुद्धि, पराक्रम, देशकालानुसार कार्य करने की क्षमता तथा नीति यह सब कुछ आप में ही विद्यमान है ॥७॥ यह कार्य का भार हनुमान् को ही दिया जा रहा है, ऐसा जानकर हनुमान् की अद्भुत शक्ति पर रामचन्द्र विचार करने लगे ॥८॥ यह राजा सुग्रीव कार्य की सिद्धि के लिये हनुमान् के प्रति पूर्ण विश्वस्त है । उधर हनुमान् को भी अपने द्वारा कार्य सिद्धि में पूर्ण विश्वास है ॥ ९ ॥ इस प्रकार सुग्रीव के द्वारा भेजे जाने वाले, जिसके पराक्रम तथा पुरुषार्थ की अनेक बार परीक्षा हो चुकी है तथा जिसकी कार्य सफलता पर ध्रुव रूप से स्वामी का विश्वास हो गया है ॥ १० ॥ ऐसे कार्यसिद्धि में कुशल हनुमान् को देखकर महातेजस्वी रामचन्द्र को अपनी कार्य सफलता पर पूर्ण विश्वास हो गया और मन तथा इन्द्रियों में प्रसन्नता का संचार हो गया ॥ ११ ॥ शत्रुंजयी रामचन्द्र ने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजकुमारी सीता को विश्वास उत्पन्न कराने के लिये अपने नाम से अंकित अंगूठी हनुमान् को दी ॥१२॥ हे श्रेष्ठ वनवासी वीर ! इस चिह्न से जनककुमारी जानकी मेरे पास से आये हुए तुम को जानकर उद्विग्न नहीं होगी ॥१३॥ हे वीर ! तुम्हारा उद्योग, धैर्य तथा बुद्धि पूर्वक पराक्रम और सुग्रीव का दृढ़तापूर्ण सन्देश तुम्हारी कार्य सफलता को बतला रहा है ॥१४॥ वनवासियों में श्रेष्ठ हनुमान् ने उस अंगूठी को लेकर करबद्ध सिर झुकाकर रामचन्द्र के चरणों में प्रणाम किया तथा वहां से प्रस्थान किया ॥ १५ ॥ वनवासियों की उस बड़ी विशाल सेना को साथ ले जाते हुए वीर पवनपुत्र हनुमान् इस प्रकार शोभायमान हुए जैसे

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स तत्प्रकर्षन् हरिणां महद्बलं बभूव वीरः पवनात्मजः कपिः ।
गताम्बुदे व्योम्नि विशुद्धमण्डलः शशीव नक्षत्रगणोपशोभितः ॥१६॥

अतिबल बलमाश्रितस्तवाहं हरिवरविक्रम विक्रमैरनल्पैः ।
पवनसुत यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे हनूमत्संदेशो नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः

वानरबलप्रस्थानम्

सर्वांश्चाहूय सुग्रीवः प्लवगान् प्लवगर्षभः । पुनस्तानब्रवीद् भूयो रामकार्यार्थसिद्धये ॥ १ ॥
एवमेतद्विचेतव्यं यन्मया परिकीर्तितम् । तदुग्रशासनं भर्तुर्विज्ञाय हरिपुंगवाः ॥ २ ॥
शलभा इव संछाद्य मेदिनीं संप्रतस्थिरे । रामः प्रस्रवणे तस्मिन् न्यवसत्सहलक्ष्मणः ॥ ३ ॥
प्रतीक्षमाणस्तं मासं यः सीताधिगमे कृतः । उत्तरां तु दिशं रम्यां गिरिराजसमावृताम् ॥ ४ ॥
प्रतस्थे हरिभिर्वीरो हरिः शतबलिस्तदा । पूर्वां दिशं प्रतिययौ विनतो हरियूथपः ॥ ५ ॥
ताराङ्गदादिसहितः प्लवगः पवनात्मजः । अगस्त्यचरितामाशां दक्षिणां हरियूथपः ॥ ६ ॥

मेघरहित आकाश में नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥ १६ ॥ हे परम पराक्रमी, वनवासी श्रेष्ठ, पवनसुत हनुमान् ! हम सभी तुम्हारे बल तथा पराक्रम के आश्रित हैं । अपने अनुपम पराक्रम से जिस प्रकार जनककुमारी जानकी प्राप्त हो, वैसा उपाय तुम करो ॥ १७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'हनुमान् को सन्देश' विषयक चवालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवां सर्ग

वनवासी सेना का प्रस्थान

रामचन्द्र के कार्य की सिद्धि के लिये वनवासी श्रेष्ठ राजा सुग्रीव चारों दिशाओं में प्रस्थान करने वाले वनवासी वीरों को एकत्र कर यह वचन बोले ॥ १ ॥ जिस प्रकार मैंने आदेश दिया है, आप सभी वनवासी वीर जानकी का उसी प्रकार अन्वेषण करें । अपने स्वामी का इस प्रकार कठोर आदेश सुनकर सभी वनवासी वीर सैनिकों ने ॥ २ ॥ टिड्डी के समान पृथ्वी को आच्छादित करते हुए सम्पूर्ण दिशाओं में प्रस्थान कर दिया । रामचन्द्र ने अपने भाई लक्ष्मण के साथ उसी प्रस्रवण पर्वत पर ॥ ३ ॥ एक मास तक सीता का पता लगाने के लिये प्रतीक्षा करते हुए निवास किया । पर्वतराज हिमालय से आवृत रमणीय उस उत्तर दिशा में ॥ ४ ॥ वनवासी वीर शतबलि अपने दल के साथ चल पड़े । विनत नामक सेनापति ने पूर्व दिशा में प्रस्थान कर दिया ॥ ५ ॥ तार, अंगद आदि वनवासी वीरों के साथ हनुमान् ने अगस्त्य से सेवनीय दक्षिण दिशा को प्रस्थान किया ॥६ ॥ अति भयानक वरुण से पालित पश्चिम दिशा को वनवासी वीर सुषेण ने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्चिमां तु दिशं घोरां सुषेणः प्लवगेश्वरः । प्रतस्थे हरिशार्दूलो भृशं वरुणपालिताम् ॥ ७ ॥
ततः सर्वा दिशो राजा चोदयित्वा यथातथम् । कपिसेनापतीन्मुख्यान्मुमोद सुखितः सुखम् ॥ ८ ॥
एवं संचोदिताः सर्वे राज्ञा वानरयूथपाः । स्वां स्वां दिशमभिप्रेत्य त्वरिताः संप्रतस्थिरे ॥ ९ ॥
नदन्तश्चोन्नदन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः । क्ष्वेलन्तो धावमानाश्च विनदन्तो महाबलाः ॥१०॥
आनयिष्यामहे सीतां हनिष्यामश्च रावणम् ॥
अहमेको हनिष्यामि प्राप्तं रावणमाहवे । ततश्चोन्मथ्य सहसा हरिष्ये जनकात्मजाम् ॥११॥
वेपमानां श्रमेणाद्य भवद्भिः स्थीयतामिति । एक एवाहरिष्यामि पातालादपि जानकीम् ॥१२॥
विमथिष्याम्यहं वृक्षान् पातयिष्याम्यहं गिरीन् । धरणीं दारयिष्यामि क्षोभयिष्यामि सागरान् ॥१३॥
अहं योजनसंख्यायाः प्लविता नात्र संशयः । शतं योजनसंख्यायाः शतं समधिकं ह्यहम् ॥१४॥
भूतले सागरे वापि शैलेषु च वनेषु च । पातालस्यापि वा मध्ये न ममाच्छिद्यते गतिः ॥ १५॥
इत्येकैकं तदा तत्र वानरा बलदर्पिताः । ऊचुश्च वचनं तत्र हरिराजस्य संनिधौ ॥१६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे वानरबलप्रस्थानं नाम पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥४५॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः

[भूमण्डलभ्रमणकथनम्]

[गतेषु वानरेन्द्रेषु रामः सुग्रीवमब्रवीत् । कथं भवान् विजानीते सर्वं वै मण्डलं भुवः ॥ १ ॥

अपने दल के साथ प्रस्थान किया ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण दिशाओं में वनवासी वीरों को यथायोग्य भेजकर वनवासियों के सेनापति राजा सुग्रीव सुखी होने पर भी अत्यन्त सुखी हो गये ॥ ८ ॥ इस प्रकार राजा सुग्रीव के द्वारा प्रेरित होने पर उन वनवासी सैनिकों ने अपनी अपनी गन्तव्य दिशाओं को शीघ्र प्रस्थान कर दिया ॥ ९ ॥ नाद करते हुए, किलकिला शब्द करते हुए, गर्जन करते हुए, क्रीडा पूर्वक इधर उधर दौड़ते हुए तथा अनेक प्रकार के भयंकर शब्द करते हुए वे महाबली वनवासी वीर यह कहने लगे कि सीता को हम लायेंगे, रावण को हम मारेंगे ॥ १० ॥ संग्राम में रावण को मैं अकेला ही मारूँगा तथा लंका निवासी अन्य राक्षसों को मारकर जानकी को मैं ले आऊंगा ॥ ११ ॥ आप लोग यहीं ठहरें। भय से कांपती हुई जानकी को पाताल से भी अपने परिश्रम के द्वारा ले आऊँगा ॥ १२ ॥ मैं वृक्षों को तोड़ दूँगा, पहाड़ों को फोड़ दूंगा, पृथ्वी को चीर डालूँगा तथा समुद्र को क्षुभित कर दूंगा ॥ १३ ॥ मैं सौ योजन तक तैर सकता हूं तथा दौड़ सकता हूं, इसमें कोई सन्देह नहीं तथा सौ योजन से अधिक भी दौड़ और तैर सकता हूं ॥१४॥ पृथ्वी पर, समुद्र, पर्वत, वन तथा पाताल में भी मेरी गति कभी अवरुद्ध नहीं हो सकती ॥ १५ ॥ बल से दर्पित वे वनवासी वीर एक एक कर राजा सुग्रीव के समीप इस प्रकार बातें करने लगे ॥ १६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'वनवासी सेना का प्रस्थान' विषयक पैंतालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥४५॥

छियालीसवां सर्ग

भूमण्डलभ्रमण कथा *

वनवासियों के चारों दिशाओं में चले जाने पर रामचन्द्र सुग्रीव से इस प्रकार बोले—सम्पूर्ण भूमण्डल के विषय में आपको यह जानकारी कैसे हुई ॥ १ ॥ रामचन्द्र के प्रश्न को सुन कर अति नम्रतापूर्वक सुग्रीव ने रामचन्द्र से यह

* रामचन्द्र के पूछने पर सुग्रीव का अपनी पृथ्वी प्रदक्षिणा प्रकरण में असम्भव बुद्धिविरुद्ध तथा असंगत

Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुग्रीवस्तु ततो राममुवाच प्रणतात्मवान् । श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये विस्तरेण नरर्षभ ॥ २ ॥
यदा तु दुन्दुभिं नाम दानवं महिषाकृतिम् । परिकालयते वाली मलयं प्रति पर्वतम् ॥ ३ ॥
तदा विवेश महिषो मलयस्य गुहां प्रति । विवेश वाली तत्रापि मलयं तज्जिघांसया ॥ ४ ॥
ततोऽहं तत्र निक्षिप्तो गुहाद्वारि विनीतवत् । न च निष्क्रमते वाली तदा संवत्सरे गते ॥ ५ ॥
ततः क्षतजवेगेन आपुपूरे तथा बिलम् । तदहं विस्मितो दृष्ट्वा भ्रातृशोकविषार्दितः ॥ ६ ॥
अथाहं कृतबुद्धिस्तु सुव्यक्तं निहतो गुरुः । शिला पर्वतसंकाशा बिलद्वारि मया कृता ॥ ७ ॥
अशक्नुवन्निष्क्रमितुं महिषो विनशेदिति । ततोऽहमागां किष्किन्धां निराशस्तस्य जीविते ॥ ८ ॥
राज्यं च सुमहत्प्राप्तं तारया रुमया सह । मित्रैश्च सहितस्तत्र वसामि विगतज्वरः ॥ ९ ॥
आजगाम ततो वाली हत्वा तं दानवर्षभम् । ततोऽहमददां राज्यं गौरवाद्भयमन्त्रितः ॥१०॥
स मां जिघांसुर्दुष्टात्मा वाली प्रव्यथितेन्द्रियः । परिकालयते क्रोधाद्धावन्तं सचिवैः सह ॥११॥
ततोऽहं वालिना तेन सानुबन्धः प्रधावितः । नदीश्च विविधाः पश्यन् वनानि नगराणि च ॥१२॥
आदर्शतलसंकाशा ततो वै पृथिवी मया । अलातचक्रप्रतिमा दृष्टा गोष्पदवत्तदा ॥१३॥
पूर्वां दिशं ततो गत्वा पश्यामि विविधान् द्रुमान् । पर्वतांश्च नदी रम्याः सरांसि विविधानि च ॥१४॥
उदयं तत्र पश्यामि पर्वतं धातुमण्डितम् । क्षीरोदं सागरं चैव नित्यमप्सरसालयम् ॥१५॥

कहा—मैं इस प्रसंग को विस्तारपूर्वक कहता हूँ, ध्यान से सुनिये ॥ २ ॥ जिस समय महिषाकृति दुन्दुभि के ललकारने पर मेरे अग्रज बाली उसका पीछा कर रहे थे, उस समय बाली के भय से भागता हुआ वह मलय पर्वत पर चला गया ॥ ३ ॥ उस समय महिषाकार वह दुन्दुभि मलय पर्वत की गुफा में प्रवेश कर गया। दुन्दुभि असुर को मारने के लिये बाली भी उस गुफा में प्रवेश कर गये ॥ ४ ॥ मैं बाली के कथनानुसार उसी गुफा के द्वार पर नम्रतापूर्वक उनके आने की प्रतीक्षा करता रहा। एक वर्ष का समय बीत जाने पर भी बाली गुफा से नहीं निकले ॥ ५ ॥ पश्चात् विशाल रुधिर की धार से बिल परिपूर्ण हो गया। उस विशाल रुधिर धार को देखकर विस्मित होता हुआ भाई के अनिष्ट की आशंका से मैं शोकाक्रान्त तथा दुःखी हो गया ॥ ६ ॥ उस समय किंकर्त्तव्य विमूढ़ होते हुए मैंने बड़े भाई मारे गये ऐसा निश्चित समझ कर एक विशालकाय पत्थर की चट्टान को बिल के द्वार पर रख दिया ॥ ७ ॥ मैंने पाषाण शिला को द्वार पर इसलिये रखा कि महिषाकार दुन्दुभि बिल से नहीं निकल सकेगा तथा उसके अन्दर ही मर जायेगा। भाई के जीवन की आशा को सर्वथा छोड़ कर मैं किष्किन्धा लौट आया ॥ ८ ॥ विशाल राज्य, रुमा के साथ तारा को प्राप्त कर मित्रों के सहित निवास करने लगा ॥ ९ ॥ पश्चात् उस दुन्दुभि राक्षस को मार कर वनवासी श्रेष्ठ बाली किष्किन्धा लौट आये। बाली को देखकर मैंने उनके सम्मान तथा भय के कारण इस सम्पूर्ण राज्य को उन्हें लौटा दिया ॥ १० ॥ क्रोध में आये हुए उस दुष्टात्मा बाली ने अपने मन्त्रियों के साथ भागते हुए मेरा पीछा किया ॥ ११ ॥ उस समय दौड़ते हुए बलवान् बाली ने जब मेरा पीछा किया, तो भागता हुआ मैं नाना प्रकार की नदियों, वन तथा नगरों को देखता हुआ ॥ १२ ॥ अलात चक्र (जली हुई लकड़ी को घुसाने से जो अग्नि का मण्डल बन जाता है उसको अलात चक्र कहते हैं), के समान गौ के चरणांकित पृथ्वी के समान तथा दर्पण के शीशे के समान इस पृथ्वी को देखा ॥ १३ ॥ सबसे प्रथम पूर्व दिशा में भागता हुआ नाना प्रकार के वृक्षों, पर्वतों, गुफाओं तथा नाना प्रकार के तालाबों को देखा ॥ १४ ॥ अनेक धातुओं से मण्डित उदयाचल पर्वत को देखा तथा क्षीरोद नामक सागर को देखा जहाँ अप्सराओं का निवास स्थान है ॥ १५ ॥ बाली के पीछा करने पर मैं अत्यन्त वेग से भागने लगा। आगे जाकर थोड़ा पीछे लौटा और पुनः आगे दौड़

होने के कारण यह सम्पूर्ण सर्ग प्रक्षिप्त है। एक आप्त ऋषि की कृति में इस प्रकार के असम्बद्ध प्रलाप ऋषि की महिमा पर एक प्रकार का प्रहार है, इत्यादि अन्य कई कारणों से भी यह सम्पूर्ण सर्ग प्रक्षिप्त है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिकालयमानस्तु वालिनाभिद्रुतस्तदा । पुनरावृत्य सहसा प्रस्थितोऽहं तदा विभो ॥१६॥
दिशस्तस्यास्ततो भूयः प्रस्थितो दक्षिणां दिशम् । विन्ध्यपादपसंकीर्णां चन्दनद्रुमशोभिताम् ॥१७॥
द्रुमशैलांस्ततः पश्यन् भूयो दक्षिणतोऽपरान् । पश्चिमां तु दिशं प्राप्तो वालिना समभिद्रुतः ॥१८॥
संपश्यन् विविधान् देशानस्तं च गिरिसत्तमम् । प्राप्य चास्तं गिरिश्रेष्ठमुत्तरां संप्रधावितः ॥१९॥
हिमवन्तं च मेरुं च समुद्रं च तथोत्तरम् । यदा न विन्दे शरणं वालिना समभिद्रुतः ॥२०॥
तदा मां बुद्धिसंपन्नो हनुमान् वाक्यमब्रवीत् । इदानीं मे स्मृतं राजन् यथा वाली हरीश्वरः ॥२१॥
मतङ्गेन तदा शप्तो ह्यस्मिन्नाश्रममण्डले । प्रविशेद्यदि वै वाली मूर्धास्य शतधा भवेत् ॥२२॥
तत्र वासः सुखोऽस्माकं निरुद्विग्नो भविष्यति । ततः पर्वतमासाद्य ऋश्यमूकं नृपात्मज ॥२३॥
न विवेश तदा वाली मतङ्गस्य भयात्तदा । एवं मया तदा राजन् प्रत्यक्षमुपलक्षितम् ॥२४॥
पृथिवीमण्डलं कृत्स्नं गुहामस्म्यागतस्ततः ॥]

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे भूमण्डलभ्रमणकथनं नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः

कपिसेनाप्रत्यागमनम्

दर्शनार्थं तु वैदेह्याः सर्वतः कपियूथपाः । व्यादिष्टाः कपिराजेन यथोक्तं जग्मुरञ्जसा ॥ १ ॥

पड़ा ॥ १६ ॥ भागते हुए पूर्व दिशा को भागा । उस दिशा में चन्दन वृक्षों से शोभित विन्ध्याचल की पर्वत माला को देखा ॥ १७ ॥ पर्वत और वृक्षों के मध्य स्थान को देखता हुआ बाली के पीछा करने पर मैं पश्चिम दिशा में भाग चला ॥ १८ ॥ उस दिशा में नाना प्रकार के देशों को देखते हुए प्रसिद्ध अस्ताचल पर्वत को देखा । पश्चात् वहाँ से उत्तर दिशा को भाग चला ॥ १९ ॥ उस दिशा में हिमालय, मेरुपर्वत माला तथा उत्तरी समुद्र पर गया । बाली के पीछा करने पर भागते हुए जब मुझे कहीं शरण नहीं मिली ॥ २० ॥ तो बुद्धिमान् हनुमान् ने मुझसे यह कहा—हे महाराज ! इस समय मुझे स्मरण आ गया है—वनवासी राजा बाली को ॥ २१ ॥ मतङ्ग ऋषि ने यह शाप दिया था कि मेरे मतङ्ग-आश्रम वाले वन में बाली प्रवेश करे तो उसके मस्तक के सौ टुकड़े हो जायें ॥ २२ ॥ हे राजकुमार ! इसलिये मतङ्ग ऋषि से अभिशप्त इस ऋश्यमूक पर्वत पर निरुद्विग्न सुखपूर्वक निवास करता हूँ ॥ २३ ॥ शाप के भय से बाली इस स्थान पर नहीं आया । हे रामचन्द्र इस अवस्था में मैंने सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का प्रत्यक्ष किया । पृथ्वी पर्यटन के पश्चात् ही मैं इस गुफा में आया ॥ २४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'भूमण्डल-भ्रमण कथा' विषयक छियालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥४६॥

सैंतालीसवां सर्ग

वनवासी सेना का लौटना

जानकी की खोज करने के लिये जिन वनवासी वीर सैनिकों को राजा सुग्रीव ने आदेश दिया था, वे सभी सुग्रीव की आज्ञानुसार वेग पूर्वक अपनी २ दिशाओं को चल दिये ॥१॥ वे सभी वनवासी सैनिक सरोवरों,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सरांसि सरितः कक्षानाकाशं नगराणि च । नदीदुर्गांस्तथा शैलान् विचिन्वन्ति समन्ततः ॥ २ ॥
सुग्रीवेण समादिष्टाः सर्वे वानरयूथपाः । तत्र देशान् विचिन्वन्ति सशैलवनकाननान् ॥ ३ ॥
विचित्य दिवसं सर्वे सीताधिगमने धृताः । समायान्ति स्म मेदिन्यां निशाकालेषु वानराः ॥४॥
सर्वर्तुकांश्च देशेषु वानराः सफलान् द्रुमान् । आसाद्य रजनीं शय्यां चक्रुः सर्वेष्वहःसु ते ॥ ५ ॥
तदहः प्रथमं कृत्वा मासे प्रस्रवणं गताः । कपिराजेन संगम्य निराशाः कपियूथपाः ॥ ६ ॥
विचित्य तु दिशं पूर्वां यथोक्तां सचिवैः सह । अदृष्ट्वा विनतः सीतामाजगाम महाबलः ॥ ७ ॥
उत्तरां च दिशं सर्वां विचित्य स महाकपिः । आगतः सह सैन्येन वीरः शतबलिस्तदा ॥ ८ ॥
सुषेणः पश्चिमामाशां विचित्य सह वानरैः । समेत्य मासे संपूर्णे सुग्रीवमुपचक्रमे ॥ ९ ॥
तं प्रस्रवणपृष्ठस्थं समासाद्याभिवाद्य च । आसीनं सह रामेण सुग्रीवमिदमब्रुवन् ॥१०॥
विचिताः पर्वताः सर्वे वनानि नगराणि च । निम्नगाः सागरान्ताश्च सर्वे जनपदाश्च ये ॥११॥
गुहाश्च विचिताः सर्वास्त्वया याः परिकीर्तिताः । विचिताश्च महागुल्मा लतावितानसंततताः ॥१२॥
गहनेषु च देशेषु दुर्गेषु विषममेषु च । सत्त्वान्यतिप्रमाणानि विचितानि हतानि च ॥१३॥
ये चैव गहना देशा विचितास्ते पुनः पुनः ॥

नदियों, लतामण्डपों, आकाश, नगरों, पर्वतों तथा पर्वतीय नदी तट भागों को खोजने लगे ॥२॥ सुग्रीव की आज्ञा से वे सभी वनवासी वीर जहाँ तहाँ वन, पर्वत तथा अधित्यका-उपत्यका भूभागों को खोजने लगे ॥३॥ जानकी की खोज करने वाले वे सभी सैनिक दिन भर भिन्न २ सभी स्थानों को खोजते हुए रात्रि में एकत्र हो जाते थे ॥ ४ ॥ वे वनवासी सब ऋतुओं में फलने फूलने वाले वृक्षों के नीचे ही दिन भर अन्वेषण करने के पश्चात् रात्रि में अपना निवास करते थे ॥ ५ ॥ वे वनवासी वीर अपने प्रस्थान के समय राजा सुग्रीव के कथन-अनुसार एक मास पूर्ण हो जाने पर निराशा पूर्वक प्रस्रवण पर्वत पर सुग्रीव के समीप लौट आये ॥ ६ ॥ सुग्रीव के आदेशानुसार अपने मन्त्रियों के सहित पूर्व दिशा के समस्त स्थानों को खोजकर महाबली विनत जानकी को विना देखे ही लौट आये ॥ ७ ॥ उत्तर दिशा में भी यथोक्त सब स्थानों को खोजकर मास पूर्ण हो जाने पर शतबलि नामक सेनापति भी असफल होने के कारण भयत्रस्त सुग्रीव के समीप लौट आया ॥ ८ ॥ सेनापति सुषेण भी सैनिकों के साथ पश्चिम दिशा का अन्वेषण करके मास पूर्ण हो जाने पर सुग्रीव के समीप लौट आये ॥ ९ ॥ सभी लौटे हुए सैनिक प्रस्रवण पर्वत पर राम के समीप बैठे हुए सुग्रीव के समीप जाकर प्रणाम पूर्वक ये वचन बोले ॥ १० ॥ हम सब लोगों ने पर्वत, गहन वन, नदी के तट, समुद्र पर्यन्त सारे भूभागों को खोजा ॥ ११ ॥ उन सारी गुफाओं को लता, गुल्मों, को जिनका आप ने वर्णन किया था, हम लोगों ने अच्छी तरह से अन्वेषण किया ॥ १२ ॥ पर्वतीय ऊँचे नीचे गहन देशों को, वहां रहने वाले विशाल काय वन जन्तुओं में भी हमने खोज की और अनेकों उन हिंसक जन्तुओं को मारा भी। जो अत्यन्त दुर्गमनीय देश थे वहां हम लोगों ने वार बार अन्वेषण किया ॥ १३ ॥ उच्चवंशावतंस महाबली हनुमान् ही मिथिलेशकुमारी का पता लगायेंगे। हे राजन्! वस्तुतः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उदारसत्त्वाभिजनो महात्मा स मैथिलीं द्रक्ष्यति वानरेन्द्र ।
दिशं तु यामेव गता तु सीता तामास्थितो वायुसुतो हनूमान् ॥१४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे कपिसेनाप्रत्यागमनं नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥४७॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

वनादिविचयः

सह ताराङ्गदाभ्यां तु गत्वा स हनुमान् कपिः । सुग्रीवेण यथोद्दिष्टं तं देशमुपचक्रमे ॥ १ ॥
स तु दूरमुपागम्य सर्वैस्तैः कपिसत्तमैः । विचिनोति स्म विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च ॥ २ ॥
पर्वताग्रनदीदुर्गान् सरांसि विपुलान् द्रुमान् । वृक्षषण्डांश्च विविधान् पर्वतान् घनपादपान् ॥ ३ ॥
अन्वेषमाणास्ते सर्वे वानराः सर्वतो दिशम् । न सीतां ददृशुर्वीरा मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥ ४ ॥
ते भक्षयन्तो मूलानि फलानि विविधानि च । अन्वेषमाणा दुर्धर्षा न्यवसंस्तत्र तत्र ह ॥ ५ ॥
स तु देशो दुरन्वेषो गुहागहनवान् महान् । निर्जलं निर्जनं शून्यं गहनं रोमहर्षणम् ॥ ६ ॥
त्यक्त्वा तु तं तदा देशं सर्वे वै हरियूथपाः । स च देशो दुरन्वेष्यो गुहागहनवान् महान् ॥ ७ ॥

जिस दिशा में अपहृत होकर जानकी गयी है, सौभाग्य से पवनसुत हनुमान् उसी दिशा में गये हैं ॥ १४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'वनवासी सेना का लौटना' विषयक सैंतालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवां सर्ग

वन आदि में खोज

राजा सुग्रीव की आज्ञानुसार हनुमान् भी तार-अंगद के साथ उस दिशा की खोज करने के लिये सहसा चल पड़े ॥ १ ॥ वे सभी महाबली सैनिक बहुत दूर आकर विन्ध्याचल की घाटियों में गहन गुफाओं को खोजने लगे ॥ २ ॥ पर्वत, नदी, दुर्गमनीय वन भाग, सरोवर, वृक्षभरे जंगल, पर्वतीय शिखर तथा उन पर होने वाले वृक्षों में ॥ ३ ॥ खोज करते हुए वे वनवासी वीर मिथिलेश कुमारी जानकी को नहीं पा सके ॥ ४ ॥ वनीय नाना प्रकार के फल फूलों को खाते हुए वे अपराजित वनवासी वीर जानकी का अन्वेषण करते हुए विश्राम के समय जहां तहां निवास करते थे ॥ ५ ॥ जिनका खोजना अत्यन्त कठिन है ऐसी लतावृन्तों से आच्छादित अनेकों गहन गुफाएं, जलहीन, जनहीन अनेक भयंकर गहन वन ॥ ६ ॥ अत्यन्त गहन गुफाओं से परिपूर्ण, दुर्गमनीय अनेकों स्थानों को भी उन वनवासियों ने खोजा ॥ ७ ॥ वहां से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तादृशान्यप्यरण्यानि विचित्य भृशपीडिताः । देशमन्यं दुराधर्षं विविशुश्चाकुतोभयाः ॥ ८ ॥
यत्र वन्ध्यफला वृक्षा विपुष्पाः पर्णवर्जिताः । निस्तोयाः सरितो यत्र मूलं यत्र सुदुर्लभम् ॥ ९ ॥
न सन्ति महिषा यत्र न मृगा न च हस्तिनः । शार्दूलाः पक्षिणो वापि ये चान्ये वनगोचराः ॥१०॥
न यत्र वृक्षा नौषध्यो न लता नापि वीरुधः । स्निग्धपत्राः स्थले यत्र पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः ॥११॥
प्रेक्षणीयाः सुगन्धाश्च भ्रमरैश्च विवर्जिताः । [कण्डुर्नाम महाभागः सत्यवादी तपोधनः ॥१२॥
महर्षिः परमामर्षी नियमैर्दुष्प्रधर्षणः । तस्य तस्मिन् वने पुत्रो बालको दशवार्षिकः ॥१३॥
प्रनष्टो जीवितान्ताय क्रुद्धस्तत्र महामुनिः । तेन धर्मात्मना शप्तं कृत्स्नं तत्र महद्वनम् ॥१४॥
अशरण्यं दुराधर्षं मृगपक्षिविवर्जितम् ॥]
तस्य ते काननान्तांश्च गिरीणां कन्दराणि च । प्रभवाणि नदीनां च विचिन्वन्ति समाहिताः ॥१५॥
तत्र चापि महात्मानो नापश्यञ्जनकात्मजाम् । हर्तारं रावणं वापि सुग्रीवप्रियकारिणः ॥१६॥
ते प्रविश्याशु तं भीमं लतागुल्मसमावृतम् । ददृशुः क्रूरकर्माणमसुरं सुरनिर्भयम् ॥१७॥
तं दृष्ट्वा वानरा घोरं स्थितं शैलमिवापरम् । गाढं परिहिताः सर्वे दृष्ट्वा तं पर्वतोपमम् ॥१८॥
सोऽपि तान् वानरान् सर्वान्नष्टाः स्थेत्यब्रवीद्बली । अभ्यधावत संक्रुद्धो मुष्टिमुद्यम्य संहितम् ॥१९॥

तब निराश होकर उन स्थानों को छोड़ कर निर्भय वे वनवासी वीर अन्य दुर्गम स्थान में प्रविष्ट हुए ॥ ८ ॥ जहां पत्रपुष्प फलहीन वृक्ष, निर्जला नदियां, जहां कन्दमूल भी मिलना अत्यन्त दुर्लभ थे ॥ ९ ॥ उस स्थान में भैंसे भी नहीं दिखायी दिये, हरिण, हाथी भी नहीं दिखायी देते, सिंह, पक्षीगण तथा अन्य कोई भी वनवासी जन्तु वहां नहीं थे ॥१०॥ न वहां पर कोई वृक्ष है, न औषधि है, न लतावाली है, चिकने कोमल पत्ते वाली विकसित कमलिनी भी नहीं है ॥११॥ भ्रमरों से गुंजारित कमल भी वहां नहीं है। कण्डु नामक एक सत्यवादी महातपस्वी थे ॥ १२ ॥ वे महर्षि अत्यन्त क्रोधी तथा नियम आदि पालने में बड़े दक्ष थे। उस वन में निवास करने वाले कण्डु ऋषि का एक दस वर्ष का बालक था ॥१३॥ वह बालक किसी घटना से मृत्यु को प्राप्त हो गया। असमय में अपने पुत्र की मृत्यु से क्रुद्ध उस धर्मात्मा महामुनि ने शाप दिया। जिसके कारण वह वन निवास के लिये अयोग्य, दुर्गमनीय तथा पशुपक्षियों से सर्वथा रहित हो गया*। सुग्रीव के भेजे सैनिक गण ने उस वन की निम्न भूमि को पर्वत की चोटी तथा कन्दराओं ॥१४, १५॥ नदियों के उद्गमस्थल आदि सम्पूर्ण स्थानों को सावधानी से खोजा, किन्तु वहां भी उन वनवासी वीरों ने जनकनन्दिनी जानकी को न देखा ॥१६॥ और जानकी का हरण करने वाले रावण को भी वहां नहीं देखा। सुग्रीव के प्रियकारी वे सैनिक गण एक भयंकर लतागुल्मों से वेष्टित स्थान में चले गये ॥१७॥ वहां उन लोगों ने विशालकाय, विकराल, भयंकर कर्म करने वाला, जो देव आदि किसी से भय नहीं कर रहा है, ऐसे एक असुर को देखा ॥१८॥ उस विशालकाय असुर को देख कर वे सभी वनवासी संगठित तथा सावधान हो गये। वह असुर भी उन सभी वनवासी सैनिकों को देखकर—तुम सभी मारे गये—इस प्रकार बोला ॥१९॥ वह असुर मुट्ठी बांध कर क्रोधपूर्वक सैनिकों की ओर दौड़ पड़ा। उस असुर को अपनी ओर दौड़ते हुए देख कर बालिपुत्र

---

* विन्ध्याटवी का वह भाग जो मरुस्थल हो गया, इसके हेतु में कण्डु ऋषि के शाप की बात आयी है। पुत्र की मृत्यु पर एक हरे भरे देश का कोई अपराध न होने पर शाप देकर मरुस्थल के रूप में परिणत कर देना, यह काम निर्वैर आप्त ऋषियों का नहीं है। वन के हरे भरे भाग के मरुस्थल के रूप परिणत हो जाने में हेतु समुचित नहीं है। प्रकृति नियम के विरुद्ध तथा हेत्वाभास होने के कारण ये श्लोक प्रक्षिप्त हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तमापतन्तं सहसा वालिपुत्रोऽङ्गदस्तदा । रावणोऽयमिति ज्ञात्वा तलेनाभिजघान ह ॥२०॥
स वालिपुत्राभिहतो वक्त्राच्छोणितमुद्वमन् । असुरो न्यपतद्भूमौ पर्यस्त इव पर्वतः ॥२१॥
तेऽपि तस्मिन्निरुच्छ्वासे वानरा जितकाशिनः । व्यचिन्वन् प्रायशस्तत्र सर्वं तद्गिरिगह्वरम् ॥२२॥
विचितं तु ततः कृत्वा सर्वे ते काननं पुनः । अन्यदेवापरं घोरं विविशुर्गिरिगह्वरम् ॥२३॥
ते विचित्य पुनः खिन्ना विनिष्पत्य समागताः । एकान्ते वृक्षमूले तु निषेदुर्दीनमानसाः ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे वनादिविचयो नाम अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः

रजतपर्वतविजयः

अथाङ्गदस्तदा सर्वान् वानरानिदमब्रवीत् । परिश्रान्तो महाप्राज्ञः समाश्वास्य शनैर्वचः ॥ १ ॥
वनानि गिरयो नद्यो दुर्गाणि गहनानि च । दर्यो गिरिगुहाश्चैव विचितानि समन्ततः ॥ २ ॥
तत्र तत्र सहास्माभिर्जानकी न च दृश्यते । तद्वा रक्षो हृता येन सीता सुरसुतोपमा ॥ ३ ॥

अंगद ॥२०॥ सम्भव है, यह रावण हो, ऐसा मानकर अपने तमाचे से अंगद ने उस पर प्रहार किया। बालिपुत्र अंगद के प्रहार से वह असुर मुख से रक्त वमन करता हुआ ॥२१॥ भग्न पर्वत के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा। वे विजयशाली वनवासी इस असुर के मर जाने पर ॥२२॥ उस पर्वतीय समस्त गुफाओं को खोजने लगे। उस गुफा को खोजने के पश्चात् ॥२३॥ अन्य किसी पर्वत की विशाल गुफा में वे प्रवेश कर गये। वे सभी वनवासी उन गुफाओं को खोज कर सफलता न मिलने पर खिन्न चित्त होकर दुःखी होते हुए एक वृक्ष के नीचे बैठ गये ॥२४॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'वन आदि में खोज' विषयक अड़तालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥४८॥

उनञ्चासवां सर्ग

रजत पर्वत पर खोज

वृक्ष के नीचे सभी वनवासियों के बैठ जाने पर बुद्धिमान् राजकुमार अंगद थके हुए उन सैनिकों को आश्वासन देते हुए इस प्रकार बोले ॥ १ ॥ वन, पर्वत, नदियों, अन्य दुर्गमनीय स्थान, घाटी, पर्वतीय गुफाओं को हरेक प्रकार से खोज लिया ॥ २ ॥ जहां तहां खोजने पर जानकी का पता हम लोग न लगा सके तथा जानकी का अपहरण करने वाले उस पापी रावण का भी पता हम लोग न लगा सके ॥ ३ ॥ अन्वेषण करने का समय भी समाप्त हो गया, सुग्रीव का शासन कठोर है, इससे आप लोग परिचित हैं। इसलिये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कालश्च नो महान् यातः सुग्रीवश्चोग्रशासनः। तस्माद्भवन्तः सहिता विचिन्वन्तु समन्ततः ॥ ४ ॥
विहाय तन्द्रीं शोकं च निद्रां चैव समुत्थिताम्। विचिनुध्वं यथा सीतां पश्यामो जनकात्मजाम् ॥ ५ ॥
अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयम्। कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद् ब्रवीम्यहम् ॥ ६ ॥
अद्यापीदं वनं दुर्गं विचिन्वन्तु वनौकसः। खेदं त्यक्त्वा पुनः सर्वैर्वनमेतद्विचीयताम् ॥ ७ ॥
अवश्यं क्रियमाणस्य दृश्यते कर्मणः फलम्। अलं निर्वेदमागम्य न हि नो मीलनं क्षमम् ॥ ८ ॥
सुग्रीवः क्रोधनो राजा तीक्ष्णदण्डश्च वानराः। भेतव्यं तस्य सततं रामस्य च महात्मनः ॥ ९ ॥
हितार्थमेतदुक्तं वः क्रियतां यदि रोचते। उच्यतां वा क्षमं यन्नः सर्वेषामेव वानराः ॥१०॥
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा वचनं गन्धमादनः। उवाचाव्यक्तया वाचा पिपासाश्रमखिन्नया ॥११॥
सदृशं खलु वो वाक्यमङ्गदो यदुवाच ह। हितं चैवानुकूलं च क्रियतामस्य भाषितम् ॥१२॥
पुनर्मार्गामहे शैलान् कन्दरांश्च दरीस्तथा। काननानि च शून्यानि गिरिप्रस्रवणानि च ॥१३॥
यथोद्दिष्टानि सर्वाणि सुग्रीवेण महात्मना। विचिन्वन्तु वनं सर्वे गिरिदुर्गाणि सर्वशः ॥१४॥
ततः समुत्थाय पुनर्वानरास्ते महाबलाः। विन्ध्यकाननसंकीर्णां विचेरुर्दक्षिणां दिशम् ॥१५॥
ते शारदाभ्रप्रतिमं श्रीमद्रजतपर्वतम्। शृङ्गवन्तं दरीमन्तमधिरुह्य च वानराः ॥१६॥
तत्र लोध्रवनं रम्यं सप्तपर्णवनानि च। व्यचिन्वंस्ते हरिवराः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः ॥१७॥
तस्याग्रमधिरूढास्ते श्रान्ता विपुलविक्रमाः। न पश्यन्ति स्म वैदेहीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ॥१८॥

आप सभी लोग संगठित तथा सतर्क होकर चारों ओर खोजें ॥ ४ ॥ आयी हुई निद्रा, शोक, तन्द्रा को त्याग कर आप लोग इस प्रकार खोजें जिससे जानकी का पता लग जाय ॥ ५ ॥ आशा का होना, चातुर्य तथा सम्यक् उत्साह ये सभी कार्यसिद्धि के हेतु माने गये हैं। इसलिये मैं ये बातें आप लोगों से कह रहा हूं ॥ ६ ॥ हे वनवासी वीरो ! अभी भी आप लोग इस दुर्गम वन को खोजें। क्लान्ति को त्याग कर आप लोग इस वन का अन्वेषण अवश्य करें ॥ ७ ॥ सावधानी से किये हुए उद्योग का फल अवश्य मिलता है। कार्य क्षेत्र से विरक्त होकर चुपचाप बैठ जाना उचित नहीं ॥ ८ ॥ हे वनवासियो ! राजा सुग्रीव अत्यन्त क्रोधी तथा कठोर शासक हैं। आप लोगों को उनसे भय करना चाहिये तथा रामचन्द्र से भी आप लोगों को भय करना चाहिये ॥ ९ ॥ ये बातें मैंने आप लोगों के कल्याण के लिये कहीं हैं। आप लोग उचित समझें तो इसे कीजिये। हे वनवासियो ! हम लोगों के लिये इस समय जो उचित कार्य है, उसमें भी आप लोग अपनी सम्मति देवें ॥१०॥ अंगद की इन बातों को सुनकर पिपासा तथा थकावट से खिन्न गन्धमादन अस्पष्ट शब्दों में बोला ॥११॥ हे वीरो ! राजकुमार अंगद ने जो बातें कही हैं, वे तुम लोगों के अनुकूल हैं तथा हितकर हैं। इसलिये आप उनके कथनानुसार काम करें ॥१२॥ पर्वत की कन्दरा, पाषाण शिला, शून्य वन, पहाड़ों के झरने आदि स्थानों को हम लोग पुनः खोजें ॥१३॥ महात्मा सुग्रीव ने हमको जैसा आदेश दिया है, हम सभी लोग उनके कथनानुसार वनों तथा पर्वतीय दुर्गम स्थानों को खोजें ॥१४॥ गन्धमादन की बात को सुनकर वे महाबली वनवासी सैनिक पुनः प्रयत्नपूर्वक विन्ध्याचल की दक्षिणी संकीर्ण घाटियों में अन्वेषण करने लगे ॥१५॥ पश्चात् वे सभी वनवासी शरत्कालिक मेघ के समान धवल रजत पर्वत पर आरोहण कर गये जिस पर अनेकों चोटियां तथा गहन गुफाएं हैं ॥ १६ ॥ पश्चात् जानकी के दर्शन की आकांक्षा से वे वनवासी वीर वहां के रमणीय लोध वन तथा सप्तपर्ण वन को खोजने लगे ॥१७॥ उस पर्वत की चोटी पर चढ़ कर वे वनवासी लोग जहां तहां अन्वेषण करने लगे, किन्तु रामचन्द्र की धर्मपत्नी जानकी को नहीं देख ॥१८॥ अनेकों कन्दरा वाले अपने सामने उस पर्वत को देखकर वे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ते तु दृष्टिगतं दृष्ट्वा तं शैलं बहुकन्दरम् । अवारोहन्त हरयो वीक्षमाणाः समन्ततः ॥१९॥
अवरुह्य ततो भूमिं श्रान्ता विगतचेतसः । स्थित्वा मुहूर्तं तत्राथ वृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥२०॥
ते मुहूर्तं समाश्वस्ताः किंचिद्भयपरिश्रमाः । पुनरेवोद्यताः कृत्स्नां मार्गितुं दक्षिणां दिशम् ॥२१॥
हनुमत्प्रमुखास्ते तु प्रस्थिताः प्लवगर्षभाः । विन्ध्यमेवादितस्तावद्विचेरुस्ते ततस्ततः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे रजतपर्वतविचयो नाम एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशः सर्गः

ऋक्षबिलप्रवेशः

सह ताराङ्गदाभ्यां तु संगम्य हनुमान् कपिः । विचिनोति स्म विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च ॥ १ ॥
सिंहशार्दूलजुष्टाश्च शिलाश्च सरितस्तथा । विषमेषु नगेन्द्रस्य महाप्रस्रवणेषु च ॥ २ ॥
आसेदुस्तस्य शैलस्य कोटिं दक्षिणपश्चिमाम् । तेषां तत्रैव वसतां स कालो व्यत्यवर्तत ॥ ३ ॥
स हि देशो दुरन्वेषो गुहागहनवान् महान् । तत्र वायुसुतः सर्वं विचिनोति स्म पर्वतम् ॥ ४ ॥
परस्परेण रहिता अन्योन्यस्याविदूरतः । गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥ ५ ॥

वनवासी वीर चारों ओर देखते हुए उस पर्वत पर चढ़ गये ॥१९॥ घबराये हुए वे सब वनवासी सैनिक उस पर्वत पर खोज कर पश्चात् नीचे उतर आये और सभी एकत्र होकर कुछ देर के लिये एक वृक्ष के नीचे बैठ गये ॥२०॥ वहां पर विश्राम करके क्लान्ति दूर हो जाने पर पुनः सम्पूर्ण दक्षिण दिशा को खोजने के लिये उद्यत हो गये ॥२१॥ हनुमान् आदि खोज करने वाले प्रमुख वीर पुनः विन्ध्याचल की वनवासी भूमि को चारों ओर खोजने लगे ॥२२॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'रजत पर्वत पर खोज' विषयक उनञ्चासवां सर्ग समाप्त हुआ ॥४९॥

पचासवां सर्ग

ऋक्षबिल में प्रवेश

अंगद तथा तार के साथ हनुमान् विन्ध्याचल पर्वत की सम्पूर्ण गहन गुफाओं को खोजने लगे ॥ १ ॥ सिंह व्याघ्र से आक्रान्त भीषण गुफाएं दुर्गम सम-विषम स्थान तथा जलप्रपात के स्थानों को भी खोजा ॥ २ ॥ इन स्थानों को खोजते हुए मार्गजनित श्रम के कारण उसी पर्वत की दक्षिण-पश्चिम दिशावाली चोटीपर वे सब बैठ गये ॥ ३ ॥ उस चोटी पर विश्राम काल के समय ही खोज करने का एक मास का समय समाप्त हो गया । वह पर्वतीय देश अत्यन्त दुर्गम, गहन, विशाल गुफाओं से भरा हुआ था । उन भयंकर स्थानों को भी हनुमान् ने खोजा ॥ ४ ॥ एक दूसरे से अलग २ होकर किन्तु अधिक दूर भी न जाकर आस-पास के स्थानों को खोजने लगे । गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन ॥ ५ ॥ मैन्द, द्विविद,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

मैन्दश्च द्विविदश्चैव सुषेणो हनुमानपि । अङ्गदो युवराजश्च तारश्च वनगोचरः ॥ ६ ॥
गिरिजालावृतान् देशान् मार्गित्वा दक्षिणां दिशम् । विचिन्वन्तस्ततस्तत्र ददृशुर्विवृतं बिलम् ॥ ७ ॥
दुर्गमृक्षबिलं नाम दानवेनाभिरक्षितम् । क्षुत्पिपासापरीताश्च श्रान्ताश्च सलिलार्थिनः ॥ ८ ॥
अवकीर्णं लतावृक्षैर्ददृशुस्ते महाबिलम् । ततः क्रौञ्चाश्च हंसाश्च सारसाश्चापि निष्क्रमन् ॥ ९ ॥
जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च रक्ताङ्गाः पद्मरेणुभिः । ततस्तद्बिलमासाद्य सुगन्धि दुरतिक्रमम् ॥ १० ॥
विस्मयव्यग्रमनसो बभूवुर्वानरर्षभाः । संजातपरिशङ्कास्ते तद्बिलं प्लवगोत्तमाः ॥ ११ ॥
अभ्यपद्यन्त संहृष्टास्तेजोवन्तो महाबलाः । नानासत्त्वसमाकीर्णं दैत्येन्द्रनिलयोपमम् ॥ १२ ॥
दुर्दर्शमतिघोरं च दुर्विगाहं च सर्वशः । ततः पर्वतकूटाभो हनुमान् पवनात्मजः ॥ १३ ॥
अब्रवीद्वानरान्सर्वान्कान्तारवनकोविदः । गिरिजालावृतान् देशान् मार्गित्वा दक्षिणां दिशम् ॥ १४ ॥
वयं सव परिश्रान्ता न च पश्याम मैथिलीम् । अस्माच्चापि बिलाद्धंसाः क्रौञ्चाश्च सह सारसैः ॥ १५ ॥
जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च निष्पतन्ति स्म सर्वतः । नूनं सलिलवानत्र कूपो वा यदि वा ह्रदः ॥ १६ ॥
तथा चेमे बिलद्वारे स्निग्धास्तिष्ठन्ति पादपाः । इत्युक्त्वास्तद्बिलं सर्वे विविशुस्तिमिरावृतम् ॥ १७ ॥
अचन्द्रसूर्यं हरयो ददृशू रोमहर्षणम् । निशाम्य तस्मात्सिंहांश्च तांस्तांश्च मृगपक्षिणः ॥ १८ ॥
प्रविष्टा हरिशार्दूला बिलं तिमिरसंवृतम् । न तेषां सज्जते चक्षुर्न तेजो न पराक्रमः ॥ १९ ॥
वायोरिव गतिस्तेषां दृष्टिस्तमसि वर्तते । ते प्रविष्टास्तु वेगेन तद्बिलं कपिकुञ्जराः ॥ २० ॥

हनुमान्, जाम्बवान्, युवराज अंगद तथा तार ये सभी अन्वेषक ॥ ६ ॥ पर्वत माला से आवृत देशों को खोज कर दक्षिण की ओर गये । उन स्थानों को खोजते हुए वहाँ पर सभी लोगों ने एक विशाल बिल देखा ॥ ७ ॥ उस भयंकर बिल की रक्षा एक दानव कर रहा था । भूख प्यास से युक्त, अतिक्लान्त पिपासु उन लोगों ने ॥ ८ ॥ लता वृक्षों से आवृत उस महान् बिल को देखा । वहाँ पर उस बिल से निकलते हुए क्रौंच, सारस, हंस पक्षियों को देखा ॥ ९ ॥ कमल पराग से धूसरित, लाल वर्ण वाले, जल से भीगे हुए चक्रवाक समूह को देखा । सुगन्धित युक्त, दुर्गमनीय उस बिल के समीप जाकर ॥ १० ॥ वे सभी वनवासी विस्मय से अत्यन्त घबराहट में आ गये । यहाँ पर जल प्राप्ति होगी, इस आशंका से सभी वनवासी वीर उस बिल के समीप ॥ ११ ॥ पहुचें । वह बिल नाना प्रकार के जन्तुओं से परिपूर्ण, दानवेन्द्र के निवास के समान था । वहाँ पहुँच कर महाबली तेजस्वी वे वनवासी वीर प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥ वह स्थान देखने के अयोग्य, भयंकर तथा दुर्गमनीय था । तत्पश्चात् विशालकाय पवनसुत हनुमान् ॥ १३ ॥ जो इन सम विषम दुर्गमनीय स्थानों के जानकार थे, विकराल अपने वनवासी वीरों से बोले—दक्षिण दिशा की पर्वत मालाओं से घिरे हुए सभी स्थानों को खोज कर ॥ १४ ॥ हम सभी लोग श्रान्त हो गये, किन्तु मिथिलेश-कुमारी सीता का दर्शन न कर सके । इस विशाल बिल से हंस, सारसों के साथ क्रौंच पक्षी ॥ १५ ॥ जल से भीगे हुए चक्रवाकों का समूह झुण्ड के झुण्ड निकल रहे हैं । निश्चय ही इस बिल में जल परिपूर्ण कोई कूप या सरोवर है ॥ १६ ॥ इस बिल के द्वार वाले वृक्ष भी प्रायः हरे भरे हैं, ऐसा कह कर वे सभी संगठित हो कर अंधकार से आच्छादित उस बिल में प्रवेश कर गये । चन्द्र सूर्य से रहित, तिमिराच्छन्न उस भयंकर गुफा में जहाँ से सिंह आदि जन्तु तथा पक्षिगण निकल रहे थे, प्रवेश कर गये ॥ १८ ॥ अन्धकार से आच्छादित उस बिल के अन्दर प्रवेश कर जाने पर भी उन वनवासी वीरों की दृष्टि देखने में निष्फल नहीं हुई । उनका तेज तथा पराक्रम भी कुण्ठित नहीं हुआ ॥ १९ ॥ उनकी गति तथा वेग वायु के समान था । अन्धकार में भी उनकी दृष्टि काम कर रही थी । वे सभी वनवासी वीर वेग पूर्वक उस बिल में प्रवेश कर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशमभिरामं च ददृशुर्देशमुत्तमम् । ततस्तस्मिन् बिले दुर्गे नानापादपसंकुले ॥२१॥
अन्योन्यं संपरिष्वज्य जग्मुर्योजनमन्तरम् । ते नष्टसंज्ञास्तृषिताः संभ्रान्ताः सलिलार्थिनः ॥२२॥
परिपेतुर्बिले तस्मिन् कंचित्कालमतन्द्रिताः । ते कृशा दीनवदनाः परिश्रान्ताः प्लवङ्गमाः ॥२३॥
आलोकं ददृशुर्वीरा निराशा जीविते तदा । ततस्तं देशमागम्य सौम्यं वितिमिरं वनम् ॥२४॥
ददृशुः काञ्चनान्वृक्षान्दीप्तवैश्वानरप्रभान् । सालांस्तालांश्च पुंनागान् ककुभान् वञ्जुलान् धवान् ॥२५॥
चम्पकान्नागवृक्षांश्च कर्णिकारांश्च पुष्पितान् । स्तबकैः काञ्चनैश्चित्रै रक्तैः किसलयैस्तथा ॥२६॥
आपीडैश्च लताभिश्च हेमाभरणभूषितान् । तरुणादित्यसंकाशान् वैदूर्यमयवेदिकान् ॥२७॥
विभ्राजमानान् वपुषा पादपांश्च हिरण्मयान् । नीलवैदूर्यवर्णाश्च पद्मिनीः पतगावृताः ॥२८॥
महद्भिः काञ्चनैः पद्मैर्वृता बालार्कसंनिभैः । जातरूपमयैर्मत्स्यैर्महद्भिश्च सकच्छपैः ॥२९॥
नलिनीस्तत्र ददृशुः प्रसन्नसलिलावृताः । काञ्चनानि विमानानि राजतानि तथैव च ॥३०॥
तपनीयगवाक्षाणि मुक्ताजालावृतानि च । हैमराजतभौमानि वैदूर्यमणिमन्ति च ॥३१॥
ददृशुस्तत्र हरयो गृहमुख्यानि सर्वशः । पुष्पितान् फलिनो वृक्षान् प्रवालमणिसंनिभान् ॥३२॥
काञ्चनभ्रमरांश्चैव मधूनि च समन्ततः । मणिकाञ्चनचित्राणि शयनान्यासनानि च ॥३३॥
विविधानि विशालानि ददृशुस्ते समन्ततः । हैमराजतकांस्यानां भाजनानां च संचयान् ॥३४॥
अगरूणां च दिव्यानां चन्दनानां च संचयान् । शुचीन्यभ्यवहार्याणि मूलानि च फलानि च ॥३५॥

गये। नाना प्रकार के वृक्षों से युक्त अन्धकाराच्छन्न उस भयंकर बिल में मनोभिराम एक उत्तम प्रकाशको देखा। ॥ २१ ॥ क्षीण प्रकाश तथा अन्धकाराच्छादित उस बिल में भूखे, प्यासे, जल की खोज में वे वनवासी एक दूसरे को पकड़कर एक एक योजन तक उस बिल के अन्दर चले गये ॥ २२ ॥ दुर्बल, दीन, अत्यन्त थके हुए वे वनवासी सैनिक साहस पूर्वक कुछ काल तक आगे बढ़ते गये ॥ २३ ॥ जिस समय उनको अपने जीवन से निराशा हो रही थी, उस समय उन वीरों ने पुनः एक आलोक देखा। उस आलोक-स्थान पर पहुँच जाने से सारे वन को सर्वथा अन्धकार से रहित देखा ॥ २४ ॥ अग्नि के समान, काञ्चनमय प्रतीत होने वाले साल, ताल, तमाल, पुन्नाग, वंजुल, धव ॥ २५ ॥ चम्पक, नाग, कर्णिकार आदि पुष्पित वृक्षों को उन लोगों ने देखा स्वर्ण के समान पीत गुच्छे, कोमल तथा रक्तवर्ण वाले पत्ते तथा कलिकाओं से युक्त उन वृक्षों को देखा ॥ २६ ॥ लताओं से वेष्टित, स्वर्णमय भूषणों के समान, तरुण आदित्य के सदृश प्रकाशित, वैदूर्य मणिमय वेदिकाओं से युक्त ॥ २७ ॥ अत्यन्त सुशोभित काञ्चन के समान उन वृक्षों को देखा। नील वैदूर्य मणि के समान पक्षियों से परिपूर्ण सरोवर देखे ॥ २८ ॥ बाल आदित्य के समान काञ्चन वर्ण वाले वृक्षों से युक्त, रजत के समान चमकने वाली मछलियों तथा कच्छप से परिपूर्ण ॥ २९ ॥ निर्मल जल वाले सरोवर को देखा। सोने तथा चांदी के बने हुए विमानों को भी उन्होंने वहाँ देखा ॥ ३० ॥ काञ्चन की खिड़कियाँ, जिनमें मुक्ता माला की जाली लगी हुई हैं, वैदूर्य मणि से परिपूर्ण, जहाँ सोने चांदी की निम्नभूमि है ॥ ३१ ॥ ऐसे मुख्य गृहों के चारों ओर वनवासियों ने देखा। प्रवाल के समान फल फूल वाले वृक्षों को भी देखा ॥ ३२ ॥ काञ्चन के समान चारों ओर पीत भ्रमर, मधु, मणि तथा सुवर्ण से चित्रित नाना प्रकार के विशाल शयनागार तथा आसनों को ॥ ३३ ॥ उन वनवासी वीरों ने चारों ओर देखा। सोने, चांदी तथा कांसे के पात्रों के समूहों को उन लोगों ने देखा ॥ ३४ ॥ दिव्य अगर तथा सुगन्धित चन्दन की राशियों को, पवित्र मीठे, खाने योग्य मूल-फलों को ॥ ३५ ॥ मूल्यवान् पेय पदार्थ तथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महार्हाणि च पानानि मधूनि रसवन्ति च । दिव्यानामम्बराणां च महार्हाणां च संचयान् ॥३६॥
कम्बलानां च चित्राणामजिनानां च संचयान् । तत्र तत्र विचिन्वन्तो बिले तस्मिन् महाबलाः ॥३७॥
ददृशुर्वानराः शूराः स्त्रियं कांचिददूरतः । तां दृष्ट्वा भृशसंत्रस्ताश्चीरकृष्णाजिनाम्बराम् ॥३९॥
तापसीं नियताहारां ज्वलन्तीमिव तेजसा । विस्मिता हरयस्तत्र व्यवातिष्ठन्त सर्वशः ॥४०॥
पप्रच्छ हनुमांस्तत्र कासि त्वं कस्य वा बिलम् ॥

ततो हनूमान् गिरिसंनिकाशः कृताञ्जलिस्तामभिवाद्य वृद्धाम् ।
पप्रच्छ का त्वं भवनं बिलं च रत्नानि हेमानि वदस्व कस्य ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे ऋक्षबिलप्रवेशो नाम पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः

स्वयंप्रभातिथ्यम्

इत्युक्त्वा हनुमांस्तत्र पुनः कृष्णाजिनाम्बराम् । अब्रवीत्तां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम् ॥ १ ॥
इदं प्रविष्टाः सहसा बिलं तिमिरसंवृतम् । क्षुत्पिपासापरिश्रान्ताः परिखिन्नाश्च सर्वशः ॥ २ ॥

रसपूर्ण मधु, दिव्य तथा मूल्यवान् वस्त्र की राशियों को ॥ ३६ ॥ चित्र विचित्र कम्बलों तथा मृग चर्म की राशियों को जहां तहां खोजते हुए उस बिल में अत्यन्त बली ॥ ३७ ॥ शूर वनवासियों ने पास में एक स्त्री को देखा । चीरवसन और काले मृगचर्म को पहने हुए ॥ ३८ ॥ अपने तेज से अग्नि के समान प्रकाश वाली, नियत आहार करने वाली उस तापसी को देख कर सारे वनवासी चकित होकर जहां तहां बैठ गये । पश्चात् हनुमान् ने उस से पूछ—हे देवि ! तुम कौन हो और यह बिल किसका है ॥ ३९ ॥ विशाल काय हनुमान् ने करबद्ध उस वृद्धा को प्रणाम करके उससे पूछा—हे देवि ! तुम कौन हो, यह भवन किसका है, बिल तथा यह रत्नराशि किस की है, यह कृपा कर बतायें ॥ ४० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'ऋक्ष बिल में प्रवेश' विषयक पचासवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५० ॥

इक्यावनवां सर्ग

स्वयंप्रभा का आतिथ्य

कृष्ण मृगाजिन धारण करने वाली, धर्मचारिणी उस श्रमणा से इन विषयों को पूछते हुए हनुमान् पुनः बोले ॥ १ ॥ क्षुधा, पिपासा से क्लान्त, अनेक ओर से दुःखी हम सभी लोग सहसा तिमिराच्छन्न इस बिल में चले आये ॥ २ ॥ अत्यन्त तृषित हम लोग इस पृथ्वी के विशाल बिल में चले आये ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महद्धरण्या विवरं प्रविष्टाः स्म पिपासिताः । इमांस्त्वेवंविधान् भावान् विविधानद्भुतोपमान् ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा वयं प्रव्यथिताः संभ्रान्ता नष्टचेतसः । कस्यैव काञ्चना वृक्षास्तरुणादित्यसंनिभाः ॥ ४ ॥
शुचीन्यभ्यवहार्याणि मूलानि च फलानि च । काञ्चनानि विमानानि राजतानि गृहाणि च ॥ ५ ॥
तपनीयगवाक्षाणि मणिजालावृतानि च । पुष्पिताः फलवन्तश्च पुण्याः सुरभिगन्धिनः ॥ ६ ॥
इमे जाम्बूनदमयाः पादपाः कस्य तेजसा । काञ्चनानि च पद्मानि जातानि विमले जले ॥ ७ ॥
कथं मत्स्याश्च सौवर्णाश्चरन्ति सह कच्छपैः । आत्मानमनुभावं च कस्य चैतत्तपोबलम् ॥ ८ ॥
अजानतां नः सर्वेषां सर्वमाख्यातुमर्हसि । एवमुक्ता हनुमता तापसी धर्मचारिणी ॥ ९ ॥
प्रत्युवाच हनूमन्तं सर्वभूतहिते रता । मयो नाम महातेजा मायावी दानवर्षभः ॥१०॥
तेनेदं निर्मितं सर्वं मायया काञ्चनं वनम् । पुरा दानवमुख्यानां विश्वकर्मा बभूव ह ॥११॥
येनेदं काञ्चनं दिव्यं निर्मितं भवनोत्तमम् । स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ॥१२॥
पितामहाद्वरं लेभे सर्वमौशनसं धनम् । वनं विधाय बलवान् सर्वकामेश्वरस्तदा ॥१३॥
उवास सुखितः कालं कंचिदस्मिन् महावने । तमप्सरसि हेमायां सक्तं दानवपुङ्गवम् ॥१४॥
विक्रम्यैवाशनिं गृह्य जघानेशः पुरंदरः । इदं च ब्रह्मणा दत्तं हेमायै वनमुत्तमम् ॥१५॥
शाश्वताः कामभोगाश्च गृहं चेदं हिरण्मयम् । दुहिता मेरुसावर्णेरहं तस्याः स्वयंप्रभा ॥१६॥

यहां की प्रत्येक अद्भुत वस्तु को इस प्रकार देख कर ॥ ३ ॥ हम लोग सभी अत्यन्त दुःखी तथा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ से हो गये हैं। देदीप्यमान सूर्य के सदृश तथा काञ्चन के समान प्रतीत होने वाले ये वृक्ष किसके हैं ॥ ४ ॥ पवित्र ये भोजन के पदार्थ, मूल-फल, काञ्चन के विमान तथा चांदी के गृह ॥ ५ ॥ तप्त काञ्चन की खिड़कियां, मणियों की जाली, पुण्य सुगन्धितमय फूल तथा फल वाले ये वृक्ष ॥ ६ ॥ ये काञ्चन के समान पीत वर्ण वाले वृक्ष तथा विमल जल में काञ्चन के समान पीत वर्ण वाले ये कमल आदि किस की बुद्धि निर्माण कौशल का फल है' ॥ ७ ॥ स्वर्ण के समान पीत वर्ण वाले ये कछुए तथा ये जो मछलियां दिखायी दे रही हैं, यह सब आपकी तपश्चर्या का प्रभाव है या किसी अन्य व्यक्ति के तपोबल का प्रभाव है ॥ ८ ॥ हम सभी लोग इन बातों से अपरिचित हैं, इसलिये हम जिज्ञासुओं को इन सब के विषय में आप बताइये। हनुमान् के ऐसा कहने पर वह धर्मचारिणी तपस्विनी ॥ ९ ॥ प्राणिमात्र का कल्याण चाहने वाली हनुमान् से बोली—हे वनवासी श्रेष्ठ ! अतिचतुर मय नामक महातेजस्वी एक कुशल कारीगर था ॥१०॥ उसी मय ने अपनी बुद्धि चातुर्य से काञ्चन के समान प्रतीत होने वाले इस वन का निर्माण किया है। पहले दानव वंश में विश्वकर्मा नामक एक कुशल कारीगर हुआ है ॥११॥ उसी ने इस दिव्य काञ्चनमय युक्त भवनों का निर्माण किया है। अनेकों वर्ष इस विशाल वन में उसने तपश्चर्या की ॥१२॥ पश्चात् चतुर्वेद वक्ता ब्रह्मा के द्वारा सम्पूर्ण औशनस (शिल्प विद्या) को पाया। इस प्रकार सम्पूर्ण विद्या आदि को प्राप्त कर तथा सब प्रकार की सामर्थ्य शक्ति को प्राप्त कर भोगों में सक्षम ॥१३॥ इस वन में सुखपूर्वक कुछ काल तक निवास किया। पश्चात् हेमा नामक अप्सरा में वह अनुरक्त हो गया ॥१४॥ इन्द्र ने मय की इस घटना को देखते हुए अपने वज्र से पराक्रमपूर्वक मय का वध कर दिया। मय के मर जाने पर यह सम्पूर्ण वन तथा उसका निर्मित भवन वेदवक्ता ब्रह्मा ने हेमा को दे दिया ॥१५॥ परम्परागत भोग की वस्तु तथा मय का जो कुछ भी स्वर्ण, गृह आदि थे, वह सब हेमा को दे दिया। मैं मेरुसावर्णि की पुत्री हूं, मेरा नाम स्वयंप्रभा है ॥१६॥ हे वनवासी वीर ! हेमा का सम्पूर्ण भवन आदि मेरे अधीन है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इदं रक्षामि भवनं हेमाया वानरोत्तम। मम प्रियसखी हेमा नृत्तगीतविशारदा ॥१७॥
तया दत्तवरा चास्मि रक्षामि भवनोत्तमम्। किं कार्यं कस्य वा हेतोः कान्ताराणि प्रपश्यथ ॥१८॥
कथं चेदं वनं दुर्गं युष्माभिरुपलक्षितम्। इमान्यभ्यवहार्याणि मूलानि च फलानि च ॥१९॥
भुक्त्वा पीत्वा च पानीयं सर्वं मे वक्तुमर्हथ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे स्वयंप्रभातिथ्यं नाम एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः

बिलप्रवेशकारणकथनम्

अथ तानब्रवीत्सर्वान् विश्रान्तान् हरियूथपान्। इदं वचनमेकाग्रा तापसी धर्मचारिणी ॥ १ ॥
वानरा यदि वः खेदः प्रनष्टः फलभक्षणात्। यदि चैतन्मया श्राव्यं श्रोतुमिच्छसि कथ्यताम् ॥ २ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान् मारुतात्मजः। आर्जवेन यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ३ ॥
राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः। रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ ४ ॥

और मैं इसकी रक्षा करती हूं। मेरी प्रिय सखी हेमा नृत्य-गान-वाद्य में विशारद है ॥१७॥ हेमा ने स्वयं मुझे वरदान दिया है, इस कारण मैं उसके भवन आदि की रक्षा करती हूं। आप लोगों के यहां आने का क्या प्रयोजन है। इस विजन वन में आप लोग क्यों घूम रहे हैं ॥१९॥ मेरे द्वारा रक्षित हेमा के इस दुर्गम का पता आप लोगों को कैसे हुआ। पहले आप लोग खाने योग्य मूल-फल आदि को अच्छी तरह खाकर तथा जल पीकर पश्चात् मेरे प्रश्नों का उत्तर दें ॥१९॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'स्वयंप्रभा का आतिथ्य' विषयक इक्यावनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥५१॥

बावनवां सर्ग

बिल में प्रवेश के कारण का कथन

वनवासी हनुमान् आदि सभी लोगों के विश्राम कर लेने पर धर्मचारिणी हेमा की प्रिय सखी तपस्विनी उन लोगों से यह वचन बोली ॥ १ ॥ हे आगन्तुक वनवासियो! फल आदि भक्षण के द्वारा मार्गजनित श्रम दूर हो गया है, तो मैं आप लोगों की आगमन सम्बन्धी कथा को सुनना चाहती हूं। यदि यह बात मेरे सुनने योग्य हो तो आप लोग मुझे सुनावें ॥ २ ॥ उस तपस्विनी की इस बात को सुन कर हनुमान् नम्रतापूर्वक अपने आगमन के वृत्तान्त को यथार्थ रूप में कहने लगे ॥ ३ ॥ इन्द्र और वरुण के समान शक्तिशाली, सम्पूर्ण पृथ्वी के शासक दशरथकुमार रामचन्द्र इस दण्डक वन में आये हैं ॥ ४ ॥ अपनी पत्नी मिथिला की राजकुमारी जानकी तथा अपने भाई लक्ष्मण के साथ इस वन में प्रवेश करने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया । तस्य भार्या जनस्थानाद्रावणेन हृता बलात् ॥ ५ ॥
वीरस्तस्य सखा राज्ञः सुग्रीवो नाम वानरः । राजा वानरमुख्यानां येन प्रस्थापिता वयम् ॥ ६ ॥
अगस्त्याचरितामाशां दक्षिणां यमरक्षिताम् । सहैभिर्वानरैर्मुख्यैरङ्गदप्रमुखैर्वयम् ॥ ७ ॥
रावणं सहिताः सर्वे राक्षसं कामरूपिणम् । सीतया सह वैदेह्या मार्गध्वमिति चोदिताः ॥ ८ ॥
विचित्य तु वयं सर्वे समग्रां दक्षिणां दिशम् । बुभुक्षिताः परिश्रान्ता वृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥ ९ ॥
विवर्णवदनाः सर्वे सर्वे ध्यानपरायणाः । नाधिगच्छामहे पारं मग्नाश्चिन्तामहार्णवे ॥ १० ॥
चारयन्तस्ततश्चक्षुर्दृष्टवन्तो वयं बिलम् । लतापादपसंछन्नं तिमिरेण समावृतम् ॥ ११ ॥
अस्माद्धंसा जलक्लिन्नाः पक्षैः सलिलविस्रवैः । कुररा: सारसाश्चैव निष्पतन्ति पतत्रिणः ॥ १२ ॥
साध्वत्र प्रविशामेति मया तूक्ताः प्लवङ्गमाः । तेषामपि हि सर्वेषामनुमानमुपागतम् ॥ १३ ॥
गच्छाम प्रविशामेति भर्तृकार्यत्वरान्विताः । ततो गाढं निपतिता गृह्य हस्तौ परस्परम् ॥ १४ ॥
इदं प्रविष्टाः सहसा बिलं तिमिरयंवृतम् । एतन्नः कार्यमेतेन कृत्येन वयमागताः ॥ १५ ॥
त्वां चैवोपगताः सर्वे परिद्यूना बुभुक्षिताः । आतिथ्यधर्मदत्तानि मूलानि च फलानि च ॥ १६ ॥
अस्माभिरुपभुक्तानि बुभुक्षापरिपीडितैः । यत्त्वया रक्षिताः सर्वे म्रियमाणा बुभुक्षया ॥ १७ ॥
ब्रूहि प्रत्युपकारार्थं किं ते कुर्वन्तु वानराः । एवमुक्ता तु सर्वज्ञा वानरैस्तैः स्वयंप्रभा ॥ १८ ॥

पर जनस्थान से रावण ने बलपूर्वक सीता का अपहरण कर लिया ॥ ५ ॥ वनवासियों के सम्राट् वीर राजा सुग्रीव जो रामचन्द्र के परम मित्र हैं, उन्होंने ही रामचन्द्र के कार्य के लिये हम लोगों को यहां भेजा है ॥ ६ ॥ अगस्त्य नक्षत्र से युक्त यमरक्षित दक्षिण दिशा में अंगद आदि मुख्य वनवासी वीरों के साथ हम लोग यहां आये हैं ॥ ७ ॥ स्वेच्छाचारी वीरों के साथ रावण का तथा रामचन्द्र की धर्मपत्नी सीता का तुम लोग दक्षिण दिशा में जाकर पता लगाओ, ऐसी आज्ञा सुग्रीव ने दी ॥ ८ ॥ दक्षिण दिशा के सम्पूर्ण वन तथा समुद्र के तट को खोज कर भूखे प्यासे हम सभी लोगों ने एक वृक्ष की छाया में आश्रय लिया ॥ ९ ॥ क्षुत् पिपासा के कारण तथा कार्य में सफलता न पाने के कारण मलिन मुख मण्डल वाले हम सभी लोग ध्यान करने पर भी चिन्तामग्न चिन्ता रूपी समुद्र से पार न जा सके ॥ १० ॥ चारों ओर दृष्टि दौड़ाने पर लता वृक्षों से परिपूर्ण घोर अन्धकार से आच्छादित इस बड़े बिल को देखा ॥ ११ ॥ जल से भींगे हुए तथा पुष्प पराग से पूर्ण पक्ष वाले हंस, कुरर और सारस पक्षिगण इस बिल से निकल रहे थे ॥ १२ ॥ हे वनवासियो ! हम लोग इस बिल में प्रवेश करें, यहां पर जाना उचित होगा । इस प्रकार मैंने उन वनवासी वीरों से कहा । मेरे साथी वनवासियों ने अनुमानपूर्वक मेरी बातों का समर्थन किया ॥ १३ ॥ कार्य की शीघ्रता से व्यग्र हम लोग सहसा इस गुफा में घुस पड़े । घोर अन्धकार में फँस जाने के कारण एक दूसरे के हाथ को पकड़ कर चलने लगे ॥ १४ ॥ घोर अन्धकार से आवृत हम लोग सहसा इस बिल में प्रवेश कर गये । हम लोगों के यहां आने का यही निमित्त है ॥ १५ ॥ क्षुधा पिपासा से युक्त हम लोग यहां आप के पास आये । आतिथ्य धर्मानुकूल आपने हम सभी लोगों को फल-मूल आदि दिये ॥ १६ ॥ आप के दिये हुए फल-मूल आदि को क्षुधापिपासा से पीड़ित हम लोगों ने खाया । भूख प्यास से मरने वाले हम लोगों के प्राणों की रक्षा आपने की है ॥ १७ ॥ हम सभी वनवासी आप के इस प्रत्युपकार के लिये आप की क्या सेवा करें । वनवासी वीरों के इस प्रकार निवेदन करने पर वह सर्वज्ञा स्वयंप्रभा ॥ १८ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्युवाच ततः सर्वानिदं वानरयूथपान् । सर्वेषां परितुष्टास्मि वानराणां महात्मनाम् ॥१९॥
चरन्त्या मम धर्मेण न कार्यमिह केनचित् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे बिलप्रवेशकारणकथनं नाम द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः

अङ्गदादिनिर्वेदः

एवमुक्तः शुभं वाक्यं तापस्या धर्मसंहितम् । उवाच हनुमान् वाक्यं तामनिन्दितचेष्टिताम् ॥ १ ॥
शरणं त्वां प्रपन्नाः स्मः सर्वे वै धर्मचारिणि । यः कृतः समयोऽस्माकं सुग्रीवेण महात्मना ॥ २ ॥
स च कालो ह्यतिक्रान्तो बिले नः परिवर्तताम् । सा त्वमस्माद्बिलाद्घोरादुत्तारयितुमर्हसि ॥ ३ ॥
तस्मात्सुग्रीववचनादतिक्रान्तान् गतायुषः । त्रातुमर्हसि नः सर्वान् सुग्रीवभयशङ्कितान् ॥ ४ ॥
महच्च कार्यमस्माभिः कर्तव्यं धर्मचारिणि । तच्चापि न कृतं कार्यमस्माभिरिहवासिभिः ॥ ५ ॥
एवमुक्ता हनुमता तापसी वाक्यमब्रवीत् । जीवता दुष्करं मन्ये प्रविष्टेन निवर्तितुम् ॥ ६ ॥

इस प्रकार बोली—हे तीव्र गति वाले वनवासी लोगो ! इस विचारधारा से मैं तुम सब लोगो पर बहुत प्रसन्न हूं । धर्मानुकूल तपश्चर्या करते हुए मुझे किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है ॥१९॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'बिल में प्रवेश के कारण का कथन' विषयक बावनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५२ ॥

तिरपनवां सर्ग

अङ्गद आदि का बिषाद

उस तपस्विनी के धर्मयुक्त शुभ वाक्य कहने पर हनुमान् उस पवित्र नेत्र वाली तपस्विनी से बोले ॥ १ ॥ धर्म का आचरण करने वाली आपकी शरण में हम लोग आये हुए हैं । महात्मा राजा सुग्रीव ने इस कार्य के लिये हमें जो समय दिया था ॥ २ ॥ वह समय इस बिल में घूमने फिरने से समाप्त हो गया है । इस लिये आप इस बिल से किसी प्रकार हम लोगों को बाहर निकाल दीजिये ॥ ३ ॥ इस लिये सुग्रीव के वचन का अतिक्रमण करने वाले तथा जिनके प्राण संकट में पड़ गये हैं, सुग्रीव के भय से शंकित ऐसे हम लोगों की आप रक्षा करें ॥ ४ ॥ हे धर्मचारिणि ! अभी हम लोगों को जो महान् काम करना है, वह हम वनवासियों ने अब तक नहीं किया ॥ ५ ॥ हनुमान् के इस प्रकार कहने पर वह तपस्विनी इस प्रकार बोली—इस बिल में प्रवेश करके जीवित अवस्था में बाहर निकल जाना बहुत कठिन है ॥ ६ ॥ तपश्चर्या के प्रभाव से तथा यम-नियम के पालन करने से मैं आप सभी वनवासियों को इस बिल से बाहर निकाल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तपसस्तु प्रभावेण नियमोपार्जितेन च । सर्वानेव बिलादस्मादुद्धरिष्यामि वानरान् ॥ ७ ॥
निमीलयत चक्षूंषि सर्वे वानरपुङ्गवाः । न हि निष्क्रमितुं शक्यमनिमीलितलोचनैः ॥ ८ ॥
ततः संमीलिताः सर्वे सुकुमाराङ्गुलैः करैः । सहसा पिदधुर्दृष्टिं हृष्टा गमनकाङ्क्षिणः ॥ ९ ॥
वानरास्तु महात्मानो हस्तरुद्धमुखास्तदा । निमेषान्तरमात्रेण बिलादुत्तारितास्तया ॥१०॥
ततस्तान् वानरान् सर्वांस्तापसी धर्मचारिणी । निःसृतान् विषमात्तस्मात्समाश्वास्येदमब्रवीत् ॥११॥
एष विन्ध्यो गिरिः श्रीमान्नानाद्रुमलताकुलः । एष प्रस्रवणः शैलः सागरोऽयं महोदधिः ॥१२॥
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि भवनं वानरर्षभाः । इत्युक्त्वा तद्बिलं श्रीमत्प्रविवेश स्वयंप्रभा ॥१३॥
ततस्ते ददृशुर्घोरं सागरं वरुणालयम् । अपारमभिगर्जन्तं घोरैरूर्मिभिराकुलम् ॥१४॥
मयस्य मायाविहितं गिरिदुर्गं विचिन्वताम् । तेषां मासो व्यतिक्रान्तो यो राज्ञा समयः कृतः॥१५॥
विन्ध्यस्य तु गिरेः पादे संप्रपुष्पितपादपे । उपविश्य महात्मानश्चिन्ताभापेदिरे तदा ॥१६॥
ततः पुष्पातिभाराग्राछँताशतसमावृतान् । द्रुमान् वासन्तिकान् दृष्ट्वा बभूवुर्भयशङ्किताः ॥१७॥
ते वसन्तमनुप्राप्तं प्रतिवेद्य परस्परम् । नष्टसंदेशकालार्था निपेतुर्धरणीतले ॥१८॥
ततस्तान् कपिवृद्धांस्तु शिष्टांश्चैव वनौकसः । वाचा मधुरयाभाष्य यथावदनुमान्य च ॥१९॥
स तु सिंहवृषस्कन्धः पीनायतभुजः कपिः । युवराजो महाप्राज्ञ अङ्गदो वाक्यमब्रवीत् ॥२०॥

दूंगी ॥ ७ ॥ इस लिये आप सभी श्रेष्ठ वनवासी अपने नेत्रों को बन्द कर लें, क्योंकि विना नेत्र बन्द किये आप लोग यहाँ से किसी प्रकार भी निकल नहीं सकते ॥ ८ ॥ उस तपस्विनी के ऐसा कहने पर अपने कोमल अंगुलि वाले हाथों से सभी वनवासियों ने अपने नेत्रों को बन्द कर लिया । बाहर गमन की आकांक्षा से उन लोगों ने प्रसन्न होते हुए सहसा अपने नेत्रों को बन्द कर लिया ॥ ९ ॥ वे सभी महात्मा वनवासी इस प्रकार हाथ से अपने २ मुख ढक लेने पर थोड़े ही समय मैं उस तपस्विनी के द्वारा विल से बाहर निकाल दिये गये ॥ १० ॥ धर्मचारिणी वह तपस्विनी उस भयंकर विल से निकले हुए उन वनवासियों को आश्वासन देती हुई इस प्रकार बोली ॥ ११ ॥ नाना प्रकार के वृक्ष-लताओं से परिपूर्ण सामने यह विन्ध्याचल पर्वत है । झरनों से परिपूर्ण यह प्रस्रवण पर्वत है । अगाध जलराशि से परिपूर्ण यह समुद्र है ॥ १२ ॥ आप लोगों का गमन कल्याणमय हो । हे श्रेष्ठ वनवासियो ! अब मैं अपने भवन को जा रही हूं । ऐसा कह कर वह स्वयंप्रभा उस रमणीय गुफा में प्रवेश कर गयी ॥ १३ ॥ उसके पश्चात् उन वनवासियों ने विकराल तरङ्गों से तरङ्गित, भयङ्कर गर्जन करते हुए, अपार जलराशि से परिपूर्ण उस घोर समुद्र को देखा ॥ १४ ॥ मय की माया से निर्मित उस गिरि गुफा में वनवासियों को खोज करते हुए राजा सुग्रीव का जो समय दिया हुआ था, वह समाप्त हो गया ॥ १५ ॥ विन्ध्य पर्वत की निम्न भूमि में पुष्पों से परिपूर्ण वृक्षों के नीचे बैठ कर महात्मा वे सभी वनवासी भविष्य की कार्य-चिन्ता में मग्न हो गये ॥ १६ ॥ पुष्प के भार से बोझिल तथा सैकड़ों लताओं से आवेष्टित उन वसन्त ऋतु के वृक्षों को देख कर वे सभी वनवासी भय से अत्यन्त शङ्कित हो गये ॥ १७ ॥ वसन्त ऋतु का आगमन हो गया है तथा सुग्रीव का दिया हुआ समय भी प्रायः समाप्त हो गया है, इस प्रकार परस्पर वार्त्तालाप करते हुए पृथ्वी पर जहां तहां वे सभी बैठ गये ॥ १८ ॥ तत्पश्चात् वयोवृद्ध श्रेष्ठ वनवासियों का यथावत् सम्मान करके मधुर वाणी के द्वारा भाषण करते हुए तथा उनसे आज्ञा लेकर ॥ १९ ॥ सिंह तथा वृषभ के समान मोटे कन्धे वाले, मोटी तथा विशाल भुजावाले, महाबुद्धिमान् युवराज अङ्गद उन लोगों से यह वचन बोले ॥ २० ॥ राजा सुग्रीव की आज्ञा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शासनात्कपिराजस्य वयं सर्वे विनिर्गताः । मासः पूर्णो बिलस्थानां हरयः किं न बुध्यते॥२१॥
वयमाश्वयुजे मासि कालसंख्याव्यवस्थिताः । प्रस्थिताः सोऽपि चातीतः किमतः कार्यमुत्तरम्॥२२॥
भवन्तः प्रत्ययं प्राप्ता नीतिमार्गविशारदाः । हितेष्वभिरता भर्तुर्निसृष्टाः सर्वकर्मसु ॥२३॥
कर्मस्वप्रतिमाः सर्वे दिक्षु विश्रुतपौरुषाः । मां पुरस्कृत्य निर्याताः पिङ्गाक्षेशप्रचोदिताः ॥२४॥
इदानीमकृतार्थानां मर्तव्यं नात्र संशयः । हरिराजस्य संदेशमकृत्वा कः सुखी भवेत् ॥२५॥
तस्मिन्नतीते काले तु सुग्रीवेण कृते स्वयम् । प्रायोपवेशनं युक्तं सर्वेषां च वनौकसाम् ॥२६॥
तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः स्वामिभावे व्यवस्थितः । न क्षमिष्यति नः सर्वानपराधकृतो गतान् ॥२७॥
अप्रवृत्तौ च सीतायाः पापमेव करिष्यति । तस्मात्क्षममिहाद्यैव गन्तुं प्रायोपवेशनम् ॥२८॥
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च धनानि च गृहाणि च । ध्रुवं नो हिंसिता राजा सर्वान् प्रतिगतानितः ॥२९॥
वधेनाप्रतिरूपेण श्रेयान् मृत्युरिहैव नः । न चाहं यौवराज्येन सुग्रीवेणाभिषेचितः ॥३०॥
नरेन्द्रेणाभिषिक्तोऽस्मि रामेणाक्लिष्टकर्मणा । स पूर्वं बद्धवैरो मां राजा दृष्ट्वा व्यतिक्रमम् ॥३१॥
घातयिष्यति दण्डेन तीक्ष्णेन कृतनिश्चयः । किं मे सुहृद्भिर्व्यसनं पश्यद्भिर्जीवितान्तरे ॥३२॥
इहैव प्रायमासिष्ये पुण्ये सागररोधसि ॥

से हम सभी लोग किष्किन्धा से बाहर निकले थे। इस पर्वत की गुफा में घूमते हुए हम लोगों को वह पूर्ण मास समाप्त हो गया है। हे वनवासियों! क्या आपको यह बात मालूम नहीं है ॥ २१ ॥ हम लोग जो आश्विनमास में सीता के अन्वेषण की प्रतिज्ञा करके राजधानी से निकले थे, वह सब समय व्यतीत हो गया है अब आगे हम लोगों को क्या करना चाहिये ॥ २२ ॥ आप सभी विश्वास पात्र, नीति विशारद, राजा के हितैषी तथा राजकीय आज्ञा से सर्व अधिकार प्राप्त हैं ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण कर्मों में अद्वितीय तथा सम्पूर्ण दिशाओं में लब्धप्रतिष्ठ आप लोग राजा सुग्रीव की आज्ञा से मेरे नायकत्व में वहां से निकले थे ॥ २४ ॥ अब इस समय अपने कार्य में असफल हम लोगों के समक्ष मृत्यु निश्चित है, इसमें कोई सन्देह नहीं क्योंकि वनवासियों के सम्राट् सुग्रीव के आदेश का पालन न करके कौन व्यक्ति सुखी तथा कुशल पूर्वक रह सकता है ॥ २५ ॥ इस लिये राजा सुग्रीव के द्वारा स्वयं दिये हुए समय की अवधि बीत जाने पर हम सभी वनवासियों को प्रायोपवेशन (मृत्यु के किये अन्न जल का त्याग) करना ही उचित है ॥ २६ ॥ राजा सुग्रीव अत्यन्त तीक्ष्ण स्वभाव वाले हैं और इस समय वे ही इस वनवासी राज्य के शासक हैं। जानकी की खोज किये विना लौटने वाले हम अपराधियों के अपराध को वे क्षमा नहीं करेंगे ॥ २७ ॥ सीता का पता न लगाने वाले हम लोगों का प्राणदण्ड निश्चित है, इसलिये आज हम सभी लोगों को यहां पर प्रायोपवेशन करना ही उचित है ॥ २८ ॥ पुत्र, स्त्री, धन तथा गृह आदि की ममता को हमें छोड़ देना चाहिये। क्योंकि यहां से लौटने पर असफल मनोरथ हम लोगों को राजा अवश्य प्राणदण्ड देगा। २९ ॥ इस घोर प्राणान्त दण्ड से हम लोगों को यहीं मर जाना अच्छा है। युवराज के अधिकारी होने पर भी राजा सुग्रीव ने मुझे युवराज पद पर अभिषिक्त नहीं किया ॥ ३० ॥ मर्यादापालक महाराज रामचन्द्र के द्वारा मैं युवराज पद पर अभिषिक्त किया गया। राजा सुग्रीव मेरे प्रति वैर बुद्धि पहले से ही रखते हैं। आज्ञापालनहीन मुझ अपराधी को देखकर ॥ ३१ ॥ तीक्ष्ण विचारों से निश्चित मुझे प्राणदण्ड अवश्यमेव देंगे। अपनी आज्ञा भंग के अपराध में भयंकर प्राणदण्ड के व्यसन प्राप्त होने पर मित्र लोग क्या कर सकेंगे। इस लिये इस पवित्र सागरतट पर ही मैं मरणान्त प्रायोपवेशन करूंगा ॥ ३२ ॥ राजकुमार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतच्छ्रुत्वा कुमारेण युवराजेन भाषितम् । सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः करुणं वाक्यमब्रुवन् ॥३३॥
तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः प्रियासक्तश्च राघवः । समीक्ष्याकृतकार्यांस्तु तस्मिंश्च समये गते ॥३४॥
अदृष्टायां तु वैदेह्यां दृष्ट्वा चैव समागतान् । राघवप्रियकामार्थं घातयिष्यत्यसंशयम् ॥३५॥
न क्षमं चापराद्धानां गमनं स्वामिपार्श्वतः । प्रधानभूताश्च वयं सुग्रीवस्य समागताः ॥३६॥
इहैव सीतामन्विष्य प्रवृत्तिमुपलभ्य वा । नो चेद्गच्छाम तं वीरं गमिष्यामो यमक्षयम् ॥३७॥

प्लवङ्गमानां तु भयार्दितानां श्रुत्वा वचस्तार इदं बभाषे ।
अलं विषादेन बिलं प्रविश्य वसाम सर्वे यदि रोचते वः ॥३८॥

इदं हि मायाविहितं सुदुर्गमं प्रभूतवृक्षोदकभोज्यपेयकम् ।
इहास्ति नो नैव भयं पुरंदरान्न राघवाद्वानरराजतोऽपि वा ॥३९॥

श्रुत्वाङ्गदस्यापि वचोऽनुकूलमूचुश्च सर्वे हरयः प्रतीताः ।
यथा न हिंस्येम तथा विधानमसक्तमद्यैव विधीयतां नः ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे अङ्गदादिनिर्वेदो नाम त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥५३॥

युवराज अङ्गद की इन बातों को सुन कर वे सभी श्रेष्ठ वनवासी करुणापूर्ण इस प्रकार बोले ॥ ३३ ॥ राजा सुग्रीव स्वभाव से ही तीक्ष्ण विचार वाले हैं। रामचन्द्र अपनी भार्या जानकी में अनुरक्त हैं। समय की अवधि बीत जाने पर तथा हम सब लोगों को कार्य करने में असफल देखकर ॥ ३४ ॥ जानकी को विना देखे हुए हम लोगों के लौट आने पर राजा सुग्रीव रामचन्द्र के प्रिय पात्र बनने के लिये हम लोगों को प्राणदण्ड अवश्य देंगे, इसमें कोई संशय नहीं ॥ ३५ ॥ इस प्रकार अपराध करके स्वामी के समीप हम अपराधियों का जाना उचित नहीं। हम सभी लोग सुग्रीव के सम्मानित हैं तथा उसी आशा से हम लोग यहां पर भेजे गये है ॥ ३६ ॥ यदि हम लोग सीता को विना देखे तथा उनके समाचार को विना प्राप्त किये हुए सुग्रीव के पास लौट जायेंगे, तो निश्चय ही हम सब को यमराजपुरी को प्रस्थान करना पड़ेगा ॥ ३७ ॥ भयभीत वनवासियों के इन वचनों को सुनकर तार नामक वनवासी सैनिक इस प्रकार बोला—आप लोग अपने दुःख पूर्ण विचारों को छोड़ दीजिये। यदि आप सभी लोगों को उचित प्रतीत हो, तो हम सब लोग इस पर्वतीय गुफा में प्रवेश कर यही निवास करना आरम्भ कर दें ॥ ३८ ॥ यह स्थान मय के द्वारा निर्मित तथा दुर्गमनीय है तथा प्रचुर फूल, फल, जल आदि से परिपूर्ण है। यहां पर इन्द्र, रामचन्द्र तथा वनवासी राजा से कोई भय नहीं है ॥ ३९ ॥ अंगद तथा तार के अपने अनुकूल इन वचनों को सुनकर सभी वनवासी विश्वास पूर्वक इस प्रकार बोले—हम लोगों के प्राणों की रक्षा जिस प्रकार से हो, वह उपाय इस समय शीघ्र ही करना चाहिये ॥ ४० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धा काण्ड का 'अंगद आदि का विषाद' विषयक तिरपनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुःपञ्चाशः सर्गः

हनूमद्भेदनम्

तथा ब्रुवति तारे तु ताराधिपतिवर्चसि । अथ मेने हृतं राज्यं हनुमानङ्गदेन तत् ॥ १ ॥
बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं चतुर्बलसमन्वितम् । चतुर्दशगुणं मेने हनुमान् बालिनः सुतम् ॥ २ ॥
आपूर्यमाणं शश्वच्च तेजोबलपराक्रमैः । शशिनं शुक्लपक्षादौ वर्धमानमिव श्रिया ॥ ३ ॥
बृहस्पतिसमं बुद्ध्या विक्रमे सदृशं पितुः । शुश्रूषमाणं तारस्य शुक्रस्येव पुरंदरम् ॥ ४ ॥
भर्तुरर्थे परिश्रान्तं सर्वशास्त्रविशारदः । अभिसन्धातुमारेभे हनुमानङ्गदं ततः ॥ ५ ॥
स चतुर्णामुपायानां द्वितीयमुपवर्णयन् । भेदयामास तान् सर्वान् वानरान् वाक्यसंपदा ॥ ६ ॥
तेषु सर्वेषु भिन्नेषु ततोऽभीषयदङ्गदम् । भीषणैर्बहुभिर्वाक्यैः कोपोपायसमन्वितैः ॥ ७ ॥
त्वं समर्थतरः पित्रा युद्धे तारेय वै धुरम् । दृढं धारयितुं शक्तः कपिराज्यं यथा पिता ॥ ८ ॥
नित्यमस्थिरचित्ता हि कपयो हरिपुङ्गव । नाज्ञाप्यं विषहिष्यन्ति पुत्रदारान् विना त्वया ॥ ९ ॥

चौवनवां सर्ग

हनुमान् का भेद

चन्द्रकान्ति के समान तेज वाले तार के इस प्रकार कहने पर अङ्गद के द्वारा सुग्रीव का राज्य अपहृत किया गया है, ऐसा माना ॥ १ ॥ हनुमान् ने बालि पुत्र अङ्गद को अष्टाङ्गयोगबुद्धि* से युक्त चार प्रकार के बल से परिपूर्ण तथा राजनीति के १४ गुणों से अलंकृत माना ॥ २ ॥ शुक्लपक्ष के वर्द्धमान चन्द्रकला के समान तेज, बल, पराक्रम से निरन्तर परिपूर्ण ॥ ३ ॥ बुद्धि में बृहस्पति के समान, वीरता में बालि के समान, नीति श्रवण करने में शुक्राचार्य के द्वारा इन्द्र के समान जो तार के उपदेश को सुन रहे हैं ॥ ४ ॥ जो अपने स्वामी (राजा सुग्रीव) के कार्य से परिश्रान्त हो गये हैं इस प्रकार के अङ्गद को सर्वशास्त्र विशारद हनुमान् ने तार से भेद उत्पन्न कर अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया ॥ ५ ॥ वाणी के धनी हनुमान् साम आदि चार उपायों में द्वितीय उपाय का अवलम्बन करते हुए उन सभी वनवासियों में भेदभाव उत्पन्न कर दिया ॥ ६ ॥ उन सब वनवासियों के अङ्गद से पृथक् हो जाने पर भयानकता तथा दण्ड की भीषणता से युक्त नाना प्रकार के भीषण वाक्यों द्वारा हनुमान् ने अङ्गद को डराया ॥ ७ ॥ हे तारापुत्र अङ्गद संग्राम में तुम अपने पिता के समान बल-वीर्य से परिपूर्ण हो, इसमें कोई सन्देह नहीं। तुम अपने पिता के राज्य को सम्भालने में उसी प्रकार समर्थ हो जैसे तुम्हारा पिता ॥ ८ ॥ हे वनवासियों के चुने हुए वीर ! आपको यह पता ही है कि आपके सहायक वनवासियों के चित्त की वृत्ति अस्थिर है। अभी ये आपकी आज्ञा मानते हैं किन्तु चिरकाल तक स्त्री-पुत्र के बिना आपकी आज्ञाओं का ये सम्मान नहीं करेंगे ॥ ९ ॥ जिस प्रकार महासचिव जाम्बवान्, प्रधान सेनापति

---

* अष्टाङ्गबुद्धि—सुनने की इच्छा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहापोह, अर्थविज्ञान और तत्त्वज्ञान। चार बल—साम, दाम, भेद और निग्रह। चौदह गुण—देशकाल का ज्ञान, दृढ़ता, कष्टसहिष्णुता, सर्वविज्ञानता, दक्षता, उत्साह, मन्त्रगुप्ति, एकवाक्यता, शूरता, भक्तिज्ञान, कृतज्ञता, शरणागतवत्सलता, अमर्षित्व और अचापल्य ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्वां नैते ह्यनुयुञ्जेयुः प्रत्यक्षं प्रवदामि ते । यथायं जाम्बवान्नीलः सुहोत्रश्च महाकपिः ॥१०॥
न ह्यहं त इमे सर्वे सामदानादिभिर्गुणैः । दण्डेन वा त्वया शक्याः सुग्रीवादपकर्षितुम् ॥११॥
विगृह्यासनमप्याहुर्दुर्बलेन बलीयसः । आत्मरक्षाकरस्तस्मान्न विगृह्णीत दुर्बलः ॥१२॥
यां चेमां मन्यसे धात्रीमेतद्बिलमिति श्रुतम् । एतल्लक्ष्मणबाणानामीषत्कार्यं विदारणे ॥१३॥
स्वल्पं हि कृतमिन्द्रेण क्षिपता ह्यशनिं पुरा । लक्ष्मणो निशितैर्बाणैर्भिन्द्यात्पत्रपुटं यथा ॥१४॥
लक्ष्मणस्य तु नाराचा बहवः सन्ति तद्विधाः । वज्राशनिसमस्पर्शा गिरीणामपि दारणाः ॥१५॥
अवस्थाने यदैव त्वमासिष्यसि परंतप । तदैव हरयः सर्वे त्यक्ष्यन्ति कृतनिश्चयाः ॥१६॥
स्मरन्तः पुत्रदाराणां नित्योद्विग्ना बुभुक्षिताः । खेदिता दुःखशय्याभिस्त्वां करिष्यन्ति पृष्ठतः ॥१७॥
स त्वं हीनः सुहृद्भिश्च हितकामैश्च बन्धुभिः । तृणादपि भृशोद्विग्नः स्पन्दमानाद्भविष्यसि ॥१८॥
न च जातु न हिंस्युस्त्वां घोरा लक्ष्मणसायकाः । अपवृत्तं जिघांसन्तो महावेगा दुरासदाः ॥१९॥
अस्माभिस्तु गतं सार्धं विनीतवदुपस्थितम् । आनुपूर्व्याच्च सुग्रीवो राज्ये त्वां स्थापयिष्यति ॥२०॥

नील तथा महामति सुहोत्र सुग्रीव के विरोधी होने के कारण तुम्हारा समर्थन नहीं कर रहे हैं। स्त्री-पुत्र के अभाव में ये वनवासी भी आगे तुम्हारा समर्थन नहीं करेंगे, यह सबके सामने स्पष्ट रूप से कह रहा हूं ॥१०॥ साम, दान, दण्ड, भेद आदि के द्वारा इन वनवासियों तथा मुझको राजा सुग्रीव से आप अलग नहीं कर सकते ॥११॥ दुर्बलों के साथ विग्रह करके बलवान् एकाकी पल्लवित रह सकता है किन्तु दुर्बल व्यक्ति बलवान् से विरोध करके कुशलपूर्वक नहीं रह सकता। क्योंकि उसको आत्मरक्षा की आवश्यकता पड़ती है। इसलिये दुर्बल को बलवान् से विग्रह नहीं करना चाहिये ॥१२॥ जिस बिल या गुफा को तुम सब अपना रक्षक समझते हो, जिसके विषय में तार ने आपको समझाया है, वह लक्ष्मण के बाणों के द्वारा थोड़े समय में नष्ट की जा सकती है ॥१३॥ इन्द्र के चलाये हुए वज्र ने पहले कुछ थोड़े लोगों का विनाश किया था, किन्तु लक्ष्मण के द्वारा चलाये हुए तीव्र बाण सबका उसी प्रकार नाश कर देंगे जैसे पत्रभाजन को सरलता से तोड़ा जा सकता है ॥१४॥ वज्र के समान कर्कश लक्ष्मण के अनेकों ऐसे बाण हैं जो पहाड़ को भी विदीर्ण कर सकते हैं ॥१५॥ हे शत्रुओं के मानमर्दन करने वाले अङ्गद ! जिस समय आप इस दीर्घ गुफा का आश्रय लेकर रहने लगेंगे, उसी समय अपने भविष्य का निश्चय करने वाले ये वनवासी आपका साथ छोड़ देंगे ॥१६॥ अपने पुत्र, स्त्री आदि परिवार के वियोग से उद्विग्न तथा भूख-प्यास-शयन आदि कष्ट से दुःखित ये वनवासी आपको पीठ दिखा देंगे अर्थात् आपका परित्याग कर ये सुग्रीव के पास लौट जायेंगे ॥१७॥ ऐसी अवस्था में हितकारी बन्धु-बान्धवों से तथा अपने शुभचिन्तकों से आप हीन हो जायेंगे। शुभचिन्तकों से त्यक्त आप तृण के समान हलके हो जायेंगे तथा सदा उद्विग्न रहेंगे ॥१८॥ इस लिये तीव्र धार वाले, वेगवान्, असहनीय लक्ष्मण के घोर बाण राम के कार्य से विमुख तुमको न मार देवें, ऐसा उपाय करो ॥ १९ ॥ हम लोगों के साथ चलने पर तथा नम्रता पूर्वक समक्ष उपस्थित होने पर परम्परागत राज्य को सुग्रीव तुम्हें प्रदान कर देंगे ॥ २० ॥ तुम्हारे चाचा सुग्रीव धर्मात्मा तथा दृढव्रती हैं, पवित्रान्तःकरण तथा प्रतिज्ञा के धनी हैं। तुम्हारे प्रति वे स्नेह भी रखते हैं। इस लिये वे कभी भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धर्मकामः पितृव्यस्ते प्रीतिकामो दृढव्रतः । शुचिः सत्यप्रतिज्ञश्च न त्वां जातु जिघांसति ॥२१॥
प्रियकामश्च ते मातुस्तदर्थं चास्य जीवितम् । तस्यापत्यं च नास्त्यन्यत्तस्मादङ्गद गम्यताम् ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे हनूमद्भेदनं नाम चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः

प्रायोपवेशः

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् । स्वामिसत्कारसंयुक्तमङ्गदो वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
स्थैर्यं सत्त्वं मनःशौचमानृशंस्यमथार्जवम् । विक्रमश्चैव धैर्यं च सुग्रीवे नोपपद्यते ॥ २ ॥
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य यो भार्यां जीवतो महिषीं प्रियाम् । धर्मेण मातरं यस्तु स्वीकरोति जुगुप्सितः ॥ ३ ॥
कथं स धर्मं जानीते येन भ्रात्रा महात्मना । युद्धायाभिनियुक्तेन बिलस्य पिहितं मुखम् ॥ ४ ॥
सत्यात्पाणिगृहीतश्च कृतकर्मा महायशाः । विस्मृतो राघवो येन स कस्य तु कृतं स्मरेत् ॥ ५ ॥
लक्ष्मणस्य भयाद्येन नाधर्मभयभीरुणा । आदिष्टा मार्गितुं सीतां धर्मस्तस्मिन् कथं भवेत् ॥ ६ ॥

तुम्हारा नाश नहीं करेंगे ॥ २१ ॥ तुम्हारी माता के वे स्नेह भाजन हैं। उनके कल्याण के लिये सुग्रीव का जीवन है। राजा सुग्रीव का उत्तराधिकारी कोई पुत्र है भी नहीं। इसलिए हे अंगद ! तुम चलो ॥ २२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'हनुमान् का भेद' विषयक चौवनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥

पचपनवां सर्ग

प्रायोपवेश

धर्मानुकूल, नम्रतायुक्त, अपने स्वामी के सम्मान से परिपूर्ण हनुमान् की इन बातों को सुनकर अंगद यह वचन बोले ॥ १ ॥ स्थिरता, बाह्य-अन्तःकरण की पवित्रता, दया, सरलता, वीरता तथा धैर्य ये कोई गुण सुग्रीव में नहीं दिखाई देते ॥ २ ॥ ज्येष्ठ भ्राता के जीवित रहने पर उसकी प्राणप्रिया राजदारा को, जो धर्म से माता के समान है, जो ग्रहण करता है वह अवश्य ही निन्दनीय है ॥ ३ ॥ वह व्यक्ति धर्मात्मा कैसे कहा जा सकता है जिसने संग्राम में जाते हुए अपने भाई के द्वारा रक्षा के लिये नियुक्त होने पर भी गुफा के मुख को ढक दिया ॥ ४ ॥ सत्य की साक्षी देकर जिसने मैत्री के लिए हाथ पकड़ा और जो पूर्वोपकारी हो, ऐसे महायशस्वी रामचन्द्र को भी जो भूल गया वह किसके उपकार तथा धर्म को स्मरण कर सकता है ॥ ५ ॥ अधर्म के भय से नहीं किन्तु लक्ष्मण के भय से भीत होते हुए जिसने जानकी की खोज करने का आदेश दिया, ऐसे व्यक्ति में धर्म कैसे रह सकता है ॥ ६ ॥ उस पापी, कृतघ्न, स्मृति से भ्रष्ट, चलचित्त सुग्रीव पर कौन श्रेष्ठ व्यक्ति विश्वास कर सकता है। विशेषतः उस कुल में उत्पन्न जोनेका

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मिन् पापे कृतघ्ने तु स्मृतिहीने चलात्मनि । आर्यः को विश्वसेज्जातु तत्कुलीनो जिजीविषुः ॥ ७ ॥
राज्ये पुत्रः प्रतिष्ठाप्यः सगुणो निर्गुणोऽपि वा । कथं शत्रुकुलीनं मां सुग्रीवो जीवयिष्यति ॥ ८ ॥
भिन्नमन्त्रोऽपराद्धश्च हीनशक्तिः कथं ह्यहम् । किष्किन्धां प्राप्य जीवेयमनाथ इव दुर्बलः ॥ ९ ॥
उपांशुदण्डेन हि मां बन्धनेनोपपादयेत् । शठः क्रूरो नृशंसश्च सुग्रीवो राज्यकारणात् ॥१०॥
बन्धनाद्वावसादान्मे श्रेयः प्रायोपवेशनम् । अनुजानीत मां सर्वे गृहं गच्छन्तु वानराः ॥११॥
अहं वः प्रतिजानामि नागमिष्याम्यहं पुरीम् । इहैव प्रायमासिष्ये श्रेयो मरणमेव मे ॥१२॥
अभिवादनपूर्वं तु राघवौ बलशालिनौ । अभिवादनपूर्वं तु राजा कुशलमेव च ॥१३॥
वाच्यस्तातो यवीयान् मे सुग्रीवो वानरेश्वरः । आरोग्यपूर्वं कुशलं वाच्या माता रुमा च मे ॥१४॥
मातरं चैव मे तारामाश्वासयितुमर्हथ । प्रकृत्या प्रियपुत्रा सा सानुक्रोशा तपस्विनी ॥१५॥
विनष्टमिह मां श्रुत्वा व्यक्तं हास्यति जीवितम् । एतावदुक्त्वा वचनं वृद्धांस्तानभिवाद्य च ॥१६॥
विवेश चाङ्गदो भूमौ रुदन् दर्भेषु दुर्मनाः । तस्य संविशतस्तत्र रुदन्तो वानरर्षभाः ॥१७॥
नयनेभ्यः प्रमुमुचुरुष्णं वै वारि दुःखिताः । सुग्रीवं चैव निन्दन्तः प्रशंसन्तश्च वालिनम् ॥१८॥
परिवार्याङ्गदं सर्वे व्यवास्यन् प्रायमासितुम् । मतं तद्वालिपुत्रस्य विज्ञाय प्लवगर्षभाः ॥१९॥
उपस्पृश्योदकं तत्र प्राङ्मुखाः समुपाविशन् । दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु उदक्तीरं समाश्रिताः ॥२०॥
मुमूर्षवो हरिश्रेष्ठा एतत्क्षममिति स्म ह । रामस्य वनवासं च क्षयं दशरथस्य च ॥२१॥

इच्छुक व्यक्ति कैसे विश्वास कर सकता है ॥ ७ ॥ गुणवान् या गुणहीन अपने पुत्र को ही लोग राजपद दिया करते हैं। अपने विरोधी कुल में उत्पन्न मुझको सुग्रीव कैसे जीवित रख सकेंगे ॥ ८ ॥ कार्य में परिणत होने के पूर्व जिसकी विचारधारा प्रकाशित हो गयी हो, जो अपराधी प्रमाणित हो गया हो तथा जो शक्तिहीन हो, इन दोषों से युक्त मेरे किष्किन्धा जाने पर दुर्बल अनाथ के समान मैं कैसे जीवित रह सकता हूँ ॥ ९ ॥ धूर्त, निर्दयी तथा क्रूर सुग्रीव अपने राज्य के प्रलोभन में मुझे गुप्त रीति से प्राण दण्ड दे देगा अथवा बन्दी बना कर रखेगा ॥ १० ॥ बन्धन आदि कष्ट से मेरा प्रायोपवेशन मेरे लिये कल्याणप्रद है। इसलिये आप लोग मुझे इसके लिये आज्ञा दें और सभी वनवासी अपने २ घर चले जायें ॥ ११ ॥ आप लोगों से मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि मैं अब किष्किन्धा पुरी को नहीं जाऊँगा। मैं यहीं पर प्रायोपवेशन करूँगा। क्योंकि अब मृत्यु ही मेरे लिये श्रेयस्कर है ॥ १२ ॥ अभिवादन पूर्वक मेरी तरफ से राजा सुग्रीव को कुशल कहना, बलशाली राम लक्ष्मण को भी अभिवादन पूर्वक कुशल कहना ॥ १३ ॥ वनवासियों के सम्राट् कनिष्ठ पिता राजा सुग्रीव को कुशल कहना। माता रुमा से आरोग्य पूर्वक कुशल कहना ॥ १४ ॥ स्वभाव से मुझ पुत्र पर प्रेम करने वाली, दयालु, तपस्विनी मेरी माता तारा को धैर्य तथा आश्वासन देना ॥ १५ ॥ मैं दिवंगत हो गया, इस समाचार को सुन कर मेरी माता निश्चय ही प्राण त्याग देगी। इतनी बात कह कर तथा वृद्धों को अभिवादन करके ॥ १६ ॥ रोते हुए राजकुमार अङ्गद उस दर्भाच्छादित भूमि पर बैठ गये। वहाँ पर अंगद को इस प्रकार बैठते हुए देखकर सभी श्रेष्ठ वनवासी ॥ १७ ॥ दुःख पूर्वक अपनी आँखों से आँसू बहाने लगे। उन लोगों ने सुग्रीव की निन्दा की और बाली की प्रशंसा की ॥ १८ ॥ वे सभी श्रेष्ठ वनवासी बालिपुत्र अङ्गद के इस वाक्य का समर्थन करते हुए उनको चारों ओर से घेर कर प्रायोपवेशन के लिये उद्यत हो गये ॥ १९ ॥ वे सभी वनवासी वीर समुद्र के उत्तरी तट पर आचमन करके कुश के आसन पर पूर्वाभिमुख बैठ गये ॥ २० ॥ यह ठीक है, इस प्रकार उन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जनस्थानवधं चैव वधं चैव जटायुषः। हरणं चैव वैदेह्या वालिनश्च वधं रणे ॥२२॥
रामकोपं च वदतां हरीणां भयमागतम् ॥

एवं वदद्भिर्बहुभिर्महीधरो महाद्रिकूटप्रतिमैः प्लवङ्गमैः।
बभूव संनादितनिर्दरान्तरो भृशं नदद्भिर्जलदैरिवाम्बरम् ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे प्रायोपवेशो नाम पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः

संपातिप्रश्नः

उपविष्टास्तु ते सर्वे यस्मिन् प्रायं गिरिस्थले। हरयो गृध्रराजश्च तं देशमुपचक्रमे ॥ १ ॥
संपातिर्नाम नाम्ना तु चिरजीवी विहङ्गमः। भ्राता जटायुषः श्रीमान् प्रख्यातबलपौरुषः ॥ २ ॥
कन्दरादभिनिष्क्रम्य स विन्ध्यस्य महागिरेः। उपविष्टान् हरीन् दृष्ट्वा हृष्टात्मा गिरमब्रवीत् ॥ ३ ॥
[विधिः किल नरं लोके विधानेनानुवर्तते। यथायं विहितो भक्ष्यश्चिरान्मह्यमुपागतः ॥ ४ ॥

सभी मरणेच्छु वनवासियों ने कहा। रामचन्द्र का वनवास, राजा दशरथ का देहावसान ॥ २१ ॥ जनस्थान का नरसंहार, जटायु का वध, जानकी का हरण, बाली का प्राणान्त तथा रामचन्द्र का क्रोध—इन सबकी चर्चा करते हुए वनवासियों में भय का संचार हो गया ॥ २२ ॥ विशालकाय वनवासी सैनिकों के बैठने से वह पर्वत मेघ के गर्जन से नभ के समान शब्दायमान झरनों वाला प्रतीत होने लगा ॥ २३ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'प्रायोपवेश' विषयक पचपनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५५ ॥

छप्पनवां सर्ग

संपाति का प्रश्न

पर्वत के जिस भूभाग में वे सभी वनवासी सैनिक प्रायोपवेशन में बैठे थे, उस स्थान पर गृध्रकूट का भूतपूर्व राजा (जो इस समय वानप्रस्थ है) आकर उपस्थित हो गया ॥ १ ॥ जिसका नाम संपाति है, जो अत्यन्त दीर्घजीवी है, जो जटायु का ज्येष्ठ भ्राता है, बल और पुरुषार्थ में जो अप्रतिम है ॥ २ ॥ विन्ध्य पर्वत की कन्दरा से निकल कर उसने बैठे हुए उन वनवासियों को देखा तथा प्रसन्न होते हुए यह वचन बोला ॥ ३ ॥ जिस प्रकार जगत् में प्राणधारियों को कर्मानुकूल फल मिलता है, उसी प्रकार मेरे पूर्वार्जित कर्मफल के रूप में आज यह आहार मुझे प्राप्त हुआ है ॥ ४ ॥ एक के पश्चात् एक इन मरे हुए वनवासियों को मैं खाऊँगा, इस प्रकार उस पक्षी ने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परंपराणां भक्षिष्ये वानराणां मृतं मृतम् । उवाचेदं वचः पक्षी तान्निरीक्ष्य प्लवङ्गमान् ॥ ५ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भक्ष्यलुब्धस्य पक्षिणः । अङ्गदः परमायस्तो हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ ६ ॥]
पश्य सीतापदेशेन साक्षाद्वैवस्वतो यमः । इमं देशमनुप्राप्तो वानराणां विपत्तये ॥ ७ ॥
रामस्य न कृतं कार्यं राज्ञो न च वचः कृतम् । हरीणामियमज्ञाता विपत्तिः सहसागता ॥ ८ ॥
वैदेह्याः प्रियकामेन कृतं कर्म जटायुषा । गृध्रराजेन यत्तत्र श्रुतं वस्तदशेषतः ॥ ९ ॥
तथा सर्वाणि भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि । प्रियं कुर्वन्ति रामस्य त्यक्त्वा प्राणान् यथा वयम् १० ॥
अन्योन्यमुपकुर्वन्ति स्नेहकारुण्ययन्त्रिताः । तेन तस्योपकारार्थं त्यजतात्मानमात्मना ॥ ११ ॥
प्रियं कृतं हि रामस्य धर्मज्ञेन जटायुषा । राघवार्थे परिश्रान्ता वयं संत्यक्तजीविताः ॥ १२ ॥
कान्ताराणि प्रपन्नाः स्म न च पश्याम मैथिलीम् । स सुखी गृध्रराजस्तु रावणेन हतो रणे ॥ १३ ॥
मुक्तश्च सुग्रीवभयाद्गतश्च परमां गतिम् ॥
जटायुषो विनाशेन राज्ञो दशरथस्य च । हरणेन च वैदेह्याः संशयं हरयो गताः ॥ १४ ॥
रामलक्ष्मणयोर्वास अरण्ये सह सीतया । राघवस्य च बाणेन वालिनश्च तथा वधः ॥ १५ ॥
रामकोपादशेषाणां राक्षसानां तथा वधः । कैकेय्या वरदानेन इदं हि विकृतं कृतम् ॥ १६ ॥

वनवासियों को देखकर यह वचन कहा ॥ ५ ॥ भोजन के लोलुप उस पक्षी की इस बात को सुनकर त्रस्त अंगद हनुमान् से यह वचन बोले* ॥ ६ ॥ सीता के व्याज से साक्षात् यमराज (मृत्यु) ही वनवासियों की विपत्ति के निमित्त इस स्थान पर आ गये हैं ॥ ७ ॥ न तो हम लोगों ने रामचन्द्र का काम ही किया, न राजाज्ञा का पालन ही किया। इसके पूर्व ही अज्ञात अवस्था में हम वनवासियों पर यह विपत्ति कहाँ से आ गयी ॥ ८ ॥ जानकी की सहायता करने में गृध्रकूट के भूतपूर्व राजा जटायु ने जो कार्य किये हैं, उन सम्पूर्ण कामों को आप अच्छी प्रकार जानते हैं ॥ ९ ॥ जैसे तृतीय आश्रमवासी त्यागी वैखानस लोग अपने प्राणों की आहुति देकर रामचन्द्र के प्रिय कार्य को करते हैं, उसी प्रकार हम लोग भी करेंगे ॥ १० ॥ जिस प्रकार सज्जन लोग करुणा तथा स्नेह के वशीभूत होकर एक दूसरे का उपकार करते हैं, उसी प्रकार हम लोग भी रामचन्द्र के प्रिय कार्य के लिये अपने २ प्राणों का त्याग करें ॥ ११ ॥ जिस प्रकार धर्मात्मा जटायु ने अपने प्राणों को त्याग कर रामचन्द्र के कार्य को किया, उसी प्रकार क्लान्त हम लोगों को भी रामचन्द्र के लिये जीवन का त्याग करना चाहिये ॥ १२ ॥ हम लोग सीता का अन्वेषण करने के लिये वन में आये, किन्तु जानकी का दर्शन न कर सके। संग्राम में रावण के द्वारा मारे जाने पर वह जटायु सुखी है, क्योंकि सुग्रीव के भय से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ जटायु तथा राजा दशरथ के प्राणान्त से और जानकी के अपहरण से आज हम वनवासियों पर यह संकट आया है ॥ १४ ॥ राम लक्ष्मण का जानकी के साथ वनवास, रामचन्द्र के बाणों से बाली का निधन ॥ १५ ॥ रामचन्द्र के क्रोध से सम्पूर्ण राक्षसों का वध—यह सब कृत्य कैकेयी के वरदान से ही हुआ है ॥ १६ ॥ वनवासियों के द्वारा दुःखपूर्ण इन वचनों को सुनकर तथा भूमि पर बैठे

*जटायु के वर्णन वाली विगत टिप्पणी में स्पष्ट कर दिया गया है कि जटायु मगधदेशीय गृध्रकूट (गिद्धौर) राज्य का शासक था। दीर्घकाल तक शासन करके वानप्रस्थ अवस्था में तपश्चर्या के निमित्त पञ्चवटी में निवास करता था। शासन काल में चक्रवर्त्ती सम्राट् राजा दशरथ और जटायु में घनिष्ठ मैत्री थी (द्र० अरण्य० ५३।६ तथा अरण्य० ६७।२७)। वह न कोई गृध्र पक्षी था, न तिर्यग्योनि था। उसी गृध्रकूट के राजा जटायु का संपाति सहोदर ज्येष्ठ बन्धु है। यह भी तपश्चर्या के लिये भारत के दक्षिणी समुद्र तट पर निवास कर रहा था। संपाति को तिर्यग्योनिगत गृध्र मान कर ही यह सारी कथा कपोल कल्पित, प्रकरण विरुद्ध और प्रकृति नियम के विरुद्ध होने से प्रक्षिप्त है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तदसुखमनुकीर्तितं वचो भुवि पतितांश्च समीक्ष्य वानरान् ।
भृशचलितमतिर्महामतिः कृपणमुदाहृतवान् स गृध्रराट् ॥१७॥
तत्तु श्रुत्वा तदा वाक्यमङ्गदस्य मुखोद्गतम् । अब्रवीद्वचनं गृध्रस्तीक्ष्णतुण्डो महास्वनः ॥१८॥
कोऽयं गिरा घोषयति प्राणैः प्रियतरस्य मे । जटायुषो वधं भ्रातुः कम्पयन्निव मे मनः ॥१९॥
कथमासीज्जनस्थाने युद्धं राक्षसगृध्रयोः । नामधेयमिदं भ्रातुश्चिरस्याद्य मया श्रुतम् ॥२०॥
इच्छेयं गिरिदुर्गाच्च भवद्भिरवतारितुम् । यवीयसो गुणज्ञस्य श्लाघनीयस्य विक्रमैः ॥२१॥
अतिदीर्घस्य कालस्य तुष्टोऽस्मि परिकीर्तनात् । तदिच्छेयमहं श्रोतुं विनाशं वानरर्षभाः ॥२२॥
भ्रातुर्जटायुषस्तस्य जनस्थाननिवासिनः । तस्यैव च मम भ्रातुः सखा दशरथः कथम् ॥२३॥
यस्य रामः प्रियः पुत्रो ज्येष्ठो गुरुजनप्रियः । सूर्यांशुदग्धपक्षत्वान्न शक्नोम्युपसर्पितुम् ॥२४॥
इच्छेयं पर्वतादस्मादवतर्तुमरिंदमाः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे संपातिप्रश्नो नाम षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः

जटायुर्दिष्टकथनम्

शोकाद्भ्रष्टस्वरमपि श्रुत्वा ते हरियूथपाः । श्रद्दधुर्नैव तद्वाक्यं कर्मणा तस्य शङ्किताः ॥ १ ॥

हुए उन वनवासियों को देखकर अत्यन्त चकित होता हुआ वह बुद्धिमान् संपाति दीनतापूर्वक यह वचन बोला ॥ १७ ॥ अंगद आदि के मुख से पूर्वोक्त बातों को सुनकर भयङ्कर शब्द तथा विकराल मुख वाला वह संपाति बोला ॥ १८ ॥ मेरे हृदय को कम्पायमान करता हुआ प्राणप्रिय मेरे बन्धु जटायु के वध का समाचार यह कौन कह रहा है ॥ १९ ॥ जनस्थान में मेरे भाई जटायु तथा राक्षस का युद्ध किस प्रकार हुआ । अपने भ्राता जटायु का नाम आज बहुत दिन के बाद सुना है ॥ २० ॥ आप लोग मुझे इस पर्वत की गुफा से नीचे उतारें, यह मेरी इच्छा है । गुणवान्, श्लाघनीय अपने छोटे भाई जटायु के पराक्रम से ॥ २१ ॥ दीर्घकाल के पश्चात् उनके वर्णन से मैं प्रसन्न हूँ । हे श्रेष्ठ वनवासियो ! मैं अपने भ्राता जटायु की मृत्यु का समाचार सुनना चाहता हूँ ॥ २२ ॥ जनस्थान निवासी मेरे भाई जटायु तथा राजा दशरथ को मैत्री किस प्रकार हुई ॥ २३ ॥ गुरुजनों के प्रिय रामचन्द्र जिन (राजा दशरथ) के ज्येष्ठ पुत्र हैं (आद्योपान्त इन समाचारों को मैं सुनना चाहता हूँ) । तपश्चर्या के समय सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से संतप्त होने के कारण तथा वार्धक्य होने से मैं चल फिर नहीं सकता । इसलिए हे वीरो ! इस पर्वत से मैं उतरना चाहता हूँ ॥२४॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'संपाति का प्रश्न' विषयक छप्पनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५६ ॥

सत्तावनवां सर्ग

जटायु का वृत्तान्त कथन

भ्रातृवध के शोक से जिसका स्वर क्षीण हो गया है, ऐसे संपाति के शब्दों को सुनकर भी उनके कर्म तथा आकार प्रकार से शंकित वनवासियों ने उनके वचनों पर विश्वास नहीं किया ॥ १ ॥ प्रायो-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ते प्रायमुपविष्टास्तु दृष्ट्वा गृध्रं प्लवङ्गमाः । चक्रुर्बुद्धिं तदा रौद्रां सर्वान्नो भक्षयिष्यति ॥ २ ॥
सर्वथा प्रायमासीनान् यदि नो भक्षयिष्यति । कृतकृत्या भविष्यामः क्षिप्रं सिद्धिमतो गताः ॥ ३ ॥
एतां बुद्धिं ततश्चक्रुः सर्वे ते वानरर्षभाः । अवतार्य गिरेः शृङ्गाद्गृध्रमाहाङ्गदस्तदा ॥ ४ ॥
बभूवर्क्षरजा नाम वानरेन्द्रः प्रतापवान् । ममार्यः पार्थिवः पक्षिन् धार्मिकस्तस्य चात्मजौ ॥ ५ ॥
सुग्रीवश्चैव वाली च पुत्रावोघबलावुभौ । लोके विश्रुतकर्माभूद्राजा वाली पिता मम ॥ ६ ॥
राजा कृत्स्नस्य जगत इक्ष्वाकूणां महारथः । रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ ७ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया । पितुर्निदेशनिरतो धर्म्यं पन्थानमाश्रितः ॥ ८ ॥
तस्य भार्या जनस्थानाद्रावणेन हृता बलात् । रामस्य तु पितुर्मित्रं जटायुर्नाम गृध्रराट् ॥ ९ ॥
ददर्श सीतां वैदेहीं ह्रियमाणां विहायसा । रावणं विरथं कृत्वा स्थापयित्वा च मैथिलीम् ॥ १० ॥
परिश्रान्तश्च वृद्धश्च रावणेन हतो रणे । एवं गृध्रो हतस्तेन रावणेन बलीयसा ॥ ११ ॥
संस्कृतश्चापि रामेण गतश्च गतिमुत्तमाम् । ततो मम पितृव्येण सुग्रीवेण महात्मना ॥ १२ ॥
चकार राघवः सख्यं सोऽवधीत्पितरं मम । मम पित्रा विरुद्धो हि सुग्रीवः सचिवैः सह ॥ १३ ॥
निहत्य वालिनं रामस्ततस्तमभ्यषेचयत् । स राज्ये स्थापितस्तेन सुग्रीवो वानराधिपः ॥ १४ ॥
राजा वानरमुख्यानां येन प्रस्थापिता वयम् । एवं रामप्रयुक्तास्तु मार्गमाणास्ततस्ततः ॥ १५ ॥

पवेशन करने वाले उन सभी वनवासियां ने संपाति को देखकर उनके प्रति भयावह सम्मति प्रकट की और यह लोगों को अकाल कवलित कर देगा, ऐसा निश्चय किया ॥ २ ॥ प्रायोपवेशन करते हुए हम लोगों को यदि यह मार डालेगा, तो हम लोग अपने को कृतकृत्य समझेंगे क्योंकि हम लोगों को मरणरूपी सिद्धि शीघ्र ही प्राप्त हो जायेगी ॥ ३ ॥ इस प्रकार का निश्चय करके उन वनवासी वीरों ने संपाति को पर्वत की चोटी से नीचे उतारा। पश्चात् राजकुमार अंगद सम्पाति से बोले ॥ ४ ॥ हे तपस्विन्! ऋक्षरजा नामक वनवासियों के राजा प्रतापवान् मेरे पितामह थे। उनके धार्मिक दो पुत्र हुए ॥ ५ ॥ बाली तथा सुग्रीव, वे दोनों ही धन-बल में अप्रतिम थे। उन दोनों पुत्रों में जगत् प्रसिद्ध बाली राजा हुए जो मेरे पिता थे ॥ ६ ॥ इक्ष्वाकु वंश के महारथी, अखिल पृथ्वी के सम्राट्, दशरथ कुमार रामचन्द्र ने इस दण्डक वन में प्रवेश किया ॥ ७ ॥ अपनी भार्या जानकी तथा छोटे भाई लक्ष्मण के साथ, अपने पिता की आज्ञा से धर्म का आश्रय लेते हुए रामचन्द्र ने इस वन में प्रवेश किया ॥ ८ ॥ जनस्थान से रामचन्द्र की भार्या को रावण ने बलपूर्वक हरण किया। रामचन्द्र के पिता के मित्र भूतपूर्व गृध्रकूट के राजा जटायु थे ॥ ९ ॥ आकाश मार्ग से हरण की जाती हुई सीता को उन्होंने देखा। रावण के रथ को नष्ट करके जानकी को रथ से उतार लिया ॥ १० ॥ थके हुए तथा वृद्ध होने के कारण संग्राम में जटायु रावण के द्वारा मारे गये। इस प्रकार बलवान् रावण के द्वारा जटायु का वध हुआ ॥ ११ ॥ इस प्रकार रामचन्द्र के द्वारा अन्त्येष्टि संस्कार सम्पन्न होने पर यटायु ने सद्गति प्राप्त की। तत्पश्चात् मेरे चाचा महात्मा सुग्रीव ने ॥ १२ ॥ रामचन्द्र के साथ मैत्री की। पश्चात् रामचन्द्र ने मेरे पिता बाली का वध किया। मेरे पिता ने मन्त्रियों के साथ जिस सुग्रीव को अधिकार से च्युत कर दिया था ॥ १३ ॥ मेरे पिता वाली के वध के पश्चात् रामचन्द्र ने सुग्रीव को राजपद पर अभिषिक्त किया। रामचन्द्र के द्वारा 'राजपद पर सुग्रीव अभिषिक्त हुए ॥ १४ ॥ पश्चात् वनवासियों के राजा सुग्रीव के द्वारा सीता की खोज के लिये हम लोग भेजे गये। इस प्रकार राम की प्रेरणा से भेजे हुए हम लोग इस वन में जानकी की खोज कर रहे हैं ॥ १५ ॥ किन्तु अब तक रात्रि में जैसे सूर्य की किरणों का दर्शन नहीं होता उसी प्रकार हम लोग जानकी का दर्शन नहीं कर सके। इस प्रकार हम लोग सावधानी से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वैदेहीं नाधिगच्छामो रात्रौ सूर्यप्रभामिव । ते वयं दण्डकारण्यं विचित्य सुसमाहिताः ॥१६॥
अज्ञानात्तु प्रविष्टाः स्म धरण्या विवृतं विलम् । मयस्य मायाविहितं तद्बिलं च विचिन्वताम् ॥१७॥
व्यतीतस्तत्र नो मासो यो राज्ञा समयः कृतः । ते वयं कपिराजस्य सर्वे वचनकारिणः ॥१८॥
कृतां संस्थामतिक्रान्ता भयात्प्रायमुपास्महे । क्रुद्धे तस्मिंस्तु काकुत्स्थे सुग्रीवे च सलक्ष्मणे ॥१९॥
गतानामपि सर्वेषां तत्र नो नास्ति जीवितम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे जटायुर्दिष्टकथनं नाम सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः

सीताप्रवृत्त्युपलम्भः

इत्युक्तः करुणं वाक्यं वानरैस्त्यक्तजीवितैः । सबाष्पो वानरान् गृध्रः प्रत्युवाच महास्वनः ॥ १ ॥
यवीयान् मम स भ्राता जटायुर्नाम वानराः । यमाख्यात हतं युद्धे रावणेन बलीयसा ॥ २ ॥
वृद्धभावादपक्षत्वाच्छृण्वंस्तदपि मर्षये । न हि मे शक्तिरस्त्यद्य भ्रातुर्वैरविमोक्षणे ॥ ३ ॥

दण्डक वन को खोजते हुए ॥ १६ ॥ अज्ञानवश पृथ्वी की एक गुफा में प्रवेश कर गये । मय के द्वारा माया से निर्मित उस गुफा में खोजते हुए ॥ १७ ॥ हम लोगों का वह समय व्यतीत हो गया जिसकी अवधि राजा सुग्रीव ने दी थी । हम सभी राजा सुग्रीव के आज्ञाकारी ॥ १८ ॥ उनकी प्रतिज्ञा का अतिक्रमण कर गये । इसलिये हम सभी लोग प्रायोपवेशन कर रहे हैं । कार्य की सफलता न प्राप्त करने पर रामचन्द्र, राजा सुग्रीव तथा लक्ष्मण अत्यन्त क्रुद्ध हो जायेंगे । हम लोगों के राजधानी किष्किन्धा लौटने पर हमारा जीवन समाप्त ही है ॥ १९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'जटायु के वृत्तान्त का कथन' विषयक सत्तावनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवां सर्ग

सीता की प्रवृत्ति का ज्ञान

जीवन से निराश वनवासियों के इस करुणामय वाक्य को सुनकर, आँखों में आँसू भर कर तथा ऊँचे स्वर में संपाति वनवासियों से यह बोला ॥ १ ॥ हे वनवासियो ! संग्राम में बलवान् रावण के द्वारा जिस के मरने का वर्णन आप लोग कर रहे हैं, वह जटायु मेरा कनिष्ठ भ्राता था ॥ ३ ॥ वृद्ध होने तथा असहाय होने के कारण इस अप्रिय संवाद को सुनकर भी मैं सहन कर रहा हूँ । क्योंकि भाई के वैर प्रतिशोध की शक्ति मुझमें नहीं है ॥ ३ ॥ पहले वृत्रासुर वध के समय जय की इच्छा रखने वाले हम दोनों भाई जाज्वल्यमान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[पुरा वृत्रवधे वृत्ते स चाहं च जयैषिणौ । आदित्यमुपयातौ स्वो ज्वलन्तं रश्मिमालिनम् ॥ ४ ॥
आवृत्त्याकाशमार्गेण जवेन स्वर्गतौ भृशम् । मध्यं प्राप्ते दिनकरे जटायुरवसीदति ॥ ५ ॥
तमहं भ्रातरं दृष्ट्वा सूर्यरश्मिभिरर्दितम् । पक्षाभ्यां छादयामास स्नेहात्परमविह्वलम् ॥ ६ ॥
निर्दग्धपक्षः पतितो विन्ध्येऽहं वानरर्षभाः । अहमस्मिन् वसन् भ्रातुः प्रवृत्तिं नोपलक्षये ॥ ७ ॥]
जटायुषस्त्वेवमुक्तो भ्रात्रा संपातिना तदा । युवराजो महाप्राज्ञः प्रत्युवाचाङ्गदस्तदा ॥ ८ ॥
जटायुषो यदि भ्राता श्रुतं ते गदितं मया । आख्याहि यदि जानासि निलयं तस्य रक्षसः ॥ ९ ॥
अदीर्घदर्शिनं तं वै रावणं राक्षसाधमम् । अन्तिके यदि वा दूरे यदि जानासि शंस नः ॥१०॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा ज्येष्ठो भ्राता जटायुषः । आत्मानुरूपं वचनं वानरान् संप्रहर्षयन् ॥११॥
निर्दग्धपक्षो गृध्रोऽहं हीनवीर्यः प्लवङ्गमाः । वाङ्मात्रेण तु रामस्य करिष्ये साह्यमुत्तमम् ॥१२॥
जानामि वारुणाँल्लोकान् विष्णोस्त्रैविक्रमानपि । महासुरविमर्दान् वाप्यमृतस्य च मन्थनम् ॥१३॥
रामस्य यदिदं कार्यं कर्तव्यं प्रथमं मया । जरया च हृतं तेजः प्राणाश्च शिथिला मम ॥१४॥
तरुणी रूपसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता । ह्रियमाण मया दृष्टा रावणेन दुरात्मना ॥१५॥
क्रोशन्ती राम रामेति लक्ष्मणेति च भामिनी । भूषणान्यपविध्यन्ती गात्राणि च विधून्वती ॥१६॥
सूर्यप्रभेव शैलाग्रे तस्याः कौशेयमुत्तमम् । असिते राक्षसे भाति यथा वा तडिदम्बुदे ॥१७॥
तां तु सीतामहं मन्ये रामस्य परिकीर्तनात् । श्रूयतां मे कथयतो निलयं तस्य रक्षसः ॥१८॥

किरणों वाले सूर्य के समीप पहुँचे ॥ ४ ॥ आकाश का परिक्रमण करते हुए हम दोनों ही वेग से स्वर्गलोक को गये। बीच में सूर्य के समीप हो जाने से जटायु अति क्लान्त हो गया ॥ ५ ॥ सूर्य की किरणों से संतप्त अपने भाई जटायु को देखकर स्नेह के वशीभूत होकर अपने पक्षों से उसे ढाँप लिया ॥ ६ ॥ हे वनवासियो ! पक्ष के दग्ध हो जाने पर मैं उस विन्ध्य पर्वत की चोटी पर गिर पड़ा। तथा मेरा भाई जटायु कहाँ गया, इसका मुझे पता नहीं* ॥७॥ जटायु के भ्राता संपाति के इस प्रकार कहने पर महाबुद्धिमान् युवराज अंगद यह वचन बोले ॥ ८ ॥ आप जटायु के भाई हैं और हम लोगों की सम्पूर्ण बातों को आपने सुन लिया है। ऐसी अवस्था में यदि आप उस राक्षस के निवास स्थल को जानते हैं तो मुझे बताइये ॥ ९ ॥ अदूरदर्शी राक्षसों में अधम उस रावण को चाहे वह दूर हो या समीप, यदि जानते हो तो हम लोगों को बताइये ॥ १० ॥ अंगद के पूछने पर महातेजस्वी जटायु का ज्येष्ठ भ्राता संपाति वनवासियों को प्रसन्न करता हुआ अपने अनुरूप वचन बोला ॥ ११ ॥ हे वनवासियो ! मैं असहाय, शक्तिहीन गृध्रकूट का भूतपूर्व शासक हूँ। इस समय केवल वाणी मात्र से रामचन्द्र की सहायता कर सकता हूँ ॥ १२ ॥ मैं वरुण लोक को जानता हूँ, याज्ञिक तीन प्रक्रियायों को भी मैं जानता हूँ। देवासुर संग्राम तथा अमृत के मंथन को मैं जानता हूँ (अर्थात् इन सबकी जानकारी मुझे है) ॥ १३ ॥ यद्यपि जरावस्था के कारण मेरा सम्पूर्ण तेज नष्ट हो गया है तथा सम्पूर्ण प्राण और मेरा शरीर शिथिल हो गया है तो भी मैं रामचन्द्र का कार्य करूँगा। यह मेरा परम कर्त्तव्य है ॥ १४ ॥ दुष्ट रावण के द्वारा रूप लावण्य से सम्पन्न सर्व आभरणों से भूषित एक तरुणी को हरण करते हुए मैंने देखा ॥ १५ ॥ वह 'राम २' तथा 'लक्ष्मण २' इन शब्दों को कहती थी। अपने हाथ पैर को पटकती तथा आभूषों को इधर उधर फेंकती थी ॥ १६ ॥ पर्वत के ऊपरी भाग में सूर्य की प्रभा के समान उसके उत्तम रेशमी वस्त्र श्याम वर्ण वाले राक्षस के समीप इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे काले मेघ में विद्युत् ॥ १७ ॥ बार २ राम का नाम लेने से मैं उसे सीता ही समझता हूं। उस राक्षस का स्थान कहाँ है, इसको कहता हूं, ध्यान से सुनिये ॥ १८ ॥

* श्लोक ४—७ तक सृष्टि क्रम के विरुद्ध होने से प्रक्षिप्त हैं। देखें टि० सर्ग ५६ श्लोक ४—६।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुत्रो विश्रवसः साक्षाद्भ्राता वैश्रवणस्य च । अध्यास्ते नगरीं लङ्कां रावणो नाम राक्षसः ॥१९॥
इतो द्वीपे समुद्रस्य संपूर्णे शतयोजने । तस्मिँल्लङ्का पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ॥२०॥
जाम्बूनदमयैर्द्वारैश्चित्रैः काञ्चनवेदिकैः । प्रासादैर्मेघवर्णैश्च महद्भिः सुसमाकृता ॥२१॥
प्राकारेणार्कवर्णेन महता सुसमावृता । तस्यां वसति वैदेही दीना कौशेयवासिनी ॥२२॥
रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः समावृता । जनकस्यात्मजां राज्ञस्तत्र द्रक्ष्यथ मैथिलीम् ॥२३॥
ज्ञानेन खलु पश्यामि दृष्ट्वा प्रत्यागमिष्यथ । [आद्यः पन्थाः कुलिङ्गानां ये चान्ये धान्यजीविनः ॥२४॥
द्वितीयो बलिभोजानां ये च वृक्षफलाशिनः । भासास्तृतीयं गच्छन्ति क्रौञ्चाश्च कुररैः सह ॥२५॥
श्येनाश्चतुर्थं गच्छन्ति गृध्रा गच्छन्ति पञ्चमम् । बलवीर्योपपन्नानां रूपयौवनशालिनाम् ॥२६॥
षष्ठस्तु पन्था हंसानां वैनतेयगतिः परा । वैनतेयाच्च नो जन्म सर्वेषां वानरर्षभाः] ॥२७॥
प्रतीकार्यं च मे तस्य वैरं भ्रातुः कृतं भवेत् । गर्हितं तु कृतं कर्म येन स्म पिशिताशिना ॥२८॥
इहस्थोऽहं प्रपश्यामि रावणं जानकीं तथा । अस्माकमपि सौवर्णं दिव्यं चक्षुर्बलं तथा ॥२९॥
तस्मादाहारवीर्येण निसर्गेण च वानराः । आयोजनशतात्साग्राद्वयं पश्याम नित्यशः ॥३०॥
अस्माकं विहिता दृष्टिर्निसर्गेण च दूरतः । विहिता वृक्षमूले तु वृत्तिश्चरणयोधिनाम् ॥३१॥
उपायो दृश्यतां कश्चिल्लङ्घने लवणाम्भसः । अभिगम्य तु वैदेहीं समृद्धार्था गमिष्यथ ॥३२॥
समुद्रं नेतुमिच्छामि भवद्भिर्वरुणालयम् । प्रदास्याम्युदकं भ्रातुः स्वर्गतस्य महात्मनः ॥३३॥

विश्रवा का पुत्र, कुबेर का साक्षात् भाई, जिस राक्षस का नाम रावण है, वह लंका नगरी में रहता है ॥ १९ ॥ यहाँ से १०० योजन के पश्चात् समुद्र के द्वीप में विश्वकर्मा ने उस रमणीय लंका का निर्माण किया है ॥ २० ॥ उस लंका के द्वार कांचन के बने हुए हैं, वहाँ पथिकों के बैठने को वेदियाँ भी सोने की बनी हुई हैं और वहाँ के बड़े २ महल भी स्वर्णमय हैं ॥ २१ ॥ सोने की पीत वर्णवाली चहार दीवारी से वह लंका घिरी हुई है। उसी लंका में पीताम्बर धारिणी शोक संतप्ता सीता निवास कर रही है ॥ २२ ॥ रावण के राजमहल में बन्दी भूत, राक्षसियों से सुरक्षित, मिथिलेश जनक की राजकुमारी सीता को तुम लोग देख सकोगे ॥ २३ ॥ मैं ज्ञान नेत्रों से देखता हूँ कि तुम लोग जानकी को देखकर लौट आओगे। आकाश का प्रथम मार्ग कुलिङ्ग तथा शाकाहारी पक्षियों का है ॥ २४ ॥ आकाश का द्वितीय मार्ग कौओं तथा वृक्ष के फल फूल खाने वाले पक्षियों का है। उससे ऊपर तृतीय कक्षा में कुरर, क्रौंच तथा भास पक्षी जाते हैं ॥ २५ ॥ इससे ऊपर चतुर्थ मार्ग बाज पक्षियों का है तथा पाँचवें मार्ग से गृध्र जाते हैं। उससे ऊपर रूप यौवन से परिपूर्ण, बल वीर्य सम्पन्न ॥ २६ ॥ हंसों का छठा मार्ग है। हंसों से भी ऊपरी मार्ग गरुड़ का है। हे वनवासियो! हम लोगों का जन्म इसी गरुड़ कुल से है* ॥ २७ ॥ मांसाशी राक्षस ने सीता हरण का यह निन्दित कर्म किया है। मेरे भाई के बैर का बदला आप लोग ले सकते हैं ॥ २८ ॥ यहाँ से मैं जानकी तथा रावण को दिव्य दृष्टि से देख रहा हूँ। मेरी भी सूर्य के समान दिव्य शक्ति है तथा मेरी दिव्य दृष्टि है ॥ २९ ॥ भोजन आदि के संयम से तथा स्वाभाविक तपश्चर्या के द्वारा हे वनवासियो! मैं सौ योजन तथा इससे अधिक भी प्रतिदिन देखता हूँ ॥ ३० ॥ तपश्चर्या के कारण मेरी प्रत्येक वृत्ति (मन-वाणी-कर्म की गति) दूर अति दूर गामिनी होती है। तिर्यग्योनि में रहने वाले प्राणियों की गति (वृत्ति) वृक्षाश्रय ही है ॥ ३१ ॥ समुद्र से पार जाने का कोई उपाय सोचिये। वहाँ सीता का पता लगाकर आप लोग सफलमनोरथ होकर लौटें ॥ ३२ ॥ आप लोगों के द्वारा मैं अगाध जलराशि समुद्र के तट पर चलना चाहता हूँ। जटायु को मृत्यु का संवाद सुनकर मैं स्नान

* देखें टि० सर्ग ५६ श्लोक ४—६।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततो नीत्वा तु तं देशं तीरं नदनदीपतेः। निर्दग्धपक्षं संपातिं वानराः सुमहौजसः ॥३४॥
पुनस्तं प्रापयित्वा च तं देशं पतगेश्वरम्। बभूवुर्वानरा हृष्टाः प्रवृत्तिमुपलभ्य ते ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सीताप्रवृत्युपलम्भो नाम अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥५८॥

एकोनषष्टितमः सर्गः

सुपार्श्ववचनानुवादः

ततस्तदमृतास्वादं गृध्रराजेन भाषितम्। निशम्य वदता हृष्टास्ते वचः प्लवगर्षभाः ॥ १ ॥
जाम्बवान् वानरश्रेष्ठः सह सर्वैः प्लवङ्गमैः। भूतलात्सहसोत्थाय गृध्रराजमथाब्रवीत् ॥ २ ॥
क्व सीता केन वा दृष्टा को वा हरति मैथिलीम्। तदाख्यातु भवान् सर्वं गतिर्भव वनौकसाम् ॥ ३ ॥
को दाशरथिबाणानां वज्रवेगनिपातिनाम्। स्वयं लक्ष्मणमुक्तानां न चिन्तयति विक्रमम् ॥ ४ ॥
स हरीन् प्रीतिसंयुक्तान् सीताश्रुतिसमाहितान्। पुनराश्वासयन् प्रीत इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

करूँगा ॥ ३३ ॥ महान् पराक्रमी वे वनवासी शक्तिहीन उस संपाति को अगाध जलराशि वाले समुद्र के तट पर ले गये ॥ ३४ ॥ पश्चात् उन वनवासियों ने संपाति को उनके निवास स्थान पर पहुँचा दिया। संपाति के द्वारा सीता का समाचार जानकर वे सभी वनवासी अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ ३५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'सीता की प्रवृत्ति का ज्ञान' विषयक अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५८ ॥

उनसठवां सर्ग

सुपार्श्व के वचन का अनुकथन

वे सभी वनवासी अमृत के समान संपाति के उस भाषण को सुनकर अत्यन्त गद्गद हो गये तथा परस्पर उसी की चर्चा करने लगे ॥ १ ॥ वनवासियों में श्रेष्ठ जाम्बवान् अपने सभी सहायक वीरों के साथ भूमि से सहसा उठकर संपाति के समीप गये और उससे बोले ॥ २ ॥ सीता कहाँ है, मिथिलेश कुमारी का हरण किसने किया है, उसे किसने देखा है, आप इन सब बातों को विस्तारपूर्वक मुझसे कहें। इस समय वनवासियों के आप ही रक्षक होवें ॥ ३ ॥ दशरथ के राजकुमार राम और लक्ष्मण के वज्र के समान वेग वाले उन कर्कश बाणों को तथा उनके अप्रतिम पराक्रम को कौन नहीं स्मरण कर रहा है ॥ ४ ॥ सीता का समाचार सुनकर प्रसन्न हुए उन वनवासियों को आश्वासन देते हुए प्रसन्नतापूर्वक संपाति पुनः यह वचन बोले ॥ ५ ॥ सुनिये जानकी का जिस प्रकार हरण हुआ है जिसको मैंने सुना है, जिसने मुझसे यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रूयतामिह वैदेह्या यथा मे हरणं श्रुतम् । येन चापि ममाख्यातं यत्र वायतलोचना ॥ ६ ॥
अहमस्मिन् गिरौ दुर्गे बहुयोजनमायते । चिरान्निपतितो वृद्धः क्षीणप्राणपराक्रमः ॥ ७ ॥
तं मामेवंगतं पुत्रः सुपार्श्वो नाम नामतः । आहारेण यथाकालं बिभर्ति पततां वरः ॥ ८ ॥
[तीक्ष्णकामास्तु गन्धर्वास्तीक्ष्णकोपा भुजङ्गमाः । मृगाणां तु भयं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णक्षुधा वयम् ॥ ९ ॥
स कदाचित्क्षुधार्तस्य ममाहाराभिकाङ्क्षिणः । गतसूर्येऽहनि प्राप्तो मम पुत्रो ह्यनामिषः ॥१०॥
स मामाहारसंरोधात्पीडितं प्रीतिवर्धनः । अनुमान्य यथातत्त्वमिदं वचनमब्रवीत् ॥११॥
अहं तात यथाकालमामिषार्थी खमाप्लुतः । महेन्द्रस्य गिरेर्द्वारमावृत्य च समास्थितः ॥१२॥
ततः सत्त्वसहस्राणां सागरान्तरचारिणाम् । पन्थानमेकोऽध्यवसं संनिरोद्धुमवाङ्मुखः ॥१३॥
तत्र कश्चिन्मया दृष्टः सूर्योदयसमप्रभाम् । स्त्रियमादाय गच्छन् वै भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥१४॥
सोऽहमभ्यवहारार्थी तौ दृष्ट्वा कृतनिश्चयः । तेन साम्ना विनीतेन पन्थानमभियाचितः ॥१५॥
न हि सामोपपन्नानां प्रहर्ता विद्यते क्वचित् । नीचेष्वपि जनः कश्चित्किमङ्ग बत मद्विधः ॥१६॥
स यातस्तेजसा व्योम संक्षिपन्निव वेगितः । अथाहं खेचरैर्भूतैरभिगम्य सभाजितः ॥१७॥
दिष्ट्या जीवति सीतेति ह्यब्रुवन्मां महर्षयः । कथंचित्सकलत्रोऽसौ गतस्ते स्वस्त्यसंशयम् ॥१८॥
एवमुक्तस्ततोऽहं तैः सिद्धैः परमशोभनैः । स च मे रावणो राजा रक्षसां प्रतिवेदितः ॥१९॥
पश्यन् दाशरथेर्भार्यां रामस्य जनकात्मजाम् । भ्रष्टाभरणकोशेयां शोकवेगपराजिताम् ॥२०॥
रामलक्ष्मणयोर्नाम क्रोशन्तीं मुक्तमूर्धजाम् । एष कालात्ययस्तावदिति कालविदां वरः ॥२१॥

समाचार कहा है और जहाँ विशालनेत्रा सीता है, वह मैं कहता हूँ ॥ ६ ॥ अनेक योजन वाले इस विशाल दुर्गमनीय पर्वत पर मैं वृद्धावस्था में चिरकाल से पड़ा हूँ ॥ ७ ॥ इस अवस्था में मुझे रहते हुए गतिमानों में श्रेष्ठ सुपार्श्व नामक मेरा पुत्र समय २ पर आहार प्रदान द्वारा मेरा भरण पोषण करता है ॥ ८ ॥ गन्धर्व लोग बड़े कामी होते हैं, सर्प बड़े क्रोधी होते हैं, पशु सभी भीरु होते हैं और हम लोग बड़े भूखे होते हैं ॥ ९ ॥ एक बार मुझ भूखे के लिए आहार लाने की इच्छा से वह गया और सूर्यास्त के बाद विना मांस के वह लौटा ॥ १० ॥ क्षुधा से पीड़ित जब मैंने आहार में प्रतिबन्ध का कारण पूछा, तब वह क्षमा माँगकर यथार्थ वचन बोला ॥ ११ ॥ हे पिताजी ! आपके आहार आमिष लाने के लिए आकाश में उड़ा और महेन्द्र पर्वत के द्वार को घेर कर बैठ गया ॥ १२ ॥ समुद्र में रहने वाले हजारों प्राणियों को रोकने के लिये मैं मस्तक झुकाकर वहाँ बैठा रहा ॥ १३ ॥ वहाँ मैंने एक भयङ्कर काले पुरुष को बाल रवि के समान कान्ति वाली स्त्री को ले जाते हुए देखा ॥ १४ ॥ मैंने आपके आहार के लिये उन्हीं दोनों को लाने का विचार किया। उसने नम्रता पूर्वक मुझसे आगे बढ़ने की याचना की ॥ १५ ॥ हे तात ! नीच व्यक्तियों में भी कोई ऐसा नहीं है जो शान्ति पूर्वक व्यवहार करने वालों पर प्रहार करे, फिर मेरे जैसा व्यक्ति उस पर कैसे प्रहार कर सकता है ॥ १६ ॥ अपने तेज से आकाश को प्रकाशित करता हुआ शीघ्रतापूर्वक वह चला गया। तत्पश्चात् आकाश गामी सिद्धों ने मेरा अभिनन्दन किया ॥ १७ ॥ सौभाग्य से जानकी जीवित है, इस प्रकार महर्षियों ने मुझसे कहा। उस स्त्री के साथ वह पुरुष कुशल पूर्वक चला गया ॥ १८ ॥ इस प्रकार परम शोभनीय सिद्धों ने मुझसे कहा। वह राक्षसों का राजा रावण है, सिद्धों ने मुझसे यह भी कहा ॥ १९ ॥ शोकाक्रान्त, जिसके आभूषण सब गिर गये हैं जो पीताम्बर पहने हुए है ऐसी दशरथपुत्र रामचन्द्र की भार्या, जिसके केश खुले हुए हैं, जो बार २ रामलक्ष्मण का नाम ले रही है, उसी को देखते हुए हे समय को जानने वाले तात ! मुझे आने में इतना विलम्ब हो गया ॥ २०, २१ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतमर्थं समग्रं मे सुपार्श्वः प्रत्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वापि हि मे बुद्धिर्नासीत्काचित्पराक्रमे ॥२२॥
अपक्षोऽहं कथं पक्षी कर्म किंचिदुपक्रमे । यत्तु शक्यं मया कर्तुं वाग्बुद्धिगुणवर्तिना ॥२३॥]
श्रूयतां तत्प्रवक्ष्यामि भवतां पौरुषाश्रयम् । वाङ्मतिभ्यां तु सर्वेषां करिष्यामि प्रियं हि वः ॥२४॥
यद्धि दाशरथेः कार्यं मम तन्नात्र संशयः । ते भवन्तो मतिश्रेष्ठा बलवन्तो मनस्विनः ॥२५॥
प्रेषिताः कपिराजेन देवैरपि दुरासदाः । रामलक्ष्मणबाणाश्च निशिताः कङ्कपत्रिणः ॥२६॥
त्रयाणामपि लोकानां पर्याप्तास्त्राणनिग्रहे । कामं खलु दशग्रीवस्तेजोबलसमन्वितः ॥२७॥
भवतां तु समर्थानां न किंचिदपि दुष्करम् । तदलं कालसङ्गेन क्रियतां बुद्धिनिश्चयः ॥२८॥
न हि कर्मसु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सुपार्श्ववचनानुवादो नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥

षष्टितमः सर्गः

[संपातिपुरावृत्तवर्णनम्]

[ततः कृतोदकं स्नातं तं गृध्रं हरियूथपाः । उपविष्टा गिरौ रम्ये परिवार्य समन्ततः ॥ १ ॥

यह सारा वृत्तान्त सुपार्श्व ने मुझसे कहा, किन्तु यह सब सुनकर भी इसके प्रतिकार के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया ॥ २२ ॥ पक्षहीन अशक्त व्यक्ति कर ही क्या सकता है। केवल वाणी से सहायता करने वाला मुझ जैसा व्यक्ति जो कुछ सहायता कर सकता है, वह कहता हूँ † ॥ २३ ॥ पुरुषार्थ का आश्रय लेने वाले आप लोगों से मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे सुनिये। वाणी तथा बुद्धि के द्वारा मैं आप सब लोगों की सहायता करूँगा ॥ २४ ॥ रामचन्द्र का जो कार्य है, वह मेरा ही कार्य है, इसमें संशय नहीं। आप लोग भी बुद्धि सम्पन्न, बलवान् तथा स्वाभिमान के धनी हैं ॥ २५ ॥ आप लोग कपिराज सुग्रीव के भेजे हुए हैं। आपकी गति को देव लोग भी रोक नहीं सकते। कङ्कपत्रों से युक्त राम लक्ष्मण के ये अमोघ बाण ॥ २६ ॥ त्रिलोकी की रक्षा करने तथा उस राक्षस को दण्ड देने में समर्थ हैं। यह ठीक है कि रावण तेजस्वी और बलवान् है ॥ २७ ॥ तथा आप जैसे लोगों के लिये कोई कठिन नहीं। इसलिये अब विलम्ब करना उचित नहीं है, बुद्धि पूर्वक निश्चय करके कार्य में लग जाना चाहिये। आप जैसे बुद्धिमान् लोग कर्त्तव्य कर्मों में विलम्ब नहीं करते ॥ २८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'सुपार्श्व के वचन का अनुकथन' विषयक उनसठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५९ ॥

साठवां सर्ग

संपाति का पूर्ववृत्त कथन*

जलाञ्जलि तथा स्नान करने के पश्चात् उस रमणीय पर्वत पर संपाति को चारों ओर से घेर कर वनवासी बैठ गये ॥ १ ॥

† श्लोक ९—२३ तक प्रकरण तथा सृष्टिक्रम विरुद्ध होने से प्रक्षिप्त हैं। इस सम्बन्ध में देखें टि० सर्ग ५६ श्लोक ४—६।

* ६०—६३ तक ये तीनों सर्ग प्रक्षिप्त हैं। इन सर्गों में प्रकरण के विरुद्ध, असम्भव, इतिहास को दूषित करने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तमङ्गदमुपासीनं तैः सर्वैर्हरिभिर्वृतम् । जनितप्रत्ययो हर्षात्संपातिः पुनरब्रवीत् ॥ २ ॥
कृत्वा निःशब्दमेकाग्राः शृण्वन्तु हरयो मम । तथ्यं संकीर्तयिष्यामि यथा जानामि मैथिलीम्॥ ३ ॥
अस्य विन्ध्यस्य शिखरे पतितोऽस्मि पुरा ह्यहम्। सूर्यातपपरीताङ्गो निर्दग्धः सूर्यरश्मिभिः ॥ ४ ॥
लब्धसंज्ञस्तु षड्रात्राद्विवशो विह्वलन्निव । वीक्षमाणो दिशः सर्वा नाभिजानामि किंचन ॥ ५ ॥
ततस्तु सागराञ्शैलान्नदीः सर्वाः सरांसि च । वनानि च प्रदेशांश्च समीक्ष्य मतिरागमत् ॥ ६ ॥
हृष्टपक्षिगणाकीर्णः कन्दरान्तरकूटवान् । दक्षिणस्योदधेस्तीरे विन्ध्योऽयमिति निश्चितः॥ ७ ॥
आसीच्चात्राश्रमः पुण्यः सुरैरपि सुपूजितः । ऋषिर्निशाकरो नाम यस्मिन्नुग्रतपा भवत् ॥ ८ ॥
अष्टौ वर्षसहस्राणि तेनास्मिन्नृषिणा विना । वसतो मम धर्मज्ञाः स्वर्गते तु निशाकरे ॥ ९ ॥
अवतीर्य च विन्ध्याग्रात्कृच्छ्रेण विषमाच्छनैः । तीक्ष्णदर्भां वसुमतीं दुःखेन पुनरागतः ॥१०॥
तमृषिं द्रष्टुकामोऽस्मि दुःखेनाभ्यागतो भृशम् । जटायुषा मया चैव बहुशोऽधिगतो हि सः ॥११॥
तस्याश्रमपदाभ्याशे ववुर्वाताः सुगन्धिनः । वृक्षो नापुष्पितः कश्चिदफलो वा न विद्यते ॥१२॥
उपेत्य चाश्रमं पुण्यं वृक्षमूलमुपाश्रितः । द्रष्टुकामः प्रतीक्षेऽहं भगवन्तं निशाकरम् ॥१३॥
अथापश्यमदूरस्थमृषिं ज्वलिततेजसम् । कृताभिषेकं दुर्धर्षमुपावृत्तमुदङ्मुखम् ॥१४॥

वनवासियों के बीच में बैठे हुए अंगद से वह संपाति पुनः बोला क्योंकि उसे वनवासियों पर पूर्ण विश्वास हो गया था ॥ २ ॥ तूष्णी भाव से एकाग्रचित्त होकर हे वनवासियो ! मेरी बात को सुनो । जिस प्रकार जानकी को मैं जैसा जानता हूँ तथ्य रूप में कहता हूँ ॥ ३ ॥ हे निष्पाप अङ्गद ! सूर्य की रश्मियों से सन्तप्त तथा ताप से विकलाङ्ग होकर इस विन्ध्य पर्वत के शिखर पर मैं गिर पड़ा था ॥ ४ ॥ छः दिनों के पश्चात् जब मुझे होश आया, तब व्याकुल होकर प्रत्येक दिशा का देखने लगा । देखने पर भी किसी परिणाम पर न पहुँच सका ॥ ५ ॥ पश्चात् तत्स्थानीय सागर, पर्वत, नदियों, सरोवर, वनराजि तथा ग्रामों को देख कर मुझे कुछ परिज्ञान हुआ ॥ ६ ॥ गिरि कन्दराओं से परिपूर्ण, प्रसन्न पक्षिगणों से युक्त दक्षिण समुद्र के तट पर यह विन्ध्य पर्वत का शिखर है, ऐसा निश्चय किया ॥७॥ देवताओं से भी प्रशंसित एक पवित्र आश्रम था । उसमें कठिन तपश्चर्या करने वाले निशाकर नामक एक तपस्वी रहते थे ॥८॥ धर्मात्मा निशाकर के दिवंगत होने पर भी मुझे यहाँ निवास करते हुए आठ हजार वर्ष बीत गये ॥९॥ अत्यन्त कठिनता से शनैः शनैः उस विन्ध्य पर्वत के शिखर से उतर कर दुःखपूर्वक तीक्ष्ण कुश वाली पृथ्वी पर मैं पुनः आया ॥१०॥ उस ऋषि को देखने की इच्छा से ही मैं वहाँ पुनः आया । क्योंकि वे मुझसे तथा जटायु से कतिपय बार मिल चुके थे ॥ ११ ॥ उस आश्रम के समीप सुगन्धित वायु बह रहा था । और वहाँ पर कोई ऐसा वृक्ष न था जो फल फूल से युक्त न हो ॥१२॥ उस ऋषि के दर्शन की इच्छा से मैं उस आश्रम के समीप एक वृक्ष के नीचे बैठ गया ॥ १३ ॥ स्नान करके उत्तर की ओर आते हुए जाज्वल्यमान कान्ति वाले दुर्धर्ष उस ऋषि को मैंने दूर से ही देखा ॥ १४ ॥ ऋक्ष, चीता, व्याघ्र, सिंह तथा तिर्यग्गति वाले नाना

वाले कथानकों का प्रवेश है । जब इसी रामायण के अरण्य काण्ड के कई सर्गों में वर्णन आ चुका है कि सम्पाति तथा जटायु गृध्रकूट (गिद्धौर) राज्य के शासक रह चुके हैं, राज्य शासनकाल में अयोध्या के सम्राट् राजा दशरथ के साथ इनकी परम मित्रता थी । वृद्धावस्था में जटायु राज्य का शासन अपने उत्तराधिकारियों को सौंप कर दण्डक वन के पञ्चवटी स्थान में तपस्या करते थे । सीता हरण के समय करुणक्रन्दन को सुनकर जानकी के सहायतार्थ रावण के साथ द्वन्द्व युद्ध किया—इत्यादि वर्णन से यह स्पष्ट है कि ये दोनों भाई गृद्धादि कोई विहङ्गम या पक्षी नहीं थे । पुनः उसी बात का यहाँ प्रतिवाद कर अण्डज गृध्रपक्षी आदि सिद्ध करना वदतोव्याघात दोषपूर्ण है, अतः ये सर्ग तथा श्लोक प्रक्षिप्त हैं । (अर्थात् ये पुराणादि ग्रन्थों से लाकर यहाँ मिलाये गये हैं) इसके विषय में देखो किष्किन्धाकाण्ड के सर्ग ५६ के श्लोक ४ से ६ तक की टिप्पणी ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तमृक्षाः सृमरा व्याघ्राः सिंहा नागाः सरीसृपाः। परिवार्योपगच्छन्ति दातारं प्राणिनो यथा ॥१५॥
ततः प्राप्तमृषिं ज्ञात्वा तानि सत्त्वानि वै ययुः। प्रविष्टे राजनि यथा सर्वं सामात्यकं बलम् ॥१६॥
ऋषिस्तु दृष्ट्वा मां प्रीतः प्रविष्टश्चाश्रमं पुनः। मुहूर्तमात्रान्निष्क्रम्य ततः कार्यमपृच्छत ॥१७॥
सौम्य वैकल्यतां दृष्ट्वा रोम्णां ते नावगम्यते। अग्निदग्धाविमौ पक्षौ त्वक्चैव व्रणिता तव ॥१८॥
गृध्रौ द्वौ दृष्टपूर्वौ मे मातरिश्वसमौ जवे। गृध्राणां चैव राजानौ भ्रातरौ कामरूपिणौ ॥१९॥
ज्येष्ठो हि त्वं तु संपाते जटायुरनुजस्तव। मानुषं रूपमास्थाय गृह्णीतां चरणौ मम ॥२०॥
किं ते व्याधिसमुत्थानं पक्षयोः पतनं कथम्। दण्डो वायं कुतः केन सर्वमाख्याहि पृच्छतः ॥२१॥]

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे संपातिपुरावृत्तवर्णनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥६०॥

एकषष्टितमः सर्गः

[सूर्यानुगमनाख्यानम्]

[ततस्तद्दारुणं कर्म दुष्करं साहसात्कृतम्। आचचक्षे मुनेः सर्वं सूर्यानुगमनं तदा ॥ १ ॥

प्रकार के जन्तु उस ऋषि को चारों ओर से घेर कर इस प्रकार चल रहे थे, जैसे दाता के पीछे याचक लोग चलते हैं ॥१५॥ उस ऋषि के अपने आश्रम पर आ जाने पर वे सभी वनवासी प्राणी लौटकर इस प्रकार चले गये जैसे राजा के राजमहल में प्रविष्ट हो जाने पर मन्त्री तथा सैनिक लोग लौट जाते हैं ॥ १६ ॥ मुझको देखकर वे ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और वे आश्रम में प्रवेश कर गये। थोड़ी देर के पश्चात् निकल कर मुझसे कार्य आदि के विषय में पूछा ॥ १७ ॥ हे सौम्य ! रोग से तुम्हारी शारीरिक विकृति को देख कर तुम पहिचाने नहीं जा रहे हो। अग्नि से तुम्हारे दोनों पक्ष जल गये हैं तथा तुम्हारी त्वचा भी जली हुई दिखायी दे रही है ॥ १८ ॥ वायु के समान वेग वाले दो गृध्रों को मैंने देखा था जो स्वेच्छा से रूप परिवर्त्तन कर लेते थे और गृधों के राजा थे ॥ १९ ॥ हे संपाति ! तुम ज्येष्ठ हो। इसको मैं जानता हूँ और जटायु तुम्हारा छोटा भाई है। मनुष्य का रूप धारण करके तुम दोनों ने मेरे चरण को छूकर प्रणाम किया था ॥ २० ॥ तुमको यह कौन सी व्याधि हो गयी है, तुम्हारे पंखों का यह पतन कैसे हो गया है अथवा किसी ने तुमको दण्ड तो नहीं दिया है, मेरे प्रश्नों के उत्तर में तुम मुझे बताओ ॥ २१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'संपाति का पूर्ववृत्त कथन' विषयक साठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६० ॥

इकसठवाँ सर्ग

सूर्य के समीप जाने का वर्णन

मुनि के इस प्रकार प्रश्न करने पर बिना विचारे जो दारुण तथा दुष्कर कर्म मैंने किया था, उसका वर्णन किया, तथा सूर्य के अनुगमन की बात भी उनसे कही ॥ १ ॥ हे भगवन् ! अति क्षतविक्षत होने के कारण, तथा अविवेक पूर्ण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगवन् व्रणयुक्तत्वाल्लज्जया व्याकुलेन्द्रियः । परिश्रान्तो न शक्नोमि वचनं प्रतिभाषितुम् ॥ २ ॥
अहं चैव जटायुश्च सङ्घर्षाद्दर्पमोहितौ । आकाशं पतितौ वीरौ जिज्ञासन्तौ पराक्रमम् ॥ ३ ॥
कैलासशिखरे बद्ध्वा मुनीनामग्रतः पणम् । रविः स्यादनुयातव्यो यावदस्तं महागिरिम् ॥ ४ ॥
अथावां युगपत्प्राप्तावपश्याव महीतले । रथचक्रप्रमाणानि नगराणि पृथक्पृथक् ॥ ५ ॥
क्वचिद्वादित्रघोषांश्च क्वचिद् भूषणनिःस्वनः । गायन्तीश्चाङ्गना बह्वीः पश्यावो रक्तवाससः ॥ ६ ॥
तूर्णमुत्पत्य चाकाशमादित्यपथमाश्रितौ । आवामालोकयावस्तद्वनं शाद्वलसंस्थितम् ॥ ७ ॥
उपलैरिव संछन्ना दृश्यते भूः शिलोच्चयैः । आपगाभिश्च संवीता सूत्रैरिव वसुन्धरा ॥ ८ ॥
हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्च सुमहान्नगः । भूतले संप्रकाशन्ते नागा इव जलाशये ॥ ९ ॥
तीव्रः स्वेदश्च खेदश्च भयं चासीत्तदावयोः । समाविशति मोहश्च तमो मूर्छा च दारुणा ॥१०॥
न दिग्विज्ञायते याम्या नाग्नेयी न च वारुणी । युगान्ते नियतो लोको हतो दग्ध इवाग्निना ॥११॥
मनश्च मे हतं भूयः संनिवर्त्य तु संश्रयम् । यत्नेन महता ह्यस्मिन् पुनः संधाय चक्षुषी ॥१२॥
यत्नेन महता भूयो रविः समवलोकितः । तुल्यः पृथ्वीप्रमाणेन भास्करः प्रतिभाति नौ ॥१३॥
जटायुर्मामनापृच्छ्य निपपात महीं ततः । तं दृष्ट्वा तूर्णमाकाशादात्मानं मुक्तवानहम् ॥१४॥
पक्षाभ्यां च मया गुप्तो जटायुर्न प्रदह्यते । प्रमादात्तत्र निर्दग्धः पतन् वायुपथादहम् ॥१५॥
आशङ्के तं निपतितं जनस्थाने जटायुषम् । अहं तु पतितो विन्ध्ये दग्धपक्षो जडीकृतः ॥१६॥

कर्म करने से लज्जित होने के कारण मेरी इन्द्रियाँ चञ्चल हो गयी हैं, और मैं अत्यन्त थक गया हूँ, अतः मैं बोलने में भी असमर्थ हो रहा हूँ ॥ २ ॥ गर्वोन्मत्त मैं तथा जटायु विजय की आकाङ्क्षा से तथा अपने पराक्रम की जिज्ञासा से बहुत दूर तक आकाश में उड़े ॥ ३ ॥ कैलास पर्वत वासी मुनियों के समक्ष हम दोनों ने यह प्रतिज्ञा की कि अस्ताचल पर्वत तक हम दोनों सूर्य का पीछा करें ॥ ४ ॥ हम लोग एक साथ ही आकाश में पहुँचे, और वहाँ से भूमिगत नगरों को पृथक २ रथ के चक्र के समान देखा ॥ ५ ॥ कहीं बाजों की ध्वनि, कहीं नूपुरादि आभूषणों की ध्वनि, तथा कहीं रक्ताम्बरधारिणी बहुत सी स्त्रियों को गाते हुए देखा ॥ ६ ॥ बहुत शीघ्र ही हम दोनों आकाश में उड़कर सूर्य के पथ पर चले गये और वहाँ से हरी २ घासों से युक्त वन को देखा ॥७॥ पत्थर की शिलाओं से आच्छादित पृथ्वी दिखायी दे रही थी, सूत्रों के समान नदियों से वेष्टित भूमि प्रतीत हो रही थी ॥ ८ ॥ हिमवान्, विन्ध्य, तथा मेरु आदि महान् पर्वत पृथ्वी पर जलाशय में हाथियों के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ९ ॥ उस समय हम दोनों ही अत्यन्त स्वेद एवं क्लान्ति तथा भय से युक्त हो रहे थे, अत्यन्त श्रम के कारण संज्ञाहीनता, तथा दारुणमूर्च्छा भी आ गयी ॥ १० ॥ उस समय पूर्व, दक्षिण, पश्चिम दिशाएँ प्रतीत नहीं हो रही थीं, प्रलय के समय प्रलयाग्नि में जिनका जलना निश्चित है उन लोकों को अग्नि से दग्ध होते हुए देखा ॥ ११ ॥ सूर्य के सम्पर्क से मानसिक तथा नेत्र की शक्ति नष्ट हो गयी, प्रयत्न से मैंने किसी प्रकार मन तथा नेत्र को पुनः सूर्य में लगाया ॥ १२ ॥ पश्चात् अतिप्रयत्न करने पर सूर्य को हम दोनों ने देखा, उस समय सूर्य पृथ्वी के समान आकार वाला दिखाई दे रहा था ॥ १३ ॥ मेरा भाई जटायु बिना मेरी आज्ञा के ही पृथ्वी पर लौट आया, जटायु को इस प्रकार देखकर मैंने भी आकाश की यात्रा को स्थगित कर दिया ॥ १४ ॥ उड़ने के समय मैंने अपने पंखों से जटायु को आच्छादित कर लिया था, इसलिए उसके पंख दग्ध नहीं हुए, और असावधानी के कारण मैं विन्ध्य पर्वत की चोटी पर गिरा, उस समय मेरे पंख जल गये थे तथा मैं जडवत् हो गया ॥ १५-१६ ॥ राज्य, भ्राता जटायु, पंखों तथा पराक्रम से हीन मैं पर्वत शिखर से गिरकर आत्महत्या करना चाहता हूँ, ये सब बातें मैंने उस ऋषि से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राज्येन हीनो भ्रात्रा च पक्षाभ्यां विक्रमेण च । सर्वथा मर्तुमेवेच्छन् पतिष्ये शिखराद्गिरेः ॥१७॥]

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सूर्यानुगमनाख्यानं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥६१॥

द्विषष्टितमः सर्गः

[निशाकरभविष्याख्यानम्]

[एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठमरुदं दुःखितो भृशम् । अथ ध्यात्वा मुहूर्तं तु भगवानिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
पक्षौ च ते प्रपक्षौ च पुनरन्यौ भविष्यतः । प्राणाश्च चक्षुषी चैव विक्रमश्च बलं च ते ॥ २ ॥
पुराणे सुमहत्कार्यं भविष्यति मया श्रुतम् । दृष्टं मे तपसा चैव श्रुत्वा च विदितं मम ॥ ३ ॥
राजा दशरथो नाम कश्चिदिक्ष्वाकुनन्दनः । तस्य पुत्रो महातेजा रामो नाम भविष्यति ॥ ४ ॥
अरण्यं च सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन गमिष्यति । अस्मिन्नर्थे नियुक्तः सन् पित्रा सत्यपराक्रमः ॥ ५ ॥
नैर्ऋतो रावणो नाम तस्य भार्यां हरिष्यति । राक्षसेन्द्रो जनस्थानादवध्यः सुरदानवैः ॥ ६ ॥
सा च कामैः प्रलोभ्यन्ती भक्ष्यैर्भोज्यैश्च मैथिली । न भोक्ष्यति महाभागा दुःखे मग्ना यशस्विनी ॥ ७ ॥
परमान्नं तु वैदेह्या ज्ञात्वा दास्यति वासवः । यदन्नममृतप्रख्यं सुराणामपि दुर्लभम् ॥ ८ ॥
तदन्नं मैथिली प्राप्य विज्ञायेन्द्रादिदं त्विति । अग्रमुद्धृत्य रामाय भूतले निर्वपिष्यति ॥ ९ ॥
यदि जीवति मे भर्ता लक्ष्मणेन सह प्रभुः । देवत्वं गच्छतोर्वापि तयोरन्नमिदं त्विति ॥१०॥

कहा ॥ १७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'सूर्य के समीप जाने का वर्णन' विषयक इकसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६१ ॥

बासठवाँ सर्ग

निशाकर का भविष्य कथन

इस प्रकार अत्यन्त दुःखी होकर उस मुनि से मैंने सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा तथा अत्यन्त दुःखी होकर मैं रो पड़ा, तत्पश्चात् थोड़ी देर ध्यान कर वे महामुनि मुझसे बोले ॥१॥ तुम्हारे छोटे बड़े दोनों ही पङ्ख पुनः हो जायेंगे और नेत्र, प्राण, बल तथा शौर्य पुनः तुम्हें प्राप्त हो जायेगा ॥२॥ भविष्य में होनेवाले अनेकों कार्यों को पुराणों में मैंने सुना है, तपश्चर्या के द्वारा स्वयं देखा है तथा सुनकर भी जाना है ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकु कुल की वृद्धि करनेवाला, उस इक्ष्वाकु कुल में कोई दशरथ नाम का राजा होगा और उसके महातेजस्वी राम इस नाम के पुत्र होंगे ॥४॥ वे राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ वन में जायेंगे, क्योंकि वन में जाने के लिए सत्यपराक्रमी राम को अपने पिता से ही आज्ञा मिलेगी ॥५॥ देव दानव से अवध्य राक्षसराज रावण उनकी स्त्री का जनस्थान से अपहरण करेगा ॥६॥ यशस्विनी सीता को अनेकों प्रकार के ऐच्छिक भक्ष्य भोज्य आदि के द्वारा वह रावण प्रलोभन देगा । किन्तु दुःख में मग्न यशस्विनी सौभाग्यवती सीता उसका उपभोग नहीं करेगी ॥७॥ इस बात को जानकर कि सीता राक्षस का अन्न नहीं खायेगी इन्द्र वह पवित्र पायस सीता को प्रदान करेंगे, जो अमृत के समान होगा तथा जो देवताओं के लिये भी दुर्लभ है ॥८॥ यह अन्न इन्द्र के द्वारा भेजा गया है । सीता उसको स्वीकार करके उस अन्न का कुछ भाग रामचन्द्र के निमित्त पृथ्वी पर रखेगी ॥९॥ यदि मेरे पति रामचन्द्र तथा मेरे देवर लक्ष्मण जीवित हैं या देवगति को प्राप्त हो गये हों तो मेरा दिया हुआ यह अन्न उन दोनों को मिले ॥१०॥ हे विहङ्गम सम्पाति ! खोजनेवाले वनवासी रामचन्द्र के दूत यहाँ पर आवेंगे । उनको तुम रामचन्द्र की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एष्यन्त्यन्वेषकास्तस्या रामदूताः प्लवङ्गमाः । आख्येया राममहिषी त्वया तेभ्यो विहङ्गम ॥११॥
सर्वथा हि न गन्तव्यमीदृशः क्व गमिष्यसि । देशकालौ प्रतीक्षस्व पक्षौ त्वं प्रतिपत्स्यसे ॥१२॥
यदा प्रवृत्तिं तां सर्वामाख्यास्यसि विहङ्गम । तदैव पक्षौ वर्णश्च तव सर्वं भविष्यति ॥१३॥
नोत्सहेयमहं कर्तुमद्यैव त्वां सपक्षकम् । इहस्थस्त्वं तु लोकानां हितं कार्यं करिष्यसि ॥१४॥
त्वयापि खलु तत्कार्यं तयोश्च नृपपुत्रयोः । ब्राह्मणानां सुराणां च मुनीनां वासवस्य च ॥१५॥
इच्छाम्यहमपि द्रष्टुं भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । नेच्छे चिरं धारयितुं प्राणांस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥१६॥
महर्षिस्त्वब्रवीदेवं दृष्टतत्त्वार्थदर्शनः ॥]

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे निशाकरभविष्याख्यानं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥६२॥

त्रिषष्टितमः सर्गः

[संपातिपक्षप्ररोहः]

[एतैरन्यैश्च बहुभिर्वाक्यैर्वाक्यविदां वरः । मां प्रशस्याभ्यनुज्ञाप्य प्रविष्टः स स्वमाश्रमम् ॥ १ ॥
कन्दरात्तु विसर्पित्वा पर्वतस्य शनैः शनैः । अहं विन्ध्यं समारुह्य भवतः प्रतिपालये ॥ २ ॥
अद्य त्वेतस्य कालस्य साग्रं वर्षशतं गतम् । देशकालप्रतीक्षोऽस्मि हृदि कृत्वा मुनेर्वचः ॥ ३ ॥
महाप्रस्थानमासाद्य स्वर्गते तु निशाकरे । मां निर्दहति संतापो वितर्कैर्बहुभिर्वृतम् ॥ ४ ॥

धर्मपत्नी का पता बताना ॥११॥ तुम यहाँ से सर्वथा कहीं मत जाना, इस अवस्था में तुम जा ही कहाँ सकोगे। कुछ समय उस देश तथा काल की प्रतीक्षा करना। पश्चात् तुम्हें अपने पंख प्राप्त हो जायेंगे ॥१२॥ हे विहङ्गम ! जिस समय तुम सीता का समाचार वनवासी रामचन्द्र के दूतों को सुनाओगे, उसी समय तुम्हारे पंख और वह रूप तुम्हें प्राप्त हो जायेगा ॥१३॥ शक्ति होते हुए भी आज ही तुमको पंखों से युक्त करना नहीं चाहता। तुम यहीं पर रहकर जगत् का अधिक कल्याण कर सकोगे ॥१४॥ तुम भी उन दोनों राजकुमारों का वह काम करना। ब्राह्मणों का, देवताओं का मुनियों का तथा इन्द्र का काम भी तुम करना ॥१५॥ मैं भी उन दोनों भाई राम लक्ष्मण को देखना चाहता हूँ। किन्तु मैं अधिक समय तक प्राणों को धारण नहीं करना चाहता। शीघ्र ही इस कलेवर को छोड़ना चाहता हूँ। तत्त्ववेत्ता ऋषि ने यह सारी बातें इस प्रकार कहीं ॥ १६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'निशाकर का भविष्य कथन' विषयक बासठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६२॥

तिरसठवाँ सर्ग

सम्पाति के पंखों का उगना

वाणी विशारद महामुनि मुझे इस प्रकार की अनेकों बातों के द्वारा समझा बुझाकर तथा मुझसे आज्ञा लेकर अपने आश्रम में चले गये ॥१॥ उस पर्वतकन्दरा से शनैःशनैः चलकर तथा विन्ध्य पर्वत पर चढ़कर मैं आप लोगों की प्रतीक्षा करने लगा ॥२॥ आज मुनि के कहे हुए उन वचनों को सौ वर्ष से भी अधिक हो गया। मैं उनकी बातों को हृदय में धारणकर उस देश तथा समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ ॥३॥ इस प्रकार महामुनि निशाकर के महाप्रस्थान पूर्वक स्वर्ग में चले जाने पर नाना प्रकार के तर्क-वितर्कयुक्त सन्ताप मेरे हृदय को जला रहे हैं ॥४॥ मैं मरने के लिए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्थितां मरणे बुद्धिं मुनिवाक्यैर्निवर्तये । बुद्धिर्या तेन मे दत्ता प्राणानां रक्षणाय तु ॥ ५ ॥
सा मेऽपनयते दुःखं दीप्तेवाग्निशिखा तमः । बुद्ध्यता च मया वीर्यं रावणस्य दुरात्मनः ॥ ६ ॥
पुत्रः संतर्जितो वाग्भिर्न त्राता मैथिली कथम् । तस्या विलपितं श्रुत्वा तौ च सीताविनाकृतौ ॥ ७ ॥
न मे दशरथस्नेहात्पुत्रेणोत्पादितं प्रियम् । तस्य त्वेवं ब्रुवाणस्य संपातेर्वानरैः सह ॥ ८ ॥
उत्पेततुस्तदा पक्षौ समक्षं वनचारिणाम् । स दृष्ट्वा स्वां तनुं पक्षैरुद्गतैररुणच्छदैः ॥ ९ ॥
प्रहर्षमतुलं लेभे वानरांश्चेदमब्रवीत् । ऋषेर्निशाकरस्यैव प्रभावादमितात्मनः ॥१०॥
आदित्यरश्मिनिर्दग्धौ पक्षौ मे पुनरुत्थितौ । यौवने वर्तमानस्य ममासीद्यः पराक्रमः ॥११॥
तमेवाद्यानुगच्छामि बलं पौरुषमेव च । सर्वथा क्रियतां यत्नः सीतामधिगमिष्यथ ॥१२॥
पक्षलाभो ममायं वः सिद्धिप्रत्ययकारकः । इत्युक्त्वा स हरीन् सर्वान् संपातिः पतगोत्तमः ॥१३॥
उत्पपात गिरेः शृङ्गाज्जिज्ञासुः खगमां गतिम् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतिसंहृष्टमानसाः ॥१४॥
बभूवुर्हरिशार्दूला विक्रमाभ्युदयोन्मुखाः ॥]

अथ पवनसमानविक्रमाः प्लवगवराः प्रतिलब्धपौरुषाः ।
अभिजिदभिमुखा दिशं ययुर्जनकसुताम् परिमार्गणोन्मुखाः ॥१५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे संपातिपक्षप्ररोहो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥६३॥

उद्यत हो गया था, मुनि के वाक्य से मैं रुक गया। प्राणों की रक्षा में उस महामुनि ने जो मुझे बुद्धि दी उससे मेरा दुःख इस प्रकार दूर हो गया जिस प्रकार अग्नि के प्रकाश से अन्धकार दूर हो जाता है। दुरात्मा रावण के पराक्रम को जानते हुए ॥५,६॥ मैंने अपने पुत्र की वाणी द्वारा अनेकों प्रकार भर्त्सना की और यह कहा कि तुमने सीता की रक्षा क्यों नहीं की। सीता के इस विलाप को सुनकर और राम लक्ष्मण दोनों भाई सीता से विरहित हो गये हैं यह जानकर भी ॥७॥ मेरे पुत्र ने राजा दशरथ के प्रति जो मेरा स्नेह था उसके अनुरूप कार्य नहीं किया। उस सम्पाति के वनवासियों के साथ इस प्रकार बात करते हुए ॥८॥ वनवासी रामचन्द्र के दूतों के समक्ष ही उसके दोनों पंख निकल आये। लाल रंग के उत्पन्न हुए उन पंखों से युक्त अपने शरीर को देखकर ॥ ९ ॥ वह सम्पाति अत्यन्त प्रसन्न हुआ और वनवासियों से इस प्रकार बोला। अमित ओज वाले राजर्षि निशाकर की कृपा से ॥१०॥ सूर्य की किरणों से दग्ध मेरे पंख पुनः निकल आये और युवावस्था में जो मेरा बल पराक्रम था ॥११॥ उसी बल और पौरुष को मैं आज भी अनुभव कर रहा हूँ। आप लोग पूर्ण रूप से प्रयत्न कीजिए, सीता को आप लोग अवश्य पा लेंगे ॥१२॥ मेरे पंखों का पुनः उगना ही एक प्रकार से कार्यसिद्धि का विश्वास दिलाना है। पक्षिश्रेष्ठ वह सम्पाति उन वनवासियों से ऐसा कहकर ॥१३॥ आकाश की गति की जिज्ञासा करता हुआ उस पर्वत शिखर से उड़ा। सम्पाति की पूर्वोक्त बातों को सुनकर वे सभी वनवासी सैनिक अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा सीतान्वेषण के कार्य के लिए पुनः उद्यत हो गये ॥१४॥ पवन के समान पराक्रम वाले, जानकी की खोज करने के व्रती, पराक्रम तथा प्रतिष्ठा लब्ध उन वनवासियों ने रामचन्द्र की विजय की आशा से परिपूर्ण दक्षिण दिशा को प्रस्थान किया ॥१५॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'सम्पाति के पंखों का उगना' विषयक तिरसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६३॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुःषष्टितमः सर्गः

समुद्रलङ्घनमन्त्रणम्

आख्याता गृध्रराजेन समुत्पत्य प्लवङ्गमाः । संगम्य प्रीतिसंयुक्ता विनेदुः सिंहविक्रमाः ॥ १ ॥
संपातेर्वचनं श्रुत्वा हरयो रावणक्षयम् । हृष्टाः सागरमाजग्मुः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः ॥ २ ॥
अभिक्रम्य तु तं देशं ददृशुर्भीमविक्रमाः । कृत्स्नं लोकस्य महतः प्रतिबिम्बमिव स्थितम् ॥ ३ ॥
दक्षिणस्य समुद्रस्य समासाद्योत्तरां दिशम् । संनिवेशं ततश्चक्रुः सहिता वानरोत्तमाः ॥ ४ ॥
प्रसुप्तमिव चान्यत्र क्रीडन्तमिव चान्यतः । क्वचित्पर्वतमात्रैश्च जलराशिभिरावृतम् ॥ ५ ॥
संकुलं दानवेन्द्रैश्च पातालतलवासिभिः । रोमहर्षकरं दृष्ट्वा विषेदुः कपिकुञ्जराः ॥ ६ ॥
आकाशमिव दुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः । विषेदुः सहसा सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन् ॥ ७ ॥
विषण्णां वाहिनीं दृष्ट्वा सागरस्य निरीक्षणात् । आश्वासयामास हरीन् भयार्तान् हरिसत्तमः ॥ ८ ॥
तान् विषादेन महता विषण्णान् वानरर्षभान् । उवाच मतिमान् काले वालिसूनुर्महाबलः ॥ ९ ॥
न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तमः । विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः ॥१०॥
विषादोऽयं प्रसहते विक्रमे पर्युपस्थिते । तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिध्यति ॥११॥
इति ब्रुवति तस्मिंस्तु वालिपुत्रे महामतौ । आदित्योऽस्तं गतस्तत्र रजनी चाभ्यवर्तत ॥१२॥

चौंसठवाँ सर्ग

समुद्र के पार जाने का विचार

गृध्रकूट के भूतपूर्व राजर्षि सम्पाति के इस प्रकार कहने पर, सिंह के समान पराक्रमवाले वे सभी वनवासी सैनिक एकत्र होकर प्रसन्नता पूर्वक नाद करते हुए कूद २ कर नृत्य करने लगे ॥ १ ॥ रावण के निवास विषयक सम्पाति के वचनों को सुनकर, सीता के दर्शन की आकाङ्क्षा रखने वाले वे सभी वनवासी सैनिक प्रसन्न होकर समुद्र के तट पर चले आये ॥ २ ॥ समुद्र के तट पर आकर भीषण पराक्रम करने वाले सभी वनवासी सैनिकों ने सम्पूर्ण लोक के प्रतिबिम्ब के समान उस स्थल को देखा ॥ ३ ॥ महाबली उन सभी वनवासी वीरों ने दक्षिण समुद्र के उत्तरी तट पर अपना डेरा डाल दिया ॥ ४ ॥ कहीं शान्त मुद्रा में सोते हुए के समान, कहीं क्रीडा करते हुए के समान, कहीं विशालकाय पर्वत के समान, जलराशि से परिपूर्ण ॥ ५ ॥ जलराशि के अन्तर्गर्भ में निवास करने वाले विशालकाय जलजन्तुओं से परिपूर्ण, रोम को खड़े करने वाले, भयंकर समुद्र को देखकर वे सभी वनवासी वीर अत्यन्त दुःखी हो गये ॥ ६ ॥ आकाश के समान विशालकाय उस दुर्गमनीय समुद्र को देखकर वे सभी वनवासी वीर बहुत दुःखी हुए और परस्पर मिलकर यह विचार करने लगे कि आगे कार्य कैसे किया जावे ॥ ७ ॥ समुद्र को देखकर डरी हुई उस वनवासी सेना को देखते हुए राजकुमार अङ्गद ने उन सभी को आश्वासन दिया ॥ ८ ॥ अत्यन्त विषाद से परिपूर्ण उन वनवासी वीरों को देखकर उस समय बुद्धिमान् महाबली बालिपुत्र अङ्गद बोले ॥ ९ ॥ आप लोगों को मन में विषाद नहीं करना चाहिए, विषाद अनेक महान् दोषों से परिपूर्ण होता है। जैसे क्रुद्ध सर्प बालकों को नष्ट कर देता है, वैसे ही विषाद पुरुषों को नष्ट कर देता है ॥ १० ॥ उद्योग करने के समय जो व्यक्ति विषाद करता है, उस तेजहीन पुरुष का पुरुषार्थ कभी सिद्ध नहीं होता ॥ ११ ॥ महामति बालिपुत्र अङ्गद के ऐसा कहते हुए अंशुमाली सूर्य देव अस्त हो गये, तथा रात्रि आकर उपस्थित हो गयी ॥ १२ ॥ पश्चात् उस रात्रि के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामङ्गदो वानरैः सह । हरिवृद्धैः समागम्य पुनर्मन्त्रममन्त्रयत् ॥१३॥
सा वानराणां ध्वजिनी परिवार्याङ्गदं बभौ । वासवं परिवार्येव मरुतां वाहिनी स्थिता ॥१४॥
कोऽन्यस्तां वानरीं सेनां शक्तः स्तम्भयितुं भवेत् । अन्यत्र वालितनयादन्यत्र च हनूमतः ॥१५॥
ततस्तान् हरिवृद्धांश्च तच्च सैन्यमरिंदमः । अनुमान्याङ्गदः श्रीमान् वाक्यमर्थवदब्रवीत् ॥१६॥
क इदानीं महातेजा लङ्घयिष्यति सागरम् । कः करिष्यति सुग्रीवं सत्यसन्धमरिंदमम् ॥१७॥
को वीरो योजनशतं लङ्घयेच्च प्लवङ्गमाः । इमांश्च यूथपान् सर्वान् मोक्षयेत्को महाभयात् ॥१८॥
कस्य प्रभावाद्दारांश्च पुत्रांश्चैव गृहाणि च । इतो निवृत्ताः पश्येम सिद्धार्थाः सुखिनो वयम् ॥१९॥
कस्य प्रसादाद्रामं च लक्ष्मणं च महाबलम् । अभिगच्छेम संहृष्टाः सुग्रीवं च महाबलम् ॥२०॥
यदि कश्चित्समर्थो वः सागरप्लवने हरिः । स ददात्विह नः शीघ्रं पुण्यामभयदक्षिणाम् ॥२१॥
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा न कश्चित्किंचिदब्रवीत् । स्तिमितेवाभवत्सर्वा तत्र सा हरिवाहिनी ॥२२॥
पुनरेवाङ्गदः प्राह तान् हरीन् हरिसत्तमः । सर्वे बलवतां श्रेष्ठा भवन्तो दृढविक्रमाः ॥२३॥
व्यपदेश्यकुले जाताः पूजिताश्चाप्यभीक्ष्णशः । न हि वो गमने सङ्गः कदाचित्कस्यचित्क्वचित् ॥२४॥
ब्रुवध्वं यस्य या शक्तिः प्लवने प्लवगर्षभाः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे समुद्रलङ्घनमन्त्रणं नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥६४॥

अवसान पर राजकुमार अङ्गद उन वयोवृद्ध वनवासियों के साथ मिलकर पुनः विचार करने लगे ॥ १३ ॥ अङ्गद को चारों ओर से घेरकर वह वनवासियों की सेना इस प्रकार शोभित होने लगी जिस प्रकार देव सेना इन्द्र को घेरकर शोभा को प्राप्त हुई थी ॥ १४ ॥ राजकुमार वालिपुत्र अङ्गद तथा महाबली हनुमान् को छोड़कर दूसरा कौन उस विशाल वनवासी सेना को अपने वश में कर सकता है ॥ १५ ॥ पश्चात् उन वयोवृद्ध सेनापतियों का सम्मान करते हुए अरिमर्दन श्रीमान् अङ्गद अर्थ परिपूर्ण यह वचन बोले ॥ १६ ॥ इस समय कौन महातेजस्वी इस समुद्र को पार करेगा तथा अरिमर्दन सुग्रीव को कौन सत्यव्रती बनावेगा ॥ १७ ॥ वनवासियों में कौन ऐसा वीर है जो सौ योजन समुद्र को पार करेगा तथा इस महान् संकट से इन वनवासी सेनापतियों को कौन मुक्त करेगा ॥ १८ ॥ सफल मनोरथ सुख पूर्वक यहाँ से लौट कर किसकी कृपा से हम लोग अपने स्त्री पुत्र और गृहों को पुनः देखेंगे ॥ १९ ॥ किसकी कृपा से प्रसन्नता पूर्वक हम सभी वनवासी लोग महाबली रामचन्द्र, लक्ष्मण तथा वनवासी राजा सुग्रीव के समीप जा सकेंगे ॥ २० ॥ यदि आप लोगों में कोई वनवासी वीर समुद्र को पार करने की क्षमता रखता है तो वह शीघ्र ही हम लोगों को अपनी पवित्र अभय दक्षिणा प्रदान करे ॥ २१ ॥ अङ्गद की इन बातों को सुन कर वहाँ कोई किसी प्रकार भी कुछ नहीं बोला। सम्पूर्ण वनवासी सेना में सन्नाटा छा गया ॥ २२ ॥ ऐसी अवस्था में वनवासी वीर अङ्गद उन अपने वनवासी सैनिकों से पुनः बोले। आप सभी लोग बलवानों में श्रेष्ठ तथा दृढ़ पराक्रमी हैं ॥ २३ ॥ उत्तमकुल में उत्पन्न तथा अनेकों बार वीरतापूर्ण ख्याति को प्राप्त किया है। इसलिए आप जैसे योग्य व्यक्तियों में किसी को भी पार जाने में किसी प्रकार का भी अवरोध नहीं होगा। हे वनवासी वीरो! ऐसी अवस्था में समुद्र पार जाने में जिसकी जितनी शक्ति हो उसको आप लोग प्रकट करें ॥ २४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'समुद्र के पार जाने का विचार' विषयक चौंसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६४ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्चषष्टितमः सर्गः

बलेयत्ताविष्करणम्

ततोऽङ्गदवचः श्रुत्वा सर्वे ते वानरोत्तमाः । स्वं स्वं गतौ समुत्साहमाहुस्तत्र यथाक्रमम् ॥ १ ॥
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः । मैन्दश्च द्विविदश्चैव सुषेणो जाम्बवांस्तथा ॥ २ ॥
आबभाषे गजस्तत्र प्लवेयं दशयोजनम् । गवाक्षो योजनान्याह गमिष्यामीति विंशतिम् ॥ ३ ॥
गवयो वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह । त्रिंशतं तु गमिष्यामि योजनानां प्लवङ्गमाः ॥ ४ ॥
शरभस्तानुवाचाथ वानरान् वानरर्षभः । चत्वारिंशद्गमिष्यामि योजनानां प्लवङ्गमाः ॥ ५ ॥
वानरांस्तु महातेजा अब्रवीद्गन्धमादनः । योजनानां गमिष्यामि पञ्चाशत्तु न संशयः ॥ ६ ॥
मैन्दस्तु वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह । योजनानां परं षष्टिमहं प्लवितुमुत्सहे ॥ ७ ॥
ततस्तत्र महातेजा द्विविदः प्रत्यभाषत । गमिष्यामि न संदेहः सप्ततिं योजनान्यहम् ॥ ८ ॥
सुषेणस्तु हरिश्रेष्ठः प्रोक्तवान् कपिसत्तमान् । अशीतिं योजनानां तु प्लवेयं प्लवगेश्वराः ॥ ९ ॥
तेषां कथयतां तत्र सर्वांस्ताननुमान्य च । ततो वृद्धतमस्तेषां जाम्बवान् प्रत्यभाषत ॥१०॥
पूर्वमस्माकमप्यासीत्कश्चिद्गतिपराक्रमः । ते वयं वयसः पारमनुप्राप्ताः स्म सांप्रतम् ॥११॥
किं तु नैवं गते शक्यमिदं कार्यमुपेक्षितुम् । यदर्थं कपिराजश्च रामश्च कृतनिश्चयौ ॥१२॥
सांप्रतं कालभेदेन या गतिस्तां निबोधत । नवतिं योजनानां तु गमिष्यामि न संशयः ॥१३॥

पैंसठवाँ सर्ग

शक्ति की मात्रा का प्रकाशन

अङ्गद की इन बातों को सुनकर वे सभी श्रेष्ठ वनवासी सैनिक अपने २ गमन के विषय में उत्साह पूर्वक वर्णन करने लगे ॥ १ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, सुषेण तथा महामति जाम्बवान् इन लोगों ने अपनी २ शक्ति का परिचय दिया ॥ २ ॥ सेनापति गजने कहा कि मैं समुद्र में दश योजन तैर सकता हूँ। गवाक्ष ने कहा, मैं बीस योजन तैर सकता हूँ ॥ ३ ॥ गवय नामक सेनापति ने उन वनवासी सैनिकों से कहा, हे वीरो ! मैं समुद्र में तीस योजन तैर सकता हूँ ॥ ४ ॥ शरभ नामक सेनापति ने सैनिकों के बीच में यह कहा कि मैं समुद्र में चालीस योजन तक तैर सकता हूँ, इसमें कोई संशय नहीं ॥ ५ ॥ महातेजस्वी गन्धमादन ने उन सैनिकों से कहा कि मैं पचास योजन जाऊँगा, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ६ ॥ मैन्द नामक सेनापति ने उन सैनिकों से कहा कि मैं समुद्र में साठ योजन जाने की क्षमता रखता हूँ ॥ ७ ॥ तत्पश्चात् महातेजस्वी द्विविद सेनापति ने यह कहा कि मैं समुद्र में निस्सन्देह सत्तर योजन तक जा सकता हूँ ॥८॥ महातेजस्वी वनवासियों में श्रेष्ठ धैर्यशाली सुषेण ने कहा कि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि समुद्र में अस्सी योजन तक जा सकता हूँ ॥ ९ ॥ कहने वाले उन सभी वनवासी सैनिकों का सम्मान करते हुए अत्यन्त वयोवृद्ध महामति जाम्बवान् सब के समक्ष यह बोले ॥१०॥ पहले मेरा पराक्रम तथा मेरी गतिविधि भी उसी प्रकार युवावस्था परिपूर्ण थी, किन्तु मैं आज उस अवस्था को पारकर वयोवृद्ध हो चुका हूँ ॥ ११ ॥ किन्तु इस अवस्था के आने पर भी इस महान् कार्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। जिसका कि वनवासी सम्राट् राजा सुग्रीव ने तथा मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र ने निश्चय किया है। अर्थात् यह कार्य तो प्रत्येक अवस्था में करना ही पड़ेगा ॥ १२ ॥ इस समय भी जो मेरे पराक्रम की गति है उसको आप लोग ध्यान से सुनिये। इस वृद्धावस्था में भी मैं समुद्र सन्तरण में नब्बे योजन जाऊँगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ उन श्रेष्ठ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तांस्तु सर्वान् हरिश्रेष्ठाञ्जाम्बवान् पुनरब्रवीत् । न खल्वेतावदेवासीद्गमने मे पराक्रमः ॥१४॥
[मया महाबलेश्चैव यज्ञे विष्णुः सनातनः । प्रदक्षिणीकृतः पूर्वं क्रममाणस्त्रिविक्रमम् ॥१५॥]
स इदानीमहं वृद्धः प्लवने मन्दविक्रमः । यौवने च तदासीन्मे बलमप्रतिमं परैः ॥१६॥
संप्रत्येतावतीं शक्तिं गमने तर्कयाम्यहम् । नैतावता च संसिद्धिः कार्यस्यास्य भविष्यति ॥१७॥
अथोत्तरमुदारार्थमब्रवीदङ्गदस्तदा । अनुमान्य महाप्राज्ञं जाम्बवन्तं महाकपिः ॥१८॥
अहमेतद्गमिष्यामि योजनानां शतं महत् । निवर्तने तु मे शक्तिः स्यान्न वेति न निश्चिता ॥१९॥
तमुवाच हरिश्रेष्ठं जाम्बवान् वाक्यकोविदः । ज्ञायते गमने शक्तिस्तव हर्यृक्षसत्तम ॥२०॥
कामं शतं सहस्रं वा न ह्येष विधिरुच्यते । योजनानां भवाञ्शक्तो गन्तुं प्रतिनिवर्तितुम् ॥२१॥
न हि प्रेषयिता तात स्वामी प्रेष्यः कथंचन । भवतायं जनः सर्वः प्रेष्यः प्लवगसत्तम ॥२२॥
भवान् कलत्रमस्माकं स्वामिभावे व्यवस्थितः । स्वामी कलत्रं सैन्यस्य गतिरेषा परंतप ॥२३॥
तस्मात्कलत्रवत्तात प्रतिपाल्यः सदा भवान् । अपि चैतस्य कार्यस्य भवान् मूलमरिंदम ॥२४॥
मूलमर्थस्य संरक्ष्यमेष कार्यविदां नयः । मूले हि सति सिध्यन्ति गुणाः सर्वे फलोदयाः ॥२५॥
तद्भवानस्य कार्यस्य साधनं सत्यविक्रम । बुद्धिविक्रमसंपन्नो हेतुरत्र परंतप ॥२६॥
गुरुश्च गुरुपुत्रश्च त्वं हि नः कपिसत्तम । भवन्तमाश्रित्य वयं समर्था ह्यर्थसाधने ॥२७॥

वनवासी सेनापतियों से जाम्बवान् ने यह कहा कि पहले मेरी गति तथा पराक्रम इतना ही नहीं था, अपितु इस से अधिक था ॥ १४ ॥ विरोचन पुत्र बलि के यज्ञ में वर्धमान सनातन विष्णु के तीन पग भूमि माप के समय मैंने प्रदक्षिण की थी ॥ १५ ॥ इस समय मैं बिलकुल वृद्ध हो गया हूँ, समुद्र के सन्तरण में मेरी गति शिथिल हो गयी है, युवावस्था में मेरा बल तथा पराक्रम अप्रतिम था ॥ १६ ॥ इस समय तो गमनागमन में मेरी इतनी ही शक्ति है। किन्तु इससे तो यह कार्य कभी भी सिद्ध नहीं होगा ॥ १७ ॥ इस बात को सुनकर महामति अङ्गद माननीय जाम्बवान् का सम्मान करते हुए अर्थपूर्ण यह वचन बोले ॥ १८ ॥ मैं इस सौ योजन समुद्र का सन्तरण कर सकता हूँ। किन्तु लौटने में मैं समर्थ हो सकूँगा या नहीं, इसमें सन्देह है ॥ १९ ॥ वाक्यविशारद जाम्बवान् वनवासियों में श्रेष्ठ अङ्गद से इस प्रकार बोले—हे वनवासियों के शिरोमणि ! आपकी अनुपम शक्ति को हम लोग जानते हैं ॥२०॥ आप निश्चय ही सौ योजन या इससे अधिक भी जा सकते हैं तथा लौट सकते हैं। किन्तु आप जैसे व्यक्ति के लिए यह क्रिया कलाप किसी प्रकार भी उचित प्रतीत नहीं हो रहा है ॥२१॥ हे मान्य ! प्रैष्य को अनुशासन देने वाला स्वामी कभी स्वयं प्रैष्य नहीं हो सकता। हे वनवासी कुलभूषण ! हम सभी लोग आपके प्रैष्य हैं ॥ २२ ॥ आप हमारे स्वामी हैं, कलत्रवत् (स्त्री के समान) रक्षणीय हैं। स्वामी सेना का कलत्र अर्थात् कलत्रवत् सर्वदा रक्षणीय होता है। हे शत्रुञ्जय अङ्गद ! यही परम्परा की विधि है ॥२३॥ हे रिपुदमन अङ्गद ! आप ही इस कार्य के मूल हैं। अर्थात् सीतान्वेषण का सम्पूर्ण भार आपके ही ऊपर निर्भर है। इसलिए हे वीर ! आप सदा सर्वथा हम लोगों के द्वारा कलत्रवत् रक्षणीय हैं ॥२४॥ प्रत्येक कार्य के मूल की रक्षा सर्वदा करनी चाहिए। कार्य के जानने वालों की सर्वदा यही नीति रही है। क्योंकि मूल की रक्षा में ही सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि तथा सफलता होती है ॥२५॥ हे सत्यपराक्रमी अङ्गद ! आप इस सम्पूर्ण कार्य के साधन हैं, बुद्धिपराक्रम-सम्पन्न आप ही इसके हेतु हैं ॥२६॥ हे वनवासी वीर ! आप हम सभी लोगों के गुरु तथा गुरुपुत्र हैं। आपका आश्रय लेकर हम सभी लोग प्रत्येक कार्य को सिद्ध कर सकते हैं ॥२७॥ महामति जाम्बवान् के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उक्तवाक्यं महाप्राज्ञं जाम्बवन्तं महाकपिः । प्रत्युवाचोत्तरं वाक्यं वालिसूनुरथाङ्गदः ॥२८॥
यदि नाहं गमिष्यामि नान्यो वानरपुंगवः । पुनः खल्विदमस्माभिः कार्यं प्रायोपवेशनम् ॥२९॥
न ह्यकृत्वा हरिपतेः संदेशं तस्य धीमतः । तत्रापि गत्वा प्राणानां न पश्ये परिरक्षणम् ॥३०॥
स हि प्रसादे चात्यर्थं कोपे च हरिरीश्वरः । अतीत्य तस्य संदेशं विनाशो गमने भवेत् ॥३१॥
तद्यथा ह्यस्य कार्यस्य न भवत्यन्यथा गतिः । तद्भवानेव दृष्टार्थः संचिन्तयितुमर्हति ॥३२॥
सोऽङ्गदेन तदा वीरः प्रयुक्तः प्लवगर्षभः । जाम्बवानुत्तरं वाक्यं प्रोवाचेदं ततोऽङ्गदम् ॥३३॥
अस्य ते वीर कार्यस्य न किंचित्परिहीयते । एष संचोदयाम्येनं यः कार्यं साधयिष्यति ॥३४॥
ततः प्रतीतं प्लवतां वरिष्ठमेकान्तमाश्रित्य सुखोपविष्टम् ।
संचोदयामास हरिप्रवीरो हरिप्रवीरं हनुमन्तमेव ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे बलेयत्ताविष्करणं नाम पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥६५॥

षट्षष्टितमः सर्गः

हनूमद्बलसंधुक्षणम्

अनेकशतसाहस्रीं विषण्णां हरिवाहिनीम् । जाम्बवान् समुदीक्ष्यैवं हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

इन बातों को कहने के पश्चात् महान् व्यक्ति बालिपुत्र अङ्गद ने उसका उत्तर इस प्रकार दिया ॥२८॥ यदि मैं नहीं जाऊँगा तथा और कोई वनवासिश्रेष्ठ इस काम को नहीं करेगा तो ऐसी अवस्था में हम लोगों को वही प्रायोपवेशन करना चाहिए ॥२९॥ बुद्धिमान् राजा सुग्रीव की आज्ञा का बिना पालन किये हुए यदि हम लोग किष्किन्धा चले जायें तो वहाँ भी हम लोगों के प्राणों की रक्षा किसी प्रकार नहीं हो सकेगी ॥३०॥ वे राजा सुग्रीव प्रसाद तथा क्रोध करने में समर्थ हैं। उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना मानो विनाश अवश्यम्भावी है ॥ ३१ ॥ इसलिए इस कार्य की सिद्धि का और कोई उपाय नहीं है। अर्थात् समुद्र के पार जाना होगा या प्राण त्यागना पड़ेगा। आप इन अर्थों के जानने वाले हैं, इसलिए आप ही कार्यसिद्धि के लिए कोई उपाय सोचिए ॥३२॥ अङ्गद की इन बातों को सुनकर वनवासियों के वीर सेनानी महामति जाम्बवान् यह उत्तम वाक्य अङ्गद से बोले ॥३३॥ हे वीर! आपके इस महान् कार्य में किसी प्रकार की बाधा न पड़ेगी। मैं उस व्यक्ति को प्रेरित कर रहा हूँ जिसके द्वारा आपके कार्य की सिद्धि होगी ॥३४॥ पश्चात् सुखपूर्वक एकान्त में बैठे हुए, वनवासियों में श्रेष्ठ, लब्धप्रतिष्ठ हनुमान् को वनवासियों के प्रवर सेनानी जाम्बवान् ने प्रेरित किया ॥३५॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'शक्ति की मात्रा का प्रकाशन' विषयक पैंसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६५ ॥

छियासठवां सर्ग

हनुमान् के बल का प्रकाशन

सैकड़ों तथा हजारों वनवासी सैनिकों को विषादयुक्त देखकर सेनापति जाम्बवान् हनुमान् को लक्ष्य कर इस प्रकार बोले ॥१॥ हे वीर! आप सर्वशास्त्रविशारद हैं। आप इस समय एकान्तावस्था में मौन अवलम्बन कर क्यों बैठे हैं। हम वनवासियों को इस समय क्या करना चाहिए, कुछ क्यों नहीं बोलते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविशारद । तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनुमन् किं न जल्पसि ॥ २ ॥
हनुमन् हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि । रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च ॥ ३ ॥
अरिष्टनेमिनः पुत्रो वैनतेयो महाबलः । गरुत्मानिति विख्यात उत्तमः सर्वपक्षिणाम् ॥ ४ ॥
बहुशो हि मया दृष्टः सागरे स महाबलः । भुजगानुद्धरन् पक्षी महावेगो महायशाः ॥ ५ ॥
पक्षयोर्यद्बलं तस्य तावद्भुजबलं तव । विक्रमश्चापि वेगश्च न ते तेनावहीयते ॥ ६ ॥
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुंगव । विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न बुध्यसे ॥ ७ ॥
अप्सराप्सरसां श्रेष्ठा विख्याता पुञ्जिकस्थला । अञ्जनेति परिख्याता पत्नी केसरिणो हरेः ॥ ८ ॥
विख्याता त्रिषु लोकेषु रूपेणाप्रतिमा भुवि । अभिशापादभूत्तात वानरी कामरूपिणी ॥ ९ ॥
दुहिता वानरेन्द्रस्य कुञ्जरस्य महात्मनः । मानुषं विग्रहं कृत्वा रूपयौवनशालिनी ॥१०॥
विचित्रमाल्याभरणा महार्हक्षौमवासिनी । अचरत्पर्वतस्याग्रे प्रावृडम्बुदसंनिभे ॥११॥
तस्या वस्त्रं विशालाक्ष्याः पीतं रक्तदशं शुभम् । स्थितायाः पर्वतस्याग्रे मारुतोऽपाहरच्छनैः ॥१२॥
स ददर्श ततस्तस्या वृत्तावूरू सुसंहतौ । स्तनौ च पीनौ सहितौ सुजातं चारु चाननम् ॥१३॥

हो ॥२॥ हे हनुमान् ! आप वनवासी सम्राट् सुग्रीव के समान हैं तथा बल और तेज में राम लक्ष्मण के समान हैं ॥३॥ अरिष्टनेमि के पुत्र, महाबली पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड़ के समान आप बल पराक्रम में विख्यात हैं ॥४॥ मैंने बहुत बार समुद्र से साँपों को पकड़ते हुए उस महाबली गरुड़ पक्षी को देखा है ॥५॥ उस पक्षी के दोनों पंखों में जो बल है, वही बल और पराक्रम तुम्हारे भुजदण्डों में भी दिखाई देता है। पराक्रम और तेज में तुम उससे कुछ भी कम नहीं हो ॥ ६ ॥ हे वनवासियों के पूज्य ! सम्पूर्ण प्राणियों में जो बल, बुद्धि, तेज तथा पराक्रम है आप में उन सबसे कहीं अधिक है। अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण आप क्यों नहीं करते हैं ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण अप्सराओं में श्रेष्ठ पुञ्जिकस्थला नाम की विख्यात जो अप्सरा थी, वही अञ्जना नाम से पश्चात् विख्यात हुई, वही वनवासी केसरी की धर्मपत्नी हुई ॥ ८ ॥ तीन प्रकार के मानवी समाज में वह अप्रतिम सुन्दरी थी। वह किसी अनिष्ट कार्य या अभिशाप से वनवासी समाज में उत्पन्न हुई ॥ ९ ॥ वनवासियों में श्रेष्ठ वह कुञ्जर की कन्या थी। मनुष्य शरीर प्राप्त कर वह सौन्दर्य तथा यौवनावस्था से परिपूर्ण थी ॥ १० ॥ चित्र विचित्र माला और आभूषणों को धारण कर रेशमी वस्त्र से अलङ्कृत वह किसी समय वर्षाकाल में काली मेघ माला के समान प्रतीत होने वाले पर्वत के शिखर पर भ्रमण कर रही थी ॥ ११ ॥ उस विशालाक्षी अञ्जना का जो पर्वत के शिखर पर भ्रमण कर रही थी लाल किनारी का पीत वस्त्र वायु के वेग से यत्र तत्र कम्पित होने लगा ॥ १२ ॥ वायु से कम्पित वस्त्रवाली उस अञ्जना के स्तन ऊरु आदि सुसंगठित सुन्दर अङ्गों को तथा सुन्दर मुखमण्डल को वायु नामक व्यक्ति ने देखा ॥ १३ ॥ विशाल श्रोणी, सूक्ष्मकटिवाली, उस यशस्विनी अञ्जना को देखकर कामासक्त उस वायुदेव ने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तां विशालायतश्रोणीं तनुमध्यां यशस्विनीम् । दृष्ट्वैव शुभसर्वाङ्गीं पवनः काममोहितः ॥१४॥
स तां भुजाभ्यां दीर्घाभ्यां पर्यष्वजत मारुतः । मन्मथाविष्टसर्वाङ्गो गतात्मा तामनिन्दिताम् ॥१५॥
सा तु तत्रैव संभ्रान्ता सुवृत्ता वाक्यमब्रवीत् । एकपत्नीव्रतमिदं को नाशयितुमिच्छति ॥१६॥
अञ्जनाया वचः श्रुत्वा मारुतः प्रत्यभाषत । न त्वां हिंसामि सुश्रोणि मा भूत्ते सुभगे भयम् ॥१७॥
मारुतोऽस्मि गतो यत्त्वां परिष्वज्य यशस्विनीम् । वीर्यवान् बुद्धिसंपन्नस्तव पुत्रो भविष्यति ॥१८॥
महासत्त्वो महातेजा महाबलपराक्रमः । लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मया समः ॥१९॥
एवमुक्ता ततस्तुष्टा जननी ते महाकपे । गुहायां त्वां महाबाहो प्रजज्ञे प्लवगर्षभम् ॥२०॥
[अभ्युत्थितं ततः सूर्यं बालो दृष्ट्वा महावने । फलं चेति जिघृक्षुस्त्वमुत्प्लुत्याभ्युद्गतो दिवम् ॥२१॥
शतानि त्रीणि गत्वाथ योजनानां महाकपे । तेजसा तस्य निर्धूतो न विषादं गतस्ततः ॥२२॥
तावदापततस्तूर्णमन्तरिक्षं महाकपे । क्षिप्तमिन्द्रेण ते वज्रं क्रोधाविष्टेन धीमता ॥२३॥
तदा शैलाग्रशिखरे वामो हनुरभज्यत । ततो हि नामधेयं ते हनुमानिति कीर्त्यते ॥२४॥
ततस्त्वां निहतं दृष्ट्वा वायुर्गन्धवहः स्वयम् । त्रैलोक्ये भृशसंक्रुद्धो न ववौ वै प्रभञ्जनः ॥२५॥

उसे अपनी ओर आकृष्ट किया ॥ १४ ॥ सर्वाङ्ग से कामचेष्टित वायुदेव नामक उस व्यक्ति ने अपनी दोनों विशाल भुजाओं से पवित्र विचारवाली अञ्जना का आलिङ्गन किया ॥ १५ ॥ घबराई हुई तथा व्रती जीवन से परिपूर्ण वह अञ्जना इस प्रकार बोली—मेरे इस व्रती जीवन को कौन नष्ट करना चाहता है ॥ १६ ॥ अञ्जना की इन बातों को सुनकर वायुदेव ने उसका इस प्रकार उत्तर दिया। हे देवि ! मैं तुम्हारे व्रती जीवन को नष्ट करना नहीं चाहता। तुम किसी प्रकार का भय मत करो ॥१७॥ हे देवि ! मैंने मन से आसक्त होकर जो तुम्हारा आलिङ्गन किया है उससे तुमको बल बुद्धि पराक्रम से सम्पन्न पुत्र प्राप्त होगा ॥ १८ ॥ महाबली, महातेजस्वी, पराक्रम तथा धैर्य सम्पन्न कूदने फाँदने तथा तैरने में वह मेरे ही समान होगा ॥१९॥ हे विशाल भुजावाले हनुमन् ! वायुदेव के इस प्रकार कथन के अनन्तर तुम्हारी माता ने एक कन्दरा में तुम्हें उत्पन्न किया ॥ २० ॥ * उस महावन में बाल्यकाल में ही उदय होते हुए सूर्य को देखकर यह फल है ऐसा जानकर उसको लेने की इच्छा से तुम आशाश में कूद पड़े ॥ २१ ॥ हे महावनवासि ! आकाश में तीन सौ योजन ऊपर जाने पर सूर्य के तेज से संतप्त होने पर भी तुम्हें किसी प्रकार का खेद नहीं हुआ ॥ २२ ॥ हे हनुमन् ! शीघ्रतापूर्वक तुम्हें आकाश में आये हुए देखकर क्रोधाविष्ट इन्द्र ने तुम पर वज्र का प्रहार किया ॥ २३ ॥ उससे उस पर्वत शिखर पर गिरने से तुम्हारा वाम हनु (ठुड्डी) कुछ विकृत हो गया। उसी घटना को लेकर तुम्हारा नाम हनुमान् पड़ा ॥ २४ ॥ तुम मारे गये, इस घटना को देखकर स्वयं वायुदेव अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और तीनों लोकों में अपनी गति बन्द कर दी ॥ २५ ॥ त्रिलोकी के क्षुब्ध हो जाने पर सारे देवता अत्यन्त घबड़ा

* २१–२९ तक के ये श्लोक प्रकरणविरुद्ध, असम्भव, सृष्टि नियम विरुद्ध होने से प्रक्षिप्त हैं। ऐसे वर्णन पुराणों में आया करते हैं, उन्हीं में से यह वर्णन लिया गया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संभ्रान्ताश्च सुराः सर्वे त्रैलोक्ये क्षोभिते सति। प्रसादयन्ति संक्रुद्धं मारुतं भुवनेश्वराः ॥२६॥
प्रसादिते च पवने ब्रह्मा तुभ्यं वरं ददौ। अशस्त्रवध्यतां तात समरे सत्यविक्रम ॥२७॥
वज्रस्य च निपातेन विरुजं त्वां समीक्ष्य च। सहस्रनेत्रः प्रीतात्मा ददौ ते वरमुत्तमम् ॥२८॥
स्वच्छन्दतश्च मरणं ते भूयादिति वै प्रभो]। स त्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजो भीमविक्रमः ॥२९॥
मारुतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चापि तत्समः। त्वं हि वायुसुतो वत्स प्लवने चापि तत्समः ॥३०॥
वयमद्य गतप्राणा भवान्नस्त्रातु सांप्रतम्। दाक्ष्यविक्रमसंपन्नः पक्षिराज इवापरः ॥३१॥
[त्रिविक्रमे मया तात सशैलवनकानना। त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी परिक्रान्ता प्रदक्षिणम् ॥३२॥
तथा चौषधयोऽस्माभिः संचिता देवशासनात्। निष्पन्नममृतं याभिस्तदासीन्नो महद्बलम् ॥३३॥]
स इदानीमहं वृद्धः परिहीनपराक्रमः। सांप्रतं कालमस्माकं भवान् सर्वगुणान्वितः ॥३४॥
तद्विजृम्भस्व विक्रान्तः प्लवतामुत्तमो ह्यसि। त्वद्वीर्यं द्रष्टुकामेयं सर्ववानरवाहिनी ॥३५॥
उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम्। परा हि सर्वभूतानां हनुमन् या गतिस्तव ॥३६॥
विषण्णा हरयः सर्वे हनूमन् किमुपेक्षसे। विक्रमस्व महावेगो विष्णुस्त्रीन् विक्रमानिव ॥३७॥

गये और वे सभी वायुदेव को प्रसन्न करने लगे ॥ २६ ॥ पवन के प्रसन्न हो जाने पर ब्रह्माजी ने तुमको वरदान दिया। हे सत्यपराक्रमी! भीषण संग्राम में भी तुम अस्त्र शस्त्रों से अवध्य माने जाओगे ॥ २७ ॥ इन्द्र के वज्रप्रहार करने पर भी तुम सम्पूर्ण प्रकार की पीडा से रहित ही रहे इससे प्रसन्न होकर इन्द्र ने तुम्हें वरदान दिया ॥ २८ ॥ तुम्हारी मृत्यु तुम्हारी इच्छा पर ही आश्रित रहेगी (यह वरदान इन्द्र ने दिया)। इसलिए तुम केसरी के भीषण पराक्रम वाले क्षेत्रज्ञ पुत्र हो ॥ २९ ॥ आप वायुदेव के औरस पुत्र हैं, तेज में आपके समान कोई नहीं है, वायुदेव के पुत्र होने के कारण तैरने कूदने आदि में आप उन्हीं के समान हैं ॥ ३० ॥ इसी समय हम लोगों का प्राण संकट में है जबकि दक्षता पराक्रम सम्पन्न राजा सुग्रीव के समान आप हम लोगों के बीच में उपस्थित हैं ॥ ३१ ॥* वामन के तीन पग पृथ्वी नापने के समय वन पर्वत से युक्त इस पृथ्वी की मैंने इक्कीस बार प्रदक्षिणा की थी। उस समय देवताओं की आज्ञा से सम्पूर्ण ओषधियों का भी सञ्चय हम लोगों ने किया था ॥ ३२ ॥ उन ओषधियों का मन्थन कर अमृत निकाला गया। उस समय हम लोगों का बल महान् था ॥ ३३ ॥ मैं इस समय अत्यन्त वृद्ध हो गया हूँ, बल पराक्रम से सर्वथा हीन हूँ और इसी समय हम लोगों का बल पराक्रम दिखाने का समय है तथा आप सब गुणों से परिपूर्ण हैं ॥ ३४ ॥ आप सम्पूर्ण तैरनेवालों में श्रेष्ठ हैं, इसलिए अपनी वीरता तथा शक्ति का परिचय दीजिये। यह सम्पूर्ण वनवासी सेना आपके पराक्रम को देखना चाहती है ॥ ३५ ॥ हे वनवासियों में वीर! उठिये, समुद्र को पार कीजिए। सम्पूर्ण प्राणियों में आपकी गति सर्वश्रेष्ठ है ॥ ३६ ॥ ये सभी वनवासी अत्यन्त दुःखी हैं, हे हनुमन्! इनकी उपेक्षा क्यों कर रहे हो? अपनी शक्ति से त्रिलोकी पर शासन करनेवाले विष्णु के समान आप भी अपने पराक्रम का परिचय दीजिये ॥ ३७ ॥ वनवासियों के नेता जाम्बवान् से इस प्रकार प्रेरित होने पर, जिसके वेग पराक्रम से सभी

---

* ये श्लोक भी अवैदिक एवं असम्भव तथा पुराणाश्रित वामनावतारादि पुराण कथाओं में से निकाल कर यहाँ रखे गये हैं। अतः प्रक्षिप्त हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ततस्तु वै जाम्बवता प्रचोदितः प्रतीतवेगः पवनात्मजः कपिः ।
प्रहर्षयंस्तां हरिवीरवाहिनीं चकार रूपं महदात्मनस्तदा ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे हनूमद्बलसंधुक्षणं नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः

लङ्घनावष्टम्भः

तं दृष्ट्वा जृम्भमाणं ते क्रमितुं शतयोजनम् । वीर्येणापूर्यमाणं च सहसा वानरोत्तमाः ॥
सहसा शोकमुत्सृज्य प्रहर्षेण समन्विताः । विनेदुस्तुष्टुवुश्चापि हनुमन्तं महाबलम् ॥
प्रहृष्टा विस्मिताश्चैव वीक्षन्ते स्म समन्ततः । त्रिविक्रमकृतोत्साहं नारायणमिव प्रजाः ॥
संस्तूयमानो हनुमान् व्यवर्धत महाबलः । समाविध्य च लाङ्गूलं हर्षाच्च बलमेयिवान् ॥
तस्य संस्तूयमानस्य वृद्धैर्वानरपुंगवैः । तेजसापूर्यमाणस्य रूपमासीदनुत्तमम् ॥
यथा विजृम्भते सिंहो विवृद्धो गिरिगह्वरे । मारुतस्यौरसः पुत्रस्तथा संप्रति जृम्भते ।

परिचित हैं ऐसे वायुपुत्र हनुमान् ने उस वीर वनवासी वाहिनी को प्रसन्न करते हुए समुद्र पार जाने अपने वास्तविक रूप को प्रकट किया ॥ ३८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'हनुमान् के बल का प्रकाशन' विषयक छियासठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६६ ॥

सड़सठवाँ सर्ग

लाँघने का उपक्रम

शतयोजन सागर पार जाने के पूर्व सम्पूर्ण वेग से परिपूर्ण वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् को सहसा इ सुसज्जित देखकर ॥ १ ॥ सभी वनवासी सैनिक शोक को छोड़कर अत्यन्त प्रसन्न हो गये और अ जयकार शब्दों से हनुमान् की स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ प्रसन्न तथा चकित होते हुए वे सभी हनुमान् को इस प्रकार देखने लगे जैसे प्रकृष्ट योगी जन त्रिलोकी को वश में करनेवाले ब्रह्म व दृष्टि से देखते हैं ॥ ३ ॥ वनवासी सैनिकों के द्वारा प्रशंसित होने पर महाबली हनुमान् ने अप शक्ति का परिचय दिया तथा प्रसन्नतापूर्वक अपनी ध्वजा को फहराते हुए सम्पूर्ण बल को केन्द्रित कि वनवासिश्रेष्ठ वृद्धों के द्वारा इस प्रकार प्रशंसित होने पर तेज से परिपूर्ण हनुमान् का रूप अतिसुन्दर प्रतीत हो रहा था ॥ ५ ॥ जैसे विशाल पर्वत गुफा में सिंह अङ्गड़ाई लेता हुआ नाद वैसे ही वायुदेव के औरस पुत्र हनुमान् सिंहनाद करते हुए अङ्गड़ाई लेने लगे ॥ ६ ॥ सिंहनाद

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

। मुखं तस्य जृम्भमाणस्य धीमतः । अम्बरीषमिवादीप्तं विधूम इव पावकः ॥ ७ ॥
त्थितो मध्यात्संप्रहृष्टतनूरुहः । अभिवाद्य हरीन् वृद्धान् हनूमानिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥
पर्वताग्राणि हुताशनसखोऽनिलः । बलवानप्रमेयश्च वायुराकाशगोचरः ॥ ९ ॥
शीघ्रवेगस्य शीघ्रगस्य महात्मनः । मारुतस्यौरसः पुत्रः प्लवने नास्ति मत्समः ॥१०॥
हि विस्तीर्णमालिखन्तमिवाम्बरम् । मेरुं गिरिमसङ्गेन परिगन्तुं सहस्रशः ॥११॥
णुन्नेन सागरेणाहमुत्सहे । समाप्लावयितुं लोकं सपर्वतनदीह्रदम् ॥१२॥
ङ्गावेगेन भविष्यति समुत्थितः । समुच्छ्रितमहाग्राहः समुद्रो वरुणालयः ॥१३॥
नमाकाशे पतन्तं पक्षिसेविते । वैनतेयमहं शक्तः परिगन्तुं सहस्रशः ॥१४॥
स्थितं वापि ज्वलन्तं रश्मिमालिनम् । अनस्तमितमादित्यमभिगन्तुं समुत्सहे ॥१५॥
भूमिमसंस्पृश्य पुनरागन्तुमुत्सहे । प्रवेगेनैव महता भीमेन प्लवगर्षभाः ॥१६॥
मतिक्रान्तुं सर्वानाकाशगोचरान् । सागरं शोषयिष्यामि दारयिष्यामि मेदिनीम् ॥१७॥
चूर्णयिष्यामि प्लवमानः प्लवङ्गमाः । हरिष्याम्यूरुवेगेन प्लवमानो महार्णवम् ॥१८॥
विविधं पुष्पं पादपानां च सर्वशः । अनुयास्यति मामद्य प्लवमानं विहायसा ॥१९॥

य धीमान् हनुमान् का मुख इस प्रकार शोभित होने लगा जैसे प्रातःकाल उदीयमान बालरवि तथा त अग्नि की शोभा होती है ॥ ७ ॥ रोंगटे जिनके खड़े हो गये हैं ऐसे हनुमान् वनवासी सैनिकों के ड़े होकर वयोवृद्ध वनवासी सेनापतियों को प्रणाम करके उनसे यह वचन बोले ॥ ८ ॥ * पर्वत के को पीड़ित करनेवाला, अग्निदेव को बढ़ानेवाला, आकाश में गमन करनेवाला अप्रतिम बलयुक्त वायु है ॥ ९ ॥ वेगवाले अग्रगामी महात्मा मारुत का मैं औरस पुत्र हूँ। कूदने तैरने आदि में मैं उन्हीं के सदृश हूँ ॥१०॥ ी इस मेरु पर्वत का विना आश्रय लिए हुए सहस्रों बार आ जा सकता हूँ ॥ ११ ॥ अपने बाहुवेग से मैं भी क्षुभित करके नदी पर्वत सरोवर से युक्त इस पृथ्वी को आप्लावित कर सकता हूँ ॥ १२ ॥ मेरी जङ्घाओं न् आघात से यह समुद्र भी तरङ्गित हो जायेगा तथा जितने जल-जन्तु हैं वे सभी जल के ऊपर आ जायेंगे ॥ आकाश में उड़नेवाले सर्पाशी गरुड़ का भी मैं सहस्रों बार अतिक्रमण कर सकता हूँ ॥ १४ ॥ उदयाचल से ल को चलनेवाले अंशुमाली सूर्य का भी अस्ताचल के प्राप्त होने से पूर्व मैं साथ दे सकता हूँ ॥ १५ ॥ वनवासियो ! मैं अपने भीषण वेग से समुद्र पार जा सकता हूँ और विना भूमि को स्पर्श किये उसी वेग लौट भी सकता हूँ ॥ १६ ॥ अपने वेग से सम्पूर्ण आकाशचारी पक्षियों का अतिक्रमण कर सकता हूँ, ो सुखा सकता हूँ, पृथ्वी को फाड़ सकता हूँ ॥ १७ ॥ हे वनवासियो ! मैं कूदते हुए अपने वेग से पर्वतों को चूर्ण ा और समुद्र को तैरते हुए अपने ऊरु वेग से क्षुभित कर सकता हूँ ॥ १८ ॥ जिस समय मैं आकाश में गमन तो मेरे ऊरु वेग से आक्रान्त होती हुई लताएँ, पुष्प तथा वृक्षों की पंक्तियाँ भी मेरा अनुगमन करेंगी ॥ १९ ॥ मय मैं अपने वेग से आकाश में गमन करूँगा उस समय आकाश में स्वातिपथ (आकाश गंगा) की तरह मैं

* ये श्लोक भी सृष्टि क्रम के विरुद्ध, असम्भव तथा असम्बद्ध प्रलाप मात्र होने के कारण प्रक्षिप्त हैं। ये कि की कृति नहीं हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भविष्यति हि मे पन्थाः स्वातेः पन्था इवाम्बरे । चरन्तं घोरमाकाशमुत्पतिष्यन्तमेव वा ॥२०॥
द्रक्ष्यन्ति निपतन्तं च सर्वभूतानि वानराः । महामेघप्रतीकाशं मां च द्रक्ष्यथ वानराः ॥२१॥
दिवमावृत्य गच्छन्तं ग्रसमानमिवाम्बरम् । विधमिष्यामि जीमूतान् कम्पयिष्यामि पर्वतान् ॥२२॥
सागरं शोषयिष्यामि प्लवमानः समाहितः । वैनतेयस्य सा शक्तिर्मम या मारुतस्य वा ॥२३॥
ऋते सुपर्णराजानं मारुतं वा महाजवम् । न तद्भूतं प्रपश्यामि यन्मां प्लुतमनुव्रजेत् ॥२४॥
निमेषान्तरमात्रेण निरालम्बनमम्बरम् । सहसा निपतिष्यामि घनाद्विद्युदिवोत्थिता ॥२५॥
भविष्यति हि मे रूपं प्लवमानस्य सागरे । विष्णोर्विक्रममाणस्य पुरा त्रीन् विक्रमानिव ॥२६॥
बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा । अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवङ्गमाः ॥२७॥
मारुतस्य समो वेगे गरुडस्य समो जवे । अयुतं योजनानां तु गमिष्यामीति मे मतिः ॥२८॥
वासवस्य सवज्रस्य ब्रह्मणो वा स्वयंभुवः । विक्रम्य सहसा हस्तादमृतं तदिहानये ॥२९॥
लङ्कां वापि समुत्क्षिप्य गच्छेयमिति मे मतिः । तमेवं वानरश्रेष्ठं गर्जन्तममितौजसम् ॥३०॥
प्रहृष्टा हरयस्तत्र समुदैक्षन्त विस्मिताः । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ज्ञातीनां शोकनाशनम् ॥३१॥
उवाच परिसंहृष्टो जाम्बवान् हरिसत्तमम् । वीर केसरिणः पुत्र हनुमन् मारुतात्मज ॥३२॥
ज्ञातीनां विपुलः शोकस्त्वया तात विनाशितः । तव कल्याणरुचयः कपिमुख्याः समागताः ॥३३॥

प्रतीत होऊँगा ॥ २० ॥ हे वनवासियो ! सम्पूर्ण प्राणी कूदते समय मुझको देखेंगे । हे वीरो ! पर्वत के समान विशालका मुझको देखो ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण आकाश को घेरकर चलते हुए तथा आकाश को आक्रान्त करते हुए मैं बादलों को छिन्न भिन्न कर दूंगा तथा पर्वतों को कम्पायमान कर दूँगा ॥ २२ ॥ समुद्र को पार करते हुए मैं समुद्र को शुष्क कर दूँगा गरुड़ की तथा वायु की शक्ति ही मेरे समान है ॥ २३ ॥ मैं गरुड़ तथा महाबली वायु को छोड़कर किसी प्राणधारी क ऐसा नहीं देखता हूँ जो मेरी गति का अनुगमन कर सके ॥ २४ ॥ क्षण मात्र में घन से निकली हुई विद्युत् की तर इस आश्रयहीन आकश में मैं सहसा कूद सकता हूँ ॥ २५ ॥ समुद्र के लंघन के समय मेरा रूप इस प्रकार होगा जै तीन पग में पृथ्वी नापने वाले वामन का रूप हुआ था ॥२६॥ मैं बुद्धि से देख रहा हूँ, मानसिक चेष्टा तथा उत्साह भी मेरा उसी प्रकार है, मैं विदेह कुमारी सीता को अवश्य देखूँगा, हे वनवासियो ! तुम लोग प्रसन्न हो ॥ २७ ॥ मैं वेग में वायु के समान और गति में गरुड़ के समान हजारों योजन जा सकता हूँ, ऐसा मे विचार है ॥ २८ ॥ वज्रधारी इन्द्र (मेघ) अथवा जगत्स्रष्टा ब्रह्म से मैं अपने पराक्रम के द्वारा जल त अमर पद प्राप्त कर सकता हूँ ॥ २९ ॥ मैं लङ्का का अतिक्रमण कर आगे भी जा सकता हूँ ऐसा मेरा विचार है । इस प्रकार अमित प्रभाववाले तथा साधिकार गर्जते हुए वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् को ॥ ३० ॥ प्रसन्नवद वे वनवासी सैनिक अत्यन्त चकित होकर देखने लगे । जाति बान्धवों के शोकनाशक हनुमान् की इन बा को सुनकर ॥ ३१ ॥ वनवासियों में श्रेष्ठ जाम्बवान् प्रसन्न होकर यह वचन बोले—तुम वीर केसरी त वायुदेव के पराक्रमी पुत्र हो ॥ ३२ ॥ हे तात ! आपने अपने समस्त जाति-बान्धवों के महान् शोक को न आत्मु । तुम्हारे कल्याण की कामना रखनेवाले ये मुख्य वनवासी तुम्हारे सामने एकत्रित हैं ॥ ३३ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

1783
Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी
पु०सं०

२०लं कार्यसिद्ध्यर्थं करिष्यन्ति समाहिताः। ऋषीणां च प्रसादेन कपिवृद्धमतेन च ॥३४॥
२१णां च प्रसादेन प्लवस्व त्वं महार्णवम्। स्थास्यामश्चैकपादेन यावदागमनं तव ॥३५॥
२२हतानि च सर्वेषां जीवितानि वनौकसाम्। ततस्तु हरिशार्दूलस्तानुवाच वनौकसः ॥३६॥
२३ऽपि लोके न मे वेगं प्लवने धारयिष्यति। एतानीह नगस्यास्य शिलासंकटशालिनः ॥३७॥
२४खराणि महेन्द्रस्य स्थिराणि च महान्ति च। एषु वेगं करिष्यामि महेन्द्रशिखरेष्वहम् ॥३८॥
२५नाद्रुमविकीर्णेषु धातुनिष्पन्दशोभिषु। एतानि मम निष्पेषं पादयोः प्लवतां वराः ॥३९॥
॥तो धारयिष्यन्ति योजनानामितः शतम्। ततस्तं मारुतप्रख्यः स हरिर्मारुतात्मजः ॥४०॥
७रुरोह नगश्रेष्ठं महेन्द्रमरिमर्दनः। वृतं नानाविधैर्वृक्षैर्मृगसेवितशाद्वलम् ॥४१॥
८कुसुमसंबाधं नित्यपुष्पफलद्रुमम्। सिंहशार्दूलचरितं मत्तमातङ्गसेवितम् ॥४२॥
९द्विजगणोद्घुष्टं सलिलोत्पीडसंकुलम्। महद्भिरुच्छ्रितं शृङ्गैर्महेन्द्रं स महाबलः ॥४३॥
०।चार हरिश्रेष्ठो महेन्द्रसमविक्रमः। पादाभ्यां पीडितस्तेन महाशैलो महात्मनः ॥४४॥
१।स सिंहाभिहतो महान् मत्त इव द्विपः ॥
२।

३।सिद्धि के लिए ये सभी ध्यानावस्थित होकर तुम्हारा माङ्गलिक विधान करेंगे। ऋषियों की कृपा से तथा
वनवासियों की सम्मति से और गुरुजनों के आशीर्वाद से तुम समुद्र का सन्तरण करो। जब तक
रा प्रत्यागमन नहीं होगा तब तक हम लोग एक पैर से खड़े होकर प्रतीक्षा करेंगे। अर्थात् तावत् पर्यन्त
लोग कहीं भी नहीं जायँगे ॥ ३४, ३५ ॥ हम सभी वनवासियों का जीवन आज तुम्हारे अधीन है।
वान् की इन बातों को सुनकर हनुमान् उन वनवासी सैनिकों से बोले ॥ ३६ ॥ तैरने तथा कूदने के
मेरे वेग को कोई रोक नहीं सकता। इस पर्वत की जो यह दुःखदायी चट्टानें हैं तथा इस महेन्द्र पर्वत
विशाल स्थिर चोटियाँ हैं, आज उसी महेन्द्र पर्वत की चोटी से वेग पूर्वक गमन करूँगा ॥ ३७, ३८ ॥
प्रकार के वृक्षों से परिपूर्ण तथा बहनेवाली धातुओं से सुशोभित, विशाल ये पर्वत की चोटियाँ सौ
न समुद्र के सन्तरण के समय मेरे प्लवन वेग को धारण कर सकेंगी। तत्पश्चात् वायु के समान वेगवाले
पुत्र ॥ ३९, ४० ॥ अरिमर्दन हनुमान् पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्र पर्वत की चोटी पर चढ़ गये। जो पर्वत नाना
र के पुष्पित वृक्षों से, मृगों से, हरी २ घासों से, लता तथा पुष्पों से परिपूर्ण, सर्वदा फूलने फलनेवाले
से युक्त, सिंह, शार्दूल तथा मतवाले हाथियों से पूर्ण था ॥ ४१, ४२ ॥ मत्त पक्षियों के कलरव से युक्त,
अनेक प्रकार के झरनों से सुशोभित, बड़ी-बड़ी चोटियों से युक्त महेन्द्र पर्वत के शिखर पर
बली ॥ ४३ ॥ इन्द्र के समान पराक्रमवाले, वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् विचरण करने लगे। कूदने के समय
ने पैरों से उन पर्वतीय चट्टानों को दबाया जिससे इस प्रकार का शब्द होने लगा जैसे सिंह के
मण से मतवाला हाथी शब्द करता है ॥ ४४ ॥ आस पास की भूमि से जल स्रवित होने लगा

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुमोच सलिलोत्पीडान् विप्रकीर्णशिलोच्चयः । वित्रस्तमृगमातङ्गः प्रकम्पितमहाद्रुमः ॥४५॥
नागगन्धर्वमिथुनैः पानसंसर्गकर्कशैः । उत्पतद्भिश्च विहगैर्विद्याधरगणैरपि ॥४६॥
त्यज्यमानमहासानुः संनिलीनमहोरगः । चलशृङ्गशिलोद्घातस्तदाभूत्स महागिरिः ॥४७॥
निःश्वसद्भिस्तदार्तैस्तैर्भुजङ्गैरर्धनिःसृतैः । सपताक इवाभाति स तदा धरणीधरः ॥४८॥
ऋषिभिस्त्राससंभ्रान्तैस्त्यज्यमानशिलोच्चयः । सीदन् महति कान्तारे सार्थहीन इवाध्वगः ॥४९॥

स वेगवान् वेगसमाहितात्मा हरिप्रवीरः परवीरहन्ता ।
मनः समाधाय महानुभावो जगाम लङ्कां मनसा मनस्वी ॥५०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे लङ्घनावष्टम्भो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥६७॥

श्रीमद्वाल्मीकिरामायणे किष्किन्धाकाण्डः संपूर्णः

शिलाएँ चूर २ होने लगीं, हाथी आदि वनजन्तु त्रस्त हो गये तथा बड़े २ विशाल वृक्ष कम्पित हो गये नाना प्रकार के वे गन्धर्व जाति के स्त्री पुरुष जो आसवादि पान के संसर्ग से क्रूर वृत्ति के हो गये थे हुए पक्षीगण तथा विद्याधर जाति के मनुष्य ॥ ४६ ॥ उस पर्वत की चोटी को छोड़कर इधर-उधर लगे और बड़े २ सर्प अपने २ घरों में घुस गये। बड़ी २ पर्वत चट्टानों के गिरने से उस पर्वत पर एक का कोलाहल सा हो गया ॥ ४७ ॥ आधे बिल में और आधे बाहर होकर सर्प भयङ्कर फूत्कार कर ऐसी अवस्था में वह पर्वत ध्वजा पताका से परिपूर्ण के समान सुशोभित होने लगा ॥ ४८ ॥ इस के बीच भय से संत्रस्त ऋषि भी उस पर्वत के शिखर को इस प्रकार छोड़कर चल दिये, जि भयङ्कर वन में दुःखी होते हुए पथिक अपने साथियों को छोड़कर चल देते हैं ॥ ४९ ॥ वेग आ वृत्तियों से जिसने अपने मन को स्थिर कर लिया है, शत्रुओं के मान भञ्जन करनेवाले महानुभ वासियों के वीर मनस्वी हनुमान् ने मन आदि सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके मन से लङ्का को किया ॥ ५० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड का 'लाँघने का उपक्रम' विषयक सड़सठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥

किष्किन्धाकाण्ड समाप्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

एस०यू०पी०(आर०आर०)—039 सा० राजस्व--15-12-76--8,000।

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

आर० डी० फार्म नं० 361

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चरित्र-पंजिका

एवं

सेवा-दूतत्व

नरहरिलवार

CC-0, Panini Kanya Maha.Vidyalaya Collection.